भारतीय विद्या

[बम्बईस्थित, भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित
संशोधनविषयक त्रैमासिक पत्रिका]

भाग २] अक्टोबर, ई. स. १९४१ * आश्विन, संवत् १९९७ [अंक १

संपादक

श्री जिन विजय मुनि

*

प्रकाशक

मंत्री, भारतीय विद्या भवन

नवगुजरात, अंधेरी, बंबई

प्रति अंक मूल्य १-८-० वार्षिक मूल्य ५-०-०

भारतीय विद्या

द्वितीय भाग] आश्विन, सं. १९९७ [प्रथम अंक

लेखानुक्रम

अनुपूर्ति

भारतीय विद्या अनुपूर्ति, क्रमाङ्क १

शालिभद्रसूरिकृत

भरतेश्वर-बाहुबलि रास

तथा

बुद्धि रास

गुजरात साहित्य परिषद् संमेलन

संपादक

श्री जिन विजय मुनि

* * *

विजया दशमी, सं. १९९७]

गुजरातना
पुरातन साहित्यना समुद्धार
अने
अभिनव वाङ्मयना समुत्कर्षनी
साधना माटे
गुजराती साहित्य संसद्
स्थापन करी
गुजराती जनताना
भावुक मानसमां
संस्कारिक अस्मिता
प्रकटित करनार

भारतीय संस्कृतिना
उच्चतम अध्ययन - अध्यापन
अने
सर्वांगीण शिक्षणप्रसार
निमित्त
भारतीय विद्या भवन
तथा तदन्तर्गत
गुजरातना अनन्य ज्ञानज्योतिर्धर
श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यनुं
सार्वजनीन स्मृतिमन्दिर
स्थापित करनार

सहृदय सुहृद्वर

श्रीमत् कन्हैयालाल माणेकलाल मुंशी

ना

कर्तव्यनिरत करकमलमां

हैमयुगीन गुजराती भाषानो

आ

प्राचीनतम पद्य प्रबन्ध

नूतन प्रतिष्ठित हेमचन्द्रस्मृतिमन्दिरमां
सर्वाद्य स्थापन करवा माटे
सादर समर्पित

*

जिनविजय

किंचित् प्रास्ताविक

*

भारतीय विद्या भवनना सुयोग्य सूत्र-संचालन नीचे, एना पोताना ज अभिनव रचाएला भव्य भवनना प्रशस्त प्रांगणमां, शरत्पूर्णिमा जेवा शुभ्र-तर अने शुभकर पर्वदिवसे भराता, **गुजराती साहित्य परिषद् संमेलनना**, १४मा अधिवेशनरूप आनन्दोत्सव प्रसंगे, गूर्जरगिराना गुण-गौरवमां गर्व अनु-भवनारा सुविज्ञ सज्जनोना करकमलमां, गुजराती भाषानी अद्यावधि अप्रकाशित अने अपरिचित एवी एक सौथी प्राचीन पद्यकृति सादर समर्पित करुं छुं।

आ कृतिनुं नाम **भरतेश्वर बाहुबलि रास** छे। एना कर्ता जैन श्वेतांबर संप्रदायना राजगच्छ नामना आम्नायमां थएला शालिभद्र सूरि छे। आनो रचना समय विक्रम संवत् १२४१, ना फाल्गुन मासनी पंचमी तिथि छे।

आपणने गुजराती भाषाना पुरातन साहित्यना विशाल संग्रहनी वास्तविक अने विश्वस्त ओळखाण तथा भाळ आपवानुं प्रथम मान सद्गत विद्वान् **चीमनलाल डाह्याभाई** दलाल एम्. ए. ने प्राप्त थाय छे। इ. स. १९१४नी अन्तमां, वडोद-राना साहित्यविलासी सद्गत श्रीसयाजीराव महाराजनी आज्ञाथी, तेमने पाटणना जैन भंडारोनुं व्यवस्थितरीते निरीक्षण करवानो परम सुयोग प्राप्त थयो; अने तेमां, पाटणना भंडारोना अग्र उद्धारक पूज्यपाद प्रवर्तक मुनिवर श्री**कांतिविजयजी** महाराज तथा तेमना अनन्य सहायक अने शास्त्रसुरक्षक स्वर्गस्थ शिष्यवर श्रीमुनि **चतुरविजयजी** महाराजनी विशिष्ट सहानुभूति भरेली इष्ट सहायताथी, तेमनुं ए निरीक्षणकार्य बहु ज सुंदररीते सफळ थयुं। तेमणे ए भंडारोमां छुपाएली विशाळ साहित्य संपत्तिनी सारा प्रमाणमां व्यवस्थित नोंध करी; अने ते उपरथी, सन् १९१५मां भराएली पांचमी गुजराती साहित्य परिषद् वास्ते एक विस्तृत निबंध तैयार कर्यो, जेमां **'पाटणना भंडारो अने खास करीने तेमां रहेलुं अपभ्रंश तथा प्राचीन गुजराती साहित्य'** ए विषय उपर गूर्जर साक्षरोने बहु ज विगतपूर्ण अने अभिनव प्रकाश आप्यो।

ए पहेलां, आपणी जूनी पेढीना बुजर्ग विद्वानो, गुजराती भाषाना आदि कवि तरीके नरसी महेताने ओळखता अने 'मुग्धावबोध औक्तिक'मां मळी आवतां गुजराती वाक्योने गुजराती भाषाना आदि गद्य तरीके उल्लेखता।

घणुं करीने, स्व० मनःसुख कीरतचंद महेता अने मनःसुखलाल रवजी भाई महेताए, जैन साहित्यना कांईक सविशेष अवलोकनथी, पुराकालीन जैन

विद्वानोए पोषेली गुजराती भारतीना भंडोळनो केटलोक नवीन परिचय, गुजराती साहित्य परिषद् आगळ निबंधरूपे उपस्थित कर्यो हतो अने नरसिंह महेता करतां पण बहु पहेलां अनेक जैन विद्वानो थई गया जेमणे गुजराती भाषामां घणी रचनाओ करी छे – एवुं बताववा प्रयत्न कर्यो हतो। पण ए प्रयत्नमां कांईक तो सांप्रदायिक अनुराग विशेष देखातो हतो, अने बीजुं तेमां मौलिक साहित्यना अवलोकननो अभाव जणातो हतो, तेथी विद्वानोमां ए विशेष आदरणीय न बन्यो।

स्व० श्रीमनःसुखलाल कीरतचंद महेताना ए विषेना उपयोगी सूचनवाळा निबंधना अवलोकनथी, मने पण ए विषयमां कांईक रस पेदा थयो, अने तेथी उक्त पूज्य मुनिवरोना वात्सल्यपूर्ण अने विद्यावर्द्धक अन्तेवास तेम ज प्रोत्साहनथी, पाटण अने वडोदरा आदिना भिन्न भिन्न भंडारोमां रक्षाएली अने छुपाएली विशाळ ग्रंथराशिनो यथेष्ट परिचय मेळववानो इष्टतम सुयोग प्राप्त थतां, में पण प्राचीन गुजराती साहित्यनां अन्वेषण, अवलोकन अने संपादन आदि करवामां यथाबुद्धि प्रयत्न करवा मांड्यो।

सौथी प्रथम, ई. स. १९१२–१३ मां, में प्राचीन भाषा साहित्य अवलोकवा अने संग्रहवा मांड्युं। पाटणना एक भंडारमां कागळनी एक प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति मारा जोवामां आवी जे संवत् १३५७–५८मां लखेली हती अने जेमां प्रतिक्रमण सूत्र आदि अनेक प्रकीर्ण कृतिओनो संग्रह हतो. तेमां संस्कृत – प्राकृत – अपभ्रंश आदिमां रचाएली नानी मोटी अनेक कृतिओ उपरांत, **सर्वतीर्थ नमस्कार** अने **नमस्कार व्याख्यान** आदि गुजराती गद्य लेखो, तथा **विनयचंद्र सूरिकृत नेमिनाथ चतुष्पदिका** आदि पद्य कृतिओ पण लखेली मारा जोवामां आवी। एमांनी **नेमिनाथ चतुष्पदिका** के जे एक तो शुद्ध एवी प्राचीन गुजरातीमां रचाएली हती, अने बीजुं तेमांनुं वर्णन बे सखीओना बारमासना संवादरूपनुं हतुं, तेथी भाषा अने कविता – बंने दृष्टिए एनी रचना मने उपयोगी लागी अने तेथी ते वखते प्रसिद्ध थता, जैनश्वेतांबर कॉन्फरन्स हेरल्डना सने १९१३ना 'पर्युषणा' अंकमां में तेने प्रसिद्ध करावी। **माणिक्यचन्द्र** सूरि कृत गद्य **पृथ्वीचंद्र चरित**नी मूळ प्रति पण ए ज समये मारा अवलोकवामां आवी। गुजराती गद्यना एक उत्तम संदर्भ अने अभ्यसनीय प्रबंध तरीके मने तेनी विशिष्टता जणाई अने तेथी तेने प्रसिद्ध करवानी दृष्टिए तेनी अविकल नकल में मारा हाथे करी लीधी। आ रीते गुजराती

भाषाना अभ्यासनी सामग्रीनो सौथी प्राथमिक परिचय मने ते समये थयो, अने त्यारथी में तेनो उत्साह पूर्वक संग्रह आदि करवानो प्रारंभ कर्यो ।

बे त्रण वर्ष पाटणना भंडारोनुं अवलोकन कर्या पछी, उक्त पूज्य मुनिवरोना वात्सल्यपूर्ण सहवासमां ज परिभ्रमण करतां, मारुं वडोदरा आववुं थयुं । त्यां भाई श्री चिमनलाल दलालना विशिष्ट समागम अने सौहार्दपूर्ण सहकारथी में मारा प्राचीन साहित्यना संशोधन अने संपादन कार्यनो व्यवस्थित उपक्रम आरंभ्यो ।

भाई दलाले पण ए ज समयमां **गायकवाडस् ओरिएन्टल सीरीझना** संपादन अने प्रकाशननुं काम हाथमां लीधुं । ए सीरीझना प्रारंभ समये ज **काव्यमीमांसा, हमीरमद्मर्दन, वसंतविलास, मोहराजपराजय, कुमारपाल प्रतिबोध, उदयसुंदरी** कथा आदि अनेकविध संस्कृत - प्राकृत ग्रंथो साथे गुजराती भाषाना प्राचीन साहित्यना संग्रहरूपे पण एक ग्रंथ तैयार करवानो विचार थयो । ए विचार अने कार्यमां अमे बंने सहयोगी – सहसंपादक हता । एना फळरूपे ए ग्रंथमाळामां प्रसिद्ध थएल ते **प्राचीन गूर्जरकाव्यसंग्रह** छे । ए संग्रहमां प्रकट थएल सामग्रीमांथी केटलीक मारी मेळवेली हती अने केटलीक भाई दलालनी हती । ए संग्रहमां प्रथम तो मात्र पद्यात्मक कृतिओ ज संग्रहवानी योजना हती, अने तेथी प्रथम पृष्ठ उपरनुं मुख्य नाम पण ए ज वस्तुसूचक राखवामां आव्युं । पण पाछळथी एमां अमुक समय पर्यंतनो गद्य संग्रह पण आपवानो विचार स्फुर्यो अने ते साथे गद्यमय समग्र पृथ्वीचंद्र चरित पण दाखल करवानो निर्णय थयो । अने ए रीते, पाछळथी गद्य पद्य – उभयना संग्रह तरीके एनी संकलना करवामां आवी । ए संग्रह छपातो हतो ते दरम्यान ज – बीजे वर्षे मारुं मुंबई अने ते पछी पूना तरफ प्रयाण थयुं । १९१८ना चोमासाना भयंकर इन्फ्लुएंजामां, वडोदरामां भाई चिमनलाल अने पूनामां हुं – बन्ने सारीरीते सपडाया । तेमां भाई चिमनलाल तो ईश्वराज्ञाए, आ लोकथी निर्वेद थई परलोक तरफ चालता थया, अने हुं भ्रमिष्ठ चित्त बनी महिनाओ सुधी निश्चेष्ट थई रह्यो । खैर. भाई दलालनी इच्छा ए प्राचीन गूर्जरकाव्यसंग्रहने बहु ज विस्तृत नोटस् आदि साथे तैयार करवानी हती, अने ए माटे घणी घणी नोंधो अमे तैयार पण करी हती । परंतु तेमना ए अकाल अवसानने लीधे ए कार्य अपूर्ण रह्युं अने गुजराती भाषा अने साहित्यना अभ्यासमां, ए नोंधोथी जे विशिष्ट सामग्री मळवानी आशा हती ते अफळ बनी ।

आम अपूर्ण छतांय ए **'प्राचीनगूर्जरकाव्यसंग्रह'**ना प्रकाशनथी, आपणी भाषाना तत्कालीन प्राचीन स्वरूपनां अध्ययन अने अन्वेषणमां घणी कीमती मदद मळी छे; अने एना अवलोकनथी, आपणी भाषानी विशिष्ट पुरातनता, समुन्नतता अने विकस्वरता विषयक जूनी पेढीमां जे अति अल्पज्ञता छवाएली हती ते दूर थई छे।

उक्त प्राचीन गूर्जरकाव्यसंग्रहमां मुख्यपणे वि० सं० १४०० सुधीमां रचाएली कृतिओनो संचय करवामां आवेलो छे। एमां सौथी जूनी कृति तरीके जे प्रकट करवामां आवी छे ते **महेन्द्रसूरिशिष्य धर्म** नामना विद्वाने बनावेल **जंबूस्वामिरास** छे। सं० १२६६मां ते रासनी रचना पूर्ण थई छे, एम तेनी छेल्ली कडीमां कहेलुं छे।

ते वखतना अवलोकन दरम्यान पाटणना भंडारमां शुद्ध गुजराती भाषानी जूनामां जूनी जे एक स्वतंत्र रचना जोवामां आवी ते ए जंबूस्वामिरासरूप हती अने तेथी भाई श्री दलाले पोताना उक्त साहित्यपरिषद्‌वाळा निबंधमां ते रासनी नोंध आपतां लख्युं हतुं के **'गूजराती भाषामां अत्यार सुधी मळी आवेला रासोमां आ सौथी जूनो छे'**।

आजे हुं जे रास गूर्जर गिरानी गुरुताना उपासकोना हाथमां उपस्थित करुं छुं ते उक्त **जंबूस्वामिरास** करतां **२५ वर्ष** पूर्वे बनेलो छे। एनी रचना, जेम प्रारंभमां ज जणाव्युं छे तेम, वि० संवत् १२४१मां थएली छे। ठीक ते ज वर्षमां – जे वर्षमां सोमप्रभाचार्ये **कुमारपालप्रतिबोध** नामक प्राकृत महाग्रंथनी (जेमां कांईक संस्कृत अने कांईक अपभ्रंशना पण प्रकरणो छे) पाटणमां पूर्णाहुति करी हती। प्रस्तुत रासना कर्ता शालिभद्र सूरि पोताना स्थाननो कशो निर्देश नथी करता। पण घणा भागे ते पाटण ज होय एम लागे छे।

गुजरातना अनन्य ज्ञानसूर्य आचार्य हेमचंद्रने स्वर्गवास थए ते वखते मात्र १०–११ वर्ष ज व्यतीत थयां हतां। तेथी आपणे आ रासने **हैमयुगनी ज** एक कृति तरीके स्वीकारिए तो ते असंगत नथी। अने आ रीते प्रस्तुत रासरूपे आपणने हैमयुगनी चालु गुजराती भाषानो एक स्वतंत्र अने सुबद्ध प्रबंध मळी आवे छे। एथी कोई अन्य प्राचीनतर कृति उपलब्ध थतां सुधीमां आपणे एने गुजराती भाषाना इतिहासमां सर्व प्रथम स्थान आपवुं जोईए।

आ रासनी मने मात्र एक ज प्राचीन प्रति उपलब्ध थई छे जे वडोदरामां अवस्थित प्रवर्तक श्री कांतिविजयजी शास्त्र-संग्रहनी छे। प्रति कागळनी छे अने तेना कुल ६ पानां छे। दरेक पानानी लंबाई आशरे ११$\frac{1}{4}$ ईंच अने चोडाई ४$\frac{1}{2}$ ईंच जेटली छे। प्रति उपर लख्या साल नथी, पण अनुमाने ४००थी ५०० वर्ष जेटली जूनी होय तेम जणाय छे।

जेम घणा भागे बधा ज जूना भाषा-लेखकोना विषयमां अनुभवाय छे, तेम आनी प्रतिनो लखनार पण जोडणीनी बाबतमां एकरूप नथी। खास करीने इकार उकारना ह्रस्व-दीर्घनो कोई चोक्कस नियम आपणी भाषाना जूना लेखको साचवता नथी। जेओ संस्कृत प्राकृतना महाधुरंधर विद्वानो हता अने जेमणे हजारो श्लोकोवाळा मोटा मोटा ग्रंथो – काव्यो – शास्त्रो लख्या छे, तेओ पण ज्यारे पोतानी मातृभाषामां कांई रचना करे छे के लखे छे तो तेमां भाषानी विशुद्धता के जोडणीनी एकरूपतानी कशी पण चोक्कसाई देखाती नथी। अने तेनुं कारण ए छे के देश अने काळना भेदने लईने लोकभाषा हमेशां अनवस्थित अने अनेकरूपी बनती रहेवाथी, ते समयमां तेनी विशिष्ट व्याकरणबद्धता शक्य न हती अने तेथी देशभाषामां लखनारा विद्वानो के कविओ शब्दोना रूपो के वर्णसंयोजनाना नियमो माटे कोई खास काळजी राखता नहि। आ वस्तु प्रस्तुत रासमां पण जणाई आवे छे। लखनारे 'इ' कार के 'उ' कारना ह्रस्व-दीर्घनो कोई खास भेद राख्यो होय तेम देखातुं नथी। एकना एक ज शब्दमां ए स्वरोने ते कोई ठेकाणे ह्रस्वरूपे लखे छे तो कोई ठेकाणे दीर्घरूपे। तेम ज ज्यां ह्रस्वनी अपेक्षा होय छे त्यां दीर्घ करी दे छे अने ज्यां दीर्घनी आवश्यकता होय छे त्यां ह्रस्व पण लखी काढे छे। केटलांक ठेकाणे तो 'इ' अने 'उ' नी वच्चे भेद पण जाणे न गणतो होय तेम एकना बदले बीजो अक्षर अर्थात् इ के उ ना बदले उ के इ सुधां लखी नांखे छे। ए सिवाय शब्दोनी वर्ण-संयोजना (अक्षर-जोडणी)नी बाबतमां पण आपणा जूना लेखको एकरूपता नथी जाळवता अने अव्यवस्थितरीते लखाण करता रहे छे। एकला 'हवे' ए शब्दने 'हिवं' 'हिवु' 'हिवउ' 'हिवि' 'हिवइ' 'हिविइ' 'हविं' 'हव' इत्यादि अनेक रूपे लखता होय छे। वर्णसंयोजनानी आवी अनवस्थाने लीधे कोई पण जूना देशभाषा-लेखकनी रचनामां आपणे तेनी पोतानी चोक्कस भाषाशैली के लोकोनी उच्चारण पद्धतिनो निश्चित परिचय नथी मेळवी शकता। अने जो कोई एवी जूनी कृति परिमाणमां

वधारे लोकप्रिय बनी होय अने तेनो जो पठन – पाठनमां वधारे प्रचार थयो होय तो, तेनी भाषा - रचनामां जुदा जुदा जमानाना अनेक जातनां रूपो अने पाठभेदो उमेराइ, ते वधारे अनवस्थित रूप धारण करे छे; अने ते साथे कोई भाषातत्त्वानभिज्ञ संशोधक साक्षरना हाथे जो तेना जीर्ण देहनुं कायाकल्प थई जाय तो ते तद्दन नूतन रूप पण प्राप्त करी ले छे ।

आवी जूनी कृतिओनुं मूळ स्वरूप मेळववा माटे अधिक संख्यामां अने जेम बने तेम वधारे जूनी लखेली प्रतिओ मेळववी जोइए अने तेमना सूक्ष्म अवलोकन अने पृथक्करणना आधारे पाठ - विचारणा थवी जोइए । आ पद्धतिए कार्य करवाथी ज आवी प्राचीन कृतिओनो आदर्शभूत पाठोद्धार थई शके अने कर्तानी शुद्ध भाषानो परिचय मळी शके ।

पण जो एवी कृतिनी कोई अन्य प्रति न ज मळी शकती होय तो पछी तेने तो तेना यथालिखित रूपमां ज प्रसिद्ध करवी जोइए अने तेमां जे कांई संशोधन आदि करवा जेवुं जणातुं होय ते तेनी नीचेनी पादपंक्तिमां, के परिशिष्टरूपे पृथक् – टिप्पण विगेरेना रूपमां, बताववुं जोइए । केटलाक विद्वानो आवी जूनी कृतिओमां जे इच्छानुसार पाठसंशोधनो करवानी अने मूळ लेखमां परिवर्तनो करवानी पद्धतिनुं अवलंबन करे छे, ते सर्वथा अशास्त्रीय अने भाषाभ्रम उत्पन्न करनारी होई परित्यजयनीय छे ।

प्रस्तुत रासनी मने मात्र उपर जणावेली एक ज प्रति मळी आवी छे । पाटण विगेरेना बीजा बीजा भंडारोमां, घणां वर्षोथी आनी तपास करी रह्यो छुं, पण ते क्यांयथी उपलब्ध थई शकी नथी । एनी एक बीजी प्रति, आगरामां अवस्थित श्रीविजयधर्मलक्ष्मी ज्ञानमंदिरमां होवानी नोंध, साक्षर श्रीमोहनलाल दलीचंद देशाईना, **जैन गूर्जर कविओ** नामना महान् ग्रंथना भाग १ पृ. १ उपर, मळे छे । पण, विद्याविहारी मुनिराज श्रीविद्याविजयजी महाराज द्वारा, आगरामां ए प्रतिनी तपास करतां जाणवा मळ्युं के ते प्रति त्यांथी गुम थई गई छे – विगेरे ।

आम मूळनुं बीजुं कोई प्रत्यंतर न मळवाथी, आ रास जे रूपे ए एकमात्र जूनी प्रतिमां लखेलो मळी आव्यो छे तेवो ज अहिं मुद्रित कर्यो छे ।

प्रति सारी पेठे जूनी अने प्रमाणमां शुद्धतापूर्वक लखेली होवाथी, रचनामां उपर सूचवी छे तेवी 'इ – उ' संबंधेनी अनवस्थता अने कांईक जोडणीनी शिथिलता सिवाय, बीजी कोई खास अपभ्रष्टता थई नथी; अने भाषा लगभग असलना जेवा ज रूपमां जळवाई रही छे ।

प्रस्तुत रासनी भाषा आदिना स्वरूपना विषयमां हुं अहिं विशेष चर्चा करवा नथी इच्छतो। एनी भाषा अने शैलीनुं स्वरूप, ते समयनी अर्थात् ते सैकानी अने तेनी आसपासनी बीजी उपलब्ध कृतिओ – जेवी के, उक्त **जंबूस्वामिरास,** तथा विजयसेनसूरि कृत **रेवंतगिरिरास,** अज्ञातनाम कृत **आबूगिरिरास** आदि – ना जेवी ज छे। छन्दोरचना पण लगभग ए अन्य कृतिओमां मळी आवे छे तेवी ज छे। **दोहा, वस्तु** अने **चउपइ** जेवा ते समयना सौथी प्रसिद्ध अने प्रचलित मात्रामेळ छन्दो उपरांत अमुक ढणमां गवाय एवा ढाळवाळा रागना छन्दोनो पण आमां उपयोग थएलो छे, जे छन्दोने कर्ता पोते **रासा छन्दो** कहे छे। दरेक **ठवणि** पछी जे छन्दोवाळी पंक्तिओ – कडीओ आवे छे ते जुदा जुदा रागमां गवाय एवां आ रासा छन्दो छे।

रासगत कथावस्तु जैन साहित्यमां बहु ज सुप्रसिद्ध छे। युगादि पुरुष भगवान् ऋषभदेवना पुत्र नामे भरत अने बाहुबलि – ए बंने वच्चे राजसत्ताना स्वीकारमाटे परस्पर जे विग्रह थयो अने तेनो जे रीते अंत आव्यो तेनुं एमां वर्णन करवामां आव्युं छे। कविनी शैली ओजस् भरी छे अने शब्दोनी झमक पण सारी छे। वीर रसनो वेग वधारे विकसित लागे छे। कथाना प्रसंगो बहु ज संक्षेपथी वर्णववामां आव्या छे तेथी कविने पोतानो काव्यरस खिलववानो अहिं अवकाश ज नथी, एटले एनी काव्यशक्तिनो विशेष विचार करवो अप्राप्त छे। छतां

परह आस किणि कारणि कीजइ, साहस सइवर सिद्धि वरीजइ।
हीउं अनइ हाथ हत्थीयार, एह जि वीर तणउ परिवार ॥ १०६ ॥

आवी जे केटलीक हृदयंगम उक्तिओ मळी आवे छे ते उपरथी एनी रसमय वाणीनी कल्पना यत्किंचित् थई शके तेम छे।

*

बुद्धिरास

आ रासनी पछी ६३ कडीनो एक टुंको प्रबंध नामे बुद्धिरास आपवामां आव्यो छे, जेना कर्ता पण शालिभद्र सूरि ज छे। जो के कर्ताए एमां, जेम **'भरतेश्वर बाहुबलि रास'**मां आप्यां छे तेम, पोताना गच्छ अने गुरु आदिनां नाम नथी आप्यां, अने तेथी सर्वथा निश्चितरूपे तो एम न ज कही शकाय के आ **रास** पण ए ज शालिभद्र सूरिनी कृति छे। कारण के शालिभद्र सूरि नामना एक – बे बीजा पण ग्रंथकारो थई गया छे अने तेमणे पण गुजराती

भाषामां रासा विगेरेनी रचना करेली छे। छतां प्रस्तुत **'बुद्धिरास'**नी भाषा अने शैलीनो सूक्ष्म अभ्यास करतां, आ कृति पण ए ज कर्तानी होय एम विशेष संभवित लागे छे।

ए बुद्धिरासमां प्रथम तो सर्वसाधारण – सामान्य जनताने जीवनमां आचरवा अने विचारवा जेवां केटलांक उत्तम शिक्षासूत्रो – बोध वचनो गुंथ्यां छे; अने छेवटे थोडांक शिक्षावचनो खास श्रावकवर्गने आचरवा अने मनन करवा माटे कह्यां छे। आ बधां बोधवचनो बहु ज टूंका अने तद्दन सरळ छे। दरेक माणसने कंठे करवा जेवां छे।

भंडारोना अन्वेषण उपरथी जणाय छे के आ बुद्धिरास, गत ६ – ७ सैकाओमां खूब ज जनप्रिय थई पड्यो हतो। सेंकडो नर-नारीओ एने कंठस्थ करता अने एनुं निरंतर वाचन-मनन करता। ए कारणथी जूना भंडारोमां ज्यां त्यां एनी अनेकानेक प्रतिओ मळी आवे छे। अने ए रीते ए रासनी प्रचार-अधिकताने लईने, एनी जुदी जुदी प्रतिओमां केटलाक खास पाठभेदो अने भाषानां बहुविध रूपान्तरो थयेलां पण मळी आवे छे। आ साथे जे वाचना मुद्रित करवामां आवी छे ते मने मळेली जूनामां जूनी प्रतिनी छे। आ कृतिनी सैकावार लखाएली एवी घणी य प्रतिओ मळी आवे छे अने तेमां उपर सूचव्या प्रमाणे भाषाना स्वरूप-भेदो पण खूब ज मळी आवे छे; तेथी एनी एक पर्यालोचनात्मक पाठवाळी आवृत्ति थवी आवश्यक छे। एवी पर्यालोचना परथी आपणने ए जणाशे के कालक्रमे केवी रीते आपणी भाषामां शब्दोना उच्चारणोमां अने वर्णसंयोजनोमां फेरफारो थया छे, विगेरे विगेरे। अत्यारे तो केवळ प्रकाशमां मूकवानी दृष्टिए ज एनी एक यथालिखित पुरातन वाचना अहिं मुद्रित करवामां आवी छे। ईश्वरेच्छा हशे तो यथावसरे ए विषे विशेष प्रयत्न कराशे।

प्रस्तुत बुद्धिरासना अनुकरण रूपे, पाछळथी सारशिखामणरास, हितशिक्षा-रास आदि केटली य नानी मोटी रचनाओ थई छे, जे उपरथी आ रासनी विशिष्टता जणाई आवे छे।

आशा छे के गुजराती भाषाना अध्यापको अने अभ्यासको आ प्रयत्नने आदर आपी, एनुं उचित अवलोकन करशे।

भारतीय विद्या भवन
आन्ध्रगिरि (अन्धेरी)
विजयादशमी, सं० १९९७

– जिन विजय

शालिभद्रसूरिकृत

भरतेश्वर - बाहुबली रास

*

(एक प्राचीनतम गूर्जरभाषा - पद्यकृति)

॥ नमोऽर्हद्भ्यः ॥

*

रिसह जिणेसर पय पणमेवी, सरसति सामिणि मनि समरेवी;
नमवि निरंतर गुरुचलणा ॥ १

भरह नरिंदह तणुं चरित्तो, जं जुगी वसहांवलय वदीतो;
बार वरिस बिहुं बंधवहं ॥ २

हुं हिव पभणिसु रासह छंदिहिं, तं जनमनहर मन आणंदिहिं;
भाविहिं भवीयण संभलेउ ॥ ३

जंबुदीवि उवझाउरि नयरो, धणि कणि कंचणि रयणिहिं पवरो;
अवर पवर किरि अमर परो ॥ ४

करइ राज तहिं रिसह जिणेसर, पावतिमिर भयहरण दिणेसर;
तेजि तरणि कर तहिं तपइए ॥ ५

नामि सुनंद सुमंगल देवि, राय रिसहेसर राणी बेवि;
रूवरेहि रति प्रीति जिन ॥ ६

बिवि बेटी जनमी सुनंदन, तेह जि तिहूयण मन आनंदन;
भरह सुमंगल देवि तणु ॥ ७

देवि सुनंदन नंदन बाहूबलि, भंजइ भिउड महाभड भूयबलि;
अवर कुमर वर वीर धर ॥ ८

पूरब लाख तेणि तेयासी, राजतणीं परि पुहवि पयासी;
जुगि जुग मारग दाषीउए ॥ ९

उवझापुरि भरहेसर थापीय, तक्षशिला बाहुबलि आपीय;
अवर अठाणुं वर नयर ॥ १०

दान दियइ जिणवर संवत्सर, विसयविरत्त वहइ संजमभर;
सुर असुरा नरि सेवीइए ॥ ११

परमतालपुरि केवलनाणुं, तस ऊपन्नूं प्रगट प्रमाणूं;
जाण हवुं भरहेसरहं ॥ १२

तिणि दिणि आउधसालहं चक्को, आवीय अरीयण पडीय प्रसक्को;
भरह विमासइ गहगहीउ ॥ १३

धनु धनु हुं धर मंडलि राउ, आज पढम जिणवर मुझ ताउ;
केवल लच्छि अलंकीयउ ॥ १४

पहिलुं ताय पाय पणमेसो, राजरिद्धि राणिमा फल लेसो;
चक्करयण तव अणसरउं ॥ १५

*

वस्तु – चलीय गयवर, चलीय गयवर, गडीय गज्जंत,
हूं पत्तउ रोसभरि, हिणहिणंत हय थट्ट हल्लीय ।
रह भय भरि टलटलीय मेरु, सेसु मणि मउड खिल्लीय ।
सिउं मरुदेविहिं संचरीय, कुंजरी चडिउ नरिंद ।
समोसरणि सुरवरि सहिय, वंदिय पढम जिणंद ॥ १६

पढम जिणवर, पढम जिणवर, पाय पणमेवि,
आणंदिहिं उच्छव करीय, चक्करयण वलिवलिय पुज्जइ ।
गडयडंत गजकेसरीय, गरुय नहि गजमेह गज्जइ ।
बहिरीय अंबर तूर रवि, वलिउ नीसाणे घाउ ।
रोमंचिय रिउ रायवरि, सिरि भरहेसर राउ ॥ १७

*

ठवणि १. प्रहि उगमि पूरवदिसिहिं, पहिलउं चालीय चक्क तु ।
धूजीय धरयल थरहर ए, चलीय कुलाचल चक्क तु ॥ १८

पूठि पीयाणुं तउ दियए, भयबलि भरह नरिंद तु ।
पिढि पंचायण परदलहं, इलियलि अवर सुरिंद तु ॥ १९

वज्जीय समहरि संचरीय, सेनापति सामंत तु ।
मिलीय महाधर मंडलीय, गाढिम गुण गज्जंत तु ॥ २०

गडयडतु गयवर गुडीय, जंगम जिम गिरिशृंग तु ।
सुंड दंड चिर चालवइं, वेलइं अंगिहिं अंग तु ॥ २१

गंजइं फिरि फिरि गिरि सिहरि, भंजइं तरुअर डालि तु ।
अंकस वसि आवइं नहीं य, करइं अपार अणालि तु ॥ २२

हीसइं हसमिसि हणहणइं ए, तरवर तार तोषार तु ।
खंदइं खुरलइं खेडवीय, मन मानइं असुवार तु ॥ २३

पाखर पंखि कि पंखरू य, ऊडाऊडिहिं जाइ तु ।
हुंफइं तळपइं ससइं धसइं, जडइं जकारीय धाइ तु ॥ २४

फिरइं फेकारइं फोरणइं, फुड फेणाउलि फार तु ।
तरणि तुरंगम सम तुलइं, तेजीय तरल ततार तु ॥ २५

धडहडंत धर द्रमद्रमीय, रह रूंधइं रहवाट तु ।
रव भरि गणइं न गिरि गहण, थिर थोभइं रहथाट तु ॥ २६

चमरचिंध धज लहलहइं ए, मिल्हइं मयगल माग तु ।
वेगि वहंता तींह तणइं ए, पायल न लहइं लाग तु ॥ २७

दडवडंत दह दिसि दुसह ए, सरिय पायक चक्क तु ।
अंगोअंगिइं अंगमइं, अरीयणि असणि अणंत तु ॥ २८

ताकइं तलपइं तालि मिलिइं, हणि हणि हणि पभणंत तु ।
आगलि कोइ न अछइ भलु ए, जे साहमु झूझंत तउ ॥ २९

दिसि दिसि दारक संचरीय, वेसर वहइं अपार तु ।
संघ न लाभइं सेन तणीं, कोइ न लहइं सुधि सार तु ॥ ३०

बंधव बंधवि नवि मिलइं ए, न बेटा मिलइं बाप तु ।
सामि न सेवक सारवइं, आपिहिं आप विथाप तु ॥ ३१

गयवडि चडीउ चक्कधरो, पिडि पयंड भूयदंड तु ।
चालीय चिहुं दिसि चलचलीय, दिइं देसाहिव दंड तु ॥ ३२

वज्जीय समहरि द्रमद्रमीय, घण निनाद नीसाण तु ।
संकीय सुरवरि सग्ग सवे, अवरहं कमण प्रमाण तु ॥ ३३

ढाक ढूक त्रंबक तणइं ए, गाजीय गयण निहाण तु ।
षट षंडह षंडाहिवहं, चालतु चमकीय भाण तु ॥ ३४

भेरीय रव भर तिहुं भूयणि, साहित किमइं न माइ तु ।
कंपिय पय भरि शेष रहिउ, विण साहीउ न जाइ तु ॥ ३५

सिर डोलावइ धरणिहिं ए, टूंक टोल गिरिशृंग तु ।
सायर सयल वि झलझलीय, गहलीय गंग तुरंग तु ॥ ३६

खर रवि धूंदीय मेहरवि, महियलि मेहंधार तु ।
उजूआलइ आवध तणइं, चालइं रायखंधार तु ॥ ३७
मंडिय मंडलवइ न मुद्दे, ससि न कवइं सामंत तु ।
राउत राउतवट रहीय, मनि मूंझइं मतिवंत तु ॥ ३८
कटक न कवणिहिं भर तणुं, भाजइ भेडि भडंत तु ।
रेलइं रयणायर जमले, राणोराणि नमंत तु ॥ ३९
साठि सहस संवच्छरहं, भरहस भरह छ खंड तु ।
समरंगणि साधइ सधर, वरतइ आण अखंड तु ॥ ४०
बार वरिस नमि विनमि, भड भिडीय मनावीय आण तु ।
आवाठी तडि गंग तणइ, पामइ नवह निहाण तु ॥ ४१
छत्रीस सहस मउड्डध सिउं, चऊद रयण संपत्त तु ।
आविउ गंगा भोगवीय, एक सहस वरसाउ तु ॥ ४२

*

ठवणि २. तउ तिहिं आउधसाल, आवइ आउधराउ नवि ।
तिणि खिणि मणि भूपाल, भरह भयह लोलावडओ ॥ ४३
बाहिरि बहूय अणालि, अलूआरीय अहनिसि करइ ए ।
अति उतपात अकालि, दाणव दल वरि दाषवइ ए ॥ ४४
मतिसागर किणि काजि, चक्क त(न) पुरि परवेस करइ ।
तइं जि अम्हारइ राजि, धोरीय धर धरीउ धरहं ॥ ४५
देव कि थंभीउ एय, कवणि कि दानव मानविहिं ।
एउ आखि न मुझ भेउ, वयरीय वार न लाईइ ए ॥ ४६
बोलइ मंत्रिमयंक, सांभलि सामीय चक्कधरो ।
अवर नही कोइ वंकु, चक्करयण रहवा तणउ ॥ ४७
संकीय सुरवर सामि, भरहेसर तूंय भूय भवणे ।
नासइं ति सुणीय नामि, दानव मानव कहि कवणि ॥ ४८
नवि मानइं तूंय आण, बाहूवलि बिहुं बाहुबले ।
वीरह वयर विनाणु, विसमा विहडइं वीरवरो ॥ ४९
तीणि कारणि नरदेव, चक्क न आवइ नीय नयरे ।
विण बंधव तूंय सेव, सहू कोइ सामीय साचवइ ए ॥ ५०

तं ति सुणीय तीणइ तालि, ऊठीउ राउ सरोसभरे ।
भमइ चडावीय भालि, पभणइ मोडवि मूंछि मुहे ॥ ५१
जु न मानइ मझ आण, कवण सु कहीइ बाहुबले ।
लीलहं लेसु ए राण, भंजउं भुज भारिहिं भिडीय ॥ ५२
स मतिसागर मंति, वलि वसुहाहिव वीनवइ ।
नवि मनि कीजइ खंति, बंधव सिउं कहि कवण बलो ॥ ५३
दूत पठावीयइ देव, पहिलउं वात जणावीइ ए ।
जु नवि आवइ देव, तु नरवर कटकई करउ ॥ ५४
तं मनि मानीय राउ, वेगि सुवेगहं आइसइ ए ।
जईय सुनंदाजाउ, आण मनावे आपणीय ॥ ५५
जां रथ जोत्रीय जाइ, सु जि आएसिहिं नरवरहं ।
फिरि फिरि साहमु थाइ, वाम तुरीय वाहणि तणउ ॥ ५६
काजलकाल बिराल, आवीय आडिहिं ऊतरइ ए ।
जिमणउ जम विकराल, खरु खु-रव ऊछलीय ॥ ५७
सूकीय वाउल डालि, देवि वइठीय सुर करइ ए ।
झंपीय झाल मझालि, घूक पोकारइ दाहिणओ ॥ ५८
जिमणइं गमइं विषादि, फिरीय फिरीय शिव फे करइ ए ।
डावीय डगलइ सादि, भयरव भैरव रवु करइ ए ॥ ५९
वड जखनइं कालीयार, एकऊ बेहुं ऊतरइ ए ।
नींजलीउ अंगार, संचरतां साहमु हुइ ए ॥ ६०
काल भुयंगम काल, दंतीय दंसण दाखवइ ए ।
आज असूटउ काल, घूटउ रहि रहि इम भणइ ए ॥ ६१
जाइ जाणी दूत, जीवह जोषि आंगमइ ए ।
जेम भमंतउ भूत, गिणइ न गिरि गुह वण गहण ॥ ६२
तईड नेसमि वेस, न गिणइ नइ दह नींझरण ।
लंघीय देस असेस, गाम नयर पुर पाटणह ॥ ६३
बाहरि बहूय आराम, सुरवर नइ तां नीझरण ।
मणि तोरण अभिराम, रेहइ धवलीय धवलहरो ॥ ६४

पोयणपुर दीसंति, दूत सुवेग सु गहगहीउ ।
व्यवहारीया वसंति, धणि कणि कंचणि मणि पवरो ॥ ६५
धरणि तरणि ताडंक, जेम तुंग त्रिगढुं लहइ ए ।
एह कि अभिनव लंक, सिरि कोसीसां कणयमय ॥ ६६
पोढा पोलि पगार, पाडा पार न पामीइं ए ।
संख न सीहदूंयार, दीसइं देउल दह दिसिइं ॥ ६७
पेखवि पुरह प्रवेसु, दूत पहूतउ रायहरे ।
सिउं प्रतिहार प्रवेसु, पामीय नरवर पय नमइ ए ॥ ६८
चउकीय माणिक थंभ, माहि बईठउ बाहुबले ।
रूपिहिं जिसीय रंभ, चमरहारि चालइं चमर ॥ ६९
मंडीय मणिमइ दंड, मेघाडंबर सिरि धरिय ।
जस पयडे भूयुदंडि, जयवंती जयसिरि वसइं ए ॥ ७०
जिम उदयाचलि सूर, तिम सिरि सोहइ मणिमुकुटो ।
कसतुरीय कुसुम कपूर, कुचूंबरि महमहइ ए ॥ ७१
झलकइ ए कुंडल कानि, रवि शशि मंडीय किरि अवर ।
गंगाजल गजदानि, गाढिम गुण गज गुडअडइं ए ॥ ७२
उरवरि मोतीय हार, वीरवलय करि झलहलइ ए ।
तवल अंगि सिणगार, खलक ए टोडर वाम[इ] ए ॥ ७३
पहिरणि जादर चीर, कंकोलइ करिमाल करे ।
गुरूउ गुणि गंमीर, दीठउ अवर कि चक्रधर ॥ ७४
रंजिउ चित्ति सु दूत, देषीय राणिम तसु तणीय ।
धन रिसहेरपूत, जयवंतु जुगि बाहुबले ॥ ७५
बाहुबलि पूछेइ कुवण, काजि तुम्हि आवीया ए ।
दूत भणइ निज काजि, भरहेसरि अम्हि पाठव्या ए ॥ ७६

*

वस्तु — राउ जंपइ, राउ जंपइ, सुणि न सुणि दूत;
भरहखंड भूमीसरहं, भरह राउ अम्ह सहोयर ।
सवाकोडि कुमरिहिं सहीय, सूरकुमर तहिं अवर नरवर ।

मंति महाधर मंडलिय, अंतेउरि परिवारि ।
सामंतह सीमाड सहु, कहि न कुसल सविचार ॥ ७७

दूत पभणइ, दूत पभणइ, बाहुबलि राउ;
भरहेसर चक्कधर, कहि न कवणि दूहवणह किज्जइ ।
जिहु लहु बंधव तूंय, सरिस गडयडंत गज मीम गज्जइ ।
जइ अंधारइ रवि किरण, भड भंजइ वर वीर ।
तु भरहेसर समर भरि, जिप्पइ माहरी धीर ॥ ७८

*

ठवणि ३. वेगि सुवेग सु बुल्लइ, संभलि बाहूबलि ।
राउत कोइ तुह तुल्लइ, ईणिइं अछइ रवितलि ॥ ७९

जां तव बंधव भरह नरिंदो, जसु भुइं कंपइं सग्गि सुरिंदो ।
जीणइं जीतां भरह छ षंड, म्लेच्छ मनाव्या आण अखंड ॥ ८०
भडि भडंत न भूयबलि भाजइ, गडयडंतु गढि गाढिम गाजइ ।
सहस बतीस मउडाधा राय, तूंय बंधव सवि सेवइं पाय ॥ ८१
चऊद रयण घरि नवइं निहाण, संख न गयघड जसु केकाण ।
हूंय हवडां पाटह अभिषेको, तूंय नवि आवीय कवण विवेको ॥ ८२
विण बंधव सवि संपय ऊणी, जिम विण लवण रसोइ अलूणी ।
तुम्ह दंसण उतकंठिउ राउ, नितु नितु वाट जोइ तुह भाउ ॥ ८३
वडउ सहोयर अनइं वड वीर, देव ज प्रणमइं साहस धीर ।
एक सीह अनइं पाखरीउ, भरहेसर नइं तइं परवरीउ ॥ ८४

*

ठवणि ४. तु बाहूबलि जंपइ, कहि वयण म काचुं ।
भरहेसर भय कंपइ, जं जग तुं साचुं ॥ ८५

समरंगणि तिणि सिउं कुण काछइ, जीह बंधव मइं सरिसउ पाछइ ।
जावंत जंबुदीवि तसु आण, तां अम्ह कहीइ कवण ए राण ॥ ८६
जिम जिम सु जि गढ गाढिम गाढउ, हय गय रह वरि करीय सनाढु ।
तस अरधासण आपइ इंदो, तिम तिम अम्ह मनि परमाणंदो ॥ ८७
जु न आव्या अभिषेकह वार, तु तिणि अम्ह नवि कीधा सार ।
वडउ राउ अम्ह वडउ जि भाई, जहिं भावइ तिहां मिलिसिउं जाई ॥ ८८

अम्ह ओलगनी वाट न जोईं, भउ भरहेसर विकर न होइ।
मझ बंधव नवि फीटइ कीमइ, लोभीया लोक भणइ लख ईम्हइं॥ ८९

*

ठवणि ५. चालि म लाइसि बार, बंधव भेटीजइ।
चूकि म चींति विचार, मूंय वयण सुलीजइ॥ ९०

वयण अम्हारुं तूय मनि मानि, भरह नरेसर गणि गजदानि।
संतूठउ दिइ कंचण भार, गयघड तेजीय तुरल तुषार॥ ९१

गाम नयर पुर पाटण आपइ, देसाहिव थिर थोभीय थापइ।
देय अदेय नं देतु विमासइ, सगपणि कह नवि किंपि विणासइ॥ ९२

जा ण राउ ओलगिउं जाणइ, माणण हार विरोधिइं मारइ।
प्रतिपन्नउं प्रगट प्रतिपालइ, प्रारथिउ नवि घडी विमरालइ॥ ९३

तिणि सिउं देव न कीजइ वाडउ, सु जि मनाविइ मांड म आडउ।
हुं हितकारणि कहुं सुजाण, कूडूं कहूं तु भरहेसर आण॥ ९४

*

वस्तु – राउ जंपइ, राउ जंपइ, सुणि न सुणि दूत;
त विहि लहीउ भालहलि, तं जि लोय भवि भविहिं पामइ।
ईमइ नीसत नर ति(नि) गुण, उत्तमांग जण जणह नामइ।
बंभ पुरंदर सुर असुर, तीहं न लंघइ कोइ।
लब्भइ अधिक न ऊण पणि, भरहेसर कुण होइ॥ ९५

*

ठवणि ६. नेसि निवेसि देसि घरि मंदिरि, जलि थलि जंगलि गिरि गुह कंदरि।
दिसि दिसि देसि देसि दीपंतरि, लहीउं लाभइ जुगि सचराचरि॥ ९६

अरिरि दूत सुणि देवन दानव, महिमंडलि मंडल वैमानव।
कोइ न लंघइ लहीया लीह, लाभइ अधिक न उछा दीह॥ ९७

धण कण कंचण नवइ निहाण, गय घड तेजीय तरल केकाण।
सिर सरवस सपतंग गमीजइ, तोइ नीसत्त पणइ न नमीजइ॥ ९८

*

ठवणि ७. दूत भणइ एहु भाई, पुन्निहिं पामीजइ।
पइ लागीजइ भाई, अम्ह कहीउं कीजइ॥ ९९

अवर अठाणूं जु जई पहिलूं, मिलसिइं तु तुझ मिलिउं न सयलुं।
कहि विलंब कुण कारणि कीजइ, माम म नीगमि वार वलीजइ ॥ १००
वार वरापह करसण फलीजइ, ईणि कारणि जई वहिला मिलीइ ।
जोइ न मन सिउं वात विमासी, आगइ वारूअ वात विणासी ॥ १०१
मिलिउ न किहां कटक मेलावइ, तउ भरहेसर तइं तेडावइ ।
जाण रखे कोइ झूझ करेसिइ, सहू कोइ भरह जि हियडइ धरेसिइ ॥१०२
गाजंता गाढिम गज भीम, ते सवि देसह लीधा सीम ।
भरह अछइ भाई भोलावउ, तउ तिणि सिउं न करीजइ दावउ ॥ १०३

*

वस्तु—तव सु जंपइ, तव सु जंपइ, बाहुबलि राउ;
अप्पह बाह भजां न बल, परह आस कहइ कवण कीजइ ।
सु जि मूरष अजाण पुण, अवर देषि बरवयइ ति गज्जइ ।
हुं एकलउ समर भरि, भड भरहेसर घाइ ।
भंजउं भुजबलि रे मिडिय, भाह न भेडि न थाइ ॥   १०४

*

ठवणि ८. जइ रिसहेसर केरा पूत, अवर जि अम्ह सहोयर दूत ।
ते मनि मान न मेल्हइं कीमइं, आलईयाण म झंषिसि ईम्हइ ॥ १०५
परह आस किणि कारणि कीजइ, साहस सइंवर सिद्धि वरीजइ ।
हीउं अनइ हाथ हत्थीयार, एह जि वीर तणउ परिवार ॥ १०६
जइ कीरि सीह सीयालिइं खाजइ, तु बाहुबलि भूयबलि भाजइ ।
जु गाइं वाघिणि षाई जइ, अरे दूत तु भरह जि जीपइ ॥ १०७

*

ठवणि ९. जु नवि मन्नसि आण, बरवहं बाहूबलि ।
लेसिइ तु तूं प्राण, भरहेसर भूयबलि ॥   १०८
जस छन्नवइ कोडि छइं पायक, कोडि बहुत्तरि फरकइं फारक ।
नर नरवर कुण पामइ पारो, सही न सकीइ सेनाभारो ॥ १०९
जीवंता विहि सहू संपाडइ, जु तुढि चडिसि तु चडिउ पवाडइ ।
गिरि कंदरि अरि छपिउ न छूटइ, तूं बाहूबलि मरि म अखूटइ ॥ ११०
गय गइह हय हड जिम अंतर, सीह सीयाल जिसिउ पटंतर ।
भरहेसर अनइ तूंय विहरउ, छूटिसि किम्हइ करंत न निहरु ॥ १११

सरवसु सुंपि मनावि न भाई, कहि कुणि कूडी कुमति विकाई ।
मूंझि म मूरष मरि म गमार, पय पणमीय करि करि न समार ॥ ११२
गढ गंजिउ भड भंजिउ प्राणि, तइं हिव सारइ प्राण विनाणि ।
अरे दूत बोली नवि जाण, तुंह आव्या जमह प्राण ॥ ११३
कहि रे भरहेसर कुण कहीइ, मइं सिउं रणि सुरि असुरि न रहीइ ।
जे चक्किइं चक्रवृत्ति विचार, अम्ह नगरि कूंभार अपार ॥ ११४
आपणि गंगातीरि रमंता, धसमस धूंधलि पडीय धमंता ।
तइं ऊलालीय गयणि पडंतउ, करुणा करीय वली झालंतउ ॥ ११५
ते परि कांइ गमार वीसार, जु तुडि चडिसि तु जाणिसि सार ।
जउ मउडुधा मउड ऊतारउं, रुहिरु रिलि जु न हय गय तारउं ॥ ११६
जउ न मारउं भरहेसर राउ, तउ लाजइ रिसहेसर ताउ ।
भड भरहेसर जई जणावे, हय गय रह वर वेगि चलावे ॥ ११७

*

वस्तु – दूत जंपइ, दूत जंपइ, सुणि न सुणि राउ;
तेह दिवस परि म न गिणसि, गंगतीरि खिलंत जिणि दिणि ।
चलंतइं दल भारि जसु, सेससीस सलसलइ फणिमणि ।
ईमई याण स मानि रणि, भरहेसर छइ दूरि ।
आपापूं वेढिउं गणे, कालि ऊगंतइं सूरि ॥ ११८
दूत चलिउ, दूत चलिउ, कहीय इम जाम;
मंतीसरि चिंतविउ, तु पसाउ दूतह दिवारइ ।
अवर अठाणूं कुमर वर, वाइ सोइ पहुतु पचारइ ।
तेह न मनिउ आविउ, वलि भरहेसरि पासि ।
अखई य सामिय संधिबल, बंधवसिउं म विमासि ॥ ११९

*

ठवणि १०. तउ कोपिहिं कळकलीउ काल के···य कालानल,
कंकोरइ कोरंबीयउ करमाल महाबल ।
काहल कलयलि कलगलंत मउडाधा मिलीया,
कलह तणइ कारणि कराल कोपिहिं परजलीया ॥ १२०
हूऊउ कोलाहल गहगहाटि गयणंगणि गज्जिय,
संचरिया सामंत सुहड सामहणीय सज्जीय ।

गडयडंत गय गडीय गेलि गिरिवर सिर ढालइं,
गूगलीया गुलणइ चलंत करिय ऊलालइं ॥ १२१

जुडइं भिडइं भडहडइं खेवि खडखडइं खडाखडि,
धाणीय धूणीय घोसवइं दंतूसलि दोत[तडा]डि ।
खुरतलि खोणि खणंति खेदि तेजीय तरवरिया,
समइं धसइं धसमसइं सादि पय सइं पाषरिया ॥ १२२

कंधग्गल केकाण कवी करडइं कडीयाली,
रणणइं रवि रण वखर सखर घण घाघरीयाला ।
सींचाणा वरि सरइं फिरइं सेलइं फोकारइं,
ऊडइं आडइं अंगि रंगि असवार विचारइं ॥ १२३

धसि धामइं धडहडइं धरणि रथि सारथि गाढा ।
जडीय जोध जडजोड जरद् सन्नाहि सनाढा ।
पसरिय पायल पूर कि पुण रलीया रयणार ।
लोह लहर वरवीर वयर वहचटिइं अवायर ॥ १२४

रणणीय रवि रण तूर तार त्रंबक त्रहत्रहीया,
ढाक ढूक ढम ढमीय ढोल राउत रहरहीया ।
नेच नीसाण निनादि नींझरण निरंमीय,
रणभेरी भुंकारि भारि भूयबलिहिं वियंमीय ॥ १२५

चल चमाल करिमाल कुंत कडतल कोदंड,
झलकइं साबल सबल सेल हल मसल पयंड ।
सींगिणि गुण टंकार सहित बाणावलि ताणइं,
परशु उलालइं करि धरइं भाला ऊलालइं ॥ १२६

तीरीय तोमर भिंडमाल डबतर कसबंध,
सांगि सकति तरुआरि छुरीय अनु नागतिबंध ।
हय खर रवि ऊछलीय खेह छाईय रविमंडल,
धर धूजइ कलकलीय कोल कोपिउ काहडुल ॥ १२७

टलटलीया गिरिटंक टोल खेचर खलभलीया,
कडडीय कूरम कंधसंधि सायर झलहलीया ।

चलीय समहरि सेससीसु सलसलीय न सकइ,
कंचणगिरि कंधार भारि कमकमीय कसकइ ॥ १२८

कंपीय किंनर कोडि पडीय हरगण हडहडीया,
संकिय सुरवर सग्गि सयल दाणव दडवडीया ।
अतिप्रलंब लहकइं प्रलंब वलविंध चिहुं दिसि,
संचरीया सामंत सीस सीकिरिहिं कसाकसि ॥ १२९

जोईय भरह नरिंद कटक मूंछह वल घल्लइं,
कुण बाहूबलि जे उ बरव मइं सिउं बल बुल्लइ ।
जइ गिरि कंदरि विचरि वीर पइसंतु न छूटइ,
जइ थली जंगलि जाइ किम्हइ तु मरइ अपूटइ ॥ १३०

गज साहणि संचरीय मह्ु णर वेढीय पोयणपुर ।
वाजीय बूंब न बहकीयउ बाहूबलि नरवर ।
तसु मंतीसरि भरह राउ संभालीउ साचुं,
ए अविमांसिउं कीउं काइं आज जि तइं काचुं ॥ १३१

बंधव सिउं नरवीर कांइं इम अंतर देषइ,
लहु बंधव नीय जीव जेम कहि कांइं न लेखइ ।
तउ मनि चिंतइ राय किसिउं एय कोइ पराठीउ,
ओसरी उवनि वीर राउ रहीउ अवाठीउ ॥ १३२

गय आगलीया गलगलंत दीजइं हय लास,
हुइं हसमस······भरहराय केरा आवास ।
एकि निरंतर वहइं नीर एकि इंधण आणइं,
एक आलसिइं परतणुं पांगु आणिउं तृण ताणइं ॥ १३३

एकि ऊतारा करीय तुरीय तलसारे बांधइं,
इकि भरडइं केकाण खाण इकि चारे रांधइं ।
इकि झीलीय नय नीरि तीरि तेतीय बोलावइं,
एकि वारू असवार सार साहण वेलावइं ॥ १३४

एकि आकुलीया तापि तरल तडि चडीय झंपावइं,
एकि गूडर सावाण सुहड चउरा दिवरावइं ।

सारीय सामि स नामि आदिजिण पूज पयासइं,
कसतूरीय कुंकुम कपूरि चंदनि वनवासइं ॥　　　　१३५
पूज करीउ चक्करयण राउ बइठउ भूं जाई,
वाजीय संख असंख राउ आव्या सवि धाई ।
मंडलवइ मउडुध मु(सु?)हड जीमइं सामंतह,
सइं हत्थि दियइ तंबोल कणय कंकण झलकंतह ॥　　　　१३६

*

वस्तु—दूत चलीउ, दूत चलीउ, बाहुबलि पासि;
भणइ भूर नरवर निसुणि, भरह राउ पयसेव कीजइ ।
भारिहिं भीम न कवणि रणि, एउ भिडंत भूय भारि भज्जइ ।
जइ नवि मूरष एह तणीं, सिरवरि आण वहेसि ।
सिउं परिकरिइं समर भरि, सहूइ सयरि सहेसि ॥　　　　१३७
　　राउ बुल्लइ, राउ बुल्लइ, सुणि न सुणि दूत;
ताय पाय पणमंतय, मुझ बंधव अति खरउ लज्जइ ।
तु भरहेसर तसतणीय, कहि न कीम अम्हि सेव किज्जइ ।
भारिइं भूयबलि जु न भिडउं, भुज भंजु भडिवाउ ।
तउ लज्जइ तिहूयण धणीं, सिरि रिसहेसर ताउ ॥　　　　१३८

*

ठवणि ११. चलीय दूत भरहेसरहं तेय वात जणावइ,
कोपानलि परजलीय वीर साहण पलणावइ ।
लागी य लागि निनादि वादि आरति असवार,
बाहूबलि रणि रहिउ रोसि मांडिउ तिणि वार ॥　　　　१३९
ऊड कंडोरण रणंत सर बेसर फूटइं,
अंतरालि आवइं ई याण तीहं अंत अखूटइं ।
राउत-राउति योध-योधि पायक-पायकिहिं,
रहवर-रहवरि वीर-वीरि नायक-नायकिइं ॥　　　　१४०
वेढिक विढइं विरामि सामि नामिहिं नरनरीया,
मारइं मुरडीय मूंछ मेच्छ मनि मच्छर भरीया ।
ससइं हसइं धसमसइं वीरधड वड नरि नाचइं,
राषस री रा रव करंति रुहिरे सवि राचइं ॥　　　　१४१

चांपीय चुरइं नरकरोडि भूयबलि भय मिरडइं,
विण हथीयार कि वार एक दांतिहिं दल करडइं ।
चालइं चालि चम्माल चाल करमाल ति ताकइं,
पडइं चिंध झूझइं कवंध सिरि समहरि हाकइं ॥ १४२
रुहिर रलि तहिं तरइं तुरंग गय गुडीय अमूंझइ,
राउत रण रसि रहित बुद्धि समरंगणि सूझइं ।
पहिलइ दिणि इम झूझ हवुं सेनह मुखमंडण,
संध्या समइ ति वारणुं ए करइं भट बिहुं रण ॥ १४३

*

ठवणि १२. हिवं सरस्वती धउल –

तउ तहिं बीजए दिणि सुविहाणि, ऊठीउ एक जि अनलवेगो,
सडवड समहरे वरसए बाणि, छयल सुत छलीयए छावडु ए ।
अरीयण अंगमइ अंगोअंगि, राउतो रामति रणि रमइं ए,
लडसड लाडउ चडीय चउरंगि, आरेयणि सयंवर वरइं ए ॥ १४४

*

त्रूटक – वर वरइं सयंवर वीर, आरेणि साहस धीर ।
मंडलीय मिलिया जान, हय हीस मंगल गान ।
हय हीस मंगल गानि गाजीय, गयण गिरि गुह गुमगुमइं,
धमधमीय धरयल ससीय न सकइ, सेस कुलगिरि कमकमइं ।
घसघसीय धायइं धारधा वलि, धीर वीर विहंडए,
सामंत समहरि, समु न लहइं, मंडलीक न मंडए ॥ १४५

*

धउल – मंडए माथए महीयलि राउ, गाढिम गय घड टोलवए,
पिडि पर परबत प्राय, भडधड नरवए नाचवइ ए ।
काल कंकोलए करि करमाल, झाझए झूझिहिं झलहलइए,
भांजए भड घड जिम जम जाल, पंचायण गिरि गडयडए ॥ १४६

*

त्रूटक – गडयडइं गजदलि सीहु, आरेणि अकल अबीह ।
धसमसीय हयदल धाइं, भडहडइं भय भडिवाइ ॥

भडहडइं भय भडवाइ भुयबलि, भरीय हुइ जिम मींभरी,
तहिं चंद्रचूडह पुत्र परबलि, अपिउ नरवइ नर नरतरी ।
बसमतीय नंदण वीर विसमूं, सेल सर म दिखाडए,
रहु रहु रे हणि हणि......भणंतू, अपड पायक पाडए ॥   १४७

*

धउल—पाडीय सुखेय सेणावए दंत, पूंठिहिं निहणीय रणरणीय,
    सूर कुमारह राउ पेखंत, मिरडए भूयदंड बेउ······ ।
नयणिहिं निरषीय कुपीयउ राउ, चक्करयण तउ संभरइए,
मेल्हइए तेह प्रति अति सकसाउ, अनलवेगो तहिं चिंतवइ ए ॥ १४८

*

त्रूटक—चिंतवईय सुहडह राउ, जो अई उषूटउं आउ ।
    हिव मरण एह जि सीम, रंजईअ चक्रवृत्ति जीम ॥
रंजवईय चक्रवृत्ति जीम इम, भणि चकु मुट्ठिहिं षडषली,
संचरिउ सूरउ सूरमंडलि, चकु पुहचइ तहिं वली ।
षडषडीउ नंदण चंद्रचूडह, चंद्रमंडल मोहए,
झलहलीय झालि झमालि तुट्ठिहिं, चक्क तहिं तहिं रोहए ॥   १४९

*

धउल—रोहीउ राउत जाइ पातालि, विज्जाहर विज्जाबलिहिं,
    चक्क पहूचए पूठि तीणि तालि, बोलए बलवीय सहसजखो ।
    रे रे रहि रहि कुपीउ राउ, जित्थु जाइसि तित्थु मारिवु ए,
    तिहूयणि कोइ न अछइ अपाय, जय जोषिम जीणइ जीवीइ ए ॥१५०

*

त्रूटक—जीविवा छंडीय मोह, मनि मरणि मेल्हीय थोह,
    समरीय तु तीणि ठामि, इकु आदि जिणवर सामि ।
[इकु आदि जिणवर सामि†] समरीय, वज्रपंजर अणसरइ,
नरनरीउ पाषलि फिरीउ तस सिरु, चक्क लेई संचरइ ।
पयकमल पुज्जइ भरह भूपति, बाहुबलि बल खलभलइ,
चक्रपाणि चमकीय चींति कलयलि, कलह कारणि किलगिलइ ॥   १५१

*

---

† मूळ प्रतिमां अहिं लखनारनां हाथे आ पादनो ए पूर्व अर्ध भाग लखतां छूटी गयो छे.

धउल – कलगिलइ चक्रधर सेन संग्रामि, बोलए कवण सु बाहुबले,
तउ पोयणपुर केरउ सामि, बरबहं दीसए दस गणु ए।
कवण सो चक्क रे कवण सो जाख, कवण सु कहीइ ए भरह राउ।
सेन संहारीय सोधउं साष, आज मल्हावउं रिसहवंसो ॥ १५२

ठवणि १३. हिवं चउपई –

चंद्रचूड विज्जाहर राउ, तिणि वातइं मनि विहीय विसाउ।
हा कुलमंडण हा कुलवीर, हा समरंगणि साहसधीर ॥ १५३
कहीइ कहि नइं किसिउं घणुं, कुल न लजाविउं तइं आपणउं।
तइं पुण भरह भलाविउ आप, भलु भणाविउ तिहूयणि बापु ॥१५४
सु जि बोलइ बाहूबलि पासि, देव म दोहिलुंई हीइ विमांसि।
कहि कुण ऊपरि कीजइ रोसु, एह जि दैवहं दीजइ दोसु ॥ १५५
सामीय विसमु करम विपाउ, कोइ न छूटइ रंक न राउ।
कोइ न भांजइ लिहिया लीह, पामइ अधिक न ओछा दीह ॥१५६
भंजउं भूयबलि भरह नरिंद, मइं सिउं रणि न रहइ सुरिंद।
इम भणि बरवीय बावन वीर, सेलइ समहरि साहस धीर ॥ १५७
धसमस धीर धसइं धडहडइं, गाजइ गजदलि गिरि गडयडइं।
जसु भुइ भडहड हडइ भडक्क, दल दडवडइ जि चंड चडक्क ॥ १५८
मारइ दारइ खल दल खणइ, हेड हणोहणि हयदल हणइ,
अनलवेग कुण कूखइं अछइ, इम पचारीय पाडइ पछइ ॥ १५९
नरु निरुवइ नरनरइ निनादि, वीर विणासइ वादि विवादि।
तिन्नि मास एकलुउ भिडइ, तउ पुण पूरउं चक्कह चडइ ॥ १६०
चऊद कोडि विद्याधर सामि, तउ झूरइ रतनारी नामि।
दल दंदोलिउं दउढ वरीस, तउ चक्किइं तसु छेदीय सीस ॥ १६१
रतनचूड विद्याधर धसइ, गंजइ गयघड हीयडइ हसइ।
पवनजय भड भरहु नरिंद, सु जि संहारीय हसइं सुरिंद ॥ १६२
बाहुलीक भरहेसरतणु, भड भांजणीय भिडीउ घणु।
सुरसारी बाहूबलिजाउ, भडिउ तेण तहिं फेडीय ठाउ ॥ १६३
अमितकेत विद्याधर सार, जस पामीइ न पौरुष पार।
चल्लीउ चक्रधर वाजइ अंगि, चूरिउ चक्रिहिं चडिउ चउरंगि ॥ १६४

समरबंध अनइ वीरह बंध, मिलीउ समहरि बिहुं सिउं बंध ।
सात मास रहीया रणि बेउ, गई गहगहीया अपछरा लेउ ॥ १६५
सिरताली दुरीताली नामि, भिडइं महाभड बेउ संग्रामि ।
आव्या बरवहं बाथोबाथि, परभवि पुहता सरसा साथि ॥ १६६
महेन्द्रचूड रथचूड नरिंद, झूझइं हडहड हसइं सुरिंद ।
हाकइं ताकइं तुळपइं तुळइं, आठि मासि जई जिमपुरि मिळइं ॥ १६७
दंड लेई घसीउ युरदादि, भरतपूत नरनरइ निनादि ।
गंजीउ बलि बाहूबलितणउ, वंस मल्हाविउ तीणि आपणु ॥ १६८
सिंहरथ ऊठीउ हाकंत, अमितगति झंपिउ आवंत ।
तिन्नि मास धड धूजिउं जास, भरह राउ मनि वसिउ वासु ॥ १६९
अमिततेज प्रतपइ तहिं तेजिं, सिउं सारंगिइं मिलिउ हेजि ।
धाइं धीर हणइं बे बाणि, एक मासि नीवड्या नीयाणि ॥ १७०
कुंडरीक भरहेसरजाउ, जस भड भडत न पाछउ पाउ ।
द्रठडीय दलि बाहूबलि राय, तउ पयपंकइ प्रणमीय ताय ॥ १७७
सूरिजसोम समर हाकंत, मिलिया तालि तोमर ताकंत ।
पांच वरिस भर भेलीय घाइ, नीय नीय ठामि लिवारिआ राइ ॥ १७२
इकि चूरइं इकि चंपइं पाय, एकि डारइं एकि मारइं घाइ ।
झलझलंत झूझइ सेयंस, धनु धनु रिसहेसरनुं वंस ॥ १७३
सकमारी भरहेसरजाउ, रण रसि रोपइ पहिलउ पाउ ।
गिणइ न गांठइ गजदल हणइ, रणरसि धीर धणावइ धणइ ॥ १७४
वीस कोडि विद्याधर मिली, ऊठिउ सुगति नाम किलिगिली ।
सिवनंदनि सिउं मिलीउ तालि, बासठि दिवसि बिहुं जम जालि ॥ १७५
कोपि चडिउ चल्लिउ चक्रपाणि, मारउं वयरी बाणविनाणि ।
मंडी रहिउ बाहूबलि राउ, भंजउं भणइ भरह भडिवाउ ॥ १७६
बिहुं दलि वाजी रणि काहली, खलदल खोणि खे खलभली ।
धूजइं धसकीय धड थरहरइं, वीर वीर सिउं सयंवर वरइं ॥ १७७
ऊडीय खेह न सूझइ सूर, नवि जाणीइ सवार असूर ।
पडइं सुहड धड धायइं धसी, हणइं हणोहणि हाकइं हसी ॥ १७८

गडयड गयघड ढींचा ढलइं, सूना समा तुरंग मल तुलइं ।
वाजइं धणुही तणा धोंकार, भाजइं भिडत नभेडीगार ॥ १७९
वहइं रुहिर नइ सिरवर तरइं, री री या टरणि राषस करइं ।
हयदल हाकइ भरह नरिंद, तु साहसु लहइ सग्गि सुरिंद ॥ १८०
भरहजाउ सरभु संग्रामि, गांजइ गजदल आगलि सामि ।
तेर दिवस भड पडीउ घाइ, धूणी सीस बाहूबलि राइ ॥ १८१
तींह प्रति जंपइ सुरवर सार, देषी एवडु भडसंहार ।
कांइ मरावउ तम्हि इम जीव, पडसिउ नरकि करंता रीव ॥ १८२
गज ऊतारीय बंधव बेउ, मानिउं वयण सुरिंदह तेउ ।
पइसइं मालाखाडइ वीर, गिरिवर पाहिइं सबल सरीर ॥ १८३
वचनझूझि भड भरहु न जिणइ, दृष्टिझूझि हारिउं कुण अ णइ ।
दंडिझूझि झड झंपीय पडइ, बाहु पासि पडिउ तडफडइ ॥ १८४
गूडासमु धरणि मझारि, गिउ बाहूबलि मुष्टिप्रहारि ।
भरह सबल तइं तीणइं घाइ, कंठसमाणउ भूमिहिं जाइ ॥ १८५
कुपीउ भरह छ खंडह धणी, चक्र पठावइ भाई भणी ।
पाखलि फिरी सु वलीउं जाम, करि बाहूबलि धरिउं ताम ॥ १८६
बोलइ बाहुबलि बलवंत, लोहखंडि तउं गरवीउ हंत ।
चक्रसरीसउ चूनउ करउं, सयलहं गोत्रह कुल संहरउं ॥ १८७
तु भरहेसर चिंतइ चींति, मइं पुण लोपीय भाईय मीति ।
जाणउं चक्र न गोत्री हणइ, माम महारी हिव कुण गिणइ ॥ १८८
तु बोलइ बाहूबलि राय(उ), भाईय मनि म म धरसि विसाउ ।
तइं जीतउं मइं हारिउं भाइ, अम्ह शरण रिसहेसर पाय ॥ १८९

*

ठवणि १४. तउ तिहिं ए चिंतइ राउ, चडिउ संवेगिइं बाहुबले ।
दूहविउ ए मइं वडु भाय, अविमांसिइं अविवेकवंति ॥ १९०
धिग धिग ए एय संसार, धिग धिग राणिम राजरिद्धि ।
एवडु ए जीवसंहार, कीधउ कुण विरोधवसि ॥ १९१
कीजइ ए कहि कुण काजि, जउ पुण बंधव आवरइं ए ।
काज न ए ईणइं राजि, घरि पुरि नयरि न मंदिरिहि ॥ १९२

सिरिवरि ए लोच करेइ, कासगि रहीउ बाहुबले ।
अंसूउ ए अंखि भरेउ, तस पय पणमए भरह भडो ॥ १९३
बांधव ए कांइ न बोल, ए अविमांसिउं मइं कीउं ए ।
मेल्हिम ए भाई निटोल, ईणि भवि हुं हिव एकलु ए ॥ १९४
कीजई ए आजु पसाउ, छंडि न छंडि न छयल छलो ।
हीयडइ ए म धरि विसाउ, भाई य अम्हे विरांसीया ए ॥ १९५
मानई ए नवि मुनिराउ, मौन न मेल्हइ मन्नवीय ।
मुकई ए नहु नीय माण, वरस दिवस निरसण रहीय ॥ १९६
बंभीउ ए सुंदरि बेउ, आवीय बंधव बूझवइं ए ।
ऊतरि ए माणगयंद, तु केवलिसिरि अणसरइ ए ॥ १९७
ऊपनूं ए केवल नाण, तु विहरइ रिसहेस सिउं ।
आवीउ ए भरह नरिंद, सिउं परगहि अवझापुरी ए ॥ १९८
हरिषीया ए हीइ सुरिंद, आपण पइं उच्छव करइं ए ।
वाजई ए ताल कंसाल, पडह पखाउज गमगमइं ए ॥ १९९
आवई ए आयुधसाल, चक्क रयण तउ रंगभरे ।
संख न ए जस केकाण, गयघड रहवर राणिमहं ॥ २००
दस दिसि ए वरतइं आण, भड भरहेसर गहगहइ ए ।
रायह ए गच्छ सिणगार, वयरसेण सूरि पाटधरो ॥ २०१
गुणगणहं ए तणु भंडार, सालिभद्र सूरि जाणीइ ए ।
कीधउं ए तीणि चरितु, भरहनरेसर राउ छंदि ए ॥ २०२
जो पढइ ए वसह वदीत, सो नरो नितु नव निहि लहइ ए ।
संवत ए बार[१२] कएतालि[४१] फागुण पंचमिइं एउ कीउ ए ॥ २०३

*

॥ इति भरतेश्वर-बाहूबलि रास श्रीसालिभद्रसूरिकृतसमाप्तः ॥
॥ श्लोक संख्या ३४० ॥ छ ॥

विमलमतिगणिविलोकनाय ॥ कल्याणं भूयाच्चिरं नन्दतु यावच्चन्द्र-रवी ॥

* * *

शालिभद्रसूरिकृत

बुद्धि रास

पणमवि देवि अंबाई, पंचाइण गामिणी।

समरवि देवि सीधाई, जिण सासण सामिणि ॥ १

पणमिउ गणहरु गोयम स्वामि, दुरिउ पणासइ जेहनइ नामिइं।
सुहगुरु वयणे संग्रह कीजई, भोलां लोक सीषामण दीजइ ॥ २
केई बोल जि लोकप्रसिद्धा, गुरुउवएसिइं केई लीद्धा।
ते उपदेश सुणउ सवि रूडा, कुणहइ आल म देयो कूडा ॥ ३
जाणीउ धरमु म जीव विणासु, अणजाणिइ घरि म करिसि वासु।
चोरीकारु चडइ अणलीधी, वस्तु सु किमइ म लेसि अदीधी ॥ ४
परि घरि गोठि किमइ म जाइसि, कूडउं आलु तुं मुहियां पामिसि।
जे घरि हुइ एकली नारि, किमइं म जाइसि तेह घरबारि ॥ ५
घरपच्छोकडि राषे छीडी, वरजे नारि जि बाहिरि हीडी।
परस्त्री बहिनि भणीनइ माने, परस्त्री वयण म धरजे काने ॥ ६
मइ एकलउ मारगि जाए, अणजाणिउ फल किमइं म षाए।
जिमतां माणस द्रेठी म देजे, अकहिं परि घरि किंपि म लेजे ॥ ७
वडां ऊतर किमइं न दीजइं, सीष देयंतां रोस न कीजइं।
ओछइ वासि म वसिजे कीमइं, धरमहीणु भव जासिइ ईमइ ॥ ८
छोरू वीटी ज हुइ नारि, तउ सीषामण देजे सारी।
अति अंधारइ नइ आगासइं, डाहउ कोइ न जिमवा बइसइं ॥ ९
सीषि म पिसुनपणु अनु चाडी, वचनि म दूमिसि तू निय माडी।
मरम पीयारु प्रगट न कीजइ, अधिक लेइ नवि ऊछुं दीजइ ॥१०
विसहरु जातु पाय म चांपे, आविइ मरणि म हीयडइ कांपे।
प्रहुणा पाषइं व्याजि म देजे, अणपूछिइ घरि नीर म पीजे ॥ ११
कहिसि म कुणहनीय घरि गूझो, मोटां सिउं म मांडिसि झूजो।
अणविमास्यां म करिसि काज, तं न करेवं जिणि हुइं लाज ॥ १२
जणि वारितउ गामि म जाए, तं बोले जं पुण निरवाहे।
पातु कांइ हींडि म मागे, पाछिम राति बहिलु जागे ॥ १३

हियडइ समरि न कुल आचारो, गणि न असार एह संसारो।
पांचे आंगुलि जं धन दीजइं, परभवि तेहतणुं फलु लीजइ ॥ १४

*

ठवणि १. **मरम म बोलिसि वीरु,** कुणहइ केरउ कुतिगिहिं।
जलनिहि जिम गंभीरु, पुहविइ पुरुष प्रसंसीइ ए ॥ १५
उछिनु धनु लेउ, त्यागि भोगि जे वीद्रवइ ए।
पवहणि तडि पगु देउ, जाणे सो साइरि पडइ ए ॥ १६
एक कन्हइ लिइ व्याजि, बीजाहइं व्याजि दीयए।
सो नर जीविय काजि, विस वह्नि वन संचरइ ए[1] ॥ १७
ऊडइ जलि म न पइसि, अधिक म बोलिसि सुयणस्युं।
सुनइ घरि म न पइसि, चउहटइ म विढिसि नारिस्युं ॥ १८
बोल विच्यारिय बोलि, अविचारीय घांघल पडइ ए।
मूरष मरइ निटोल, जे धण जौवण वाउला ए ॥ १९
बल ऊपहरऊ कोपु, बल ऊपहरी वेढि पुण।
म करिसि थापणि लोप, कूडओ किमइ म विवहरसे ॥ २०
म करिस जूयारी मित्र, म करिसि कलि धन सांपडए।
घणुं लडावि म पुत्र, कलह म करिजे सुयण सिउं तु ॥ २१
धनु ऊपजतउं देषि, बाप तणी निंदा म करे।
म गमु जन्मु अलेषि, धरम विहूणा धामीयहं ॥ २२
कंठ विहूणुं गानु, गुरु विहूणउ पाढ पुण।
गरथ विहूणुं अभिमान, ए त्रिहूइं असुहामणा ए ॥ २३

*

ठवणि २. हासउं म करिसि कंठइं कूया, गरथि मूढ म खेलि जूया,
म भरिसि कूडी साषि किहइं ॥ २४
गांठि सारि विणज चलावे, तं आरंभी जं निरवाहे[2]।
नियं नारी संतोष करे ॥ २५
मोटइ सरिसुं वयर न कीजइं, वडां माणस वितउ न दीजइ।
वइसि म गोठि फलहणीया[3] ॥ २६

---

१ बीजी प्रतिमां **'विसवेलि विष संहरइ ए'** आवो पाठ छे।
२ पाठान्तर–**'जु हियइ सुहाए'**।　　३ पा० **'चउवटए'**।

गुरुयां उपरि रीस न कीजइ,[१] सीष पूछंतां कुसीष म देजे ।
विणउ करंतां दोस नवि ॥ २७

म करिसि संगति वेशासरसी, धण कण कूड करी साहरसी ।
मित्री नीचिइ सिं म करे ॥ २८

थोडामाहि थोडेरुं देजे, वेला लाधी कृपणु म होजे ।
गरव म करीजे गरथतणुं ॥ २९

व्याधि शत्रु ऊठतां वारउ, पाय ऊपरि कोइ म पचारु ।
सतु म छंडिसि दुहि पडीउ ॥ ३०

अजाण्यारहि पढू म थाए, साजुण पीड्यां वाहर धाए ।
मंत्र म पूछिसि स्त्री कन्हए ॥ ३१

अजाणि कुलि म करि वीवाहो, पाछइ होसिइं हीयडइ दाहो ।
कन्या गरथिइ म वीकणसे ॥ ३२

†देव म भेटिसि ठालइ हाथि, अणउलषीतां म जाइसि साथिइं ।
गूझ म कहिजे महिलीयह ॥ ३३

†परहुणइं आव्यइ आदर कीजइं, जूनुं ढोर न कापड लीजइं ।
हूतइ हाथ न खांचीइए ॥ ३४

†गाढइं घाइं ढोर म मारउ, मातइ कलहि म पइसि निवारु ।
पर घरि मा जिमसि जा सकूया ॥ ३५

भगति म चूकीसि बापह मायी, जूठउ चपल म छंडिसि भाई ।
गुरवु म करि गुरु सुहासिणी य ॥ ३६

नीपनइं धानि म जाइसि भूषिउ, गांठि गरथि म जीविसि लूषउं ।
मोटां पातक परहरउ ए ॥ ३७

गिउ देशांतरि सूयसि म रातिइ, तिम न करेवुं जिम टल पांतिइं ।
तृष्णा ताणिउ म न वहसे ॥ ३८

धणि फीटइं विवसाइं लागे, आंचल उडी म साजण मागे ।
कुणहइ कोइ न ऊधरीउ ॥ ३९

---

१ पाठान्तर–'गरुआसिउं अभिमान न कीजउ' ।

† आ कडीओ बीजी बीजी प्रतोमां आगळ पाछळ लखेली मळे छे, तेम ज वधती ओछी पण मळे छे ।

[†जीवतणुं जीवि राषीजइ, सविहुं नइ उपगार करीजइ ।
सार संसारह एतलु ॥] ४०

माणसि करिवा सवि व्यवहारु, पापी घरि म न लेजे आहार ।
म करिस पूत्र पडीगणुं[1] ए ॥ ४१

जइ करिवुं तो आगइ म मागि, गांधीसिउं न करेवउं भागि ।
मरतां अरथु म लेसि पुण ॥ ४२

उसड म करिसि रोग अजाणिइं, कुणहं गुरथु म लेसि पराणि ।
सिरज्यां पाषइ अरथ नवि ॥ ४३

धरमि पडीगे दुत्थित श्रवण, अनि आवतुं जाणे मरण ।
माणस धरम करावीइ ए ॥ ४४

इसि परि वइदह पाप न लागइं, अनइ जसवाउ भलेरउ जागइ ।
राषे लोभिइं अंतरीउ ॥ ४५

*

ठवणि ३. हिव श्रावकना नंदनह, बोलेसु केई बोल ।
अवघड मारगि हींडंतां ए, विणसई धरम नीटोल ॥ ४६

तिण पुरि निवसे जिण हवए, देवालउ पोसाल ।
भूष्यां त्रिस्यां गोरूयहं, छोरू करि न संभाल ॥ ४७

तिण्हिवार जिण पूज करे, सामायक[1] बे वार ।
माय बाप गुरु भक्ति करे, जाणी धरम विचारु ॥ ४८

करमबंध हुइ जिण वयणि, ते तउं बोलि म बोलि ।
अधिके ऊणे मापुले,[2] कुडउं किमइ म तोलि ॥ ४९

अधिक म लेसि मापुलइं, उच्छं किमइ म देसि ।
एकह जीवह कारणिहि, केतां पाप करेसि ॥ ५०

जिणवर पूठिइं म न वससे, म राखे सिवनी द्रेठि ।
राउलि आगलि[3] म न वससे, बहूअ पाडेसिइं वेठि ॥ ५१

---

† केटलीक प्रतोमां आ कडी नथी मळती, तेथी क्षेपक लागे छे ।

१ बीजी प्रतमां 'पडिकमणुं' शब्द छे ।

२ प्रत्यंतरमां 'काटलेऊ' शब्द छे । ३ प्रत्यंतरमां '[illegible]' शब्द छे ।

राषे घरि बि[1] वारणां ए, ऊधत राषे नारि ।
ईंधणि कातणि जलवहणि, होइ सछंदाचारि ॥ ५२
षटकसाल पांचइ तणीय, जयणा भली करावि ।
आठमि चउदसि पूनीमिहि, धोयणि गारि वरावि ॥ ५३
[† अणगल जल म न वावरू ए, जोउ तेहनउ व्याप ।
आहेडी मांछीं तणूं ए, एक चलुं ते पाप ॥ ५४
लोह मीण लष धाहडी य, गली य चरम विचारि ।
एह सविनूं विवहरण, निश्चउ करीय निवारि ॥ ५५
सुइमुहि जेतुं चांपीइ ए, जीव अनंता जाणि ।
कंद मूल सवि परहरु ए, धरम म न करइ हाणि ॥ ५६
रयणी भोजन म न करिसि, बहुय जीव सिंहार ।
सो नर निश्चइ नरयफल, होसिइ पाप प्रमाणि ॥] ५७
जांत्र जोत्र ऊषल मुशल, आपि म हल हथीयार ।
सइं हथि आगि न आपीइ ए, नाच गीत घरवारि ॥ ५८
पाटा पेढी म न करसे, करसण नइ अधिकारि ।
न्याइं रीतिइं विवहरु ए, श्रावक एह आचार ॥ ५९
वाच म घालिसि कुपुरसह, फूटइ मुहि महसेसि ।
बहुरि म आस पिराईह, बहु ऊधारि म देसि ॥ ६०
वइद विलासणि दूइडीय, सुइआणीसु संगु ।
राषे बहिनर वेटडी य, जिम हुइ शील न भंगु ॥ ६१
गुरु उपदेसिइ अति घणा ए, कहूं तु लहुं न पार ।
एह बोल हीयडइ धरीउ, सफल करे संसार ॥ ६२
सालिभद्रगुरु संकुलीय, सिविहूं गुर उपदेसि ।
पढइ गुणइ जे संभलहिं, ताहइ विघ्न टलेसि[2] ॥ ६३

॥ इति बुद्धिरास समाप्तमिति ॥

*

---

१ पा० 'बहु' । २ पा० 'तीह सवि टलइ किलेस तु' ।

† आ कोष्ठक वच्चे आपेली ४ कडीओ सौथी जूनी प्रतिमां नथी मळती । बीजी बीजी प्रतोमां आ बधी आडी अवळी अने वधती ओछी संख्यामां मळे छे । एमांना वर्णन उपरथी ज जणाय छे के ए पाछळनो थएलो उमेरो छे. मूळ कर्तानी कहेली नथी ।

द्वितीय वर्ष] ❀ [प्रथम अंक

तत्त्वोपप्लवसिंह
चार्वाक दर्शनका एक अपूर्व ग्रन्थ

*

लेखक – श्रीयुत पं० सुखलालजी शास्त्री
[आचार्य – जैनशास्त्र अध्यापनपीठ, हिंदु युनिवर्सिटी – बनारस]

गत वर्ष, ई. स. १९४० में, गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीजके ग्रन्थाङ्क ८७ रूपमें, तत्त्वोपप्लवसिंह नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जो चार्वाक दर्शनके विद्वान् जयराशि भट्टकी कृति है और जिसका सम्पादन प्रो० रसिकलाल सी० परीख तथा मैंने मिलकर किया है। इस ग्रन्थ तथा इसके कर्ताके विषयमें ऐसी अनेक महत्त्वपूर्ण बातें हैं जिनकी जानकारी दर्शन-साहित्यके इतिहासज्ञोंके लिए तथा दार्शनिक-प्रमेयोंके जिज्ञासुओंके लिए उपयोगी एवं रसप्रद हैं।

उक्त सिरीजमें प्रकाशित प्रस्तुत कृतिकी प्रस्तावनामें, ग्रन्थ तथा उसके कर्ताके बारेमें कुछ आवश्यक जानकारी दी गई है; फिर भी प्रस्तुत लेख खास विशिष्ट उद्देशसे लिखा जाता है। एक तो यह, कि वह मुद्रित पुस्तक सबको उतनी सुलभ नहीं हो सकती जितना कि एक लेख। दूसरी, वह प्रस्तावना

अंग्रेजीमें लिखी होनेसे अंग्रेजी न जाननेवालोंके लिए कार्यसाधक नहीं। तीसरी, खास बात यह है कि उस अंग्रेजी प्रस्तावनामें नहीं चर्चित ऐसी अनेकानेक ज्ञातव्य बातोंका इस लेखमें विस्तृत ऊहापोह करना है।

तत्त्वोपप्लवसिंह और उसके कर्ताके बारेमें कुछ लिखनेके पहले, यह बतलाना उपयुक्त होगा कि इस ग्रन्थकी मूल प्रति हमें कब, कहांसे और किस तरहसे मिली। करीब पन्दरह वर्ष हुए, जब कि मैं मेरे मित्र पं० बेचरदासके साथ अहमदाबादके गुजरात पुरातत्त्व मंदिरमें सन्मतितर्कका सम्पादन करता था, उस समय सन्मतितर्ककी लिखित प्रतियोंकी खोजकी धुन मेरे सिर पर सवार थी। मुझे माल्रूम हुआ कि सन्मतितर्ककी ताडपत्रकी प्रतियां पाटणमें हैं। मैं पं० बेचरदासके साथ वहाँ पहुँचा। उस समय पाटणमें स्व० मुनिश्री हंसविजयजी बिराजमान थे। वहाँके ताडपत्रीय भण्डारको खुलवानेका तथा उसमेंसे इष्ट प्रतियोंके पानेका कठिन कार्य उक्त मुनिश्रीके ही सद्भाव तथा प्रयत्नसे सरल हुआ था।

सन्मतितर्ककी ताडपत्रीय प्रतियोंको खोजते व निकालते समय हम लोगोंका ध्यान अन्यान्य अपूर्व ग्रन्थोंकी ओर भी था। पं० बेचरदासने देखा कि उस एकमात्र ताडपत्रीय ग्रन्थोंके भण्डारमें दो ग्रन्थ ऐसे हैं जो अपूर्व हो कर जिनका उपयोग सन्मतितर्ककी टीकामें भी हुआ है। हमने उन दोनों ग्रन्थोंको किसी तरह उस भण्डारके व्यवस्थापकोंसे प्राप्त किए। उनमेंसे एक तो था बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्तिके हेतुबिन्दुशास्त्रका अर्चटकृत विवरण – जिसका सम्पादन अभी होनेवाला है; और दूसरा ग्रन्थ था प्रस्तुत तत्त्वोपप्लवसिंह। अपनी विशिष्टता तथा पिछले साहित्य पर पड़े हुए इनके प्रभावके कारण, उक्त दोनों ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण तो थे ही, पर उनकी लिखित प्रति अन्यत्र कहीं भी ज्ञात न होनेके कारण वे ग्रन्थ और भी अधिक विशिष्ट महत्त्ववाले हमें माल्रूम हुए।

उक्त दोनों ग्रन्थोंकी ताडपत्रीय प्रतियां यद्यपि यत्र तत्र खण्डित और कहीं कहीं घिसे हुए अक्षरोंवाली हैं, फिर भी ये शुद्ध और प्राचीन रही। तत्त्वोपप्लवकी इस प्रतिका लेखन - समय वि० सं० १३४९ मार्गशीर्ष कृष्ण ११ शनिवार है। यह प्रति गुजरातके धोळका नगरमें, महं० नरपालके द्वारा लिखवाई गई है। धोळका, गुजरातमें उस समय पाटणके बाद दूसरी राजधानीका स्थान था, जिसमें अनेक ग्रन्थ भण्डार बने थे और सुरक्षित थे। धोळका वह स्थान है जहाँ रह कर प्रसिद्ध मन्त्री वस्तुपालने सारे गुजरातका शासन - तंत्र चलाया था। सम्भव

है कि इस प्रतिका लिखानेवाला महं० नरपाल शायद मंत्री वस्तुपालका ही कोई वंशज हो। अस्तु, जो कुछ हो, तत्त्वोपप्लवकी इस उपलब्ध ताडपत्रीय प्रतिको अनेक वार पढ़ने, इसके घिसे हुए तथा लुप्त अक्षरोंको पूरा करने आदिका श्रमसाध्य कार्य अनेक सहृदय विद्वानोंकी मददसे चालू रहा, जिनमें भारतीय-विद्याके सम्पादक मुनिश्री जिनविजयजी, प्रो० रसिकलाल परीख तथा पं० दलसुख मालवणिया मुख्य हैं।

इस ताड़पत्रकी प्रतिके प्रथम वाचनसे ले कर इस ग्रन्थके छप जाने तकमें जो कुछ अध्ययन और चिन्तन इस सम्बन्धमें हुआ है उसका सार **'भारतीय विद्या'**के पाठकोंके लिए प्रस्तुत लेखके द्वारा उपस्थित किया जाता है। इस लेखका वर्त्तमान स्वरूप पं० दलसुख मालवणियाके सौहार्दपूर्ण सहयोगका फल है।

ग्र न्थ का र

प्रस्तुत ग्रन्थके रचयिताका नाम, जैसा कि ग्रन्थके अंतिम प्रशस्तिपद्यमें[१] उल्लिखित है, **जयराशि भट्ट** है। यह जयराशि किस वर्ण या जातिका था इसका कोई स्पष्ट प्रमाण ग्रन्थमें नहीं मिलता, परन्तु वह अपने नामके साथ जो 'भट्ट' विशेषण लगाता है उससे जान पडता है कि वह जातिसे ब्राह्मण होगा। यद्यपि ब्राह्मणसे भिन्न ऐसे जैन आदि अन्य विद्वानोंके नामके साथ भी कभी कभी यह भट्ट विशेषण लगा हुआ देखा जाता है (यथा – भट्ट अकलंक इत्यादि); परंतु प्रस्तुत ग्रन्थमें आए हुए जैन और बौद्ध मत विषयक निर्दय एवं कटाक्षयुक्त[२]

---

१ **भट्टश्रीजयराशिदेवगुरुभिः सृष्टो महार्थोदयः,**
तत्त्वोपप्लवसिंह एष इति यः ख्यातिं परां यास्यति ॥
–तत्त्वो०, पृ० १२५।

"तत्त्वोपप्लवकरणाद् जयराशिः सौगतमतमवलम्ब्य ब्रूयात्" – सिद्धिवि० टी०, पृ० २८८।

२ बौद्धोंके लिए ये शब्द हैं –

"तद्बालविलसितम्" – पृ० २९, पं० २६। "जडचेष्टितम्" – पृ० ३२, पं० ४। "तदिदं महानुभावस्य दर्शनम्। न ह्यबालिश एवं वक्तुमुत्सहेत" – पृ० ३८, पं० १५। "तदेतन्मुग्धाभिधानं दुनोति मानसम्" – पृ० ३९, पं० १७। "तद्बालवल्गितम्" – पृ० ३९, पं० २३। "मुग्धबौद्धैः" – पृ० ४२, पं० २२। "तन्मुग्धविलसितम्" – पृ० ५३, पं० ९। इत्यादि

तथा जैनोंके लिए ये शब्द हैं –

"इमामेव मूर्खतां दिगम्बराणामङ्गीकृत्य उक्तं सूत्रकारेण यथा –
"नग्न ! श्रमणक ! दुर्बुद्धे ! कायक्लेशपरायण ! ।
जीविकार्थेऽपि चारम्भे केन त्वमसि शिक्षितः ॥" – पृ० ७९, पं० १५।

खण्डनके पढनेसे स्पष्ट हो जाता है कि यह जयराशि न जैन है और न बौद्ध । जैन और बौद्ध संप्रदायके इतिहासमें ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता है, जिससे यह कहा जा सके, कि जैन और बौद्ध होते हुए भी अमुक विद्वान्ने अपने जैन या बौद्ध संप्रदायका समग्र भावसे विरोध किया हो । जैन और बौद्ध सांप्रदायिक परंपराका बंधारण ही पहलेसे ऐसा रहा है, कि कोई विद्वान् अपनी परंपराका आमूल खण्डन करके वह फिर न अपनेको उस परंपराका अनुयायी कह सकता है और न उस परंपराके अन्य अनुयायी ही उसे अपनी परंपराका मान सकते हैं । ब्राह्मण संप्रदायका बंधारण इतना सख्त नहीं है । इस संप्रदायका कोई विद्वान्, अगर अपनी पैतृक ऐसी सभी वैदिक मान्यताओंका, अपना बुद्धिपाटव दिखानेके वास्ते अथवा अपनी वास्तविक मान्यताको प्रकट करनेके वास्ते, आमूल खण्डन करता है, तब भी, वह यदि आचारसे ब्राह्मण संप्रदायका आत्यन्तिक त्याग नहीं कर बैठता है, तो वैदिक मतानुयायी विशाल जनतामेंसे उसका सामाजिक स्थान कभी नष्ट नहीं हो पाता । ब्राह्मण संप्रदायकी प्रकृतिका, हमारा उपर्युक्त खयाल अगर ठीक है, तो कहना होगा कि यह भट्ट विशेषण जयराशिकी ब्राह्मण सांप्रदायिकताका ही द्योतक होना चाहिए ।

इसके सिवा, जयराशिके पिता - माता या गुरु - शिष्य इत्यादिके संबन्धमें कुछ भी पता नहीं चलता । फिर भी जयराशिका बौद्धिक मन्तव्य क्या था यह बात इसके प्रस्तुत ग्रन्थसे स्पष्ट जानी जा सकती है । जयराशि एक तरहसे बृहस्पतिके चार्वाक संप्रदायका अनुगामी है; फिर भी वह चार्वाकके सिद्धान्तोंको अक्षरशः नहीं मानता । चार्वाक सिद्धान्तमें पृथ्वी आदि चार भूतोंका तथा मुख्य रूपसे प्रत्यक्ष विशिष्ट प्रमाणका स्थान है । पर जयराशि न प्रत्यक्ष प्रमाणको ही मानता है और न भूत तत्त्वोंको ही । तब भी वह अपनेको चार्वाकानुयायी जरूर मानता है । अतएव ग्रन्थके आरम्भमें[३] ही बृहस्पतिके मन्तव्यके साथ अपने मन्तव्यकी आनेवाली असंगतिका उसने तर्कशुद्ध परिहार भी किया

---

३ "ननु यदि उपप्लवस्तत्त्वानां किमाया...; अथातस्तत्त्वं व्याख्यास्यामः"; "पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि, तत्समुदाये शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञा इत्यादि ? । न अन्यार्थत्वात् । किमर्थम् ? । प्रतिबिम्बनार्थम् । किं पुनरत्र प्रतिबिम्ब्यते ? । पृथिव्यादीनि तत्त्वानि लोके प्रसिद्धानि, तान्यपि विचार्यमाणानि न व्यवतिष्ठन्ते, किं पुनरन्यानि ? ।" – तत्त्वो० पृ० १, पं० १० ।

है। उसने अपने मन्तव्यके बारेमें प्रश्न उठाया है, कि बृहस्पति जब चार तत्त्वोंका प्रतिपादन करता है, तब तुम (जयराशि) तत्त्वमात्रका खण्डन कैसे करते हो? अर्थात् बृहस्पतिकी परंपराके अनुयायीरूपसे कम-से-कम चार तत्त्व तो तुम्हें अवश्य मानने ही चाहिए। इस प्रश्नका जबाब देते हुए जयराशिने अपनेको बृहस्पतिका अनुयायी भी सूचित किया है और साथ ही बृहस्पतिसे एक कदम आगे बढ़नेवाला भी बतलाया है। वह कहता है कि – बृहस्पति जो अपने सूत्रमें चार तत्त्वोंको गिनाता है, वे इस लिए नहीं कि वह खुद उन तत्त्वोंको मानता है। सूत्रमें चार तत्त्वोंके गिनाने अथवा तत्त्वोंके व्याख्यानकी प्रतिज्ञा करनेसे बृहस्पतिका मतलब सिर्फ लोकप्रसिद्ध तत्त्वोंका निर्देश करना मात्र है। ऐसा करके बृहस्पति यह सूचित करता है, कि साधारण लोकमें प्रसिद्ध और माने जानेवाले पृथ्वी आदि चार तत्त्व भी जबे सिद्ध हो नहीं सकते, तो फिर अप्रसिद्ध और अतीन्द्रिय आत्मा आदि तत्त्वोंकी तो बात ही क्या?। बृहस्पतिके कुछ सूत्रोंका उल्लेख करके और उसके आशयके साथ अपने नए प्रस्थानकी आनेवाली असंगतिका परिहार करके जयराशिने भारतवर्षीय प्राचीन गुरु-शिष्य भावकी प्रणालीका ही परिचय दिया है। भारतवर्षके किसी भी संप्रदायके इतिहासको हम देखते हैं, तो उसमें स्पष्ट दिखाई देता है, कि जब कोई असाधारण और नवीन विचारका प्रस्थापक पैदा होता है तब वह अपने नवीन विचारोंका मूल या बीज अपने संप्रदायके प्राचीन एवं प्रतिष्ठित आचार्योंके वाक्योंमें ही बतलाता है। वह अपनेको अमुक संप्रदायका अनुयायी मानने मनवानेके लिए उसकी परंपराके प्राचीन एवं प्रतिष्ठित आचार्योंके साथ अपना अविच्छिन्न अनुसंधान अवश्य बतलाता है। चाहे फिर उसका वह नया विचार उस संप्रदायके पूर्ववर्ती आचार्योंके मस्तिष्कमें कभी आया भी न हो[४]। जयराशिने भी यही किया है। उसने अपने निजी विचार-विकासको बृहस्पतिके अभिप्रायमेंसे ही फलित किया है। यह वस्तुस्थिति इतना बतलानेके लिए पर्याप्त है कि जयराशि अपनेको बृहस्पतिकी संप्रदायका मानने – मनवानेका पक्षपाती है।

---

४ उदाहरणार्थ आचार्य शङ्कर, रामानुज, मध्व और वल्लभादिको लीजिए – जो सभी परस्पर अत्यन्त विरुद्ध ऐसे अपने मन्तव्योंको गीता, ब्रह्मसूत्र जैसी एक ही कृतिमेंसे फलित करते हैं; तथा सौत्रान्तिक, विज्ञानवादी और शून्यवादी बौद्धाचार्य परस्पर बिलकुल भिन्न ऐसे अपने विचारोंका उद्गम एक ही तथागतके उपदेशमेंसे बतलाते हैं।

खण्डनके पढनेसे स्पष्ट हो जाता है कि यह जयराशि न जैन है और न बौद्ध। जैन और बौद्ध संप्रदायके इतिहासमें ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता है, जिससे यह कहा जा सके, कि जैन और बौद्ध होते हुए भी अमुक विद्वान्‌ने अपने जैन या बौद्ध संप्रदायका समग्र भावसे विरोध किया हो। जैन और बौद्ध सांप्रदायिक परंपराका बंधारण ही पहलेसे ऐसा रहा है, कि कोई विद्वान् अपनी परंपराका आमूल खण्डन करके वह फिर न अपनेको उस परंपराका अनुयायी कह सकता है और न उस परंपराके अन्य अनुयायी ही उसे अपनी परंपराका मान सकते हैं। ब्राह्मण संप्रदायका बंधारण इतना सख्त नहीं है। इस संप्रदायका कोई विद्वान्, अगर अपनी पैतृक ऐसी सभी वैदिक मान्यताओंका, अपना बुद्धिपाटव दिखानेके वास्ते अथवा अपनी वास्तविक मान्यताको प्रकट करनेके वास्ते, आमूल खण्डन करता है, तब भी, वह यदि आचारसे ब्राह्मण संप्रदायका आत्यन्तिक त्याग नहीं कर बैठता है, तो वैदिक मतानुयायी विशाल जनतामेंसे उसका सामाजिक स्थान कभी नष्ट नहीं हो पाता। ब्राह्मण संप्रदायकी प्रकृतिका, हमारा उपर्युक्त खयाल अगर ठीक है, तो कहना होगा कि यह भट्ट विशेषण जयराशिकी ब्राह्मण सांप्रदायिकताका ही द्योतक होना चाहिए।

इसके सिवा, जयराशिके पिता-माता या गुरु-शिष्य इत्यादिके संबन्धमें कुछ भी पता नहीं चलता। फिर भी जयराशिका बौद्धिक मन्तव्य क्या था यह बात इसके प्रस्तुत ग्रन्थसे स्पष्ट जानी जा सकती है। जयराशि एक तरहसे बृहस्पतिके चार्वाक संप्रदायका अनुगामी है; फिर भी वह चार्वाकके सिद्धान्तोंको अक्षरशः नहीं मानता। चार्वाक सिद्धान्तमें पृथ्वी आदि चार भूतोंका तथा मुख्य रूपसे प्रत्यक्ष विशिष्ट प्रमाणका स्थान है। पर जयराशि न प्रत्यक्ष प्रमाणको ही मानता है और न भूत तत्त्वोंको ही। तब भी वह अपनेको चार्वाकानुयायी जरूर मानता है। अतएव ग्रन्थके आरम्भमें[१] ही बृहस्पतिके मन्तव्यके साथ अपने मन्तव्यकी आनेवाली असंगतिका उसने तर्कशुद्ध परिहार भी किया

---

१ "ननु यदि उपप्लवस्तत्त्वानां किमाया...; अथातस्तत्त्वं व्याख्यास्यामः"; "पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि, तत्समुदाये शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञा इत्यादि?। न अन्यार्थत्वात्। किमर्थम्?। प्रतिबिम्बनार्थम्। किं पुनरत्र प्रतिबिम्ब्यते?। पृथिव्यादीनि तत्त्वानि लोके प्रसिद्धानि, तान्यपि विचार्यमाणानि न व्यवतिष्ठन्ते, किं पुनरन्यानि?।"–तत्त्वो० पृ० १, पं० १०।

है। उसने अपने मन्तव्यके बारेमें प्रश्न उठाया है, कि बृहस्पति जब चार तत्त्वोंका प्रतिपादन करता है, तब तुम (जयराशि) तत्त्वमात्रका खण्डन कैसे करते हो? अर्थात् बृहस्पतिकी परंपराके अनुयायीरूपसे कम-से-कम चार तत्त्व तो तुम्हें अवश्य मानने ही चाहिए। इस प्रश्नका जबाब देते हुए जयराशिने अपनेको बृहस्पतिका अनुयायी भी सूचित किया है और साथ ही बृहस्पतिसे एक कदम आगे बढ़नेवाला भी बतलाया है। वह कहता है कि— बृहस्पति जो अपने सूत्रमें चार तत्त्वोंको गिनाता है, वे इस लिए नहीं कि वह खुद उन तत्त्वोंको मानता है। सूत्रमें चार तत्त्वोंके गिनाने अथवा तत्त्वोंके व्याख्यानकी प्रतिज्ञा करनेसे बृहस्पतिका मतलब सिर्फ लोकप्रसिद्ध तत्त्वोंका निर्देश करना मात्र है। ऐसा करके बृहस्पति यह सूचित करता है, कि साधारण लोकमें प्रसिद्ध और माने जानेवाले पृथ्वी आदि चार तत्त्व भी जब सिद्ध हो नहीं सकते, तो फिर अप्रसिद्ध और अतीन्द्रिय आत्मा आदि तत्त्वोंकी तो बात ही क्या?। बृहस्पतिके कुछ सूत्रोंका उल्लेख करके और उसके आशयके साथ अपने नए प्रस्थानकी आनेवाली असंगतिका परिहार करके जयराशिने भारतवर्षीय प्राचीन गुरु-शिष्य भावकी प्रणालीका ही परिचय दिया है। भारतवर्षके किसी भी संप्रदायके इतिहासको हम देखते हैं, तो उसमें स्पष्ट दिखाई देता है, कि जब कोई असाधारण और नवीन विचारका प्रस्थापक पैदा होता है तब वह अपने नवीन विचारोंका मूल या बीज अपने संप्रदायके प्राचीन एवं प्रतिष्ठित आचार्योंके वाक्योंमें ही बतलाता है। वह अपनेको अमुक संप्रदायका अनुयायी मानने मनवानेके लिए उसकी परंपराके प्राचीन एवं प्रतिष्ठित आचार्योंके साथ अपना अविच्छिन्न अनुसंधान अवश्य बतलाता है। चाहे फिर उसका वह नया विचार उस संप्रदायके पूर्ववर्ती आचार्योंके मस्तिष्कमें कभी आया भी न हो[४]। जयराशिने भी यही किया है। उसने अपने निजी विचार-विकासको बृहस्पतिके अभिप्रायमेंसे ही फलित किया है। यह वस्तुस्थिति इतना बतलानेके लिए पर्याप्त है कि जयराशि अपनेको बृहस्पतिकी संप्रदायका मानने-मनवानेका पक्षपाती है।

---

४ उदाहरणार्थ आचार्य शङ्कर, रामानुज, मध्व और वल्लभादिको लीजिए-जो सभी परस्पर अत्यन्त विरुद्ध ऐसे अपने मन्तव्योंको गीता, ब्रह्मसूत्र जैसी एक ही कृतिमेंसे फलित करते हैं; तथा सौत्रान्तिक, विज्ञानवादी और शून्यवादी बौद्धाचार्य परस्पर बिलकुल भिन्न ऐसे अपने विचारोंका उद्गम एक ही तथागतके उपदेशमेंसे बतलाते हैं।

अपनेको बृहस्पतिकी परंपराका मान कर और मनवा कर भी वह अपनेको बृहस्पतिसे भी ऊँची बुद्धिभूमिका पर पहुँचा हुआ मानता है। अपने इस मन्तव्यको वह स्पष्ट शब्दोंमें, ग्रन्थके अन्तकी प्रशस्तिके एक पद्यमें, व्यक्त करता है। वह बहुत ही जोरदार शब्दोंमें कहता है कि सुरगुरु – बृहस्पतिको भी जो नहीं सूझे ऐसे समर्थ विकल्प – विचारणीय प्रश्न मेरे इस ग्रन्थमें ग्रथित हैं।[5]

जयराशि बृहस्पतिकी चार्वाक मान्यताका अनुगामी था इसमें तो कोई सन्देह नहीं, पर यहाँ प्रश्न यह है कि जयराशि बुद्धिसे ही उस परंपराका अनुगामी था कि आचारसे भी ? । इसका जबाब हमें सीधे तौरसे तो किसी तरह नहीं मिलता। पर तत्त्वोपप्लवके आन्तरिक परिशीलनसे तथा चार्वाक परंपराकी थोड़ी बहुत पाई जानेवाली ऐतिहासिक जानकारीसे, ऐसा जान पडता है कि जयराशि बुद्धिसे ही चार्वाक परंपराका अनुगामी होना चाहिए। साहित्यिक इतिहास हमें चार्वाकके खास जुदे आचारोंके बारेमें कुछ भी नहीं कहता। यद्यपि अन्य[6] संप्रदायोंके विद्वानोंने चार्वाक मतका निरूपण करते हुए, उसके अभिमत रूपसे कुछ नीतिविहीन आचारोंका निर्देश अवश्य किया है; पर इतने परसे हम यह नहीं कह सकते कि चार्वाकके अभिमतरूपसे, अन्यपरंपराके विद्वानोंके द्वारा वर्णन किए गए वे आचार, चार्वाक परंपरामें भी कर्तव्यरूपसे प्रतिपादन किये जाते होंगे। चार्वाक दर्शनकी तात्त्विक मान्यता दर्शानेवाले बार्हस्पत्यके नामसे कुछ सूत्र या वाक्य हमें बहुत पुराने समयके मिलते हैं; पर हमें ऐसा

---

५ "ये याता नहि गोचरं सुरगुरोः बुद्धेर्विकल्पा दृढाः,
प्राप्यन्ते ननु तेऽपि यत्र विमले पाखण्डदर्पोच्छिदि।"

– तत्त्वो० पृ० १२५, पं० १३

६ "पिब खाद च चारुलोचने यदतीतं वरगात्रि तन्नते।
नहि भीरु गतं निवर्तते समुदयमात्रमिदं कलेवरम्॥
साध्यवृत्तिनिवृत्तिभ्यां या प्रीतिर्जायते जने।
निरर्था सा मते तेषां धर्मः कामात् परो न हि॥"

– षड्द० का० ८२, ८६।

"प्रायेण सर्वप्राणिनस्तावत् –

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

– इति लोकगाथामनुरुन्धाना नीतिकामशास्त्रानुसारेणार्थकामावेव पुरुषार्थौ मन्यमानाः पारलौकिकमर्थमपह्नुवानाश्चार्वाकमतमनुवर्तमाना एवानुभूयन्ते।" सर्वदर्शन संग्रह, पृ० २।

कोई वाक्य या सूत्र नहीं मिलता जो बार्हस्पत्य नामके साथ उद्धृत हो और जिसमें चार्वाक मान्यताके किसी न किसी प्रकारके आचारोंका वर्णन हो। खुद बार्हस्पत्य वाक्योंके द्वारा चार्वाकके आचारोंका पता हमें न चलें तब तक, अन्य द्वारा किए गए वर्णनमात्रसे, हम यह निश्चित नतीजा नहीं निकाल सकते कि अमुक आचार ही चार्वाकका है। वाममार्गीय परंपराओंमें या तान्त्रिक एवं कापालिक परंपराओंमें प्रचलित या माने जानेवाले अनेक विधि-निषेधमुक्त आचारोंका पता हमें कितनेएक तान्त्रिक आदि ग्रन्थोंसे चलता है। पर वे आचार चार्वाक मान्यताको भी मान्य होंगे इस बातका निर्णायक प्रमाण हमारे पास कोई नहीं। ऐसी दशामें जयराशिको चार्वाक संप्रदायका अनुगामी मानते हुए भी, निर्विवाद रूपसे हम उसे सिर्फ बुद्धिसे ही चार्वाक परंपराका अनुगामी कह सकते हैं। ऐसा भी संभव है कि वह आचारके विषयमें अपनी पैतृक ऐसी ब्राह्मण परंपराके ही आचारोंका सामान्य रूपसे अनुगामी रहा हो।

जयराशिके जन्मस्थान, निवासस्थान या पितृदेशके बारेमें जाननेका कोई स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं हैं। परन्तु उसकी प्रस्तुत कृति तत्त्वोपप्लवका किया गया सर्वप्रथम उपयोग, हम इस समय, जैन विद्वान् विद्यानन्द, अनन्तवीर्य आदिकी कृतियोंमें देखते हैं[८]। विद्यानन्द दक्षिण भारतके विद्वान् हैं, अतएव पुष्ट संभावना यह है कि जयराशि भी दक्षिण भारतमें ही कहीं उत्पन्न हुआ होगा। पश्चिम भारत – अर्थात् गुजरात और मालवामें होनेवाले कई जैन विद्वानोंने[९] भी अपने ग्रन्थोंमें तत्त्वोपप्लवका साक्षात् उपयोग किया है; परन्तु जान पडता है कि गुजरात आदिमें तत्त्वोपप्लवका जो प्रचार बादमें जा कर हुआ वह असलमें विद्यानन्दकी कृतियोंके प्रचारका ही परिणाम मालूम होता है। उत्तर और पूर्व भारतमें रचे गए किसी ग्रन्थमें, तत्त्वोपप्लवका किया गया ऐसा कोई प्रत्यक्ष उपयोग अभी तक नहीं देखा गया, जैसा दक्षिण भारत और पश्चिम भारतमें बने हुए

---

७ इस विषयके जिज्ञासुओंको आगमप्रकाश नामकी गुजराती पुस्तक देखने योग्य है जिसमें लेखकने तान्त्रिक ग्रन्थोंका हवाला दे कर वाममार्गीय आचारोंका निरूपण किया है।

८ अष्टसहस्री, पृ० ३७। सिद्धिविनिश्चय, पृ० २८८।

९ गुजरात तथा मालवामें विहार करनेवाले सन्मतिके टीकाकार अभयदेव, जैनतर्कवार्तिककार शान्तिसूरि, स्याद्वादरत्नाकरकार वादी देवसूरि, स्याद्वादमंजरीकार मल्लिषेणसूरि आदि ऐसे विद्वान् हुए हैं जिन्होंने तत्त्वोपप्लवका साक्षात् उपयोग किया है।

ग्रन्थोंमें देखा जाता है। इसमें भी दक्षिण भारतकी कृतियोंमें ही जब सर्वप्रथम इसका उपयोग देखा जाता है तब ऐसी कल्पनाका करना असंगत नहीं मालूम देता कि जयराशिकी यह अपूर्व कृति कहीं दक्षिणमें ही बनी होगी।

जयराशिके समयके बारेमें भी अनुमानसे ही काम लेना पड़ता है। क्यों कि न तो इसने स्वयं अपना समय सूचित किया है और न दूसरे किसीने ही इसके समयका उल्लेख किया है। तत्त्वोपप्लवमें जिन प्रसिद्ध विद्वानोंके नाम आए हैं या जिनकी कृतियोंमेंसे कुछ अवतरण आए हैं उन विद्वानोंके समयकी अंतिम अवधि ई० स० ७२५ के आसपास तककी है। कुमारिल, प्रभाकर, धर्मकीर्ति और धर्मकीर्तिके टीकाकार आदि विद्वानोंके नाम, वाक्य या मन्तव्य तत्त्वोपप्लवमें[१०] मिलते हैं। इन विद्वानोंके समयकी उत्तर अवधि ई० स० ७५० से आगे नहीं जा सकती, दूसरी तरफ, ई० स० ८१० से ८७५ तकमें संभवित जैन विद्वान् विद्यानन्दने तत्त्वोपप्लवका केवल नाम ही नहीं लिया है बल्कि उसके अनेक भाग ज्यों के त्यों अपनी कृतियोंमें उद्धृत किये हैं और उनका खण्डन भी किया है[११]। पर साथमें इस जगह यह भी ध्यानमें रखना चाहिए, कि ई० स० की आठवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें होनेवाले या जीवित ऐसे अकलंक, हरिभद्र आदि किसी जैन विद्वान्का तत्त्वोपप्लवमें कोई निर्देश नहीं है, और न उन विद्वानोंकी कृतियोंमें ही तत्त्वोपप्लवका वैसा कोई सूचन है। इसी तरह, ई० स० की नवीं शताब्दीके प्रारंभमें होनेवाले प्रसिद्ध शंकराचार्यका भी कोई सूचन तत्त्वोपप्लवमें नहीं है। तत्त्वोपप्लवमें आया हुआ वेदान्तमतका खण्डन[१२]

---

१० कुमारिलके श्लोकवार्तिककी कुछ कारिकाएं तत्त्वोपप्लवमें (पृ० २७, ११६) उद्धृत की गई हैं। प्रभाकरके स्मृतिप्रमोषसंबंध मतका खण्डन जयराशिने विस्तारसे किया है (पृ०१८)। धर्मकीर्तिके प्रमाणवार्तिककी कुछ कारिकाएं और न्यायबिन्दुका एक सूत्र तत्त्वोपप्लवमें उद्धृत हैं (पृ० २८, ५१, ४५, इत्यादि; तथा पृ० ३२)। धर्मकीर्तिके टीकाकारोंका नामोल्लेख तो नहीं मिलता किन्तु धर्मकीर्तिके किसी ग्रन्थकी कारिकाकी, जो टीका किसीने की होगी उसका खण्डन तत्त्वोपप्लवमें उपलब्ध है – पृ० ९८।

११ "कथं प्रमाणस्य प्रामाण्यम्?। किमदुष्टकारकसन्दोहोत्पाद्यत्वेन, बाधारहितत्वेन, प्रवृत्तिसामर्थ्येन, अन्यथा वा?। यद्यदुष्टकारकसन्दोहोत्पाद्यत्वेन तदा..." इत्यादि अष्टसहस्रीगत पाठ (अष्टसहस्री पृ० ३८) तत्त्वोपप्लवमेंसे (पृ० २) शब्दशः लिया गया है। और आगे चल कर अष्टसहस्रीकारने तत्त्वोपप्लवके उन वाक्योंका एक एक करके खण्डन भी किया है – देखो, अष्टसहस्री पृ० ४०।

१२ देखो, तत्त्वोपप्लव पृ० ८१.

प्राचीन औपनिषदिक संप्रदायका ही खण्डन जान पड़ता है। इन सब बातों पर विचार करनेसे, इस समय हमारी धारणा ऐसी बनती है कि जयराशि ई० स० ७२५ से ८२५ तकमें कभी हुआ है।

यहां एक बात पर विशेष विचार करना प्राप्त होता है, और वह यह है, कि तत्त्वोपप्लवमें एक पद्य[13] ऐसा मिलता है जो शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रहमें मौजूद है। पर वहां, वह कुमारिलके नामके साथ उद्धृत किये जाने पर भी, उपलभ्य कुमारिलकी किसी कृतिमें प्राप्य नहीं है। अगर तत्त्वोपप्लवमें उद्धृत किया हुआ वह पद्य, सचमुच तत्त्वसंग्रहमेंसे ही लिया गया है, तो ऐसा मानना होगा कि जयराशिने शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रहको जरूर देखा था। शान्तरक्षितका जीवनकाल इतना अधिक विस्तृत है कि वह प्रायः पूरी एक शताब्दीको व्याप्त कर लेता है। शान्तरक्षितका समय ई० स० की आठवीं-नवीं शताब्दी है। इस बातसे भी जयराशिके समयसंबन्धी हमारे उक्त अनुमानकी पुष्टि होती है। दस-बीस वर्ष इधर या उधर; पर समयसंबन्धी उपर्युक्त अनुमानमें विशेष अन्तर पड़नेका संभव बहुत ही कम है।

जयराशिकी पाण्डित्यविषयक योग्यताके विषयमें विचार करनेका साधन, तत्त्वोपप्लवके सिवाय, हमारे सामने और कुछ भी नहीं है। तत्त्वोपप्लवमें एक जगह **लक्षणसार**[14] नामक ग्रन्थका निर्देश है जो जयराशिकी ही कृति जान पड़ती है; परन्तु वह ग्रन्थ अभी तक कहीं उपलब्ध नहीं है। जयराशिकी अन्य कृतियोंके बारेमें और कोई प्रमाण नहीं मिला है; परन्तु प्रस्तुत तत्त्वोपप्लवकी पाण्डित्यपूर्ण एवं बहुश्रुत चर्चाओंको देखनेसे ऐसा माननेका मन हो जाता है कि जयराशिने और भी कुछ ग्रन्थ अवश्य लिखे होंगे। जयराशि दार्शनिक है फिर भी उसके केवल वैयाकरणसुलभ कुछ प्रयोगोंको[15] देख कर यह मानना पडता है कि वह वैयाकरण जरूर था। उसकी दार्शनिक लेखनशैलीमें भी जहाँ तहाँ आलंकारिकसुलभ व्यङ्ग्योक्तियां हैं और मधुर कटाक्षोंकी भी

---

१३ "दोषाः सन्ति न सन्तीति" इत्यादि, तत्त्वो० पृ० ११६।

१४ "अव्यपदेश्यपदं च यथा न साधीयः तथा **लक्षणसारे** द्रष्टव्यम्।"-तत्त्वो० पृ० २०।

१५ "जेगीयते"-पृ० २६, ४१। "जाघटीति"-पृ० २७, ७६ इत्यादि।

कहीं कहीं छटा है[१६]। इससे उसके एक अच्छे आलंकारिक होनेमें भी संदेह बहुत नहीं रहता। जयराशि वैयाकरण या आलंकारिक हो—या न हो, पर वह दार्शनिक तो पूरा है। उसके अभ्यासका विषय भी कोई एक दर्शन, या किसी एक दर्शनका अमुक ही साहित्य नहीं है, पर उसने अपने समयमें पाए जाने वाले सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध दर्शनोंके प्रधान प्रधान ग्रन्थ अवश्य देखे जान पडते हैं। उसने खण्डनीय ऐसे सभी दर्शनोंके प्रधान ग्रन्थोंको केवल स्थूल रूपसे देखा ही नहीं है, परन्तु वह खण्डनीय दर्शनोंके मन्तव्योंको वास्तविक एवं गहरे अभ्यासके द्वारा पी गया सा जान पड़ता है। वह किसी भी दर्शनके अभिमत प्रमाणलक्षणकी या प्रमेयतत्त्वकी जब समालोचना करता है तब मानों उस खण्डनीय तत्त्वको, अर्जुनकी तरह, सेंकडो[१७] ही विकल्पबाणोंसे, व्याप्त कर देता है। जयराशिके उठाये हुए प्रत्येक विकल्पका मूल किसी न किसी दार्शनिक परंपरामें अवश्य देखा जाता है। इससे उसके दार्शनिक विषयोंके तलस्पर्शी अभ्यासके बारेमें तो कोई सन्देह ही नहीं रहता। जयराशिको अपना तो कोई पक्ष स्थापित करना है ही नहीं; उसको तो जो कुछ करना है वह दूसरोंके माने हुए सिद्धान्तोंका खण्डन मात्र। अतएव वह जब तक, अपने समय पर्यन्तमें मौजूद और प्रसिद्ध सभी दर्शनोंके मन्तव्योंका थोड़ा बहुत खण्डन न करे तब तक, वह अपने ग्रन्थके उद्देश्यको, अर्थात् समग्र तत्त्वोंके खण्डनको, सिद्ध ही नहीं कर सकता। उसने अपना यह उद्देश्य तत्त्वोपप्लव ग्रन्थके द्वारा सिद्ध किया है,

---

१६ "शृण्वन्तु अमी बाल्लपितं विपश्चितः ?"—पृ० ५। "अहो राजाज्ञा गरीयसी नैयायिकपशोः !"—पृ० ६। "तदेतन्महासुभाषितम् ?"—पृ० ९। "न जातु जानते जनाः।" —पृ० ८। "मरीचयः प्रतिभान्ति देवानांप्रियस्य।"—पृ० १२। "अहो राजाज्ञा नैयायिकपशोः"—पृ० १४। "तथापि विद्यमानयोर्बाध्यबाधकभावो भूपालयोरिव"—पृ० १५। "सोयं गड्डप्रवेशाक्षितारकविनिर्गमन्यायोपनिपातः श्रुतिलालसानां दुरुत्तरः।"—पृ० २३। "बालविलसितम्"—पृ० २९। "जडचेष्टितम्"—पृ० ३२। "तदिदं मद्विकल्पान्दोलितबुद्धेः निरुपपत्तिकाभिधानम्"—पृ० ३३। "वर्तमानव्यवहारविरहः स्यात्"—पृ० ३७। "जडमतयः" पृ० ५९। 'सुस्थितं नित्यत्वम्" पृ० ७६। इनके अलावा देखो प्रथम पृष्ठका टिप्पण।

१७ "केयं कल्पना ?। किं गुणचलनजात्यादिविशेषणोत्पादितं विज्ञानं कल्पना, आहो स्मृत्युत्पादकं विज्ञानं कल्पना, स्मृतिरूपं वा, स्मृत्युत्पाद्यं वा, अभिलापसंसर्गनिर्भासो वा, अभिलापवती प्रतीतिर्वा कल्पना, अस्पष्टाकारा वा, अतात्त्विकार्थगृहीतिरूपा वा, स्वयं वाऽतात्त्विकी, त्रिरूपाल्लिङ्गतोऽर्थदृग्वा, अतीतानागतार्थनिर्भासा वा ?" —एक कल्पनाके विषयमें ही इतने विकल्प करके और फिर प्रत्येक विकल्पको ले कर भी उत्तरोत्तर अनेक विकल्प करके जयराशि उनका खण्डन करता है। तत्त्वो० पृ० ३२।

और इससे सूचित होता है कि वह समग्र भारतीय दर्शन परंपराओंका तलस्पर्शी अभ्यासी था। वह एक एक करके सब दर्शनोंका खण्डन करनेके बाद अन्तमें वैयाकरण दर्शनकी[१८] भी पूरी खबर लेता है। जयराशिने वैदिक, जैन और बौद्ध – इन तीनों संप्रदायोंका खण्डन किया है। और फिर, वैदिक परंपरा अन्तर्गत न्याय, सांख्य, मीमांसा, वेदान्त और व्याकरण दर्शनका भी खण्डन किया है। जैन संप्रदायको उसने दिगम्बर शब्दसे[१९] उल्लिखित किया है। बौद्ध मतकी विज्ञानवादी शाखाका, खास कर धर्मकीर्ति और उसके शिष्योंके मन्तव्योंका निरसन किया है[२०]। उसका खण्डित वैयाकरण दर्शन महाभाष्यानुगामी[२१] भर्तृहरिका दर्शन जान पडता है। इस तरह जयराशिकी प्रधान योग्यता दार्शनिक विषयकी है और वह समग्र दर्शनोंसे संबन्ध रखती है।

---

१८ तत्त्वोपप्लव, पृ० १२०।

१९ " पृ० ७९।

२० प्रमाणसामान्यका लक्षण, जिसका कि खण्डन जयराशिने किया है, धर्मकीर्तिके प्रमाणवार्तिकमेंसे लिया गया है (– तत्त्वो० पृ० २८)। प्रत्यक्षका लक्षण भी खण्डन करने के लिए धर्मकीर्तिके न्यायबिन्दुमेंसे ही लिया गया है (– पृ० ३२)। इसी प्रसंगमें धर्मकीर्ति और उनके शिष्योंने जो सामान्यका खण्डन और सन्तानका समर्थन किया है – उसका खण्डन भी जयराशिने किया है। आगे चल कर जयराशिने (पृ० ८३ से) धर्मकीर्ति संमत तीनों अनुमानका खण्डन किया है और उसी प्रसंगमें धर्मकीर्ति और उनके शिष्यों द्वारा किया गया अवयवीनिराकरण, बाह्यार्थ विलोप, क्षणिकत्वस्थापन – इत्यादि विषयोंका विस्तारसे खण्डन किया है।

२१ अपशब्दके भाषणसे मनुष्य म्लेच्छ हो जाता है अतः साधुशब्दके प्रयोगज्ञानके लिए व्याकरण पढना आवश्यक है, ऐसा महाभाष्यकारका मत है – "म्लेच्छा मा भूम इत्यध्येयं व्याकरणम्" (– पात० महाभाष्य पृ० २२; पं० गुरुप्रसादसंपादित); तथा "एवमिहापि समानायां अर्थावगतौ शब्देन चापशब्देन च धर्मनियमः क्रियते। 'शब्देनैवार्थोऽभिधेयो नापशब्देन' इति एवं क्रियमाणमभ्युदयकारि भवतीति" – (पृ० ५८) ऐसा कह करके महाभाष्यकारने साधुशब्दके प्रयोगको ही अभ्युदयकर बताया है। महाभाष्यकारके इसी मतको लक्ष्यमें रख कर भर्तृहरिने अपने वाक्यपदीयमें साधुशब्दोंके प्रयोगका समर्थन किया है और असाधुशब्दोंके प्रयोगका निषेध किया है –

"शिष्टेभ्य आगमात् सिद्धाः साधवो धर्मसाधनम्।
अर्थप्रत्यायनाभेदे विपरीतास्त्वसाधवः॥"

इत्यादि – वाक्यपदीय, १. २७; १. १४१. तथा १४९ से। जयराशिने इस मतका खण्डन किया है – पृ० १२० से।

ग्रन्थ परिचय

नाम—प्रस्तुत ग्रन्थका पूरा नाम है **तत्त्वोपप्लवसिंह** जो उसके प्रारंभिक पद्यमें स्पष्ट रूपसे दिया हुआ है[२२]। यद्यपि यह प्रारंभिक पद्य बहुत कुछ खण्डित हो गया है, तथापि दैवयोगसे इस शार्दूलविक्रीडित पद्यका एक पाद बच गया है जो शायद उस पद्यका अंतिम अर्थात् चौथा ही पाद है; और जिसमें ग्रन्थकारने ग्रन्थ रचनेकी प्रतिज्ञा करते हुए इसका नाम भी सूचित कर दिया है। ग्रन्थकारने जो **तत्त्वोपप्लवसिंह** ऐसा नाम रखा है और इस नामके साथ जो '**विषमः**' तथा '**मया सृज्यते**' ऐसे पद मिल रहे हैं, इससे जान पड़ता है कि इस पद्यके अनुपलब्ध तीन पादोंमें ऐसा कोई रूपकका वर्णन होगा जिसके साथ 'सिंह' शब्दका मेल बैठ सके। हम दूसरे अनेक ग्रन्थोंके प्रारम्भमें ऐसे रूपक पाते हैं जिनमें ग्रन्थकारोंने अपने दर्शनको 'केसरी सिंह' या 'अग्नि'[२३] कहा है और प्रतिवादी या प्रतिपक्षभूत दर्शनोंको 'हरिण' या 'इंधन' कहा है। प्रस्तुत ग्रन्थकारका अभिप्रेत रूपक भी ऐसा ही कुछ होना चाहिए, जिसमें कहा गया होगा कि सभी आस्तिक दर्शन या प्रमाणप्रमेयवादी दर्शन मृगप्राय हैं और प्रस्तुत तत्त्वोपप्लव ग्रन्थ उनके लिए एक विषम—भयानक सिंह है। अपने विरोधीके ऊपर या शिकारके ऊपर आक्रमण करनेकी सिंहकी निर्दयता सुविदित है। इसी तरह प्रस्तुत ग्रन्थ भी सभी स्थापित संप्रदायोंकी मान्यताओंका निर्दयतापूर्वक निर्मूलन करनेवाला है। तत्त्वोपप्लवसिंह नाम रखने तथा रूपक करनेमें ग्रन्थकारका यही भाव जान पड़ता है। तत्त्वोपप्लवसिंह यह पूरा नाम ई० १३–१४ वीं शताब्दीके जैनाचार्य मल्लिषेणकी कृति स्याद्वादमञ्जरी (पृ० ११८)में भी देखा जाता है। अन्य ग्रन्थोंमें जहाँ कहीं प्रस्तुत ग्रन्थका नाम आया है वहाँ प्रायः तत्त्वोपप्लव[२४] इतना ही संक्षिप्त नाम मिलता है। जान पड़ता है पिछले ग्रन्थकारोंने संक्षेपमें तत्त्वोपप्लव नामका ही प्रयोग करनेमें सुभीता देखा हो।

---

२२ देखो पृ० १ का टिप्पण.

२३ "श्रीवीरः स जिनः श्रिये भवतु यत् स्याद्वाददावानले,
भस्मीभूतकुतर्ककाष्ठनिकरे तृण्यन्ति सर्वेऽप्यहो।"
—षड्दर्शनसमुच्चय, गुणरत्नटीका, पृ०. १,

२४ सिद्धिविनिश्चय, पृ० २८८

उद्देश्य – प्रस्तुत ग्रन्थकी रचना करनेमें ग्रन्थकारके मुख्यतया दो उद्देश्य जान पड़ते हैं जो अंतिम भागसे स्पष्ट होते हैं। इनमेंसे, एक तो यह, कि अपने सामने मौजूद ऐसी दार्शनिक स्थिर मान्यताओंका, समूलोच्छेद करके यह बतलाना, कि शास्त्रोंमें जो कुछ कहा गया है और उनके द्वारा जो कुछ स्थापन किया जाता है, वह सब परीक्षा करने पर निराधार सिद्ध होता है। अतएव शास्त्रजीवी सभी व्यवहार, जो सुंदर व आकर्षक माल्रम होते हैं, अविचारके ही परिणाम हैं[२५]। इस प्रकार समग्र तत्त्वोंका खण्डन करके चार्वाक मान्यताका पुनरुज्जीवन करना यह पहला उद्देश्य है। दूसरा उद्देश्य, ग्रन्थकारका यह जान पड़ता है, कि प्रस्तुत ग्रन्थके द्वारा अध्येताओंको ऐसी शिक्षा देना, जिससे वे प्रतिवादियोंका मुँह बड़ी सरलतासे बन्द कर सकें। यद्यपि पहले उद्देश्यकी पूर्ण सफलता विवादास्पद है, पर दूसरे उद्देश्यकी सफलता असंदिग्ध है। ग्रन्थ इस ढंगसे और इतने जटिल विकल्पोंके जालसे बनाया गया है कि एक बार जिसने इसका अच्छी तरह अध्ययन कर लिया हो, और फिर वह जो प्रतिवादियोंके साथ विवाद करना चाहता हो, तो इस ग्रन्थमें प्रदर्शित शैलीके आधार पर सचमुच प्रतिवादीको क्षणभरमें चुप कर सकता है। इस दूसरे उद्देश्यकी सफलताके प्रमाण हमें इतिहासमें भी देखनेको मिलते हैं। ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीके प्रसिद्ध जैनाचार्य शांतिसूरि – जो वादिवेतालके बिरुदसे सुप्रसिद्ध हैं – के साथ तत्त्वोपप्लवकी मददसे अर्थात् तत्त्वोपप्लव जैसे विकल्पजालकी मददसे चर्चा करनेवाले एक धर्म नामक विद्वानका सूचन, प्रभाचन्द्रसूरिने अपने 'प्रभावकचरित्र'में किया[२६] है। बौद्ध और वैदिक सांप्रदायिक विद्वानोंने, वाद-विवादमें या शास्त्ररचनामें, प्रस्तुत तत्त्वोपप्लवका उपयोग किया है या नहीं और किया है तो कितना – इसके जाननेका अभी हमारे पास कोई साधन नहीं है; परन्तु जहाँ तक जैन संप्रदायका संबंध है, हमें कहना पड़ता है, कि क्या दिगम्बर – क्या श्वेताम्बर सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध जैन विद्वानोंने अपनी ग्रन्थरचनामें, और संगत हुआ तो शास्त्रार्थोंमें भी, तत्त्वोपप्लवका

---

२५ "तदेवमुपप्लुतेष्वेव तत्त्वेषु अविचारितरमणीयाः सर्वे व्यवहारा घटन्त एव।"
तथा – "पाखण्डखण्डनाभिज्ञा ज्ञानोदधिविवर्द्धिताः,
जयराशेर्जयन्तीह विकल्पा वादिजिष्णवः ॥" तत्त्वो० पृ० १२५.

२६ सिंघी जैन ग्रन्थमालामें प्रकाशित, प्रभावकचरित, पृ० २२१ – २२२। प्रो० रसिकलाल परिख संपादित, काव्यानुशासनकी अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ० CXLVI; तथा तत्त्वोपप्लवकी प्रस्तावना पृ० ५।

थोड़ा बहुत उपयोग अवश्य किया है[२७]। और यही खास कारण है कि यह ग्रन्थ अन्यत्र कहीं प्राप्त न हो कर जैन ग्रन्थभंडारमें ही उपलब्ध हुआ है।

संदर्भ—प्रस्तुत ग्रन्थका संदर्भ गद्यमय संस्कृतमें है। यद्यपि इसमें अन्य ग्रन्थोंके अनेक पद्यबन्ध अवतरण आते हैं, पर ग्रन्थकारकी कृतिरूपसे तो आदि और अन्तके मिला कर कुल तीन ही पद्य इसमें मिलते हैं। बाकी सारा ग्रन्थ सरल गद्यमें है। भाषा प्रसन्न और वाक्य छोटे छोटे हैं। फिर भी इसमें जो कुछ दुरूहता या जटिलता प्राप्त होती है, वह विचारकी अति सूक्ष्मता और एकके बाद दूसरी ऐसी विकल्पोंकी झड़ीके कारण है।

शैली—प्रस्तुत ग्रन्थकी शैली वैतण्डिक है। वैतण्डिक शैली वह है जिसमें **वितण्डा कथा**का आश्रय ले कर चर्चा की गई हो। **वितण्डा** यह **कथाके**[२८] तीन प्रकारोंमेंका एक प्रकार है। दार्शनिक साहित्यमें **वितण्डा कथा**का क्या स्थान है, और वैतण्डिक शैलीके साहित्यमें प्रस्तुत ग्रन्थका क्या स्थान है, इसे समझनेके लिए नीचे लिखी बातों पर थोड़ासा ऐतिहासिक विचार करना आवश्यक है।

(अ) **कथाके** प्रकार एवं उनका पारस्परिक अन्तर।

(इ) दार्शनिक साहित्यमें **वितण्डा कथा**का प्रवेश और विकास।

(उ) वैतण्डिक शैलीके ग्रन्थोंमें प्रस्तुत ग्रन्थका स्थान।

(अ) दो व्यक्तियों या दो समूहोंके द्वारा की जानेवाली चर्चा, जिसमें दोनों अपने अपने पक्षका स्थापन और विरोधी परपक्षका निरसन, युक्तिसे करते हों, **कथा** कहलाती है। इसके **वाद**, **जल्प** और **वितण्डा** ऐसे तीन प्रकार हैं, जो उपलब्ध संस्कृत साहित्यमें सबसे प्राचीन **अक्षपाद**के सूत्रोंमें लक्षण-

---

२७ अष्टसहस्री, सिद्धिविनिश्चय, न्यायकुमुदचन्द्र, सन्मतिटीका, स्याद्वादरत्नाकर, स्याद्वाद-मञ्जरी आदि।

२८ कथासे सम्बन्ध रखनेवाली अनेक ज्ञातव्य बातोंका परिचय प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवालोंके लिए गुजरातीमें लिखा हुआ हमारा 'कथापद्धतिनुं स्वरूप अने तेना साहित्यनुं दिग्दर्शन' नामक सुविस्तृत लेख (पुरातत्त्व, पुस्तक ३, पृ० १९५) उपयोगी है। इसी तरह उनके वास्ते हिन्दीमें स्वतंत्रभावसे लिखे हुए हमारे वे विस्तृत टिप्पण भी उपयोगी हैं जो 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'में प्रकाशित 'प्रमाणमीमांसा'के भाषाटिप्पणोंमें, पृ० १०८ से पृ० १२३ तक अंकित हैं।

पूर्वक निर्दिष्ट हैं। **वादकथा**[२९] वह है जो केवल सत्य जानने और जतलानेके अभिप्रायसे की जाती है। इस कथाका आन्तरिक प्रेरक तत्त्व केवल सत्यजिज्ञासा है। **जल्पकथा** वह है जो विजयकी इच्छासे या किसी लाभ एवं ख्यातिकी इच्छासे की जाती है। इसका प्रेरक आन्तरिक तत्त्व केवल विजयेच्छा है। **वितण्डा कथा** भी विजयेच्छासे ही की जाती है। इस तरह **जल्प** और **वितण्डा** दो तो विजयेच्छाजनित हैं और **वाद** तत्त्वबोधेच्छाजनित। विजयेच्छा-जनित होने पर भी जल्प और वितण्डामें एक अन्तर है, और वह यह कि जल्पकथामें वादी – प्रतिवादी दोनों अपना अपना पक्ष रख कर, अपने अपने पक्षका स्थापन करते हुए, विरोधी पक्षका खण्डन करते हैं। जब कि वितण्डा कथामें यह बात नहीं होती। उसमें अपने पक्षका स्थापन किए विना ही प्रतिपक्षका खण्डन करनेकी एकमात्र दृष्टि रहती है।

यहाँ पर ऐतिहासिक तथा विकास क्रमकी दृष्टिसे यह कहना उचित होगा कि ऊपर जो कथाके तीन प्रकारोंका तथा उनके पारस्परिक अन्तरका शास्त्रीय सूचन किया है, वह विविध विषयके विद्वानोंमें अनेक सदियोंसे चली आती हुई चर्चाका तर्कशुद्ध परिणाम मात्र है। बहुत पुराने समयकी चर्चाओंमें अनेक जुदी जुदी पद्धतियोंका बीज निहित है। वार्तालापकी पद्धति, जिसे संवादपद्धति भी कहते हैं, प्रश्नोत्तरपद्धति और कथापद्धति – ये सभी प्राचीन कालकी चर्चाओंमें कभी शुद्ध रूपसे तो कभी मिश्रित रूपसे चलती थीं। कथा-पद्धतिवाली चर्चामें भी **वाद, जल्प** आदि कथाओंका मिश्रण हो जाता था। जैसे जैसे अनुभव बढ़ता गया और एक पद्धतिमें दूसरी पद्धतिके मिश्रणसे, और खास कर एक कथामें दूसरी कथाके मिश्रणसे, कथाकालमें तथा उसके परि-णाममें नानाविध असामञ्जस्यका अनुभव होता गया, वैसे वैसे कुशल विद्वानोंने कथाके भेदोंका स्पष्ट विभाजन करना भी शुरू कर दिया; और इसके साथ ही साथ उन्होंने हरएक कथाके लिए, अधिकारी, प्रयोजन, नियम, उपनियम आदिकी मर्यादा भी बाँधनी शुरू की। इसका स्पष्ट निर्देश हम सबसे पहले अक्षपादके सूत्रोंमें देखते हैं। कथाका यह शास्त्रीय निरूपण इसके बादके

---

२९ "प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः। यथोक्तोपपन्नश्छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः। स्वप्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा।" – न्यायसूत्र १. २. १–३।

समग्र वाङ्मयमें आजतक सुस्थिर है। यद्यपि बीच बीचमें बौद्ध और जैन तार्किकोंने, अक्षपादकी बतलाई हुई कथासंबंधी मर्यादाका विरोध और परिहास करके, अपनी अपनी कुछ भिन्न प्रणाली भी स्थापित की है; फिर भी सामान्य रूपसे देखा जाय तो सभी दार्शनिक परंपराओंमें अक्षपादकी बतलाई हुई कथापद्धतिकी मर्यादाका ही प्रभुत्व बना हुआ है।

(इ) व्याकरण, अलंकार, ज्योतिष, वैद्यक, छन्द और संगीत आदि अनेक ऐसे विषय हैं जिनपर चर्चात्मक संस्कृत साहित्य काफी तादादमें बना है; फिर भी हम देखत हैं कि **वितण्डा कथा**के प्रवेश और विकासका केन्द्र तो केवल दार्शनिक साहित्य ही रहा है। इस अन्तरका कारण, विषयका स्वाभाविक स्वरूपभेद ही है। दर्शनोंसे संबन्ध रखनेवाले सभी विषय प्रायः ऐसे ही हैं जिनमें कल्पनाओंके साम्राज्यका यथेष्ट अवकाश है; और जिनकी चर्चामें कुछ भी स्थापन न करना और केवल खण्डन ही खण्डन करना यह भी आकर्षक बन जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि दार्शनिक क्षेत्रके सिवाय अन्य किसी विषयमें वितण्डा कथाके विकास एवं प्रयोगकी कोई गुंजाइश नहीं है।

चर्चा करनेवाले विद्वानोंकी दृष्टिमें भी अनेक कारणोंसे परिवर्तन होता रहता है। जब विद्वानोंकी दृष्टिमें सांप्रदायिक भाव और पक्षाभिनिवेश मुख्यतया काम करते हैं तब उनके द्वारा **वाद कथा**का संभव कम हो जाता है। तिस पर भी, जब उनकी दृष्टि आभिमानिक अहंवृत्तिसे और शुष्क वाग्विलासकी कुतूहल वृत्तिसे आवृत हो जाती है, तब तो उनमें **जल्प कथा**का भी संभव विरल हो जाता है। मध्य युग और अर्वाचीन युगके अनेक ग्रन्थोंमें **वितण्डा कथा**का आश्रय लिए जानेका एक कारण उपर्युक्त दृष्टिभेद भी है।

ब्राह्मण और उपनिषद् कालमें तथा बुद्ध और महावीरके समयमें चर्चाओंकी भरमार कम न थी, पर उस समयके भारतवर्षीय वातावरणमें धार्मिकता, आध्यात्मिकता और चित्तशुद्धिका ऐसा और इतना प्रभाव अवश्य था कि जिससे उन चर्चाओंमें विजयेच्छाकी अपेक्षा सत्यज्ञानकी इच्छा ही विशेषरूपसे काम करती थी। यही सबब है कि हम उस युगके साहित्यमें अधिकतर **वाद कथा**का ही स्वरूप पाते हैं। इसके साथ हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि उस युगके मनुष्य भी अन्तमें मनुष्य ही थे। अतएव उनमें भी विजयेच्छा, सांप्रदायिकता और अहंताका तत्त्व, अनिवार्य रूपसे थोड़ा

बहुत काम करता ही था। जिससे कभी कभी वाद कथामें भी जल्प और वितण्डाका तथा जल्प कथामें वितण्डाका जानते अनजानते प्रवेश हो ही जाता था। इतना होते हुए भी, इस बातमें कोई संदेह नहीं, कि अन्तिम रूपमें उस समय प्रतिष्ठा तत्त्वज्ञानेच्छाकी और वादकथाकी ही थी। जल्प और वितण्डा कथा करनेवालोंकी तथा किसी भी तरहसे उसका आश्रय लेनेवालोंकी, उतनी प्रतिष्ठा नहीं थी जितनी शुद्ध वाद कथा करनेवालोंकी थी।

परंतु, अनेक ऐतिहासिक कारणोंसे, उपर्युक्त स्थितिमें बडे जोरोंसे अन्तर पडने लगा। बुद्ध और महावीरके बाद, भारतमें एक तरफसे शस्त्रविजयकी वृत्ति प्रबल होने लगी; और दूसरी तरफसे उसके साथ-ही-साथ शास्त्रविजयकी वृत्ति भी उत्तरोत्तर प्रबल होती चली। सांप्रदायिक संघर्ष, जो पहले विद्यास्थान, धर्मस्थान और मठोंहीकी वस्तु थी, वह अब राजसभा तक जा पहुंचा। इस सबबसे दार्शनिक विद्याओंके क्षेत्रमें जल्प और वितण्डाका प्रवेश अधिकाधिक होने लगा और उसकी कुछ प्रतिष्ठा भी अधिक बढने लगी। खुल्लमखुल्ला उन लोगोंकी पूजा और प्रतिष्ठा होने लगी जो 'येन केन प्रकारेण' प्रतिवादीको हरा सकते थे एवं हराते थे। अब सभी संप्रदाय वादियोंको फिक्र होने लगी, कि किसी भी तरहसे अपने अपने संप्रदायके मन्तव्योंकी विरोधी सांप्रदायिकोंसे रक्षा करनी चाहिए। सामान्य मनुष्यमें विजयकी तथा लाभख्यातिकी इच्छा साहजिक ही होती है। फिर उसको बढते हुए संकुचित सांप्रदायिक भावका सहारा मिल जाय, तो फिर कहना ही क्या? जहाँ देखो वहाँ विद्या पढने-पढानेका तथा तत्त्व-चर्चा करनेका प्रतिष्ठित लक्ष्य यह समझा जाने लगा, कि जल्प कथासे नहीं तो अन्तमें वितण्डा कथासे ही सही, पर प्रतिवादीका मुख बन्द किया जाय और अपने सांप्रदायिक निश्चयोंकी रक्षा की जाय।

चन्द्रगुप्त और अशोकके समयसे ले कर आगेके साहित्यमें हम जल्प और वितण्डाका तत्त्व पहलेकी अपेक्षा कुछ अधिक स्पष्ट पाते हैं। ईसाकी दूसरी तीसरी शताब्दिके माने जानेवाले नागार्जुन और अक्षपादकी कृतियां हमारे इस कथनकी साक्षी हैं।

नागार्जुनकी कृति विग्रहव्यावर्तिनीको लीजिए या माध्यमिककारिकाको लीजिए और ध्यानसे उनका अवलोकन कीजिए, तो पता चल जायगा कि दार्शनिक चिन्तनमें वादकी आडमें, या वादका दामन पकड कर उसके पीछे

पीछे, जल्प और वितण्डाका प्रवेश किस कदर होने लग गया था। हम यह तो निर्णयपूर्वक कभी कह नहीं सकते कि नागार्जुन सत्यजिज्ञासासे प्रेरित था ही नहीं, और उसकी कथा सर्वथा वादकोटिसे बाह्य है; पर इतना तो हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि नागार्जुनकी समग्र शैली, जल्प और वितण्डा कथाके इतनी नजदीक है, कि उसकी शैलीका साधारण अभ्यासी, बडी सरलतासे, जल्प और वितण्डा कथाकी ओर लुढक सकता है।

अक्षपादने अपने अतिमहत्त्वपूर्ण सूत्रात्मक संग्रह ग्रन्थमें **वाद, जल्प और वितण्डाका**, केवल अलग अलग लक्षण ही नहीं बतलाया है बल्कि उन कथाओंके अधिकारी, प्रयोजन आदिकी पूरी मर्यादा भी सूचित की है। निःसंदेह अक्षपादने अपने सूत्रोंमें जो कुछ कहा है और जो कुछ स्पष्टीकरण किया है, वह केवल उनकी कल्पना या केवल अपने समयकी स्थितिका चित्रण मात्र ही नहीं है, बल्कि उनका यह निरूपण, अतिपूर्वकालसे चली आती हुई दार्शनिक विद्वानोंकी मान्यताओंका तथा विद्याके क्षेत्रमें विचरनेवालोंकी मनोदशाका जीवित प्रतिबिम्ब है। निःसंदेह अक्षपादकी दृष्टिमें वास्तविक महत्त्व तो 'वादकथा'का ही है, फिर भी वह स्पष्टता तथा बलपूर्वक, यह भी मान्यता प्रकट करता है कि केवल 'जल्प' ही नहीं बल्कि 'वितण्डा' तकका भी आश्रय ले कर अपने तत्त्वज्ञानकी तथा अपने संप्रदायके मन्तव्योंकी रक्षा करनी चाहिए। कांटे भले ही फेंक देने योग्य हों, फिर भी पौधोंकी रक्षाके वास्ते वे कभी कभी बहुत उपादेय भी हैं। अक्षपादने इस दृष्टान्तके द्वारा 'जल्प' और 'वितण्डाकथा'का पूर्व समयसे माना जानेवाला मात्र औचित्य ही प्रकट नहीं किया है, बल्कि उसने खुद भी अपने सूत्रोंमें, कभी कभी पूर्वपक्षीको निरस्त करनेके लिए, स्पष्ट या अस्पष्ट रूपसे, 'जल्प'का और कभी 'वितण्डा' तकका आश्रय लिया जान पडता है।[३०]

मनुष्यकी साहजिक विजयवृत्ति और उसके साथ मिली हुई सांप्रदायिक मोहवृत्ति – ये दो कारण तो दार्शनिक क्षेत्रमें थे ही; फिर उन्हें ऋषिकल्प विद्वानोंके द्वारा किए गए 'जल्प' और 'वितण्डा कथा'के प्रयोगके समर्थनका सहारा मिला; तथा कुछ असाधारण विद्वानोंके द्वारा उक्त कथाकी शैलीमें लिखे गए ग्रन्थोंका भी समर्थन मिला। ऐसी स्थितिमें फिर तो कहना ही क्या था! आगमें घृताहुतिकी नौबत आ गई। जहाँ देखो वहाँ अकसर दार्शनिक क्षेत्रमें 'जल्प'

---

३० देखो न्यायसूत्र, ४. २. ४७।

और 'वितण्डा'का ही बोलबाला शुरू हुआ। यहांतक कि एक बार ही नहीं बल्कि अनेक बार 'जल्प' और 'वितण्डा' कथाके प्रयोगका निषेध करनेवाले तथा उसका अनौचित्य बतलानेवाले बुद्धि एवं चरित्र प्रगल्भ ऐसे खुद बौद्ध तथा जैन तत्त्वसंस्थापक विद्वान् तथा उनके उत्तराधिकारी भी 'जल्प' और 'वितण्डा' कथाकी शैलीसे या उसके प्रयोगसे बिलकुल अछूते रह न सके। कभी कभी तो उन्होंने यह भी कह दिया कि यद्यपि 'जल्प' और 'वितण्डा' सर्वथा वर्ज्य है तथापि परिस्थितिविशेषमें उसका उपयोग भी उपयोगी है।[३१]

इस तरह कथाओंके विधि-निषेधकी दृष्टिसे, या कथाओंका आश्रय ले कर की जानेवाली ग्रन्थरचनाकी शैलीकी दृष्टिसे, हम देखें, तो हमें स्पष्टतया मालूम पडता है कि **वात्स्यायन, उद्योतकर, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, सिद्धसेन, समन्तभद्र** और **कुमारिल** तथा **शंकराचार्य** आदिकी कृतियां 'शुद्ध वादकथा' के नमूने नहीं हैं। जहांतक अपने अपने संप्रदायका तथा उसकी अवान्तर शाखाओंका संबंध है वहांतक तो, उनकी कृतियोंमें 'वादकथा'का तत्त्व सुरक्षित है; पर जब विरोधी संप्रदायके साथ चर्चाका मौका आता है तब ऐसे विशिष्ट विद्वान् भी, थोड़े बहुत प्रमाणमें, विशुद्ध 'जल्प' और 'वितण्डा' कथाकी ओर नहीं तो कमसे कम उन कथाओंकी शैलीकी ओर तो, अवश्य ही झुक जाते हैं। दार्शनिक विद्वानोंकी यह मनोवृत्ति नवीं सदीके बादके साहित्यमें तो और भी तीव्रतर होती जाती है। यही सबब है कि हम आगेके तीनों मतोंके साहित्यमें विरोधी संप्रदायके विद्वानों तथा उनके स्थापकोंके प्रति अत्यन्त कडुआपनका तथा तिरस्कारका[३२] भाव पाते हैं।

मध्य युगके तथा अर्वाचीन युगके बने हुए दार्शनिक साहित्यमें ऐसा भाग बहुत बड़ा है जिसमें 'वाद'की अपेक्षा 'जल्पकथा'का ही प्राधान्य है। नागार्जुनने जिस 'विकल्पजाल'की प्रतिष्ठा की थी और बादके बौद्ध, वैदिक तथा जैन तार्किकोंने जिसका पोषण एवं विस्तार किया था, उसका विकसित तथा विशेष दुरूह स्वरूप हम **श्रीहर्षके खण्डनखण्डखाद्य** एवं **चित्सुखाचार्यकी**

---

३१ देखो, उ० यशोविजयजीकृत वादद्वात्रिंशिका, श्लो०, ८–

अयमेव विधेयस्तत् तत्त्वज्ञेन तपस्विना। देशाद्यपेक्षयाऽन्योऽपि विज्ञाय गुरुलाघवम्॥

३२ इस विषयमें गुजरातीमें लिखी हुई 'साम्प्रदायिकता अने तेना पुरावाओनुं दिग्दर्शन' नामक हमारी लेखमाला, जो पुरातत्त्व, पुस्तक ४, पृ० १६९ से शुरू होती है, देखें।

चिस्सुखी आदिमें पाते हैं।[३३] बेशक ये सभी ग्रन्थ 'जल्प कथा'की ही प्रधानतावाले हैं, क्यों कि इनमें लेखकका उद्देश स्वपक्षस्थापन ही है; फिर भी इन ग्रन्थोंकी शैलीमें 'वितण्डा'की छाया अति स्पष्ट है। यों तो 'जल्प' और 'वितण्डा' कथाके बीचका अन्तर इतना कम है कि अगर ग्रन्थकारके मनोभाव और उद्देश्यकी तरफ हमारा ध्यान न जाय, तो अनेक बार हम यह निर्णय ही नहीं कर सकते कि यह ग्रन्थ 'जल्प शैली'का है, या वितण्डा शैलीका। जो कुछ हो, पर उपर्युक्त चर्चासे हमारा अभिप्राय इतना ही मात्र है कि मध्य युग तथा अर्वाचीन युगके सारे साहित्यमें शुद्ध वितण्डाशैलीके ग्रन्थ नाममात्रके हैं।

(उ) हम दार्शनिक साहित्यकी शैलीको संक्षेपमें पांच विभागोंमें बाँट सकते हैं–

(१) कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिनकी शैली मात्र प्रतिपादनात्मक है, जैसे– **माण्डुक्यकारिका, सांख्यकारिका, तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, अभिधर्मकोष, प्रशस्तपादभाष्य, न्यायप्रवेश, न्यायबिन्दु** आदि।

(२) कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें स्वसंप्रदायके प्रतिपादनका भाग अधिक और अन्य संप्रदायके खण्डनका भाग कम है–जैसे **शाबरभाष्य**।

(३) कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें परमतोंका खण्डन विस्तारसे है और स्वमतका स्थापन थोडेमें है, जैसे–**माध्यमिक कारिका, खण्डनखण्डखाद्य** आदि।

(४) कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें खण्डन और मण्डन समप्रमाण है या साथ-ही-साथ चलता है, जैसे–**वात्स्यायन भाष्य, मीमांसा श्लोकवार्तिक, शांकरभाष्य, प्रमाणवार्तिक** आदि।

(५) बहुत थोडे पर ऐसे ग्रन्थ भी मिलते हैं जिनमें स्वपक्षके प्रतिपादनका नामोनिशान तक नहीं है और दूसरेके मन्तव्योंका खण्डन-ही-खण्डन मात्र है। ऐसे शुद्ध वैताण्डिक शैलीके ग्रन्थ इस समय हमारे सामने दो हैं–एक प्रस्तुत **तत्त्वोपप्लवसिंह** और दूसरा **हेतुविडम्बनोपाय**।

इस विवेचनासे प्रस्तुत तत्त्वोपप्लव ग्रन्थकी शैलीका दार्शनिक शैलियोंमें क्या स्थान है यह हमें स्पष्ट मालूम पड जाता है।

---

३३ हेतुविडम्बनोपाय अभी छपा नहीं है। इसके कर्ताका नाम ज्ञात नहीं हुआ। इसकी लिखित प्रति पाटणके किसी भाण्डारमें भी होनेका स्मरण है। इसकी एक प्रति पूनाके भाण्डारकर इन्स्टिट्यूटमें है जिसके ऊपरसे न्यायाचार्य पं० महेन्द्रकुमारने एक नकल कर ली है। वही इस समय हमारे सम्मुख है।

यद्यपि 'तत्त्वोपप्लवसिंह' और 'हेतुविडम्बनोपाय' इन दोनोंकी शैली शुद्ध खण्डनात्मक ही है, फिर भी इन दोनोंकी शैलीमें थोडासा अन्तर भी है जो मध्ययुगीन और अर्वाचीनकालीन शैलीके भेदका स्पष्ट द्योतक है।

दसवीं शताब्दीके पहलेके दार्शनिक साहित्यमें व्याकरण और अलंकारके पाण्डित्यको पेटभर कर व्यक्त करनेकी कृत्रिम कोशिश होती न थी। इसी तरह उस युगके व्याकरण तथा अलंकार विषयक साहित्यमें, न्याय एवं दार्शनिक तत्त्वोंको लबालब भर देनेकी भी अनावश्यक कोशिश न होती थी। जब कि दसवीं सदीके बादके साहित्यमें हम उक्त दोनों कोशिशें उत्तरोत्तर अधिक परिमाणमें पाते हैं। दसवीं सदीके बादका दार्शनिक, अपने ग्रन्थकी रचनामें तथा प्रत्यक्ष चर्चा करनेमें, यह ध्यान अधिकसे अधिक रखता है, कि उसके ग्रन्थमें और संभाषणमें, व्याकरणके नव नव और जटिल प्रयोगोंकी तथा आलंकारिक तत्त्वोंकी वह अधिक से अधिक मात्रा किस तरह दिखा सके। वादी देवसूरिका स्याद्वादरत्नाकर, श्रीहर्षका खण्डनखण्डखाद्य, रत्नमण्डनका जल्पकल्पलता आदि दार्शनिक ग्रन्थ उक्त वृत्तिके नमूने हैं। दूसरी तरफसे वैयाकरणों और आलंकारिकोंमें भी एक ऐसी वृत्तिका उदय हुआ, जिससे प्रेरित हो कर वे न्यायशास्त्रके नवीन तत्त्वोंको एवं जटिल परिभाषाओंको अपने विषयके सूक्ष्म चिंतनमें ही नहीं पर प्रतिवादीको चुप करनेके लिए भी काममें लाने लगे। बारहवीं सदीके गंगेशने 'अवच्छेदकता', 'प्रकारता', 'प्रतियोगिता' आदि नवीन परिभाषाके द्वारा न्यायशास्त्रके बाह्य तथा आन्तरिक स्वरूपमें युगान्तर उपस्थित किया और उसके उत्तराधिकारी मैथिल एवं बंगाली तार्किकोंने उस दिशामें आश्चर्यजनक प्रगति की। न्यायशास्त्रकी इस सूक्ष्म पर जटिल परिभाषाको तथा विचारसरणीको वैयाकरणों और आलंकारिकों तकने अपनाया। वे न्यायकी इस नवीन परिभाषाके द्वारा प्रतिवादियोंको परास्त करनेकी भी वैसी ही कोशिश करने लगे, जैसी कुछ दार्शनिक विद्वान् व्याकरण और अलंकारकी चमत्कृतिके द्वारा करने लगे थे। नागोजी भट्टके शब्देन्दुशेखर आदि ग्रन्थ तथा जगन्नाथ कविराजके रसगंगाधर आदि ग्रन्थ नवीन न्यायशैलीके जीवन्त नमूने हैं।

यद्यपि 'हेतुविडम्बनोपाय'की शैली 'तत्त्वोपप्लवसिंह'की शैली जैसी शुद्ध वैतण्डिक ही है, फिर भी दोनोंमें युगभेदका अन्तर स्पष्ट है। तत्त्वोपप्लवसिंहमें

दार्शनिक विचारोंकी सूक्ष्मता और जटिलता ही मुख्य है, भाषा और अलंकारकी छटा उसमें वैसी नहीं है। जब कि हेतुविडम्बनोपायमें वैयाकरणोंके तथा आलंकारिकोंके भाषा-चमत्कारकी आकर्षक छटा है। इसके सिवाय इन दोनों ग्रन्थोंमें एक अन्तर और भी है जो प्रतिपाद्य विषयसे संबन्ध रखता है। तत्त्वोपप्लवसिंहका खण्डनमार्ग समग्र तत्त्वोंको लक्ष्यमें रख कर चला है, अतएव उसमें दार्शनिक परंपराओंमें माने जानेवाले समस्त प्रमाणोंका एक एक करके खण्डन किया गया है; जब कि हेतुविडम्बनोपायका खण्डनमार्ग केवल अनुमानके हेतुको लक्ष्यमें रख कर शुरू हुआ है, इसलिए उसमें उतने खण्डनीय प्रमाणोंका विचार नहीं है जितनोंका तत्त्वोपप्लवमें है।

इसके सिवाय एक बड़े महत्त्वकी ऐतिहासिक वस्तुका भी निर्देश करना यहां जरूरी है। तत्त्वोपप्लवसिंहका कर्ता **जयराशि** तत्त्वमात्रका वैतण्डिक शैलीसे खण्डन करता है और अपनेको **बृहस्पति**की परंपराका बतलाता है। जब कि हेतुविडम्बनोपायका कर्ता जो कोई जैन है – जैसा कि उसके प्रारंभिक भागसे[३४] स्पष्ट है – आस्तिक रूपसे अपने इष्ट देवको नमस्कार भी करता है और केवल खण्डनचातुरीको दिखानेके वास्ते ही हेतुविडम्बनोपायकी रचना करना बतलाता है[३५]। जयराशिका उद्देश केवल खण्डनचातुरी बतलानेका या उसे दूसरोंको सिखानेका ही नहीं है बल्कि अपनी चार्वाक मान्यताका एक नया रूप प्रदर्शित करनेका भी है। इसके विपरीत हेतुविडम्बनोपायके रचयिताका उद्देश अपनी किसी परंपराके स्वरूपका बतलाना नहीं है। उसका उद्देश सिर्फ यही बतलानेका है कि विवाद करते समय अगर प्रतिवादिको चुप करना हो तो उसके स्थापित पक्षमेंसे एक साध्य या हेतुवाक्यकी परीक्षा करके या उसका समूल खण्डन करके किस तरह उसे चुप किया जा सकता है।

---

३४ 'प्रणम्य श्रीमदर्हन्तं परमात्मानमव्ययम्। हेतोर्विडम्बनोपायो निरपायः प्रतायते ॥'

३५ ग्रन्थकार शुरूमें ही कहता है कि – "इह हि यः कश्चिद्विपश्चित् प्रचण्डप्रामाणिकप्रकाण्डश्रेणीशिरोमणीयमानः सर्वाग्रीणानणीयः प्रमाणधोरणीप्रगुणीभवदखण्डपाण्डित्योड्डामरतां स्वात्मनि मन्यमानः स्वान्यानन्यतमसौजन्यधन्यत्रिभुवनमान्यवदान्यगणावगणनानुगुणानणुतत्त्वद्रुमितिरणरणकरंरणत्स्वसमानाभिमानः अप्रतिहतप्रसरप्रवरनिरवद्यसद्यस्कानुमानपरम्परापराबोभवितनिस्तुषमनीषाविशेषोन्मिषन्मनीषिपरिषत्प्राप्तप्रत्यग्रोदग्रमहीयोमहीयसन्मानः शतमखगुरुमुखाद्रविमुखताकारिहारिसर्वतोमुखशेमुषीमुखरासंख्यसंख्यावद्विख्याते पर्षदि दितसमग्रतर्ककर्कशवितर्कणप्रवणः प्रामाणिकग्रामणीः प्रमाणयति तस्याशयस्याहङ्कारप्राग्भारतिरस्काराय चारुविचारचातुरीगरीयश्चतुरनरचेतश्चमत्काराय च किञ्चिदुच्यते।"

चार्वाक दर्शनमें प्रस्तुत ग्रन्थका स्थान

प्रस्तुत ग्रन्थ चार्वाक संप्रदायका होनेसे इस जगह इस संप्रदायके संबन्धमें नीचे लिखी बातें ज्ञातव्य हैं।

(अ) चार्वाक संप्रदायका इतिहास
(इ) भारतीय दर्शनोंमें उसका स्थान
(उ) चार्वाक दर्शनका साहित्य

(अ) पुराने उपनिषदोंमें[१६] तथा **सूत्रकृताङ्ग**[१७] जैसे प्राचीन माने जानेवाले जैन आगममें भूतवादी या भूतचैतन्यवादी रूपसे चार्वाक मतका निर्देश है। **पाणिनि**के सूत्रमें आनेवाला नास्तिक शब्द भी अनात्मवादी चार्वाक मतका ही सूचक है। बौद्ध **दीघनिकाय**में भी भूतवादी और अक्रियवादी रूपसे दो तीर्थिकोंका सूचन है[१८]। **चाणक्यके अर्थशास्त्र**में लोकायतिक मतका निर्देश उसी भूतवादी दर्शनका बोधक है। इस तरह 'नास्तिक' 'भूतवादी' 'लोकायतिक' 'अक्रियवादी' आदि जैसे शब्द इस संप्रदायके अर्थमें मिलते हैं। पर उस प्राचीन कालके साहित्यमें 'चार्वाक' शब्दका पता नहीं चलता। चार्वाक मतका पुरस्कर्ता कौन था इसका भी पता उस युगके साहित्यमें नहीं मिलता। उसके पुरस्कर्ता रूपसे **बृहस्पति, देवगुरु** आदिका जो मन्तव्य प्रचलित है वह संभवतः पौराणिकोंकी कल्पनाका ही फल है। पुराणोंमें[१९] चार्वाक मतके प्रवर्तकका जो वर्णन है वह कितना साधार है यह कहना कठिन है। फिर भी पुराणोंका वह वर्णन, अपनी मनोरञ्जकता तथा पुराणोंकी लोकप्रियताके कारण, जनसाधारणमें और विद्वानोंमें भी रूढ हो गया है; और सब कोई निर्विवाद रूपसे यही कहते और मानते आए हैं कि बृहस्पति ही चार्वाक मतका पुरस्कर्ता है।

---

१६ "विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति न प्रेत्यसंज्ञा अस्तीति" – बृहदारण्यकोपनिषद्. ४, १२.

१७ सूत्रकृताङ्ग, पृ० १४, २८१।

१८ देखो, दीघनिकाय – ब्रह्मजालसुत्त, पृ० १२; तथा सामञ्ञफलसुत्त, पृ० २० – २१।

१९ विष्णुपुराण, तृतीयअंश, अध्याय – १७। कथाके लिए देखो सर्वदर्शनसंग्रहका पं० अभ्यंकरशास्त्री लिखित उपोद्घात, पृ० १३२।

जहाँ कहीं चार्वाक मतके निदर्शक वाक्य या सूत्र मिलते हैं वहाँ वे[40] बृहस्पति, सुरगुरु[41] आदि नामके साथ ही उद्धृत किए हुए पाये जाते हैं।

(इ) भारतीय दर्शनोंको हम संक्षेपमें चार विभागोंमें बाँट सकते हैं।

१. इन्द्रियाधिपत्य पक्ष
२. अनिन्द्रियाधिपत्य पक्ष
३. उभयाधिपत्य पक्ष
४. आगमाधिपत्य पक्ष

१. जिस पक्षका मन्तव्य यह है कि प्रमाणकी सारी शक्ति इन्द्रियोंके ऊपर ही अवलम्बित है। मन खुद इन्द्रियोंका अनुगमन कर सकता है पर वह इन्द्रियोंकी मददके सिवाय कहीं भी अर्थात् जहाँ इन्द्रियोंकी पहुँच न हो वहाँ – प्रवृत्त हो कर सच्चा ज्ञान पैदा कर ही नहीं सकता। सच्चे ज्ञानका अगर सम्भव है तो वह इन्द्रियोंके द्वारा ही; – यह है इन्द्रियाधिपत्य पक्ष। इस पक्षमें चार्वाक दर्शन ही समाविष्ट है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि चार्वाक अनुमान या शब्दव्यवहार रूप आगम आदि प्रमाणोंको, जो प्रतिदिन सर्वसिद्ध व्यवहारकी वस्तु है, न मानता हो; फिर भी चार्वाक अपनेको जो प्रत्यक्षमात्रवादी – इन्द्रिय प्रत्यक्षमात्रवादी कहता है, इसका अर्थ इतना ही है कि अनुमान, शब्द आदि कोई भी लौकिक प्रमाण क्यों न हो, पर उसका प्रामाण्य इन्द्रिय प्रत्यक्षके संवादके सिवाय कभी सम्भव नहीं। अर्थात् इन्द्रिय प्रत्यक्षसे बाधित नहीं ऐसा कोई भी ज्ञानव्यापार यदि प्रमाण कहा जाय तो इसमें चार्वाकको आपत्ति नहीं।

२. अनिन्द्रियके अन्तःकरण – मन, चित्त और आत्मा ऐसे तीन अर्थ फलित होते हैं, जिनमेंसे चित्तरूप अनिन्द्रियका आधिपत्य माननेवाला अनिन्द्रियाधिपत्य पक्ष है। इस पक्षमें **विज्ञानवाद, शून्यवाद और शाङ्कर-वेदान्त**का समावेश होता है। इस पक्षके अनुसार यथार्थज्ञानका सम्भव विशुद्ध चित्तके द्वारा ही माना जाता है। यह पक्ष इन्द्रियोंकी सत्यज्ञानजननशक्तिका सर्वथा इन्कार करता है और कहता है कि इन्द्रियाँ वास्तविक ज्ञान करानेमें पंगु ही नहीं बल्कि धोखेबाज भी अवश्य हैं। इनके मन्तव्यका निष्कर्ष इतना

---

४० तत्त्वोपप्लव, पृ० ४५।

४१ तत्त्वोपप्लवमें बृहस्पतिको सुरगुरु भी कहा है – पृ० १२५। खण्डनखण्डखाद्यमें भगवान् सुरगुरुको लोकायतिक सूत्रका कर्ता कहा गया है – पृ० ७।

ही है कि चित्त – खासकर ध्यानशुद्ध सात्त्विक चित्त – से बाधित या उसका संवाद प्राप्त न कर सकनेवाला कोई ज्ञान प्रमाण हो ही नहीं सकता, चाहे वह फिर भले ही लोकव्यवहारमें प्रमाणरूपसे माना जाता हो।

३. उभयाधिपत्य पक्ष वह है जो चार्वाककी तरह इन्द्रियोंको ही सब कुछ मान कर इन्द्रिय निरपेक्ष मनका असामर्थ्य स्वीकार नहीं करता; और न इन्द्रियोंको ही पंगु या धोखेबाज मान कर केवल अनिन्द्रिय या चित्तका ही सामर्थ्य स्वीकार करता है। यह पक्ष मानता है कि चाहे मनकी मददसे ही सही, पर इन्द्रियाँ गुणसम्पन्न हो सकती हैं और वास्तविक ज्ञान पैदा कर सकती हैं। इसी तरह यह पक्ष यह भी मानता है कि इन्द्रियोंकी मदद जहाँ नहीं है वहाँ भी अनिन्द्रिय यथार्थ ज्ञान करा सकता है। इसीसे इसे उभयाधिपत्य पक्ष कहा है। इसमें **सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक** और **मीमांसक** आदि दर्शनोंका समावेश है। सांख्य-योग इन्द्रियोंका साद्गुण्य मान कर भी अन्तःकरणकी स्वतंत्र यथार्थशक्ति मानता है। न्याय-वैशेषिक आदि भी मनकी वैसी ही शक्ति मानते हैं; पर फर्क यह है कि सांख्य-योग आत्माका स्वतन्त्र प्रमाणसामर्थ्य नहीं मानते। क्यों कि वे प्रमाणसामर्थ्य बुद्धिमें ही मान कर पुरुष या चेतनको निरतिशय मानते हैं; जब कि न्याय-वैशेषिक आदि, चाहे ईश्वरकी आत्माका ही सही, पर आत्माका स्वतन्त्र प्रमाणसामर्थ्य मानते हैं। अर्थात् वे शरीर-मनका अभाव होने पर भी ईश्वरमें ज्ञानशक्ति मानते हैं। वैभाषिक और सौत्रान्तिक भी इसी पक्षके अन्तर्गत हैं, क्यों कि वे भी इन्द्रिय और मन दोनोंका प्रमाणसामर्थ्य मानते हैं।

४. आगमाधिपत्य पक्ष वह है जो किसी-न-किसी विषयमें आगमके सिवाय किसी इन्द्रिय या अनिन्द्रियका प्रमाणसामर्थ्य स्वीकार नहीं करता। यह पक्ष केवल **पूर्वमीमांसा**का ही है। यद्यपि वह अन्य विषयोंमें सांख्य-योगादिकी तरह उभयाधिपत्य पक्षका ही अनुगामी है, फिर भी धर्म और अधर्म इन दो विषयोंमें वह आगम मात्रका ही सामर्थ्य मानता है। यों तो **वेदान्त**के अनुसार ब्रह्मके विषयमें भी आगमका ही प्राधान्य है; फिर भी वह आगमाधिपत्य पक्षमें इस लिए नहीं आ सकता कि ब्रह्म विषयमें ध्यानशुद्ध अन्तःकरणका भी सामर्थ्य उसे मान्य है।

इस तरह, चार्वाक मान्यता इन्द्रियाधिपत्य पक्षकी अनुवर्तिनी ही सर्वत्र मानी जाती है। फिर भी प्रस्तुत ग्रन्थ उस मान्यताके विषयमें एक नया प्रस्थान उप-

स्थित करता है। क्यों कि इसमें इन्द्रियोंकी यथार्थज्ञान उत्पन्न करनेकी शक्तिका भी खण्डन किया गया है और लौकिक प्रत्यक्ष तकको भी प्रमाण माननेसे इन्कार कर दिया है। अतएव प्रस्तुत ग्रन्थके अभिप्रायसे चार्वाक मान्यता दो विभागोंमें बँट जाती है। पूर्वकालीन मान्यता इन्द्रियाधिपत्य पक्षमें जाती है, और जय-राशिकी नई मान्यता प्रमाणोपप्लव पक्षमें आती है।

(उ) चार्वाक मान्यताका कोई पूर्ववर्ती ग्रन्थ अखण्ड रूपसे उपलब्ध नहीं है। अन्य दर्शन ग्रन्थोंमें पूर्वपक्ष रूपसे चार्वाक मतके मन्तव्यके साथ कहीं कहीं जो कुछ वाक्य या सूत्र उद्धृत किये हुए मिलते हैं, यही उसका एक मात्र साहित्य है। यह भी जान पडता है कि चार्वाक मान्यताको व्यवस्थित रूपसे लिखनेवाले विद्वान् शायद हुए ही नहीं। जो कुछ बृहस्पतिने कहा उसीका छिन्नभिन्न अंश, उस परंपराका एक मात्र प्राचीन साहित्य कहा जा सकता है। उसी साहित्यके आधार पर पुराणोंमें भी चार्वाक मतको पल्लवित किया गया है। आठवीं सदीके जैनाचार्य **हरिभद्रके षड्दर्शनसमुच्चयमें** और तेरहवीं - चौदहवीं सदीके **माधवाचार्य** कृत **सर्वदर्शनसंग्रहमें** चार्वाक मतके वर्णनके साथ कुछ पद्य उद्धृत मिलते हैं। पर जान पड़ता है कि ये सब पद्य, किसी चार्वाकाचार्यकी कृति न हो कर, और और विद्वानोंके द्वारा चार्वाक-मत-वर्णन रूपसे वे समय समय पर बने हुए हैं।

इस तरह चार्वाक दर्शनके साहित्यमें प्रस्तुत ग्रन्थका स्थान बडे महत्त्वका है। क्यों कि यह एक ही ग्रन्थ हमें ऐसा उपलब्ध है जो चार्वाक मान्यताका अखण्ड ग्रन्थ कहा जा सकता है।

विषय परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थमें किस किस विषयकी चर्चा है और वह किस प्रकार की गई है इसका संक्षिप्त परिचय प्राप्त करनेके लिए नीचे लिखी बातों पर थोडासा प्रकाश डालना जरूरी है।

(१) ग्रन्थकारका उद्देश्य और उसकी सिद्धिके वास्ते उसके द्वारा अवलंबित मार्ग।

(२) किन किन दर्शनोंके और किन किन आचार्योंके संमत प्रमाणलक्षणोंका खण्डनीय रूपसे निर्देश है।

(३) किन किन दर्शनोंके कौन कौनसे प्रमेयोंका प्रासंगिक खण्डनके वास्ते निर्देश है।

(४) पूर्वकालीन और समकालीन किन किन विद्वानोंकी कृतियोंसे खण्डन-सामग्री ली हुई जान पडती है।

(५) उस खण्डन - सामग्रीका अपने अभिप्रेतकी सिद्धिमें ग्रन्थकारने किस तरह उपयोग किया है।

(१) हम पहले ही कह चुके हैं कि ग्रन्थकारका उद्देश्य, समग्र दर्शनोंकी छोटी बडी सभी मान्यताओंका एकमात्र खण्डन करना है। ग्रन्थकारने यह सोच कर कि सब दर्शनोंके अभिमत समग्र तत्त्वोंका एक एक करके खण्डन करना संभव नहीं; तब यह विचार किया होगा कि ऐसा कौन मार्ग है जिसका सरलतासे अवलम्बन हो सके और जिसके अवलम्बनसे समग्र तत्त्वोंका खण्डन आप-ही-आप सिद्ध हो जाय। इस विचारमेंसे ग्रन्थकारको अपने उद्देश्यकी सिद्धीका एक अमोघ मार्ग सूझ पडा, और वह यह कि अन्य सब बातोंके खण्डनकी ओर मुख्य लक्ष्य न दे कर केवल प्रमाणखण्डन ही किया जाय, जिससे प्रमाणके आधारसे सिद्ध किए जानेवाले अन्य सब तत्त्व या प्रमेय अपने आप ही खण्डित हो सकें। जान पड़ता है ग्रन्थकारके मनमें जब यह निर्णय स्थिर बन गया तब फिर उसने सब दर्शनोंके अभिमत प्रमाणलक्षणोंके खण्डनकी तैयारी की। ग्रन्थके प्रारंभमें ही वह अपने इस भावको स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त करता है। वह सभी प्रमाण-प्रमेयवादी दार्शनिकोंको ललकार कर कहता है[४२] कि – **'आप लोग जो प्रमाण और प्रमेयकी व्यवस्था मानते हैं उसका आधार है प्रमाणका यथार्थ लक्षण। परन्तु विचार करने पर जब कोई प्रमाणका लक्षण ही निर्दोष सिद्ध नहीं होता तब उसके आधार पर बतलाई जानेवाली प्रमाण प्रमेयकी व्यवस्था कैसे मानी जा सकती है?'** ऐसा कह कर, वह फिर एक एक करके प्रमाणलक्षणका क्रमशः खण्डन करना आरंभ करता है। इसी तरह ग्रन्थके अन्तमें भी उसने अपने इस निर्णीत मार्गको दोहराया है और उसकी सफलता भी सूचित की है। उसने स्पष्ट शब्दोंमें कहा

---

४२ *'अथ कथं तानि न सन्ति?। तदुच्यते – सल्लक्षणनिबन्धनं मानव्यवस्थानम्, माननिबन्धना च मेयस्थितिः, तदभावे तयोः सद्व्यवहारविषयत्वं कथम्?........* इत्यादि। तत्त्वोपप्लव, पृ० १.

है कि–'**जब कोई प्रमाणलक्षण ही ठीक नहीं बनता तब सब तत्त्व आप ही आप बाधित या असिद्ध हो जाते हैं। ऐसी दशामें बाधित तत्त्वोंके आधार पर चलाए जानेवाले सब व्यवहार वस्तुतः अविचार रमणीय ही हैं।**' *अर्थात् शास्त्रीय और लौकिक अथवा इहलौकिक और पार-लौकिक*–सब प्रवृत्तियोंकी सुंदरता सिर्फ अविचारहेतुक ही है। विचार करने पर वे सब व्यवहार निराधार सिद्ध होनेके कारण निर्जीव जैसे शोभाहीन हैं। ग्रन्थ-कारने अपने निर्णयके अनुसार यद्यपि दार्शनिकोंके अभिमत प्रमाणलक्षणोंकी ही खण्डनीय रूपसे मीमांसा शुरू की है और उसी पर उसका जोर है; फिर भी वह बीच बीचमें प्रमाणलक्षणोंके अलावा कुछ अन्य प्रमेयोंका भी खण्डन करता है। इस तरह प्रमाणलक्षणोंके खण्डनका ध्येय रखनेवाले इस ग्रन्थमें थोड़ेसे अन्य प्रमेयोंका भी खण्डन मिलता है।

(२) **न्याय, मीमांसा, सांख्य, बौद्ध, वैयाकरण** और **पौराणिक** इन छह दर्शनोंके अभिमत लक्षणोंको, ग्रन्थकारने खण्डनीय रूपसे लिया है। इनमेंसे कुछ लक्षण ऐसे हैं जो प्रमाणसामान्यके हैं और कुछ ऐसे हैं जो विशेष विशेष प्रमाणके हैं। प्रमाणसामान्यके लक्षण सिर्फ **मीमांसा** और **बौद्ध**–इन दो दर्शनोंके लिए गए हैं[४३]। मीमांसासम्मत प्रमाणसामान्यलक्षण जो ग्रन्थकारने लिया है वह **कुमारिल**का माना जाता है, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि वह लक्षण पूर्ववर्ती अन्य मीमांसकोंको भी मान्य रहा होगा। ग्रन्थकारने बौद्ध दर्शनके प्रमाणसामान्य संबंधी दो लक्षण चर्चाके लिए लिए हैं[४४] जो प्रकट रूपसे **धर्म-कीर्ति**के माने जाते हैं, पर जिनका मूल **दिङ्नागके** विचारमें भी अवश्य है।

विशेष प्रमाणोंके लक्षण जो ग्रन्थमें आए हैं वे **न्याय, मीमांसा, सांख्य, बौद्ध, पौराणिक** और **वैयाकरणों**के हैं।

न्याय दर्शनके प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम इन चारों प्रमाणोंके विशेष लक्षण ग्रन्थमें आए हैं[४५] और वे **अक्षपाद**के **न्यायसूत्र**के हैं।

सांख्य दर्शनके विशेष प्रमाणोंमेंसे केवल प्रत्यक्षका ही लक्षण लिया गया है,[४६] जो **ईश्वरकृष्ण**का न हो कर **वार्षगण्य**का है।

---

४३ देखो, पृ० २२ और २७। **४४** देखो, पृ० २७ और २८। **४५** देखो, पृ० २७,५४,११२,११५। **४६** पृ० ६१।

बौद्ध दर्शन प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणोंको ही मानता है।[४७] ग्रन्थकारने उसके दोनों प्रमाणोंके लक्षण चर्चाके वास्ते लिए हैं,[४८] जो – जैसा कि हमने ऊपर कहा है – धर्मकीर्तिके हैं, पर जिनका मूल दिङ्नागके ग्रन्थोंमें भी मिलता है।

मीमांसा दर्शनके प्रसिद्ध आचार्य दो हैं – **कुमारिल और प्रभाकर**। प्रभाकरको पांच प्रमाण इष्ट हैं, पर कुमारिलको छह। प्रस्तुत ग्रन्थमें कुमारिलके छहों प्रमाणोंकी मीमांसा की गई है, और इसमें प्रभाकर संमत पांच प्रमाणोंकी मीमांसा भी समा जाती है।

पौराणिक विद्वान् मीमांसा संमत छह प्रमाणोंके अलावा ऐतिह्य और संभव नामक दो[४९] और प्रमाण मानते हैं – और जिनका निर्देश **अक्षपाद**के सूत्रों तकमें[५०] भी है – वे भी प्रस्तुत ग्रन्थमें लिए गए हैं[५१]।

वैयाकरणोंके अभिमत 'वाचकपद'के लक्षण और 'साधुपद'की उनकी व्याख्याका भी इस ग्रन्थमें खण्डनीय रूपसे निर्देश मिलता है। यह संभवतः **भर्तृहरिके वाक्यपदीय**से लिया गया है[५२]।

(३) यों तो ग्रन्थमें प्रसंगवश अनेक विचारोंकी चर्चा की गई है, जिनका यहां पर सविस्तर वर्णन करना शक्य नहीं है, फिर भी उनमेंसे कुछ विचारों – वस्तुओंका निर्देश करना आवश्यक है, जिससे यह जानना सरल हो जायगा, कि कौन कौनसी वस्तुएँ, अमुक दर्शनको मान्य और अन्य दर्शनोंको अमान्य होनेके कारण, दार्शनिक क्षेत्रमें खण्डन - मण्डनकी विषय बनी हुई हैं, और ग्रन्थकारने दार्शनिकोंके उस पारस्परिक खण्डन - मण्डनकी चर्चासे किस तरह फायदा उठाया है। वे वस्तुएँ ये हैं –

जाति, समवाय, आलम्बन, अतथ्यता, तथ्यता, स्मृतिप्रमोष, सन्निकर्ष, विषयद्वैविध्य, कल्पना, अस्पष्टता, स्पष्टता, सन्तान, हेतुफलभाव, आत्मा, कैवल्य, अनेकान्त, अवयवी, बाह्यार्थविलोप, क्षणभङ्ग, निर्हेतुकविनाश, वर्ण, पद, स्फोट और **अपौरुषेयत्व**।

इनमेंसे 'जाति', 'समवाय', 'सन्निकर्ष', 'अवयवी', आत्माके साथ सुखदुःखादि का संबंध, शब्दका अनित्यत्व, कार्यकारणभाव – आदि ऐसे पदार्थ हैं

---

४७ पृ० ३२, ८३। ४८ पृ० ५८,८२,१०९,११२,११६। ४९ पृ० ११३। ५० न्यायसूत्र—२.२.१. ५१ पृ० ११३। ५२ पृ० १२०।

जिनको **नैयायिक** और **वैशेषिक** मानते हैं, और जिनका समर्थन उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें बहुत बल तथा विस्तारपूर्वक करके विरोधी मतोंके मन्तव्यका खण्डन भी किया है। परन्तु वे ही पदार्थ **सांख्य, बौद्ध, जैन** आदि दर्शनोंको उस रूपमें बिलकुल मान्य नहीं। अतः उन उन दर्शनोंमें इन पदार्थोंका, अति विस्तारके साथ खण्डन किया गया है।

'स्मृतिप्रमोष' मीमांसक **प्रभाकर**की अपनी निजकी मान्यता है, जिसका खण्डन नैयायिक, बौद्ध और जैन विद्वानोंके अतिरिक्त स्वयं महामीमांसक **कुमारिल**के अनुगामियों तकने, खूब विस्तारके साथ किया है।

'अपौरुषेयत्व' यह **मीमांसक** मान्यताकी स्वीय वस्तु होनेसे उस दर्शनमें इसका अति विस्तृत समर्थन किया गया है; पर नैयायिक, बौद्ध, जैन आदि दर्शनोंमें इसका उतने ही विस्तारसे खण्डन पाया जाता है।

'अनेकान्त' **जैन** दर्शनका मुख्य मन्तव्य है जिसका समर्थन सभी जैन तार्किकोंने बडे उत्साहसे किया है; परंतु बौद्ध, नैयायिक, वेदान्त आदि दर्शनोंमें उसका वैसा ही प्रबल खण्डन किया गया है।

'आत्मकैवल्य' जिसका समर्थन **सांख्य** और **वेदान्त** दोनों अपने ढंगसे करते हैं; लेकिन बौद्ध, नैयायिक आदि अन्य सभी दार्शनिक उसका खण्डन करते हैं।

'वर्ण' 'पद' 'स्फोट' आदि शब्दशास्त्र विषयक वस्तुओंका समर्थन जिस ढंगसे वैयाकरणोंने किया है उस ढंगका, तथा कभी कभी उन वस्तुओंका ही, बौद्ध, नैयायिक आदि अन्य तार्किकोंने बल पूर्वक खण्डन किया है।

'क्षणिकत्व', 'संतान', 'विषयद्वित्व', 'स्पष्टता – अस्पष्टता', 'निर्हेतुकविनाश,' 'बाह्यार्थविलोप', 'आलम्बन', 'हेतुफलसंबंध', 'कल्पना', 'तथ्यता – अतथ्यता' आदि पदार्थ ऐसे हैं जिनमेंसे कुछ तो सभी बौद्ध परंपराओंमें, और कुछ किसी किसी परंपरामें, मान्य हो कर जिनका समर्थन बौद्ध विद्वानोंने बडे प्रयाससे किया है; पर नैयायिक, मीमांसक, जैन आदि अन्य दार्शनिकोंने उन्हींका खण्डन करनेमें अपना बडा बौद्धिक पराक्रम दिखलाया है।

(४) यह खण्डनसामग्री, निम्नलिखित दार्शनिक साहित्य परसे ली गई जान पडती है –

न्याय-वैशेषिक दर्शनके साहित्यमेंसे अक्षपादका न्यायसूत्र, वात्स्यायन भाष्य, न्यायवार्तिक, व्योमवती और न्यायमंजरी।

मीमांसक साहित्यके श्लोकवार्तिक और बृहती नामक ग्रंथोंका आश्रय लिया जान पडता है।

बौद्ध साहित्यमेंसे प्रमाणवार्तिक, संबंधपरीक्षा, सामान्यपरीक्षा आदि धर्मकीर्तिके ग्रन्थोंका; तथा प्रज्ञाकर, धर्मोत्तर आदि धर्मकीर्तिके शिष्योंकी की हुई उन ग्रन्थोंकी व्याख्याओंका आश्रय लिया जान पडता है।

व्याकरणशास्त्रीय साहित्यमेंसे वाक्यपदीयका उपयोग किया हुआ जान पडता है।

जैन साहित्यमेंसे पात्रस्वामि या अकलंककी कृतियोंका उपयोग किए जानेका संभव है।

(५) जयराशिने अपने अध्ययन और मननसे, भिन्न भिन्न दार्शनिक, प्रमाणके स्वरूपके विषयमें तथा दूसरे पदार्थोंके विषयमें, क्या क्या मतभेद रखते हैं और वे किन किन मुद्दोंके ऊपर एक दूसरेका किस किस तरह खण्डन करते हैं, यह सब जान कर, उसने उन विरोधी दार्शनिकोंके ग्रन्थोंमेंसे बहुत कुछ खण्डन सामग्री संग्रहीत की और फिर उसके आधार पर किसी एक दर्शनके मन्तव्यका खण्डन, दूसरे विरोधी दर्शनोंकी की हुई युक्तियोंके आधार पर किया; और उसी तरह, फिर अन्तमें दूसरे विरोधी दर्शनोंके मन्तव्योंका खण्डन, पहले विरोधी दर्शनकी दी हुई युक्तियोंसे किया। उदाहरणार्थ – जब नैयायिकोंका खण्डन करना हुआ, तब बहुत करके बौद्ध और मीमांसकके ग्रन्थोंका आश्रय लिया गया, और फिर बौद्ध, और मीमांसक आदिके सामने नैयायिक और जैन आदिको भिडा दिया गया। पुराणोंमें यदुवंशके नाशके बारेमें कथा है कि मद्यपानके नशेमें उन्मत्त हो कर सभी यादव आपसमें एक दूसरेसे लडे और मर मिटे। जयराशिने दार्शनिकोंके मन्तव्योंका यही हाल देखा। वे सभी मन्तव्य दूसरेको पराजित करने और अपनेको विजयी सिद्ध करनेके लिए जल्पकथाके अखाडे पर लड़नेको उतरे हुए थे। जयराशिने दार्शनिकोंके उस जल्पवादमेंसे अपने वितण्डावादका मार्ग बडी सरलतासे निकाल लिया और दार्शनिकोंकी खण्डनसामग्रीसे उन्हींके तत्त्वोंका उपप्लव सिद्ध कर दिया।

यद्यपि जयराशिकी यह पद्धति कोई नई वस्तु नहीं है – अंशरूपमें तो वह सभी मध्यकालीन और अर्वाचीन दर्शन ग्रन्थोंमें विद्यमान है, पर इसमें विशेषत्व यह है कि भट्ट जयराशिकी खण्डनपद्धति सर्वतोमुखी और सर्वव्यापक हो कर निरपेक्ष है।

उपसंहार

यद्यपि यह तत्त्वोपप्लव एक मात्र खण्डनप्रधान ग्रन्थ है, फिर भी इसका और तरहसे भी उपयोग आधुनिक विद्वानोंके लिए कर्तव्य है। उदाहरणार्थ – जो लोग दार्शनिक शब्दोंका कोश या संग्रह करना चाहें और ऐसे प्रत्येक शब्दके संभवित अनेकानेक अर्थ भी खोजना चाहें, उनके लिए यह ग्रन्थ एक बनी बनाई सामग्री है। क्यों कि जयराशिने अपने समय तकके दार्शनिक ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध ऐसे सभी पारिभाषिक दार्शनिक शब्दोंका विशिष्ट ढंगसे प्रयोग किया है और साथ ही साथ 'कल्पना' 'स्मृति' आदि जैसे प्रत्येक शब्दोंके सभी प्रचलित अर्थोंका निदर्शन भी किया है। अतएव यह तत्त्वोपप्लव ग्रन्थ आधुनिक विद्वानोंके वास्ते एक विशिष्ट अध्ययनकी वस्तु है। इस परसे दार्शनिक विचारोंकी तुलना करने तथा उनके ऐतिहासिक क्रमविकासको जाननेके लिए अनेक प्रकारकी बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है।

*

राठोड राव अमरसिंहजी सम्बन्धी दो ऐतिहासिक रचनाएँ।

*

लेखक—श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटा—बीकानेर

जोधपुर नरेश गजसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र राव अमरसिंहजी एक स्वतंत्र प्रकृतिके बडे आत्माभिमानी वीर थे। पिताकी अवकृपाके कारण, उनकी आज्ञानुसार, इन्होंने अपना राज्यके उत्तराधिकारी होनेका हक भी छोड़ दिया था और अपनी वीरतादि सद्गुणोंसे शाही दरबारमें यथेष्ट सन्मान प्राप्त किया था। राज्यसीमा सम्बन्धी बीकानेर राज्यसे लड़ाई होने पर इनकी सेनाका पराजय हुआ। यह बात वीर प्रकृतिके अमरसिंहजीको बहुत ही अखरी। सिलाबत खाँका बीकानेर राज्यकी तरफदारी करना ये सहन नहीं कर सके, और शाही दरबारमें उसके 'गँवार' शब्दके सम्बोधन करनेके साथ ही उसका खात्मा कर डाला और 'राजपूतको रेकारेरी गाल' वाली कहावतको चरितार्थ कर दिया।

अमरसिंहजीकी, इस साहसके कारण, बहुत अधिक प्रसिद्धि हुई। इस घटनाको एवं अमरसिंहजीकी वीरताको मारवाड़में बच्चे बच्चे तक जानते हैं। क्यों कि होली आदिके समय 'अमरसिंहका[1] ख्याल' खेला जाता है और गाँवोंमें विवाहादि प्रसंगों पर अब भी 'अमरसिंहजीका [2]सलोका' बोला जाता है।

इनके सम्बन्धमें ऐतिहासिक सामग्री[3] भी अच्छे परिमाणमें मिलती है। इनकी वीर स्मृतिमें कई कवियोंने राजस्थानी भाषामें गीत बनाये हैं। बीकानेरकी अनूपसंस्कृत लायब्रेरीमें भिन्न भिन्न कवियोंके रचित अमरसिंहजीके करीब २८ गीत हमारे अवलोकनमें आये हैं। उनके अतिरिक्त एक महत्त्वकी ऐतिहासिक कृति **'अमरसिंहजीरी[4] बात'** की दो प्रतियां बीकानेरकी उपर्युक्त लायब्रेरी एवं हमारे संग्रहमें हैं, पर वह कितनी प्राचीन है यह कहा नहीं जा सकता। परन्तु, हमारे संग्रहमें एक गुटकेमें उससे भिन्न एक और **'बात'** मिली है जो घटनाके केवल

---

१ बम्बईके वेंकटेश्वर प्रेससे प्रकाशित।

२ हमारे संग्रहमें इसकी ३-४ प्रतियां हैं।

३ "मआसिरुल् उमरा" एवं जोधपुरके इतिहासमें भी इसका वृत्तांत मिलता है।

४ यह बात प्रस्तुत बातसे बडी है।

४ वर्ष बाद ही जैन यति चंद्रसेनने जोधपुरमें लिखी है। यद्यपि इसके लेखकने स्पष्ट लिख दिया है, कि उसने जैसा सुना वैसा ही लिखा है, पर समसामायिक होनेके कारण उसकी प्रामाणिकता यथेष्ट अधिक है। इस **'बात'**से भी पहलेकी एक और पद्यरचना हमारे संग्रहमें कवि हरदास रचित **अमरबत्तीसी** है, जो घटनाके केवल २ महिने बाद ही बनाई गई है। यह सबसे अधिक महत्त्वकी कृति है। यहां पर ये दोनों रचनाएं प्रकाशित की जाती हैं। आशा है ऐतिहासिक क्षेत्रमें इनके द्वारा कुछ नया प्रकाश[५] मिलेगा।

बत्तीसीकी भाषा विशुद्ध हिन्दी है, और सरल भी है, अतः उसके ऊपर कोई टिप्पनी देना अनावश्यक है। पर **'बात'**की भाषा कुछ पुरानी राजस्थानी, और सो भी एक प्रान्तीय होनेके कारण, उसमें बहुतसे ऐसे प्रान्तीय शब्द हैं जिन्हें अन्य प्रान्तीय विद्वानोंको समझनेमें कठिनता उपस्थित होगी। अतएव **'बात'**के कितनेएक कठिन एवं प्रान्तीय शब्दोंका अर्थ हिन्दीमें टिप्पनी रूपसे दे दिया गया है।

१. राव अमरसिंहजीकी बात

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

महाराजा राव श्रीअमरसिंघजीरी बात लिख्यते।

संवत् १६९० रै वरस, मास वैसाख मांहे, महाराजा श्री गजसिंघजी बाहरवटो[१] दीयो। राजा गजसिंघजी आगरै हुता[२] नै कुमर श्री अमरसिंघजी देशमैं हुंता। राजाजीरा कागल आया। परधान, राठौड़ राजसिंघजी खींमावत हुंतौ, नै कामदार सिंघवी सुखमल पदमावत, नै सिकदार राघवदास सोमावत, ए यानै कागल आया। वांचिनै अमरसिंघजीनुं गुदरायो[३]। अमरसिंघ कागल माथै चढ़ाइ लियो। तिणमैं लिख्यो हुंतो अमरसिंघनुं इतरो देज्यौ। तिणकी विगत–दस हजार रुपइया रोकड़ा, नै पांच घोड़ा खासा, नै एक हाथी।

---

५ ओझाजी लिखित जोधपुरके इतिहास, भा० १ पृ० ४०९, में अमरसिंहको गजसिंह-जीने लाहौर बुलाकर शाहजहांसे परगने दिलवाये लिखा है, पर प्रस्तुत बातसे स्पष्ट है कि महाराजाका इसमें हाथ न था। ये अमरसिंहने स्वयं जा कर प्राप्त किये थे और यही बात स्वाभाविक है।

१ देशनिकाल. २ थे. ३ अरज की.

सो जरै[4] मेड़ताथी हालिया[5] तैर इतरौ दीधौ। इतरौ दे नै राठोड़ राजसिंघ आसोप आयो, नै संघवी योधपुर आयौ। तरै सारा उमराव चाकर लोक इयां साथे आया। तरै अमरसिंघ चिंता करण लागौ। तरै [6]गोढ़े १ पहुकरणौ ब्राह्मण सुंदर हुतौ। सो आगे ही, सोनिगरी अमरसिंघरी सगी मां तिणकौ चाकर हुंतौ। तिण कह्यौ–कुमरजी राजि[7] रूपरी कांई करौ। रावलौ वखत[8] बड़ौ छै। राजि कडी काठी[9] करौ। तरै कुमरजी कहीयौ जौ–सुंदर! इतरै खरच श्री पातिसाहजी आगै पहुंच नहीं सकां, कासुं[10] कड़ी काठी करां। तरै सुंदर बोलियौ–राजि कुमरजी! बहुरांरा खत[11] करिस्यां, नै करज रुप्पईया लेस्यां, नै आज मारवाड़ि माहे रजपूत घणाई[12] छै, खरच देस्यां नै साथे लेस्यां। तरै अमरसिंघजी कह्यौ–अजाइब! ज्युं रूड़ा होइ त्युं करौ। तरै कोरै कागद सही घाति[13] दीवी। पछै सुंदर सूरपरांरै बहुरै[14] आयो। दस हजार रुप्पईय लीया। पछै आंबेर गयो, जाइ नै, दामोदर बहुरौ छै तिण गोढ़ै दस हजार रूपईया लीया। रूपईया हजार ४ कुमर अमरसिंघरी बहू कछवाही तिणरी मा दीया, नै रूपईया हजार तीस रावलै देस माहे फिरिखत[15] किया, नै रूपईया हजार ४ मा सोनगरी दीया। रूपईया हजार ६० री जोड़ि हुई। तरै अमरावांनुं कागल लिखिया जौ–मो गोढ़ै लाहोर पातिसाहजीरै पावां सूधौ[16] खरच थानुं देणनुं घणौई छै। नै पछै पातिसाहजी मुनै जागीर देसी, तरै हुं पिण थांनु देखुं। और घणी मनुहार लिखीजे। और समइयौ[17] छै। इण समइयै आवौ तौ रूड़ां[18]। पछै उमरात्र आया। तिणरी विगति–सोनगिरो जगनाथ, भाखरसीह, सांम, माधोदास, वीरमदे, इयांरै साथ असवार १५० आया। नै असवार ३११ राठोड़ांरा आया। तिणकी विगति–राठोड़ राजसिंघ विसनदासोत, रतन महेसदासोत, परतापसिंघ गोपालदासोत, गोइंददास मानखीमावत, रतन राजसिंघोत, वीठलदास किसनसिंघोत। इतरा उमराव तौ तुरत मेला[19] हुआ। पछै जरै श्री पातिसाहजीरै पावांनुं लाहोरनुं हालीया, तरै मजल री[20] मजल उमराव मेला हुंता गया। जरै लाहोर पधारिया, तरै हजार २॥–३ सै असवार मेला हुआ।

---

४ जब. ५ चले. ६ पास–साथ. ७ आप. ८ भाग्य. ९ कमर बांधो=साहसके साथ तैयार हो जावो. १० कैसे. ११ उधार लेंगे–चिठ्ठी लिख कर. १२ बहुत. १३ लिख दी. १४ बोहरे (धीरधार करनेवाले) के पास. १५ घूम कर उधार लिये. १६ तक. १७ अवसर. १८ अच्छा. १९ इकट्ठे. २० मंजिल.

श्री पातिसाहजी सांभलिनै खुशी हुआ, नै राजा गजसिंघ दिलगीर हुआ। पातिसाहजी पाये लगायौ। उमराव सारा हजूर तेड़ि नै महलो लियौ। पातिसाहजी देखि खुशी हुआ। पछै पड़गना ५ दीया। तिणकी विगत—एक बड़ोद, एक सांगोद, एक अंतरदौ, एक समीधी, एक लाय। रुपइया लाख ४ ऊपजतांरी दीधी। सो वरस ४ लगै राजथान[२१] बड़ोद रहीयौ। पछै संवत् १६९४ रै वरस, जेठ सुदी ३ रा, श्री गजसिंघजी आगरा मांहे देवसूत[२२] हुआ। तिण समइयै कुंवर जसवंतसिंघजी हाडा सत्रसल्लरी बेटी परणण पधारीया, नै अमरसिंघजी मुहिम[२३] था, साहिजादौ साह सूजा साथे। तठा पछै आगरासुं कागल लिखिया। राजा जसवंतसिंहजी बुलायौ। जसवंतसिंघजी दिन १० सूं आगरै आयौ। सखरौ महुरत जोइनै श्री पातिसाहजी साहिजहां टीको दीयौ। राव अमरसिंघजीनुं नागोरकौ हुकम दीयौ। हजूर अमरसिंघजीरौ उकील थौ मुगटमणि, तिण तसलीम[२४] करि परमाण करि लीयौ। तिण वखत सोनगिगै जगनाथ मानसिंघोतरौ पिण हजूर[२५] थौ, तिणनुं पातिसाहजी घोड़ौ सिरपाव देनै अमरसिंघजी गोढ़ै हलायौ, सो हालियौ। पछै बड़ोदथी कामदार संघवी सीहमल भैरवरौ श्री पातिसाहजीरैं पावांनु हालियौ। आगरै पहुतां। श्री पातिसाहजी पावे लगायौ। लागत समौ[२६] नागोर डगणीसां[२७]पदीयांसूं दीधौ। नागोर देनै पातिसाहजी सीख दीनी। बडोद आइनै सागी वसी ले नै, नागोर आइनै, अमल[२८] कीयौ। संवत् १६९५ रै वरस मास कातीरैं आया। देस नीपनौ[२९]। सोहर रहीया। तरा[३०] पछै रावजी साहजादारैं साथै हुंता सो सीख ले नै नागोर पधारिया। संवत् १६९६ रैं वरस माहे। वरस १ नागोर रह्या। मोहलाइत[३१] मंडाइ[३२] नै पातिसाहजी रैं पावांनुं[३३] हालीया। पातिसाहजी पाए लगाया। पछै काबिलरी मुहम दीधी। सो मुहमनुं हालिया। तद पछै संवत् १६९९ रइ वरस, मास काती वदि ११, दीवाली पहिला नागोर नै बीकानेररै साथ, माहो[३४] माहे भोपत राठोड़ नै लिखमी दासोतरै, गामरी सीम[३५]वेई[३६] लड़ाई हुई। राजा करण ब्रहानपुर हुंता, नै रावजी काबिलरी मुहिम था। वेढ़[३७] देस माहे

---

२१ राजधानी. २२ देवलोक. २३ चढ़ाईपर. २४ सलाम. २५ उपस्थित—दरबारमें. २६ लगनेके साथ—समय. २७ सिक्के. २८ अधिकार. २९ अच्छी पैदावारी हुई. ३० उसके बाद. ३१ महल. ३२ बनवाकर. ३३ पदवंदन. ३४ आपसमें—परस्पर. ३५ सीमा (के लिये). ३६ वास्ते. ३७ लड़ाई.

हुई । नागोररी कानी[38] संघवी, सीहमल कामदार मुखी[39] थौ, नै बीकानैरकी कानी, कामदार मुंहतौ रामचंद मुखी थौ। तिण मामला माहे रावजीका उमराव काम[40] आया तिणरी विगति—१५ राठौड़ गोइंददास खीमावतरा । १० राठौड़ विहारीदासरा मानखीमावतरा । ९ सोनिगरौ जगनाथ जसवंत मानसिंघोतरौ । राठौड १४ करण भोपतोतरौ । देवड़ा २ गोइंददासरा बेटा । ऊहड़ उरजन । ५ राठोड़ कल्याणदास मोटाराजारौ पोतो । ३ सेखो दुजनसलौत । ११ राठौड़ साहिबखां भोपतोत । १० केसरीसिंघ नरसिंघदासोत । ३ राठौड़ नरहरदास आसोपसुं सखाइत मेल्हियो हुंतौ । ५ राठौड़ गोकलराम सुजाणसिंघ आसकरणोतरो । ५ राठौड़ खेतसिंह जैमलोत । ५ राठौड़ भगवानदास दयालदासौत । १ राठौड़ प्रियागदास बालौत । १ कछवाहो मुकंददास माधौदासोत । १ बारहट चांदौजी । १ धाभाई कल्याणदास नरसिंघदासौत । छोटा रजपूत काम आया । आदमी २ घाइल उपाडीया[41] तिणरी विगति—एक राठौड़ गोकलदास मनोहरदास भाणौतरो । एक कछवाहो मनोहरदास माधोदासोतरो । ए ११२ आदमिये रिण मेलीयौ[42] । आदमी हजार ५ माहे मेलीयो, वेढ़ कीधी । तिणै राजा करणरा आदमी ११४ सिरदार वीदा कांधिल राठोड । एता ठौड[43] रहिया, मुआं, नै आदमी ५०० नै लोह[44] पहुंचायौ । सौ घाइल किया । पूठीरखो सं० सीहमल हुंतौ । तिण गोढ़ै आदमी हजार २॥ अढ़ी ३ तीन चढ़ीयौ पालौ[45] हुंतौ। सो ले नै नीसरीयौ[46] । तठै सीहमलरो नागोररा साथरो पूणो[47] हुओ, नै खेत बीकानेरियांरै हाथ आयो ।

तद पछै संवत् १७०१ रा श्रावण सुदि २ राति घडी ३ गयां, सहर आगरा मांहे साहिजादा दारा सुंकरी हवेली श्री पातिसाहजीरी हजूर गोसैलखाना मांहे, राव श्री अमरसिंघजी नै खुरसांणी सिलावति खानजी माहोमाहि बोलचाल हुई । तिण ऊपरि मामलो[49] हुयौ । तठारी[50] हकीकत आगै कहिसी ।

हिवै जिण बात ऊपरि मामलौ हुयौ छै सो बात कहै छै—संवत् १६९९ वरस, मास काती वदी ११ रै दिन नागौररै साथ नै बीकानेरै साथ

३८ तरफ. ३९ मुखिया—प्रमुख. ४० मारे गये. ४१ उठाकर ले गये. ४२ मारे गये. ४३ मारे गये. ४४ शस्त्र लगे. ४५ पैदल. ४६ निकला. ४७ नीचा देखना पड़ा—हार. ४८ दरबारके पासका खास कमरा. ४९ विशेष घटना. ५० वहांकी.

माह्योमाहे सीमवेई लडाई हुई, तदै नागोररै सायरौ पूणौ हुयौ थौ, नै खेत बीकानेरीयांरै हाथ आयौ थौ। तिण समइयै राव श्री अमरसिंघजी काबिलरी मुहिम था। पछै नागोर पधारीया। वेढ़री हकीकत पूछी। सीहमलसूं रीसाणौ। पिण पछै कहीयौ सीहमल थारौ[51] दोस कियौ। श्रीदामोदरजी करै सखरौ[52]। आपणौ सारौ[53] कियौ। नागोर माहे रहीया वरस १ लगैं[54]। पछै श्री पातिसाहजी खुवाजेजीकी[55] पावे आया। सहर अजमेर पधारीया। तरै रावजी पिण आपरौ सारो ही साथ ले नै पातिसाहजीरैं पावे आया। साथे कुंअर रायसिंघ पिण साथै लीयौ। श्री पातिसाहजीरैं पाये लगाया। तरइ[56] पातिसाहजी कुंअर रायसिंघजीनु[57] परगनौ मसूदो जागीर दीयो। सो मसूदौ राठौड झुझारसिंघनुं पडगनौ दीयौ। झुझारसिंघजी रावजीकै वास[58] रहीया। अजमेरमें दिन ४ रह्या। पछै आगरानै चढ़ीया। तरै श्री रावजीनैं घरारी[59] विदा देता हुंता हुकम कीयौ — रावजी तुम नागोर जाओ। हम बुलावां तरै सामां[60] करिकै तुम आइयौ। इतरै सिलावति खान बोलीयौ — 'रावजी तुमारे सिर पातिसाही मसादतिके पईसे हैं। लाख २ दुइ रुपइये हैं, सो हजरति हुकम करते हैं ज[61] अजमेर मीर साह अलीकुं पहुंचायुं'। तरै रावजी अरज की — 'हजरत सीलामति! हुं बेखरच[62] छुं। पईसा मुनें[63] नहीं जुडै[64]। हुं श्री हजरतिरै पावे रहिस।' तरै साहिजादै पातिसाहजीसुं कही — 'हजरति सलामति रावसुं कहावौ ज खूब[65] तुम आओ। तरै रावजी श्री पातिसाहजी साहिजादा साथे हुआ। आगरै पहुंता। मास ४ पछै हवेली[66] १ बड़ा आजम खांनजीरी पातिसाहजी बगसी। तिण रौ नाम नवमहलो छै तिणमें रहीयां। रहत समा व्यास गिरधर गांगावत देहरीसरी[67] थौ, तिणसुं ठाकुर बेई रीसाणां। जातिरा पहुकरणौ। तरै व्यास गिरधर नै ठाकुरसी वास[68] छोड़िनै श्री जगनाथजी फरसण[69] गया। तद पछै सहर आगरै दिन १ साहिजादौ दारा सुकर हाथीनैं लड़ावतौ हुंतौ तिणरा नाम दीया — हेकणरौ[70] नाम सवालखौ, बीजारो नाम बीकानैरौ। पछै जिको भाजै[71] तिणनुं कहै जु राव मागौ। तिकी वात श्री रावजी सुणी, पिण पातिसाहजीनै कहि सकी नहीं।

---

५१ तुम्हारा. ५२ अच्छा. ५३ वश. ५४ तक. ५५ ख्वाजा पीर. ५६ तब. ५७ को. ५८ पास. ५९ घर जानेकी. ६० तैयारी करके. ६१ कि. ६२ बिनाद्रव्य — द्रव्यहीन. ६३ मुझे. ६४ दे सकना. ६५ अच्छा. ६६ बड़ा मकान. ६७ पूजारी. ६८ निवास. ६९ यात्रा — तीर्थका स्पर्श करने. ७० एकका. ७१ भगे.

मनमें ही ज जांणि रहीयौ । एक दिन दरबार गया था । अवसर देखि नै हजरति नुं गुदराई — 'हजरति हुं बीकानेरसुं लड़ाई करूंगा ।' तैर पातिसाहजी बोलीया — 'राव तुं लड़ाई मति करै । बीकानेरवाला करण घरि[७२] नांही ।' तैरे फिरि अरज कीनी — 'हजरत माहरो साथ[७३] नै करणरौ साथ लड़ाई करिसी । हूं नहीं जाऊं ।' तैरे साहिजादै कह्यौ जे — 'हजरत हुकम दौ तौ साथ भेजै अरु आप न जायै ।' तब कह्यौ पूछ । तैरे पातिसाहजीरौ हुकम ले नै मुजरौ करि नै हवेली आयौ । पछै सारा उमराव तेड़ाया[७४] । बड़ा बड़ा उमराव हजूर बुलाया । तिणांनु सारी बात लड़ाईरी की । सारो ही बंधेज[७५] कीयौ, जौ इण भांति लड़ाई कीज्यौ। बाहरलै[७६] दीवाण[७७] बैसि[७८] नै सारा उमरावां नै दिलासा दे नै नागोरनुं विदा कीयां नै वेढ़री घणी भलावण दीन्हीं । सीख दे नै कह्यौ, जे लड़ाई करि नै मुनै समाचार देज्यो । यांहरै समाचार आये हुं हजरतिरै पावे जास्युं । साथ नै विदा दीधी । इतैरे आपरै साथल[७९] आरियौ[८०] हुओ, तिणरौ पिण मिस हुओ, नै लड़ाईरइ समाचार वासते पिण ढील कीधी । दिन २४ सूधा मुजरै गया नहीं । इतैरे व्यास गिरधर ठाकुरसीह श्री जगन्नाथ राय फरसि सगला तीरथ करि नै मुथराजी आया सांभलिया । सांभलतसमा[८१] कागल लिखि नै आपरैा खवास मेल्हियौ,[८२] जे व्यासजी थे बेगा पधारौ । पछै गिरधर ठाकुरसी आया । आप पावडा[८३] १० साम्हा[८४] जाइ नै मिलि नै घणी मनुहार करि; परिदख्यणा दे नै कह्यौ — 'व्यासजी मुनै चूक[८५] पड़ी ।' इतरौ कहि नै साथे ले नै हवेली पधारीया । दिन २ — ३ पछै व्यास गिरधर कह्यौ — 'महाराज ! दरबार पधारीयां बहुत दिन हुआ छै । महाराज दरबार पधारीजै ।' तैर रावजी कह्यौ — 'अजाइब व्यासजी सांझरै मुजैर जास्यां ।' सांझ हुई तैर सगला ठाकुर तयार हुइ आया । हाथी रै चहबचौ[८६] आइ हाजर हुआ । जिसै रावजी हौदै बैठा, तिसड़ै छींक हुई । तैरे व्यास गिरधर कह्यौ — 'महाराज ! आज छींक हुअै छै, महाराज न पधारीजै ।' तैरे रावजी बोलिया जौ — 'व्यासजी आपांनै मुजैरे गयां दिन २७ हुआ छै । आज सही[८७] जास्यां । फेर मति कहौ ।' तितैरे पलकी छींक बोलावी[८८] नै श्री पातिसाहजीरै मुजैरे पधारीया । साथै

---

७२ घरपर. ७३ सेना. ७४ बुलाये. ७५ नियम बनाना — प्रबंध. ७६ बाहरके. ७७ दीवान खानेमें. ७८ बैठ कर. ७९ जंघा. ८० फोडा. ८१ सुननेके साथ ही. ८२ भेजा. ८३ पैर. ८४ संमुख. ८५ भूल की. ८६ हौदा. ८७ अवश्य. ८८ दोष निवारण कर.

ठाकुर लोग उमराव १४ हुआ। सागरद[८९] पैसौ आदमी ४० हुआ। आप दरबार पधारीया। गोसलखाना माहे गया। साथै खवास १ पैथड़, २ भोजराज; बिण कन्है[९०] तरवारि नै पानां रौ डबौ हुंतौ। सो गोसलखाना बाहर ऊभौ हुंतौ नै श्री रावजी माहे पधारीया। तठै इतरा उमराव पातिसाही श्री पातिसाहजी गोढ़ै हुंता हजूर, तठै श्री रावजी पिण जाइ ऊभा रहिया। तिणां उमरावांरी विगति — सैद खांनजहां १, सिलावति खां २, इसलाम खां ३, इसालति खां ४, सैद सिलार खां ५, खलील खां ६, मीर खां ७, गौड़ उरजन ८, गौड़ गिरधरदास ९, राठोड़ रामसिंघ करमसेणोत १०, मलूकचंद कायथ गुरजरदारांरौ बगसी ११ — इतरा उमराव गोसलखांना मांहे उभा था। तठै रावजी पिण ऊभा रह्या। तरै सिलावति खां - कुली दीवांण छै, सो बोलियो — 'रावजी! तुम बहुत दिनांहुं मुजरे आये हौ। कुछ हजरतिकुं नजर ल्यायै हौ, और तुम बुरी की है जौ च्यार[९१] चौकी हुई आयां। तुम्हारा गैर मुजरा हुआ है'। तरै रावजी कह्यौ जौ — 'मेरे डील अजार[९२] था, तिस वासतै मै मुजरै नाया। मेरी जंघति णारू[९३] हुआ या।' तरै फिर सलाबति खां बोलीयौ — 'रावजी तुम बीकानेरकी लड़ाईकी खबरिकै वासतै आये नहीं। काहेकुं अरिया का मिस करौ। रावजी पहिली तौ तुमारा साथ भागा था नै भी[९४] भागैगा।' तरै रावजी बोलिया — 'मकड़ा[९५] मुह संभालि बोलि।' तरै सिलाबति खांन कह्या — 'क्या संभालि बोलूं। अब कछु नजर ल्याए हौ तौ देहु, जुं हजरतिकै नजरि करै।' तरै रावजी बोलिया जे — 'सलाबति खांनजी, म्हानुं पिण श्री पातिसाहजी उलखै[९६] पालखै छै। हूंइ जाइ नजर करि पाये लागिस्यां।' तरै सिलाबत खांन गोसलखांनासुं बाहिरलै दीवांण आया। तरै रावजी नव ९ महुर ले नजर करि पाये लागा। पावे लागि नै आपरे ठामि ऊभा रह्या। इतरै सलाबति खां बाहरथी आय नै पातसाहजी हजूर गयो। जाइ नै पछै आपरी ठोड़[९७] आइ ऊभो रह्यो। तरै बोलीयौ — 'रावजी तुमकुं श्री पातिसाहजी हुकम करते हैं, जौ परगनो बड़ोद गैरहाजिरीमें तागी[९८] रहे, तुम अपनी जायगा छोड़ि, गैरहाजरीमै खड़े रहौ।' इतरौ कहतौ नै पातिसाहजी हजूर गयौ। जाइ नै कान माहे कांइक

---

८९ साथी. ९० पास. ९१ अभाव — बिलम्ब. ९२ तकलीफ. ९३ फोडा. ९४ अब भी — और फिर. ९५ बंदर — तुच्छ सम्बोधन. ९६ जानते पहिचानते हैं. ९७ स्थान. ९८ जब्त करना — ले लेना.

बात करि नै बाहिरलै दीवाण आयौ । पलक १ ऊभौ रहि नै पातिसाहजी हजूर गयौ, साहिजादौ दारा शुक्रसुं बात करि नै आपरी ठौड़ आइ ऊभौ रह्यौ । तितरै श्री रावजी जाणियौ जे – म्हारी बुरी कीन छै, नै मोसुं चूक न छै । इतरौ मन माहे रावजी जाणि रह्या । तितैर रावजी बोलीया – 'स्याबास वाह २ नबाबजी, श्री पातिसाहजी आगै म्हारो मुजरौ भलौ कीयौ ।' तितरै सलाबति खां बोलियौ जे – 'रावजी मैं तो तुम्हारा मुजरा कीया, तुम काहेकुं बुरा मानौ ।' तितरै रावजी बोलिया जे – 'भले खबर पड़सी ।' तरै सलाबति खांन बोलियौ जे – 'क्या खबर पड़ेगी । बीकानेर तौ खबरि पड़ी । क्या रावजी गमारी[99] करौ ।' इतरै सांभलत समौ रावजी कटारी काढि नै सलाबति खांननुं [100]वाँहि, सो पहुंचा सूधी पेटमें गई । वाहत समौ इतरौ कह्यौ जे – 'सलाबति खांन, तु नै बीकानैररी थेली आवै छै नै म्हारी थेली ऊँ[101] छै ।' पाछी कटार काढि नै चालसूं पूछतौ हुंतौ । तितरै श्री पातिसाहजी दीठी । देखि नै कह्यौ – 'अमरसिंघ ! अब तुम्ह घाए । तुमारी मरदानगी तुम्ह देखाई । भला अब तुम्ह कटारी म्यान करि नै तुम डेरे जायौ ।' बीजी बेळा वले[102] कह्यौ – 'डेरे जा ! ।' तरै पातिसाहजी नै साहिजादो बेऊं उठिया । तरै कह्यौ – 'तुं अपनै साथ मैं जा ।' तितरै वागारी[103] चाल [104]पाखती [105]खसोलि नै नीसरीयो, तितरै माहे साहिजादै दारा शुकरै कह्यौ – 'हजरत सलामति, अमरसिंघ – हिंदू काफर, बहुत खून कीया जाता है । दूमका[106] पातिसाह सुनैगा तब कहैगा पातिसाह साहिजहां आगै ऐसा उमराव कोई न था जो अमरसिंघकुं मारि लै ।' तरै पातिसाहजी हुकम कीयौ जे – 'न जांण पावै । अमरसिंघकुं मारि ल्यौ' । इतरै खुरासांणी खलील खां तरवारि काढ़ि दौड़ीयौ । तिण वासासुं[107] पाखती रुखो घाव कीयौ, सो खँवानुं[108] खालिमौ[109] लागौ । इतरै रावजी चेतीया । जिसड़ै रावजी खलील खां दिसां[110] दौड़िया, तितरै खलील खां आंखुड़ि[111] पड़ीयौ, तितरै रावजी हसिया । रावजी नै खलील खां आगै ही ज सुँखे[112] थौ, तिण वासतै रावजी टलैती[113] की । पछै साहिजादै गौड़ उरजन नै हुकम कीयौ जै – 'क्या देखै है, मारि लै ।'

---

९९ गँवार – तुच्छ सम्बोधन. १०० चलाइ – फेंकी. १०१ यह. १०२ फिर. १०३ पहरनेका लम्बा जुगा जो मारवाडमें विशेष प्रचलित हैं. १०४ अंदर. १०५ डालकर. १०६ हम. १०७ पीछेसे. १०८ खंधे के खाख – बगल. १०९ मै. ११० तरफ – ओर. १११ किसीसे अडकर गिरपडना – ठोकर खाकर. ११२ मेल. ११३ टाल देना – छोड देना.

२.१.६.

तरै गौड़ बीठलदासरौ बेटौ उरजण मुंहडै आयौ। तरै उरजण विचारीयौ – अमरसिंघरे मुंढै आइ नै बतलावण सरीखौ नही। तरै उरजण कहियौ जे – 'रावजी, राजि म्हांरै ठाकुर छौ, वडा सगा छौ। न करै महाराज केसौरांईजी[114] जें[115] म्हे रावजीनै बुरौ तकां।' तरै रावजी जाणीयौ – मो ऊपरि आइ नै मोनै इतरौ कहै छै, नै मोसुं टल्ती की छै, तो मोनै वासांसुं घाव नहीं करै। इतरौ रावजी मनमें सोचि नै चालीयौ, तितरै गौड़ उरजण वासांसुं आइ कड़िरौ झटकौ कीयौ, तिणसूं रावजी पड़ीया। पड़तसमा रावजीरै हाथ कटारी हुंती सो छूटी वाही। सो उरजणरै कान लागि नै गिरियै[116] लागी। रावजी पड़त समा भोजराज पैथड़ खवास हुतौ तिणनै सैन की जे – 'जाइनै बाहिरलै साथनुं खबरि दै।' भोजराज बाहिरलै साथनै खबरि दी नहीं, नासिनै हवेली गयो। तितरै रावजीनुं गुरजर बरदारां आइनै गुरजांसूं[117] पूरौ[118] कीयौ। रावजीनुं मारि नै उरजण पातिसाहजीरै पावे लागौ। झांखीरै मुजरै गयौ जे – 'हजरति सलामति अमरसिंघ मारा है।' तरै पातिसाह हुकम कीयौ जे – 'जाउ लोथ[119] ले नै अमरसिंघकै लोक रजपूत खड़े है उसकुं ले जाइ सौंपौ, ज्युं जलावै।' लोथ झोली घालि नै मीरखां तुजकी, मलूकचंद बगसी – गुरजर बरदारांरो, तिके ले नै बाहिर आया। आइ नै कह्यौ जे – 'रावजी तुमारा ल्यौ।' इतरै मसालची[120] आइ, मसाल ले लोथ ऊपरि हाजर की। इतरै गोकलदास आए, भाटी हरनाथ आए, हाजर हुआ। इयां कहीयौ जे – 'थे लोथ मेल्हि[121] नै अलगा हौ ज्युं म्हे म्हारा रावजी संभालां'। [122]उवै मेलि नै अल्गा हुआ तितरै[123] गोकलदास मीरखानुं झटको[124] कीयौ नै मलूकचंद नुं हरनाथ झटकौ कीयौ। गोकलदास उठै[125] ही ज ऊभौ रह्यौ,[126] नै हरनाथ माहे गयौ। इतरा माहे सोर हुओ। तरै पौलि जड़ी। सोर सांभलि नै पातिसाहजी माहे बैठां हूंलों[127] की जे – 'रजपूतांकुं मारि ल्यौ। न जांणि पावै।' तठै मामलो हुओ।

तिण मामला माहे रावजीरा रजपूत काम आया। तिणरी विगति – संवत् १७०१ रा, श्रावण सुदि २, राति घड़ी ३ तीन गयां, सहर आगरारा

---

११४ भगवान. ११५ जो. ११६ पैरोंमें – गोडेके नीचेका हिस्सा. ११७ शस्त्र विशेष. ११८ मार डाला. ११९ शव. १२० जलती चिराग रखनेवाला. १२१ रखकर. १२२ वे. १२३ तब – उतने ही में. १२४ वार करना. १२५ वहां ही. १२६ और. १२७ जोरसे बोले.

कोट माहे साहिजादा दारा शुकररी हवेली श्री पातिसाहजी हजूरि गोसलखानां माहे तठारी हकीकति। तरै झिरमिर मेह वरसतौ हुंतौ। राव श्री अमरसिंहरे हाथ रहियाँ[128] तिणरी विगति—सिलाबति खां कुली दीवांण पंच हजारी हुंतौ। सैद सिलार नै कटारि वाही सुणि छै, पणि पूरी खबरि नाहीं। गुरज बरदार नै गौड उरजनरै कांन नकुसांन छइ। तथा लोथ ऊपरि मामलो हुओ, तटै काम आया तिणकी विगति—स्यामसिंघ कान्ह खीमावतरौ १, राठौड़ गोकलदास मणोहरदास भाणाउतरौ २, भाटी हरनाथ जगनाथ जोगीदासोतरौ ३, राठौड़ जगनाथ भीमसादूलारौ ४, राठौड़ केसरीसिंघ गोवरधन जगनाथोतरौ ५, राठौड़ दुवारकादास मनोहरदास करमसीयोत ६, भाटी अमरौ भाखरसीयोत ७, राठोड़ देइदास भगवानदासोत करमसीयोत ८, भाटी बल्लू केसोदासोत ९, चहुआंण गोइंददास रामसिंघ खीमावतरौ १०, चहुआण हरीदास कचरावत ११, राठौड़ महुकमसिंघ जगतसिंघ रामदासोत १२, लोहड़ै पड़ीयौ थौ उपाड़ियौ सो जीवियो। ए १२ लड़िया। सोनगिरो भाखरसीह जसवंतोत नीसे[129]-रीयौ। इणां इतरा पातिसाही उमराव नान्हा मोटा मारिया तिणरी विगति—मीरखां तुजकी तीन हजारी १, मलूकचंद बगसी पंच सदी २, सोलै मुनसपदार हजारी, तथा सदी मारिया, गुरज बरदार १९ पड़दार तथा चाकर लोक मारीया आदमी ३६ पातिसाही। आदमी १२ रावजीरा; नै रावजी सिलाबति खां। सारा ही उमराव हिंदू तुरक नदी माहि वहा दीया। पाछली रातिरै साहिजादो उठीयौ तरै हुकम कीयौ—बालीयो को नहीं, नै घोरै[130] पणि किणाही नै दीन्हीं नहीं। पछै परभात हुयौ। तरै राठोड़ बल्लू, राठोड़ भावसिंघ, व्यास गिरधर, पंचोली महेसदास,—राजा जैसिंघरौ बगसी, इयां[131] मिलि रावजीरी बहुआंनै जमना नदी उपरि सती कीधी।

तितरै सारा उमराव पातिसाहीमै हुंता अमरसिंघजीरा मिलापी हुंता, बोलैवण[132] आया। साथ घणौ मेलौ हुओ। गौड़ उरजण सुणीयौ, रावजीरी हवेली माहे साथ मेलौ हुवै छै। तितरै उरजण बीहतै[133] थकै, जाइनै श्री पातिसाहिजी आगइ झुठौ कह्यौ—'हजरत सलामति, राठौड़ सारा अमरसिंघ की हवेली मेला हुवै छै, नै कह्यौ छइ, म्हे गौड उरजणनुं मारस्यां।' तरै

---

१२८ मारे गये. १२९ भाग निकला. १३० कबर. १३१ इन्होंने. १३२ मरनेके बाद सहानुभूति प्रदर्शित करनेको जाना. १३३ भयभीत होकर.

पातिसाह सांभलिनै कोप कीयौ, नै कह्यौ जे—मैं गुदस्त करता हुं, नै इहु हिंदु, हरामखोर जोर करते हैं। तौ जाइकै हसम[134] लूटौ अरु जोर करै तौ मारिल्यौ।' तरै सैद खानजहांनु बिदा कीयौ। सैद खानजहा १२ हजारी घोडीसुं हवेली ऊपरि आयौ। तठै रावजीरौ साथ हसम ऊपरि हवेली ऊपरि तीसरै पहुररौ काम आयौ। तठारा मामलारी हकीकति। वैढमै काम आया तिणरी विगति—संवत् १७०१ रा श्रावण सुदी ३ तीसरै पहर वेढ हुई। राठौड़ बलू गोपालदासोत आदमी ७ काम आयौ १। राठौड़ भावसिंघ कान्ह खीमावतरौ आदमी ९ सूं काम आयौ २। व्यास गिरधर गांगावत देहरासरी काम आयौ। राठौड़ भानीदास करणभोपत्योतरो काम आयो। सोनिगरौ भाखरसी हजूरसूं नीसरीयौ हुंतौ सो काम आयौ। राठोड़ हरनाथ सुंदरदास रामसिंघोतरौ आदमी तीन ३ सूं काम आयौ। सोनिगरौ भोजराज जगनाथ जसवंत मानसिंघोतरौ आदमी ६ सूं काम आयौ। चाकर हाडा सत्रसल्लरौ हुंतौ राठौड़ मेड़तियौ नरहरदास रायसिंघोतरो काम आयो। राठौड़ रिणछोड़ हरीदासोतरौ काम आयौ। महाराजा मोटाराजारौ पोत्रो। मुकंददास महासिंघोतरौ आदमी ६ सूं काम आयौ। राठौड़ सुंदरसेण सुंदरदासोतरौ आदमी ६ सूं काम आयौ। साहजादारौ चाकर हुंतौ पिण बलूजीनै मिलण आयौ थौ, भाटी हरदास काम आयौ। राठौड़ महेस नेतावत काम आयौ। चहुआंण जोगीदास रामोत काम आयौ। सोढो वीरमदे काम आयौ। सोहड़ जसवंत सादावत काम आयौ। चहुआंण तिलोकसी काम आयौ। राठौड़ वेलो मांडणोत काम आयौ। सांखुलौ खंगार काम आयौ। राठौड़ माधोदास कलावत काम आयौ। बछावत मुंहतौ जोधौ काम आयौ। वैद मुंहतौ जीवण काम आयौ। भाटी देदौ काम आयौ। दफतर वंध रामदासियौ काम आयौ। तुरक अजीज जातिरौ थईम छौ, काम आयौ। चौकीदार ७ इंदा तुरक काम आया। भली भांति मूआ। आदमी ६४ काम आया, नै राठौड़ वाघ राजसिंघ विसनदासोत नीसरीया। इयांरौ पातिसाही माहे पूंणौ घणौ हुयौ। चौसटे आदमीए पातिसाही आदमी मारिया तिणकी विगति—आदमी २५० ठोड़ रह्या। आदमी १०० घाइल कीया। तिण अढाईसौ माहे तीन ३ सिरदार—सैद बीजलीखान तीन हजारी खेत[135] रह्यौ, वेहूं सिरदार दो दो हजारी ठोड़ राखिया। एकसौ सैतालीस १४७ मुनसपदार हजारी तथा सदी

---

१३४ सामान. १३५ मारा गया.

करि नै। एक सौ १०० पयादौ चाकर लोक घाइल हुवौ। झोली घालि नै ले गया। उठै राठोड़ांरी हथवाह[१३६] सखरी हुई, जे पातिसाही आराबौ[१३७] मेहमै छूट सकियौ नहीं। तरै आडै[१३८] लोह आया। आडै लोह वाजतां रजपूतांरी हथवाह सखरी हुई। राठोड़ा माहे बलू भावसिंघ बड़ा सामंत हुआ। श्री पातिसाहजी बखांणीया। श्री रावजीरी बहू सती हुई, तिणरी विगति—सती ७ सात आगरै हुई। तिणरी विगति—बहू १ आहड़ी वांसवालारी, १ बहू सेखावत खड़ोलारी, रावजीरी खवासियां ५। सती ७ नागोर हुई; तिणरी विगति—भाटियांणी १ बींझवाडियारी, जाड़ेची १ राजकोटरी, आहड़ी १ डुंगरपुररी, च्यारी खवासि; तिणमेंई एक बहूरी, नै तीन श्री रावजीरी खवासि। सती २ उदैपुर हुई। बहू पीहर हुंती, बहू सीसोदणी, खवासि १ बहूरी सुणी छै पणि खबरि न छै। सती १६ हुई। जिसड़ौ मामलो सुणियौ छै तिसड़ौ लिखियौ छै। आगली श्री परमेसर जाणइ।

नीसरिया तिणरी विगति—मेड़तीयो वाघ नीसरियो। जैतावत रामसिंघ भोपत्योत नीसरियो। राठौड़ चांदो नगावत नीसरियो। रूपौ मुकंददास भगवानदास खेतसीयोतरौ। ए नीसरिया।

*

संवत् १७०६ रा श्रावण सुदि १४ दिने पं० चंद्रसेन लिखितं श्री योधपुर मध्ये शुभ दिने लिखितं॥

कवित्त दौढ़ौ—

धाराली घड़हड़इ असुर घृत होमै अमर,
सहस खार संपजै यमन यग करै उजागर।
बलि बलि थाट बेगाल घाट भाजै उघट्टै,
पड़ि पड़ि मीर पतंग अणी दीवै आवट्टै।
गात तखत लगि गोखिड़े पमड़ पयोखिति,
हंसगौ किसन हजूर जोति मिलीसु इजति।
धड़ चढ़ै दिलीचै धमलहर चित हरिचै मंदिर चढ़ै।
आउर भणै प्रभुराज अमर असपति जा जा उहडै॥ १॥

॥ अमरसिंघ गजसिंघोतरो कवित्त ॥

*

---

१३६ हाथापाइ. १३७ तोपखाना. १३८ शस्त्रोंसे सामना करना.

२. कवि हरिदास कृत—अमरबत्तीसी।

*

प्रथम मनाइ देवी सारदकी सेव करूँ,
दूसरै गणेस देव पाइ नाइ सीस जू।
ह री दा स आंन कबिराइकै पासाइ बंधि,
आखर उकति जैसी बदतु कबीस जू।
साहि दरबारि महाराजा ग ज सिं ह तनै,
कीयौ गजगाह क म ध ज न कै ईस जू।
ताको जस जोर कछु मेरी मतिसारू कहुँ,
अमरबत्तीसी के सवईया छत्तीस जू॥ १

कहते अनादि लौ असुर सुर आदि बैर,
किये एक मेक मेलि कद्रू जुग कारमै।
गाढ़े गाढ़े राव रान खान सुरितान गढ़े,
जोरै कर सेव करै सा हि द र बा र मै।
कहै ह री दा स कबि बरष अव्यासी बीचि,
उकव्यो न काट कवइ पीढी तीन च्यार मै।
पावै न प्रपंच के बिरंचिके लिखै को रंच,
अैसौ कौन आहि कछु मेटै होनहारमै॥ २

दिली कै तखत बर जीति चक च्यारि धर,
बरस पचास तप्यो अ क ब र साहि जू।
बरस बाईस पु र जु ग नि की पतिसाही,
साहि जां ह गी र गयौ तैसी ही निबाहि जू।
हरीदास तीजी पतिसाहि सा हि ज हां बैटै,
षोडस बरस षट मास भये ताहि जू।
कछु करामाति घटी छत्रकी म्रजाद मिटी,
लागी देउ दीन माझु जागी बीर त्राहि जू॥ ३

ऊपनी प्रथम अ हि पु र बीक पु र धनी,
सुनी राव रांन सुरितान खांन खेस जू।

हरीदास भावईके लेखको बसेष कछु,
　जान्यो काहू हींदु न जमन जमनेस जू।
जोरि दल प्रबल प्रचंड खल खंडिबै कौ,
　समर सधीर बर बीर अ म रे स जू।
थप्यो है उदंगल जू जंगलके देस पर,
　भयो जाइ जंग पु र जु ग नि कै देसि जू॥ ४

अष्ट दुन एक सत संवत इकोतराकै,
　सांवणकी चांद राति जात घरी चारि जू।
कहै हरीदास दि ली साहिकै गुसल खांनै,
　आयौ अ म रे स नृप मांझ दरबारि जू।
ठौर तिहि रा ठौ र नरेससौं स ला व ति खान,
　खेलैं घर जाइ तैसी खेली कछु आरि जू।
एतै मै सम्हारि राइ असुर कै उर लाइ,
　कालकीसी जीभ जम दाढ काढी पारि जू॥ ५

गुरत प्रमान धर तुरत सईद भयो,
　दुरति अ म र अैसी असुरकै दई जू।
दि ली सुरितांनको उदधि ज्यौं दिवान मथि,
　रतनकी जुगति परि मुगति काढि लई जू।
हरीदास पिछै सुभटनि उभै जंग करि,
　करी अैसी कथ जैसी कबहुं न भई जू।
सूरिमैकी हाक सारै आ ग रै मै धाक परी,
　ठौर ठौर चारयौ चक फाक फाटि गई जू॥ ६

सांवणकै सुद पाक उठी एक अैसी भाक,
　आ ग रा कै दंग बीचि जंग भयो भारी जू।
आवत बटाउ इत उत तै अगाउ तिन,
　गांव गांव ठांव ठांव बूझै नर नारी जू।

आठ+दु=१६ और १ शत=१७०० इस प्रकार संवत् १७०१ का यहां पर मतलब है-संपादक।

नेक ठाढे रहौ झूठी सांचीकी बिगति कहौ,
हरीदास सुनी है अवाज दुनी सारी जू ।
साहिके गुसलखानै काहू हींदू मरदानै,
कहति हैं कोई मीर मारयौ छ हजारी जू ॥ ७

कहति बटोही करि राम राम दोंही हम,
देखि आये नैन तुम सुनी जैसी श्रोन जू ।
हींदू तुरकान कोउ उकव्यौ पुरान कट,
अंकके प्रवान तीनि कंक हर हौन जू ।
हरीदास पूछ गनि पूछी तिन पंथिनि सौं,
फेरिकै बिगति कहौ पीछे करौ गौन जू ।
कौन राव रौद कौन भई कौन बात पर,
कौन ठौर कैसी बिधि जुरे कौन कौन जू ॥ ८

साहि की हजूरि खां सिलावति गुसलखानै,
आव पूरी रात्रसौं उपाव कछु कीयो जू ।
कोपि कमधजि निज तनकौ जतन छांडि,
काल ढाल मांडि कीये कालकौ सौ हीयो जू ।
हरीदास छत्रनरि मारयौ छ हजारी अरि,
लागत कटारी एक पलहुं न जीयो जू ।
और उहि ठौर दीली नाथके तखत आगे,
बिन अमरेस को उठावै हाथ बीयो जू ॥ ९

मारिकै कटारी सौं सलावतखां भूमि डारि,
ठाढौ रह्यौ साहिकी हजूरि गाढौ हीये जू ।
हरीदास जम रूप देख्यौ जसमनेस भूप,
छाती तै उतारि रात्र पीछे घाव कीये जू ।
तेरह सुभट साथ हुंते तिन बाहे हाथ,
सार सौ संवारि मीर तीस मारि लीये जू ।
भै चक्यौ दिलेस दरबार बीच रौरि परी
पौरि पौरि कोटकै कीवार द्वार दीये जू ॥ १०

॥ दूहा ॥

तीस पारि तेरह परे आंब खास भरथ ।
कवि तिनि सुभटनि नाम कहि सिंघालोकन कथ ॥ ११

॥ सवैया ॥

गोकल[7] गयंद मद मोकल मनोहरकौ,
स्वामि कामि सिंघ स्यामसंघ[8] नृप कान्हकौ ।
महाबली केहरी[9] कमध गोरधन जू कौ,
जंगकौ अभंग देईदास भगवानकौ ।
जोध जगनाथ[10] सारदूल तनै नेत धारी,
नेतकौ महेस फुनि तिन उनमानकौ ।
हुतौ आंब खासमै सलख बंसी सूर खट,
जिनकौ विरद रनसिंघ अवसानकौ ॥ १२

और तिन साथ हरिनाथ जू जगनाथ जू कौ,
बल्लू केसोदासकौ भाखाकौ अमेर जू ।
सुंदरकौ नाथ रामचंद[11] जसवंतकौ,
हुंते भर भाटी पंच सारके समर जू ।
गोदो[12] रामसिंघको राम युत जोगीदास[13],
दोउं रान चहुवान बांधै झूझको चमर जू ।
आदि लैं सरीकरन ठौर है राठौरनि पै,
छांडै न विभाग खाग बाजत समर जू ॥ १३

अंदरकै ख्यालकी खबरि कछु नाहि काहु,
बैठे ही खुस्याल जोध जोधपुर नाथके ।
हरीदास येतेमै उपारि लोथि रावजूकी,
ल्याये उमराव सुरितांन ससमाथके ।
देखत प्रवानि तिहि बेर समसेर साहि,
तेरह सुभट उठे सिंघ बली बाथके ।
गोकलै प्रथम मीरखां मलुकचंद,
मारि लीये तिहि ठौर सिर मौर साथके ॥ १४

स्यामसिंघ सिंघ ज्यौं पछारि मार च्यारि मारे,
मारे बेद मीर दोउ देव जगनाथ जू ।
केहरी कमधि तानि दोई नेतकै महेस,
तीन रौद्र रहे हरिनाथ जादौ हाथि जू ।
भाटी सुरमेक चहुवांन उभै भारी लरे,
पारे तीन मेछ पट इन इक गाथि जू ।
तेरह सुभट पंडरेस तीसको संघारि,
चले सुरलोक सब सूर मिलि साथि जू ॥ १५

सूर सुरलोक बसे कूर जीय लेकै नसे,
नासिकै हवेली लै पहचत ही जाइ कैं ।
प्रथम ही हरीदास व्यास गिरधर पास,
भारतकी कथ तिनि कही विगताइ कैं ।
डेरे डेरे खलकमै सूनी येक पलक मै,
धुनि कर वार भर उठे अकुलाइ कै ।
बछू भावसंघ दोउ और उमराव सोउ,
उघारि सीस गैन राजद्वार बैठे आइ कै ॥ १६

बैठि के बुलाइ तिनि देखे आये कहां जिन,
फेरि कैं विवर व्यौरो बुझ्यो झुझ झेर कौ ।
भई जु गुसलखांनै सु तौ हम सुनी कानैं,
आये हम होन जंग आव खास ठौर कौ ।
रावजू कै हाथि खां सिलावति सईद भयो,
भयो रावजू कै लोह उमराव और कौ ।
गोरके कांन एक कट्यो रावकी कटारि,
कहते हैं रावजूके घाव येक गौरको ॥ १७

सुनत प्रवान येतौ बछू भावसिंघ सेतौ,
कह्यौ गिरधर व्यास कहो कहा कीजीये ।
तबै कमधज तांम राव पिछै घरी जाम,
जीय कै भवारथ अकारथ जो जीजीये ।

प्रात त्रिपखनि कौ काज सहगवनि कौ,
प्रथम सुधारि दौर गौर सिरि दीजीये ।
साहिसौ संग्राम करि ढाहि गजगाहि टाहि,
असुर संघारि कै अमरपुर लीजीये ॥ १८

करत बिचार ऐसो उग्यो सूर प्रात जैसो,
तैसो सहगवनिको गवन सुधारि कैं ।
पीछे गौर मारिबेको राठौर तैयार भये,
गौरि गुदराई जाइ साहिकौं पुकारि कैं ।
कोपि जमनेस सैद खां न ज हां बिदा कीयो,
ऐतें येक दीये पथ रेत लार टारि कैं ।
धाये है सबीर फौज बांधि सहीदगीकै,
मारिबेकौ आये मीर मरिबौ विचारि कैं ॥ १९

॥ अथ बचनिका ॥

तिह समै राव अमरेस जू के उमराव, मंडे रिन गाढे मांडिकै पाव ।
रजपूत तौ सकल पैं हीररे, दुचते मन कायर सुचितै मनि सूररे ।
सूरनके सीस असमानि लागे, काइरनके अवसान भागे ।
सूरनिभै करन भोपत्योतको मानीदासभूप, गिरमेर मांडणोतके बंसको रूप ।
सूरिजमाल महेसौतको गोपी, जाके मुखि राव रांमकी रजलाज योपी ।
महासिंघ माधौसिंघोतकौ महाबहा मुकुंद, जसा लथणोंतको चोखं बालचंद ।
सुंदरदास रामसिंघोतकौ हरिनाथ सूर, राइसिंघ रामदासोतकौ नरहर करूर ।
हरीदास नाहरखानौतकौ रिणछोड, जाकै मनि जुध करिबेकौ कोड ।
नरहरदास महेसोतकौ द्वारौ, कमरस्योतनकी स्याखकौ उजारौ ।
बेलौ सुरतानौत कलावत माधौ, ईन दहु वने खेत चढि नेत बाधौ ।
जसवतं मानसिंघोतकौ सोनिगरा भाखर, संग्रामविषे येक पाखर लाख पाखर ।
ताकैं डिग मंड्यौ मानकौ नाथ, सूर सावंतकै खुरकै साथ ।
भोजको मुकंद नारेणकौ हरदास, भोपतिकौ जसा भाटी तीनि असहास ।
तिनि चहुवान दोइ हींदे, तिनहुं मलि मरिबेके सुकन बीदे ।
सुहड एक येक सू डारि, पर न पाव रोपि उंडा पिरि ।

यागरूप स्यौत देदका खंधार, साखलानकी साखके संगार ।
रनरावत जोधराज महता, बनीया भी समसेर गहता ।
नाइक अजीज ईब्राहिम पंजाबी, अग्रवाले रामटे भी तेग डावी ।
येते सुभट इकमने है धुनि खागे, भावसिंघ बल्लूकैं गाढे आगे ॥ २०

॥ सवैया ॥

सैन सिरदार दोउ बल्लू भावसिंघ भये,
और उमराव राव जू न केई पास जू ।
पाखर एक अभंग जंगल थपाखरसे,
महाबर बीर सुर धीर असहास जू ।
हरीदास माहि सौं समाहि तेग स्वामि काम,
त्यागी देह श्रेह नेह लागे है अंयास जू ।
येक दिजराज देख्यौ तिनमें अनेक जेसौ,
नेत बांधि खेत चढ्यो गिरधर व्यास जू ॥ २१

भये सिरदार सैन बल्लू भावसिंघ सुनि,
चक ताकै चिति चकचौधी लागि रही जू ।
यह तौ अनीति राजपूतनकी रीति नाहि,
मेरौ रोजगार खाहि मोसौं तेग गही जू ।
हरीदास साहि दिन ऊगत पठाये जिन,
इन सौं कहाई आइ तैसी तिन कही जू ।
तुम कहुं स्वामिध्रम सुन्यौ हैं क नाही कबैं,
थापी तम ऐसी तेनौ व्यापी कलि सही जू ॥ २२

फेरि छत्रपति पै अरज करि भेजी उभै,
नंद गिर मेरु कान्ह नंद तिहि वार जू ।
जानत सकल हम इहै रजपूत ध्रम,
ताकै कामि आवै जाकौ खाहिं रोजगार जू ।
जिनके निवाजे देखि तुमकुं निवाजे साहि,
तिनके करजकौ उतारि सिर भार जू ।
खायौ है तुह्मारौ जू दरब अवतार इहै,
सीलैगे सरब सु तो आंन अवतार जू ॥ २३

येती बात साहिसौ कहाई भावसिंघ बहु,
　कही काहू डेरै हाडा सत्रसाल राइ कै ।
देस मारवारिके तै बूंदीके नरेस पासि,
　बस्यो हुतो भोज जगनाथ जू कौ जाइ कै ।
सुनत प्रवान चहुवान कमधजनिमैं,
　सूरनिको मेलौ तहां मेलो भयो धाइ कै ।
मोहकी म्रजाद छांडि आपको मरन मांडि,
　बापकै मरन सीस बांधी धज आइ कै ॥　　२४

आइ भोजराज मिल्यौ सोनगिर लाज जैसे,
　मरवैकी लाज काज धूनि खग हाथकैं ।
चाकर हौं गोरकौ राठोर कुल रीत जानि,
　आयौ अमरावत मझारि कुल साथकैं ।
बढ्यौ बीर रस मन चढ्यौ सूरतन तन,
　ठाढौ रह्यौ माघ आजे सूर सर माथकैं ।
दुरिजनसिंघ दुरिजन ठाट टेलिबेकौ,
　गाढे पाव मांडि मंड्यो पासि हरनाथकैं ॥　　२५

ते उमराव रावजूके पाव रोपि रहे,
　उतै खां न ज हां सैद आयौ सैन साजिकै ।
हींदू राम नाम लै उचारे दीन दीन मेछ,
　दोरे दुहुं वोर तै मयंद जैसे गाजिकै ।
हरीदास सिंधु नद वाजत करुर सद,
　सूर सब साम्हे धसे कूर गये भाजिकै ।
घरी येक परी मार सारकी अपार रन,
　होत टूक टूक जोध रुकनिस्यौ बाजिकै ॥　　२६

बाजे रिन ताल चाल बांधि कमधज सैद,
　दोउं दावादार पतिसाही माझ मूरके ।
हरीदास मच्यौ दुंत तहां नंद सुंदरको,
　धस्यो ब्रिंद धारि रांम ईस अवधूरिके ।

झेलि फूल धार सार खेलि फाग सारगनि सौ,
परयौ पंच खांन पारि पौरि संरूरके ।
मिल्यौ हरि जोति जाइ माध सुरमंडलकै,
सूरहूं सराहे हाथ हरिनाथ सूरके ॥ २७

जुरे घरी येक लौं झरें अनेक सार सीस,
हिंदूनकी मार मेछ फौज मुरी सारी जू ।
उतरे सिलार सिरदार असवार सबै,
तबै तिह थाह गजगाह भयो भारी जू ।
हरीदास खगनिके खंडे रूंड मूंड धर,
गिरे है अचेत खेत माझ नेत धारी जू ।
और उमराव हाथ परे पांच सदी साथ,
बल्लू भावसिंघ हाथ परे हैं हजारी जू ॥ २८

पारिकैं हजारिनकौं बल्लू भावसिंघ परे,
कलूमै अकथ करि गये राखि जस कौं ।
कीयौ सकवंध जुध जैत कुंपकन्न जैसौ,
इनकी सफति येक जीह कहि न सकौं ।
हरीदास किल्म करूर चकचूर करे,
देखत तमासो सुर रह्यौ थंभि असकौं ।
केते येक रहे ठौर केतक उपारे ओर,
चले हैं अधीर मीर छांडि वीररसकौं ॥ २९

बल्लू भावसिंघ साथ भानीदास गोपीनाथ,
चंदरमुकुंद भिरि परे टाट टेलिकै ।
परे दूदवंसी अरिसिंघ नरसिंघ दास,
घास रिण छोड पड्यौ झूझ भर झेलिकैं ।
द्वारो माधोदास मेलौ परयौ कमधज बेलौ,
येते रिनमाल जोधा बीर खेल खेलिकैं ।
आधी सैन सैद खांनजहांकी सिंघारि गये,
सारी पातिसाही बीचि भारी सौर मेलिकैं ॥ ३०

गृहे सोनगिरा लाज भाखरसी भोजराज,
   परे तिन पास परयौ तीजौ नाथ मानकौ ।
परे तीनि भाटीय मुकंद हरदास जसौ,
   चौथौ मछरीक तिरलोक महिरानकौ ।
परे चहुवान हरदास दोउ येक नाम,
   येक जगमाल सुत दूजौ कलीयानकौ ।
भये खंड खंड खेत खंडि न विहंडि थल,
   मंडल अखंडल सु भेद गये भांनकौ ॥ ३१

परे रन इंदे द्वै सै हंसमाल बिजौ तहां,
   परयौ सूडा बीरम सुहड जसराज जू ।
परयौ जोध महंत खंधारी परीयाग दोउ,
   आये स्वामि कामि सुर सांखुलेस काज जू ।
नाइक अजीज इब्राहिम पंजावी परयौ,
   परयौ अग्रबाल राम बांधि जसपाज जू ।
साहिसौ समर सुत अमरके चित येते,
   भिरे सूर साखी करि राखी रज लाज जू ॥ ३२

रौद रजपूत लरे द्रुथ गूथ ह्वै के परे,
   मथ्यौ पल पंक कीच बीच रन रांगके ।
तीनि सै पचीस मीर हींदू तीनि बीस धीर,
   रहे इक ठौर खेत देखत पतंगकैं ।
हुंतौ दिजराज त्रिजराज जू कौ सेवक सु,
   लरयौ घरी आधल्यो गिरत उत बंगकै ।
छोनि कहै द्रोन पिछै सोनसौं न्हवाई खरी,
   करी हुं पवित्र गिरधर व्यास गंगकै ॥ ३३

अमर नरेसि ऐसो आंकाबंध साकौ कीयो,
   ताकौ जस देव नर नाग सुर चहैंगे ।
अमरकौ नाम येक जाइ न अनेक चौंस,
   सारे गढ कोट गिरबर तर ढहैंगे ।

हरीदास अमरके भारथकी कथ कवि,
आंन आंन देस पुर थांन थांन कहैंगे ।
अमरबत्तीसी के बतीस काबि मेरे कहे,
इंद चंद सूर लौं प्रसिद्ध जगि रहैंगे ॥ ३४

रहे हिंदू रन सठि जंग तीजैं अभंग भर,
तिनमें भ्रित रावके उभे इकतीस निभे नर ।
सात आगरै बीस आन उमरावके भ्रित,
परे खेत **आगरैं** अवनि उधरें छत्री कृत ।
भावसिंघ बद्ध क्रन जैत परि भरि जग ये अरिव घरी,
हरीदास समति रवि चंद लौं कलै न इन जसक घरी ॥ ३५

॥ दूहा ॥

इति समर कथ अमरकी तवि पंथी चले तद ।
है है कर जगत्र हुव सुरपुर जै जै सद ॥ ३६ ॥
सत्रै सै इकोतरा आसू पूरन मासि ।
सखी अखी सरसती थकी कबि हरदासि ॥ ३७ ॥
अमरबत्तीसी अमरकी काही सुकबि **हरीदास** ।
कूरिन कौं न सुहाइ है सूरनिमै मन हास ॥ ३८ ॥
च्यारि दुह थ कवित इक सवईये प्रथम बत्तीस ।
अमरबत्तीसीके कहे कवि रूपक सैतीस ॥ ३९ ॥

इति श्री कवि हरदास बिरचित अमरबत्तीसी संपूर्णा ।

संवत् १७०४ वर्षे फागुण वदि ५ दिने लिखितं
पं० भानहर्ष मुनिना दहीरवास मध्ये ॥

*

चतुर्मुख और स्वयंभू–दो भिन्न कवि हैं।

*

लेखक–श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी

भारतीय विद्याके गत द्वितीय-तृतीय अंकोंमें 'चतुर्मुख स्वयंभू और त्रिभुवन स्वयंभू' शीर्षक लेखमें यह पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसके विद्वान् लेखक प्रो० मधुसूदन चि० मोदीने उक्त दो महाकवियोंको एक ही समझ लिया है। वास्तवमें चतुर्मुख और स्वयंभू अपभ्रंश भाषाके दो स्वतंत्र कवि हैं और वे चतुर्मुख स्वयंभूसे पहलेके हैं। क्यों कि–

१. स्वयं स्वयंभूने अपने पउमचरिउ, अरिट्ठनेमिचरिउ (हरिवंसपुराणु) और स्वयंभूछन्द इन तीनों ग्रन्थोंमें कहीं भी 'चतुर्मुख स्वयंभू' नामसे अपना उल्लेख नहीं किया है। सर्वत्र ही स्वयंभू लिखा है और स्वयंभूके पुत्र त्रिभुवनने भी अपने पिताका नाम स्वयंभू या स्वयंभूदेव ही लिखा है।

२. महाकवि पुष्पदन्तने अपने महापुराणुमें अपने पूर्वके अनेक ग्रन्थ-कर्त्ताओं और कवियोंका उल्लेख किया है। वहाँ वे 'चउमुहु' और 'सयंभु' का अलग अलग प्रथमा एक वचनान्त पद देकर ही स्मरण करते हैं–

चउमुहु सयंभु सिरिहरिसु दोणु, णालोइउ कइईसाणु बाणु। १–५

अर्थात्–न मैंने चतुर्मुख, स्वयंभू, श्रीहर्ष और द्रोणका अवलोकन किया, और न कवि ईशान और [1]बाणका।

महापुराणका प्राचीन टिप्पणकार भी इन शब्दोंपर जुदा जुदा टिप्पण देकर उन्हें पृथक् कवि बतलाता है। "चउमुहु=कश्चित्कविः। सयंभु=पद्धडीबद्ध रामायणकर्त्ता आपलीसंघीयः।"

३. पुष्पदन्तने आगे ६९वीं सन्धिमें भी रामायणका प्रारंभ करते हुए स्वयंभू और चतुर्मुखको अलग अलग विशेषण देकर अलग अलग उल्लेख किया है–

कइराउ सयंभु महायरिउ, सो सयणसहासहिं परियरिउ।

चउमुहहु चयारि मुहाइं जहिं, सुकइत्तणु सीसउ काइं तहिं॥

अर्थात्–कविराज स्वयंभू महान् आचार्य है, उसके सहस्रों स्वजन हैं और चतुर्मुखके तो चार मुख हैं, उनके आगे सुकवित्व क्या कहा जाय?

---

१ महाकवि बाणने अपने हर्षचरितमें भाषाकवि ईशान और प्राकृतकवि वायुविकारका उल्लेख किया है।

२.१.८

४. पं० हरिषेणने[1] अपने 'धम्मपरिक्खा' नामक अपभ्रंश काव्यमें, जो वि० सं० १०४० की रचना है, चतुर्मुख, स्वयंभू और पुष्पदन्त इन तीनों कवियोंकी स्तुति की है और तीनकी संख्या देकर तीनोंके लिए जुदा जुदा विशेषण दिये हैं–

चउमुहु कव्वविरयणे सयंभुवि, पुप्फयंतु अण्णाणणिसुंभुवि ।
तिण्णवि जोग्ग जेण तं तीसइ, चउमुहमुहे थिय ताम सरासइ ॥
जो सयंभु सोदेउ पहाणउ, अह कह लोयालोयवियाणउ ।
पुप्फयंतु ण वि माणुसु वुच्चइ, जो सरसइए कयावि ण मुच्चइ ॥

५. हरिवंशपुराणमें स्वयंभू कवि स्वयं कहते हैं कि पिंगलने छन्दप्रस्तार, भामह और दंडीने अलंकार, वाणने अक्षराडम्बर, श्रीहर्षने निपुणत्व और चतुर्मुखने छर्दनिका, द्विपदी और ध्रुवकोंसे जटित पद्धड़िया दिया–"छंदणिय-दुवइ-धुवएहिं जडिय, चडमुहेण समप्पिय पद्धडिय ।" इससे चतुर्मुख निश्चय ही स्वयंभूसे जुदा हैं जिनका पद्धड़िया काव्य (हरिवंश ?) उन्हें प्राप्त था ।

६. इसी तरह कवि स्वयंभू अपने पउमचरिउमें भी चतुर्मुखको जुदा बतलाते हैं । वे कहते हैं कि चतुर्मुखके शब्द और दंतिभद्रके अर्थ मनोहर होते हैं, परन्तु स्वयंभूके काव्यमें शब्द और अर्थ दोनों सुन्दर हैं, तब शेष कविजन क्या करें ?

चउमुहमुहम्मि सद्दो दंतिं[2] भद्दं (?) च मणहरो अत्थो ।
बिण्ण वि सयंभुकव्वे किं कीरइ कइयणो सेसो ॥

आगे चल कर फिर कहा है कि–चतुर्मुखदेवके शब्दोंको, स्वयंभूदेवकी मनोहर जिह्वा (वाणी)को और [3]भद्रकविके गोग्रहणको आज भी अन्य कवि नहीं पा सकते । इसी तरह जलक्रीडावर्णनमें स्वयंभूको, गोग्रहकथामें चतुर्मुखदेवको और मत्स्यवेधमें भद्रको आज भी कविजन नहीं पा सकते ।

---

१ पं० हरिषेण धक्कडकुलके थे । उनके गुरुका नाम सिद्धसेन था । चित्तोड (मेवाड)को छोड जब वे किसी कामसे अचलपुर गये थे, तब वहां उन्होंने धम्मपरिक्खा बनाई । २ यहां पाठ कुछ अशुद्ध है । ३ भद्र अपभ्रंशके ही कवि मालूम होते हैं । उनका कोई महाभारत या हरिवंश होगा जिसके अंश 'गोग्रहकथा' और 'मत्स्यवेध' होंगे । चतुर्मुखका तो निश्चय ही हरिवंश पुराण होगा और उसमें भी 'गोग्रहकथा' होगी । अपभ्रंश-कवि धवलने अपने हरिवंशपुराणमें चतुर्मुखकी 'हरिपाण्डवानां कथा'का उल्लेख भी किया है–

हरिपंडुवाण कहा चउमुहवासेहिं भासियं जम्हा ।
तह विरयमि लोयपिया जेण ण णासेइ दंसणं पउरं ॥

इसमें चउमुहवासेहिं (चतुर्मुखव्यासैः) पद श्लिष्ट है ।

चउमुहएवस्स सद्दो सयंभुएवस्स मणहरा जीहा।
भद्दस्स य गोग्गहणं अज्जवि कइणो ण पावंति॥
जलकीलाए सयंभू चउमुहएवं च गोग्गहकहाए।
भद्दं च मच्छवेहे अज्जवि कइणो ण पावंति॥

इन उद्धरणोंसे बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि चतुर्मुखदेव स्वयंभूसे पृथक् उनके पूर्ववर्ती कवि हैं जिनकी रचनामें शब्दसौन्दर्य विशेष है और जिन्होंने अपने हरिवंशमें गोग्रहकथा बहुत ही बढ़िया लिखी है।

७. 'करकंडुचरिउ' के कर्ता कनकामर (कनकदेव) ने स्वयंभू और पुष्पदन्त दो अपभ्रंश कवियोंका उल्लेख किया है, परन्तु स्वयंभूको केवल स्वयंभू लिखा है, चतुर्मुख स्वयंभू नहीं–

जय एव सयंभु विसालचित्तु, वाएसरिघरु सिरिपुप्फयंतु।

८. पउमचरिउमें 'पंचमिचरिअ' के विषयमें लिखा है–

चउमुहसयंभुएवाण वाणियत्थं अचक्खमाणेण।
तिहुअणसयंभुरइयं पंचमिचरिअं महच्छरिअं॥

इसका पाठ कुछ अशुद्ध मालूम होता है। यदि 'अचक्खमाणाणं' पाठ हो तो अर्थ इस प्रकार ठीक बैठ जाता है–"चतुर्मुख और स्वयंभुदेवके वर्णित अर्थका स्वाद जिन्होंने नहीं चखा उनके लिए त्रिभुवनस्वयंभुरचित 'पंचमीचरित' बहुत ही आश्चर्यजनक मालूम होगा[१]। पर यदि यह अर्थ न माना जाय, मोदीजीका ही अर्थ स्वीकार किया जाय, तो भी इसके 'चउमुहएवाण' पदसे चतुर्मुख और स्वयंभू जुदा जुदा दो कवि ही प्रकट होते हैं। क्यों कि यह पद एकवचनान्त नहीं बहुवचनान्त है (द्विवचन अपभ्रंशमें होता नहीं)।

इन सब प्रमाणोंके होते हुए चतुर्मुख और स्वयंभूको एक नहीं माना जा

---

१ हरिवंशपुराण और पद्मपुराणके समान 'पंचमी कहा' भी जैनोंकी बहुत ही लोकप्रिय कथा है। संस्कृत और अपभ्रंशके प्रायः सभी प्रसिद्ध कवियोंने इन तीनों कथाओंको अपने अपने ढंगसे लिखा है। पुष्पदन्तकी, महापुराण (इसमें पद्म और हरिवंश दोनों हैं) के अतिरिक्त, पंचमीकथा (णायकुमारचरिउ) है ही, मल्लिषेणके भी महापुराण और नागकुमार चरित हैं। इसी तरह चतुर्मुख और स्वयंभूके भी उक्त तीनों कथानकों पर ग्रन्थ होने चाहिए। स्वयंभूके दो तो उपलब्ध ही हैं, पंचमीचरितका उक्त पद्यमें उल्लेख है। त्रिभुवन स्वयंभूने अपने पिताके तीनों ग्रन्थोंको सँभाला हैं। अर्थात् उनमें कुछ अंश अपनी तरफसे जोड़कर पूरा किया है।

सकता। प्रो० एच० डी० वेलणकर[1] और प्रो० हीरालाल[2] जैनने भी चतुर्मुखको स्वयंभूसे पृथक् और उनका पूर्ववर्ती माना है।

अब प्रो० मोदीके लेखकी कुछ और भ्रान्तियोंका उल्लेख करके यह लेख समाप्त किया जाता है—

१. पउमचरिउकी २३ वीं सन्धिके आरंभमें रामायणको शुरू करते हुए जो पद्य दिया है, उसका शुद्ध पाठ यह होना चाहिए—

तहि मुणिसुव्वयतित्थे बुहयणकण्णरसायणु।
रावण रामहु जुज्झु जं तं णिसुणहु रामायणु॥

अर्थात्—अब मुनिसुव्रत (२०वें तीर्थंकर)के तीर्थमें घटित हुई बुधजनकर्णरसायनरूप रामायण सुनो जिसमें राम-रावणका युद्ध है। प्रधान प्रधान जैन घटनायें किसी न किसी तीर्थंकरके तीर्थमें घटित हुई है, उसीके अनुसार राम-रावणयुद्ध मुनिसुव्रतके तीर्थमें घटित हुआ था। एक तीर्थंकरके कालके प्रारंभसे दूसरे तीर्थंकरके जन्म लेनेके पहले तक का समय पूर्व तीर्थंकरका तीर्थ कहलाता है।

२. स्वयंभूने हरिवंश पुराणके प्रारंभमें बाण कविके बाद श्रीहर्षका उल्लेख किया है—'सिरिहरिसेणि य णिउणत्तउ' अर्थात् श्रीहर्षने निपुणत्व दिया।

परंतु मोदीजीने इसका अर्थ श्रीहरिषेण कवि किया है, जो ठीक नहीं है। पुष्पदन्तने भी इसीतरह बाणके साथ श्रीहर्षका उल्लेख किया है—"चउमुहुसयंभु सिरिहरिसु दोणु णालोइउ कइ ईसाणु बाणु।"

३. हरिवंश पुराणके अन्तिम कड़वकके 'गोवगिरिहे सामीवे विसालए पाणियार हे जिणवरचेयालए'—अर्थ गोपगिरि (ग्वालियर)के समीप पनियारके विशाल जैन मन्दिरमें' होता है। मोदीजीने इसपरसे यशःकीर्तिका गोपाचल गच्छ कैसे निकाला, कुछ समझमें नहीं आया। दिगम्बर सम्प्रदायमें इस नामका कोई गच्छ नहीं है।

४. स्वयंभूने अपने हरिवंश पुराणके दूसरे कड़वकमें लिखा है—

णउ बुज्झिउ पिंगलपत्थारु, णउ भम्मह-दंडियलंकारु।
ववसाउ तोवि णउ परिहरमि, वरि रयडाबुत्तु कव्वु करमि।

---

१ स्वयंभु छन्दका इंडेक्शन पेज ७१–७४, रायल एशियाटिक सोसाइटी बम्बईका जर्नल, जिल्द २, १९३५। २ नागपुर यूनीवर्सिटीका जर्नल, दिसम्बर, १९३५

इसका सीधा अर्थ यह होता है कि मैं न तो पिंगल-प्रस्तार ही समझता हूं और न भामह तथा दंडी के अलंकार शास्त्र; फिर भी मैं व्यवसाय या प्रयास करना नहीं छोड़ता और रयडा वृत्तमें काव्य करता हूँ। यह रयडा या रड्डावृत्त वही छन्द है जिसमें पउमचरियकी रचना हुई है। किसी अज्ञात टिप्पणकारने 'रयडा' शब्द पर जो 'राजश्रेष्ठी' टिप्पणी दी है, वह गलत है। उसका यहाँ कोई प्रसंग ही नहीं है।

५. पउमचरियके अन्तके पद्यका शुद्ध पाठ इस प्रकार है—

सत्त महासग्गंगी ति-रयणभूसा सुरामकहकण्णा।
तिहुअणसयंभुजणिया परिणउ वंदइ पमणतणउं॥

अर्थात्—सात महासर्ग हैं अंग जिसके और रत्नत्रय हैं 'भूषण जिसके। शुरूके दो पदोंका यह ठीक अर्थ बैठ जाता है और तब 'सात मोटा सर्गना गानरूपी भूषणवाली' यह क्लिष्ट अर्थ नहीं करना पड़ता।

६. पउमचरियकी प्रशस्तिमें जो दो संस्कृत पद्य हैं, वे मूलके नहीं किंतु रविषेणकृत पद्मचरितके हैं। प्रतिलेखककी कृपासे किसी तरह प्रक्षिप्त हो गये हैं। उनका शुद्ध पाठ यह है—

चेष्टितमयणं चरितं करणं चारित्रमित्यमी यच्छब्दाः।
पर्याया रामायणमित्युक्तं तेन चेष्टितं रामस्य॥
वाचयति शृणोति जनस्तस्यायुर्वृद्धिमीयते पुण्यम्।
चाकृष्टखड्गहस्तो रिपुरपि ण करोति वैरमुपशमेति॥ पद्मचरित

इस शुद्ध पाठसे जो अशुद्ध अर्थ किया गया है वह ठीक हो जाता है।

७. कविके पिताका नाम 'माउरदेव'की अपेक्षा मुझे 'मारुतदेव' ठीक मालूम होता है। एक जगह 'मारुअ-सुअ-सिरिकइए य तणयकयपोमचरिय-अवसेसं'में स्पष्ट ही 'मारुअ' (मारुत) लिखा है।

*

पवइया नगरी और त्रिभुवनगिरि

[दो पुरातन स्थानोंका स्थलनिर्णय]

*

लेखक—श्रीयुत पं० दशरथजी शर्मा, एम्. ए.

१. पवइया नगरी

**सुइहिअ चारुसोहा विअसिअकमलाणणा विमलदेहा ।
तत्थत्थि जलहिदइआ सरिआ अह चंदभाय त्ति ॥
तीरम्मि तीय पयडा पवइया णाम रयणसोहिल्ला ।
जत्थत्थि ठिए भुत्ता पुहई सिरितोरमाणेण ॥**

'कुवलयमाला' कथाकी इन गाथाओंसे निश्चित है कि **पवइया** नगरी चन्द्र-भागा अर्थात् चिनाबके किनारे स्थित थी और तोरमाण नामक कोई राजा वहां राज्य करता था । तोरमाण सम्भवतः हूणेश्वर तोरमाण हो । परन्तु उसकी राज-धानी पवइया कहां थी यह एक विचारणीय प्रश्न है । श्री मुनि जिनविजयजीने पवइयाको संस्कृत 'पार्वतिका' या 'पार्वती'का प्राकृत रूपान्तर मानकर युअनच्वांग द्वारा वर्णित पो-फ-तो या पो-ल-फ-तो नामक नगरके विषयमें अनेक विद्वानोंके मतका जिक्र किया है । मुल्तानसे ११७ माइल उत्तर-पूर्व झंग नामक नगर चिनाबके किनारे है । परन्तु कई कारणोंसे कनिंघमने शोर-कोटको ही पो-फ-तो नगर माना । विंसेन्ट ए. स्मिथने उसे जम्मू और फ्लीटने उसे हरप्पा समझा । इनमें जम्मू आदि नगरोंको तो चिनाबके किनारे न होनेके कारण पवइया मानना ठीक ही न होगा । झंग भी वास्तवमें चन्द्रभागाके किनारे नहीं है, और यदि किसी समय रहा भी हो तो भी हम उसे निश्चयपूर्वक न तो पो-फ-तो और न पवइया ही समझ सकते हैं । इसलिये पवइआ नामक, चन्द्रभागाके किनारे पर स्थित किसी दूसरे नगरको ढूंढना आवश्यक है । लगभग सन् १२१६ में लिखित 'चचनामा' ग्रन्थके लेखक मुहम्मदअली बिन हमीद बिन अबू बक्र कूफीने लिखा है कि सिन्धके राजा सीहरस (श्रीहर्ष)ने चार सूबेदार कायम किये थे—एक ब्राह्मनाबादमें, दूसरा सिविस्तानमें, और तीसरा अस्कलन्दके किले और चौथा **पाबियामें** जिन्हें अब तलवाड़ा और चचपुर कहते हैं[१] । पाबिया—जो सम्भवतः पवइयाका

१ History of India as told by its own historians, Vol. I, p. 138.

ठीक अरबी रूपान्तर है—के विषयमें यह प्राचीन कथन महत्त्वपूर्ण है। राजा चचने सम्भवतः पवइयाका नाम बदल कर अपने नाम पर चचपुर कर दिया था, और सर हेनरी ईलियटके कथनानुसार चचपुर अब भी चाचर नामसे चनाब और सिन्धके संगम स्थान पर नदीके पूर्वी बाजू पर विद्यमान है[१]। अतः चाचरकी चिनाबके पूर्वी किनारे पर स्थिति एवं उसके पुराने नाम चाचपुर अर्थात् पावियाको ध्यानमें रखते हुए क्या यह अनुमान करना असंगत होगा कि यही तोरमाणकी राजधानी पवइया नगरी है?

*

२. त्रिभुवनगिरि

जैन साहित्यमें त्रिभुवनगिरिका कई स्थानों पर नाम आया है। श्री माणिक्यचन्द्रसूरिने पार्श्वनाथ चरितकी प्रशस्तिमें लिखा है कि—उनके पूर्वज राजगच्छीय श्री प्रद्युम्नसूरिने सपादलक्ष एवं त्रिभुवनगिरिके राजाओंको अनेक वादोंमें जय प्राप्त कर रंजित किया था। समरादित्य संक्षेपके लेखकने लिखा है कि इन्हीं श्री प्रद्युम्नसूरिने राजा अल्लूकी सभामें किसी दिगम्बरको परास्त किया था। ये राजा अल्लू सम्भवतः मेवाड़के राजा अल्लट थे ऐसा विद्वानोंका अनुमान है। यदि सपादलक्ष, त्रिभुवनगिरि और मेवाड़को हम इन सूरीश्वरका कार्यक्षेत्र मानें, और इन तीनों राज्योंको परस्पर निकटवर्ती समझें तो त्रिभुवनगिरिको कहीं इन्हींके आसपास ढूंढना उचित होगा।

दूसरा उल्लेख राजा मुञ्जके समकालीन श्रीधनेश्वरसूरिके विषयमें है। ये पहले त्रिभुवनगिरिके स्वामी कर्दमभूपति थे। कर्दम स्वयं उनका नाम था, या उनकी जाति कर्दम थी, यह अनिश्चित है। इस उल्लेखसे त्रिभुवनगिरिका स्थान निश्चित नहीं किया जा सकता।

तीसरा उल्लेख गणधर सार्द्धशतक बृहद्वृत्तिमें है। इसके अनुसार खरतर गच्छाचार्य श्री जिनदत्तसूरि **नगर**में विहार करनेके बाद त्रिभुवनगिरि पहुंचे और वहांके राजा कुमारपालको प्रतिबोधित किया। उसी स्थान पर उन्होंने श्री शान्तिनाथदेवकी प्रतिष्ठा की। इसी प्रकार उज्जयिनीमें विहार कर उन्होंने योगिनीचक्रको प्रतिबोधित किया। इस अवतरणसे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि त्रिभुवनगिरिकी स्थिति नगर और उज्जयिनीके बीचमें थी।

---

१ वही, पृष्ठ, ३६६.

उज्जयिनी प्रसिद्ध नगरी है। परन्तु नगरसे कौनसा नगर माना जाय? उज्ज-यिनीसे लगभग ठीक १५० माइल उत्तर जयपुर राज्यका नगर नामक प्राचीन स्थान हैं। यही वृत्तिलिखित नगर है या आनन्दनगर (गुजरात)को नगर माना जाय यह विचारणीय है। यदि त्रिवनभुगिरि वास्तवमें सपाद-लक्षादिसे अधिक दूर नहीं था, तो शायद यह नगर जयपुर राज्यका ही नगर हो। यहां लगभग ६,००० प्राचीन शिक्के मिल चुके हैं, और इस स्थानकी प्राचीनता निर्विवाद है। दूसरा प्रश्न राजा कुमारपालके नामसे उपस्थित होता है। प्रसिद्ध चौलुक्यराज इस समय राज्य करते थे। परन्तु उनके प्रतिबोधक श्री जिनदत्तसूरि नहीं, अपितु श्री हेमचन्द्राचार्य थे। इसलिये यही अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि ये चौलुक्यराज नहीं, बल्कि अन्य ही कोई त्रिभुवन-गिरिके स्वामी कुमारपाल हैं। करौली राजाओंके पूर्वज कुमारपाल भी लगभग इसी समय हुए हैं। इनका त्रिभुवनगिरीश कुमारपाल होना कहां तक सम्भव है, यह हम आगे विचार करेंगे।

श्री जिनपाल रचित खरतरगच्छपट्टावलीमें त्रिभुवनगिरिका उल्लेख है। जब श्री जिनपतिसूरि उज्जयन्तादिकी यात्राके लिये तैयार हुए, तब त्रिभुवनगिरिका संघ भी यात्रामें शामिल हुआ था। त्रिभुवनगिरिमें स्थित श्री यशोभद्राचार्यके पाससे आकर जिनपालगणि आदि श्रीजिनपतिसूरिके शिष्योंने निवेदन किया था कि—यशोभद्राचार्य कहते थे 'यदि तुम (जिनपालादि) कहो तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूं जिससे गूर्जरत्राकी यात्रामें उनके सामने काहलिकके समान रहूं और कोई विरोधी उनके सम्मुख न ठहर सके'। इस उल्लेखसे कुछ ऐसा प्रतीत होता है त्रिभुवनगिरि गूर्जरत्रामें नहीं था। यदि गूर्जरत्रामें होता तो त्रिभुवनगिरीय संघ सम्भवतः रास्तेमें उनमें शामिल होता, और शायद यशो-भद्राचार्य भी इन शब्दोंमें अपना आशय प्रकट न करते।

इसी पट्टावलीमें श्री जिनदत्तसूरिकी उज्जयन्तादिकी यात्राका वर्णन करते हुए नगरके स्थान पर नरवरका प्रयोग है। यदि त्रिभुवनगिरिकी स्थिति नरवर और उज्जयिनीके बीचमें हो तो भी उसे सपादलक्षादिके समीप ही ढूंढना ठीक होगा।

श्री वादिदेवसूरिचरितमें त्रिभुवनगिरिका नाम आया है। श्री वादिदेवने चित्रकूटमें मीमांसक वसुभूति, नरवरमें धीसार, और त्रिभुवनगिरि नामक

दुर्गमें किसी रक्तवलको पराजित किया। इस अवतरणसे भी त्रिभुवनगिरिकी स्थिति चित्रकूटादिके समीप प्रतीत होती है।

प्राचीन ऊकेशगच्छीय पट्टावलीके अनुसार त्रिभुवनगिरिमें इस गच्छका एक प्राचीन मन्दिर था। परन्तु इससे स्थान कुछ निश्चित नहीं होता।

त्रिभुवनगिरिका इससे अधिक महत्त्वपूर्ण उल्लेख हम्मीरमहाकाव्यमें है। श्री हम्मीरने उज्जयिनी, आबू, सांभर, मरोट, खंडेला आदिकी दिग्विजय कर रणथम्भोरके रास्तेमें कर्करालगिरि पर आक्रमण किया और त्रिभुवनाद्रीशने वहां आकर श्री हम्मीरका सम्मान किया। इससे त्रिभुवनगिरिकी स्थितिका क्षेत्र खंडेला और रणथम्भोरके बीचमें सीमित हो जाता है। रणथम्भोर और खंडेला दोनों जयपुर राज्यमें हैं। अतः त्रिभुवनगिरि सम्भवतः खंडेलेके पूर्व और रणथम्भोरके उत्तर पूर्वके पहाड़ी प्रदेशमें रहा होगा—ऐसा अनुमान करना असंगत नहीं है।

सौभाग्यवश मुसलमानी इतिहासकारोंने भी त्रिभुवनगिरिका नाम दिया है और इससे त्रिभुवनगिरिकी अवस्थितिका बिलकुल ठीक पता चल जाता है। ता'जुलमासीर (लेखन समय सन् १२०५ ई०)में लिखा है कि ५९२ हिजरी (सम्वत् १२५२) में मुहम्मद गोरीने थंगर पर आक्रमण किया और राजा कुमारपालको हराकर अपने अधीन किया। फीरस्ताने इसी बातका जिक्र करते हुए 'थंगर जिसे बयाना कहते हैं' ऐसा लिखा है 'गर' गिरिका अपभ्रंश है, और 'थं' त्रिभुवनका। क्यों कि तत्सामयिक लेखक फखरुद्दीन मुबारकशाहने इसका नाम 'तहनकिरि' लिखा है। इसमें 'तहन' त्रिभुवनका और 'किरि' गिरिका अपभ्रंश है। करौलीवाले मानते हैं कि इसे इनके किसी पूर्वज तहनपाल या त्रिभुवनपालने बसाया था। तारीखे मुबारकशाही और तुजुके बाबरीमें भी त्रिभुवनगिरिका नाम मिलता है। इसलिये यह निश्चित है कि यह किसी समय बहुत ही प्रसिद्ध स्थान था। इस समय यह तहनगढ़के नामसे प्रसिद्ध है और करौलीसे लगभग २४ माइल उत्तर-पूर्व स्थित है। आर्कीऑलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डियाके प्रायः सभी नक्शोंमें दिखाया गया है।

जिन कुमारपाल पर मुहम्मद गोरीने सम्वत् १२५२ में आक्रमण किया वे केरोलीवाले यादवोंके पूर्वज एवं श्री जिनदत्तसूरि द्वारा प्रतिबोधित कुमारपाल होते हैं। वे लगभग १२१० या १२११ में गद्दी पर बैठे होंगे और

सम्बत् १२५२ में भी त्रिभुवनगिरिकी गद्दी पर विराजमान थे। ४२ या ४३ वर्ष राज्य करना कोई नवीन बात नहीं है। अब भी भगवान्‌की दयासे भारतवर्षमें अनेक राजा वर्तमान हैं जिन्होंने इतने समयसे अधिक राज्य किया है। अतः अन्ततो गत्वा हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि वर्तमान तहनगढ ही प्राचीन त्रिभुवनगिरि था और वहांके प्रतापी यादव राजा श्री कुमार-पालको श्री जिनदत्तसूरिने प्रतिबोध दिया था।

इन राजा कुमारपालके विषयमें ता'जुलमासीरमें हसन निजामीने इस प्रकार लिखा है–"हिजरि सन् ५९२ (११९६ सन्) में उन्होंने तहनगर पर कूच किया....ईश्वरकी सहायतासे यह मजबूत किला, जो अबतक संसारके राजाओं और राजकुमारोंके लिये बन्द रहा था, मुसलमानी फौजके हाथ लग गया। तहनगरका राजा कुमारपाल जिसे अपने किलेकी मजबूती और फौजकी संख्या पर गर्व था अब अपने विरुद्धवाली फौजको देख कर कांप उठा, और उसने अपनी जीवनरक्षाके लिये प्रार्थना की। इस पर उसे क्षमा कर दिया गया और उस पर कृपा की गई। यद्यपि उसका राज्य छिन गया है।... तहनगरका राज्य बहाउद्दीन तुगरीतको दिया गया...–" इससे सिद्ध है कि राजा कुमारपाल सन् ११९६ में राज्य खो बैठे। उनकी शक्ति काफी प्रबल थी, पर वे मुसलमानोंके सामने न ठहर सके। चौहानों और गहरवारोंके समान वे भी मुहम्मद गोरीसे हार गये। करौलीके इतिहाससे प्रतीत होता है कि उन्हीं कुमारपालके वंशज अर्जुनपालने सं० १४०५ में करौली बसाई।

*
*

राजस्थानी – मारवाडी – भाषामें लिखित कुछ ऐतिहासिक टिप्पण

*

खरतरगच्छके आचार्य श्रीमान् जिनहरिसागरजी सूरिजीके शास्त्रसंग्रहमेंसे हमें एक पुराना हस्तलिखित गुटका मिला है जो १०० – १५० वर्ष जितना पुराना लिखा हुआ है। प्रायः ९ इंच लंबे और ६ इंच चौडे ऐसे २०० पन्नोंका यह संचय है। इसमें सबसे पहले वृंद कवि रचित 'सतसया' संग्रह लिखा हुआ है। उसके बाद गद्य पद्य मय **'ग्वालेरी भाषा'** में पूरा हितोपदेश लिखा हुआ है। उसके बाद अक्षरबावनी आदि बहुतसी फुटकर पद्य कृतियां हैं जिनमें सवैया, कवित्त, छप्पय, दोहा, सोरठा आदिका संग्रह है। इसके बाद कोई ६० पन्नोंमें **'राठोडांरी बंसावलि'** लिखी हुई है जिसमें जोधपुरके राठोड वंशका आदिसे लेकर, वि० सं० १८०९ में गादीपर बैठनेवाले महाराजा विजयसिंघजी तककी ऐतिहासिक वार्ता लिखी हुई है। इस वार्तामें, राडोवंशमें होनेवाले बड़े बड़े वीर पुरुषोंकी पराक्रमपूर्ण ऐसी अनेकों कीर्ति कथाएं सम्मीलित हैं जो हमारे जातीय जीवनकी झलक करानेमें बडी रसप्रद हैं। हम इस सारी **बंसावलिके** छपवानेका प्रयत्न कर रहे हैं।

इसी गुटकेमें, उक्त **बंसावलिके** पीछे, लिपिकर्ताने बहुतसे ऐतिहासिक टिप्पण लिख रखे हैं जिनमें प्राचीन नगरोंके स्थापनादिके समयका निर्देश और मारवाड – मेवाडमें होनेवाले राजवंशोंकी नामावलि आदिका समावेश है। 'भारतीय विद्या' के पाठकोंको ये टिप्पण रसप्रद और ऐतिहासिक अन्वेषणमें कुछ उपयोगी होंगे, ऐसा समझ कर हम यहां इन्हें मुद्रित करते हैं।

इन टिप्पणोंका लिपिकर्ता, खरतरगच्छीय क्षेमकीर्ति शाखाका यति पं० हर्षचन्द्र शिष्य मोतीचंद गुलाबचंदोत है। सं० १८८८ में, मारवाडके पालीनगरमें इनकी प्रतिलिपि की गई मालूम देती है।

इन टिप्पणोंमें जो संवत् और मिति आदिका निर्देश किया गया है वह सर्वथा निर्भ्रांत नहीं है। इनमें कई अंक – और कई उल्लेख भी – भ्रमपूर्ण मालूम देते हैं। उनके विषयमें विशेष विचार करनेकी यहां कोई आवश्यकता नहीं है। यहां तो सिर्फ इनको प्रकाशमें लानेकी दृष्टिसे ही मुद्रित किया जाता है – **संपादक**

*

१. पुराने शहरोंकी स्थापना आदिका समय निर्देश

सं० ९०२ चित्रांगदे मोरी चितोड वसाई ।

सं० १३६१ अलावदीन पातिसाह चितोड पदमणीरै लीयै आयो नै गोरो बादल लडिया ।

सं० १६२४ राणां उदैसिंघजीसुं चितोड छूटो नै पीछोला ऊपरै उदैपुर वसायो ।

सं० १५२८ दूदे योधावत मेडतो वसायो । आगै राजा मानधातारो वसायो सूनो षेडो थो ।

सं० १५५४ दूदै योधावत काल कीयो नै वीरमदेजी टीकै बैठा ।

सं० १६०३ वीरमदेजी काल कीधो, जैमलजी टीकै बैठा ।

सं० १५१५ राव जोधै आपरै नाम जेठ सुदि ११ जोधपुर वसायो । पहिलां मंडोवर राजथांन होतो ।

राजा अज हुवो जिण आपरै नाम अजमेर वसायो ।

सं० १०७१ राजा वीसलदे अजमेर लीधी नै राज बैटो ।

सं० १०७७ राजा भोजरै बेटै मी(वी)रनारायण समीयांणो गढ करायो । मूलमै पमारारो करायो ।

सं० १३०१ कानडदे सोनिगिरै जालंधरीनाथरी दवासुं सोवनगिर उपरा गढ करायो । जालंधरी नाथ जोगीरै नांवै अबै पहाडरो नाम जालंधर कहीजै छै । अठै तपस्या करतो । तलहटी सहर जालोर कहीजै छै ।

सं० १३१५(?) वैसाष सुदि ९ जालोरगढ भागो । कानडदे वीरमदे राणं-गदे कांम आया ।

सं० १५४५ (?) राव हमीर रावत फलां बांभणीरी गोकलरी टोड फलोदि वसाई ।

सं० १२१२ सांवण सुदि १२ राव जेसल आपरै नाव लोद्रवो भांजिनें जेसलमेर वसायो ।

सं० १०७० नाहडराव पडिहार मंडोवर वसायो । आगै मांडवरिषीस्वररी थापना थी ।

सं० १६१९ मालै पचायणोत पमार मालपुरो वसायो ।

सं० १५४४ वीकै जोधावत बीकानेर बसाइ ।

सं० १६६५ गोड राजा वीटलदासोत गोपालदासोत राजगढ वसायो ।

सं० १६१२ अकबर पातिसाह आगरो वसायो।

सं० १४३८ राव मल्लिनाथजी महेवो वसायो।

सं० ११९५ दाहिमै ब्राह्मण मतिकवास प्रथीराज चहुवांणरो परधान, नागोर वसाइ।

सं० ७३१ राजा भोज धारा नगरी हुवो, नै भोजरी रांणी भानमती, तिण भिणाय वसाइ।

सं० १११२ जैतु गूजरी जैतारण वसाई।

सं० ८०२ वनराज चावडै गुजरातमै पट्टण वसाई।

सं० १६६७ राठोड किसनसिंघ उदैसिंघोत किसनगढ वसायो। पहिलां पिडगनो सोझेलावरो थो, सो हिवै तो गांव ज्युं छै। जाट लोक रहै छै। पछै राजा रूपसिंघ भारमलोतनै च्यार हजाररो मनसवो हुवो, तद रूपनगर वसायो। पहली राजथान किसनगढ थो सो संन्यासीरी दवासुं रूपनगर वसियो।

सं० १६७२ किसनसिंघजी काम आया तरै किसनगढरो कोट पूरो न हुवो।

सं० १६०१ कछवाहै सांगै प्रथीराजोत सांगानेर वसायो।

सं० १३०१ आंबै राजा आंबेर वसाई।

सं० ९८२ चोवीस वगडावत हुवा।

सं० ९९२ देवधरम राजा हुवो, तिण वगडावतांरो वैर लियो।

सं० १२५० पावूजी गायांरी वाहर चढिया नें काम आया। तठै चांदो थोरी १५० दोढसै थोर्यांसुं कांम आयो, मुंहडा आगै।

सं० १६२१ चांदो वीरमदेवोत नागोर, हसन कुलीषांनसुं चूक करिनै नीसरणी नांष नै चढता था, तरै चाकर हसन कुलीरै आगारो चाल झालियो सो वाढियो। मुगल २ टणका ले रह्या।

सं० १७३८ राजा जैसिंघ कछवाहै जैपुर वसायो। पहला राजथांन आंबेर थो।

सं० १७८५ राजा जेसिंघ मेरां उपर मगरै आयो।

सं० १४४२ महमद वेगडो पातिसाह गुजरातमै अहमदावाद वसाई।

सं० १४३४ रांणपुर नगरमै देवल करायो धन्नै पोरवाड। निनाणु लाख द्रव्य लगायो। तिणरै पाखती देवल १ सोमल पोरवाड करायो। तिणमै नागीपुतली छै।

सं० १६७४ कापरडैमै भानैजी भंडारी देवल करायो।

सं० १५८५ लुंका मांहिथी भीलाडा मांहे हांजी वणगरसुं ढुंढीया हुवा। भादवा सुदि ८ अदीतवारकै दिन अहमदावाद मांहे हांजी पीर हंजु ढेढनें वर दियो, तिणसुं ढुंढीया जैनरो मत उठायो। लुंका मांहिसुं नींकल्या।

सं० १७८७ आसोज सुदि १० माहाराजश्री अभैसिंघजी वषतसिंघजी गुजरातमै निबाब सेर बिलंद षांसुं लडाइ कीनी।

सं० १७१५ वैसाष महिनै महाराज श्री जसवंतसिंघजी लडाइ कीधी, उजेणमांहे।

सं० १७९८ असाढ सुदि मांहे, उटडारा डेरां, माहाराजश्री वषतसिंघजी सवाइ जैसिंघसुं लडाइ कीनी।

सं० १७९३ वैसाष माहे मारिवाडमै घोडीयां आइ, सारी मारवाड लुटाणी। गांव घणा मराणां। केइक गांवा जांम नकती ठहैरी। मलार गाडरी सिंघीयो राणो आया था, तरै माहाराज अभैसिंघजी दिली होता। सोझत मेडतो जैतारण मराणो; पछै किसनगढ मराणो।

सं० १६३३ श्रावण वदि ७ हलदीरी घाटी राणै प्रतापसिंघ राजा मान वेढि कीधी। वेढि ५ कीवी। घणो साथ कांम आयो। संवत् १६३४ राणै प्रतापसिंघ मालपुरो मार्यो।

संवत् १७२६ चैत सुदि १० इरांनरो पातिसाह नादरसाह दिली आयो। सहर लूंटीयो। तिणरी विगत—१९० उंट तो षजांनारा भरिया, वले १०० हाथी षजानांरा भरिया, वले १७० गाडी चौबलदा षजनांसुं भरी, ३०० षचरां पातिसाही पोसाष जरीरो कपडो तिणसुं भरी। पांच तषत पातसाहरै वैसणरा। एकेक कोडि, नव नव लाष, नव नव हजार, नव नव सै, इतनां रुपीयांरो एकोको तषत उरा लीना। वले ४००० घोडा पातिसाही उमरावारा लीना। १३००० उंट पातसाही तथा उमरावारा लीया। ९०० हाथी पातसाहरा उमरावारा लीना। ३ रथ, एकण रथरै ४ हाथी जूतै तिके लीधा। १६०० वहलीया पातिसाही लीधा। इतरी जिनस पातसाह नादरसाहरो दिवांण कमांच कुलीषां लालकोटमै आय नै ले गयो, नै पातसाह महमदसाहनै सलेमां वागमै

निजरबंध कैद दाषल कीयो । निवाव षान दोरां कांम आयो । लाष ३ सीपाइ कर लोक करि इतरो कतल करि कीयो । दिली सरव लुंटाणी ।

सं० १७८४ वैसाष सुदि १५ अजमेररै सोवायत तुरक रांणाजीरो हुरडो मारीयो । १३०० वंधि किवि । पछै राजा जेसिंघ सं० १७८४ मगेरै मेरां ऊपर आयो । असाढ सुदि ९ अजमेर डेरा हुवा । तरै वंधि छुडाई ।

सं० १५९८ चैत वदि ५ राव मालदे राव जैतसिंघनै मार नै वीकानेर लीघी । जैतो कूंपो गया था । फते किधी ।

सं० १७९७ वैसाष वदि ११ महाराज श्री अभैसिंघजी वीकानेर लीनी । कोट तो हाथ नायो मोरचा लगाया था । जिसै वषतसिंघजी राजा जेसिंघ आंबेररा धणीनै साथे ले नै जोधपुर आया तरै श्री अभैसिंघजी वीकानेर छोडनें उरा आया ।

सं० १७९१ सावण वदि ९ नवमी रांणो जगतसिंघ, राजा अभैसिंघ, माहाराव हाडो कोटारो धणी, राजा जेसिंघ लाल डेरा करि नै च्यारुं राजा हुरडा कनै तिसवारीयै गांव एकठा मिलीया । लाल डेरा माहाराज मेडतै कराया था तिका उठे डेरा रांणाजीरी निजर कीधा ।

*

तुअर अनंगपाल दिली वसाइ । व्यास जगजोति महुरत दीधो । तिको २१ पीढी लग तो तुअरां राज कीयो । तठा पछै सं० ११२९ चैत सुदि १२ तुवरां नै चहुवांणा लडाइ हुइ । तुवर भागा । दिली प्रथीराज चहुवांण लीधी । वरस ४० दिन १ राज कीयो ।

तठा पछै सं० ११७४ चहुवांणा नै पठाणा लडाइ कीनी । चहुवांण भागा । दिली पठाणा लीधी ।

पछै सं० १५३६ माहा सुदि ७ मुगलां नै पठाणां लडाइ हुइ । पठाण भागा । दिली मुगलां लीधी । तठा पछै दिलीमै मुगलांरी पातसाही छै ।

सं० १७०० सइकै राव अमरसिंघजी दिलीमै काम आया ।

*

वैराटी राजा राठोड हुवो । तिण कराया वैराटगढ छै । अबै तो तलहटी वधनोर सहर छै ।

सं० १६८६ काती वदि १ रांणा राजसिंघरो जनम, जिण राजसागर तलाव बंधायो ।

सं० १६१४ चैत वदि ९ निवाब कासम षांन जैतारण मारी, राठोड रतनसिंघ षीवावत कांम आयो। कोट मांहे छत्री छै। कोट तो उदा सूजावत करायो छै।

सं० १६५९ अकबर पातिसाह राजा सूरसिंघजीनैं माहाराज पदवी दीधी।

सं० १६९५ राजा गजासिंघजी आगरै काल कीयो। वडो प्रतापीक राजा थो।

सं० १६५२ सांवण वदि १ मोटै राजा काल कीयो लाहोर मांहै॥

*

२. खवास जातीय स्त्रियोंसे उत्पन्न कितनेएक सरदारोंकी नामावली।

केइक ठाकुर युं कहै छै फलाण सिंघजी पवासरा बेटा छै – युं कहिनै षूंपणो काढै। सो इतरा षवास पासवानांरा बेटा ठाकुर हुवा, नै मोटी ठौड परणीया।

(१) वांसवालै राव मांनसिंघजी, प्रतापसिंघजीरो विणयांणीरा पेटरो भलो रजपूत हुवो। पछै एक भोमियै महीडो पकडियो तिणनै मारियो। पछै उण भोमियैनै राठोड सूरजमलनै जैतमाल चांपावत मारीयो॥ १॥

(२) राव जगमालजी सिरोहीरो देवडो ठाकुर, तिणरै घरे पवासि १ हुंती, तिणरो बेटो राव कलो सीरोहीरो धणी हुवो। सो राव कलारी वहिन मोटो राजा परणीयो नै कलारी बेटी राजा सूरसिंघजीनैं परणाई॥ २॥

(३) राव सूरजन बूंदिरो धणी वांसवालै परणीयो थो। सो रावलजीरी बेटी नै आहेडा हिंगोलदासरी बेटी, तिणसुं आपसरै सुष थो। सो वा बालपणा मांहि रांड हुइ। सो राजलोक मांहे ज रहती। सो रावजीरी बेटी नै हिंगोलदासरी बेटीरै मांहोमांहि जीव जुवा घणी। सो रावलजीरी बेटी तो राव सूरजनसिंघ बुंदीरै धणीनै परणाई। उणनै चलावण लागा तरै रावजीरी बेटी कहाडियो – हिंगोलदासजीरी बेटीनैं मो साथे मेलसो तो हुं सासरै चालसुं। तरै रावलजी कहाडियो – पारकी बेटी साथे क्युं कर मेलि जाय। तरै रावलजीरी बेटी घणो हठ मांडियो। तरै घणै हठसुं साथे मेली। तिको काइ दैवगती इसडी हुइ, सो रावलजीरी बेटी राव सूरजनरै सम्बंध नही, उण रांडोलीसुं मन लागो। तिणरा पेटरो राव भोज हुवो, नै पूरांबाई हुइ तिका उग्रसेन चंद्रसेणोतनै परणाइ; करमसेणजीरी मा॥ ३॥

(४) वरसिंघ दुदावत मेडतीयो तिणरे घरे षवास हुंती। तिणरा पेटरो मोहणसिंघ कुमर हुवो। तिको भलां भलां रजपूतांरै परणीया, नै भेला बेसनै जीमीया ॥४॥

(५) गोपाळदास षीची मउदांनरो धणी, रांणां उदैसिंघजीरै चीतोड परणीयो। तरै बाईनै आणणैरै वास्तै राणा मांडणरा बेटानै मेलीयो। तिको मउदांन आयो। आगै राउळ गोपाल षीची ठाकुरैरै षवासरी बेटी १ नांनीसी थी नै मांडणजी पिण भोळासा था। सो राउळ गोपाल मांडणनै माडा पकडि छेहडा बांधनै षवासरी बेटी परणाइ। पछै मांडण तो उठै ही ज रह्यो, तिको मांडणरा केडायत सीसोदीया षीचीवाडामै छै ॥ ५ ॥

॥ इति विगत संपूर्णम् ॥

*

३. राठोडोंसे पहले मारवाडके प्रादेशिक भूमिपति।

आगै मारवाडमै धरतीरो वंटो क्यांइक दिने हुवो थो। मंडोवर पडिहारानुं १; सोझत हुलरानुं २; जैतारण भाद्राजण सींधलानुं ३; रींयां, पीपाड, सोवनथळीं सांषलानुं ४; महेवो षेड गोहिलानुं ५; षीवसर मांगलीयानुं ६।–आगै मारवाडमै इतरा वंट था ॥

*

४. नवकोट मारवाडका भौगोलिक परिचय।

अथ नवकोटांरी विगत लिष्यते–

१. **मंडोवर** कोट पवार सांवंतरो बैसणो छै। पछै पडिहारां लिनी। तठा पछै तुरकां लीधी। भाषर उपर गढ छै। मांडव रषेसर इण पहाड तपस्या करतो। तिणरै नांवसुं पहाडरो नांव मंडोवर कहीजै छै। नै तुरकां कनासुं रायधवल इंदै लीवी, पछै आपरी बेटी राव चुंडानै परणाइ, नै मंडोवर हथलेवामै राठोडानै दीनी। १।

२. दूजो कोट **अजमेर** पवार सिंघसूररो बैसणो छै। वडो तारागढ भाषर उपर छै। आंनासागर विसलीयो तलाव छै। तलहटी सहर छै। ष्वाजे पीरकी दरगा छै। पाषती मेरवाडारा गांव छै। २।

३. तीजो कोट **पुंगल** पमार गजमलरो बैसणो छै। सिंधरी धरतीसुं अडतो छै। वलोचांसुं कंठै, वीकानेरसुं परै कोस ३० रन मांहे छै। विचमां

पांणी नही । उंची भाखरी उपरै छै । क्युंहीक कोट आषती पाषती पडीयो छै । अबार तो बसती कोट मांहे घर २०० री छै । परै मरोट कोस २५ परा छै । बलोचांरै कटक जोर लागै छै । तिण करनै धरती षराव छै । भाटी केलणोतरा जगदे राज करै छै । लागै तो पुंगल जेसलमेरनै छै, नै बीकानेरथी नजीक छै । नै पैडो मुलतानरो वहु छै । तिणरी विसूद लागै छै । तिणरा रुपीया हजार १४ त १५ बैसै छै । गांव तलाव कोइ नही । कूवो १ कोटमांहे छै, कूवा ४ गांव बारै छै । पाणी खारो छै । पाषती थल मोटा जोरावर छै । पीवणा सरप बीजा ही घणा छै । ३ ।

४. चोथो कोट **लोद्रवो** जेसलमेर कनै छै । सूनो छै । पवार भाणरो बैसणो छै । जेसलमेर तठा पछै वसीयो छै । जेसलमेरसुं कोस ५ उपरै छै । पछै भाटी देवराय देरावररै उठीयौ भाण पवारनै मारनें लोद्रवो लीयो । कितरायक पाट तांइ भाटीरो राजथांन रह्यो । पछै भाटी जेसल आपरै नामै जेसलमेर वसायो । ४ ।

५. पांचमो कोट **आबूजी** अयल पवार बैसणो, अचलगढ छै । गढमांहे अचलेस्वर माहादेव छै । फेर जैनरा देवल छै । गढमांहे छै । तिण देवरां मांहे चौदसें चमालीस मणकी सर्वधातरी संचैं भर्योडी प्रतिमा छै । पवारांनै मारि नै देवडां लीधो । सीरोही परै कोस १२ छै । गांव ५४० लागै छै । ५ ।

६. छठो कोट **पारकर** हंस पवाररो बैसणो छै । पारकर भाषररै षुडै छै । कछ देसरै अडतो छै । १४४४ गांव लागै छै । धरती घणी छै । सोढा राज करै छै । राधनपुररा हाकमनुं मिलै छै । सूराचंदरै परै कोस ४० उपरा छै । सो राज तो सोढा करै छै । वरसाली निपट घणी निपजै छै । वले चावल घणां नीपजै छै । उनाली माफक उवै छै । ६ ।

७. सातमो कोट **धरधाट** तिको **उमरकोट** कहिजै छै । पमार जोगराजरो बैसणो छै । तठै सोढा पिण राज करै छै । यठानै पेसकसी देवै छै । बडो देस छै । घणां गांव लागै छै । १४४४ गांव छै नै पाछ्र देस घणो, धाटी घोडा अमामां देसमै नीपजै छै । ७ ।

८. आठमो कोट **जालोर** पमार भोजराजरो बैसणो छै । भाषर उपरा बडो गढ छै । मांहे झालर वाव अषूट पांणी छै । धास बलीतानै घणी ठोड छै ।

पाषती कलस जलंधरीनाथरा बे बडा भाषर छै। सहर हेठै वसै छै। सहर दोलो कोट छै। तलाव वावडी वडी जायगां छै। गांव ३६० लागै छै। ढोडी-याल, सीवांणो, रामसेण, लोहीयांणो, वडगांव, गुंदाऊं, राडधडो इतरा तो पर-गना लागै छै। धरती मांहे रजपूत मैणा भील रहै छै। बडी बांकी जायगा छै। घणी उनाली परगनै नीपजै छै। जोधपुररा धणीरो राज छै। ८।

९. नवमोकोट **किराडु** छै। धरणीवाराह पमाररो बैसणो छै। गांव ७०० लागै छै। भाषर मांहे वडी जायगा छै। चोगडदा पहाड छै। एक पोल, तिण मांहे होयनै आवणो छै। बीजो लगाव कठै ही नही। बडी अजीत जायगां छै। भाषर कोस २ पेरै फेरमै छै। दरबाररी जायगां पहाड उपर छै। पोलीयां सांमो। उभै मारग कोस ४ तांइ वडी ओरण झाडी छै। आवै जावै तिके दोहरा आवै। वावडी १ सहरराा मुंडा आगै छै। अचाल पांणी मीठो छै। तलाव १ पोलि नै सहर विचै छै। निपट सषरो बंधागल छै। वरसालूरो देस छै। उनालू नही। ९।

आ इतरी नवकोटी मारवाड छै। २७ सत्तावीस हजार गांव मारवाडरा छै।

*

५. राजपूतोंकी भिन्न भिन्न शाखाओंकी नामावलि।

(१) अथ **चहुवाणांरी** २४ साषा—

चहुवाण १, सोनिगरा २, देवडा ३, राषसिया ४, षीची ५, गिल ६, ईडरिया ७, वगसरिया ८, हाडा ९, चीबा १०, गोहिल ११, सहलोत १२, बेहल १३, वोडा १४, बालोत १५, गेलवास १६, नरहैवाणा १७, वेस १८, निरवांणा १९, सरपटा २०, टांमडिया २१, हुरडा २२, मालणु २३, वंकट २४—इति चोवीस साष ॥

(२) **गहैलोतांरी** २४ साष—

गहैलोत १, सीसोदीया २, आहडा ३, पीपाडा ४, हुल ५, मांगलीया ६, आसाय ७, कुपाजल ८, मगरोप ९, गोधा १०, डाहलीया ११, मोटसीरा १२, गोदार १३, मीवल १४, मेरा १५, टीवण १६, मोहिल १७, तिवड-किया १८, धरणीया १९, वेसवा २०, चंद्रावत २१, वाला २२, सुरहीया २३, गोतमा २४—इति चोवीस साषा ॥

(३) पमारांरी साष ३५–

पमार १, सोढा २, सांषला ३, मीता ४, भायल ५, पेस ६, पाणसवल्ल ७, वहीया ८, वाला ९, बाहड १०, मोढसी ११, हुवडा १२, सिलार १३, जैपाल १४, कागावा १५, उमट १६, धांधू १७, कावा १८ धुरिया १९, भायी २०, कछोटीया २१, काला २२, कालमुहा २३, षरा २४, घूटा २५, ढल २६, हरकल २७, जागा २८, ठाहा २९ गूगा ३०, गैलडा ३१, कलालीया ३२, कांकण ३३, पीयलीया ३४, डोड ३५–इति पैतीस ॥

(४) सोलंख्यांरी १० साष–

सोलंषी १, वागेला २, रेहवरा ३, षिलत ४, षिराड ५, वीरपुरा ६, पाथपुरा ७, भूट ८, वेहला ९, पालत १०–इति दस साष ॥

(५) पडिहारांरी छ साष–

पडिहार १, इंदा २, धांधीया ३, षुसरा ४, दाहिमा ५,.... ॥

*

(६) अथ राठोडांरै बापदादै लारै निकली पांप तिणरी विगत–चुंडावत १, रिडमलोत २, जोधावत ३, भोपतोत ४, मोहणदासोत ५, नरहरदासोत ६, रायसलोत ७, जैतसीयोत ८, रतनसियोत उदावत छै ९, रतनोत १०, रांमोत ११, मालदेवोत १२, रायमलोत १३, रावरांमरा १४, जसभांणोत १५, महेसदासोत १६, तिलोकसियोत १७, वीकमसीयोत १८, भोजरातोत १९, गांगावत २०, तेजसीयोत उदावत मालदे २१, जैतसीयोत २२, नेतसीयोत २३, पेतसीयोत २४, षींवकरणोत २५, राजसिंघोत उदावत २६, प्रतापसिंघोत उदावत २७, जगरांमोत उदावत २८, चांपावत २९, कुंपावत ३०, जैतावत ३१, मेडतीया ३२, चांदावत ३३ ॥

*

सोभावत राठोड १, सोभत सलषावत २, आसकरणोत ३, भदावत ४, भोजराजोत ५, नथावत ६, कचरावत ७, रांमपचाणोत ८, षांनोत ९, अपैराजोत १०, अडवलोत ११, रूपावत १२, लाषावत १३, पूंनावत १४, वालावत १५, पैतसीयोत १६, सीघजीरा १७, मानसिंघोत १८, देवराजोत वीरमोत सलषावत १९, गोगादेवोत सलषावत २०, मांडलोत २१, मांडणोत २२, उरजनोत २३, भारमलोत २४, धांधल २५ ॥

*

कल्यांणसिंघ – अमरसिंघोत, नींवाज १.
केसरीसिंघ वषतसिंघोत, रास २.
उदैरांम जगरांमोत, नींवोल ३.
देवीसिंघ माहासिंघोत, पोकरण चांपावत ४.
पेमसिंघ राजसिंघोत चांपावत, पाली ५.
कुसलसिंघ हरनाथोत, चांदावत ६.
भगोतसिंघ सगतसिंघोत चांदावत, रोहीठ ७.
सुरताणसिंघ अनोपसिंघ चांदावत ८.
मोहकमसिंघ पदमसिंघोत चांदावत, धांमली ९.
कनीरांम रांमसिंघोत कुंपावत, आसोप १०.
प्रथीसिंघ फतेसिंघोत कुंपावत, रांणावास ११.
कुसलसिंघ सिरदारसिंघोत कुंपावत, मांढा १२.
माटी उदैभाण वालरवारो धणी १३.
किसनासिंघ हठीसिंघोत, षेजडलावालो १४.
हिंमतसिंघ अचलसिंघोत जैतावत, वगडीरो धणी १५.

*

अथ जोधपुरा धणीरै जीमणी डावी मिसलतरी विगत षांपारी नांव छै –

मिसलत जीमणीरा उमराव –

चांपावत १, कुंपावत २, जैतावत ३, भदावत ४, कलावत ५, राणावत ६, कणोत ७, वाला ८, धवेचा ९, महेचा १०, पाता ११, मांडला १२, उहड १३, भाटी १४, मांगलीया १५, पूरवीया १६, प्रोहित १७ ॥

मिसलत डावीरी विगत –

मेडतीया १, माधवदासोत २, विसनदासोत ३, चांदावत ४, रायमलोत ५, ईसरोत ६, सुरताणोत ७, केसोदासोत ८, गोयंदासोत ९, जगमालोत १०, रायसिंघोत ११, जोधा १२, उदावत १३, करमसोत १४, सुजावत १५, जैतमालोत १६, सत्तावत १७, सोढा १८, कछपाहा १९, इंदा २०, मुंहता २१, सिपाइ २२, आरबी २३, देस दीवाण २४ ॥

ऐ डावी मिसल बैठै, अथवा उभा रहै ॥

अथ जोधपुरा धणीरी पीढीयां सींहांजीसुं लिष्यते –

रावसिंहाजी पुत्र आसथांन १.
आसथांन पुत्र धूहड २.
धूहडपुत्र रायपाल ३.
रायपाल पुत्र कन्हैराय ४.
कनैराय पुत्र जालणसी ५.
जालणसी पुत्र छाडा ६.

छाडा पुत्र तीडा ७.
तीडा पुत्र सलषा ८.
सलषा पुत्र वीरमदे ९.
वीरमदे पुत्र चुंडा १०.
चुंडा पुत्र रिडमल ११.
रिडमल पुत्र जोधा १२.
योधा पुत्र सूजा १३.
सूजापुत्र वागा पुत्र गांगा १४.
गांगा पुत्र राव मालदे १५.
मालदे पुत्र उदैसिंघ, जीनै 'राजा' पदवी पातसाह दीवी १६.
उदैसिंघ पुत्र सूरसिंघ, माहाराज पदवी दीधी पतसाह १७.
सूरसिंघ पुत्र गजसिंघ १८.
गजसिंघपुत्र जसवंतसिंघ १९.
जसवंतसिंघ पुत्र अजीतसिंघ २०.
अजीतसिंघ पुत्र अभैसिंघ बषतसिंघ २१.
अभैसिंघ पुत्र रामसिंघ २२.
बषतसिंघ पुत्र विजैसिंघ २३.
विजैसिंघ पुत्र फतेसिंघ, जीरै षोलैं भीमसिंघ २४.
भीमसिंघ पुत्र धूकलसिंघ राठोडां षडो कियो २५.
विजैसिंघ पुत्र गुमानसिंघ पुत्र मानसिंघ कायम, पुत्र छत्रसिंघ, काल कीयो २६ ॥

*

८. उदयपुर – मेवाडके राजवंशकी सूची ।

अथ दिवाण चीतोडरा धणीरी एकलिंग अवतार दीवाणरी वंसावली लिष्यते – संवत ५५० वर्षे नागद्रहा चूडामणी देवी गोरा भैरव पुज्या । ब्रह्मारो पुत्र विजयपान रिष तठाथी विजयपाण गोत्र कहांणो छै ।

श्रीब्रह्माजी १, विजयपान २, देवसर्मा ३, अगनसर्मा ४, विजयसर्मा ५, षेमसर्मा ६, रिषसर्मा ७, जगसर्मा ८, नेरसर्मा ९, गजसर्मा १०, वायसर्मा ११, दतसर्मा १२, जयसर्मा १३, वास्तुसर्मा १४, केससर्मा १५, जांमसर्मा १६, चीरसर्मा १७, विजयसर्मा १८, लेपसर्मा १९, राजसर्मा २०, विराजसर्मा २१, हर्षसर्मा २२, पीवसर्मा २३, वेदसर्मा २४, रिदयसर्मा २५, कलससर्मा २६, जससर्मा २७, लिलाटसर्मा २८, वादसर्मा २९, नरसर्मा ३०, हरिसर्मा ३१, धरमसर्मा ३२, सुक्रतिसर्मा ३३, सुभाष्यसर्मा ३४, सुवुधिसर्मा ३५, विस्वसर्मा ३६, हरिदेवसर्मा ३७, कांमपतिसर्मा ३८, नेरनाथसर्मा ३९, पीतसर्मा ४०, हेमवर्णसर्मा ४१, जगकारसर्मा ४२, राजसर्मा ४३, गालवदेवसर्मा ४४, गालवसर्मा ४५, गालसूरसर्मा ४६, पालदेवसर्मा ४७, हजनसर्मा ४८, हरजनकारसर्मा ४९, हरमादिसर्मा ५०, गोविंदसर्मा ५१, गोवर्द्धनसर्मा ५२, गोद-

सीससर्मा ५३, वाकिसर्मा ५४, विराटसर्मा ५५, वेगसर्मा ५६, नित्यानंदसर्मा ५७, वनसर्मा ५८, ऐ आठावन पीढी तो सर्मा हुवा ।

अठा आगै दित्य हुवा छै—

गोदसीदित्य १, अजादित्य २, गुहादित्य ३, माधवादित्य ४, जलादित्य ५, विजलादित्य ६, कमलादित्य ७, गोतमादित्य ८, भोगादित्य ९, जालिमादित्य १०, पदमादित्य ११, देवादित्य १२, कृष्णमादित्य १३, जमादित्य १४, हेमादित्य १५, कलादित्य १६, मेघादित्य १७, वैणादित्य १८, रामादित्य १९ कामादित्य २०, हर्षमादित्य २१, देवराजदित्य २२, विकादित्य २३, जनकादित्य २४, नेमकादित्य २५, रांमादित्य २६, केसवादित्य २७, कर्णादित्य २८, यमादित्य २९, महेंद्रादित्य ३०, गजपादित्य ३१, गोविंदवित्य ३२, गंगारधरदित्य ३३, गंगादित्य ३४, गोवर्धनदित्य ३५, मेरादित्य ३६, मेवादित्य ३७, माधवादित्य ३८, मदनादित्य ३९, घणादित्य ४०, राणांदित्य ४१, वैणादित्य ४२, विक्रमादित्य ४३, नरायणदित्य ४४, षेमादित्य ४५, षेषकादित्य ४६, विजयादित्य ४७, केसवादित्य ४८, नागादित्य ४९, भागादित्य ५०, ग्रहादित्य ५१, देवादित्य ५२, अंबादित्य ५३, भोगादित्य ५४ । अंबात्र पुज्य माता । इतरी पीढी दित्य बांमण हुवा ॥

नागद्रहा बांमणनै नागद्रा गांव । सो किण वास्तै नागदहा कहांणां । राजा परीक्षतनै सर्प षाधो, तिणरो बेटो राजा जनमेजै बापरा वैर उपरि नागां उपर कोप कीयो । तैर नागदहण होमरो विचार कियो । तैर बामणांनै पूछीयो । तरां बीजां बामण तो इण वातमैं आवै नही । तैर इणां नागदहां कह्यो जे होमस्यां, तैर इणां ही ज होमीया । सो ए बामण नागदहा कहांणां । जिण गांवमै होमरो कुंड कियो थो तिण गांवरो नांव नागद्रह कहाणो । श्री एकलिंगजी कनै राठसेन देवी छै, तठै हारीत रिष बारा वरसरी उठै तपस्या करी । तठै बापै रावल नानै थकै हारीत रिषरी सेवा कीनी । हारीत रिषनें तपस्यां करतां बारै वरस पूरा हुवा । तैर क्युंहीक बापा रावलनै हारीत रिष दैणरो विचार कियो । तैर राठादेवी उपरै हारीत रिष कोपायमांन हुवो—मोनै इतरा वरस तपस्यां करतां हुवा रांड तै मांहरी कद षबर लीधी नही । तैर राठादेवी प्रसन्न होय नै कह्यो—रिषेश्वरजी आप मोनै कांइ फरमावो छो? । तैर हारीत कह्यो जे बापो रावल मांहरो सेवग छै, थें क्युंहीक इणनै दिरावो । तैर देवी कह्यो—आप

सीवजीनै प्रसन्न करो। तरै हारीत माहादेवजीरी अस्तुति करी। तरै भाषर मांहे माहादेवजीरो लिंग प्रगट हुवो। तरै हारीत बापा रावलरी वीनती कीनी। तरै महादेवजी मेवाडरो राज बापा रावलनै दियो। हारीत रिष राज दियो सो श्रीदिवाणनै आसीर्वाद दीजै छै तरै सूं कहै छै– 'हर हारीत प्रसन्नात्' इसो कहीजै। सो हिवै नागद्रह क्षत्री कहीजै छै। भोगादित्यरो भोज हुवो। भोजरै बापो रावल हुवो। तिणनै हारीत रिषि तुष्टमान हुवा। सो एकलिंगजीरो दियो राज करै छै।

भोज रावल १, बापो रावल २, षुमाण रावल ३, गोवंद रावल ४, सिहेंद्र रावल ५, आलूस रावल ६, सीहड रावल ७, सकतकुमार रावल ८, सालिवाहन रावल ९, नरवाहन रावल १०, अरिपास रावल ११, विवणस रावल १२, नरबिंब रावल १३, नरहर रावल १४, उदित रावल १५, करणादि रावल १६, भादु रावल १७, गात्री रावल १८, हंस रावल १९, जोग रावल २०, वडसी रावल २१, वीरसी रावल २२, समरसी रावल २३, रतनसी रावल २४,– तिणरी राणी पदमणी हुवी। सिंघल द्वीपसुं ल्यायो। तिण उपरां संवत् १३५५ तेरै नै पंचावैन अलावदीन आयो तरै गोरो वादल उमराव कांम आया। भीरभांण रावल २५, सरपंजर रावल २६, नवपंड रावल २७, कुमेर रावल २८, जैतसी रावल २९, करण रावल ३०, ऐ तीस पीढी तांउ रावल हुवा।

करण रावलरै राहप रांणो हुवो १, देहु राणो २, नरु रांणो ३, हरसूर राणो ४, जसकर्ण राणो ५, नागपाल राणो ६, पुण्यपाल राणो ७, पीथड राणो ८, भूणसी रांणो ९, भीमसी रांणो १०, अजसी रांणो ११, भडलषमण रांणो १२, अमरसी रांणो १३, हमीर रांणो १४, षेतो रांणो १५, लाषो रांणो १६, मोकल रांणो १७, कुंभो राणो १८, रायमल रांणो १९, सांगो राणो २०, उदैसिंघ राणो २१, प्रतापसिंघ राणो २२, अमरसिंघ राणो २३, करण राणो २४, जगतसिंघ राणो २५, राजसिंघ राणो २६, जेसिंघ राणो २७, अमरसिंघ रांणो २८, संग्रामसिंघ रांणो २९, जगतसिंघ रांणो ३०, प्रतापसिंघ राणो ३१, अडसी रांणो ३२, भीमसिंघ राणोजी ३३, जवांनसिंघ रांणोजी ३४॥

*

'नाणपंचमी' अने 'भविस्सयत्त' कहा

[ज्ञानपूजामाहात्म्यविषयक बे जैन कथा ग्रन्थो]

*

लेखक—श्रीयुत अमृतलाल सवचंद गोपाणी एम्. ए.

प्रस्तुत લેખમાં મહેશ્વરસૂરિ રચિત નાણપંચમી કહા અને ધનપાલ રચિત ભવિ-સ્સયત્ત કહા—એ બે જ્ઞાનનું માહાત્મ્ય વર્ણવનારી જૈન કથાઓનો—જેમાંની પહેલી પ્રાકૃત ભાષામાં અને બીજી અપભ્રંશ ભાષામાં રચાએલી છે—તુલનાત્મક પરિચય આપવાનો મારો ઉદ્દેશ છે. એમાંની પહેલી કથા (જેને "પંચમી માહાત્મ્ય કથા" ના નામથી પણ ઓળખાવવામાં આવે છે) શ્વેતાંબર સંપ્રદાયના સજ્જન ઉપાધ્યાયના શિષ્ય મહેશ્વરસૂરિની રચના છે. એ કથા પ્રાકૃત ગાથાબદ્ધ હોઈ બે હજાર શ્લોકમાં લખેલી છે[1] જેની તાડપત્રીય પ્રતિ વિ૦ સં૦ ૧૧૦૯માં લખાયેલી જેસલમીર ભાંડારમાં છે.[2] એ કથાને દસ આખ્યાનમાં તેમણે વિભક્ત કરેલી છે જેમાંનું પ્રથમ જયસેન નામે આખ્યાન અને અંતિમ ભવિષ્યદત્ત આખ્યાન દરેક પાંચસો પાંચસો ગાથામાં લખાયેલા છે. બાકીનાં આઠ આખ્યાનો સવાસો સવાસો ગાથામાં પૂરાં કરી દેવામાં આવ્યાં છે. આ સમગ્ર કથાનું મુખ્ય ધ્યેય જ્ઞાનપંચમી વ્રતનું માહાત્મ્ય સમજાવવાનું છે. એ વ્રત કોણ અને ક્યારે ગ્રહણ કરી શકે—તેમ જ એને ગ્રહણ કરવાનો શો વિધિ છે તથા તેના ઉજમણાની રીત અને તેનું શું ફળ છે એ વગેરે તમામ હકીકત મહેશ્વરસૂરિએ પ્રવાહબદ્ધ અને હૃદયંગમ પદ્યમાં સમજાવી છે. જ્ઞાન-પંચમીવ્રતનું માહાત્મ્ય આમ તો સૌ કોઈ સમજે છે પરંતુ સૌભાગ્ય, સુકુલજન્મ, વ્યાધિ-વિમોક્ષ અને છેવટે મોક્ષ જેવાં ફળ જ્ઞાનપંચમી વ્રતને યથાવિધિ કરવાથી પ્રાપ્ત થાય છે એ વાત જુદાજુદા પાત્રો દ્વારા સચોટ અને ભાવવાહી શૈલિથી સમજાવનાર એવો આજ પર્યંત ઉપલબ્ધ કોઈ પ્રાચીન ગ્રન્થરત્ન હોય તો તે આજ છે એમ મારૂં માનવું છે. જ્ઞાનપંચમી વ્રતના સર્વસાધારણ અત્યુત્તમ ફળને વર્ણવતી ભવિષ્યદત્ત કથા, સૌભાગ્યપંચમી કથા, પંચમી કથા વગેરે ઘણી ઘણી કથાઓ, સંસ્કૃતમાં, અપભ્રંશમાં, અને જૂની ગુજરાતીમાં રચાયેલી મળી આવે છે, પરંતુ એ બધાથી બધી બાબતોમાં ચડીઆતી અને એ બધાથી પ્રાચીન આ કથા છે એ વાત નિઃસંશય છે.

ધર્કટવંશીય વણિક્ ધનપાળ કવિએ ભવિષ્યદત્ત કથા નામની એક કથા બાવીસ સંધિમાં અપભ્રંશ ભાષામાં શ્રુતપંચમી (જ્ઞાનપંચમી) વ્રતના પ્રભાવને વર્ણવવાના હેતુથી

---

१ मिलियाणं च दसाणवि एत्थ कहाणाण होइ विन्नेयं ।
गाहाणं माणेणं दोण्हिसहस्साइं गंथग्गं ॥ १०—५०० ॥

(મહેશ્વરસૂરિ રચિત 'જ્ઞાનપંચમી કથા').

૨ પં. લાલચંદ્ર ભગવાનદાસ ગાંધી કૃત, "જેસલમીર ભાંડાગારીય ગ્રન્થાનાં સૂચી", ગાયકવાડ'ઝ ઓરીએન્ટલ સીરીઝ નં. ૨૧, વડોદરા, ૧૯૨૩, પૃષ્ઠ ૪૪.

લખી છે.[3] તેના પિતાનું નામ "માએસર" અને માતાનું નામ "ધણુસિરિ" હતું. ધનપાળ કવિ દિગંબર દેખાય છે. કથાનું અપરનામ "સુયપંચમી કહા"[4] ("સિયપંચમી કહા" પદ પણ મળી આવે છે; છતાં "સુયપંચમી કહા" એ વધારે ઠીક છે) એ શ્વેતાંબર આમ્નાય પ્રચલિત જ્ઞાનપંચમી શબ્દ માટેનો દિગંબર આમ્નાય યોજિત પારિભાષિક શબ્દ છે. તે તથા "भज्जिवि जेण दियंबरि लाइउ"[5] પદ પ્રયોગ, દિગંબર સંપ્રદાય સ્વાયત્તીકૃત ક્ષુલ્લક શબ્દનો ઉપયોગ,[6] અને અચ્યુત સ્વર્ગનો સોળમા સ્વર્ગ તરીકેનો નિર્દેશ[7]–આ બધી બાબતો ધનપાળ કવિ દિગંબરમતાનુયાયી હતો એ માન્યતા તરફ આપણને લઈ જાય છે. ધર્કટ વંશ દિગંબરોનો હતો એમ ડૉ. યાકોબી આબુપર્વત ઉપર આવેલા દેલવાડા મંદિરસ્થ, ઈ૦ સ૦ ૧૨૩૦ના તેજપાલના શિલાલેખ સંબંધી દલીલો આપી સાબીત કરે છે;[8] જ્યારે ધર્કટ વંશમાંથી ઉપકેશ–ઊકેશ–ઓસવાલોની શાખા નીકળી હતી એ વાત આપણને એ વંશ શ્વેતાંબરોનો હતો એ અભિપ્રાય તરફ ઘસડી જાય છે.[9] કદાચ એમ પણ હોય કે એ વંશ ધનપાળના સમયે દિગંબરોનો હોય અને પાછળથી ગમે તે કોઈ કારણે શ્વેતાંબરોનો થયો હોય. ગમે તેમ હોય પણ આભ્યંતરિક પ્રમાણદ્વારા એ વાત નિર્વિવાદ છે કે ધનપાળ દિગંબરમતાવલંબી હતો. આ ધનપાળ પાઇઅલચ્છીનામમાલાકાર ધનપાલ કરતાં જૂદો છે એ વાત તો પાઇઅલચ્છીનામમાલાકારનો પિતા સર્વદેવ હતો એ કારણે સુસ્પષ્ટ છે.

"સમરાદિત્યકથા" અને "ભવિષ્યદત્તકથા" વચ્ચે નિદાનસામ્ય છે (જુઓ, વીસમી સંધિ) એ દલીલનો આશ્રય લઈ ધનપાળ હરિભદ્રસૂરિનો તરતનો અનુગામી હોય એમ ડૉ. યાકોબી સિદ્ધ કરે છે.[10] હરિભદ્રસુરિ ઈ૦ સ૦ની નવમી શતાબ્દિના ઉત્તરાર્ધમાં (મુનિ જિનવિજયજીના મતે ઈ૦ સ૦ ૭૦૫થી ઈ૦ સ૦ ૭૭૫)[11] વહેલા થયા હોવા જોઇએ એમ ડૉ. યાકોબી માને છે. એ હિસાબે ધનપાળ કવિ વહેલામાં વહેલો ઈ૦ સ૦ની દશમી શતાબ્દિમાં થયો હોવો જોઇએ એમ ડૉ. યાકોબી ધારે છે.

---

૩ આ કથા યાકોબીએ જર્મનીમાં ઈ સ. ૧૯૧૮ માં સંપાદિત કરી બહાર પાડી અને ત્યારબાદ ગા. ઓ. સી. મા નં. ૨૦, સ્વ. દલાલે અને પ્રો. ગુણેએ પ્રસ્તાવના, ટીપ્પણી અને શબ્દકોષ સહિત ઈ. સ. ૧૯૨૩ માં બહાર પાડી.

૪ જુઓ. ગા. ઓ. સી. પ્રકાશિત ભવિષ્યદત્ત કથાની પ્રસ્તાવનાનું પૃ. ૧.

૫ જુઓ, ઉપર્યુક્ત પુસ્તકની પાંચમી સંધિ, વીસમું કડવક, ત્રીજી પંક્તિ.

૬ જુઓ, ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, ૧૭; ૭; તથા ૧૮; ૧.

૭ જુઓ, ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, ૨૦; ૯.

૮ જુઓ, યાકોબી સંપાદિત 'ભવિષ્યદત્ત કથા' પ્રસ્તાવના પૃ. ૬. આ જર્મન ભાગનું અંગ્રેજી ભાષાંતર કરી સારાંશ સમજાવવા બદલ ભારતીય વિદ્યા ભવનના મારા સહકાર્યકર શ્રી હરિવલ્લભ ચુનીલાલ ભાયાણી, એમ. એ. નો આભારી છું.

૯ જુઓ પં. લાલચંદ્ર ભગવાનદાસ ગાંધી કૃત, "પત્તનસ્થ પ્રાચ્ય જૈન ભાંડાગારીય ગ્રન્થસૂચી, પ્રથમ ભાગ", ગા. ઓ. સી. નં. ૭૬, વડોદરા, ૧૯૩૭, પૃ. ૪૨૭ તથા ૨૩૯.

૧૦ યાકોબી સંપાદિત "ભવિષ્યદત્ત કથા"ની પ્રસ્તાવના પૃષ્ઠ ૬.

૧૧ જુઓ મુનિ જિનવિજયજી સંપાદિત "જૈન સાહિત્ય સંશોધક"–પુ. ૧. અંક. ૧. માં "હરિભદ્રસૂરિકા સમય નિર્ણય" શીર્ષક લેખ.

દલાલ-ગુણે સંપાદિત 'ભવિસ્સયત્તકહા'ની પ્રસ્તાવનામાં ડૉ. ગુણે કહે છે કે ધનપાલ પ્રયુક્ત અપભ્રંશ હેમચંદ્ર ઉદાહૃત અપભ્રંશ કરતાં, રૂપવૈવિધ્ય અને નિયમશૈથિલ્યને કારણે પ્રાચીન દેખાય છે. જે સમયે અપભ્રંશ ભાષા બોલાતી બંધ નહિ થઈ હોય તે વખતે ધનપાળે 'ભવિષ્યદત્ત કથા' લખી હોવી જોઇએ. ધનપાળના સમયમાં બોલાતી અપભ્રંશ ભાષાને હેમચંદ્ર ઉદાહૃત અપભ્રંશનું સ્વરૂપ પામતાં ઓછામાં ઓછી બે સદી લાગી હશે એમ કલ્પી ડૉ. ગુણે ધનપાળને હેમચંદ્ર કરતાં બે સદી વહેલો એટલે કે ઈ૦ સ૦ની દશમી સદીમાં મુકે છે.[૧૨] ડૉ. યાકોબીએ ધનપાળ કવિનો વહેલામાં વહેલો સમય ઈ૦ સ૦ની દસમી સદીનો સ્થિર કર્યો છે તેમાં, અને ડૉ. ગુણેએ-જો કે બીજી દલીલદ્વારા-નિયત કરેલા ધનપાળ કવિના તેના તે જ સમયમાં, મારે લગભગ એકથી સવા સદીનો ઉમેરો કરવાનો છે અર્થાત્ સ્વતંત્ર દલીલ યોજી ધનપાળ કવિને અગીઆરમી સદીના લગભગ અન્તભાગમાં મુકવાનો આ લેખમાં મારો આશય છે.

તે સ્વતંત્ર દલીલ આ છે. મહેશ્વરસૂરિ રચિત ઉપર્યુક્ત જ્ઞાનપંચમી કથા વાંચ્યા પછી અને ખાસ કરીને તે કથાનું છેલ્લું અને દસમું આખ્યાન કે જેનું નામ ભવિષ્યદત્ત આખ્યાન છે તે વાંચ્યા પછી તેમ જ તેને ધનપાળ કવિ રચિત ભવિસ્સયત્ત કહા સાથે બરાબર સરખાવ્યા બાદ, મારો એવો દૃઢ અભિપ્રાય થયો છે કે ધનપાલ કવિએ પોનાની કથાનું વસ્તુ મહેશ્વરસૂરિ રચિત જ્ઞાનપંચમ્યંતર્ગત દસમા અને છેલ્લા ભવિષ્યદત્ત આખ્યાનમાંથી લીધું છે. કળાની દૃષ્ટિએ ધનપાળે વર્ણનવિસ્તાર જરૂર કર્યો છે પણ વસ્તુમૌલિકતાનો યશ તો મહેશ્વરસૂરિને ફાળે જ જાય છે. ભવિષ્યદત્ત આખ્યાનનો અને ધનપળ રચિત ભવિષ્યદત્ત કથાનો સારાંશ મેં નીચે પ્રમાણે આપ્યો છે. અને ત્યાર બાદ એ બન્ને વચ્ચેના સમાન અને અસમાન તત્ત્વોને તપાસી ધનપાળ કવિને મેં મહેશ્વરસૂરિના ઉત્તરકાલીન તરીકે એટલે કે ઈ૦ સ૦ની અગીયારમી સદીના પ્રાન્ત ભાગમાં મુકેલ છે. કારણ કે મહેશ્વરસૂરિ રચિત "પંચમીમાહાત્મ્ય"ની પ્રાચીનમાં પ્રાચીન ઉપલબ્ધ તાડપત્રીય પ્રતિનો લેખન સંવત્ ઈ૦ સ૦ ૧૦૫૩ (વિ૦ સં૦ ૧૧૦૯) હોવાનું માલુમ પડ્યું છે. આ ઉપરથી મહેશ્વરસૂરિનો કાર્યકાળ દસમી સદીની છેલ્લી પચ્ચીસી અને અગીઆરમી સદીની પ્રથમ પચ્ચીસીનો ઠરે. અને એટલે એમની અને ધનપાળની વચ્ચે પચાસ વર્ષનું અંતર કલ્પીએ તો ધનપાળનો કાર્ય કાળ અગીઆરમી સદીનો પ્રાન્તભાગ સિદ્ધ થાય.

*

ભવિષ્યદત્ત આખ્યાનનો સારાંશ.

દક્ષિણ ભરતખંડને વિષે કુરુ નામનો દેશ હતો. તેમાં ગજપુર નામનું એક સુંદર શહેર હતું. એ નગરમાં કૌરવવંશીય ભૂપાળ નામનો રાજા રાજ્ય કરતો હતો. ત્યાં ધનપતિ નામનો એક વૈભવશાળી વણિક્ રહેતો હતો. તેને કમલશ્રી નામની શ્રી જેવી એક પત્ની હતી. સમય જતાં તેને ભવિષ્યદત્ત નામના એક પુત્રરત્નની પ્રાપ્તિ થઈ. (ગાથા ૨૫).

---

૧૨ જુઓ દલાલ-ગુણે સંપાદિત "ભવિષ્યદત્ત કથા"ની પ્રસ્તાવના, પૃ. ૪.

સમાધિગુપ્ત નામના મુનિવરેન્દ્ર તરફ ગતજન્મમાં બતાવેલી દુગંછાથી ધનપતિને કમલશ્રી તરફ અભાવ ઉત્પન્ન થયો અને તેને તેના પીયેર કાઢી મૂકી. ભવિષ્યદત્ત પણ માતા પાસે ગયો. તેને જોઈ માતા કમલશ્રી બોલી કે 'પુત્ર! તારે તારા પિતાને છોડીને અહિં આવવું જોઈતું ન હતું'. ભવિષ્યદત્તે પ્રત્યુત્તર આપ્યો કે 'માતા! આવું વચન બોલવું તને યોગ્ય નથી' કારણ કે 'जणणी विरहे जम्हा जणओ खलु पित्तिओ होइ' (દસમું આખ્યાન ગાથા. ૩૫). એ શહેરમાં વરદત્ત નામે એક માણુસ રહેતો હતો જેને મનોરમા નામની સ્ત્રીથી રૂપલાવણ્યમયી સરૂપા નામની પુત્રી હતી જેનો હાથ ધનપતિએ માંગ્યો એટલે તેને ધનપતિ સાથે પરણાવવામાં આવી. આ બીજી વારની પત્નિથી ધનપતિને બંધુદત્ત નામે પુત્ર થયો. આ બંધુદત્તને તેના મિત્રો એકદા કહે છે

"पुव्वज्जियदव्वाइं जो भुंजइ महिलिय व्व घरमज्झे ।
सो पुरिसनामधारी कह नवि लज्जेइ लोयंमि" ॥ १०।४५

એ ઉપરથી તેના તમામ મિત્રોની ઇચ્છાનુસાર બંધુદત્તે ધનોપાર્જન માટે સુવર્ણભૂમિ જવા વિચાર કર્યો. (ગાથા ૫૦)

ભવિષ્યદત્તે પણ બંધુદત્ત સાથે જવા નિશ્ચય કર્યો. પાંચસો માણુસોના સાર્થ સાથે તેઓ તો જવા ઉપડ્યા. વેપારીઓ જવા ઉપડ્યા તે પહેલાં બંધુદત્તની માતા સરૂપાએ બંધુદત્તને કહ્યું 'પુત્ર તું એવું કરજે કે જેથી ભવિષ્યદત્ત પાછો ન આવે' (तह पुत्त! करेज्ज तुमं भविस्सदत्तो जह न एइ – १०।५८). સાર્થ તો ચાલ્યો. રસ્તામાં 'મયણાય દીવ' આવ્યો. ત્યાં આગળ સૌ ઉતરી ફળ ફૂલાદિક ગ્રહણ કરવા લાગ્યા. બંધુદત્તે જ્યારે જોયું કે ભવિષ્યદત્ત નથી ત્યારે સાર્થને ઉપડવાની આજ્ઞા આપી દીધી. વિવરાભિમુખ પુરાણી સોપાનપંક્તિ, એ દ્વીપમાં એકલા રહી ગયેલ ભવિષ્યદત્તે દેખી. તે ઉપરથી તે તો ઉપર ચ્હડીને જુએ છે તો એક નગર તેણે દેખ્યું. (ગાથા ૭૫)

તે નગરમાં ચંદ્રપ્રભ જિનનું દેવાલય પણ તેણે દેખ્યું. ચંદ્રપ્રભ જિનેશ્વરની ભવિષ્યદત્તે સ્તુતિ–સ્તવના કરી. બરાબર આ વખતે, પૂર્વ વિદેહની અંદર યશોધર કેવલિનો કૈવલ્યમહિમા કરી, ભવિષ્યદત્તનો ભાવિ વૃત્તાંત પૂછી, ભવિષ્યદત્તના પૂર્વ સ્નેહને લઈને અચ્યુત કલ્પના દેવતાએ ચંદ્રપ્રભ જિનાલયમાં દિવ્યાક્ષર પંક્તિ લખી:–

"एत्तो पंचमगेहे बहुविहरयणेहिं भूसियदुवारे ।
कन्ना भविसणुरूवा अच्छइ वररूवसंजुत्ता ॥ १०।९१ ॥
तीए होही भत्ता भविस्सदत्तो त्ति नत्थि संदेहो ।
धणवइणो घरिणीए कमलसिरीए सुओ सुहओ ॥ १०।९२ ॥"

એ ઉપર્યુક્ત પંક્તિઓ વાંચી ભવિષ્યદત્તને ઘણું આશ્ચર્ય થયું. અને તે તો તે કન્યાની શોધમાં ચાલ્યો. તેનું નામ લઈ તેને બારણેથી બોલાવી. કન્યાએ હર્ષ અને ભયથી દ્વાર ઉઘાડી તેને આસન આપ્યું. ભવિષ્યદત્તે તે યુવાન કન્યાને જોઈ તે દિવસને ધન્ય ગણ્યો. (ગાથા ૧૦૦).

ક્ષેત્રદેવતાએ તે બન્નેના પાણિગ્રહણની સંમતિ આપી. બન્નેએ ખાધું અને સુખદુ:ખની વાતો કરતા હતા, તેવામાં અશનિવેગ નામનો અસુર આવી પહોંચ્યો. પરંતુ ભવિષ્યદત્ત અને એ અસુર બન્ને પૂર્વભવના મિત્રો હોવાને કારણે અસુરે તો ઉગ્રતા ધારણ કરવાને

બદલે મિત્રકૃત્ય કર્યું અને વિધિપૂર્વક બન્નેને પરણાવ્યા. બન્ને ખાય – પીએ છે અને વિષય સુખ ભોગવે છે. એવામાં એકદા ભવિષ્યદત્તના પૂછવાથી ભવિષ્યાનુરૂપા પોતાનો પૂર્વ-વૃત્તાંત કહેવા લાગી. દ્વીપતિલક નામનું પૂર્વે એક નગર હતું. તેનો યશોધર નામે રાજા હતો. ભવદત્ત મારો પિતા અને નાગસેના મારી માતા હતી. સહસા દેવોએ રાજા અને પ્રજા બન્નેને, મને એકલીને અહિં મુકી, સમુદ્રમાં ફેંકી દીધા. આ વૃત્તાંત તેણે કહ્યો. બન્ને આનંદમાં દિવસો પસાર કરવા લાગ્યા. આ બાજુ કમલશ્રીએ પુત્રવિરહથી શોક-વાળી બની સુવ્રતા નામની આર્યા પાસે પોતાનું દુઃખ કહી હૈયું હલકું કર્યું. એ દુઃખના પ્રતિકાર રૂપે તે શ્રમણીએ કમલશ્રીને જ્ઞાનપંચમીનું વ્રત કરવા કહ્યું. "गिण्हावइ पंच-मियं वज्जित्ता तीइ फलभावं" ૧૦।૧૧૮ (ગાથા ૧૨૫)

ભવિષ્યદત્તને હવે માતાપિતા સાંભરે છે. અને તેથી તે ગજપુર જવાનો વિચાર સેવી રહ્યો છે. તેવામાં બંધુદત્ત સાર્થસમેત ત્યાં આવી પહોચ્યો. ભાઈને ત્યાં દેખી શરમીંદો થઈ ગયો. બંધુદત્તને પૂર્વવૃત્તાંત સંભારી ખિન્ન નહિ થવાની સલાહ ભવિષ્યદત્ત આપે છે. બન્નેએ ગજપુર જવા વિચાર કર્યો. આ વખતે પણ ભવિષ્યદત્તને છળકપટથી એકલો મૂકી અને ભવિષ્યાનુરૂપાને સાથે લઈ તે ચાલતો થયો. (ગાથા ૧૫૦)

પહેલી વખત કરતાં આ વખતનું દુઃખ કાન્તાના વિરહને લઈ તેને વિશેષ અસહ્ય લાગ્યું. ચંદ્રપ્રભ જિનાલયમાં ભવિષ્યદત્ત પાછો ગયો અને દુઃખ ભૂલવા પ્રયત્ન કર્યો. આ તરફ ભવિષ્યાનુરૂપાએ પોતાની ચારિત્ર્યરક્ષા કરવાનો પાક્કો વિચાર કર્યો. અને આ જન્મમાં કાન્ત સાથે મારો મેલાપ નહિ થાય તો હું જીવનપર્યંત આહાર નહિ લઉં એવો સંકલ્પ કર્યો.

"जइ मह कंतेण समं मेलावो नत्थि एत्थ जम्मंमि ।
ता भुंजामि न सययं आहारं जावजीवं पि" ॥ ૧૦।૧૫૭ ॥

બંધુદત્ત ઘરે પહોચ્યો. રાજાને યોગ્ય ભેટ વગેરે મોકલાવી અને લોકો અંદરોઅંદર કહેવા લાગ્યા કે ધનપતિ ભાગ્યશાલી છે કે તેનો પુત્ર આટલું બધું ધન કમાઈને લાવ્યો. સાર્થ આવ્યો એવા સમાચાર સાંભળી કમળશ્રી પણ પોતાના પુત્રનો વૃત્તાંત મેળવવા ગઈ; પણ કશા સમાચાર નહિ મળવાથી, રોતી કકળતી સુવ્રતા પાસે આશ્વાસન મેળવ-વાના હેતુથી ગઈ. (ગાથા ૧૭૫).

સુવ્રતા કમલશ્રીને કહે છે કે – જે અવધિ તને કહી છે તે હજુ ક્યાં પૂરી થઈ છે? માટે તું શોક ન કર. બંધુદત્તે કહ્યું કે તે તો લોભનો માર્યો રત્નદ્વીપ ગયો છે પણ ઉચાટ-ફીકર કરવા જેવું કશું નથી કારણ કે તે પાછો તો આવશે જ. માણિભદ્ર નામનો યક્ષ પોતાના માલિકની આજ્ઞા સંભારી દ્વીપતિલકમાં ચંદ્રપ્રભ જિનાલયમાં આવ્યો. માણિભદ્ર યક્ષના પૂછવાથી પોતાનો તમામ વૃત્તાંત ભવિષ્યદત્તે કહી સંભળાવ્યો. માતા સાથે તેનો સંયોગ પોતે કરાવી દેશે એમ માણિભદ્ર યક્ષે તેને કહ્યું. ભવિષ્યદત્ત તે ઉપરથી કહે છે "ઉપકાર કરવા સમર્થ હોય તેને અથવા સાંભળીને જે દુઃખી થાય તેને દુઃખ કહેવું જોઈએ. બીજાને કહેવાથી શું?"

"जो उवयारसमत्थो दुक्खं तस्सेव होइ कहणीयं ।
जो वा सोउं दुहिओ अन्नस्स न किंपि कहिएण" ॥ ૧૦।૧૮૮ ॥

માણિભદ્ર પાછો પ્રત્યુત્તર આપે છે કે – વિશેષ બોલવાથી શું લાભ ? કાર્ય વિનાનું વચન, ધર્મવિનાનો મનુષ્યજન્મ, નિરપત્ય કલત્ર – એ ત્રણેય લોકમાં લાયક વસ્તુ નથી.

"वयणं कज्जविहूणं धम्मविहूणं च माणुसं जम्मं ।
निरवच्चं च कलत्तं तिन्नि वि लोएण न अग्घंति" ॥ १०।१९१ ॥

ભવિષ્યદત્તને યક્ષ ઘરે પહોંચાડે છે. માતા કમલશ્રીએ બંધુદત્ત જે કન્યા લાવ્યો હતો તેનો વૃત્તાંત ભવિષ્યદત્તને કહ્યો અને આજથી પાંચમે દિવસે બંધુદત્ત અને તેનો લગ્નસમારંભ થવાનો છે તે પણ કહ્યું. કન્યાના ચારિત્ર્ય વર્ણનથી ભવિષ્યદત્તને સંતોષ થયો. (ગાથા ૨૦૦).

ભૂપાલ રાજા પાસે જઈ ભવિષ્યદત્તે ભેટ – નજરાણા વગેરે ધર્યાં. રાજા બહુ સંતુષ્ટ થયો. બંધુદત્તના લગ્નમાં જવાની માતા કમલશ્રીએ ભવિષ્ય પાસે સંમતિ માગી. કન્યા પોતાનો દેહ તજી દેશે એમ ધારી ભવિષ્યે પોતાની **નામમુદ્રા** લઈ જઈને તેને આપવી એમ માતાને કહ્યું. ત્યાંસુધી પોતે અપ્રકટ રહ્યા. બરાબર લગ્નને દિવસે ભવિષ્યદત્ત ભૂપાલ રાજા પાસે જઈ કહ્યું કે ધનપતિ વગેરેને બોલાવો કારણ કે બંધુદત્ત સાથે તેને મોટો વિવાદ કરવો છે. રાજાએ બધાને બોલાવ્યા અને ત્યાં ભવિષ્યદત્ત કે જે અત્યારસુધી અજ્ઞાત હતો તેને જોઈ બંધુદત્ત ખસીયાણો પડી ગયો. રાજાએ ધનપતિ વગેરેને કેદ કર્યા. ભવિષ્યાનુરૂપા ભવિષ્યને સોંપી. તેનું રૂપ જોઈ સૌ આશ્ચર્યચકિત થઈ ગયા. રાજાએ પણ અર્ધું રાજ્ય અને પોતાની સુતારા નામની પુત્રી ભવિષ્યને આપી. માતાની ઇચ્છાથી પિતા, અપર માતા અને બંધુને કેદમાંથી ભવિષ્યે છોડાવ્યા અને હાથી ઉપર બેસાડી ઘેર મોકલ્યા. (ગાથા ૨૨૫).

બન્ને પત્ની સાથે આનંદ કરતાં ભવિષ્યના દિવસો એકદમ વહેવા લાગ્યા. ભવિષ્યાનુરૂપાએ ગર્ભ ધારણ કર્યો અને તેને ચંદ્રપ્રભ જિનાલયમાં જઈ ચંદ્રપ્રભ સ્વામીની પૂજા કરવાનો દોહદ થયો. આ સાંભળી વિમનસ્ક થયેલો ભવિષ્ય વિચાર કરી રહ્યો હતો તેવામાં એક દિવ્ય વિમાન આવ્યું. તેમાં બન્ને ભાર્યા સાથે ભવિષ્ય ઉપડ્યો. પદ્મસરોવરમાં ન્હાઈ, ચંદ્રપ્રભ સ્વામીની પંચવર્ણાં ફૂલોથી પૂજા કરી નગર જોવા ગયા. જોઈને પાછા આવ્યા તેવારે તેમણે બે સાધુઓને જિનભવનમાં બેઠેલા જોયા. તેમાંથી એક કે જેમનું નામ જયાનંદ હતું અને જે કૈવલ્યસંપન્ન હતા તેમને મનોવેગ વિદ્યાધરના આગમનનું કારણ વગેરે ભવિષ્યદત્તે પૂછ્યું. ને ઉપરથી જયાનંદ કેવલિએ નિમ્નોક્ત સર્વ વૃત્તાંત કહેવાનું શરૂ કર્યું. (ગાથા ૨૫૦).

*

પૂર્વે કાંપિલ્યપુર નામે નગર હતું. ત્યાં નંદ નામે એક રાજા રાજ્ય કરતો હતો. તેને વાસવ નામે એક પુરોહિત હતો જેને સુકેશી નામની એક મનોહર સ્ત્રી હતી. તે બન્નેને સુવક્ત્ર અને દુર્વક્ત્ર નામના બે દીકરા તથા ત્રિવેદી નામની એક પુત્રી હતી જેના પતિનું નામ અગ્નિમિત્ર હતું. ભેટ, નજરાણા, નવીન વસ્તુઓ ઇત્યાદિ મોકલવામાં નંદરાજા આ અગ્નિમિત્રનો ઉપયોગ કરતો હતો. એકદા ભેટ, નજરાણા વગેરે આપી તેને સિંહલદ્વીપના રાજા કને નંદરાજાએ મોકલ્યો. સિંહલદ્વીપના રાજાએ તેનું બહુમાન કરી સામી ભેટ, નજરાણા વગેરે આપી તેને વિદાય કર્યો. રસ્તામાં તેણે બધું ઉડાવી માર્યું.

તેને પાછા આવતાં વાર લાગી જોઈ રાજાને વિચાર થાય છે. પણ વાટ લાંબી છે એમ માની મન મનાવે છે. નંદ રાજાને એક સુગુપ્તમંત્ર નામનો મંત્રી હતો. જ્યોતિષમાં તે પારંગત હતો. તેને અને સુવક્રને એક વખત વિવાદ થયો હતો જેમાં બીજાએ પહેલાને હરાવ્યો હતો તેથી પહેલો બીજાના છિદ્રો જોયાં કરતો હતો. પરિચારકવર્ગે રાજાને ઉશ્કેર્યો તેથી તે વધારે કોપાવિષ્ટ થયો. તે દરમ્યાન અગ્નિમિત્ર આવી પહોચ્યો અને પાછા વળતાં રસ્તામાં તેને ચોર લોકોએ લૂંટ્યો એમ તેણે કહ્યું તેથી તો વળી રાજા ઘણો જ રોષાવિષ્ટ થયો. કારણ કે ચાર વર્ગે તેને બધી હકીકતથી માલૂમ કરી દીધો હતો.

રાજા કહે છે – બે આંખવાળો માણસ જરૂર કુશળ માણસથી છેતરાય પણ રાજા તો હજાર આંખવાળો છે એટલે એને કોણ છેતરે ?

"दोनयणो वंचिज्जइ जणेण कुसलेण नत्थि संदेहो ।
नरवइ पुण सहसक्खी कह तीरइ वंचिउं भणह ॥१०२६८॥".

વાસવપ્રમુખ સર્વ લોકો આ વૃત્તાંત જાણી ભાગી છુટ્યા. સુકેશીએ દેશવિરતિ ગ્રહણ કર્યું અને મરીને રવિપ્રભ નામનો દેવતા થયો. ત્યાથી ચ્યવીને તારી સ્ત્રી ભવિષ્યાનુરૂપાના ગર્ભમાં તે આવ્યો છે. સુવક્ત્ર પણ મરીને દેવ થયો. ત્યાંથી ચ્યવીને મનોવેગ નામનો વિદ્યાધર થયો. જાતિસ્મરણજ્ઞાનથી બધી હકીકત જાણી માતાના પ્રકૃષ્ટ પ્રેમને વશ થઈ તે તને મદદ કરવા આવ્યા હતો. કારણ કે તારી સ્ત્રીના ગર્ભમાં તેની માતા સુકેશીનો જીવ છે. દુર્વક્ત્ર મરીને અમરગિરિ ઉપર મહા ભયંકર અજગર થયો. અગ્નિમિત્ર અનુક્રમે મરીને માણિભદ્ર યક્ષ થયો અને ત્રિવેદી અગ્રમહિષી થઈ. (ગાથા ૨૭૫).

પછી ભવિષ્યદત્ત બન્ને ભાર્યા સહિત હસ્તિનાપુર પાછો આવ્યો. કાળે કરી ભવિષ્યાનુરૂપાએ એક પુત્રને પ્રસવ આપ્યો જેનું નામ સુપ્રભ રાખવામાં આવ્યું. લોકો આ પુત્રોત્સવને અનેક પ્રકારે ઉજવે છે. કવિ મહેશ્વરસૂરિ કહે છે.

"वज्जं नट्टं गेयं अहरम्मं तह य गंधमाईयं ।
हरइ मणं च मुणीणं किं पुण इहरं सरागाणां ॥ १०२९३ ॥
वरजुवइ विलसिएगं गंधव्वेगं च एत्थ लोयंमि ।
जस्स न हीरइ हियय सो पमुओ अहव पुण देवो ॥ १०२९४ ॥"

આ વખતે બે મુનિવૃષભો આવી પહોચ્યા, જેની જાણ ઉપવન સંરક્ષકોએ રાજા ભવિષ્યદત્તને કરી. રાજા વાંદવા ગયો. (ગાથા ૩૦૦).

તે બેમાંથી જ્ઞાનાતિશયે યુક્ત એવા વિમલબુદ્ધિ નામના સાધુને રાજાએ સતવાદ અને અસતવાદ સમજાવવા વિનતિ કરી. રાજા શંકા કરે છે " પરલોકવાસીનો અભાવ છે તો પરલોક પણ ન જ હોવો જોઈએ. અને તો પછી દાનાદિ કરવાનો અર્થ શું !"

"परलोइणो अभावा एवं नियमेण नत्थि परलोओ ।
तम्हा दाणाईयं सव्वंवि निरत्थयं चेव ॥ १०३०८ ॥"

વિમલબુદ્ધિએ રાજાની કુશંકા દૂર કરી. (ગાથા ૩૨૫).

*

રાજા ભવિષ્યદત્ત પોતાનું પૂર્વ તથા ભાવી વૃત્તાંત કહેવાનું મુનિને કહે છે જે ઉપરથી મુનિ નિમ્નોક્ત પ્રકારે કહે છે :–

જંબુદ્વીપમાં અરિપુર નામે એક નગર હતું. ત્યાં પ્રભંજન નામનો રાજા રાજ્ય કરતો હતો. વજ્રસેન નામનો તેને મંત્રી હતો અને તેને શ્રીકાંતા નામની ભાર્યા હતી. તેમને કીર્ત્તિસેના નામથી એક પુત્રી થઈ. તે જ ગામમાં એક વિખ્યાત અને ધનાઢ્ય શેઠીઓ રહેતો હતો જેનું નામ ધનદત્ત હતું. તેને નંદિભદ્રા નામની સ્ત્રીથી ધનમિત્ર નામનો પુત્ર હતો. વળી ત્યા એક બીજો શ્રેષ્ઠી પણ રહેતો હતો જેનું નામ નંદિદત્ત હતું. તેને ભદ્રા સ્ત્રીથી નંદિમિત્ર નામનો એક પુત્ર થયો હતો. શહેરમાં સમાધિગુપ્ત નામના મુનિવર વર્ષાઋતુમાં આચરવા લાયક ગુપ્તવાસ સેવી રહ્યા હતા. તે જ સન્નિવેશમાં કૌશિક નામનો એક બાલ તપસ્વી પણ રહેતો હતો જે સમાધિગુપ્તની ઈર્ષ્યા કર્યા કરતો હતો. તેથી મરીને તે અશનિવેગ નામનો રાક્ષસ બન્યો. વજ્રસેન મંત્રી મરીને પૂજાદિના પ્રભાવથી દ્વીપતિલકમાં રાજારૂપે અવતર્યો. (ગાથા ૩૫૦).

ધનદત્ત, ધનમિત્ર વગેરે સાધુપૂજાદિથી શુભકર્મનું ઉપાર્જન કરે છે જ્યારે મલિન સાધુની હીલના, દુગછા વગેરે કરવાથી ધનદત્તની નંદિભદ્રા ભાર્યા અશુભ કર્મ ઉપાર્જે છે. પિતાએ કાઢી મુકેલ કીર્ત્તિસેના નંદિભદ્રા સાથે મૈત્રી કરે છે. નંદિભદ્રાએ પચમી વ્રત ગ્રહણ કરી તેનું ઉજમણું વગેરે કર્યું. કીર્ત્તિસેના મરીને દ્વીપતિલકમાં ભવદત્તને ત્યા તેની સ્ત્રી નાગસેનાથી ભવિષ્યાનુરૂપા રૂપે અવતરી. દ્વીપતિલકના રાજાને અશનિવેગે સમુદ્રમાં નાખી દીધો. નંદિભદ્રા મરીને વૈમાનિક દેવતા થઈ. નંદિમિત્ર મરીને અચ્યુત કલ્પનો ઈંદ્ર થયો. ધનદત્ત મરીને ધનપતિ તારો પિતા થયો. ધનદત્તની ભાર્યા કમલશ્રી રૂપે અવતરી. પચમી વ્રત કરી મરણ પામેલ ધનમિત્ર મરીને તું ભવિષ્યદત્ત થયો. આથી ભવિષ્યદત્તને વૈરાગ્ય આવ્યું અને જ્યેષ્ઠ પુત્રને રાજ્યપાટ સોંપી તેણે દીક્ષા લીધી. (ગાથા ૩૭૫).

કમલશ્રી અને બીજાએ પણ દીક્ષા લીધી. દીક્ષા યથાવિધિ નિયમપૂર્વક પાળી ભવિષ્યદત્ત મરીને સાતમા દેવલોકમાં હેમાંગદ નામધારી સુરપ્રવર થયો કમલશ્રી મરીને પ્રભાચૂડ દેવતા તરીકે અને ભવિષ્યાનુરૂપા મરીને રત્નચૂડ તરીકે અવતર્યા. ત્રણેય દેવતાઓ સાતમા કલ્પમાં ખૂબ આનંદ કરે છે. (ગાથા ૪૦૦).

નીલ નિષધના મધ્યભાગમાં, મેરુની પૂર્વે અને લવણ સમુદ્રની પશ્ચિમે, સોળ વિજયયુક્ત પૂર્વ વિદેહ આવેલ છે. તેમાં ગંધાવતી નામનું સુંદર અને વિખ્યાત એક વિજય છે. તેમાં ગંધર્વપુર નામનું એક નગર હતું ગંધર્વસેન નામનો તેનો રાજા હતો. ગાંધારી નામની તેને એક સ્ત્રી હતી. એ સ્ત્રીને પેટે પ્રભાચૂડ નામનો દેવ ચ્યવીને પુત્રરૂપે અવતર્યો જેનું નામ વસુંધર રાખવામાં આવ્યું. તેને સુમતિ સાથે પરણાવવામાં આવ્યો. હેમાંગદ તથા રત્નચૂડ બન્ને યથાસમય મરીને આ બન્નેના પુત્રરૂપે જન્મ્યા. તેમના નામ અનુક્રમે શ્રીવર્ધન અને નંદિવર્ધન રાખવામાં આવ્યા. વસુંધરને રાજ્ય ગાદી ઉપર બેસાડી ગંધર્વસેને દીક્ષા ગ્રહણ કરી. (ગાથા ૪૨૫).

આકાશમાં શરદભ્રને એકદમ વાતથી વિખરાઈ જતું જોઈ સર્વ વસ્તુના ક્ષણભંગુર સ્વભાવથી ખિન્ન થઈ વસુંધર વૈરાગ્ય પામ્યો અને પુત્ર શ્રીવર્ધનને અભિષિક્ત કરી સિંહાસનારૂઢ બનાવી પોતે પ્રવ્રજ્યા ધારણ કરી. અને અનુક્રમે એવા સ્થાનને પ્રાપ્ત કર્યું કે જ્યાં દુ:ખનો આત્યંતિક અભાવ છે. (ગાથા ૪૫૦).

લઘુભ્રાતા નંદિવર્ધનની અભ્યર્થનાથી, શ્રીવર્ધન તેની સાથે વિશ્વપરિભ્રમણ માટે નીકળ્યો. અને તેમને રત્નશેખર નામના મુનિવૃષભ વૃક્ષ નીચે બેઠેલા મળ્યા. શ્રીવર્ધને તેમને લોકમાન, લોકભેદ અને લોકસ્થિતિ વિષે પ્રશ્નો પૂછ્યા જેનો શાસ્ત્રોક્ત જવાબ રત્નશેખર મુનિએ આપ્યો. તે ઉપરાંત બન્નેએ પોતાના પૂર્વભવવૃત્તાંતો કહેવાની વિનતિ પણ કરી; જે ઉપરથી મુનિશ્રીએ તમામ હકીકત તેમને કહી સંભળાવી. જાતિસ્મરણથી વૈરાગ્ય પામી બન્નેએ પોતાને દીક્ષા આપવાનો આગ્રહ કર્યો પણ હજુ દીક્ષાને છ માસની વાર છે માટે ત્યાંસુધી ભોગ ભોગવો અને ત્યારબાદ દીક્ષા આપવામાં આવશે એમ મુનિએ તેમને કહ્યું. (ગાથા ૪૭૫)

ત્યારબાદ તેઓ પોતાના નગરમાં ત્યાંથી પાછા ગયા. અને છ માસ બાદ તે જ મુનિ પાસે દીક્ષા લઈ, દીક્ષા યથાર્થ પાળી, તપ કરી, મોક્ષે ગયા. અને આ રીતે આ ભવિષ્યદત્ત આખ્યાન નામનું દસમું આખ્યાન સમાપ્ત થયું. (ગાથા ૫૦૦)

*

'भविस्सयत्त कहा'नो सारांश.

જિનને નમસ્કાર કરી 'શ્રુતપંચમી'ના ફળને વર્ણવવાની કવિ પ્રતિજ્ઞા કરે છે. ગૌતમ ગણધરે શ્રેણિક રાજાને આ કથા જેવી રીતે કહી છે તેવી રીતે કવિ ધનપાળ આપણને કહે છે.

પ્રસિદ્ધ ભરતખડને વિષે કુરુજંગલ નામના દેશમાં ગજપુર અથવા હસ્તિનાપુર નામે નગર છે. ભૂપાલ નામે રાજા ત્યાં રાજ્ય કરતો હતો. એ નગરમાં ધનપતિ નામનો એક વણિક પણ રહેતો હતો. હરિબલ નામનો એક બીજો વેપારી પણ ત્યાં રહેતો હતો અને તેને કમલશ્રી નામની એક સુંદર પુત્રી હતી જેના હાથની માગણી ધનપતિએ પોતાને માટે કરી અને તે હરિબલે મંજુર પણ રાખી. એકદા પોતાની સખીઓને પુત્રવાળી જોઈને અને પોતાને પુત્ર ન હતો તેથી કમલશ્રી ખિન્ન થાય છે અને એક મુનિને એ બાબત પૂછે છે જેના જવાબમાં તેને એક સુંદર અને સર્વાંગસંપૂર્ણ પુત્ર થશે એમ મુનિ સ્વપ્ન દ્વારા કહે છે. વખત જતાં કમલશ્રીને એક પુત્ર પ્રાપ્ત થાય છે જેનું નામ ભવિષ્યદત્ત રાખવામાં આવે છે. (પ્રથમ સંધિ.)

કમલશ્રી અને ધનપતિ વચ્ચે પ્રેમ કમી થતો જાય છે. ધનપતિ કમલશ્રીને પોતાને પીએર જવાનું કહે છે. પીયરમાં રહેતી પુત્રી ઉપર સમાજ શંકાની દૃષ્ટિએ જુએ છે. માતા અને પિતા (હરિબલ ને હરિદત્ત પણ ક્યાંક ક્યાંક કહેવામાં આવેલ છે) બન્ને ઉદ્વિગ્ન થાય છે. બાળક ભવિષ્યદત્ત પણ 'જેવા થાય તેવા થઈએ' ની દેશકાલાનુસારિણી હિતશિક્ષા માતાને આપી આશ્વાસન પુરૂં પાડે છે. (સંધિ ૨)

ધનપતિ પછી ધનદત્ત નામના બીજા વેપારીની પુત્રીને સરૂપાને પરણ્યો. તેને પણ સમય જતાં પુત્ર થયો જેનું નામ બંધુદત્ત રાખવામાં આવ્યું. એ બહુ તોફાની થયો પણ સદ્‌ભાગ્યે એ કાંચન નામના દેશમાં અન્ય વેપારીઓ સાથે વેપાર માટે ગયો. એમાં ભવિષ્યદત્ત પણ હતો. એને મધ્ય દરીએ ડુબાડી મારવાની સલાહ પોતાના પુત્ર બંધુદત્તને સરૂપા આપે છે. પ્રતિકૂળ પવનને લીધે તેઓ મૈનાક દ્વીપમાં (મૈનાક

પર્વતાંતર્ગત) આવી પહોંચે છે. અહિઆ વેપારીઓ ઉતરી ગયા અને જળ, ફળ અને પુષ્પો વીણવા મંડી ગયા. ભવિષ્યદત્ત જંગલમાં ઊંડો ઉતરી ગયો. એ બાબતની પરવા કર્યા વિના બંધુદત્તે વહાણ હંકારવાનો હુકમ કરી દીધો. (સંધિ ૩)

ભવિષ્યદત્ત તિલકદ્વીપ ઉપર રહી ગયો. જિનમંદિરવાળા એક ઉજડ ગામમાં તે આવી પહોંચ્યો. (સંધિ ૪)

ભવિષ્યદત્ત તે મંદિરમાં સૂતો છે. અચ્યુત સ્વર્ગના ધણીના કહેવાથી જે ધનમિત્રે જૈનધર્મનો અંગીકાર કર્યો હતો તેની શું સ્થિતિ છે તે બાબત મુનિ યશોધરને અચ્યુત નામે સ્વર્ગના ધણિએ પૂછી. યશોધરે ધનપતિની બધી હકીકત કહી સંભળાવી. જાગ્યા પછી ભવિષ્યદત્તે દિવાલ ઉપર કાંઈક લખેલું વાંચ્યું અને કાંઈક સાંભળ્યું. તેને અનુસરી તે પૂર્વમાં પાંચમા ઘર ભણી ચાલી નીકળ્યો, ત્યાં એક છોકરી બેઠેલી દીઠી. તેને તે પરણ્યો. (સંધિ ૫)

સુવ્રતા નામની એક સાધ્વી કમલશ્રીને શ્રુતપંચમીનું વ્રત ગ્રહણ કરવા કહે છે. તે સાધ્વી કમલશ્રીને પોતાના ગુરુ પાસે લઈ જાય છે અને કમલશ્રી દુઃખ પરંપરાનું કારણ પુછે છે. ભવિષ્યદત્ત અને તેની પત્ની સ્વદેશ પાછા ફરવા નિશ્ચય કરે છે ત્યારે ફરીને બંધુદત્તનો તેમને ભેટો થાય છે. બંધુદત્ત પોતે કરેલ વિશ્વાસઘાત માટે ભવિષ્યદત્તની માફી માગે છે અને બધા સ્વદેશ જવાનો વિચાર કરે છે. (સંધિ ૬)

ભવિષ્યદત્ત ધાર્મિક પ્રવૃત્તિમાં રોકાયો છે તે વખતે બંધુદત્ત વહાણો હંકારવાની આજ્ઞા આપે છે. ભવિષ્યદત્તને એકલો મુકી બધા ચાલી નિકળ્યા. રસ્તામાં બંધુદત્ત ભવિષ્યદત્તની સ્ત્રી પાસે પ્રેમયાચના કરે છે અને જ્યારે તે તેની પાસે બલાત્કાર કરવા જાય છે ત્યારે બરાબર પ્રતિકૂળ પવનના ઝપાટાથી વહાણ વિરૂદ્ધ દિશામાં ચાલ્યા જાય છે. વેપારીઓ તો ભવિષ્યદત્તની સ્ત્રીની છેડતીનું આ પરિણામ છે એમ સમજે છે અને તેનું મન મનાવવા કહે છે. અને તેમ કરવાથી બધુ અનુકૂળ થઈ જાય છે. બધા હસ્તિનાપુર નજીક પહોંચી જાય છે. (સંધિ ૭)

હસ્તિનાપુરમાં બંધુદત્ત આવવાથી સૌ ખુશખુશાલ થઈ જાય છે. આ વાતની ખબર હરિદત્ત (હરિબળ) કમલશ્રી (કમલા)ને પણ આપે છે. કમલશ્રી ભવિષ્યદત્તના ખબર મેળવવા ઘરે ઘરે ભટકે છે, પણ કોઈ કશા સમાચાર નથી આપતું. સરૂપાને કાને ગામ-ગપાટા પહોંચે છે અને તેથી ભવિષ્યદત્ત કેમ ન આવ્યાં એ બાબત બંધુદત્તને પૂછે છે. બંધુદત્ત જવાબ આપે છે કે એનું મન કદાચ દોલતવિના અહિ આવવાનું નહિ હોય જેથી એ તે દ્વીપમાં રોકાયો હશે. સુવ્રતા પોતાના ગુરૂદેવને ભવિષ્યના પુનરાગમન માટે પૂછે છે, ત્યારે તેઓ કહે છે કે આજથી ત્રીસમે દિવસે એટલે કે વૈશાખ માસની પંચમીએ એ અહિ પહોંચશે, રાજા થશે અને કમલશ્રી રાજમાતા તરીકે ઓળખાશે. ધનપતિ પોતાના પુત્ર બંધુદત્તના લગ્ન પરદેશમાંથી લાવેલી કન્યા (ભવિષ્યદત્તની પત્ની) સાથે વિધિપૂર્વક કરવા વિચારે છે. ભવિષ્યાનુરૂપા (ભવિષ્યની પત્નીનું નામ) મુશ્કેલી અનુભવે છે. (સંધિ ૮)

આ બાજુ માણિભદ્ર યક્ષ ભવિષ્ય પાસે આવે છે અને પત્ની વગેરેના ક્ષેમકુશળ પૂછે છે. તે બધી હકીકત તેને જણાવે છે. વિમાન મગાવી તે યક્ષ બરાબર વૈશાખી પંચમીએ

તેને ગજપુર લઈ જાય છે. કમલા (કમલશ્રી)ને ખૂબ ખૂબ આનંદ થાય છે. બંધુદત્તના લગ્ન પ્રસંગ ઉપર જવા માટે કમલા ભવિષ્યને પૂછે છે. બંધુદત્તે લાવેલ કન્યાની તમામ હકીકત ભવિષ્ય પોતાની માતાને કહે છે. અને ઘરેણાં પહેરી લગ્નપ્રસંગ ઉપર જવાની પોતાની સંમતિ પણ આપે છે. સાથે સાથે તે કન્યાને આપવા વાસ્તે ભવિષ્ય પોતાની માતાને નામમુદ્રા પણ આપે છે જે કમલા કોઈપણ રીતે ભવિષ્યાનુરૂપાને પહોંચાડે છે. (સંધિ ૯)

ભવિષ્ય ત્યારબાદ રાજા પાસે જાય છે. અને ઘણી ઘણી ભેટો આપે છે. ધનપતિ પોતાના પુત્ર બંધુદત્તના જે કન્યા સાથે લગ્ન કરી રહેલ છે તે વાંધાભર્યા છે એવું જાહેર કરતાં રાજા શેઠને બોલાવે છે. બંધુદત્ત અને તેના પચાસ વ્યાપારી સાથીઓ તેમ જ ધનપતિ વગેરે રાજસભામાં આવ્યા અને બંધુદત્તે દુશ્મન સામો આવે એવી ચેલેન્જ રાજા સમક્ષ આપી, જેથી ભવિષ્ય પ્રકાશમાં આવે છે. અત્યાર સુધી ભવિષ્યને કોઈ ભવિષ્ય તરીકે ઓળખતું નહોતું. એ હવે સ્પષ્ટ થાય છે. બંધુદત્તના સાથીઓ અથથી ઇતિ સુધી તમામ હકીકત રાજાને કહે છે. રાજા ધનપતિને તથા બંધુદત્તને કેદ કરે છે. (સંધિ ૧૦)

જયલક્ષ્મી અને ચંદ્રલેખા ભવિષ્યાનુરૂપાના પતિવ્રત્યની પરીક્ષા કરે છે. ભવિષ્ય અને ભવિષ્યાનુરૂપા પરણે છે. બધાને મુક્તિ આપવામાં આવે છે. ધનપતિ નવદંપતીને તથા કમલાને પોતાને ઘેર લઈ જાય છે. (સંધિ ૧૧)

રાજા–રાણી આ નવદંપતીને એટલા બધા ચાહે છે કે રાજા ભવિષ્યને યુવરાજ જેટલો જ પ્રેમપાત્ર ગણે છે અને પોતાની રાજકુંવરી સુમિત્રાને ભવિષ્ય જોડે પરણાવે છે. ધનપતિ પોતાના પૂર્વકૃત્ય માટે પશ્ચાત્તાપની જરા પણ લાગણી બતાવતો નથી તેથી કમલા ખિન્ન થઈ તેનું ઘર છોડી પોતાને પીયેર જાય છે, અને ભવિષ્યાનુરૂપા પણ તેની જોડે જ જાય છે. કાંચનમાલાના ઉપાલંભથી ધનપતિની સાન ઠેકાણે આવે છે અને કમલા પાસે જઈ તેની માફી માગી તેને પોતાને ઘેર લઈ આવે છે. (સંધિ ૧૨)

સિંધુ દેશમાં આવેલ પોતનપુરનો રાજા, ચિત્રાંગને મોકલી ખંડણી આપવાનું તેમ જ ભવિષ્ય જે કન્યાને લાવેલ છે તે તથા રાજાની પોતાની પુત્રી સુમિત્રાને સોંપવાનું હસ્તિનાપુરના રાજાને કહેવડાવે છે. ભવિષ્ય, પ્રિયસુંદરી, પૃથુમતી અને અન્ય સચિવોની એક સભા રાજા બોલાવે છે. લોહજંઘ નામનો એક મંત્રી ચિત્રાંગને ગધેડા ઉપર બેસાડી ફેરવવાનું સૂચન કરે છે. ધનપતિ, અનંતપાળ વગેરે પોતપોતાની સલાહ આપે છે. ભવિષ્ય પણ પોતાની સલાહ આપે છે. અનંતપાળ કે જે લડાઈની તરફેણમાં ન હતો અને ભવિષ્ય કે જેણે લડાઈ કરવાની વિચાર દર્શાવ્યો હતો તે બે વચ્ચે ચકમક ઝરે છે. અનંતપાળ ચિત્રાંગને મળે છે અને હલ્લો કરવાનું કહે છે. પણ ચિત્રાંગ ભૂપાલપાસે છેલ્લો જવાબ લેવા જાય છે, અને પોતાની રાજકુંવરી સુમિત્રાને સિન્ધુપતિ મૃગેન્દ્રકંધરને આપવાની સલાહ આપે છે. આ સાંભળી ભવિષ્યને ખૂબ ક્રોધ ચડે છે અને ચિત્રાંગના જીભ તથા આંખ ફોડી નાખવાનું કહે છે. ધનપતિ વચ્ચે પડે છે. (સંધિ ૧૩)

પહેલાં તો કચ્છના વિશ્વાસઘાતી રાજા ઉપર હુમલો કરવાનું ભવિષ્ય ભૂપાલ રાજાને સૂચવે છે. આવી વાત હવામાં આવતાં કચ્છનો રાજા શરણે આવે છે. ભૂપાલ રાજાની મદદમાં હરિપતિ, લોહજંઘ, કચ્છાહિવ, પાંચાલ, અને પર્વતપતિ આવે છે. પોતનપુરનો રાજા સંધિનું કહેણ મોકલે છે. પણ લશ્કર ઘણું આગળ વધી ગયું હતું તેથી સંધિ કરવાનું અશક્ય હતું. લડાઈમાં કચ્છાધિપતિ પરાજય પામે છે અને યુદ્ધની બાજી પોતનપુરના સ્વામીની તરફેણમાં આવતી જાય છે. યુદ્ધને મોખરે ભવિષ્યદત્તને મોકલવામાં આવે છે. પરાજયના ઘણા ચિહ્નો દેખાય છે છતાં છેવટે તો પોતનપુરના રાજપુત્ર અને ભવિષ્ય વચ્ચેના દ્વંદ્વયુદ્ધમાં ભવિષ્ય જીતે છે અને પોતનપુરના રાજપુત્રને જીવતો પકડી લે છે. (સંધિ ૧૪)

ભવિષ્યને યુવરાજ બનાવવામાં આવે છે, અને રાજપુત્રી સુમિત્રાને તેની સાથે પરણાવવામાં આવે છે. ભવિષ્યાનુરૂપાને તિલકદ્વીપ જવાની ઇચ્છા થાય છે. બરાબર આ વખતે દેવતા રાજમહેલમાં હાજર થાય છે. તેનું નામ મણુવેય છે. તે કહે છે કે તેના માલિકે તેને ભવિષ્યાનુરૂપાની ઇચ્છા પાર પાડવા મોકલ્યો છે. (સંધિ ૧૫)

તિલકદ્વીપમાં જઈને ભવિષ્ય તથા ભવિષ્યાનુરૂપા જિનાલયમાં પૂજા કરે છે. ત્યાં તેમને બન્નેને જયનંદન અને અહિનન્દન નામના બે સાધુઓ મળે છે. જીવદયા, સત્યવચન, અદત્તાદાન, બ્રહ્મચર્ય અને અપરિગ્રહ એ પાંચ અણુવ્રત વગેરે બાબતો સાધુઓ સમજાવે છે. જિનવન્દન, પોસહોવવાસ, દારાવિકૃખણુ અને સલેહણા એ ચાર શિક્ષાપદો પણ બતાવે છે. (સંધિ ૧૬)

મણુવેય નામના વિદ્યાધરે તેને શા માટે મદદ કરી એ બાબત ભવિષ્યે જયારે એ ચારણ સાધુઓને પૂછયું ત્યારે તેઓએ નિમ્નોક્ત વૃત્તાંત કહી સંભળાવ્યો:—

કાંપિલ્યપુરમાં એક રાજા રાજ્ય કરતો હતો. ત્યાં વાસવદત્ત નામે એક બ્રાહ્મણ રહેતો હતો. તેને સુવક્ત્ર અને દુર્વક્ત્ર નામના બે પુત્રો હતા. વિમલમંત્રીને એ બન્નેની ઈર્ષ્યા થાય છે. એકદા સિંહલદ્વીપના રાજા પાસે, તે રાજાને ભેટ મોકલવા માણસ મોકલવાની જરૂર પડી. વાસવદત્ત બ્રાહ્મણે પોતાના જમાઈનું નામ સૂચવ્યું જે ઉપરથી વિમલમંત્રીને ક્રોધ ચડયો અને બન્ને વચ્ચે કજીઓ થયો. દરમ્યાન તેને મોકલી દેવામાં આવ્યો. પણ પાછા ફરતાં તેને ઘણો વિલંબ થયો તેથી દુર્વક્ત્ર નવનાડી નિરોધ કરી જવાબ આપે છે કે તે અગ્નિમિત્ર (પોતાના બનેવી) ચાર રોજમાં પાછા આવશે. વિમળ મંત્રીએ આવી ખોટી આશાઓ ન આપવાની સલાહ દુર્વક્ત્રને આપી, જે ઉપરથી દુર્વક્ત્રે બમણા જોરથી પ્રથમ કહ્યું હતું તે કહ્યું. તેથી બન્ને વચ્ચે કજીઓ થયો અને દુર્વક્ત્રે કહ્યું કે જે કોઈ હારે તેને લોકોએ શિક્ષા આપવી. રાજાએ બન્નેને વાર્યા અને કોઈ ત્રીજી પ્રામાણિક વ્યક્તિને એ બાબત પૂછવા કહ્યું. તેથી તેઓ ક્ષુલ્લક જ્યોતિષી પાસે ગયા અને ક્ષુલ્લકે જવાબ દીધો કે તે માણસે ભેટ તરીકે આપેલ બધા પૈસા વાપરી નાખ્યા છે અને આજથી ત્રીસમે દિવસે એક ભિખારી તરીકે તે અહિં પાછો આવશે. બન્નેએ જઇને બધી વાત રાજાને કહી. બરાબર ત્રીસમે દિવસે અગ્નિમિત્ર આવી પહોંચ્યો. રાજાએ તેને કેદ કર્યો. સમસ્ત કુટુંબ ઉપર રાજાની નાપસંદગી ઉતરી હતી. (સંધિ ૧૭)

આ અઢારમી સંધીમાં દુર્વકત્ર ક્ષુલ્લક (ખુલ્લય) પાસે ગયાનું વર્ણન આવે છે. દુર્વકત્ર જૈન બને છે અને મરીને સુધર્મ સ્વર્ગમાં જાય છે. તેની માતા સુકેશા પણ જૈનત્વનો અંગીકાર કરે છે અને મરીને ઇન્દ્ર બને છે. પછી ત્યાંથી મરી દુર્વકત્ર મણુવેય તરીકે અવતરે છે. અને સુકેશા પહેલાં રવિપ્રભા તરીકે અને પછી ભવિષ્યાનુરૂપાના ગર્ભમાં અવતાર લે છે. સુવકત્ર સર્પ બને છે.[13] રાજાને પ્રાર્થના કરી તિવેઇયા પોતાના ધણીને છોડાવે છે. બન્ને સાથે મરે છે. ધણી (અગ્નિમિત્ર) મણિભદ્ર તરીકે અવતરે છે. તિવેઇયા રોહિણીરૂપે અને પછી ભવિષ્યની પુત્રી તરીકે અવતરશે. પછી તેઓ બધા ભવિષ્ય અને ભવિષ્યાનુરૂપા ગજપુર જાય છે. મણુવેય પોતાને સ્થળે પાછો ફરે છે. અને પોતાના ભાઈને (સુવકત્રને)–સર્પને ખરે રસ્તે વાળે છે. ભવિષ્યને સુપ્રભ, કનકપ્રભ, સૂર્યપ્રભ અને ચંદ્રરાશિ નામના ચાર પુત્રો અને તારા, સુતારા નામની બે પુત્રીઓ થાય છે. વિમલબુદ્ધિ નામના એક મુનિ ત્યાં આવે છે. બધા વાંદવા જાય છે. મુનિ જીવન ક્ષણભંગુર છે એવો ઉપદેશ આપે છે. ભવિષ્યને જીવનનો કંટાળો આવવા લાગે છે. (સંધિ ૧૮)

વિમલબુદ્ધિ નામના મુનિને પોતાનો પૂર્વજન્મવૃત્તાંત તથા ભવિષ્યમાં પોતે કોણ થશે તે કહેવાની ભવિષ્ય વિનતિ કરે છે તે ઉપરથી મુનિ નિમ્નોક્ત અહેવાલ કહે છે:–

અરિપુરનો મરૂત નામનો રાજા હતો જેને ધરા નામની રાણી, વજ્જોયર નામનો અમાત્ય હતો. તે અમાત્યને કીર્ત્તિસેના નામે પુત્રી હતી. તેનો વર જુગારી હતો, લંપટ હતો, અને ચોર હતો. અમાત્યપુત્રી એકદા એક ધનમિત્ર નામના વણિકપુત્રને દેખતાં વેંત જ પ્રેમમાં પડે છે. ધનમિત્રની પત્ની અને અમાત્યપુત્રીની સખી ગુણમાલા ધનમિત્રને પરણવાની અમાત્યપુત્રીને સંમતિ આપે છે. પણ અમાત્યપુત્રી ના પાડે છે અને કહે છે કે તે પોતે પરણેલી છે એ હિસાબે પણ તેણીએ ધનમિત્રને બંધુસમાનજ ગણવો જોઈએ. આ નિવેદનથી ગુણમાલા ખૂબ હર્ષિત થાય છે. અમાત્ય વજ્જોયર ધનમિત્રને શ્રેષ્ઠી બનાવે છે. ધનમિત્ર અને અમાત્યપુત્રી બન્ને કૌશિકના ભક્ત બને છે. અને એ બ્હાને પ્રેમ ચાલુ રાખે છે. ધનમિત્રને નંદીમિત્ર નામનો એક મિત્ર હતો. શહેરમાં એક બીજા સમાધિગુપ્ત નામના સાધુ આવે છે જે જૈનધર્મના સિદ્ધાંતોનું પ્રતિપાદન કરે છે. માણસોનો કૌશિક તરફ અભાવ થતો જાય છે. (સંધિ ૧૯)

નંદીમિત્ર ધનમિત્રને રાત્રિભોજનનો ત્યાગ કરવાનું કહે છે. ધનમિત્ર અને અમાત્યપુત્રી કૌશિકપાસે જવાનું હજુ ચાલૂ જ રાખે છે. વજ્જોયરે કૌશિક પાસે ન જવાનું લોકોને સમજાવ્યું હતું તેથી કૌશિક તેના તરફ તિરસ્કારની લાગણીથી જુએ છે અને એ જ રીતે મરણ પામે છે; તેથી તિલકદ્વીપમાં અશનિવેગ નામનો રાક્ષસ બને છે. સમય જતાં રાજા ખાતર વજ્જોયર પણ લડાઇમાં મરીને તિલકદ્વીપમાં યશોધન તરીકે જન્મ લે છે. નંદીમિત્ર પણ અનશન કરી પંડિત મરણે મરે છે અને વિદ્યુત્પ્રભ નામે દેવીના રાજા–સ્વામી–તરીકે સોળમા સ્વર્ગમાં ઉપજે છે. ધનમિત્ર, તેના મા બાપ,

૧૩ ભવિષ્યદત્ત આખ્યાન અને ભવિષ્યદત્ત કથાવાળી સુવકત્ર અને દુર્વકત્રવાળી ઘટના સરખાવવાથી, ભવિષ્યદત્ત કથામાં જ્યાં જ્યાં દુર્વકત્ર શબ્દ સારા માણસ તરીકેના અર્થમાં વપરાયો છે ત્યાં ત્યાં સુવકત્ર જોઈએ, એમ લાગશે.

કીર્તિસેના વગેરે જૈન ધર્મ પાળી શુદ્ધિ મેળવે છે. માતા ૬૭ દિવસ સુધી શ્રુતપંચમી વ્રત પામે છે. ધનદત્ત અને તેની પત્ની હસ્તિનાપુરમાં અવતરે છે. તેમનો પુત્ર કે જે ગૌડ તરફ ગયો હતો તે વિજળીથી મરણ પામી ગજપુરમાં ભવિસયત્તરૂપે અવતરે છે. ગુણમાલા અને કીર્તિસેના બન્ને ધનમિત્રના મરણથી દુઃખી થાય છે. ગુણમાલા મરીને ભૂપાલ રાજાની પુત્રી તરીકે અને કીર્તિસેના ત્રિલોકદ્વીપમાં ભવિષ્યાનુરૂપારૂપે અવતરે છે. વજ્રોયર કે જે યશોધન તરીકે અવતર્યો હતો તેને અસુરરૂપે અવતરેલ કૌશિક ખાઈ જાય છે. જે પંક્તિઓ દિવાલ ઉપર લખવામાં આવી હતી તે ધનમિત્રના મિત્ર અચ્યુતસ્વર્ગના સ્વામી નંદીમિત્રે લખી હતી. (સંધિ ૨૦)

ભવિષ્ય હવે રાજ્યકારભાર સુપ્રભને સોંપી દીક્ષા લેવા ઇચ્છા ધરાવે છે. પોતાની માતા કમલશ્રીને, ભૂપાલને, ધનપતિને, અને પ્રિયસુંદરીને તે બોલાવે છે. સુપ્રભ પિતાને તેમ કરવા ના પાડે છે અને છેવટે રાજ્યપાટ પોતાના નાનાભાઈ ધરણિંદને આપવા અને બીજા બધા ભાઇઓ સલાહકાર તરીકે વર્તશે એમ કહી નાના ભાઈને રાજ્ય સોંપે છે. ભવિષ્ય, કમલશ્રી અને ભવિષ્યાનુરૂપા પ્રવ્રજ્યા ગ્રહણ કરે છે. (સંધિ ૨૧)

સુમિત્રા, ધનપતિ અને હરિદત્ત વિલાપ કરે છે. કમલા અને ભવિષ્યાનુરૂપા ઘોર તપ કરીને અને અનશન કરી મરણ પામી દસમા દેવલોકમાં પ્રભાચૂડ અને રત્નચૂડ તરીકે જન્મ લે છે. ભવિષ્ય પણ તેમ કરી તે જ દેવલોકમાં અવતરે છે. તેઓ બધા એક વખત પોતાના સંતાનો શું કરે છે તે જોવા પૃથ્વી ઉપર આવે છે. મરીને પ્રભાચૂડ ગાંધર્વોના સ્વામીના પુત્રરૂપે અવતરે છે. તેનું નામ સુવસુંધર છે. રત્નચૂડ અને હેમંજય મરીને સુવસુંધરના પુત્રો તરીકે જન્મે છે. હેમંજય શ્રીધર પાસે દીક્ષા લે છે અને મોક્ષે જાય છે. શ્રુતપંચમી વ્રતના પ્રતિપાળનથી ભવિષ્ય ચોથે ભવે કેવી રીતે મોક્ષે જાય છે તે કવિ ધનપાળ અંતમાં જણાવે છે. (સંધિ ૨૨)

વિશેષ નામોનું સામ્ય

ગજપુરનો રાજા ભૂપાલ, ધનપતિ, ધનપતિની પત્ની કમલશ્રી, એ બન્નેનો પુત્ર ભવિષ્યદત્ત, ધનપતિની બીજી પત્ની નામે સરૂપા, સરૂપાથી ધનપતિનો બીજો પુત્ર નામે બંધુદત્ત, સાધ્વી સુવ્રતા, ભવિષ્યની પત્ની ભવિષ્યાનુરૂપા, મણિભદ્ર, મનોવેગ વિદ્યાધર, વાસવ બ્રાહ્મણ – પુરોહિત અને તેની પત્ની સુકેશી તથા સુવક્ત્ર અને દુર્વક્ત્ર નામના બે પુત્રો તથા ત્રિવેદી નામની પુત્રી અને તેનો પતિ અગ્નિમિત્ર, રવિપ્રભ (સુકેશી મરીને રવિપ્રભ થાય છે); ભવિષ્યાનુરૂપાથી ભવિષ્યનો પુત્ર સુપ્રભ, વિમલબુદ્ધિ નામના મુનિ, અમાત્યપુત્રી કીર્તિસેના, અરિપુરનો રાજા પ્રભંજન, અરિપુરનો ધનદત્ત શેઠ, તેનો પુત્ર ધનમિત્ર, ધનમિત્રનો મિત્ર, બાલ તપસ્વી કૌશિક, મુનિ સમાધિગુપ્ત, અશનિવેગ (કૌશિકનો ભાવિ જીવ), પ્રભાચૂડ (કમલશ્રીનો ભાવિ જીવ), રત્નચૂડ (ભવિષ્યાનુરૂપાનો ભાવિ જીવ) ઇત્યાદિ ઇત્યાદિ વિશેષ નામો પુરતું ભવિષ્યદત્ત આખ્યાન અને ભવિષ્યદત્ત કથા એ બન્ને વચ્ચે સમાન પ્રસંગો સહિત સામ્ય છે.

વિશેષ નામો વચ્ચે ભેદ

ભવિષ્યદત્ત આખ્યાનમાં, વરદત્ત (સરૂપાનો પિતા), સુતારા (ભૂપાળ રાજાની પુત્રી) જયાનંદ મુનિ, સુગુપ્તમંત્ર મંત્રી, સુકેશી, રત્નશેખર, હેમંગળ, વસુધર અને વજ્રસેન

ઇત્યાદિ વિશેષ નામોનો ઉલ્લેખ છે; જ્યારે ભવિષ્યદત્ત કથામાં એ નામો માટે અનુક્રમે ધનદત્ત, સુમિત્રા, જયનંદન, વિમલમંત્રી, સુકેશા, શ્રીધર, હેમંજય, સુવસુંધર અને વજ્રોદરનો પ્રયોગ કરાયેલો છે. અર્થની દૃષ્ટિએ ખાસ ફેર લાગતો નથી. તેમાં સુકેશી–સુકેશા, હેમંગળ–હેમંજય, વસુંધર–સુવસુંધર તો લહીઆઓની ભૂલો પણ હોવી સંભવે છે. કોઈ કોઈ ઠેકાણે એક જ વિશેષ નામને બદલે બીજો મળતો શબ્દ પણ ગોઠવી દેવામાં આવ્યો છે. દા. ત. હરિબલ (પ્રથમ સંધિ) ને માટે હરિદત્ત કથામાં વપરાયો છે જ્યારે ભવિષ્યદત્ત આખ્યાનમાં તિવેઈ (ત્રિવેદી) માટે સંતિમઈ શબ્દ યોજવામાં આવ્યો છે. તે માટે જુઓ અનુક્રમે ગાથા નં. ૨૭૪ તથા ૨૫૨ (દસમું આખ્યાન). કોઈ વખત પર્યાયવાચી શબ્દ પણ લેવામાં આવેલ છે. દા. ત. અરિપુરનો રાજા પ્રભંજન હતો એમ ભવિષ્યદત્ત આખ્યાનમાં છે જ્યારે ભવિષ્યદત્ત કથામાં મરૂત શબ્દનો પ્રયોગ કરાયેલો છે. આ સંબંધમાં પાઠાંતરોની પસંદગીમાં વિવેકબુદ્ધિ વાપરવાની કેટલી જરૂર પડે છે તેનો એક દાખલો અહિ નોંધુ તો તે અસ્થાને નહિ ગણાય. પ્રભંજન નામનો પ્રયોગ ભવિષ્યદત્ત આખ્યાનમાં જે ગાથામાં કરેલો છે તે ગાથા નીચે પ્રમાણે છે:–

तत्थ पभंजणनामो राया लोयाण जणियपरिओसो ।
मंती वि वज्जसेणो तस्स य भज्जा य सिरिकंता ॥ १०, ३२७

યાકોબી સંપાદિત ભવિષ્યદત્ત કથામાં નીચે પ્રમાણે પાઠ છે:–

तहिं नरवइवरु नामु महोयरु धर महएवि मंति वज्जोयरु ।

અહિંયા वरु શબ્દ માટે યાકોબીએ मरु શબ્દને પાઠાંતર તરીકે પાદનોંધમાં લીધો છે. આ ગાથા ઓગણીસમી સંધિના બીજા કડવકમાં આવે છે. દલાલ–ગુણે સંપાદિત ભવિષ્યદત્ત કથા नरवइ मरुनामु એ પ્રમાણે શબ્દો લીધેલ છે. પણ ડૉ. ગુણે રાજાના નામ તરીકે તો 'महोयरु' શબ્દને જ લે છે અને 'मरुनामु' એ શબ્દનો કશો અર્થ પોતાની નોટ્સમાં પાછળ આપતા નથી. એટલે કે એ શબ્દ એમને સમજાયો નથી એ ચોક્કસ છે. ડૉ. યાકોબીએ સ્થિર કરેલ પાઠ ભવિષ્યદત્ત આખ્યાનવાળી ગાથા આપણી સામે ન હોય તો જરા પણ ખોટો નથી; ઉલટો સુયોગ્ય લાગે છે. પણ ભવિષ્યદત્ત આખ્યાનવાળી ઉપર્યુક્ત ગાથા વાંચ્યા પછી આપણે રાજાના નામ તરીકે 'मरुत्' શબ્દ લેવો જોઈએ. અને 'મહોદર' ને મોટા ઉદરવાળો એ અર્થમાં એના વિશેષણ તરીકે લેવું જોઈએ.

વધારાનાં વિશેષ નામો

ભવિષ્યદત્ત આખ્યાનમાં નિમ્નોક્ત નામો વધારાનાં છે એટલે કે ભવિષ્યદત્ત કથામાં એ વપરાયાં નથી. વરદત્તની સ્ત્રી અને સરૂપાની માતા મનોરમા, ભવદત્ત અને નાગસેન (ભવિષ્યાનુરૂપાના માતા પિતા), કાંપિલ્યપુરનો રાજા નંદ, ગંધર્વનો રાજા ગંધર્વસેન અને તેની સ્ત્રી ગાંધારી, વસુંધરની સ્ત્રી સુમતિ તેમ જ તેના પુત્રો શ્રીવર્ધન તથા નંદિવર્ધન ઇત્યાદિ. જ્યારે ભવિષ્યદત્ત કથામાં નીચે લખેલ વિશેષ નામો એવાં છે કે જે ભવિષ્યદત્ત આખ્યાનમાં વપરાયાં નથી. કમલશ્રીનો પિતા હરિબલ કે હરિદત્ત જયલક્ષ્મી

અને ચંદ્રલેખા, કાંચનમાલા, ચિત્રાંગ, પ્રિયસુંદરી, પૃથુમતિ, લોહજંઘ, અનન્તપાળ, હરિપતિ, પર્વતપતિ, અભિનંદન, ક્ષુલક, રોહિણી, કનકપ્રભ, સૂર્યપ્રભ, ચંદ્રરાશિ, તારા, સુતારા, ગુણમાલા ઇત્યાદિ ઇત્યાદિ.

સ્થળનાં નામો

ભવિષ્યદત્ત આખ્યાન અને ભવિષ્યદત્ત કથા એ બન્નેમાં સ્થળનાં નામો લગભગ એક સરખાં છે. કુરુદેશ, ગજપુર, સુવર્ણભૂમિ, મૈનાક દ્વીપ, ચંદ્રપ્રભ જિનાલય, દ્વીપતિલક-નગર, કાંપિલ્યપુર, સિંહલદ્વીપ અને અરિપુર વગેરે વગેરે. તિલકને બદલે દ્વીપતિલક, કાંચનભૂમિને બદલે સુવર્ણભૂમિ, કુરુજંગળને બદલે કુરુદેશ એવા નહિ જેવા શાબ્દિક ફેરફારો સિવાય સ્થળનાં નામો બન્નેમાં લગભગ સરખાં જ છે.

પ્રસંગો

બન્ને કૃતિઓમાં પ્રસંગો લગભગ સરખા જ છે. પરંતુ આગળ કહ્યું તેમ ભવિષ્યદત્ત કથા પ્રમાણમાં ઘણી મોટી હોઈ સ્વાભાવિક રીતે એમાં વર્ણન વિસ્તાર જરૂર વધારે છે, એમાં આવતા ચાર પ્રસંગો (નાના મોટા મળી છ પ્રસંગો) વિષે અહિઆ ખાસ નોંધ લેવી આવશ્યક છે. નામમુદ્રા, જયલક્ષ્મી અને ચંદ્રલેખાએ કરેલી ભવિષ્યાનુરૂપાના પાતિવ્રત્યની કસોટી, કાંચનમાલાનો ધનપતિ તરફનો ઉપાલંભ અને પોતનપુરના રાજાએ ભૂપાળ રાજા પાસે ચિત્રાંગને મોકલીને કરેલી માંગણીઓ અને તેમાંથી ઉદ્ભવેલું યુદ્ધ. આમાંનો પ્રથમ તો બન્ને કૃતિઓમાં છે. ભવિષ્યદત્ત આખ્યાનમાં "**નામમુદ્રા**" શબ્દનો પ્રયોગ થયો છે જ્યારે ભવિષ્યદત્ત કથામાં "**નાગમુદ્રા**" શબ્દ પ્રયોગ થયેલો છે. ભવિષ્ય પોતાની એંધાણીરૂપે પોતાની માતા કમલશ્રી સાથે ભવિષ્યાનુરૂપા ઉપર "નાગમુદ્રા" મોકલાવે છે. મારી દૃષ્ટિએ ભવિષ્યદત્ત કથાગત "નાગમુદ્રા" શબ્દ કરતાં "નામમુદ્રા" શબ્દનું સાર્થક્ય વિશેષ છે.

છેલ્લા ત્રણ પ્રસંગો કવિ ધનપાળે મૂળ વસ્તુને એમને એમ રાખી માત્ર કળાની દૃષ્ટિએ ઉમેર્યા હોય એમ લાગે છે અને એ એકમાત્ર ઘટના ઉપરથી કવિ ધનપાળને હું મહેશ્વર સૂરિના અનુવર્તી તરીકે કહેવા પ્રેરાયો છું. મહેશ્વર સૂરિ કહે છે કે "એમેગ एएयं पंचमिफलसंजुयं दसमं ॥ १० । ४८६ ॥" એટલે એમાંયે સંક્ષેપમાં બધુ કહ્યું છે. તેમ જ ધનપાળ પણ કહે છે કે "पारंपरकव्वहं लहिवि मेउ मइ आखिउ सरसइबलिण एउ" (ચૌદમી સંધિને અંતે). મહેશ્વરસૂરિએ કથાવસ્તુ ગમે ત્યાંથી લીધી હોય અગર તો નવીન જ કલ્પી હોય અગર સુધારા વધારા કરી રચી હોય — ગમે તે હો. પણ ધનપાળે તો ભવિષ્યદત્ત આખ્યાન ઉપરથી જ પોતાની કથા રચી હોય એમ દેખાય છે. કારણ કે બન્નેમાં તદ્દન સામ્ય છે. ઉપર્યુક્ત ત્રણ પ્રસંગો નવા છે; અને એ નવા છે એટલે જ ભવિષ્યદત્ત કથામાં વધારે વિશેષ નામો આવે છે. બાકી બધાં નામો — વિશેષ નામો અને સ્થળનાં નામો — આપણે ઉપર જોઈ ગયા તેમ લગભગ સરખાં છે — કોઈ ઠકાણે પર્યાયો મુક્યા છે તો કોઈ ઠકાણે પૂર્વ પદને બદલે ઉત્તર પદ અને ઉત્તર પદને બદલે પૂર્વ પદ એમ આડા અવળા ગોઠવવામાં આવ્યા છે. એ સિવાય ખાસ કશો ફેરફાર નથી. ધનપાળની ભવિષ્યદત્ત કથા ઉપરથી મહેશ્વર સૂરિએ ભવિષ્યદત્ત આખ્યાન રચ્યું હોત

તો બીજા પ્રસંગોની જેમ ત્રણેય પ્રસંગોને પોતે ખુશીથી એકાદ બે ગાથામાં ટૂંકાવી મુકી શકત, પણ તેમ નથી. એટલે મહેશ્વર સૂરિ રચિત "પંચમી માહાત્મ્ય" કરતાં પ્રાચીન, પંચમીવિષયક કોઈ કથા ગ્રન્થ આપણને ઉપલબ્ધ ન થાય ત્યાંસુધી આપણે એમ જ માનવું રહ્યું કે ધનપાળ કવિ પાસે મહેશ્વરસૂરિ રચિત "પંચમી માહાત્મ્ય" આદર્શ રૂપે હોવું જોઈએ; અને એમાં દસમા આખ્યાનને મૂળ તરીકે નજર સમક્ષ રાખતાં કળાની દૃષ્ટિએ જ્યાં જ્યાં એને યોગ્ય લાગ્યું ત્યાં ત્યાં મૂળને અન્યાય કર્યા વિના પ્રસંગો યોજી વર્ણન વિસ્તાર કર્યો. એકલા પોતનપુરના રાજાની લડાઈના પ્રસંગ માટે તેરમી અને ચૌદમી સંધિ રોકવામાં આવી છે. ભૂપાળ રાજાને અર્ધું રાજ્ય અને પોતાની પુત્રી ભવિષ્યને આપવાં હતાં; તેના ઔચિત્ય માટે અને પોતાની કવિત્વશક્તિ બતાવવા સારૂ યુદ્ધનો પ્રસંગ યોજી ભવિષ્યને પરાક્રમી સિદ્ધ કરે છે. આ સિવાય આ પ્રસંગનો બીજો કશો ઉપયોગ નથી. એ સંધિઓ કાઢી લેવામાં આવે, તો પણ વસ્તુના પ્રવાહમાં જરાય ખલલ પડતી નથી. એટલે મારૂં એમ દૃઢપણે માનવું છે કે ધનપાળ કવિએ પોતાની ભવિષ્યદત્ત કથા મહેશ્વર સૂરિએ રચેલ "પંચમી માહાત્મ્ય" અથવા "જ્ઞાનપંચમી કથા" ની અંતર્ગત દસમા અને છેલ્લા ભવિષ્યદત્ત આખ્યાન ઉપરથી રચી છે અને તેથી તે મહેશ્વરસૂરિનો અનુવર્ત્તી એટલે ઈ. સ. ની અગીઆરમી સદીની છેલ્લી પચ્ચીસીમાં થયો હોવો જોઈએ. મારા આ અભિપ્રાયના સમર્થનમાં પં. લાલચંદ્ર ભગવાનદાસ ગાંધીનું આ વાક્ય "साम्प्रतं प्रसिद्धा धर्कटवणिग्वंशोद्भवधनपालनिर्मिता........अपभ्रंशा भविस्सयत्तकहा (पञ्चमीकहा) अस्या एव प्रान्तकथायाः प्रपञ्चरूपा" ખાસ નોંધું છું. અહિ આ વાપરેલો "अस्या." શબ્દ મહેશ્વર સૂરિ રચિત "પંચમી કથા" અને "प्रान्तकथा" એટલે ભવિષ્યદત્ત આખ્યાન સમજવાનું છે.

પછી તો એમ બન્યું કે જ્ઞાનપંચમી કથા કે સૌભાગ્યપંચમી કથા પુરતા શ્વેતાંબર આમ્નાયના આદ્યરક્ષક મહેશ્વર સૂરિ ગણાયા અને કનકકુશળ તથા ક્ષમાકલ્યાણ વગેરે તેમને ચીલે ચાલ્યા. અને શ્રુતપંચમી કથા પુરતા દિગંબર સંપ્રદાયના અગ્રિમ પ્રસ્થાપક ધનપાળ ગણાયા (કારણ કે આપણે આગળ જોયું તેમ મૂળ શ્વેતાંબરોની આ કથામાં દિગંબર અંશ ઉમેરી એને દિગંબરી આપનાર ઓપ પ્રથમ કવિ ધનપાળ છે) અને તેમને સિંહસેન અપરનામ રઈધુ, શ્રીધર વગેરે પોતાના "ભવિષ્યદત્ત ચરિત્ર" માં અનુસર્યા.

*

૧૪ ઉપર્યુક્ત "જેસલમીર ભાંડાગારીય ગ્રન્થાનાં સૂચી" પૃ. ૪૪.
૨.૧.૧૧

सोलंकी समयना राजपुरुषोनी नामावलि

लेखक – श्रीयुत रामलाल चुनीलाल मोदी – पाटण

*

ગયા વર્ષના 'ગુજરાત સમાચાર'ના દીપોત્સવી અંકમાં 'સોલંકી સમયના રાજ્યાધિકારીઓ' વિષે લેખ લખ્યો હતો. તેમાં તેમની પદવીઓ અને અધિકારો વિષે ચર્ચા કરી હતી. આ લેખમાં એ પદવીઓ ઉપર કયા કયા માણસો હતા તેમના નામની યાદી આપવા ધારું છું. આ યાદી બે ભાગમાં આપી છે. પહેલા ભાગમાં જૈન અધિકારીઓનાં નામ છે અને બીજા ભાગમાં જૈનેતર અધિકારીઓનાં નામ આપ્યાં છે. જૈન અધિકારીઓનાં નામ મુખ્ય રીતે જૈન લેખકોના લખેલા પ્રબન્ધો અને ગ્રંથોની પ્રશસ્તિઓ તથા પુષ્પિકાઓ (Colophons) માં જોવામાં આવે છે, પરન્તુ કેટલાક અપવાદો બાદ કરતાં દાનપત્રો કે શિલાલેખોમાં તેમનાં નામ જોવામાં આવતાં નથી. તેથી ઉલટું જૈનેતર (વૈદિક ધર્મના) અધિકારીઓનાં નામ માત્ર દાનપત્રો અને શિલાલેખોમાં અને કવચિત્ કવચિત્ ગ્રંથોની પુષ્પિકાઓમાં જોવામાં આવે છે. આનું કારણ હું એમ સમજું છું કે સોલંકી વંશના રાજાઓ વૈદિક ધર્માનુયાયી હોવાથી અને તેમણે બ્રાહ્મણોને અને વૈદિક ધર્મમંદિરોને દાન આપેલાં હોવાથી, તેમાં જૈન અધિકારીઓનો ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો નહિ હોય. તેમ જ વૈદિકોમાં જૈનોના જેવી ગ્રંથલેખન અને પુસ્તક સંરક્ષણની ધાર્મિક પ્રથા નહિ હોવાથી, વૈદિક રાજ્યાધિકારીઓનાં નામવાળા ગ્રંથો બહુ અલ્પસંખ્યામાં મળી આવે છે. જૈન મંત્રીઓએ મોટાં ધર્મમંદિરો બંધાવ્યાં હતાં, તેના શિલાલેખોમાં તેમના પૂર્વજોની હકીકતો નોંધાઈ હોય છે અને તેમણે દાન આપીને લખાવેલાં પુસ્તકોમાં પણ એવા પ્રકારની હકીકત નોંધાઈ હોય છે. આ પ્રશસ્તિઓમાં કેટલીકવાર અતિશયોક્તિઓ પણ જોવામાં આવે છે. જેમ કે જૈન પ્રબંધોમાં ઉદયનને કુમારપાલનો મહામાત્ય જણાવેલો છે, છતાં પણ શિલાલેખોના પુરાવાથી સિદ્ધ થઈ શકે છે કે તે કદી પણ મહામાત્ય બન્યો નહોતો. તેના પૌત્ર કુમારસિંહને એક પ્રશસ્તિમાં મહામાત્ય જણાવ્યો છે, પણ ગિરનારના તેના જ વંશજના લેખમાં તેને કોષ્ઠાગારિક (કોઠારી) જણાવેલો છે. આથી પ્રબન્ધોની હકીકતોને ઉત્કીર્ણ લેખોનો ટેકો મળે નહિ ત્યાં સુધી એ ઉલ્લેખો સંપૂર્ણ આધારભૂત ગણી શકાય નહિ.

આ નામાવલિ સંપૂર્ણ હોવાનો દાવો નથી. કેટલાંક નામ રહી ગયાં હોવાનો સંભવ છે. ફાર્બસ સભા તરફથી પ્રકટ થતા ઐતિહાસિક લેખોના પુસ્તકનો ત્રીજો ભાગ પ્રસિદ્ધ થયા પછી કેટલાંક નામ ઉમેરવાનાં રહેશે. આ પ્રયાસ પ્રથમ છે, તેથી કોઈને અપૂર્ણતા જણાય અને તે વિષે સૂચના કરવામાં આવશે તો લેખક આભારી થશે.

આ લેખના પહેલા ભાગમાં બે નામાવલિઓ આપી છે. તેમાં રાજાઓનો સમય અને આધારભૂત ગ્રંથો અને લેખોના નિર્દેશ કરેલો છે. રાજપુરુષોના સમયનું વર્ષ પણ આપવામાં આવ્યું છે બીજા ભાગમાં રાજ્યાધિકારની પદવીના અધિકાર વિષે થોડીક માહીતી આપી છે. આ યાદીમાં માંડલિક રાજાઓ કે સામંતો અને રાજપુરોહિતોનાં નામોનો સમાવેશ કર્યો નથી, કેમ કે તેમને રાજ્યના અધિકારી ગણી શકાય નહિ.

(१) राजपुरुषोनी नामावलि

अ जैन

નામ	અધિકાર	સમય	આધાર

પ્રથમ મૂલરાજ–સં. ૯૯૮ થી ૧૦૫૩

નામ	અધિકાર	આધાર
૧ વીર મહત્તમ (મહેતા)	(૧) મંત્રી. (ટંકશાળનો અધિકારી)	નેમિનાથ ચરિત (કાવ્યાનુશાસનનો અંગ્રેજી ઉપોદ્ઘાત–ર. છો. પરીખ)
	(૨) મહામંત્રી.	પ્રા. જૈ. લે. સંગ્રહ ભા. ૨, પૃ. ૧૪૬

*

ચામુંડરાજ–સં. ૧૦૫૩ થી ૧૦૬૬

નામ	અધિકાર	આધાર
,,	મંત્રી	પ્રભાવક ચરિત–વીરપ્રબંધ શ્લો. ૧૩૬

*

પહેલો ભીમદેવ:સં. ૧૦૭૮ થી ૧૧૨૦

નામ	અધિકાર	આધાર
૨ નેઢ	મંત્રી	ને. ના. ચ. (ર. છો. પરીખ)
૩ વિમલ	દંડનાયક (ચન્દ્રાવતી). સં. ૧૧૮૧	આબુ ઉપરનો વિમલ-વસતિનો લેખ
૪ જાહિલ્લ	વ્યયકરણ અમાત્ય (ખર્ચખાતાનો પ્રધાન).	જૈનસાહિત્યનો ઇતિહાસ, ટિ. ૨૩૩

*

પહેલો કર્ણદેવ–સં. ૧૧૨૦ થી ૧૧૫૦

નામ	અધિકાર	આધાર
૫ ધવલક	મંત્રી.	મહચરિત, અધ્યાય ૩
૬ મુંજાલ	મહામાત્ય. સં. ૧૧૪૬	યોગદૃષ્ટિસમુચ્ચયની પુષ્પિકા (જૈ. સા. ઇ. પૃ. ૨૧૯)
	મંત્રી.	પ્રબન્ધચિન્તામણિ, પૃ. ૮૮
૭ સંપત્કર (સાંતૂ)	મહામાત્ય.	કર્ણસુન્દરી નાટિકા

*

સિદ્ધરાજ–સં. ૧૧૫૦ થી ૧૧૯૯

નામ	અધિકાર	આધાર
૮ ,,	મહામાત્ય.	પ્ર. ચિ., પૃ. ૯૧
૯ આશુક	મહામાત્ય. સં. ૧૧૭૯	ઉત્તરાધ્યયનવૃત્તિની પુષ્પિકા (જૈ. સા. ઇ. પૃ. ૨૪૭)
૧૦ સજ્જન	દંડનાયક (સોરઠ). સં. ૧૧૮૦	તીર્થકલ્પ તથા પ્ર. ચિ. પૃ. ૧૦૫
૧૧ ઉદયન	મંત્રી.	પ્ર. ચિ. પૃ. ૧૨૫
૧૨ સોમ	કોશાધિકારી. (ખજાનચી)	કીર્તિકૌમુદી, ૩, ૧૪

*

કુમારપાલ–સં. ૧૧૯૯ થી ૧૨૨૯

૧૩ વાગ્ભટ	(૧) અમાત્ય.	દ્વયાશ્રય કાવ્ય, ૨૦, ૯૧
	(૨) મહામાત્ય.	પ્ર. ચિં. પૃ. ૧૨૭
૧૪ આલિગ	જ્યાયાન્ પ્રધાન. (મહાપ્રધાન)	,,
૧૫ સજ્જન	દંડનાયક (ચિતોડ). સં. ૧૨૦૭	ચિતોડનો શિલાલેખ
૧૬ આંબડ	મંત્રી.	પ્ર. ચિં. પૃ. ૧૪૨
૧૭ સોલાક	સત્રાગાર.	,, ૧૬૪
૧૮ પૃથ્વીપાલ	(૧) મંત્રી. સં. ૧૨૦૫	પ્રા. જૈ. લે. સં. ભા. ૨; પૃ. ૧૨૭
	(૨) મહામાત્ય.	મલ્લીનાથ ચરિત પ્રશસ્તિ
૧૯ કુમારસિંહ	(૧) કોષ્ઠાગારિક.	ગિરનારનો હાથી પગલાનો લેખ
	(૨) મહામાત્ય. સં. ૧૨૨૫	પૃથ્વીચંદ્ર ચરિતની પુષ્પિકા, જેસલમેરના ભંડારોની સૂચિ, ૧૭
૨૦ વાધૂયન	મહામાત્ય. સં. ૧૨૨૭	મહાપુરિસ ચરિયની પુષ્પિકા, પ્ર. ચિં. પૃ. ૧૪૧
૨૧ કપર્દિન્	મંત્રી.	જેસલમેરના ભંડારોની સૂચિ, પૃ. ૩૯ પ્ર.ચિ.પૃ.૧૪૧

*

અજયપાલ–સં. ૧૨૨૯ થી ૧૨૩૨

,,	મહામાત્ય.	પ્ર. ચિ. પૃ. ૧૫૭
૨૨ આભડ	મંત્રી.	ચતુર્વિંશતિપ્રબન્ધ
૨૩ આનન્દ	મંત્રી.	ને. ના. ચ. (ર. છો. પરીખ)
૨૪ યશઃપાલ	મંત્રી.	મહામોહપરાજય

*

બીજો ભીમદેવ–સં. ૧૨૩૪ થી ૧૨૯૮

૨૫ વસ્તુપાલ	મહામાત્ય.	પ્રબન્ધો અને આબુના લેખો
૨૬ તેજઃપાલ	મંત્રી.	,, ,,

*

વીસલદેવ–સં. ૧૩૦૦ થી ૧૩૧૮

૨૭ પદ્મ	(૧) મંત્રી.	પદ્માનન્દકાવ્યપ્રશસ્તિ ૧૯, ૫૦
	(૨) કોષ્ઠાગારિક.	ચતુર્વિંશતિ પ્રબન્ધ–અમરચન્દ્રસૂરિપ્ર૦

*

૨ વૈદિક

પહેલો મૂળરાજ–સં. ૯૯૮ થી ૧૦૫૩

૧ શિવરાજ	મહત્તમ (મહામાત્ય!) સં. ૧૦૫૧	સાચોરનું દાનપત્ર
૨ જેહુલ	મહાપ્રધાન	દ્વયાશ્રય કાવ્ય ૨, ૫૬ (ટીકા)
૩ જમ્બક	મહામંત્રી	,, ,,
૪ જય	મહાસાંધિવિગ્રહિક. સં. ૧૦૩૦	હ. હ. ધ્રુવ નિર્દિષ્ટ દાનપત્ર (અપ્રસિદ્ધ)

*

ચામુંડ–સં. ૧૦૫૩ થી ૧૦૬૬

૫ માધવ	મહામંત્રી.	શ્રીધરની દેવપાટણ પ્રશસ્તિ શ્લો. ૧૨

*

પહેલો ભીમ–સં. ૧૦૭૮ થી ૧૧૨૦

૬ ચંડશર્મા	મહાસાંધિવિગ્રહિક. સં. ૧૦૮૬-૯૩	દાનપત્રો
૭ દામોદર	સાંધિવિગ્રહિક (માલવા).	પ્ર. ચિ. તથા દ્વયા. કા.

*

કર્ણદેવ–સં. ૧૧૨૦ થી ૧૧૫૦

૯ [સ]ાંગિલ્ય	મહાસાંધિવિ૦ સં. ૧૧૩૧	નવસારીનું દાનપત્ર
૧૦ આહિલ	,, સં. ૧૧૪૮	સૂણકનું દાનપત્ર
૧૧ કૈક્કક	આક્ષપટલિક. ,,	,,

*

સિદ્ધરાજ–સં. ૧૧૫૦ થી ૧૧૯૯

૧૨ અંબાપ્રસાદ	વ્યયકરણ (અમાત્ય). ખર્ચખાતાનો અધિકારી સં. ૧૧૯૫	ઉજ્જેનનો શિલાલેખ
૧૩ દાદાક	મહત્તમ. (મહામાત્ય). ,,	,,
૧૪ મહાદેવ	દંડનાયક (માળવા). ,,	,,
૧૫ ગાંગિલ	મંત્રી.	મુદ્રિતકુમુદચન્દ્ર પ્રકરણ અં. ૩ તથા પ્ર. ચ.–દેવસૂરિપ્રબંધ શ્લો. ૧૭૨
૧૭ જગદેવ	પ્રતીહાર.	ફ્રી. ફૉ. ૨, ૯૯

*

કુમારપાલ–સં. ૧૧૯૯ થી ૧૨૨૯

(૧૪) મહાદેવ	મહામાત્ય. સં. ૧૨૦૨ થી ૧૨૧૬ બાલી, કિરાડૂના શિલાલેખ	
૧૮ લક્ષ્મણ	મહાક્ષપટલિક. સં. ૧૨૧૨	દાનપત્ર (ર. છો. પરીખ)
૧૯ ચાહડ	દંડનાયક (માળવા). સં. ૧૨૨૨	ઉદયપુર (માળવા) નો શિલાલેખ
૨૦ દેલણ	મહાસાંધિવિ૦	ર. છો. પરીખ
૨૧ જસોધવલ	મહામાત્ય. સં. ૧૨૨૦	ઉદયપુર (માળવા)નો શિલાલેખ
૨૨ વયજલ્લ	મહાદંડનાયક. સં. ૧૨૧૩–૧૬	સેવાડી તથા આલીના શિલાલેખો
૨૩ વલ્લ	મંત્રી.	શ્રીધર પ્રશસ્તિ (સં. ૧૨૭૩)
૨૪ મૂલુક	નાયક (સોરઠ). સં. ૧૨૦૨	માંગરોળની વાવનો શિલાલેખ

*

અજયપાલ–સં. ૧૩૨૯ થી ૧૨૩૨

૨૫ સોમેશ્વર	મહામાત્ય. સં. ૧૨૨૯–૩૧	ઉદયપુર (માળવા) શિલાલેખ તથા દાનપત્ર
૨૬ લૂણપસાક	દંડનાયક. સં. ૧૨૨૯	ઉપરનો શિલાલેખ
૨૭ શોભનદેવ	પ્રતીહાર. સં. ૧૨૩૧	ઉપરનું દાનપત્ર

*

બીજો ભીમદેવ–સં. ૧૨૩૪ થી ૧૨૯૮

૨૮ રત્નસિંહ — મુદ્રાધિકારી. સં. ૧૨૪૭ — પ્ર. ચં. ચ. ની પુષ્પિકા (પિટર્સન ત્રીજો રિપોર્ટ, પૃ. ૫૧)
(૨૭) શોભનદેવ — દંડનાયક (લાટ). ,, — ,, ,,
૨૯ ભીમાક — મહાસાંધિવિ० ૧૨૫૬ — પાટણનું દાનપત્ર
૩૦ કુંવર — મહાક્ષપટલિક. ,, — ,,
૩૧ વોસરિ — ,, ૧૨૬૩ — ગાંભુ તથા આહાડનાં દાનપત્ર
૩૨ સૂરઈ — મહાસાંધિવિ० ,, — આહાડનું દાનપત્ર
૩૩ ઠાભૂ — મહામુદ્રામાત્ય. ૧૨૬૫ — આબુનો શિલાલેખ
૩૪ રતનપાલ — મહામાત્ય. સં. ૧૨૬૬ — દાનપત્ર
૩૫ સોમરાજ — મહાપ્રતીહાર. ,, — ,,
૩૬ શોભન — મુદ્રાધિકારી. ,, — ,,
૩૭ બહુદેવ — મહાસાંધિવિ० સં. ૧૨૮૩-૮૭-૮૮ — દાનપત્રો
૩૮ વયજલ — ,, સં. ૧૨૯૫-૯૬ — ,,

*

ત્રિભુવનપાલ–સં. ૧૨૯૮ થી ૧૩૦૦

(૩૭) બહુદેવ — મહાક્ષપટલિક. સં. ૧૨૯૯ — દાનપત્ર
(૩૮) વયજલ — મહાસાંધિવિ०

*

વીસલદેવ–સં. ૧૩૦૦ થી ૧૩૧૮

૩૯ નાગડ — મહામાત્ય. સ. ૧૩૧૫–૧૭ — પોરબંદરનો શિલાલેખ તથા દાનપત્ર (સં. ૧૩૧૭)
૪૦ સલખણસિંહ — દેશાધિપતિ (સોરઠ અને લાટ). — કાટેલાનો શિલાલેખ
૪૧ સામંતસિંહ — દેશાધિપતિ (સોરઠ). — ,,

*

અર્જુનદેવ–સં. ૧૩૧૮ થી ૧૩૩૧

(૪૧) સામંતસિંહ — દેશાધિપતિ (સોરઠ), સં. ૧૩૨૦ — કાટેલાનો લેખ
૪૨ માલદેવ — મહામાત્ય. સ. ૧૩૨૦–૨૮ — વેરાવળ અને કચ્છના શિલાલેખો

*

સારંગદેવ–સં. ૧૩૩૧ થી ૧૩૫૩

૪૩ પાલ્હ — દેશાધિપતિ (સોરઠ). સં. ૧૩૩૦ — ગિરનારનો શિલાલેખ
૪૪ કાન્હ — મહામાત્ય. સં. ૧૩૩૨ — કચ્છનો શિલાલેખ
૪૫ મધુસૂદન — ,, સં. ૧૩૪૮ — અનાવાડા (પાટણ) નો શિલાલેખ
૪૬ પેથડ — મુદ્રાધિકારી (પાલણપુર). ,, — ,,
૪૭ વાઘુય — મહામાત્ય. સં. ૧૩૫૦ — આબુનો શિલાલેખ
૪૮ માધવ — ,, સં. ૧૩૫૦ — નૈષધકાવ્યની ટીકા

*

કર્ણદેવ–સં. ૧૩૫૩ થી ૧૩૫૬

(૪૮) માધવ — મહામાત્ય. — વિચારશ્રેણિ, તીર્થકલ્પ, ધર્મારણ્ય અને નેણસીની ખ્યાત.

*

(२) पदवीओनो परीचय

મહામાત્ય

રાજાનો મુખ્ય પ્રધાન. તેની પાસે રાજ્યની મહામુદ્રા (શાહીમહોર-privy seal) રહે. બધા મંત્રીઓ તેના તાબામાં હોય. તેને મહામંત્રી અથવા મહત્તમ પણ કહેવામાં આવે છે.

મહાપ્રધાન

મહામાત્ય અને મહાપ્રધાન એ બે પદવીઓ જૂદી હોય એમ જણાય છે. દ્વયા. કા. માં ખેરાળુના રાણા જેહુલને મહાપ્રધાન કહ્યો છે. એથી એમ સમજાય છે કે સામંતોમાં જે મુખ્ય હોય તેને મહાપ્રધાન કહેતા હશે.

મંત્રી

મહામાત્યની હાથ નીચેના પ્રધાનો મંત્રીઓ અથવા સચિવો કહેવાતા. મંત્રી સામાન્ય અર્થમાં દરેક ખાતાના ઉપરી અધિકારીને કહેવામાં આવતો. પરંતુ અમુક પ્રાંતના વહીવટને માટે જૂદા મંત્રીઓ હતા—જેમ કે સોરઠનો મંત્રી, લાટનો મંત્રી, વગેરે. તેની પાસે પોતાના પ્રાંત (દેશ કે મંડળ)નું દફતર રહેતું. તેને સામાન્ય રીતે રાજધાનીમાં રહીને પોતાના પ્રાંતનો વહીવટ કરવાનો હતો.

દેશાધિપતિ

આ અધિકારી પ્રાંતમંત્રીના હાથ નીચે હતો. તે પ્રાંતના સ્થળે રહીને વહીવટ ચલાવતો. તે મત્રીનો વિશ્વાસુ માણસ હતો.

નાયક

દૂરના પ્રાંતમાં વ્યવસ્થા જાળવવા જે સૈન્ય રાખવામાં આવતું તેનો ઉપરી નાયક કહેવાતો. તેનો દરજ્જો દેશાધિપતિ જેટલો જ હતો.

સાંધિવિગ્રહિક

પર રાજ્યોમાં જે પ્રતિનિધિ (એલચી) રહેતો તે સાંધિવિગ્રહિક કહેવાતો. પરરાજ્યો સાથેનો રાજકીય વ્યવહાર તેની મારફતે ચાલતો હતો. યુદ્ધના વખતમાં તે સંદેશવાહકનું કામ કરતો.

મહાસાંધિવિગ્રહિક

બધા સાંધિવિગ્રહિકોનો ઉપરી મહાસાંધિવિગ્રહિક કહેવાતો. તે રાજધાનીમાં રહેતો, પરંતુ તેને રાજાની સાથે ફરવાનું હતું. હાલના પરરાષ્ટ્ર મંત્રી (foreign minister) ના જેવું તેનું કામ હતું. ધર્માદા ખાતું તેના તાબામાં હતું. દાનમાં આપેલી જમીન મૂળ માલીક પાસેથી લેઈ દાન લેનારના કબજામાં સોપવવાનું કામ તે કરતો અને તેથી દાનપત્રોમાં દૂતક તરીકે તેની નિમણૂક થતી હતી. દૂતકની જૂદી પદવી હતી નહિ.

અક્ષપટલિક

ગામડાઓમાં અને નગરોમાં રાજ્યનાં ખતપત્રો લખવાનું કામ જે અધિકારીઓ કરતા તે અક્ષપટલિકો કહેવાતા. હાલનો પટેલ (મરાઠી પાટીલ) શબ્દ પટલિક ઉપરથી થયો છે.

મહાક્ષપટલિક

બધા અક્ષપટલિકોનો ઉપરી મહાક્ષપટલિક હતો. તે રાજધાનીમાં રહેતો. રાજ્યનો પત્રવ્યવહાર તેની કચેરીની મારફતે થતો. રાજકીય ખતપત્રો પણ તેની કચેરીમાં તૈયાર થતાં હતાં. દાનપત્રોના મુસદ્દા પણ તે તૈયાર કરતો. દાનપત્રોના લેખક તરીકે તેનું જ નામ હોય છે.

દંડનાયક

જીતેલો મુલક મૂળ રાજાને પાછો આપી તેને માંડલિક બનાવે, ત્યારે તેના ઉપર દેખરેખ રાખવા જે અધિકારી નીમાવામાં આવે તેને દંડનાયક કહેવામાં આવતો. હાલના રેસિડન્ટ કે પોલીટીકલ એજંટ જેવો તે હતો. ઉપરાંત તેની કંઈક લશ્કરી સત્તા પણ હશે એમ તેના નામ ઉપરથી જણાય છે.

મહાદંડનાયક

એક લેખમાં વૈજલને મહાપ્રચંડ દંડનાયક કહ્યો છે. તે ઉપરથી જણાય છે કે તે દંડનાયકોનો ઉપરી હશે. હાલના વાઇસરોયના પોલીટીકલ સેક્રેટરી જેવા તેના અધિકારો હોવાનો સંભવ છે.

મુદ્રાધિકારી

લોકોના ખતપત્રો નોંધનાર અધિકારી મુદ્રાધિકારી કહેવાતો. તે રાજ્યનાં મોટાં નગરોમાં રહેતો. હાલના નોંધણી કામદાર – સબ રજીસ્ટ્રાર – જેવો તે હતો.

મહામુદ્રામાત્ય

બધા મુદ્રાધિકારીઓનો તે ઉપરી હતો. તે રાજધાનીમાં રહેતો હતો. હાલના નોંધણી સરકામદાર – ચીફ રજીસ્ટ્રાર – જેવા તેના અધિકારો હશે.

કોશાધિકારી

રાજ્યના ખજાનાનો તે ઉપરી હતો. હાલના ઍકાઉન્ટન્ટ જનરલ જેવા તેના અધિકાર હોવા જોઈએ.

વ્યયકરણ અમાત્ય

ખરચ ખાતાનો તે ઉપરી હતો. આ ઉપરથી જણાય છે કે રાજ્યની ઉપજ અને ખરચ ખાતાના જૂદા અમલદારો હશે. કોશાધિકારી કદાચ ઉપજ ખાતાનો અધિકારી હશે.

કોષ્ઠાગારિક (કોઠારી)

આ કદાચ રાજમહેલનાં વસ્ત્રો અને અલંકારોની વ્યવસ્થા રાખનાર અધિકારી હશે.

મહાપ્રતિહાર

રાજમહેલ સાચવનાર રક્ષકોનો અને રાજાના અંગરક્ષકોનો તે ઉપરી હતો. રાજધાનીનો તે પોલીસ અધિકારી (કોટવાલ) પણ હતો.

સત્રાગાર

ધર્મશાળાઓ, અન્નસત્રો વગેરેની વ્યવસ્થા આ અધિકારી કરતો હતો.

*

भारशिवो अथवा नवनागो

[हिंदना ई० स० १५० थी २८४ सुधीना इतिहासनो प्रकाश]

लेखक — श्रीयुत डुंगरसी धरमसी संपट — करांची

*

પ્રાગ્ ઇશુના કાળમાં થયેલા હિંદના સમ્રાટોમાં મૌર્યવંશ વિષે આપણને થોડો થોડો પ્રકાશ એમના ઇતિહાસ કાળને માટે મળ્યો છે. ચંદ્રગુપ્ત મૌર્યને વિષે આપણને જૈન સાધનો, તેમ જ મુદ્રારાક્ષસ વિગેરે અન્ય સાધનો દ્વારા પ્રકાશ મળે છે. મહાન્ પ્રિયદર્શી અશોક સંબંધી હકીકતો આપણને તેના મહાન્ આજ્ઞાસ્તંભોમાંથી મળે છે. તે પછીના કુશાનો સંબંધીનો ઇતિહાસ તેમના સિક્કાઓ અને બુદ્ધધર્મનાં પુસ્તકો આપે છે. કુશાન સમ્રાટ્ કનિષ્કસંબંધી પણ ઘણી હકીકતો આપણે બૌદ્ધ સાધનો દ્વારા જાણી છે. પરંતુ કુશાનોના હાથોમાંથી તેમનું સામ્રાજ્ય ઝુંટવી લઈ, કઈ સત્તાએ પોતાના સ્વાધીનમાં લીધું તે વિષય ઇતિહાસકારોએ બહુ ખેડ્યો નથી.

ડૉ. વિન્સેન્ટ એ. સ્મિથ

પોતાના હિંદના ઇતિહાસમાં જણાવે છે કે હિંદમાં છેલ્લો કુશાન સમ્રાટ્ વાસુદેવ હશે. એ વિશાળ સામ્રાજ્યનો શાસક હતો. એના પછી હિંદના વિશાળ ઉત્તર દેશો ઉપર રાજ્ય ચલાવતો કોઈ એક સમ્રાટ્ થયો જણાતો નથી. ઘણાં નાનાં નાનાં રાજ્યો અસ્તિત્વમાં આવ્યાં હશે. ત્રીજી સદી માટે ઐતિહાસિક પ્રમાણો બિલ્કુલ લભ્ય નથી. કુશાન અને આન્ધ્ર વંશોના અંત વચ્ચેનો સમય એટલે ઈ. સ. ૨૨૦ થી ઈ. સ. ૨૩૦નો સમય અને ગુપ્ત સામ્રાજ્યના ઉદયનો સમય, જે ૧૦૦ વરસ પછી થયો હતો, તે સમયનો હિંદનો ઇતિહાસ અજ્ઞાત અવસ્થા ભોગવે છે. ઇતિહાસમાં એ સમય ખાલી રહ્યો છે.

ડૉ. કે. પી. જાયસવાલ

મિરજાપુર (સંયુક્તપ્રાંત)ના પ્રસિદ્ધ પ્રાચીન તત્ત્વવેત્તા ડૉ. જાયસવાલે આ વિષયમાં પુરાણો, જુના સિક્કાઓ, જુનાં કાવ્યો અને શિલાલેખોના આધાર ઉપરથી શોધો કરી, તે સમયમાં પણ ઉત્તર હિંદમાં મહાન્ સમ્રાટો થઈ ગયા છે એવું ચોક્કસરીતે સાબીત કર્યું છે. એમણે એ સમયના ઇતિહાસના નીચે મુજબ ભાગો પાડ્યા છે.

(૧) ઉત્તર હિંદ, નાગવંશના રાજ્ય નીચે ઈ. સ. ૧૨૦થી ઈ. સ. ૨૮૪સુધી ચાલ્યો.

(૨) ઉત્તર હિંદ, વાકાટક વંશના રાજાઓના સામ્રાજ્ય નીચે ઈ. સ. ૨૮૪થી ઈ. સ. ૩૪૮ સુધી હતો.

(૩) સમુદ્રગુપ્તનું મગધનું મહાસામ્રાજ્ય.

(૪) ઉત્તર અને દક્ષિણ હિંદનું સામ્રાજ્ય ઈ. સ. ૨૪૦થી ઈ. સ. ૩૫૦

પ્રસ્તુત લેખમાં નાગોના સામ્રાજ્યનો વિસ્તાર દેખાડાયો છે.

૨.૧.૧૪.

भारशिवोनो उल्लेख

અંગ્રેજી ઇતિહાસકારોના ઊંડા સંશોધનના અભાવમાં અને સિક્કાઓનાં અક્ષરોના અશુદ્ધ વાચનથી અને પુરાણોમાંના ઇતિહાસનો સુમેળ નહિ હોવાથી આ ઘોટાળો થયો હોય એમ ડૉ. જાયસવાલ માને છે. બ્રાહ્મણ સમ્રાટ્ પ્રવરસેન (જે સમ્રાટ્ સમુદ્રગુપ્તની પહેલા એક સદી ઉપર ઉત્તરહિંદ અને દક્ષિણના ઘણા ભાગનો સમ્રાટ્ હતો) વાકાટક વંશનો સમ્રાટ્ હતો. આ સમ્રાટ્ના પુત્ર ગૌતમીપુત્રે ભારશિવોના સમ્રાટ્ ભાવનાગની રાજકન્યા સાથે વિવાહ કર્યો હતો. એના પુત્ર સમ્રાટ રૂદ્રસેન પાસેથી સમુદ્રગુપ્તે સામ્રાજ્ય જીતી લીધું હતું. આ વાકાટક વંશના તામ્રપત્રમાં નીચે પ્રમાણે હકીકત મળી આવે છે.

"શિવની કૃપાથી ભારશિવોના વંશનો વિસ્તાર થયો હતો. એ સમ્રાટો શિવનાં ચિહ્નો પોતાના ખભાં ઉપર ધારણ કરતાં હતા. તેઓનો ભાગીરથીના જળમાં અભિષેક થયો હતો. એમણે પોતાના બાહુબળથી મોટું સામ્રાજ્ય મેળવ્યું હતું. તેઓએ દશ અશ્વમેધો કર્યા હતાં."

ભારશિવો સામ્રાજ્ય મેળવે છે

ઈ. સ. ૪૮માં કુશાન સમ્રાટ વાસુદેવ (મથુરાના લેખપરથી) રાજ્ય કરતો હતો. કુશાનો પરદેશીઓ અને ધર્મદ્રોહીઓ હતા. ગર્ગસંહિતા અને બીજા પુરાણોમાં એમનો જે બ્રાહ્મણો પ્રત્યેનો દ્વેષ અને અત્યાચારોનાં ભયાવહ વર્ણનો છે. મધ્ય એશિઆમાંથી આવેલા આ કુશનોએ હિંદમાં મોટું સામ્રાજ્ય સ્થાપ્યું હતું. બુદ્ધ ધર્મનો મહાન્ પ્રશસક સમ્રાટ કનિષ્ક એ વંશનો સમ્રાટ્ હતો. એ કુશાનોના હાથમાંથી ઈ. સ. ૧૬૫ અથવા ઈ. સ. ૧૭૬માં ભારશિવોએ સામ્રાજ્ય ઝુંટવી લીધું હતું, એમ ડૉ. જાયસવાલની માન્યતા છે. કારણ કે બરાબર એ જ સમયે ભારશિવોએ દશ અશ્વમેધો કર્યા હતાં. દશ અશ્વમેધો કરનાર એ ભારશિવો કાંઈ સાધારણ રાજાઓ હોય નહિ. કુશાનો વિરૂદ્ધ એ દશ અશ્વમેધો થયાં હોવાં જોઈએ. એ રીતે ભારશિવો મોટા ચક્રવર્તિ રાજાઓ હતા.

પુરાણોમાં એમનું નામ કેમ નથી?

પુરાણોમાં ઠેઠ ગુપ્તવંશ સુધીના ઉલ્લેખો મળે છે. પરંતુ ભારશિવોનું એમાં નામ પણ મળતું નથી. સુંગોએ બે અશ્વમેધ યજ્ઞો કર્યા હતાં. સુંગ સમ્રાટોના નામ પુરાણોમાં મળે છે. સાતવાહન વંશના સમ્રાટોએ બે અશ્વમેધ કર્યા હતાં. એમનાં નામો પણ પુરાણોએ જીવંત રાખ્યાં છે. પરંતુ ભારશિવોએ દશ અશ્વમેધો કર્યા છતાં એમનો ઉલ્લેખ કેમ નથી? પુરાણોએ એમને શા માટે અવગણ્યા છે? અવગણ્યા નથી.

ભારશિવો જ નંદો છે

ડૉ. જાયસવાલ માને છે કે પુરાણોમાં જે નંદોનો ઉલ્લેખ આવે છે તે જ ભારશિવો છે. વાકાટક વંશના એક તામ્રપત્રમાં ભારશિવ રાજા ભાવનાગનું નામ ઉલ્લેખવામાં આવ્યું છે. એ રાજા નાગવંશનો હતો એમ ચોખ્ખું જણાવ્યું છે. એ સમ્રાટ્ શ્રીભાવનાગ ભારશિવોનો મહાન્ સમ્રાટ્ હતો. પુરાણોમાં આંધ્ર વંશના નાશ અને તેની સાથે જ

તુખારા મુરૂન્ડ વંશ (કુશાન સામ્રાજ્યવંશ)ના લોપ પછી બુંદેલખંડમાં વિંધ્યશક્તિના ઉદયનો ઉલ્લેખ કરેલો છે. વિંધ્યશક્તિ વાકાટક વંશનો સમ્રાટ્ હતો. વિંધ્યશક્તિના પુત્રના સામ્રાજ્યનો ઉલ્લેખ કરી પુરાણો નાગવંશનું વર્ણન કરે છે. નાગવંશ વિદિશામાંથી આગળ વધ્યો હતો. વિદિશા સુંગોનું અગત્યનું શહેર હતું. ત્યાં તેમનો મુખ્ય સુબો રહેતો હતો. વિષ્ણુપુરાણ, નાગપુરાણ અને બ્રહ્માંડપુરાણમાં નાગોના વંશનું વર્ણન આપવામાં આવ્યું છે. વિષ્ણુપુરાણમાં ઉલ્લેખની શરૂવાત કરી છે કે—

नवनागाः पद्मावत्यां कान्तिपुर्यां मथुरायामनु गङ्गाप्रयागं मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति ।

નવનાગો પદ્માવતી, કાંતિપુર અને મથુરામાં રાજ્ય કર્તા હતા. જ્યારે મગધ ગુપ્તો ગંગા ઉપરના પ્રયાગના શાસકો હતા.

પુરાણોમાં નાગવંશ

પુરાણો નાગોને બે વિભાગોમાં મર્યાદિત કરે છે. પહેલો વિભાગ સુંગોના પહેલાં પણ નાના રાજાઓ તરીકે જીવંત હતો. બીજા વિભાગના સમ્રાટો સુંગો પછી વિખ્યાતિ પામ્યા હતા. પુરાણો આ વિદિશાના નાગોને "વૃષ" શબ્દથી સંબોધે છે. વૃષનો અર્થ નંદી થાય છે. ભારશિવોનો નંદી સાથેનો સંબંધ આડકત્રીરીતે સૂચિત છે. બ્રિટીશ મ્યુઝીયમમાં હિંદના સિક્કાઓનો મોટો સંગ્રહ છે. આ સંગ્રહમાંના કૌશંબીના સિક્કાઓના રાજાઓનાં નામો તેમના ઉપરના સર્પાકારો, તથા તેમના ઉપરના તાડના વૃક્ષો વિગેરેથી એ સિક્કાઓ ભારશિવો અથવા નંદીઓના હતા એમ ડૉ. જાયસવાલ સિદ્ધ કરે છે. આ સૂક્ષ્મ ચર્ચા લંબાણના ભય અને રસવિહીનતાને કારણે અત્રે ઉતારી નથી. પરંતુ નીચે પ્રમાણે નામો સિક્કાઓમાં નીકળે છે.

વંશનાં નામો	સિક્કાનાં નામો
(૧) શેષ નાગરાજ	શેષ દત્ત
(૨) રામચંદ્ર	રામદત્ત
(૩) શિશુનંદી	શિશુચંદ્ર દત્ત
(૪) શિવનંદી	(લેખોમાં અને તામ્રપટમાં એનું નામ મળે છે.)
(૫) ભાવનંદી	ભાવદત્ત

પુરાણો આ વંશ સંબંધી કેટલીક હકીકતો જાહેર કરે છે. ડૉ. જાયસવાલ વાકાટક વંશના તામ્રપત્રો અને સિક્કાઓની મદદ લઈ ભારશિવો અથવા નંદીઓના વંશની શરૂવાતની બીનાઓ રજુ કરે છે. એ વંશના વીરસેને કુશાનોને મથુરાથી હાંકી કાઢ્યા હતા. પછી દોઆબ, ગંગા અને યમુનાના પ્રદેશોમાંથી એમનું સામ્રાજ્ય નષ્ટ કર્યું હતું.

નાગ શાસન

નાગ શાસન એ જુદાં જુદાં અંગોનો એક સંઘ હતો. તેમાં મથુરા, કાંતિપુર અને પદ્માવતીના ત્રણ મુખ્ય નાગરાજ્યો હતાં. એમાં ભારશિવો મુખ્ય સમ્રાટ્ તરીકે વિરાજતા હતા. તે સિવાય કેટલાંક પ્રજાતંત્રવાદી નાના રાજ્યો પણ આ સંઘમાં જોડાયલાં

હતાં. પદ્માવતી વંશને તાકવંશ તરીકે વર્ણવવામાં આવ્યો છે. ગણપતિનાગને અર્પણ કરેલ "ભાવશતક" નામના કાવ્યમાંથી આ હકીકત મળે છે. મથુરાના નાગો યદુવંશી તરીકે ઓળખાતા, એમ કૌમુદી મહોત્સવમાં જણાવવામાં આવ્યું છે. આ નાગો યાદવો હતા અને પંજાબના "તાક" પ્રદેશમાંથી આવ્યા હતા. મથુરાના વંશના સિક્કાઓ નથી મળ્યા એટલે એ વંશે સિક્કા પાડ્યા લાગતા નથી.

ભારશિવ નાગોનો વંશ

નવનાગના મુખ્ય વિભાગ ભારશિવોનો, સિક્કાઓ તથા બીજા સાધનોપરથી, નીચે પ્રમાણે વંશ ચાલ્યો હતો.

સમય		સાધન	રાજ્ય વરસો
ઈ. સ. ૧૪૦–૧૭૦	નવ નાગ	સિક્કાઓ	૨૭ વરસ
,, ૧૭૦–૨૧૦	વીરસેન નાગ	સિક્કાઓ, તામ્રપત્ર	૩૪ વરસ
,, ૨૧૦–૨૪૫	હય નાગ	સિક્કાઓ	૩૦ વરસ
,, ૨૪૫–૨૫૦	ત્રય નાગ	,,	—
,, ૨૫૦–૨૬૦	બરહિણ નાગ	,,	આશરે ૭ વરસ
,, ૨૬૦–૨૯૦	ચારજ નાગ	,,	૩૦ વરસ
,, ૨૯૦–૩૧૫	ભાવનાગ	તામ્રપત્ર	

ભાવનાગનો દૌહિત્ર વિદ્યુત્શક્તિ વાકાટક વંશનો બ્રાહ્મણ રાજા હતો.

પેટા નાગરાજાઓ

મથુરાના નાગોના ૩ રાજાઓના કોઈ સિક્કા મળ્યા નથી. એટલે એ યાદવવંશી કહેવાતા નાગો સંબંધી હકીકત બહાર પડી નથી. પરંતુ પદ્માવતી અને કાન્તિપુરના નાગોના સમકાલીન શાસકોનાં નામ મળી શકે છે.

પદ્માવતી	કાંતિપુર	મથુરા
તાકવંશ	ભારશિવવંશ	યાદવવંશ
ઈ. સ. ૨૧૦–૨૩૦	ઈ. સ. ૨૧૦–૨૪૫	
ભીમનાગ	હયનાગ	અજ્ઞાત
ઈ. સ. ૨૩૦–૨૫૦	ઈ. સ. ૨૪૫–૨૫૦	
સ્કંદ નાગ	ત્રય નાગ	,,
ઈ. સ. ૨૫૦–૨૭૦	ઈ. સ. ૨૫૦–૨૬૦	
બૃહસ્પતિ નાગ	બરહીના નાગ	,,
ઈ. સ. ૨૭૦–૨૯૦	ઈ. સ. ૨૬૦–૨૯૦	
વ્યાઘ્ર નાગ	આરજ નાગ	,,
ઈ. સ. ૨૯૦–૩૧૦	ઈ. સ. ૨૯૦–૩૧૫	ઈ. સ. ૩૧૫–૩૪૦
દેવનાગ	ભાવનાગ	કિર્તિસેન
ઈ. સ. ૩૧૦–૩૪૪	ઈ. સ. ૩૧૫–૩૪૪	ઈ. સ. ૩૪૦–૩૪૪
ગણપતિ નાગ	ઈંદ્રસેન	નાગસેન

ભારશિવો અથવા નાગોની ધાર્મિક માન્યતાઓ

આ નાગો મોટા શિવભક્તો હતા. આ સમય શ્રીશિવભક્તિનો ઉત્તરહિંદમાં મુખ્યત્વે મનાયો છે. બુદ્ધધર્મિ મ્લેચ્છ કુશાનોએ બ્રાહ્મણો ઉપર ભારે જુલુમ કર્યો હતો. શ્રી શંકરના અધિષ્ઠાતાપણા નીચે ભારશિવોના વંશનો ઉદય થયો. એમણે જ શંકરના મંદિરો સ્થાપ્યાં હતાં. બ્રાહ્મણોના આધિપત્યનો પુનરૂદ્ધાર કર્યો હતો. ભારશિવો અથવાં નંદીઓ શ્રીશિવના અનન્ય ભક્તો હતા. એથી પોતાના રાજ્યશાસનમાં પણ શિવની સાદાઈ અને વૈરાગ્યનો પુરેપુરો ઉપયોગ કર્યો છે. તેઓ તદન સાદાઈથી ભપકા વગર અને મોજ શોખની વસ્તુઓના ઉપયોગ વગર રાજ્ય કરતા હતા. એમણે શાહનશાહી કુશાન સિક્કાઓને પુરીને જુના હિંદુ ઘાટીના સિક્કાઓનો ઉપયોગ કર્યો હતો. એમણે નાના હિંદુ પ્રજાસત્તાક રાજ્યોને પોતાના સંઘમાં રહી જીવવાં દીધાં હતાં. આ પ્રજા-સત્તાક રાજ્યોને સિક્કા પાડવાનો અધિકાર પણ આપ્યો હતો. તેઓ અશ્વમેધ યજ્ઞો કરતાં હતાં. જુનાં હિંદુ યજ્ઞયાગાદિનો એમણે પુનરૂદ્ધાર કર્યો હતો. મગધના કોટા અને પ્રયાગના ગુપ્તો આ નાગરાજોના આશ્રિત હતા. નાગ રાજાઓએ ઠેઠ મધ્યપ્રાંત (નાગપુર) સુધી પોતાની આણ વર્તાવી હતી. એમનું સામ્રાજ્ય બીહાર, સંયુક્ત પ્રાંતો, માળવા, રાજપુતાના અને પંજાબના મદ્ર પ્રજાસત્તાક રાજ્ય સુધી પ્રવર્તેલું હતું. કુશાનોએ આ ભારશિવોથી પરાજય પામી ઈ૦ સ૦ ૨૨૮થી ૨૪૧ સુધીમાં ઈરાનના સમ્રાટ્ અરદેશરનો આશ્રય સ્વીકાર્યો હતો. ઈ૦સ૦ ૨૩૮થી ૨૬૯ સુધીમાં એમના સિક્કાઓ ઉપર ઈરાનના શાહપુરની મૂર્તિ છે. એ ભારશિવોનાં કેટલાં મંદિરો પણ મળે છે. એમાં ભૂમરાનું મંદિર મુખ્ય છે. એઓનાં સિક્કાઓમાં પ્રાકૃત ભાષા વપરાઈ છે. નાગર શબ્દ અને નાગરી લીપી સાથેનો એમનો સંબંધ ડૉ. જાયસવાલ સૂચવે છે.

બીજા લેખમાં વાકાટક સમ્રાટોનું વર્ણન આપીશું.

*

केटलीक शब्दशास्त्र विषयक चर्चा

ले० – श्रीयुत हरिवल्लभ भायाणी एम्. ए.
[रिसर्च फेलो–भारतीय विद्या भवन]

*

श्री नरसिंहभाई पटेले एक पत्रद्वारा केटलाक शब्दोना मूळ विशे केटलीक नवीन कल्पनाओ चर्चा माटे रजु करी छे. तेमना कथननो सार आ प्रमाणे छे –

(१) 'स्पष्ट०' ए विशेषण 'जोवुं' अर्थना प्राग्वैदिक √ 'स्पश्०'नुं भूतकृदन्त होय; प्रचलित पश्० (पश्य्०) ए स्पश्०मांथी निष्पन्न थयो होय; अने पछीथी ते, मूळे तेनाथी जुदा, 'देखवुं' अर्थना √ दृश्०ना आदेश तरीके वपरातो थयो होय.

(२) 'आदित्यः' ए शब्दनी 'अदितेः अपत्यं पुमान्' ए व्युत्पत्ति खरी नथी लागती. ग्रहमंडळमां सौथी आदि उत्पन्न थनार तरीके आदि०+ ०त्य०, एम, अत्रत्य०, पाश्चात्य०, वगेरेनी जेम, आदित्य० सधायो छे.

(३) 'आत्मन्०'नो प्राग्वैदिक अर्थ, पाछळथी प्रचलित छे ते 'जीवतत्त्व' नहि, पण मात्र 'श्वास' होय. जर्मन atmenनो अर्थ 'श्वास' थाय छे. वैदिक भाषामां प्रचलित छे ते अर्थ पाछळथी विकासद्वारा नीपज्यो होय.

(४) आलवाल०, चक्रवाल०, यज्ञवाट० ए त्रणेमां पाछलो अंश ए ०वाल०, ०वाट० (< √ वट्० 'घेरवुं') अथवा ०वाड०, एम भिन्नरूपे देखातो 'सीमा'वाचक शब्द न होय !

(५) आलवाल० ए *आडवाड० (='आडीवाड') न होय !

(६) अने तो आडंबर०नी साधना आड०+अंबर= 'आडो+पडदो' ए रीते न थई होय !

आ सूचनोनी योग्यायोग्यता अहीं तपासी जोईए ।

१ – √ दृश्० (पश्य्०) 'जोवुं, देखवुं'

मूळ तो ऑर्मने दृश्० अने पश्य्०नो संबंध चर्च्यो हतो. आ पछी तेनी

प्रसंगवशात् घणे स्थळे चर्चा थयेली छे.[1] मूळमां दृश्० अने पश्य्० बंने एक बीजाथी तद्दन स्वतंत्र धातु हता. पश्य्० (अथवा गणचिह्न दूर करीए तो पश्०)नुं मूळ स्वरूप √स्पश्० 'ऋग्वेद'मां प्रचलित छे. जो के तेमां पण √स्पश्०नी स्वतंत्रता लोपावानो आरंभ थई चूक्याना चिह्नो जणाय छे. कारण, √स्पश्० वर्तमान काळना रूपो माटे अंग तरीके वपरायुं नथी; ते माटे (तेम ज दृश्०ना वर्तमान अंग तरीके) √पश्य्० वपरायुं छे. पण वर्तमानेतर काळ ने अर्थना रूपो माटे स्पश्० (अने दृश्०) अंगो छे. जेम के अदर्शि, अस्पष्ट (अद्यतन), पस्पशे (परोक्ष), स्पाशयस्व (प्रेरक), स्पष्ट० (भूतकृदन्त), वगेरे. शिष्ट के उत्कर्षकालीन ('क्लासीकल') संस्कृतमां पण स्पष्ट०, स्पश० 'जासूस' अने पस्पशा० 'महाभाष्यनुं एक विशिष्ट प्रकरण' ए √स्पश्०मांथी सधायेलां रूपो जळवाई रह्या छे. पश्य्०मां थयेलो √स्पश्०ना आदि 'स्'नो लोप सरळताथी समजावी शकाय तेम छे. कारण, वैदिक भाषानी ध्वनिमीमांसा ('फोनोलॉजी')मां स्पर्श के अनुनासिक ध्वनिना संयोगमां रहेला आदि उष्मध्वनिनो लोप करवा तरफ वलण होवानुं देखाई आवे छे.

[१]

(१) √स्कन्द्० : उत्कन्द्०
(२) √स्तम्भ्० : उत्तम्भ्०
(३) √स्फुलिङ्ग० : उत्फुलिङ्ग०

[३]

√स्तन्० : तन्यति
*स्तायु० [सरखावो : तायु०
स्तेन०, स्तेय०, वगेरे]
स्तृ० : तृ० [तारक० वगेरे]
*स्नापितृ० [सरखावोः स्नापयति]
नापित० (ब्राह्मणग्रंथ) :

[२]

(१) अस्कृधोयु० : कृधु०
(२) चनिश्चदत्,
*श्चन्द्र [हरिश्चन्द्र०, :
चन्द्र० वगेरेमां]
(३) *स्तृण० [सरखावो : तृण०
भूस्तृण० ('मनुस्मृति')]

---

१ जुओ 'इन्दिशॅ बिब्लिओथेक', ३-४४; ग्रास्मान, 'वॉर्तर्बुक त्सुम ऋग्वेद', (१८७३), पा. १६०६, वगेरे; तेम ज, विधुशेखर भट्टाचार्यनो लेख (गुजराती भाषान्तर) 'संस्कृतनुं वैज्ञानिक अनुशीलन,' 'प्रस्थान' : पा. ४२५ वैशाख, १९९२

आ सौ उपरोक्त वलणना उदाहरणो तरीके टांकी शकाय.[२]

संस्कृतनी सहजन्य ('कोग्नेयट') भारत-युरोपीय भाषाओमां पण √ दृश्० अने √स्पश्०ने लगता जुदा जुदा वाचको ('वोकेबल्स') मळे छे. लाटिन specio, जर्मन sprahen, अंग्रेजी spy, वगेरे √स्पश्० ना सहजन्य छे. ज्यारे ग्रीक dérkomaiनो संबंध √दृश्० साथे छे.

√दृश्० अने √स्पश्० वच्चेनो सूक्ष्म अर्थभेद भूसाई, बन्ने समानार्थ ['जोवुं' 'देखवुं'] बनी जवाथी, भाषाओना विकासमां सामान्यरीते बने छे तेम, बेमांथी एक (√स्पश्०) वपराशच्युत थयो अने तेनुं वर्तमान अंग पश्य्०, √दृश्०ना आदेश तरीके वपरावा लाग्युं, अने ए रीते √दृश्० [पश्य्०] 'जोवुं' घडायो.

२ – आदित्य० 'सूर्यस्वरूप देवता'

सामान्यरीते आदित्य०नी साधनिका आम अपाय छे : √दा० 'बांधवुं' + ०ति०=दिति०; न दितिः अदितिः ('बंधनरहितता'). अदितेः अपत्यानि पुमांसः आदित्याः; पण ब्लूमफील्डे एकवार[३] आदित्य०=आदि० 'आरंभ'+ ०त्य० (संबंधवाचक प्रत्यय) 'पुरातन समयना (देवो)' [जेम के अत्रत्य०, पौरस्त्य०, पाश्चात्य०, वगेरे] एवी व्युत्पत्ति सूचवी हती. पण कीथ[४] कहे छे तेम आ प्रकारनुं शब्द-घडतर भाषानी रूढिनी विरुद्ध छे. कारण, ०त्य० प्रत्यय स्थळवाचक क्रियाविशेषणोमांथी संबंधवाचक विशेषणो बनाववा माटे छे, ज्यारे आदि तो विशेषण छे. ब्लूमफील्ड पोते पण पाछळथी आ अभिप्राय छोडी दे छे.

३ – आत्मन्० 'पोते' 'आत्मा'

आत्मन्०नी व्युत्पत्ति विशे विद्वानोए ठीक ठीक चर्चा करी छे,[५] छतां हजी पण ते विवादास्पद रही छे. पीटर्सबर्ग – अभिधानकोश तेने √अन्० 'श्वास

२ विस्तृत चर्चा माटे जुओ वाकर्नागॅल : 'आल्टिन्डिशॅ ग्रामाटिक' ग्रंथ १. पा. २६४–२६७.

३ जुओ ब्लूमफील्ड ; 'धी सिम्बोलिक गोड्झ', पा ४५.

४ जुओ कीथ : 'धी रिलीजिअन एन्ड फिलोसोफी ओफ धी वेद एन्ड उपनिषद्झ' ग्रंथ १, पा. २१७, पादनोंध ४.

५ जुओ दोयसन : 'दी फिलोसोफी देर इन्देर', पा. २८५–२८६; गेल्डनर : 'वेदिशॅ स्टुडीन', ग्रंथ ३ पा. ११६.

ऋओ' साथे सांकळे छे, वेबर तेने √अव् 'जवुं'मांथी व्युत्पन्न करे छे, ज्यारे ग्रासमाननो मत तेने ग्रीक âtmós जर्मना âtum, âthom, atem, atmen, वगेरेनो सहजन्य गणी √अव्०=√वा० 'वावुं' ए धातुमांथी साधवानो छे.

बीजुं, तेनो अर्थविकास आ प्रमाणे थयो गणाय छे –

श्वास >जीव> पोतानी जात, पोते.

पण आ प्रकारनो विकासक्रम स्वीकारवा सामे बे वांधा छे – एक तो 'ऋग्वेद' मां जे चार स्थळे आत्मन्०नो 'श्वास' अर्थ लेवानो छे ते चारेय फकराओ प्राचीन होवाने बदले, मुकाबले अर्वाचीन गणाता सूक्तोमां आवेला छे. एटले 'श्वास' ए अर्थ मौलिक नहि पण गौणपणे विकसित थयो होय एम लागे छे. बीजुं, प्राचीन सूक्तोमां आत्मन्० उपरांत त्मन्० ए अंगना विशेषण के क्रियाविशेषण तरीके वपरायेलां रूपो मळे छे, जे सहेलाईथी समजावी शकाय तेम नथी.

आथी दोयूसननी सूचना आत्मन्० (तेम ज ग्रीक 'âutos')ने अ० (सरखावो अ-हम्) अने त० ए बे सार्वनामिक धातुओमांथी साधवानी छे. मूळ अर्थ 'पोतानी जात' 'पंड' होय. अर्थविकासनो क्रम आ प्रमाणे होय –

१ 'पोतानी जात', 'शरीर' [बाह्य जगतना विरोधमां]
↓
२ 'धड' [बीजा अवयवोना विरोधमां]
↓
३ 'जीव' [शरीरना विरोधमां]
↓
४ 'सत्', 'अस्तित्व' [असत्, अनस्तित्वना विरोधमां]

पण दोयूसननो आ मत योग्य पुरावाना आधार विनानो, योजना खातर योजनालक्षी ('स्कीमेटीक') अने वधारे पडतो तत्त्वज्ञानरंगी लागे छे.

४ – आडम्बर० 'घोंघाट', 'शब्दालुता'

आडम्बर०नी *आड०+अम्बर० एवी व्युत्पत्ति देखावे ज तरंगी छे, अने अम्बर० जेटलो प्राचीन तेटलो आड० अर्वाचीन होवाथी [गुज. 'आड', 'आडश', वगेरेनो संबंध देश्य अड्ड० साथे छे] आपणा पर पडेली छाप सबळ बने छे. आडम्बर० शब्द ज 'ढोलक'ना अर्थमां ठेठ 'शतपथ ब्राह्मण'

(१४)मां वपरायेलो मळे छे. बीजा अर्थोमां 'उत्तररामचरित' अने 'कथासरित्सागर'मां पण ते वपरायो छे. आम शब्दनी प्राचीनता स्पष्ट होवाथी ते कांईक नियमित घडतर वाळो होवो जोईए एम धारी शकाय. संस्कृतमां डम्बर० शब्द पण छे, जेनो अर्थ 'घोंघाट', 'वाणीनो आडंबर' 'गरबड-गोटो' थाय छे. डम्बरनामन्० एटले 'आडंबरी नाम धारण करनार' (अहीं श्री विजयराय वैद्ये एक प्रसंगे कवि श्रीनानालालना कोई ग्रंथनुं समालोचन करतां ग्रंथनी भाषाना संबंधमां वापरेलो 'वाग्डंबर' याद आवे छे.) एटले आडम्बर०ने डम्बर० वच्चे संबंध बांधवो अयोग्य तो नथी ज. संभवित छे के विडम्बना०मां रहेला √डम्ब्० द्वारा सावित *डम्ब० अने ०र० प्रत्यय मळीने डम्बर० थयो होय – जो के अर्थदृष्टिए मेळ बेसारवो सरळ नथी लागतो. अने तो आ० √डम्ब्०, ०अ०, ०र० ए अंशोनां मेळवणीथी आडम्बर० तैयार थाय.

५ – आलवाल० "क्यारो"

आ शब्दनुं मूळ अस्पष्ट छे. टीकाकारोनी 'आ समन्तात् लवं जललवं आलाति इति' ए व्युत्पत्ति, आवा अस्पष्ट शब्दो माटे तेमणे घडी काढेली बीजी घणी व्युत्पत्तिओनी जेम, देखीती रीते ज तद्दन तरंगी छे. शब्द आल० अने वाल० ए बे अंशोनो बन्यो होय तेम लागे छे. पालि 'आलक०' मराठी 'अळे,' हिंदी 'आला' 'क्यारो', गुजराती 'आळियुं'–'आळियो' सूचवे छे के आल० अंश प्रमाणमां जुनो छे; अने आलवाल०नो जे अर्थ प्रचलित छे, तेने मळतो तेनो अर्थ होवो जोईए. तेथी आल०ने आड० साथे जोडवानी जरूर रहेती नथी. आल०नुं मूळ अस्पष्ट रहे छे ए खरूं, पण 'क्यारो' 'खूणो' 'खाडो' 'पोलाण' जेवी अर्थछाया वाळो आल०, 'आडश' 'प्रतिबंध' 'तीरछुं' सूचवता 'आड०' (देश्य अड्ड०) साथे अर्थदृष्टिए तो संबद्ध नथी. वळी, ध्वनिदृष्टिए ०ड०नो ०ल० थवानी शक्यता खरी,[६] पण 'आड'०ना मूळ अड्ड०मांथी आल० साधवानी अशक्यता ए एक ज कारण आड०ने फगावी देवा माटे पूरतुं छे.

---

६ 'डलयोरभेदः' ए आलंकारिकोनो जाणीतो समय अने तेना आधाररूप ०द>०ल० प्रक्रिया धरावता संस्कृत, प्राकृत अने अर्वाचीन शब्दो ए अहीं प्रस्तुत छे. उपरांत जुओ 'फेस्टश्रीफ्ट वाकर्नागेल', पा. २९४ अने पछीनां, तेम ज शार्पेन्टये 'सम संस्कृत एन्ड पालि वर्ड्स' ['इन्डिअन लिंग्विस्टीक्स' : ग्रं. २, अंक १–६, १९२२].

बाकी रहेला ०वाल० अंश पर विचार करतां चक्रवाल० 'एक पर्वत', 'वर्तुळ', 'टोळुं' अने करवाल०मां रहेलो समानध्वनि अंश आपणी नजर सामे आवे छे. तेमां चक्र० अने कर० ए अंशो तो स्पष्ट ज छे. चक्रवाल०ना ०वाल० माटे श्री नरसिंहभाई सूचवे छे : चक्रमिव वाडते=चक्रवाड०> चक्रवाल०–(√वट्–पाट्–पाड = 'घेरवुं'). आमां तेमने बीजो आधार कदाच ए मळी शके के कोशोमां चक्रवाड एवुं शब्दस्वरूप पण मळे छे. पण आ व्युत्पत्ति निराधार ठरावता बे मुद्दा छे–एक तो ए के चक्रवाड० वधारे मौलिक नहीं, पण ड् ने ल् ना उच्चारणना विषयमां प्रवर्तती शिथिलताने लीधे मूळ चक्रवाल०नो ज ए उच्चारण-भेद होय एम लागे छे. कारण, चक्रवाड ए 'पृथ्वी फरतो एक कल्पित पर्वत' ए ज अर्थमां अने अर्वाचीन ग्रंथोमां ज वपरायलो मळे छे. तेनो जुनो प्रयोग नथी मळतो. पण चक्रवाल० चक्रवाड० ना उपरोक्त अर्थमां 'कारण्डव्यूह' (२३)मां अने 'वर्तुळ' 'टोळुं' ए अर्थमां 'महाभारत' (१, ७०२१)ने 'हरिवंश' (४०९८)मां, तेम ज पछीना समयमां पण सामान्यपणे बौद्धसाहित्यमां तथा 'काव्यादर्श' (२,९९)मां मळे छे. बीजुं, वट्० ए धातु देखीती रीते ज, 'धातुपाठ'ना तेवा बीजा केटलाक धातुओनी जेम, पाछळना घडतरनो छे. वट० 'वडलो', वगेरेनुं मूळ न समजातां तेना उपरथी ज कल्पी काढेलो छे.[7] खरीरीते तो वाट०, वाटिका, गुजराती 'वाड' 'वाडी' 'वाडो' इत्यादिना मूळमां *वृत्तिका० जेवो 'फरती आडश' एवा कांइक अर्थनो कोई शब्द होवो जोईए. वृत्त 'गोळ' ने वृत्ति 'वाडो, वाड' एवा शब्दो मळे छेय खरा पण[8] वाटिका० माटे तो *वृत्तिका० जोईए के जे *वट्टिआ०> *वाटिआ० द्वारा पुनःसंस्कृतरूप वाटिका० आपी शके. आम, चक्रवाल०ना ०वाल०नुं मूळ स्पष्ट नथी थतुं, छतां तेनो अर्थ वाड० साथे तो नथी ज.

करवाल०ने माटे श्री नरसिंहभाई मूळ करपाल० (करं पालयति) सूचवे छे. पण वस्तुघटनाए ते ते शब्दोना थयेला प्रयोग जोतां जणाय छे के कर-

---

७ जुओ मोनिअर विलियम्स : 'ए संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी' (१८९९). पा. ९१४ वट अने वद् शब्द नीचे.

८ जुओ टर्नर : 'नेपाली डिक्शनरी' (१९३१), पा. ४३५ 'ए' १४ बार् नीचे. तथा, ब्लुल ब्लोक : 'मराठी भाषेचा विकास' [भाषान्तर : १९४१] पा. ४६८

पाल० (०क०) साहित्यमां प्रामाणिकपणे वपरायलो नथी मळतो; मात्र कोशो-मांज मळे छे, ज्यारे करवाल० 'महाभारत' तेम ज 'भागवत पुराण'मां वपरायेलो छे. आथी संभवित छे के करवाल०नी खरी व्युत्पत्ति न जाणता कोई टीकाकारे करपाल० कल्पी 'करं पालयति' एवी कल्पना घटावी होय. जो कल्पनानो ज आश्रय लेवानो होय तो वधारे संभवित तो ए छे के करवाल०ना ०वाल०ने √वल्० 'वळवुं' (वालयति 'वाळे छे') साथे संबंध होय. पण सारो आधार न मळे त्यांसुधी ०वाळ०नुं मूळ शुं छे? एटलुं ज नहि पण अल-वाल०, चक्रवाल०, करवाल०ना ०वाल० एक मूळना छे के जुदाजुदा मूळना! ए विशे पण आपणे अंधारामां ज रहेवुं पडशे.

*

'संपेटवुं' अने 'समेटवुं'

'संपेटवुं' अने 'समेटवु' ए शब्दोनी व्युत्पत्तिनी चर्चामां[1] श्री चतुर-भाईनो मत कंईक वधारे सयुक्तिक छे। तेमणे रजू करेला निर्णयो आ प्रमाणे छे —

(१) संस्कृत **वेष्ट्–संवेष्ट्ना** त्रण प्राकृत स्वरूप संभवे छे।

१. **वेढइ** (सिद्धहेम ८।४।२२१)

गु. 'वेढ' आ स्वरूप परथी सधायो।

२. **संवेल्लइ** (अने **उद्वेष्टते** माटे वैकल्पिक **उवेल्लइ**) (सि. हे. ८।४।२२२, २२३)

गु. 'वेल्लो' (कानना) आ वेल्ल् परथी आव्यो.

३ ***संवेट्टइ**[2] (संभवित)

सरखावो **उष्ट्र० > उट्ट०, इष्टा० > इट्टा०, संदष्ट० > संदट्ट०** (सि. हे. ८।२।३४), तेमज (वि–) **सृष्ट० > छुट्ट०.**

गु. **'वींटी' 'वींटवुं' 'वींटलो'** वगेरेना मूळमां आ **वेट्ट्** छे.

---

१ आखी चर्चा माटे जुओ "प्रस्थान", मागशर १९९३; महा १९९३; अषाढ १९९३; चैत्र १९९५.

२ आवा विषयने लगता लखाणोमां प्रचलित प्रथाने अनुसरी कल्पित शब्दो के रूपो सर्वत्र फुदडीथी दर्शाव्यां छे.

(२) एटले 'संपेटवुं'–'समेटवुं'नी साधनिका आ प्रमाणे छे–

व् नो ब् तेम ज म् थवाना समान्तर उदाहरण तरीके–

पर्वन् ना व् नुं 'परब' अने 'सपरमो' एमां थयेलुं द्विविध रूपान्तर टांकी शकाय.

(३) ऊपर आपेला 'वेष्ट्' ना त्रण विकारो वच्चे संवेष्ट् > संवेट्ट् > (संवेड्ड्) > संवेळ्ह=एवो संबंध बांधी शकाय। आपणे आ निर्णयोनी साबीती तपासीए। नेपाळी 'समेट्नु' पंजाबी ने हिंदी 'समेटना' मराठी 'समेटणें'–ए सौ गुजराती 'समेटवुं'ना सजातीय शब्दो छे ।[१] पण 'संपेटवुं' ने मळता शब्दो बीजी अर्वाचीन भारतीय-आर्य भाषाओमां मळता नथी. आ हकीकत सूचवे छे के, जो 'संपेटवुं' ने 'समेटवुं' ए बेनी वच्चे प्रकृति-विकृतिनो संबंध स्वीकारवो ज होय तो 'समेटवुं' वधारे जूनो होवाथी तेने ज प्रकृति गणवी पडशे, अने मने तो 'संपेटवुं' नो देखाव ज अर्वाचीन लागे छे. ते 'समेट०' ना पूर्वरूप सानुनासिक '*संमेट०' मांथी उच्चारणभेदने लीधे विकस्यो होय । वानर० > 'वांदर' वगेरेनी जेम '*संमेटवुं' थवुं जोईए; पण शब्दोना इतिहासमां ध्वनि-व्यापारो (Phonetic processes) उपरांत सादृश्य (analogy) ना तत्त्वनुं पण स्थान महत्त्वनुं छे, ए भुलावुं न जोईए । एटले 'संबेटवुं' ना "ब्" नुं उच्चारण 'लपेटवुं' 'पेटी' वगेरेनी असरथी 'प्' मां सरी गयुं होय । आम प्राकृत पूर्वरूप *संवेट्टने बदले '*संमेट०' मांथी 'संपेट०' उतारवो वधारे योग्य लागे छे ।

---

१ जुओ टर्नरकृत "नेपाळी डिक्शनरी", "समेट्नु" नीचे.

हवे 'समेटवुं' लइए । टर्नरनुं वलण आने सं० **संवर्त्तयति** परथी साधवा तरफ छे[4] । सं० संवर्त्तयति='वींटी ले छे', पा० संवट्टति='विकसे छे', प्रा० 'संवट्टेइ'='समेटी ले छे.' साथे ते सूचवे छे के आने सं० संवेष्टयति='समेटी ले छे,' पा० संवेठेति एनो संगदोष कदाच लाग्यो होय ।

एटले प्रथम तो टर्नरना संवर्तयति...×संवेष्टयति...अने श्री चतुरभाईना संवेष्टयति... (के संवेष्टते...) ए बे वच्चे निर्णय करवो रह्यो । श्री चतुरभाईनो मुख्य आधार ए छे के गु० 'वींटी' 'वींटवुं' वगेरे साधवा माटे √ वेष्ट् नुं (वेट्ट्)द्वारा √ *वेट्-एवुं रूपान्तर स्वीकार्या विना छुटको नथी,[5] अने आ *वेट्० एक वार स्वीकारो एटले तेने आधारे 'समेटवुं' साधवो ए तो रमत वात छे । पण गु० 'वींटी' 'वींटवुं' वगेरेनी व्युत्पत्ति विशे टर्नरनो जुदो ज अभिप्राय छे । आने लगती तेमनी शब्दसामग्रीनी तुलना आ प्रमाणे छे[6]—

(१)

प्रा० विट्टी 'पोटली'
नेपा० विटो 'भारो' 'वींटो'
सिं० वीटणु 'वींडी देवुं'
गु० 'वींटो' 'वींटी'

आ सौनुं मूळ *वीट्ट –

[नोंध – टर्नरे प्रा० विंटिया, विंटलिआ 'पोटली', विंटइ 'वींटे छे' ए प्राकृत शब्दो टांक्या नथी अने गुजराती 'वीटो' 'वींटी' अशुद्ध अथवा तो बोलीगत निरनुस्वार रूप टांक्यां छे]

(२)

सं० बीटम्, बीटा 'गिल्ली' 'मोई'
वीटकम्, वीटिका 'पाननुं बीडुं'
वीटी 'नागरवेलनो छोड'
प्रा. बीडग० (नपुं.), वीडिआ 'बीडुं'

---

४ जुओ, पूर्वनिर्देश, "समेट्नु" नीचे.

५ नरसिंहराव पण 'वींटवुं' वगेरेने सं० √ वेष्ट मांथी साधवाना मतना छे । जुओ, 'गुज० लैं० एण्ड लि०' भाग १, पा. १३१, ४४१.

६ जुओ. 'नेपाली डिक्शनरी' "विटो," "बिरो" ए शब्दो नीचे.

नेपा० विरो	'बीडुं'
पंजा० हिं० बिड़ा	
सिं० बीडो	
मरा० विडा	
गुज० 'बीडुं'	

मरा० विटी, इटी 'गिल्ली', 'मोई'
पंजा० विडा 'शीशीनो बुच'
सिं० बीड़णु 'बीडवुं'
गु० 'बीडो' 'बीडी' ['बीडवुं']

आ सौ शब्दो बे मूळ रूप सूचवे छे, *वीट० (पंजा. मरा.) अने *बीट (नेपा. सिं. हिं. गुज.)='वींटो वाळेली कोई वस्तु.' आ *वीट० के *बीट०, ऊपर सूचवेलुं *वीट्ट० बीजा शब्दो परथी सूचवातुं *वीण्ड० 'घासनो भारो के वींटो' ए सौ कोई अनार्य भाषामांथी उछीता लीधेला होय ए संभवित छे।

आम टर्नर आ शब्दसमुदायनां मूळ रूपने अनार्य भाषाना माने छे। पण आ निर्णयमां एक दोष लागे छे। ऊपर नोंधमां जणाव्युं छे तेम गु. 'वींटी,' 'वींटो', 'वींटवुं', 'वींटलो' वगेरेनी तेमज प्रा. विंटइ, विंटिया, विंटलिआ ए शब्दोनी टर्नरने जाण ज नथी, अने तेमणे मूळ तरीके सूचवेला शब्दो आ शब्दोमां रहेलो अनुस्वार समजावी शकता नथी। आथी तेमणे सूचवेली व्युत्पत्ति गुजराती 'वींटवुं' वगेरे शब्दो माटे स्वीकार्य लागती नथी।

एटले, हेमचंद्रे ष्ट् नो ट्ट थवानां त्रण उदाहरण नोंधेला होवाथी अने आपणने सं. वेष्टयति, प्रा. विंटइ, जू. गु. वींटिवइं, अर्वा. गु. "वींटवुं" ए सौ समानार्थक मळता होवाथी तेमनी वच्चे प्रकृति-विकृतिनो संबंध स्वीकारवा सामे एके सबळ वांधो लई शकाय तेम लागतुं नथी.

आ निर्णयने एक बीजो मजबूत आधार मळे छे। उष्ट्र० > उट्ट० > "ऊंट", इष्टा० > इट्टा० > "इंट" ए प्रमाणे हेमचंद्रे नोंधेला (संदट्ट०ने लगतो तद्-

---

७ जुओ टि. एन्. दवेकृत "ए स्टडी ओफ धी गुजराती लेंग्वेज" पा. १८६ श्री दवे उक्त स्थळे सूचवे छे के वींटिवइं ऊपर सं. वेष्टतेनी असर थई होय।

भव॑ न होवाथी तेने बाद करतां) बधा ष्ट् > ट्ट एवी विशिष्ट प्रक्रियावाळा शब्दो गुजरातीमां सानुनासिक छे, अने वेष्ट्० > *वेट्ट्०...> "वींट०" पण आ ज नियमने अनुसरतो छे। एटले 'वींटवुं' वगेरेना मूळ तरीके वेष्ट०ने स्वीकारवो ए ज योग्य छे। एटलुं खरुं के ऊपर तुलना माटे आपेला बीजी अर्वाचीन भारतीय–आर्य भाषाओना शब्दो माटे जे अनार्य मूळनुं रूप कल्प्युं छे तेनो प्रभाव 'वींटो' वगेरे पर पड्या विना न ज रह्यो होय। पण मूळ तरीके तो "वेष्ट्" ज गणाय.

एटले नियम प्रमाणे ०ष्ट्० मांथी निष्पन्न थता ०ट्ठ्०नी सप्राणता (aspiration) नो लोप उक्त उदाहरणोमां केम थयो ते समजावी शकाय तेम न होवा छतां वेष्ट्० ना एक रूपान्तर तरीके *वेट्ट्० स्वीकारवुं उचित छे। अने तो संवेष्ट्० > * संवेट्ट्० > * सँमेट्ट्० > 'समेट०' ए क्रमे "समेटवुं" साधी शकाय। आमां "संवर्तयति" नो कंई पण फाळो होय तो ते "वींटवुं"मांथी "विस्तारेलुं एकठुं करी लेवुं"मां थयेला अर्थविकास पूरतो ज।

०ष्ट्० > ०ट्ट्० एटले के (ष्ट्० > ट्ठ्० > ०ट्ट्०) ए प्रक्रियाना एक वधारेना उदाहरण तरीके चतुरभाईए (वि –) सृष्ट० > छुट्ट० आप्यो छे। पण आ व्युत्पत्ति तद्दन पाया विनानी छे. ०ष्ट्० नो ०ट्ट्० थवानुं पुरवार करवा ०सृ० > ०छ्०नी तद्दन चर्चास्पद अने विरल प्रक्रियानो आधार लेवो अने उपसर्गनो लोप कल्पवो ए जरा पण शास्त्रीय न गणाय। "छूटवुं" वगेरेना सजातीय शब्दो अर्वाचीन भारतीय–आर्य भाषाओमां मळे' छे. सं. (धातुपाठ) छोटयति "कापे छे," प्रा. छुट्टो, छोडेइ, छोडइ; सं. आच्छोटित० "तोडेलुं"; प्रा. आच्छोडिअ०; नेपा. छुट्नु, छोड्नु; हिं. छोड़ना; सि. छोड़णु, छुटणु; बंगा. छुटा; मरा. सुटणें, सोडणें;

सं. * निस्छुटति, सि. निछुड़णु "छूटुं थवुं"

---

८ एक रीते संदट्ट० पण समर्थक गणी शकाय। केमके निरुपसर्ग *दट्ट० मांथी उतरेला नेपा. डाँट्नु, बंगा. डाँटा, हिं. डांटना "धमकी आपवी" ए तद्भवोमां सानुनासिक रूप मळे छे। पंजा. डट्टना "अटकाववुं" सि. डाटणु "डाटो मारवो, दाटवुं" मरा. दाटणें "धमकी आपवी" गुज. "दाटी", "डा(दा)टो" "डा(दा)टवुं" ए शब्दो निरनुनासिक छे. (जुओ, टर्नर: "नेपाली डिक्शनरी." पा. २५७ बी २५ डाँट्नु). पण आ देश्य संदट्ट०" "कळेलुं" "अवडामण" अने हेमचंद्र आपेल संदट्ट० (८ सं. संदष्ट०) "कमायेलुं" "डंखायेलुं" जुदा गणवा जोइये. ९ जुओ "नेपाली डिक्शनरी", पा. १६६ बी., २०० ए.

सं. * प्रच्छोटयति. हिं. पछोड़ना "झाटकवुं"

सं. * विच्छोटयति हिं. बिछोड़ना, सिं. विछोड़णु, गुज. "वछोडवुं", "वछूटुं", "वछूटवुं".

टर्नर आ वाचक-समुदाय (groop of vocables) मूळनुं भारतीय-आर्यनी सुदूरनी पूर्वभूमिका भारत - युरोप (Indo-European) मां शोधे छे.[10] मूळ भारत - युरोपीय धातु squeb "मारवुं, कापवुं" (जेनी साथे सं. स्कुनोति "भोंकवुं" नो संबंध छे.) धातु-विस्तारना सिद्धान्त प्रमाणे 't' ए साधकप्रत्यय स्वीकारी छुट् रुपे परिणम्यो होय । पण कोलंबिया युनीवर्सिटीना अध्यापक ग्रेए *sqer-te- [<*sqere "कापवुं" + निश्चायक (determinative) -t-] ए धातुने मूळ तरीके सूचव्यो छे ।[11] मूळ * sqṛt-né-ti अगर sqṛté-ti एमांथी प्रा. छुट्टइ "कापी नाखे छे, छोडे छे" सधायो होय । लेटीन scortum "चामडी, चामडुं" एमां पण ए ज धातु रहेलो छे. प्राचीन प्रुसी (Prussian) रूसी (Russian) वगेरेमां पण आना सजातीय शब्दो मळे छे. आथी "छूटवुं" ने स्पृष्ट० साथे जरा पण लेवादेवा नथी.

हवे श्री चतुरभाईना बाकीना विधानो तपासीए –

तेमणे हेमचंद्रे आपेला वेढ्० अने वेल्ल्० नो वेष्ट्ना बीजा बे रूपान्तरो तरीके स्वीकार कर्यो छे । हवे वेष्ट्० साथे वेढ्० नो संबंध वेष्ट्० > वेट्ठ्० (पालि) > वेढ्० ए ध्वनि-विकारोने अनुसरीने ज बांधी शकाय । आमां मुश्केली ए छे के ट्ठ् > ढ् एमां रहेली स्पर्शोना संयोगलोपनी प्रक्रिया अपभ्रंश-उत्तरकालीन भूमिकमां ज प्रचूरपणे प्रचलित हती । तेनुं बीजस्वरूपे अस्तित्व तो वैदिक भूमिका जेटलुं वहेलुं स्वीकारवा माटे आधार मळे छे । पण एवी विरल

१० जुओ पूर्व निर्देश, पा. ६४७ ए.

११ जुओ, ग्रे. "फिफ्टीन प्राकृत-इन्डो-युरोपीअन इटीमोलोजीझ", [जर्नल ओफ धी अमेरीकन ओरिएन्टल सोसायटी, वॉ. ६०, नं. ३, पा. ३४३; सप्टेम्बर, १९४०] ग्रेनो आ लेख भारतीय-आर्यना अभ्यासमां एक तद्दन नवो ज प्रवेश ऊघाडे छे । भारतीय-आर्यना शब्द-भंडोळमां देश्य तरीके जाणीता शब्दोना मूळ शोधवा माटे अत्यार सुधी मात्र द्राविडी के मुण्डा भाषाओनो आश्रय लेवातो । आ लेखमां केटलाक "देश्य" गणाता शब्दो मूळे ठेठ भारत-युरोपीयमांथी लौकिक बोलीओमां जळवाईने अवशेष तरीके रही गया होवानुं पुरवार करवामां आव्युं छे.

२.१.१६

प्रक्रियानो आश्रय न छुटके ज लेवो घटे। प्रा. दाढा० "दाढ" कोढ० "कोढ", कड्ढइ "खेंचे छे" ए सौ पण आ प्रकारनो कोयडो रजू करे छे। दंष्ट्रा० > *दट्ठा०> दाठा० (पालि) > दाढा०; कुष्ठ० > *कुट्ठ० > कोट्ठ० > *कोठ० कोढ० आ प्रमाणे तेमनी साधना आपी शकाय। पण प्राकृतमां कोड्ढ० एवो वाचक (vocable) पण मळे छे, ते समजाववो घणो मुश्केल छे। कुष्ठ० > कुट्ठ० > कोट्ठ > कोड्ढ एम संबंध बांधवो शक्य नथी, कारण के एक समग्र अघोष व्यंजन-स्तबक (consonant cluster) नुं घोषीकरण न थई शके, ए प्राकृत ध्वनितंत्रनी खासीयत छे। आथी, कुष्ठ० > कुट्ठ० > कोट्ठ० > *कोठ > कोढ > कोड्ढ कंई एवी परिपाटी स्वीकारवी पडे। "कड्ढइ"ने सं. कृष्० के तेना कोई साधित स्वरूप साथे सांकळवामां पण आथीये वधारे मुश्केलीओ नडे छे। आथी ज आ उदाहरणोमांना केटलाकनो संबंध भारतीय-आर्येतर भाषा द्राविडी के भारत-युरोपीय भूमिका साथे जोडवामां आव्यो छे।[12] छतां ध्वनि-विषयक तेम ज अर्थ-विषयक साम्य जोतां, टर्नर "वेष्टने"थी "वेढइ"ने विख्टो नथी पाडता[13] ए योग्य ज लागे छे। प्रा. वेड्ढण०, नेपा. हिं. बेठन०, मरा. वेटणें —आना समर्थक छे।

पण वेष्ट्० मांथी वेल्ल् साधवो शक्य नथी लागतो। सं. वेल्लति "धुजे छे", वेल्लयति "हलावे छे, मसळे छे", वेल्लितः "हलावेलुं", प्रा. वेल्लइ आमां गहेला वेल्ल०थी संवेल्लइ अने उवेल्लइ (सिद्धहेम, ८।४।२२२, २२३) एमां गहेला वेल्ल्०ने हेमचंद्र जुदो गणता लागे छे। पण टर्नर बंनेने एक गणता जणाय छे,[14] केम के ते उपरना संस्कृत शब्दो साथे नेपा. बेल्नु "वींटवुं"; बंगा. बेला "पाथरवुं"; हिं. बेल्ना; पंजा. बेलणा. वेल्णा; सिं. वेलणु — ए सौने सांकळे छे। आ वेल्ल्० मांथी गुज. "वेलण" वगेरे सधाया छे.[15] एटले वेल्ल्० ए वेष्ट्०नो आदेश छे, ध्वनि-विकारने अनुसरीने सधायलुं स्वरूप नहि पण श्री चतुरभाई वेल्ल० परथी गुज. "वेल्लो" आव्यो होवानुं कहे छे। पण आ "वेल्लो" अर्वाचीन गुजराती वडतरनो

---

१२ जुओ, "नेपाली डिक्शनरी", पा. ८६ ए १९; मेनो पूर्वनिर्दिष्ट लेख, पा. १६१, कड्ढइ अने त्यां आपेला उल्लेखो।

१३ जुओ, "नेपाली डिक्शनरी" पा. ४५७ ए ३५, बेनु नीचे।

१४ जुओ, पूर्वनिर्देश, पा. ४५७ बी ४६, बेल्नु नीचे।

१५ जुओ, पूर्वनिर्देश, पा. ४५७ बी ४२, बेल्नु नीचे।

छे। "साडलो" एनुं स्वरूपान्तर "साल्लो", *नानलुं > (प्रांतिक) नाल्लुं, वगेरेनी जेम, मध्यवर्ती अक्षर (syllable) मां रहेला 'अ' नो अनुच्चार, आखा शब्दनुं त्वरित उच्चारण, अने तेथी परिणमतुं सारूप्य (assimilation) आ प्रक्रियाओने लीधे "वेढलो" > "वेढ्लो" > "वेड्लो" > "वेल्लो" ए क्रम द्वारा "वेल्लो" सधायो छे.

छेल्ले श्री चतुरभाईए आपेला संवेष्ट् > संवेट्ट् > (संवेड्ड्) > संवेल्ल् ए विकासक्रममां रहेली अशास्त्रीयता तरफ ध्यान खेंचवुं बाकी रहे छे। भाषाशास्त्र ए एक शास्त्र छे, अने तेथी बीजा शास्त्रोनी जेम एमां जे जे नियमो स्थापित करवामां आवे तेमां अबाधितपणुं, पूरती सूक्ष्मता अने चोक्कसाई होय तो ज तेनुं शास्त्रत्व यथार्थ गणाय। अमुक भाषाभूमिकामां अमुक समये प्रवर्तता नियममां सामान्यतः ते भूमिका अने समय पूरती सार्वत्रिकता होय छे – ए ध्वनिशास्त्र (phonetics) नो अगत्यनो सिद्धान्त छे। ते नियमनो भंग करता होय तेवा केटलाक वाचको ("वोकेबल्स") कां तो सादृश्य ('एनेलोजी')ना व्यापारनुं परिणाम होय अगर तो ते कोई पडोशनी भाषामांथी लीधेला ऋण-शब्दो (loan-words) होय। ए खरुं के आवा कोई पण कारणथी न समजावी शकाय तेवा अमुक अपवादरूप शब्दो दरेक भाषाभूमिकामां मळी आवता होय छे। पण बहु मजबूत पुरावाना आधार सिवाय जाणीती प्रक्रियाओनी ऊपरवट थईने, कोई शब्द समजाववो, तेना करतां ते शब्दनी व्युत्पत्ति बाबत हाल पूरतुं अज्ञान होवानो स्वीकार करवो ए ज वधारे सारुं छे। अगाउ कह्युं तेम प्राकृत ध्वनि-मीमांसा (phonology)मां अघोष व्यंजन-स्तबक ("कान्सोनन्ट क्लस्टर") घोषभाव पाम्यो होवानुं एक प्रामाणिक उदाहरण नथी। आथी *वेट्ट० > *वेड्ड० ए विकार शक्य ज नथी। तेवुं ज *वेड्ड० > वेल्ल०नुं छे।[१६] वेष्ट्०नुं *वेट्ट० थाय एटलुं ज आपणे सप्रमाण कही शकीए। आ उपरांत, बीजा आधारोनी सहायथी *वेढ् > वेढ् ए विकार कल्पवो उचित गणाय, पण आथी आगळ जवुं ए तो हवामां पगलां भरवा जेवुं ज थाय.

*

१६ श्री चतुरभाईना ग्रंथ "जूनी गुजराती भाषा" (१९३५)मां संख्याबंध व्युत्पत्तिओ आवी अशास्त्रीय रीते-एटले के प्राकृत, अपभ्रंश, जूनी गुजराती वगेरेनी ध्वनि-मीमांसा ("फोनोलोजी") ने मान्य ध्वनि-नियमोने छडेचोक छापरे चडावीने साधवामां आवी छे.

पुस्तक परिचय

श्रीचित्रकल्पसूत्र – संपा० अने प्रका० साराभाई मणिलाल नवाब

गुजरातना ज्ञानभण्डारोमां संचित प्राचीन हस्तलिखित पोथीओमां मळी आवता प्राचीन अने मध्यकालीन चित्रकळाना उत्तम नमूना जेवां अनेक चित्रोना एकत्र संग्रहरूपे 'चित्रकल्पद्रुम' नामनो बहुमूल्य ग्रन्थ प्रकाशमां मूकी, विख्याति पामेला श्रीयुत साराभाई नवाबे, गुजरातनी जैनाश्रित चित्रकळानो मनोरम परिचय आपे एवो एक बीजो संग्रह प्रकाशमां मूक्यो छे जेनुं नाम चित्रकल्पसूत्र (†) छे।

कल्पसूत्र नामनो प्राकृत ग्रन्थ जैन समाजमां आबालवृद्ध सुप्रसिद्ध छे। जैन संप्रदायमां मनाता सौथी महान् पर्वदिवसरूप पर्युषणामां ए सूत्रनुं सार्वत्रिक वाचन थाय छे, अने तेथी जुना जमानाथी ए सूत्रनी प्रतिओ लखवा-लखाववामां मोटुं पुण्य उपार्जन थवानी श्रद्धा अने भावना पोषाएली छे। जैन भण्डारोमां, सौथी वधारे अने साथी मूल्यवान् हस्तलिखित प्रतो जो कोई पण ग्रन्थनी विशेष मळती होय तो, ते ए कल्पसूत्रनी छे। एमांनी कटेलीय प्रतो तो एवी होय छे के जेनी लखामणी माटे श्रद्धालु श्रावकोए सेंकडो-हजारो रूपीया खर्चेला होय छे; अने एवी ए जुनी प्रतोना केवळ दर्शन अने पूजन माटे पण भाविक जनो आजे य सेंकडो रूपीया उत्सर्ग करे छे।

कल्पसूत्रमां मुख्यपणे श्रमणभगवान् श्रीमहावीर तीर्थंकरनुं चरित्र वर्णन करेलुं छे; तेथी ए सूत्रनी प्रतिओमां, भगवान् महावीरना जीवनना अमुक अमुक प्रधान बनावोनां निदर्शक कटेलांक चित्रो पण अंकित करवानो प्रचार, प्राचीन काळथी चाल्यो आवे छे। कल्पसूत्रनी एवी सचित्र प्रतिओ आजे एक मूल्यवान् वस्तु गणाय छे अने युरोप – अमेरिकाना तद्विदो ते माटे मोटी किंमतो आपी ते खरीदी लई जाय छे। अत्यार सुधीमां सेंकडो प्रतो आ रीते विदेशोना पुराणवस्तु संग्रहालयोमां पहोंची गई छे अने छतां य हजी हजारो प्रतो जैन समाज पासे पण मळी आवे तेम छे।

साराभाई नवाबे कल्पसूत्रनी सचित्र प्रतिओ केवी होय छे अने एमां केवा प्रकारनां चित्रो अने अलंकारणात्मक आलेखनो इत्यादि अंकित करेलां होय छे एनी सर्वसाधारणने कल्पना थाय, ते हेतुथी कल्पसूत्रना मूळ पाठवाळी आ एक सचित्र आवृत्ति प्रकाशित करी छे। आ ग्रन्थ, जूनी ढबनी लखेली प्रतिओना आकारमां (पोथी साइझमां) ज छपाववामां आव्यो छे अने एमां "पाने पाने महेली किनारोमां गुजरातनी चित्रकल्पनाना सर्वोत्कृष्ट नमूनाओ रजू करती वेलबुट्टीओ, प्राणीओ, पक्षीओ, नृत्यकरतां पात्रो तथा धार्मिक तेम ज प्राकृतिक मंगल संकेतो अने प्रतिकोना नानाविध सुशोभनो चूंटी चूंटीने रजू करवामां आव्यां छे"। एमां एकंदर नानां मोटां एवां ६५ चित्रो मुद्रित करवामां आव्यां छे जे जुदी जुदी एवी अनेक जूनी प्रतिओमांथी लेवामां आव्यां छे। ए चित्रोमां सौथी जूनुं चित्र सरस्वती देवीनुं छे, जे सं. १२१८ मां लखेली ताडपत्रनी प्रतिमांथी लेवामां आव्युं छे। एक चित्र छेक सं. १८८२ मां लखेली प्रतिमांथी लेवामां आव्युं छे, अने ए रीते ए आखा संग्रहमां 'बारमा सैकाथी शुरु करीने ओगणीसमा सैका सुधीनी गुजरातनी जैनाश्रित चित्र कळाना सुंदर नमूनाओ रजू करवामां आवेला छे।' अमारी पासेनी एक प्रतिमांथी पण एमां एक-बे चित्रो मूकवामां आव्यां छे। साराभाईनां बीजां तेवां प्रकाशनोनी जेम आ प्रकाशन पण जनसमाजने अवश्य उपयोगी अने आकर्षक थई पडशे एमां शंका नथी।

---

† ग्रन्थनुं आ नाम बराबर अर्थसूचक नथी लागतुं। चित्रकल्पसूत्रनो अर्थ तो 'चित्रना कल्पनुं सूत्र' के एवो कांईक थाय – खरी रीते 'सचित्र कल्पसूत्र' एवुं नाम होवुं जोईए।

कवि - अब्दुल रहमान - कृत

सन्देश रासक ।

[१ प्रथमः प्रक्रमः]

रयणायरधरगिरितरुवराइँ गयणंगणंमि रिक्खाइं[1] ।
जेणऽज्ज सयल सिरियं[2] सो[3] बुहयण[4] वो सिवं[5] देउ[6] ॥ १ ॥

1 C रिक्खाओ 2 B C सिरिया । 3 B तं । 4 C बुहियण । 5 A C सुहं । 6 C दिंतु ।

[पं० श्रीलक्ष्मीचन्द्रकृता टिप्पनकरूपा व्याख्या ॥]

॥ ॐ नमो गुरुभ्यः ॥

नत्वा जिन-गुरून् भक्त्या स्मृत्वा वाङ्मयदेवताम् ।
वृत्तिं सन्देशरासस्य कुरुते मुनिपुङ्गवः ॥ १ ॥

तस्याऽऽद्यां गाथामाह - [1]ग्रन्थप्रारम्भे अभीष्टदेवताप्रणिधानप्रधाना प्रेक्षावतां[2] प्रवृत्तिरित्यौचित्यात् सूत्रस्य प्रथमनमस्कारगाथा ।

[१] यथा - 'रयणा०' - भो बुधजनाः स स्रष्टा[3] कर्ता वो युष्माकं शिवं माङ्गल्यं ददातु प्रकरोतु । येन स्रष्ट्रा रत्नाकर-धरा-गिरि-तरुवराः[4], गगनाङ्गणे ऋक्षाणि[5] चैत्यादि सकलं समस्तम्, सृष्टम् - उत्पादि [तम्] इत्यर्थः ॥ १ ॥

[अवचूरिका]

[१] भो बुधजनाः ! स सृष्टिकर्त्ता वो युष्माकं शिवं ददातु । येन स्रष्ट्रा[6] रत्नाकर-धरा-गिरि-तरुवरा गगनाङ्गणे ऋक्षाणि [7]चैत्यादि सकलं समस्तं [8]सृष्टमुत्पादितमित्यर्थः ॥

आदर्शोपलभ्यमाना भ्रष्टपाठा यथा -

1 ग्रन्थः प्रा° । 2 प्रेषकतां । 3 भ्रष्टा । 4 तर° । 5 रिक्षा° । 6 भ्रष्टा° । 7 चैत्यादि । 8 भ्रष्टा° ।

माणुस्सदिव्वविज्जाहरेहिँ [1]णहमग्गि सूरससिबिंबे ।
आएहिँ जो णमिज्जइ[2] तं णयरे णमह[3] कत्तारं ॥ २ ॥

पच्चाएसि पहूओ पुव्वपसिद्धो य मिच्छदेसो त्थि[4] ।
तह विसए संभूओ आरद्दो मीरसेणस्स ॥ ३ ॥

1 C नह° । 2 B °ज्जई । 3 A नमह, B णवहु । 4 A °देसो वि; B °देसु त्थि ।

[टिप्पनकरूपा व्याख्या]

[२] तथा च – 'माणुस०' – मनुष्य-देव-विद्याधरैर्नभोमार्गे सूर्य-शशिबिम्बाभ्यां आदितो यो नमस्क्रियते[1] । भो नागरिकलोकाः ! तं कर्त्तारं नमत ॥ २ ॥

द्वन्द्वालापनभेषजभोजनसमये समाग[मे] च रमणीनाम् ।
अनवारितोऽपि तिष्ठति स खलु सखे ! व्यक्तनागरिकः ॥

यस्त्वेतेषु स्थानेषु अनवारितोऽनिषेधितो तिष्ठति स नागरिकः[2] प्रोच्यते । केषु केषु स्थानकेषु – यत्र कश्चिदालोचं करोति, अथवा यत्रौषधादिवार्त्ता क्रियते, तथा भोजनावसरे कस्यापि गेहे न गच्छति । अथवा एकान्तप्रदेशे, स्त्रीसमागमे च, वार्तासमये, यस्तु अनिषेधितोऽपि तिष्ठति । स चतुरनागरिको भवति ॥

एषा (एतद् ?) विपुलगाथाछन्दः । अथ गाथालक्षणम् –

पढमो बारहमत्तो, बीओ अट्ठारसेहि नायव्वो ।
जह पढमो तह तीओ, दह पंचवि[ ]हू[ ]सिया गाहा ॥

तत्र गाथाछन्दसि प्रथमपदं द्वादशमात्रकम्, द्वितीयं पदं अष्टादशमात्रकम्, तृतीयं द्वादशमात्रकम्, चतुर्थं पञ्चदशमात्रकम् । एवं सर्वत्र ज्ञेयम् ।

[३] अभीष्टदेवतानमस्कारमुक्त्वा कविः स्वदेशादिस्वरूपमाह – 'पच्चाएसि०' – प्रतीच्यां – पश्चिमदिशि, प्रभूतः पूर्वं प्रसिद्धो म्लेच्छनामा देशोऽस्ति । तत्र विषये 'आरद्दो' देशीत्वा [त्] तन्तुवायो मीरसेनाख्यः संभूतः – उत्पन्नः ॥ ३ ॥

[अवचूरिका]

[२] मानुष्यदेवविद्याधरैर्नभोमार्गे सूर्यशशिबिम्बाभ्यामादितो यो[1] नमस्क्रियते[2] भो नागरिकास्तं कर्तारं नमत[3] ॥

[illegible]
[illegible]

[A [illegible] नागरिकलक्षणोपरि टिप्पणी ।]

[३] कविः स्वदेशादिस्वरूपमाह – प्रतीच्याम् – पश्चिमायाम्, प्रभूतः – प्रधानः, पूर्वप्रसिद्धो म्लेच्छनामा देशोऽस्ति । तत्र आरद्दो देशीत्वात् तन्तुवायो मीरसेनाख्यः[7] सम्भूतः – उत्पन्नः ॥

1 नमस्कृयते । 2 °मार्गे । 3 दस । 4 ये । 5 °स्कृयते । 6 नमत । 7 °सेनाख्यः ।

तह तणओ [1]कुलकमलो [2]पाइयकव्वेसु गीयविसयेसु[3] ।
अद्दहमाणपसिद्धो [4]संनेहयरासयं रइयं[5] ॥ ४ ॥

पुव्वच्छेयाण णमो[6] सुकईण [7]य सद्दसत्थकुसलाण ।
[8]तियलोए सुच्छंदं[9] जेहिं कयं जेहि[10] णिद्दिट्ठं ॥ ५ ॥

[11]अवहट्टय-सक्कय-पाइयंमि[12] पेसाइयंमि[13] भासाए ।
लक्खणछंदाहरणे [14]सुकइत्तं भूसियं[15] जेहिं ॥ ६ ॥

1 A कुलि° । 2 A पाईय° । 3 C °विसएसु । 4 B संनेहरा° ; C संनेहड° । 5 A रइंयं । 6 B नमो । 7 C °ण इ । 8 A तिअ° । 9 C सच्छंदं । 10 B जं निद्दिट्ठं । 11 B अवहट्टइ-सक्कइ पाइयाइं पेसाइयाण । 12 A °पाइयं च । 13 C पेसाइयाइं । 14 C सकवित्तं । 15 C भूसियं° ।

[टिप्पनकरूपा व्याख्या]

[४] तस्य – मीरसेनस्य तनयः, कुले कमल इव कुलकमलः, प्राकृतकाव्येषु गीतविषयेषु, प्रसिद्धः – लब्धरेखः[1] अब्दुल रहमाननामा अभूत् । तेन सन्देशानां[2] रासकः[3] नामाऽपभ्रंशग्रन्थः कृतः ॥ ४ ॥

[५] कविः स्वरूपमुक्त्वाऽनौद्धत्ये [न] पूर्वकवीन् नमस्कारपूर्वं व्यावर्णयन्नाह – 'पुव्वच्छेयाण०' – पूर्वच्छेकेभ्यः सुकविभ्यश्च नमोऽस्तु । कीदृशेभ्यश्छेकेभ्यः कविभ्यश्च शब्दशास्त्रकुशलेभ्यः । यैस्त्रिलोके – स्वर्ग-मृत्यु-पातालरूपे । स्वच्छन्दम् – स्वं छन्दो विद्यते यस्मिन् तत् स(स्व ?)च्छन्दं शास्त्रं कृतम् । यैश्च निर्दिष्टं सो(शो)धितमित्यर्थः । अतः कविभिः कृतं पण्डितैः सो(शो)धितम् ॥ ५ ॥

[६] अपभ्रंश[4] – संस्कृत – प्राकृत – पैशाचिकादिचतुर्भिर्भाषाभिः, यैः[5] कवित्वं कृतम्, लक्षण-च्छन्द आभरणाभ्यां तच्च विभूषितम्, तेभ्यो नमः ॥ ६ ॥
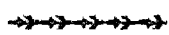
[अवचूरिका]
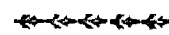
[४] तस्य – मीरसेनस्य तनयः कुलकमलः प्राकृतकाव्ये गीतविषयेषु भोगेषु च प्रसिद्धो लब्धरेखो अब्दुल रहमानोऽभूत् । तेन सन्देशरासकं[6] शास्त्रं कृतम् ॥

[५] पूर्वच्छेकेभ्यः सुकविभ्यश्च नमोऽस्तु । कीदृशेभ्यः शब्दशास्त्रकुशलेभ्यः । त्रिलोके यैः सुच्छन्दः शास्त्रं कृतम् । यैश्च निर्दिष्टं, [7]शोधितं, प्रवर्त्तापितम् ॥

पण्डितकाव्योत्तरं कृतं मयूरेण यथा –

पूर्णमानीयता चूर्णं, पूर्णचन्द्रनिभानने । कवये बाणभट्टाय, पण्डिताय च दण्डिने ॥ १ ॥

[६] अपभ्रंश-संस्कृत-प्राकृत-पैशाचिकभाषया सुकवित्वं शोभनं काव्यं यैः कृतम् । अन्यच्च लक्षण-च्छन्द-आभरणाभ्यां भूषितं मण्डितं च ॥

1 रेखः । 2 संदेशा° । 3 रासकं । 4 °भ्रंशः । 5 ये । 6 राशकं । 7 सोधितं ।

ताणऽणुकईण[1] अम्हारिसाण [2]सुइसद्दसत्थरहियाण ।
लक्खणछंदपमुक्कं [3]कुकवित्तं को पसंसेइ ॥ ७ ॥
अहवा ण इत्थ[4] दोसो जइ उइयं ससिहरेण[5] णिसिसमए[6] ।
ता किं ण हु जोइज्जइ भुअणे रयणीसु[7] जोइक्खं[8] ॥ ८ ॥
जइ [9]परहुएहिं[10] रडियं सरसं [11]सुमणोहरं च तरुसिहरे ।
ता किं भु(भ?)वणारूढा मा काया करकरायंतु ॥ ९ ॥
तंतीवायं [12]णिसुयं जइ किंवि करपल्लवेहि अइमहुरं ।
ता [13]मद्दलकरडिरवं मा सुम्मउ[14] रामरमणेसु[15] ॥ १० ॥

1 A C कई । 2 C सुय । 3 B कुकइत्तं । 4 B C अत्थ । 5 C ससिहरंमि । 6 B °समये । 7 A रयणीए; C रयणेइ । 8 C जोइक्खं । 9 C पर°; 10 B परहुएण । 11 A सुमनो° । 12 A C निसयं । 13 A मद्दलि° । 14 C सम्मउ° । 15 A °रवणेसु ।

[टिप्पनकरूपा व्याख्या]

[७] तेषां सत्कवीनाम्, अनु – पश्चात्, अस्मादृशानां कवीनाम्, श्रुति-शब्द-शास्त्ररहितानां कवित्वम्, लक्षण-च्छन्दोभ्यां प्रमुक्तम्, कः प्रशंसयति ? – अपि तु न कोऽपि ॥ ७ ॥

[८] तर्हि मा कुर्यास्तदर्थमाह – 'अहवा ण' – अथवा [1]इत्युपायान्तरस्मरणे, नात्र दोषः। यदि [2]शशधरेण – चन्द्रेण निशि उदितम्, तर्हि रजनीषु भु(भ)वने – गृहे ज्योतिष्कं दीपः किं न द्योतते ?, अपि तु द्योतते ॥ ८ ॥

[९] [4]परभृताभिः – कोकिलाभिः यदि सरसं सुमनोह[रं] यथा भवति तथा तरुसिहरे(शिखरे)रटितम, तर्हि भु(भ)वणा(ना)रूढाः गृहवलि(ल)भिस्थिताः काका मा करकरायन्तु करकर इति शब्दं मा कुर्वन्तु ?, अपि तु कुर्वन्तु ॥ ९ ॥

[१०] यदि तन्त्री – वीणावादित्रम, किल इति संभावनायाम्, करपल्लवैः – हस्ताङ्गुलीभिः वादितं नितरां श्रुतम्, तर्हि मर्दलकरटिवादित्र राम(मा)रमणी-(णी)षु – स्त्रीक्रीडासु, मा श्रयतां ?, अपि तु श्रयताम् ॥ १० ॥

[अवचूरिका]

[७] तेषां कवीनामनु पश्चात् श्रुतिशब्दशास्त्ररहितानामस्मादृशां लक्षणच्छन्दप्रमुक्तं कुत्सितं कवित्वं कः प्रशंसति ?, अपि तु न कोऽपि ॥

[८] तर्हि मा कुर्यास्तदर्थमाह-अथवेत्युपायान्तरस्मरणे, नात्र दोषः । यदि शशधरेण निश्युदितं तर्हि रजनीषु ज्योतिष्कं दीपं भु(भ)वने गृहे किं न द्योतते ?, अपि तु द्योतते ॥

[९] यदि परभृताभिः – कोकिलाभि. सरसं सुमनोहरं यथाऽऽम्रशिखरे रटितम् – शब्दितम्, तर्हि किं भु(भ)वनारूढाः काका मा करकरायन्तु ?, कस्तान् वारयति ॥

[१०] तन्त्री – वीणावादं श्रुतं यदि येन करपल्लवैरतिमधुरम्, तर्हि मर्दलकरटवादित्रविशेषरवं रामारमणेषु – स्त्रीक्रीडासु मा श्रूयताम् ?, अपि तु श्रूयताम् ॥

1 इत्यो° । 2 शशि° । 3 द्योतते । 4 परि° । 5 श्रूयतां ।

जइ मयगलु[1] मउ झरए [2]कमलदलबहलगंधदुप्पिच्छो ।
जइ [3]अइरावइ मत्तो ता सेसगया म मच्चंतु[4] ॥ ११ ॥
जइ अत्थि पारिजाओ बहुविह[5] गंधड्ढकुसुम[6] आमोओ ।
फुल्लइ सुरिंदभुवणे ता सेसतरू म फुल्लंतु ॥ १२ ॥
जइ अत्थि णई[7] गंगा तियलोए णिच्चपयडियपहावा ।
वच्चइ सायरसमुहा[8] ता सेससरी म वच्चंतु[9] ॥ १३ ॥
जइ सरवरंमि विमले सूरे[10] उइयंमि विअसिआ[11] [12]णलिणी ।
ता किं वाडिविलग्गा मा[13] विअसउ[14] तुंबिणी कहवि[15] ॥ १४ ॥

1 B मइगलु; C मदगल । 2 A कवल°; B कमला° । 3 B एरावइ° । 4 B मुचंतु । 5 A बहुविहि° । 6 C कुसम । 7 A C नई । 8 C समुहं । 9 C मचंतु । 10 B सूरे उवयंम्मि; C सूरे उवयं । 11 B विहसिया; C विहिसिया । 12 B C नलिणी । 13 B णं । 14 C बिहसउ । 15 B कहव ।

[टिप्पनकरूपा व्याख्या]

[११] यदि मतङ्गजः – दिग्गजो मदं झरति, कीदृशः कमलदलप्रचुरगन्धदुःप्रेक्षः (°क्षम् ?) । अन्यच्च – यदि ऐरावणो मत्तो भवति, तर्हि शेषा[1] गजा मत्ता न भवन्ति ?, अपि तु भवन्त्येव ॥ ११ ॥

[१२] यदि पारिजातो बहुविह(ध)गन्धाढ्यकुसुमामोदोऽस्ति, अन्यच्च – सुरेन्द्रभवने प्रफुल्लति; तर्हि शेषतरवः किं न फुल्लन्तु ?, अपि तु फुल्लन्तु ॥ १२ ॥

[१३] यदि गङ्गा नाम नदी अस्ति, त्रिलोके नित्यं प्रग(क)टितप्रभावा, सागरम् – समुद्रं सरति, तर्हि शेषाः सरितः सागरं किं मा सरन्तु ?, अपि तु सरन्तु ॥ १३ ॥

[१४] यदि विमले सरसि - सरोवरे, सूर्योद्गमे कमलिनी विकसिता, तर्हि वृत्तिविलग्ना तुम्बिनी वल्ली किं मा विकसतु ? ॥ १४ ॥
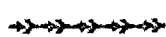
[अवचूरिका]
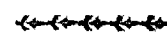
[११] यदि मतङ्गजः – दिग्गजः कमलदलबहुलगन्धदुःप्रेक्षं [मदं] झरति; अन्यच्च – ऐरापतिः – ऐरावणो मत्तो भवति तदा शेषगजाः किं मदं मा झरन्तु – मा माद्यन्तु ?, अपि तु माद्यन्तु ॥

[१२] यदि पारिजातोऽस्ति, कीदृग् बहुविधगन्धाढ्यकुसुमामोदः, सुरेन्द्रभु(भ)वने प्रफुल्लति, तर्हि शेषास्तरवो मा फुल्लन्तु ?, अपि तु फुल्लन्तु ॥

[१३] यदि गङ्गा नाम नद्यस्ति, सा त्रिलोके प्रकटितप्रभावा सागरसंमुखा व्रजति; तर्हि शेषसरितो मा व्रजन्तु ?, अपि तु व्रजन्तु ॥

[१४] यदि विमले – विस्तीर्णे सरसि सूर्योद्गमे कमलिनी विकसति तर्हि वृत्तिविलग्ना तुम्बिनी वल्ली किं मा विकसतु ?, अपि तु विकसतु ॥

1 सेषा ।

जइ भरहभावछंदे[1] णच्चइ[2] णवरंग[3]चंगिमा तरुणी ।
ता किं गामगहिल्ली तालीसद्दे ण णच्चेइ[4] ॥ १५ ॥
जइ बहुलदुद्धसंमीलिया[5] य[6] उल्लइ [7]तंदुला खीरी ।
ता कणकुक्कससहिआ रब्बडिया मा [8]दडव्वडउ ॥ १६ ॥
जा जस्स कव्वसत्ती सा तेण अलज्जिरेण[9] भणियव्वा ।
जइ चउमुहेण भणियं ता सेसा[10] मा भणिज्जंतु[11] ॥ १७ ॥

*

णत्थि तिहुयणि जं च[12] णहु[13] दिट्ठु[14],
तुम्हेहिँ वि[15] जं न सुउ[16], विअडबंधु सुच्छंदु सरसउ ।
णिसुणेविणु को रहइ. ललियहीणु मुक्खाह[17] फरसउ[18] ।

1 C भाविछंदे । 2 A नच्चइ । 3 B C णवरंगि । 4 C णच्चिहइ । 5 A समिलिया । 6 B C इ । 7 C समंदुला । 8 C दुव्वडं । 9 A अलज्जरेण C अलिज्जरेण । 10 B C सेसकई । 11 B भणिज्जंति । 12 B चि । 13 C नहु । 14 A दिट्ठ । 15 A तुम्हे वि । 16 सुअ । 17 C मुक्खाण । 18 B विरसिउ. A फरसिउ ।

[टिप्पनकरूपा व्याख्या]

[१५] यदि भरह(त)भावच्छन्दसा नवरङ्गचङ्ग(ङ्गि)मा नूतनवर्णप्रधाना नायिका नृत्यति, तर्हि ग्रामीणवधू तालीशब्दे न नृत्यतु ?, अपि तु नृत्यतु ॥ १५ ॥

[१६] यदि प्रचुरदुग्धेन सम्मीलिता तन्दुलानां क्षीरी उल्लति, तर्हि धान्य-कणतुषयुक्ता रब्बड्डिका मा दडव्वडउ - मा शब्दं करोतु ? ॥ १६ ॥

[१७] साध्यमाह - 'जा जस्स कव्व०' - या यस्य काव्येन शक्तिः, सा तेन लज्जां मुक्त्वा भणितव्या । यदि चतुर्मुखेन ब्रह्मणा भणितम् - चत्वारो वेदाः कृताः, तर्हि शेषाः कवयो मा कवित्वं कुर्वन्तु ॥ १७ ॥

[१८] कवित्वकरणायाऽऽत्मानं प्रोत्साह्य ग्रन्थस्य मनाग् रमणीयत्वं दर्शयन्न-

[अवचूरिका]

[१५] यदि भरतभावछन्दसा नवरङ्गचङ्गिमा तरुणी नृत्यति, तर्हि ग्रामग्रथिला तालीशब्दे किं न नृत्यतु ?, अपि तु नृत्यतु ॥

[१६] यदि प्रचुरदुग्धसंमिश्रिता तन्दुलानां क्षीरी उल्लति, तर्हि धान्यकणतुषयुक्ता रब्बडीका किं मा दडव्वडमु - मा शब्दं करोतु ?, अपि तु करोतु ॥

[१७] स्वकाव्यकरणे आत्मानमुत्साहयति - या यस्य काव्ये शक्तिः सा तेन लज्जां मुक्त्वा भणितव्या । यदि चतुर्मुखेन ब्रह्मणा भणितम् - चत्वारो वेदाः कृताः, तदपरे कवयः किं कवित्वं मा कुर्वन्तु ?, अपि तु कुर्वन्तु ॥

[१८] कवित्वकरणे आत्मानं प्रोत्साह्य आत्मग्रन्थस्य मनाग् रमणीयत्वं दर्शयन्, अनौद्धत्ये-

तो[1] दुग्गच्चिय[2] च्छेअरिहिँ[3] पत्तहिँ[3] अलहंतेहिँ ।
आसासिज्जइ कह कहवि[4] सइवत्ती [5]रसिएहिँ ॥ १८ ॥

णिअकवित्तह विज्ज[6]माहप्प[7],
पंडित्तपवित्थरणु[8], मणुजणंमि [9]कोलियपयासिउं† ।
कोऊहलि भासिअउ, मग्गभाइ[10] [11]संनेहगमउ‡ ।
तं जाणि वि णिमिसिद्धु खणु[12] बुहयण[13] करवि मणेहु[14] ।
पामरजणथूलक्खरहि जं रइयउ[15] णिसुणेहु ॥ १९ ॥ [रड्डुछन्दः ।]

1 B ता । 2 B दोग्ग : A दोगोच्चिय° । 3 A पुत्तिहि । 4 B कहव । 5 C सग्सिएहिं । 6 A °कवित्तविज्ज° । 7 C माहप्पु । 8 B पविविस्थरणु: C पविस्तरणु । 9 C कोलिय° । † '**मणु मुणे वि किंचिय पयासिउ**'-एतादृशः B स्थितः पाठः । 10 B भाइं । 11 B संनेहरा° । ‡ नोपलभ्यते C आदर्शे पंक्तिरियम् । लिपिकरप्रमादेन पतिता प्रतिभाति । 12 '**तुहिज्जइ णव सह खणु**' एवरूप: B पाठः, '**तं जाण व निमसिद्धु खणु**'-एतादृशः B पाठः । 13 B C बुहियण । 14 C मिणेहु । 15 C रयइं उ ।

[टिप्पनकरूपा व्याख्या]

तौक्ष्ण्येन कवीनाह – 'णत्थि तिहुयणि०' – भो कवयस्त्रिभुवने तन्नास्ति, यद् युष्माभिर्न दृष्टम् – न ज्ञातम्, अन्यच्च न श्रुतम् – नाकर्णितम् । अतः सर्व्वविशेषज्ञानात् । युष्मत्कृतं विकटबन्धविशेषः(षं) सुच्छन्दसं सरसं श्रुत्वा, अस्माकं मूर्खाणां विरचितं प्राकृतं काव्यम, ललितहीनम् – लालित्यवर्जितं [कः] श्रोष्यति ? अपि तु न कोऽपि । तर्हि अग्रे कथं प्रवृत्तिः ? । तद् दृष्टान्तेनाह – यथा दुर्गतैर्दारिद्रोपद्रुतैश्छेकैः, पत्राणि – नागवल्लीदलानि, अल[भ]मानैः पर्वतादौ बहुमौ(मू)ल्यत्वात्, स(श)तपत्रिका आस्वाद्यते, तथा मम काव्यमपि पठिष्यन्ति ॥ १८ ॥

[१९.] ततः प्राञ्जलिः, निजग्रन्थश्रवणार्थं पण्डितानाह – 'णियकवित्त०' – भो बुधजनाः ! निःशब्दं यथा क्षणं तूष्णीक्रियताम्[1] । अन्यच्च – यत् पामरेण स्थूलाक्षरैः बाह्यवर्णैः रचितम्, तत् स्नेहं कृत्वा शृणुत । कीदृशं निजकवित्वविद्याया माहात्म्यं प्रभावरूपम्, आत्मानुमानेन पाण्डित्यप्रविस्तारणम् । कथं प्रकाशितम् ? – मनसि

[अवचूरिका]

नाह – भोः ! कवयस्त्रिभुवने तन्नास्ति यद्युष्माभिर्न दृष्टम्[2] न ज्ञातम्, यच्च न श्रुतम्, विकटबन्धविशेषं सुच्छन्दं सरसं श्रुत्वा, अस्माकं मूर्खाणां स्पष्टम् – कृतं काव्यं ललितहीनं श्रुत्वा कः ख्यास्यति – पुनः कः श्रोष्यति ?, अपि तु न कोऽपि । तर्ह्यग्रे कथं प्रवृत्तिस्तद् दृष्टान्तेनाह – यथा दुर्गतैर्दरिद्रैश्छेकैः, पत्राणि नागवल्लीदलान्यलभमानैः, पर्वतादौ शतपत्रिकाऽऽस्वाद्यते तथा मम काव्यमपि पठिष्यन्ति ॥

1 तूष्णीकृयतां । 2 दिट्टं ।

संपडिउ[1] जु सिक्खइ कुइ समत्थु,
तसु कहउ विबुह संगहवि हत्थु[2] ।
पंडित्तह मुक्खह मुणहि भेउ,
तिह[3] पुरउ पढिव्वउ णहु वि एउ ॥ २० ॥

1 B संपडिय । 2 C बिहत्थु । 3 B C तह ।

[टिप्पनकरूपा व्याख्या]

किमपि ज्ञात्वा प्रकाशितम् । कौतूहलेन भाषितम् । पुनः कथं?-सरलभावेन । सन्देस(श)रासकं नाम । रड्डुच्छन्दः । तल्लक्षणम्-

जासु वियरणि हुंति पय पंच,
पढमं चिय पंनरह, बीय चारि गारह निरुद्धउ ।
तह तीयइ पंचदह, रड्डुभेउ जाणउ सु सुद्धउ ।
करहिणि मोहिणि मियनयणि, रासासेण मुणिंदु ।
अंतिहिं दोहउ जसु हवइ, कवि नंदड्ड भणंति ॥

यस्य प्रस्तारे आदौ पञ्चदश-एकादश-पञ्चदश-एकादश-पञ्चदशमात्रिकाणि भवन्ति पञ्च पदानि । प्रान्ते दोधकः । इति रड्डु[ल]क्षणम् । दोधकलक्षणमग्रे कथयिष्यति[1] ॥

[२०] ततः प्राञ्जलिर्निजग्रन्थश्रवणार्थं पण्डितानाह । ततो ग्रन्थपठनस्य शिष्या(क्षा)माह-'संपडिय जु'-कोऽपि समर्थः-प्रज्ञावान्, संप्रतितं-प्रसङ्गागतम्, इदं(मं) सन्देशरासकं पठति, तस्य सन्देशकविदो हस्तं गृहीत्वा भणामि । ये जनाः पण्डितानां मूर्खाणां चान्तरं जानन्ति, तेषां पुर[त] एव सन्देशरासको नाम न पठितव्यः । यतस्ते महान्तः पण्डिताः । पद्धडीछन्दः । तल्लक्षणम्-

[अवचूरिका]

[रड्डुछन्दो यथा-] जासु विरयणि हुंति पय पंच,
पढमं चिय पनरह य, बीय चारि गारह निरुद्धउ । तह तीयइ पंचदह, रड्डुभेउ जाणहु स सुद्धउ ।
करहिअमोहिणि मिअनयणि रासासेण मुणिंदु । अंतिहिं दोहउ जिसु हवइ कवि नंदड्ड भणंति ।

यस्याः प्रस्तारे आदौ पञ्चदशैकादशपञ्चदशमात्राणि पञ्च पदानि, प्रान्ते च दोधक इति रड्डालक्षणम् । दोधकलक्षणमग्रे कथयिष्यन्ते ॥

[१९] ततः प्राञ्जलिर्निजग्रन्थश्रवणार्थं पण्डितानाह-भो बुधजनाः ! स्नेहं कृत्वा निजकवित्वविद्याया माहात्म्यं प्रभावरूपमात्मानुमानेन पाण्डित्यप्रविस्तारं मनुष्यलोके कौलिकेन तन्तुवायुना (येन) प्रकाशितं कौतूहलभाषितं सरलभावेन पामरजनेन मूर्खेण कृतं सन्देशरासकं नाम कवित्वलक्षणं निःशब्दं कोलाहलं विहाय शृणुत ॥

[२०] ततो ग्रन्थपठनशीलस्य शिक्षामाह-यः कोऽपि समर्थः प्रज्ञावान् सम्प्रतितं प्राप्तमिदं शास्त्रं पठति तस्य बुधस्य पण्डितस्य हस्तं गृहीत्वा भणामि । ये जनाः पण्डितानां मूर्खाणामन्तरं कुर्वन्ति जानन्ति तेषां पुरत एव न पठितव्यः । यतस्ते महान्तः पण्डिताः ॥

1 कथयिष्यते ।

भारतीयविद्या

[बम्बईस्थित, भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित संशोधनविषयक त्रैमासिक पत्रिका]

*

प्रथम भाग

[संवत् १९९६-९७]

*

संपादक

श्री जिन विजय मुनि

*
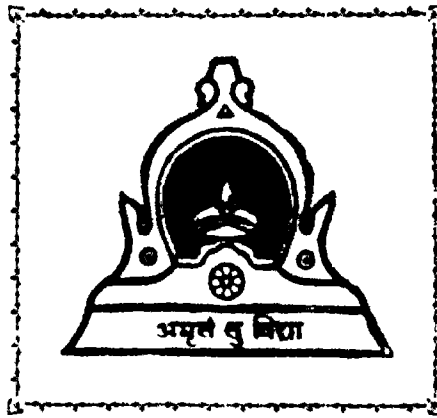
प्रकाशक

मंत्री, भारतीय विद्या भवन

अंधेरी, बंबई

भारतीय विद्या

꧁

संपादक मण्डल

* * *

भारतीय विद्या

प्रथम भाग – लेखानुक्रम

अकारादि क्रमानुसार

चित्रानुक्रम

भारतीय विद्या भवन

अध्यापक मण्डल

*

संस्कृत वाङ्मय और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

१. डॉ० मणिलाल पटेल, पीएच्. डी.; नियामक तथा श्रीमुंगालाल गोएनका अध्यापक, संस्कृत साहित्य और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

२. पं० मोतीराम शास्त्री, मुख्याध्यापक मुम्बादेवी संस्कृत पाठशाला

प्राकृत भाषावर्ग और हिन्दी वाङ्मय

श्री जिन विजयजी मुनि

भागवत धर्मशास्त्र

१. श्रीयुत दुर्गाशङ्कर केवलराम शास्त्री
अवैतनिक अध्यापक भागवत धर्मसाहित्य

२. श्री ए० डी० पुसालकर, एम्. ए. एल्एल्. बी.

३. श्रीमती कुमारी सुशीला महेता, एम्. ए. एल्एल्. बी.

जैन वाङ्मय

श्री अ० स० गोपाणि, एम्. ए.

भारतीय इतिहास

श्री शिवदत्त ज्ञानी, एम्. ए.

ग्रन्थ प्रकाशनकार्य

*

भारतीय विद्या ग्रन्थावली

प्रकाशित

१. विसुद्धिमग्ग [बुद्धघोषकृत पालीग्रन्थ] सं० श्री धर्मानन्द [illegible]

उक्तिव्यक्तिप्रकरण [संस्कृत] पं० दामोदरकृत -:- सं० श्री जिन विजयजी मुनि
सन्देशरासक – अब्दुल रहमानकृत अपभ्रंश खण्ड काव्य ,,
योग्घमकृत – कौटल्य अर्थशास्त्र टीका ,,
वैजनाथकृत – कलानिधि [प्राचीनतम मराठी गद्य ग्रन्थ] ,,
राजस्थानीकी पुरानी बातें [राजस्थानी भाषा साहित्य] ,,
प्राचीन गुजराती गद्यनिदर्शन -:- तरुणप्रभाचार्यग्रन्थोद्धृत ,,
ऋग्वेद-संहिता, षष्ठ मण्डल -:- सं० डॉ० मणिलाल पटेल
नाणपंचमीकहा [महेश्वरसूरिकृत प्राकृत भाषामय] } सं० श्री
रिष्टसमुच्चय [दुर्गदेवकृत ,, ,,] } अ० म० गोपाणि
भारतीय संस्कृतीकी रूपरेखा – प्रो० शिवदत्त शर्मा.
भारतीय विद्या [हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक [illegible]] सं० श्री जि० वि० मुनि

*

BHARATIYA VIDYA (JOURNAL OF THE B. V. B.)
Editor Dr. Manilal Patel Ph. D.

JACOBI'S ESSAYS ON THE APABHRAMSHA
by Dr. Manilal Patel

VAISHNAVISM: A HISTORICAL RETROSPECT
by Shri Durgashanker K. Shastri
assisted by Miss Sushila Mehta, M. A., LL. B.

COMPARATIVE STUDIES IN THE PURANAS
by Shri A. D. Pusalkar

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press, 26-28, Kolbhat Street, Bombay.
Published by Dr. Manilal Patel, Director, Bharatiya Vidya Bhavan, Andheri, Bombay

भारतीय विद्या

[बम्बईस्थित, भारतीयविद्याभवन द्वारा प्रकाशित
संशोधनविषयक त्रैमासिक पत्रिका]

भाग २] मार्च, ई. स. १९४२ * फाल्गुन, संवत् १९९८ [अंक २
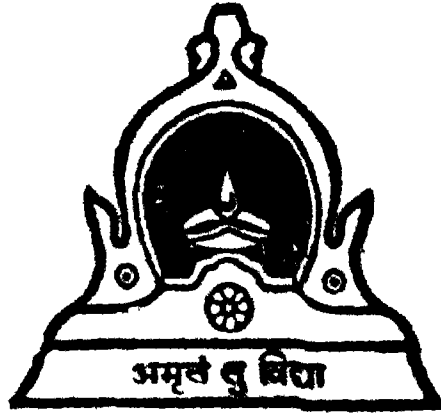
संपादक

श्री जिन विजय मुनि

*

प्रकाशक

मंत्री, भारतीय विद्या भवन

नवगुजरात, अंधेरी, बंबई

प्रति अंक मूल्य १-८-० * वार्षिक मूल्य ५-०-०

भारतीय विद्या

द्वितीय भाग]		फाल्गुन, सं. १९९८		[द्वितीय अंक

लेखानुक्रम

भारतीय विद्या

द्वितीय वर्ष] ❀ [द्वितीय अंक

अद्वैतवाद अने शंकराचार्य

*

ले० – श्रीयुत दुर्गाशंकर के. शास्त्री

ऋग्वेदमांये नासदीय जेवा कोईक सूक्तमां दार्शनिक विचारनुं बीज मळे छे; पण ए विचारोनुं प्राधान्य तो उपनिषदोमां ज जोवामां आवे छे. उपनिषदो बधां एक काळनां नथी. केटलीय पेढीओना विचारो उपनिषदोमां संग्रहाया छे. अने जो के क्यांक क्यांक बीजी अल्पसार वातो छे, पण सामान्य रीते उपनिषदोमां ऊंचा दार्शनिक विचारो कवित्वमय रमणीय भाषामां मळे छे. आत्मानी अन्तरतम गुहामांथी नीकळेलां ए औपनिषद वचनोमां आध्यात्मिक अनुभवनी एक एवी झळक छे के तेने प्रमाणनी अपेक्षा रहे नहीं. वेदना अपौरुषेयत्वनी मान्यतामां जेने श्रद्धा न होय तेने पण वेदान्त – उपनिषदोनुं स्वतःप्रामाण्य आ कारणथी अने कदाच आटला पूरतुं स्वीकारवामां भाग्ये ज वांधो आवे. पण उपनिषदो विचाररत्नोनी खाण होवा छतां विचारोनी प्रमाणपुरःसर व्यवस्था करीने रचेलुं शास्त्र नथी.

शास्त्रयुगनो उदय औपनिषदयुग पछी केटलेक वखते थयो छे. न्याय, वैशेषिकादि दर्शनोना सूत्रग्रन्थो रचाया ते उपनिषदोनी रचना पछी घणे वखते; अने भिन्न भिन्न वादोनी स्पष्ट संकलना तो सूत्रग्रन्थोमां ज पहेल-वहेली थई छे. ते ज उपनिषदोमांथी शंकर, रामानुजादि आचार्योए केवलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत वगेरे भिन्न वादो उपजाव्या छे. ए हकीकत ज उपनिषदोमां एक ज वाद सळंग स्पष्ट रूपमां नथी एनो पुरावो छे. छतां उपनिषदोनो – खास करीने छांदोग्य, बृहदारण्यकादि जूनां उपनिषदोनो सामान्य ध्वनि अद्वैतबोधक छे, एनी कोईथी ना पडाय एम नथी. मध्वाचार्य जेवा आचार्ये द्वैतवादनो अर्थ काढवा प्रयत्न कर्यो छे, पण एमना व्याख्यानमां खेंचताण चोख्खी देखाय छे. दोयसेनादि पाश्चात्य तटस्थ विद्वानो पण उपनिषदो अद्वैतवादी छे एम कहे छे.

बृहदारण्यकादि उपनिषदोथी चालेलो अद्वैतवाद महाभारत – पुराणोमांये मळे छे. जीव अने ईश्वरनो अभेद[1], एक ज अद्वितीय आत्मा आखा विश्वनां जन्म, स्थिति, लयनुं कारण छे[2]; एटलुं ज नहीं पण ए आत्मा ज सर्व छे, एथी जुदुं कांई नथी[3]; आ अद्वैत भावने जुदी जुदी रीते समजाववानो उपनिषदोमां प्रयत्न छे. पण जीव अने ईश्वरनुं तथा जगत् अने ईश्वरनुं अद्वैत मानवा जतां सामान्य अनुभव तथा मनुष्यनी अनुमानशक्ति साथे जे अथडामण थाय छे तेनुं समाधान करवानो प्रयत्न उपनिषदोमां नथी. पछीना महाभारत पुराणना अद्वैतबोधक वचनोमां पण एवो प्रयत्न नथी. कारण के उपनिषदो के महाभारत पुराणो कांई दर्शनशास्त्र नथी.

आवो दार्शनिक संकलननो पहेलो प्रयत्न ब्रह्मसूत्रमां जोवामां आवे छे. ब्रह्मसूत्रना समयनी के षड्दर्शनमां एना स्थाननी चर्चा नहीं करिए. पण न्याय-वैशेषिक तथा सांख्य-योग, उपनिषदादि साहित्यमां प्रगट थयेला विचारोने बाजु उपर राखीने, दार्शनिक चर्चा करे छे अने द्वैतवादी छे; त्यारे ब्रह्मसूत्र, उपनिषदादिमां प्रगट थयेला विचारोनो आधार लईने पोतानुं दर्शन रचे छे[4], अने कोईक प्रकारनो अद्वैत वाद रजु करे छे.

---

१ छां. उ. ६. ८–१६. २ तै. उ. ३–१.

३ बृ. उ. ४–४. १३, १९; छां. उ. ३. १४. १, वगेरे.

४ ब्रह्मसूत्रनी समग्र रचना ज, फक्त प्रथम अध्यायना चतुर्थ अने बीजा अध्यायना प्रथम–द्वितीय पादने बाद करतां, उपनिषद वचनोमांथी परस्पर अविरुद्ध एवो संकलित वाद काढवाना प्रयत्नरूप छे.

मारूं वक्तव्य ए छे के ब्रह्मसूत्र रचाया पहेलां अद्वैतना विचारो हता; जेम सांख्यकारिका रचाया पहेलां सांख्यना, पातंजल योगसूत्र रचाया पहेलां योगना अने हालनुं गौतमप्रणीत न्यायसूत्र रचाया पहेलां न्यायना विचारो हता. पण सुग्रथित शास्त्र न हतुं. ब्रह्मसूत्रमां आश्मरथ्य, औडुलोमि, काशकृत्स्न, बादरि, बादरायण, जैमिनि, वगेरे पूर्वाचार्योना मतोनो उपन्यास करेलो जोवामां आवे छे[५]. पण ते ते आचार्योना टुंका तेवा पण ग्रन्थो कोई होय एवुं मानवा माटे कशो आधार वेदान्त विषयमां तो नथी. अमुक अमुक बाबतमां जुदा जुदा आचार्योना अमुक मतो ते ते आचार्यनी शिष्यपरंपरामां प्रचलित होय अने तेनो सूत्रकारे आ रीते उल्लेख कर्यो होय, ए संभवित छे. टुंकामां मारूं वक्तव्य ए छे के उपनिषदो उपर आधार राखीने फिलसुफीनी चर्चा करनार घणा चिंतको उपनिषदो अने ब्रह्मसूत्र वच्चेना काळमां थया हशे; जेम न्यायादि तथा बौद्ध-जैनादि दृष्टियी चर्चा करनारा चिंतको थया हशे. पण उपनिषदो उपर आधार राखीने तथा न्यायादि बीजां दर्शनोनी चर्चाओने पण ध्यानमां राखीने संकलित दर्शन – फिलसुफी रजु करनारो पहेलो ग्रन्थ तो आ ब्रह्मसूत्र ज छे.

ब्रह्मसूत्रनां सूत्रो अतिसंक्षिप्त अने घणी जग्याए अस्पष्ट छे. कदाच पहेलेथी ज एनी साथे कोई वृत्ति हशे जे पाछळथी लुप्त थई गई. एम छतां ब्रह्मसूत्रमां कोईक जातनो अद्वैतवाद छे एटलुं चोक्कस. अलबत्त ए शंकराचार्य, रामानुज के वल्लभ – एकेयने सर्वथा अनुकूळ नथी एवो मारो मत छे. जो के कोईए विशिष्टाद्वैतने वधु अनुकूळ छे एवो, तो कोईए शुद्धाद्वैतने अनुकूळ छे एवो मत दर्शाव्यो छे. पण मारा मते खरी वात एवी लागे छे के केटलीक बाबतो जे स्पष्ट करवानी पाछळना आचार्योने आवश्यकता लागी छे ते ब्रह्मसूत्रमां अस्पष्ट ज रहेवा दीधी छे. सूत्रनी रचनानी शाब्दिक अस्पष्टता उपरांत सूत्रकारना फिलसुफी विषयक विचारोनी अस्पष्टता पण ए ग्रन्थमां छे.

ऐतिहासिक दृष्टिए जोतां एम लागे छे के पेढी-दर-पेढी विचारो तथा चर्चा थईने तथा दर्शनोना विरोधोमां रहेलां सत्योना जवाबोनी शोधमांथी भिन्न भिन्न दर्शनोना विचारोनो विकास थयो छे. आ विकासक्रमनो विगतवार इतिहास मळतो नथी, कारण के शंकराचार्य पहेलांना ब्रह्मसूत्र उपरना वृत्तिग्रन्थो तथा भाष्यग्रन्थो लुप्त थया छे. हवे शंकराचार्ये ब्रह्मसूत्र उपर भाष्य लखीने पोतानो

५ जुओ, ब्र. सू. १. ४. २०, २१, २२; १. २. ३०; ३. ४. १९; ३. २. ४०.

मत सूत्रमांथी काढवानो प्रयत्न कर्यो छे. ए जमानानी ए जरूरियात हशे पण तटस्थ रीते जोतां एमां शंकराचार्यनी स्वतंत्रता स्पष्ट देखाय छे.

उपनिषद् काळथी अद्वैत वाद प्रचलित हतो, पण सृष्टिप्रक्रिया, जीव अने ईश्वरना अभेदनी अवस्था, मोक्षस्थिति वगेरे प्रश्नोमां सूत्र पहेलां पण झीणा मतभेदो हता, अने ते मतभेदोनी सूत्रकारे नोंध लीधी छे. आ मतोमांथी कोइक सूत्रकार करतां शंकराचार्यना अर्थने वधारे अनुकूळ होय एवा पण दाखला छे.[६] पण ए जुदा मतवाळा आश्मरथ्य, औडुलोमि, बादरि आदि ऋषिओमांथी कोइनुं आखुं संकलित दर्शन न हतुं. एक स्थळे बीजा करतां काशकृत्स्ननो मत शंकराचार्यने अनुकूळ छे, तो बीजे स्थळे बादरिनो, अने त्रीजे स्थळे औडुलोमिनो मत अनुकूळ छे. टुंकामां, मारी कहेवानी मतलब ए छे के शंकराचार्य पासे ब्रह्मसूत्र करतां पोताना मतने वधु अनुकूळ होय एवो कोई ग्रन्थ न हतो, मात्र प्रकीर्ण मतो हता. मतलब के उपनिषदादि अद्वैतबोधक ग्रन्थो करतां शंकराचार्यना वादमां जे विशिष्टता छे ते एनी पोतानी असाधारण प्रतिभानुं ज फळ छे.

शंकराचार्यनी आ स्वतंत्रता, सूत्रकारथी मतभेद, प्राचीनोना जाणवामां हतो. शंकराचार्य पछी तरतमां थयेला भास्कराचार्य स्पष्ट कहे छे के

सूत्राभिप्रायसंवृत्त्या स्वाभिप्रायप्रकाशनात् ।
व्याख्यातं यैरिदं शास्त्रं व्याख्येयं तन्निवृत्तये ॥

अने आ कथनमां भले आक्षेप होय, कहेनारे एने दोष गण्यो होय, पण मारा मते एमां ज शंकरनी महत्ता छे. शंकराचार्य पोते आ वात गर्भित रीते कबूल करे छे. बेक स्थळे[७] सूत्रोनुं एक रीते व्याख्यान कर्या पछी बीजी रीते पोताना मतने अनुकूळ एवुं व्याख्यान करे छे. अने आ भिन्न मतना व्याख्यान माटे कोई जूनो आधार लेता नथी.

शंकराचार्यनी आ स्वतंत्र फिलसुफीनुं साचुं मूळ तो उपनिषदो छे, ए निःसंशय छे. उपनिषदोना मोटा भागनां वचनोमांथी जे निर्गुण ब्रह्मना अद्वैतवादनो ध्वनि उठे छे तेनो परस्पर तथा प्रमाणबुद्धि साथे समन्वय साधीने शंकराचार्ये पोतानुं दर्शन रच्युं छे; अने ए दर्शन ब्रह्मसूत्र अथवा बीजां कोई प्रचलित

---

६ ब्र. सू. ४. ४. ६; ४. ३. ७; १. ४. २२.

७ ब्र. सू. १. १. १९; ३. ३. १६, १७.

उपनिषद् व्याख्यानथी भिन्न होवाथी आचार्ये ब्रह्मसूत्रना भाष्यना उपोद्घातने अन्ते स्पष्ट लख्युं छे के

> यथा चायमर्थः सर्वेषां वेदान्तानां तथा वय-
> मस्यां शारीरकमीमांसायां व्याख्यास्यामः ।

मतलब के ए अध्यासभाष्यमां जे दृष्टि पोते रजु करी छे ते दृष्टिए उपनिषद्-वचनोनो अर्थ पोते कर्यो छे.

आ रीते शंकराचार्यनुं दर्शन स्वतंत्र छे, पण एनो अर्थ एना विचारो उपर कोईनुं ऋण नथी, एवो नथी. उपनिषदोनो आधार तो पोते स्वीकारे ज छे. एटलुं ज नहि पण मन अने वाणीथी अगोचर तत्त्वनुं ज्ञान उपनिषद्द्वारा ज थई शके, एम कहे छे. वळी औपनिषद अद्वैतवादीओनो संप्रदाय चालतो होवानुं उपर कह्युं ज छे. ए संप्रदायने लगतुं जे साहित्य गीता-महाभारतमां संग्रहायुं तेनो स्मृतिप्रमाण तरीके सूत्रकारे तथा भाष्यकारे स्वीकार कर्यो छे. पछी आश्मरथ्य, औडुलोमि, बादरि वगेरे अद्वैतवादीओना प्रकीर्ण मतोनो ब्रह्मसूत्रमां संग्रह थयो छे. पण सूत्रकार पछी अने शंकराचार्य पहेलां पण अद्वैतवादनो संप्रदाय चालु हतो, जेमां एक वृत्तिकारने सूत्रना व्याख्यानमां शंकर घणे भागे अनुसरे छे अने केटलीक वार जुदा पडे छे; ज्यारे भेदाभेदवादी भर्तृप्रपंचनुं खंडन करे छे.[८] बीजी एक बोधायनवृत्तिने अनुसरी रामानुजाचार्ये भाष्य रच्युं छे. आ उपरांत मंडनमिश्रनो ब्रह्मसिद्धि ग्रन्थ दक्षिणमां मळ्यो छे. आ ग्रन्थमां अद्वैतवाद छे अने तेनो वाचस्पतिमिश्रे लाभ लीधो छे, एम द्राविड विद्वानो कहे छे. पण शंकराचार्य जेना ऋणनो स्पष्ट स्वीकार करे छे, एवा अद्वैतवादीओमां मुख्य तो छे गौडपादाचार्य. शंकरसंप्रदाय गौडपादने आचार्यना परमगुरु गणे छे. एनी कारिकाओ प्रसिद्ध छे. शंकराचार्ये 'संप्रदायविदनुं वचन छे' एम कहीने कारिकामांथी एक श्लोक भाष्यमां उतार्यो छे. आ उपरांत चतुःसूत्रीने छेडे शंकरे बे श्लोको अनुमति साथे उतार्या छे. अने टीकाकार ए श्लोकोने '**ब्रह्मविदां गाथा**' कहे छे. आ ब्रह्मविदोनुं तो कांई वधारे साहित्य मळ्युं नथी. पण जे गौडपादनो ग्रन्थ मळे छे अने जेनुं शंकर उपर ठिक ऋण छे एम कही शकाय, ते गौडपादना विचारोथी पण शंकराचार्यना विचारो अगत्यनी बाबतमां जुदा पडे छे. गौडपादना विचारो उपर जेटली बौद्धमतनी छाया छे तेटली शंकराचार्यना विचारो उपर नथी.

---

८ ब्र. सू. १-४-१४ नुं भाष्य.

छतां एटलुं चोक्स छे के जेम न्याय-वैशेषिकादि दर्शनोनी शंकरने खबर छे तेम ज बौद्ध-जैन दर्शनोनी शंकराचार्यने खबर छे, एटलुं ज नहीं पण बौद्धदर्शनना केटलाक विचारोनी एना उपर खास असर पण छे, एवुं घणा विद्वानो माने छे. खास करीने शांकरमतनी अविद्यानुं मूळ बौद्ध **प्रतीत्यसमुत्पादवाद**मां छे अने नागार्जुनना शून्यवादनी असर जगत्‌ना मिथ्यात्ववाद उपर छे.

आ बौद्ध असर पण प्राचीनोना जाणवामां हती. भास्करे एनो उल्लेख 'माया-वाद महायानबौद्धनी गाथामां गवायेलो छे' ए रीते कर्यो छे[9], अने वैष्णवोए **'मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते'** एवो आक्षेप कर्यो छे.

बौद्ध असर छे एनी ना पडाय एम नथी, छतां शांकरदर्शन अने बौद्ध शून्य-वाद के विज्ञानवाद वच्चे घणुं अंतर छे. अधिष्ठानभूत पारमार्थिक सत्तानी वात एकेय बौद्ध दर्शनमां नथी अने शांकरदर्शनना मुख्य सिद्धान्तरूप ब्रह्मात्मैक्यनी वातनो संभव ज बौद्ध दर्शनमां नथी. शंकराचार्ये बौद्ध शून्यवादनुं अने विज्ञान-वादनुं खंडन कर्युं छे,[10] एटलुं ज नहीं पण दंतकथा तेओने बौद्धधर्मने आ देशमांथी हांकी काढनार अने स्मार्त हिंदुधर्मना पुनःस्थापक गणे छे.

पोताना समय सुधीमां प्रचलित भिन्न भिन्न दर्शनोना सिद्धान्तोने गणतरीमां लीधा वगर तो कोई नवुं दर्शन रची शके नहीं अने शंकराचार्ये पण ऋग्वेदना सूक्तद्रष्टाओथी आरंभी छेल्ला दिङ्नाग अने गौडपाद — भर्तृप्रपंच सुधीना दार्श-निकोना विचारोनो लाभ लीधो होवा छतां एनी पोतानी फिलसुफी स्वतंत्र छे. जेवी रीते, जेम न्यायदर्शनना आद्यद्रष्टा गौतम, वैशेषिकदर्शनना कणाद अने योगदर्शनना पतंजलि छे तेम केवलाद्वैत दर्शनना आद्यद्रष्टा शंकराचार्य छे, आम कहीने ब्रह्मसूत्रकारने स्थानभ्रष्ट करवानो मारो मतलब नथी. जेना ग्रन्थ उपर शंकर, रामानुज जेवा आचार्योए भाष्यो लख्यां छे एनुं स्थान कोण खसवी शके? पण उपनिषदोना याज्ञवल्क्य, उद्दालकादि ऋषिओ; ब्रह्मसूत्र, गौडपाद जेवा शंकरने मान्य अद्वैतवादीओ; ए सर्वथी केटलुंक विशेष शंकरना वादमां छे; अने जे आ विशेष छे ते फिलसुफीनी तथा प्रमाणशास्त्रनी दृष्टिथी मौलिक छे.

---

९ ब्र. सू. १. ४. २५नुं भास्करभाष्य; तथा हिन्दतत्त्वज्ञाननो इतिहास, भा. २, पृ. १५८.
१० ब्र. सू. २. २. १८–३२.

समग्र संस्कृतसाहित्यमां जेना सुंदर गद्यनो जोटो नथी ते 'प्रसन्नगंभीर' शांकरभाष्यमां मानवजीवनने तलस्पर्शी असर करता फिलसुफीना तेजस्वी विचारो सचोट तर्कशैली वडे रजु करवामां आव्या छे.

उपनिषदोमां अद्वैतब्रह्मभाव, ब्रह्मात्मैक्यनो उपदेश तथा भेददृष्टिनी निन्दा ए बधुं छे; पण प्रत्यक्ष व्यवहारमां स्पष्ट भेदभावनो अनुभव, वळी ब्राह्मण धर्मशास्त्रोमां भेदभावना पाया उपर कर्मकाण्ड तथा वर्णाश्रमधर्मनी रचना अने न्याय-सांख्यादि दर्शनोना मान्य विचारकोनो द्वैतवाद – ए सर्वनो प्रबळ विरोध भेदीने सामापक्षे बौद्ध शून्यवादमां पड्या वगर धार्मिक श्रद्धाना बळथी नहीं पण विशुद्ध तर्कना पक्षथी औपनिषद अद्वैतवादनुं जे दर्शन शंकरे गुंथ्युं छे ते असाधारण प्रतिभानुं फळ छे.

शांकरदर्शननी सर्व विशेषताओ स्फुट करवा जतां तो एक मोटो ग्रन्थ थाय, एटले आ व्याख्यानमां आ दिशासूचनथी संतोष राखी एटलुं ज कहुं छुं के मारा मते तो आ देशनी फिलसुफीना इतिहासमां असाधारण, अने जगत्‌नी फिलसुफीना इतिहासमां मोटुं स्थान शंकाचरार्यनुं छे.†

*

† भारतीयविद्या भवन तरफथी मुंबई युनिवर्सिटीना व्याख्यान गृहमां अपाती व्याख्यान श्रेणिमां, ता. ११, १, ४१ ना रोज आपेलुं व्याख्यान.

महेश्वरसूरिनी 'पंचमी माहात्म्य' कथा अने तद्गत सुभाषितो

*

लेखक–श्रीयुत अमृतलाल सवचंद गोपाणी एम्. ए.

જૈન તેમ જ જૈનેતર સાહિત્યમાં, ધર્મકથા, રાજકથા, સમાજકથા, નીતિકથા વગેરે વગેરે જેમ કથાભેદો છે તેમ પર્વકથાઓનો પણ એક ખાસ ભેદ છે. પર્વોના ઇતિહાસ જેટલો જ પર્વકથાઓનો ઇતિહાસ પણ પ્રાચીન છે. એ પર્વકથાઓના મૂળગત વિચારમાં, વિકાસમાં અને અંતિમ લક્ષ્યમાં પોતપોતાના લાક્ષણિક રંગો પૂરી પ્રત્યેક ધર્મે, સંપ્રદાયે અને આમ્નાયે એ કથાઓને પોતાની કથા તરીકે અપનાવી લીધી. એટલે બન્યું એમ કે કથાનું મૂળ ખોખું ઘણી વખત એમનું એમ રહ્યા છતાં કોઈ સંપ્રદાયની અમુક પર્વ-કથા આપણને પરિપુષ્ટ અને માંસલ લાગી ત્યારે એ જ પર્વકથા બીજા સંપ્રદાયમાં બેદરકારી કે એવા અન્ય કોઈ કારણને લઈ તદ્દન ફિક્કી અને નિર્માલ્ય બની ગઈ. સમયની અનુકૂળતા–પ્રતિકૂળતાએ, સામાજિક પરિવર્તનોએ અને રાજકીય પ્રત્યા-ઘાતોએ પર્વકથાના સાહિત્યમાં પણ ભરતી અને ઓટ આણ્યાં.

કેવળ તત્ત્વજ્ઞાનની વાતો અને વિવાદો સાક્ષરોને પચે; એટલે જેઓ ઓછાં વિદ્વાન્ હોય તેમ જ નિરક્ષર હોય અર્થાત્ સામાન્ય લોકસમૂહ માટે જ્ઞાન સાથે બોધ આપી શકાય તેવી યોજનામાં આપણે કથાસાહિત્યનાં મૂળ જોઈ શકશું. આ હેતુથી ધર્મના તહેવારો એટલે કે પર્વોને પસંદ કરવામાં આવ્યા. અક્ષય તૃતીયા, બોળી ચોથ, ગણેશ ચતુર્થી, નાગ પાંચમ, રાંધણ છઠ, શીળી સપ્તમી અને જન્માષ્ટમી વગેરે પર્વ દિવસોને અનુલક્ષી જેમ બ્રાહ્મણોએ પર્વકથાઓ રચી તેમ જૈનોએ પણ અષ્ટાહ્નિકા, પર્યુષણ પર્વ, જ્ઞાનપંચમી વગેરે પર્વોને લઈ પર્વકથાઓ રચી. તેમાં કયા માસમાં કયું વ્રત કોણે કેવી રીતે ગ્રહણ કરવું, યથાવિધિ પાળવું અને કેવી રીતે ઊજવવું અને એથી ફળ શું વગેરે બાબતો, પોતપોતાની લાક્ષણિક શૈલિથી, પ્રસંગવૈવિધ્ય અને કળાકૌશલ્યપૂર્વક, કાવ્ય-ચમત્કૃતિ અને અલંકારોની જમાવટ સાથે, પોતપોતાના ધાર્મિક વર્તુળમાં રહી, કથા લેખકોએ ચર્ચી. આમાં ફળની બાબતમાં કથાલેખકોએ પોતપોતાના ધર્મની સર્વોત્કૃષ્ટ-તાની વિશિષ્ટ પ્રરૂપણા કરી. અને એથી કરી, ઘણી ખરી બાબતોનું ઘણું ખરું સામ્ય હોવા છતાં, દરેક પર્વકથા, ધાર્મિક સિદ્ધાંત પુરતી, નિરાળી બની ગઈ.

ઉપર જણાવી તેવી પર્વકથાના સાહિત્યની ઉત્પત્તિ અને વિકાસમાં જૈન લેખકોએ વિશાળ અને સર્વદેશીય ફાળો આપ્યો છે. મૌન એકાદશી, મેરુ ત્રયોદશી, હોલિકા પર્વકથા, રજઃપર્વકથા, અષ્ટાહ્નિકા પર્વકથા, પર્યુષણ પર્વકથા, દિપાવલિ પર્વકથા અને સૌભાગ્યપંચમી કે જ્ઞાનપંચમી કથા–વગેરે વગેરે પર્વકથાઓ જૈન પર્વકથા સાહિત્યના આધારસ્તંભો છે. એમાંની છેલ્લી અને અનેક દૃષ્ટિએ અપૂર્વ એવી શ્રીમહેશ્વરસૂરિ રચિત **જ્ઞાનપંચમી કથા** અને તેમાં આવતા **સુભાષિતો** ઉપર **હું ખાસ કરીને આ લેખમાં કહેવા માગું છું.**

અત્યારસુધી અપ્રકટ અને અનેક દૃષ્ટિએ અલૌકિક એવી અર્થગંભીર આ પર્વકથાના પ્રકાંડ વિદ્વાન લેખક શ્રીમહેશ્વરસૂરિ વિક્રમીય સંવત્ ૧૧૦૯ પહેલાં થયા હોવા જોઈએ એ વાત હવે સુવિદિત છે. કારણ કે તે કથાની ઉપલબ્ધ પ્રતિઓમાં પ્રાચીનમાં પ્રાચીન એક તાડપત્રીય પ્રતિ જેસલમેરના ભાંડાગારમાં છે જેનો લેખન સંવત્ વિ. સં. ૧૧૦૯નો છે. તેઓ પોતાને સજ્જન ઉપાધ્યાયના શિષ્ય તરીકે ઓળખાવે છે. આથી વિશેષ કાંઈ માહિતી પોતાને વિષે તેઓ આપતા નથી, તેથી તેમના જીવન અને કવન વિષે કશી ચર્ચા થઈ શકે તેમ નથી. મહેશ્વર નામધારી સૂરિઓ પણ અગીઆર જેટલા થઈ ગયા છે તેમાંથી કયા મહેશ્વરસૂરિએ કયા કયા ગ્રન્થો લખ્યા તે પણ ચોક્કસાઈથી કહેવામાં મુશ્કેલી છે. છતાં સંયમમંજરી નામના અપભ્રંશ ભાષામાં લખાયેલા પાંત્રીશ ગાથા પ્રમાણ જેવડા એક નાના પ્રકરણ ગ્રન્થના કર્તા મહેશ્વરસૂરિ અને પ્રસ્તુત નાણપંચમી કહાના લેખક મહેશ્વરસૂરિ – એ બન્ને એક હોય એવી મારી સંભાવના છે. આ ગ્રન્થનું સંપાદન હાલ હું કરી રહ્યો છું. તેની પ્રસ્તાવનામાં મેં આ બાબતની વિસ્તારપૂર્વક ચર્ચા કરવાનો મારો આશય છે. તેથી ભારતીય વિદ્યા ગ્રન્થમાલામાં પ્રકાશિત થનાર તે ગ્રન્થને એ સંબંધમાં જિજ્ઞાસુઓએ પ્રકટ થયે જોઈ લેવો. એ ચર્ચાનો ટૂંક સારાંશ નીચે પ્રમાણે છે.

'આવશ્યક સપ્તતિ' ઉપર ટીકા લખનાર મહેશ્વરસૂરિ વાદિદેવસૂરિના શિષ્ય હતા તેથી, 'કાલિકાચાર્યકથા' પ્રાકૃતમાં લખનાર મહેશ્વરસૂરિ પલ્લિવાલ ગચ્છમાં થઈ ગયા તેથી, 'વિચારરસાયન પ્રકરણ'ના રચનાર મહેશ્વરસૂરિ સં. ૧૫૭૩માં વિદ્યમાન હતા તેથી, દેવાનંદ ગચ્છના મહેશ્વરસૂરિ ગચ્છભેદે તથા તેઓ સં. ૧૬૩૦માં થઈ ગયા તેથી, 'સિદ્ધાંતોદ્ધાર' પ્રકરણના રચનાર મહેશ્વરસૂરિ વર્ધમાનસૂરિના શિષ્ય હતા તેથી અને 'શબ્દભેદપ્રકાશ', 'લિંગભેદનામમાળા', 'વિશ્વકોષ' અને 'શબ્દપ્રભેદ'ના લખનાર ચારેય મહેશ્વરસૂરિઓ અર્વાચીન છે તેથી એ નવેય મહેશ્વરસૂરિઓ જ્ઞાનપંચમી કથાના લેખક મહેશ્વરસૂરિ કરતાં ભિન્ન છે એ નિર્વિવાદ છે. હવે રહ્યા એક સંયમમંજરીના લખનાર મહેશ્વરસૂરિ જે, મેં આગળ કહ્યું તેમ, પ્રસ્તુત જ્ઞાનપંચમી કથાના લેખક મહેશ્વરસૂરિ હોય એવી શક્યતા જણાય છે.

આ કથા ગ્રન્થનું બીજું નામ '**પંચમી માહાત્મ્ય**' પણ છે, કારણ કે એમાં પંચમી માહાત્મ્યનું વર્ણન પ્રધાનપણે કરવામાં આવેલ છે. એમાં બે હજાર જેટલી ગાથા છે. જૈનમહારાષ્ટ્રી પ્રાકૃતમાં આ ગ્રન્થ લખાયેલો છે. ભાષા ઉપર કવચિત્ અપભ્રંશની તો કવચિત્ અર્ધમાગધીની અસર પડેલી છે. જ્ઞાનપંચમીના વ્રતને અનુલક્ષીને કોઈએ સંસ્કૃતમાં, કોઈએ પ્રાકૃતમાં, કોઈએ અપભ્રંશમાં તો કોઈએ જૂની ગૂજરાતીમાં કથાઓ લખેલી છે. તે બધી કથાઓ કાંતો 'જ્ઞાનપંચમી માહાત્મ્ય'. 'પંચમી કહા', 'ભવિસ્સયત્ત કહા', 'સૌભાગ્યપંચમી કથા', 'વરદત્ત – ગુણમજરી કથા' ઇત્યાદિ નામથી પ્રચલિત છે. પરંતુ તે બધામાં મહેશ્વરસૂરિ રચિત પ્રસ્તુત કથા ઉપલબ્ધ સાહિત્યમાં જૂનામાં જૂની હોય એમ મને લાગે છે. આ કથા સાથે ધર્કટવંશ વણિગ્ ધનપાળ-રચિત 'ભવિસ્સયત્ત કહા' સરખાવ્યા પછી મને જણાયું છે કે ધનપાળ મહેશ્વરસૂરિના ઉત્તરકાલીન હોવા જોઈએ. કારણ કે મહેશ્વરસૂરિ રચિત પ્રસ્તુત કથાના દસમા ભવિષ્ય-દત્ત આખ્યાન ઉપરથી ધનપાળે પોતાની 'ભવિસ્સયત્ત કહા' રચી હોય એમ મને

આવ્યું છે. એ કથામાં ધનપાળે ત્રણચાર બાબતો દિગંબર આમ્નાયને પોષક હોય એવી ઉમેરી છે તે ઉપરથી ધનપાળ દિગંબરમતાવલંબી હતા એ વાત પણ ડૉ. હર્મન યાકોબી માને છે તેમ, નિર્વિવાદ છે. આ વિષે મેં "નાણપંચમી કહા અને ભવિસ્સયત્ત કહા" શીર્ષક જે વિસ્તૃત લેખ, ભારતીય વિદ્યા ત્રૈમાસિકના ગત અંકમાં લખ્યો છે તે, તેમાં રસ લેનાર વિદ્વાનોએ જોઈ જવા વિનતિ છે. તેમાં મેં જણાવ્યું છે કે જ્ઞાનપંચમી કથા પુરતી પરંપરાની બે ધારા છે. એક શ્વેતાંબર સંપ્રદાયની અને બીજી દિગંબર સંપ્રદાયની. શ્વેતાંબર સંપ્રદાયની પરંપરાના મૂળ સ્થાપક મહેશ્વરસૂરિ જણાય છે અને દિગંબર પરંપરાના અગ્રણી મહેશ્વરસૂરિ પછી તરત જ થયેલા જણાતા ધર્કટ-વંશીય વણિક્ ધનપાળ દેખાય છે.

મોક્ષમંદિરનું મુખ્ય પ્રવેશદ્વાર જ્ઞાન છે. જ્ઞાનની આરાધનાથી તીર્થંકરાદિ મહાન્ પુરુષો ભવસમુદ્ર તરી ગયા છે અને જ્ઞાનની વિરાધનાથી અનેક દુર્ગતિમાં પણ પડ્યા છે. એટલે મોક્ષસિદ્ધિ માટે જ્ઞાન એક સર્વોત્તમ ઉપાય છે. જ્ઞાનના આવા અપૂર્વ માહાત્મ્યને જાણી – વિચારી પૂર્વાચાર્યોએ જ્ઞાનની ઉપાસના માટે જ ખાસ કરીને એક દિવસ નિયત કર્યો. અને તે કાર્તિક શુક્લ પંચમીનો. આ શુક્લ પંચમી ખાસકરીને જ્ઞાનપંચમીના વિશિષ્ટ નામથી વધારે પ્રચલિત છે. આ પવિત્રતમ દિવસે પુણ્યશાલી જીવ મુનિની માફક પૌષધાદિ વ્રત અંગીકાર કરી જ્ઞાનોપાસના કરવામાં ગાળે છે. તેઓ ભંડારમાં રાખેલી જ્ઞાનની એકમાત્ર ઉપકરણ પ્રતિઓને બહાર કાઢે છે. જે જે પ્રતિઓને શરદી – ભેજ – જીવ – જંતુ આદિનો ઉપદ્રવ થયો જાણવામાં આવે તે તે પ્રતિઓને તે ઉપદ્રવમાંથી વિમુક્ત કરવાનું વિચારતા અથવા તો તે તે પ્રતિઓના પુન-રુદ્ધારનું પણ નક્કી કરતા. તે દિવસે પ્રતિઓનું બહુ જ યત્નાપૂર્વક પૂજન, અર્ચન, માર્જન વગેરે થતું. ચોમાસામાં જ્ઞાનભંડારો બંધ હોય છે. તે ચોમાસું પુરું થયે વહેલામાં વહેલી તકે ખોલવાના હોય છે. આ રીતે બીજી પંચમીઓ કરતાં કાર્તિક શુક્લ પંચ-મીનું જ માહાત્મ્ય વિશેષ છે. આ વ્રત કરવાથી સૌભાગ્ય ઇચ્છનારને સૌભાગ્ય મળે, આરોગ્ય ઇચ્છનારને આરોગ્ય મળે, કુલીન કુટુંબમાં જન્મ ઇચ્છનારને તેવા કુલીન કુટુંબમાં જન્મ થાય, આંખ ગઈ હોય તો આંખ, પગ ગયા હોય તો પગ અને હાથ ગયા હોય તો હાથ પણ પાછા મળે અને છેવટ મોક્ષ પણ મળે એવો આ વ્રતનો પ્રભાવ છે. બ્રાહ્મણોમાં સરસ્વતીશયન અને દેવઊઠી એકાદશીનો પણ કંઈક આવો જ પ્રભાવ છે. દિગંબરોમાં જ્ઞાનપંચમીને બદલે શ્રુતપંચમી શબ્દ વધારે પ્રચલિત છે.

વ્રતો તો ઘણા છે પણ આ રીતે જ્ઞાનપંચમી વ્રતનું મહત્ત્વ નિરાળું છે. સૌ સંપ્રદાયો પોતપોતાની અનોખી રીતે વ્રતો ઉજવે છે, પણ જૈન પ્રથામાં ખાસીયત એ છે કે ઐહિક કરતાં પારલૌકિક ભાવના તરફ વિશેષ ધ્યાન આપવામાં આવ્યું હોય છે. પર્વ પર્વ પરત્વે એ ધર્મભાવનામાં ન્યૂનાધિક્ય જરૂર સંભવે. તીર્થંકરોનાં ચ્યવન, જન્મ, દીક્ષા, કેવલજ્ઞાન અને નિર્વાણ એ પાંચ દિવસો કલ્યાણકના કહેવાય છે. પર્વ પાળવામાં નિમિત્ત તીર્થંકરના કોઈપણ કલ્યાણકનુ હોય પણ એ કારણે ચાલતા પર્વનો કેવળ એક જ ઉદ્દેશ હોય છે અને તે જ્ઞાન – ચારિત્ર્યની શુદ્ધિ અને પુષ્ટિદ્વારા આત્મસિદ્ધિ.

એટલે જ્ઞાનની સર્વાતિશાયિતા સંબંધે આપણે ઉપર જોયું તેમ બે મત છે નહિ.

જ્ઞાન એટલે પ્રતિઓ–પુસ્તકો; અને પુસ્તકો એટલે જ્ઞાનભંડારો. આમ સૂક્ષ્મ અને સ્થૂલ વસ્તુના મહત્ત્વ સમજી શકીએ તેમ છીએ. જ્ઞાનભંડારોમાં સાચવવામાં આવતા પુસ્તકોની શાહીમાં ગુંદર પડતો હોવાથી અને ચોમાસાની ઋતુ ભેજવાળી હોવાને કારણે ચોમાસામાં જો પ્રતિઓને ઉઘાડવામાં આવે તો પ્રતિના એક બીજા કાગળો ચ્હોંટી જવા પૂરો સંભવ છે. આ માટે પ્રાયઃ ચોમાસામાં જ્ઞાનભંડારો બંધ રાખવામાં આવે છે. અને પ્રતિને બરાબર બાંધી મુકી દેવામાં આવે છે. આ બંધનક્રિયાને લગતી એક કહેવત પણ જૈન મુનિવર્ગમાં પ્રચલિત છે "પુસ્તકને શત્રુની જેમ મજબૂત બાંધવું." પુસ્તકરક્ષાને માટે ઘણીઘણી પ્રતિઓના પ્રાન્તભાગમાં નિમ્નોક્ત શ્લોક જેવા પ્રકારના અનેક શ્લોકો લખવામાં આવ્યા હોય છે. જેમ કે:–

अग्नौ रक्षेज्जलाद्रक्षेन्मूषकेभ्यो विशेषतः । कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन परिपालयेत् ॥
उदकानिलचौरेभ्यो मूषकेभ्यो हुताशनात् । कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन परिपालयेत् ॥

વર્ષાઋતુમાં જ્ઞાનભંડારોમાં પેસી ગયેલ ભેજવાળી હવા પુસ્તકોને બગાડે નહિ અને પુસ્તકો સદા પોતાની સ્થિતિમાં રહે તે માટે તેને તાપ ખવાડવો આવશ્યક છે. જ્ઞાનભંડારો ચોમાસમાં બંધ હોઈ તેની આસપાસ ધૂળ કચરો એકઠો થાય તે પણ સ્વાભાવિક છે. આ કચરો સાફ ન થાય તો ઉધઈનો ડર રહે છે. ચોમાસું પુરૂં થઈ રહ્યા પછી આ બધું કરવા માટે વહેલામાં વહેલો સમય પસંદ કરવો જોઈએ. અને એટલા માટે કાર્ત્તિકશુક્લ પંચમી વધારે ઉપયુક્ત છે. કારણ કે પ્રખર તાપ અને ભેજવાળી હવા એ બન્નેનો અતિરેક આ સમયે હોતો નથી. એક શહેરમાં એક કરતાં વધારે ભંડાર પણ હોવા સંભવ છે. ભંડાર ખૂબ જ વિશાળ હોવાની પણ શક્યતા છે. એટલે પ્રતિઓનું સંમાર્જન કામ એક બે ભાડુતી માણસોથી થાય એમ પણ જણાયું નહિ તેથી ધર્માચાર્યોએ કાર્ત્તિકશુક્લપંચમીને એક ધાર્મિક તહેવાર તરીકે અને તે પણ જ્ઞાનપંચમી તરીકે નિયત કરી તે દિવસે પ્રતિઓના પૂજન, અર્ચન, માર્જન અને લેખન, લિખાપન કરવા, કરાવવાનું અને તેમ કરે તો મહત્ પુણ્ય ઉપાર્જન કરવાનું પ્રરૂપ્યું. જ્ઞાનપંચમી માટે અનેકવિધ તપો યોજાયાં. તેના ઉત્સવ અને ઉજમણાઓ યોજાયા, તેની અનેક જાતની પૂજાઓ રચાઈ, ગવાઈ અને તેને લીધે એવું વાતાવરણ બની ગયું કે કરોડો ભવના પાપ એક જ પદના કે એક જ અક્ષરના જ્ઞાનથી બળી શકે છે એવું મનાવા લાગ્યું.

આવા જૈન જ્ઞાનભંડારો પાટણ, જેસલમીર, ખંભાત, લીંબડી અને કોડાય વગેરે સ્થળે છે. આ ભંડારોમાં એકલા જૈન પુસ્તકોનો જ સંગ્રહ નથી. એના સ્થાપકોએ અને રક્ષકોએ દરેક વિષય તેમ જ દરેક સંપ્રદાયના પુસ્તકો એકઠા કરવાનો પ્રશંસનીય પ્રયત્ન કર્યો છે. ઘણી વખત એવું બન્યાના દાખલાઓ મોજૂદ છે કે જ્યારે અત્યંત ઉપયોગી જૈનેતર ગ્રન્થો જૈન જ્ઞાનભંડારમાંથી મળી આવ્યા હોય. પુસ્તકો કેવળ કાગળ ઉપર જ નહિ પરંતુ તાડપત્ર અને કાપડ ઉપર પણ લખાયેલા મળી આવ્યા છે.

અગ્નિ, ભેજ, શરદી, ઉધઈ, વંદા, ઉંદર, કુદરતી વિઘ્ન અને ધર્માંધ યવનોના નાશકારક પંજામાંથી જ્ઞાન પ્રત્યેની જીવતી જૈનભક્તિને પરિણામે બચી ગયેલા આજે પણ

એટલા બધા ભંડારો છે કે જેમણે સેંકડો પાશ્ચાત્ય અને પૌર્વાત્ય વિદ્વાનોને અને છાપખાનાઓને પુષ્કળ ખોરાક પૂરો પાડ્યો છે અને હજી પણ પાડશે.

જ્ઞાન આપવામાં મુખ્ય સાધન પ્રતિ કે પુસ્તક અને એ પ્રતિઓને સંગ્રહવામાં મુખ્ય સ્થળ એટલે કે જ્ઞાનભંડારની અગત્ય સમજી સ્વીકારી જ્ઞાનપ્રિય આચાર્યોના સદુપદેશથી કે પોતાની સ્વાભાવિક ઇચ્છાથી અનેક રાજાઓએ, મંત્રિઓએ તેમજ ધનાઢ્ય શ્રેષ્ઠીઓએ તપશ્ચર્યાના ઉદ્યાપન નિમિત્તે, આગમશ્રવણના કારણે, પોતાના કલ્યાણ માટે કે પછી પોતાના સ્વર્ગવાસી આપ્તજનની સ્મૃતિમાં નવા પુસ્તકો લખાવીને કે જૂનાની પ્રતિકૃતિ કરાવડાવીને અથવા કોઈ જૂના જ્ઞાનભંડારો વેચતું હોય તો તેને વેચાતા લઈને પણ જ્ઞાનભંડારોની સ્થાપના કરી છે.

આવા જ્ઞાનભંડારોની સ્થાપનામાં ભાગ લેનાર અથવા આવા જ્ઞાનભંડારો સ્વયં સ્થાપનાર રાજાઓ પૈકી બે રાજાઓના – સિદ્ધરાજ અને કુમારપાલના – નામ મુખ્ય છે. મંત્રીઓમાં પ્રાગ્વાટ જ્ઞાતીય મહામાત્ય વસ્તુપાળ – તેજપાળ અને ઓસવાળ જ્ઞાતીય મંત્રી પેથડશાહ અગ્રસ્થાને છે. ધનિક ગૃહસ્થો કે જેમણે જ્ઞાનભંડારોની સ્થાપનામાં કે સંવર્ધનમાં ભાગ લીધો છે તે અથવા જેમણે પુસ્તકોની પ્રતિઓ લખાવી આડકત્રી રીતે જ્ઞાનવૃદ્ધિમાં ફાળો નોંધાવ્યો છે તે ધનાઢ્ય સજ્જનો પૈકી ધરણાશાહ, કાળુશાહ અને મંડલિક મુખ્ય છે. કેટલાક શ્રેષ્ઠીઓ એવા પણ હતા કે જેમણે એક જ ગ્રન્થની અનેક નકલો લખાવી હતી જ્યારે અમુક એવા પણ હતા કે જેમણે કલ્પસૂત્રની ઘણી ઘણી પ્રતિઓ લખાવી ગામોગામ મોકલી હતી. આ રીતે આ જ્ઞાનસંસ્થાની ઉત્પત્તિ અને વિકાસમાં રાજા મહારાજાઓ, મંત્રી – મહામંત્રીઓ અને ધનિક શ્રેષ્ઠીઓનો ન ભૂલાય તેવો સુંદર ફાળો છે.

મહેશ્વરસૂરિ, નાણપંચમી કહા, જ્ઞાન, જ્ઞાનભંડાર અને જ્ઞાનપંચમીવ્રત વગેરે આનુષંગિક બાબતોનો વિચાર કરી હવે તે નાણપંચમી કહામાં શું આવે છે તેનું તદ્દન સંક્ષિપ્ત વર્ણન નીચે પ્રમાણે આપું છું.

કથાલેખક શ્રીમહેશ્વરસૂરિએ પોતે જ કથાના પ્રાન્તભાગમાં કહ્યું છે તેમ આ સમગ્ર કથા ગ્રન્થ બે હજાર ગાથામાં લખાયેલો છે. ગ્રન્થ પદ્યમાં છે. એમાં વાપરેલી ભાષા જૈન મહારાષ્ટ્રી પ્રાકૃત છે. એમાં દસ આખ્યાનો છે જેમાંનું પ્રથમ તથા છેલ્લું પાંચસો ગાથાઓ રોકી તથા બીજાથી નવમા સુધીના પ્રત્યેક આખ્યાન સવાસો સવાસો ગાથાઓમાં સમાવિષ્ટ કરી આ ગ્રન્થરત્નને બરાબર બે હજાર ગાથામાં સમાપ્ત કરવામાં આવ્યો છે. જ્ઞાનપંચમીવ્રતમાહાત્મ્યના સૂત્રવડે સર્વ આખ્યાનમણિઓને સળંગ રીતે પરોવવામાં આવ્યા છે. દરેક આખ્યાનનો હેતુ પંચમીવ્રતમાહાત્મ્યનો છે. ડગલે અને પગલે એ વ્રતની સર્વોત્કૃષ્ટતાની વાત કહેવામાં આવી છે. વ્રત, નિયમધારણ, તપશ્ચર્યા, વગેરે સર્વ બાહ્ય ક્રિયામાં પંચમીવ્રતને ઉચ્ચસ્થાન આપવામાં આવ્યું છે. આગન્તુક આપત્તિને આવતી રોકવા અને ચાલુ વિપત્તિમાંથી સફળતાપૂર્વક પારગમન કરવા, જ્ઞાનપંચમીવ્રત સમજણ અને વિધિપૂર્વક કરવાનો એક જ રાજમાર્ગ જે છે તે બતાવવામાં આવ્યો છે. આ સંસારમાં કોઈને ભાગ્યવાન્ થવાના અને ગણાવાના કોડ હોય, કોઈને ખાનદાન કુટુંબના નબીરા બનવાની એકમાત્ર ઇચ્છા હોય, કોઈ મરણ પર્યંત અનારોગ્ય ન આવે

એવી જ અભિલાષા સેવતો હોય, કોઈ બંદીખાનામાં પડેલો જીવ બંદીખાનામાંથી માત્ર મુક્ત થવાનો જ એક મનોરથ પાર પડેલો જોવાની પ્રતીક્ષા કરી રહ્યો હોય, કોઈ પરદેશમાં ગયેલ જનના સંયોગમાં જ સમસ્ત જીવનના સાફલ્યનો સાક્ષાત્કાર દેખી રહ્યું હોય, તો કોઈ પોતાનાં આંખ, નાક, કાન, હાથ અને પગની ખોડ ખાંપણ દૂર થયેલી જોવા માટે જ જાણે કે જીવી રહ્યું હોય-ઇત્યાદિ ઇત્યાદિ ઐહિક કામનાઓની તૃપ્તિ અને છેવટ મોક્ષ જેવી આમુષ્મિક વાંછનાની સિદ્ધિ માટે જ્ઞાનપંચમીવ્રતનું યથાવિધિ ગ્રહણ, પાલન અને ઉદ્યાપન એ જ એક અમોઘ અને સદ્યઃ પ્રત્યયકારી માર્ગ છે એ વાતનું પ્રતિપાદન સમગ્ર ગ્રન્થમાં જરાપણ અભિનિવેશ વિના બહુ ભારપૂર્વક કરવામાં આવ્યું છે. કોઈને દ્વીપાંતરમાં જવું હોય અને તરત જ વિમાન હાજર થાય, કરોડો માઈલ દૂર સ્વજન ગયા હોય અને આવવા સુદ્ધાંની પણ આશા ન હોય એ તરત જ આવી મળે, મરણ જ જેનો એકમાત્ર ઉપાય છે એવું કલંક ઘડીના છઠ્ઠા ભાગમાં શત્રુના કચવાટ સાથે ક્યાંય અદૃશ્ય થઈ જાય, આવી આવી અનેકાનેક અશક્ય લાગતી વસ્તુઓ, શુભભાવથી જ્ઞાનપંચમી વ્રત કરનારને માટે તદ્દન શક્ય છે એ શ્રદ્ધેય સત્ય તરફ લેખકે જ્યાં અને ત્યાં સફળતાપૂર્વક અંગુલિનિર્દેશ કર્યો છે. ટૂંકામાં જ્ઞાનપંચમી વ્રતનું શાસ્ત્રોક્ત રીતે ગ્રહણ, પાલન અને ઉદ્યાપન સર્વસિદ્ધિપ્રદાયક છે એમ લેખકે નિશ્ચિત ભાવે જણાવ્યું છે.

જયસેન, નંદ, ભદ્રા, વીર, કમળા, ગુણાનુરાગ, વિમલ, ધરણ, દેવી અને ભવિષ્યદત્ત એવાં આ કથાના દસ આખ્યાનોનાં અનુક્રમે નામ છે.

પરંપરાથી આ વાતો ચાલી આવે છે તેને સંક્ષેપમાં મેં કહી છે એમ વિદ્વાન કથાલેખક દરેક આખ્યાનના પ્રાન્ત ભાગમાં નિરભિમાનપણે કહે છે. પરંતુ આ નાણપંચમી કહાથી પ્રાચીન કોઈ જ્ઞાનપંચમી કથા વિષયક ગ્રન્થ આપણને ઉપલબ્ધ નથી તેથી આ દસેય આખ્યાનોનાં મૂળ ક્યાં હશે તે શોધી કાઢવું મુશ્કેલ છે. કનકકુશળે, ક્ષમાકલ્યાણે, મેઘવિજય ઉપાધ્યાયે જે જ્ઞાનપંચમીવ્રતમાહાત્મ્ય વિષયક કથાઓ અને બાલાવબોધો લખ્યાં છે તે બધા વરદત્ત-ગુણમંજરી કથાના નામે ઓળખાય છે અને નાણપંચમી કહા તથા વરદત્ત ગુણમંજરી કથા વચ્ચે ફળ સામ્ય હોવા છતાં પાત્રભેદ, સ્થળભેદ અને પ્રસંગભેદ જરૂર છે. એટલે કે એ ત્રણેય ઉત્તરકાલીન લેખકોએ મહેશ્વરસૂરિ રચિત પ્રસ્તુત નાણપંચમીકહામાંથી કશુંય લીધું નથી એ વાત સુસ્પષ્ટ છે. છતાં આ વરદત્ત-ગુણમંજરી કથાના પણ મૂળ શોધવાં હાલ મુશ્કેલ છે. અલબત્ત જ્ઞાનપંચમી કે શ્રુતપંચમી ઉપર જેટલા દિગંબર આચાર્યોએ જે જે કાંઈ લખ્યું છે તે બધાનું મૂળ પ્રસ્તુત કથાના ભવિષ્યદત્ત નામના દસમા આખ્યાનમાં છે એ વાત મેં ભારતીય વિદ્યા-ત્રૈમાસિકના ગત અંકમાં લેખ દ્વારા સિદ્ધ કરી છે. આ દિગંબર આચાર્યોપૈકી ધર્કટવંશીય વણિગ્ ધનપાળ, સિંહસેન અપરનામ રઇધુ, વિબુધ શ્રીધર અને બ્રહ્મચારી રાયમલ્લ ખાસ નોંધને પાત્ર છે.

પ્રસ્તુત નાણપંચમી કહાના પ્રત્યેક આખ્યાનમાં રાજાઓ, દ્વીપ-દ્વીપાંતરો, નગરીઓ વગેરેનું ઘણી જ આલંકારિક અને ઘણી વખત શ્લેષાત્મક ભાષામાં વર્ણન કરાયેલું છે. ધાર્મિક, નૈતિક, સામાજિક, અને વ્યાવહારિક પ્રસંગો સર્જી તમામ ઉપયોગી વિષયો

वरि अन्नाओ नेहो होऊणं मा पुणो दढं नट्ठो ।
अदंसणं पि सेयं लोयरिउणो निहाणस्स ॥ ११६८ ॥
अवराहेण विरत्तो दुक्खे न खिवेइ वल्लहो जइवि ।
अवराहेण विणा पुण जीयं सो निच्छलं छेइ ॥ ११६९ ॥
मणवल्लहो विरत्तो विणावराहेण कम्मदोसाओ ।
सरिओ सरिओ दुम्मइ अंगाइं नट्ठसल्लो व्व ॥ ११७० ॥
धन्ना ता महिलाओ जाणं पुरिसेहिं कित्तिमो नेहो"।

અર્થ:–સ્નેહ ઓછો થયો હોય તો પણ યુવતીઓના મનને અતિદારુણ દુઃખ આપે છે તો તે સ્નેહ સમૂળગો નષ્ટ થાય તો તો મરણ જ નિપજાવે. પ્રથમથી જ પ્રેમ ન બંધાય તે સારૂં પરંતુ એક વખત દ્રઢ થયેલો સ્નેહ નાશ પામે તે તો ઠીક નહિ જ. પાછળથી નષ્ટ થનાર નિધિના દર્શન પહેલેથી જ ન થાય તે શ્રેષ્ઠ. પ્રિયજન અપરાધે કરીને જો વિરક્ત થાય તો તે દુઃખકારક નથી થતો; પણ અપરાધ વિના રાગ-રહિત બનેલો વલ્લભ મરણનું નિમિત્ત અવશ્ય બને છે. પૂર્વકર્મના વિપાકે અપરાધ વિના વિરક્ત બનેલ પ્રિયજન જેમ જેમ યાદ આવે તેમ તેમ શરીરમાં પેઠેલ શલ્યની જેમ દુઃખ આપે છે. આટલું કહ્યા પછી સુંદરી પાસે લેખક બોલાવડાવે છે "તે મહિલાઓ ધન્ય છે જેઓને પુરુષો સાથે કૃત્રિમ સ્નેહ છે" ઇત્યાદિ ઇત્યાદિ. કૃત્રિમ સ્નેહ હોય અને તે નષ્ટ થાય તો મનને આઘાત ન લાગે પરંતુ પ્રેમીજન સાથે ઓતપ્રોત થઈ ગયા પછી પ્રેમનો વેગ કમી થતો દેખાય તો અવશ્ય લાગી આવે. તો પછી ભ્રમર જેવા ચંચળ અને લોલુપી સ્વભાવવાળા પુરુષો સાથે પહેલેથી જ કૃત્રિમ સ્નેહ રાખ્યો હોય તો પાછળથી દુઃખ સહન કરવાનો વખત ન આવે. આ છેલ્લી કહેવતમાં ગોઠવેલ અથવા સૂચવેલ નક્કર સત્ય પૂરતા, સુંદરી સાથે, લેખક સંમત છે કે નહિ તે તો ન કહી શકાય પરંતુ વિના કારણે રાગરહિત બનનાર પ્રિયજન મહાન્ આપત્તિનું કારણ છે એટલું તો લેખક સુંદરીની જેમ જરૂર સહૃદયતાથી માનતા જણાય છે. આગળ ચાલતાં આ બધા દુઃખનું કારણ સ્નેહ છે એમ કલ્પી અસંગ ભાવને પોષનારાઓને લેખક અંજલી આપે છે. જુઓ -

"नेहो बंधणमूलं नेहो लज्जाइनासओ पावो ।
नेहो दुग्गइमूलं पयदियहं दुक्खओ नेहो ॥ ११७५ ॥
धन्ना ते वरमुणिणो मूलं नेहस्स जेहिं परिछिन्नं ।
धन्नाण वि ते धन्ना बालो च्चिय जे तवं पत्ता" ॥ ११७६ ॥

અર્થ:–સ્નેહ એ બંધનનું મૂળ છે; સ્નેહ તો લજ્જા વગેરેનો નાશ કરનાર પાપ છે. દુર્ગતિનું મૂળ પણ સ્નેહ જ છે અને હંમેશની દુઃખદાયક વસ્તુ પણ એ અનુરાગ જ છે. માટે તે શ્રેષ્ઠ મુનિઓ ધન્યવાદને પાત્ર છે કે જેમણે સ્નેહનું મૂળ કાપી નાખ્યું છે અને એ ધન્ય મુનિઓમાં તેઓ તો ખાસ ધન્યવાદને પાત્ર છે જેમણે બાળપણમાંથી જ તપ આદર્યું છે. અહિઆ લેખકની સહૃદયતા સ્પષ્ટ તરી આવે છે. વ્યાવહારિક જ્ઞાનમાં લેખક કેટલા પ્રવીણ હતા તેની તો સુંદરીના મુખમાં મુકેલ નિમ્નોક્ત શ્લોકો આપણે વાંચીએ છીએ ત્યારે આપણને પૂરેપૂરી જાણ થાય છે:–

"नवजुवईण जईणं बालाण य एगगाण नियमेण ।
निद्दोसाण वि दोसो संभाविज्जंति लोगेहिं" ॥ ११८६ ॥

અર્થ:-નવયુવતિઓ, યતિઓ અને બાલકો ભલે નિર્દોષ હોય પણ જો એકલા હોય તો તેમાં લોકો દોષની સંભાવના કરે છે. આગળ વધી લેખક એક શાશ્વત સત્ય સુંદરીના મુખે ઉચ્ચારે છે. તેઓ કહે છે કન્યા જન્મે ત્યારે શોક કરાવે છે; ઉમરે મોટી થાય ત્યારે ચિંતા કરાવે છે અને પરણે ત્યારે ખર્ચ કરાવે છે. આ રીતે કન્યાનો બાપ હંમેશનો દુ:ખીયો જ હોય છે. જુઓ-

"उप्पण्णाए सोगो वड्ढंतीए य वड्ढए चिंता ।
परिणीयाए दंडो जुवइपिया दुक्खिओ निच्चं" ॥ ११८९ ॥

કેટલું વાસ્તવિક ચિત્ર !

મહેશ્વરસૂરિના શિક્ષાસૂત્રો જેટલાં સચોટ છે તેટલાં મૌલિક છે. એમાં ભરેલ વિશાલ જ્ઞાનરાશિ અને અનુભવયુક્ત ઠાવકાપણું લગભગ અદ્વિતીય છે. "પંચતંત્ર"માં કે "હિતોપદેશ"માં જે હિતશિક્ષાઓ પ્રત્યેક વાર્તામાં ગોઠવેલ છે તેવી જ અહિંઆ પણ આખ્યાને આખ્યાને આપણને જડી આવે છે. આ શિક્ષાસૂત્રો તેમના પૂર્વવર્ત્તી સાહિત્ય-માંથી મહેશ્વરસૂરિએ શબ્દફેર સાથે તફડાવી કાઢ્યા હોય એમ પણ દેખાતું નથી. કારણ કે દરેક શિક્ષાસૂત્ર એટલું મૌલિક દેખાય છે કે આપણને જરાય એમ લાગ્યા વિના રહેતું નથી કે લેખકના અનુભવમાંથી અને સૂક્ષ્મ નિરીક્ષણમાંથી એ હિતશિક્ષા સીધે સીધી ટપકી શબ્દનું સ્વરૂપ પકડે છે. મારી આ માન્યતા મને એમ કહેવા પ્રેરે છે કે લેખક સમાજના અને સંસારના ઊંડા અભ્યાસી હતા. તે ઉપરાંત આ અનુભવ તેમણે કોઈ બીજા પાસેથી મેળવ્યો હતો એમ પણ નહિ પરંતુ તેઓએ પોતે ગૃહસ્થ જીવન સારી-રીતે ભોગવ્યું હોવું જોઈએ. અન્યથા એમની ઉક્તિઓમાં જે સામર્થ્ય અને વેગ છે તે સંભવી શકે નહિ. માની પુરુષોના મનને દુઃખ આપનાર વસ્તુની ગણના કરતી વખતે લેખક કહે છે:-

"अब्भक्खाणमकज्जं कज्जविणासो रिणं च गुणनिंदा ।
पच्चुवयारअकरणं दूमंति हु माणविहवाण" ॥ ११९२ ॥

અર્થ:-કલંક, અકાર્ય, કાર્યનું બગડવું, દેવું, ગુણનિંદા અને પ્રત્યુપકાર ન કરવો આટલાં વાનાં માની પુરુષોને દુ:ખ દે છે. સર્વ ભયમાં મરણનો ભય સૌથી મોટો છે. માણસ મરવાની તૈયારીમાં હોય છતાં મરણ ગમતું નથી એ બતાવવા સૂરિશ્રી કહે છે:-

"अंगीकए वि मरणे मरणभयं तहवि होइ जीवस्स ।
कडुओसहस्स पाणं कडुयं चिय निअमओ जेण" ॥ ११०१ ॥

અર્થ:-મરણ અંગીકૃત કર્યુ હોય છતાં પણ જીવને મૃત્યુનો ભય હોય જ છે કારણ કે કડવા ઔષધનું પાન નિયમપૂર્વક કડવું જ હોય છે. સ્ત્રી કદિ પણ નિરાધાર હોતી જ નથી. સ્ત્રી સ્વભાવ જ એવો છે કે ગમે તે અવસ્થામાં એને સ્વામી તો જોઈએ જ. આ અનુભવજન્ય ઘટના સૂરિવર્ય નિમ્નોક્ત સુભાષિતમાં ગોઠવે છે:-

"जणओ कुमारभावे तारुण्णे तह य होइ भत्तारो ।
विद्धत्तणंमि पुत्तो न कयावि निरासिआ नारी" ॥ ११७९ ॥

અર્થઃ— કૌમાર્ય વખતે બાપ, જુવાનીમાં ધણી અને વૃદ્ધાવસ્થામાં પુત્ર રક્ષણ કરે છે. નારી કદિ નિરાશ્રિત હોતી જ નથી. "Suspicion in friendship is poison" એ ત્રિકાલાબાધિત સત્ય લેખક નિમ્નોક્ત સુભાષિતમાં ગોઠવે છેઃ—

"जुत्ताजुत्तवियारो जह कीरइ इयरलोयवयणेसु ।
तह जइ वल्लहभणिए ता णेहो कित्तिमो नूणं" ॥ १२३२ ॥

અર્થઃ— યોગ્ય વચન છે કે અયોગ્ય એ વિચાર બીજા લોકોના વચન પરત્વે કરવામાં આવે એ તો જાણે કે ઠીક; પરંતુ એ જો પ્રિયજનના સંબંધમાં કરવામાં આવે તો તો પછી એ સ્નેહ કૃત્રિમ જ છે એમ જ સમજવું જોઈએ. પાકે ઘડે કાંઠા ન ચડે એ વર્તમાન લોકોક્તિ તે વખતે કેટલી પ્રચલિત હતી તેનું પ્રમાણ નિમ્નોક્ત સુભાષિત પૂરૂં પાડે છેઃ—

"बालाणं तरुणाणं लग्गइ चेट्ठा सुहेण लोयाण ।
कीरंति नेय जेणं इह कण्ठा पक्कभंडाणं" ॥ १२४४ ॥

પ્રિયમેલિકાનો સ્પર્શ જ્યારે દ્રમકને બાળે છે ત્યારે દ્રમક વિચાર કરે છે કે આવી રૂપવતી કન્યા અત્યારસુધી અવિવાહિત રહે નહિ કારણ કે પાકેલી અને સ્વાદુ રસ્તામાં આવતી બોરડી કોઈપણ છોડે નહિઃ—

न हु पहि पक्का बोरी छुट्टइ लोयाण जावेज्जा ॥ १२८६ ॥

પ્રિયમેલિકાને મુકીને— છોડીને દ્રમક પણ ચાલ્યો ગયો તે વખતે પ્રિયમેલિકા પોતાના સ્ત્રીત્વને ધિક્કારે છે. એની ઉપર ફીટકાર વરસાવે છે. તે વખતે લેખક તેની પાસે બોલાવે છે કે સ્ત્રીનો ભવ એ જ દુઃખનું કારણ છે; તેમાં પણ બાળવિધવાપણું અને ભાગ્યહીનતા એ તો વિશેષ દુઃખદાયક છે. સૂરિશ્રી દ્રષ્ટાંત આપી સમજાવે છે કે તે તો ગુમડા ઉપર ફોલ્લો થાય તેના જેવું છે. જુઓ—

"इत्थित्तं चेव दुहं तत्थेव य अइदुहं च दोहग्गं ।
रंडत्तं बालाए जह पिडओ गंडउवरिंमि" ॥ १२९९ ॥

એકે બીજા પાસેથી સાંભળ્યું; બીજાએ ત્રીજાને કહ્યું અને ત્રીજાએ પોતાના ઘરનું ઉમેરી મીઠું મરચું ભરી કિંવદન્તીને વહેતી મુકી. એ કિંવદન્તીમાં તથ્ય જરાય હોતું નથી, છતાં નિર્દોષ માટે તો એ ખરેખર પ્રાણઘાતક નિવડે છે. એટલે એવી કિંવદન્તી અથવા લોકાપવાદ તરફ કથાલેખક પોતાની ઘૃણા દાખવતાં કહે છે કે માણસો એક બીજા ઉપર વિશ્વાસ મુકી નિર્દોષને વ્યર્થ દંડે છે. જેવી રીતે આકાશ રંગ વિનાનું હોવા છતાં લોકો તેને નીલવર્ણું કલ્પે છે. જુઓ—

"निद्दोसं पि हु लोओ निंदइ अन्नोन्नवयणपच्चइओ ।
वन्नरहियं पि जेणं भणइ जणो नीलमायासं" ॥ १३५५ ॥

લાકડે માંકડું વળગાડ્યું હોય ત્યારે અથવા એક બીજાની પસંદગીને જરાય લક્ષ્યમાં રાખવામાં આવી ન હોય તે વખતે, દંપતી જીવન દુઃખદાયક તો બને જ છે; પણ એ ઉપરાંત હાસ્યપાત્ર પણ બને છે એ તરફ અંગુલિ નિર્દેશ કરતાં કથાલેખક જયસેન અને શીલવર્તીના યોગ્ય સંયોગને અનુલક્ષી કહે છે કે રૂપ— લાવણ્ય વગેરેમાં એક બીજાથી જુદા પડતાં યુગલોનો સંયોગ કષ્ટદાયક જ નહિ પણ હળમાં જોડેલ ઊંટ અને બળદના સંયોગની માફક હાસ્યકારક પણ બને છે. જુઓ—

"मिहुणाणं संजोगो रूवाइविलक्खणेण अइदूरं ।
दुक्खं हासोजणओ उट्टबलिद्दाण व हलंमि" ॥ ૧૧૪૦૬ ॥

આગળ ચાલી વિદ્વાન લેખક યાચનાનું માહાત્મ્ય સમજાવતાં દ્રષ્ટાંત આપે છે કે જેવી રીતે કર્ણરાજાએ વિષ્ણુ ભગવાનને શરીરનું બખ્તર પણ આપ્યું હતું તેવી રીતે યાચના કોઈ કરે ત્યારે તેની યોગ્યાયોગ્યતાનો વિચાર સરખો પણ નહિ કરવો જોઈએ. જુઓ –

"अहवा जुत्तमजुत्तं एयं न गणंति पत्थणा गरुया ।
दिन्नं कन्नेण जओ विण्हुस्स सरीरकयचं पि" ॥ ૧૧૪૩૩ ॥

અહિંઆ એટલું જણાવવું જરૂરનું છે કે કર્ણે પોતાનું શરીર વિષ્ણુને નહિ પણ ઇન્દ્રને બખ્તરરૂપે ઉપયોગ કરવા આપ્યું હતું એટલે "विण्हु" શબ્દને બદલે "जिण्हु" નામનો ઇન્દ્રવાચી શબ્દ પાઠાંતરરૂપે કલ્પવો જોઈએ. બીજી પ્રતિ ન મળે અને આ કલ્પનાને સમર્થન ન મળે ત્યાંસુધી નિશ્ચિતરૂપે ન કહી શકાય. પત્ની, લક્ષ્મી, મિત્ર અને શાસ્ત્રનું ફળ શું છે એ સંબંધે લેખકે વાપરેલ એક સુભાષિત ખૂબ જ અનુભવપૂર્ણ છે. તેઓ કહે છે કે પત્નીનું ફળ રતિ અને પુત્ર, લક્ષ્મીનું ફળ દાન અને ભોગ, મિત્રનું ફળ નિવૃત્તિ અને શાસ્ત્રોનું ફળ ધર્મ છે. જુઓ

"रइपुत्तफला भज्जा लच्छी वि हु पुन्नदानभोगफला ।
निव्वुइफलो य मित्तो धम्मफलाइं च सत्थाइं" ॥૧૧૪૪૦ ॥

વિશ્વધર્મ જેવી કોઈ વસ્તુ હોઈ શકે નહિ. એક જ ધર્મ સ્થાપવો એ તો એક ઘેલછા માત્ર છે. ઉપદેશ સૌ કોઈને એક રૂપે પરિણમતો જ નથી. માટે પોતાના મત તરફ સૌ કોઈ વળે એવું ઇચ્છવું એ તદ્દન વ્યર્થ છે એ દર્શાવવા જ્ઞાનપંચમી કથાકાર કવિશ્રી. મહેશ્વરસૂરિ કહે છે કે સઘળા જીવોને પોતે જે ગ્રહણ કર્યું તે જ ગ્રહણ કરાવવા કોણ સમર્થ થઈ શકે? બ્રહ્મા, મનુ અને માંધાતા વગેરે ઘણા હોવા છતાં એક જગતને એક મતવાળું કે એક ધર્મવાળું કરી શક્યા નહિ તો અન્યથી શું થઈ શકે? જુઓ –

"बंभाइएहिं मणुमाइएहिं मंधत्तमाइराएहिं ।
जयमेगमयं काउं न सक्किउं बहुहि किमणेण" ॥ ૧૧૪૮૪ ॥

લાંબા વખતની દીક્ષા કે વિવિધ વિષયનું વિપુલ જ્ઞાન મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે જરૂરનું નથી. શુભ ભાવ વિના બધું નકામું છે. ક્રિયા કરવાથી ભાવશુદ્ધિ ન થતી હોય તો એ ક્રિયાનો કાંઈ અર્થ નથી. ક્રિયા એ તો આત્માનો વ્યાયામ છે. એ વ્યાયામમાંથી શુદ્ધભાવનું નવું લોહી સર્જવાનું છે. આમ ન બને તો ક્રિયાકાંડનો કાંઈ અર્થ નથી. જયસેને થોડા જ વખતમાં કૈવલ્ય પ્રાપ્ત કર્યું જ્યારે ઘણી લાંબી પ્રવ્રજ્યાના પર્યાયવાળા હજુ જ્યાં ને ત્યાં જ પડ્યા હતા. એ દર્શાવવા મહેશ્વરસૂરિ કહે છેઃ –

"चिरपव्वज्जा नाणं एयं न हु कारणं हवइ मोक्खो ।
जस्सेव सुहो भावो सो चेव य साहए कज्जं" ॥ ૧૧૫૦૨ ॥

ઝાઝી સ્ત્રીઓ એક ઠેકાણે ભેગી થઈ હોય એમાં સારા વાટ નહિ તેમ જ ઝાઝા કાગડાઓ દેખાય તો તે પણ અશુભસૂચક છે; ઝાઝા ડરપોક માણસો ભેગા થયા હોય

ત્યાં પણ કાંઈ ભલીવાર ન હોય. આ લોકમાન્યતા કવિશ્રી નિમ્નોક્ત ગાથા દ્વારા જણાવે છેઃ—

"कागा कापुरिसा विय इत्थीओ तह य गामकुक्कडया।
एगट्ठाणे वि ठिया मरणं पावेंति अइबहुहा" ॥ १०४५२ ॥

આવા તો સેંકડો સુભાષિતો આખ્યાને આખ્યાને વેરાયેલા મળી આવે છે પરંતુ એ બધાને ચર્ચવાનો અહિ અવકાશ નથી. આ સુભાષિતોનો બરાબર અભ્યાસ કર્યા પછી આપણને એ નિશ્ચિત રીતે વિદિત થાય છે કે શ્રીમહેશ્વરસૂરિ સમાજના, સંસારના અને સ્ત્રી માનસના અજોડ અભ્યાસી હતા. અન્ય આખ્યાનોમાં આવતાં થોડાં બીજાં સુભાષિતો જોઈએ.

વૈભવથી જે ફૂલાતો નથી અને યૌવનકાળે વિકારને વશ થતો નથી તે દેવોને પણ પૂજ્ય છે તો મનુષ્યમાં પૂજનીય બને એમાં નવાઈ શી? અનાસક્ત યોગીની સર્વધર્મ-સામાન્ય એ વ્યાખ્યા મહેશ્વરસૂરિને પણ મંજૂર છે, એ આ સુભાષિતથી આપણને જાણવા મળે છેઃ—

"विहवेण जो न फुल्लइ जो न वियारं करेइ तारुण्णे।
सो देवाण वि पुज्जो किमंग पुण मणुयलोयस्स" ॥ २।९५ ॥

"जन्मना जायते शूद्रः संस्कारी द्विज उच्यते" આ ચતુર્વર્ણનિયામક તટસ્થ અને ઉદાર વ્યાખ્યાનું સુરેખ પ્રતિબિંબ, સ્ત્રી–પુરુષના લક્ષણકથન સંબંધે વાપરેલ નિમ્નોક્ત સૂક્તિમાં આપણી નજરે ચડે છેઃ—

"मायाइ विल्लसिएणं पुरिसो वि हु इत्थिया इहं होइ।
इत्थी वि सरलहियया पुरिसो वि य होइ संसारे" ॥ ३।१७ ॥

ખરૂં જ છે કે માયાદિ દુર્ગુણવાળો પુરુષ સ્ત્રી કરતાં જરાય ચ્હડીયાતો નથી જ્યારે સરલહૃદયા સ્ત્રી પુરુષ કરતાં સે'જ પણ ઉતરતી નથી.

ભોગવાંચ્છુ જીવે દ્રવ્યાર્જન કરવું જ રહ્યું. "Money makes the mare go" એ સત્ય સનાતન છે. सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते એ સાવ સાચુ છે. વળી બેઠા બેઠા તો રાજાના ભંડાર પણ ખૂટી જાય એટલે વડીલોપાર્જિત દ્રવ્ય મળ્યું હોય તો પણ નવું ધન કમાવાનો માણસે પ્રામાણિક પ્રયત્ન કરવો જ જોઈએ. "आसीनः भग आस्ते' અને "चरन्वै मधु विन्दति" એ સૌ કોઈ જાણે છે. લેખક કહે છે—

"केण उवाएण पुणो दव्वं अज्जेमि भोयकारणयं।
दव्वाभावेण जओ भोयाणं साहणं नत्थि" ॥ ४।२१ ॥

જૈનધર્મ કાયરોનો છે, સંસાર ભીરુઓનો છે, એવો આક્ષેપ વર્તમાનકાળે જૈન ધર્મ ઉપર છે. એ જ જૈનધર્મનો અગીઆરમી સદીનો એક વિરક્ત સૂરિ, ગૃહસ્થાશ્રમ દીપાવવો હોય તો ભોગકારણ અને ભોગસાધક પૈસો અલબત્ત કમાવો જોઈએ, એવું પડકારીને કહે ત્યારે ઇતિહાસ પ્રસિદ્ધ સાહસિક અને પોતાના અભિપ્રાયને ગમે તે ભોગે વળગી રહેનાર નિડર અને રૂઢિચ્છેદક સિદ્ધસેનસૂરિ જેવા જ પ્રતિભાશાળી મહેશ્વરસૂરિ હશે એમ આપણને જરૂર લાગવુ જોઈએ.

ભરત એક મુનિ હતા છતાં 'નાટ્યશાસ્ત્ર' લખ્યું; વાત્સ્યાયન ઋષિ હતા તો પણ 'કામસૂત્ર (કામશાસ્ત્ર)' લખ્યું. ધર્મ–અર્થ–કામ અને પરંપરાએ મોક્ષ એ હેતુ શાસ્ત્રપ્રયોજનમાં લીધો. તેવી જ રીતે શ્રી મહેશ્વરસૂરિ, એક વિરક્ત જૈન સાધુ હોઈ, જૈનોના બ્રહ્મચર્યનામના પ્રખ્યાત ચોથા વ્રતના સર્વથા સંરક્ષક હોય એ સ્વતઃ સિદ્ધ છે. છતાં પણ ગૃહસ્થીઓને અનુલક્ષી તેઓશ્રી, ઉપર્યુક્ત નિડરતાથી, રતિક્રીડા સંબંધે કહે છે કે રતિક્રીડા કરનાર માણસે રતિક્રીડા કરવી જ હોય તો કેલી, હાસ્યાદિ પાંચ પ્રકારે એ સુરતોત્સવ પૂર ભપકાથી ઉજવવો જોઈએ. એ ક્રિયાને ગધેડાની માફક જેમ તેમ આટોપી લેવાથી શું ફાયદો? એમાં તો મહેનતેય માથે પડે એના જેવો ઘાટ થયો. ટુંકામાં, બ્રહ્મચર્ય, ગૃહસ્થ, સંન્યાસ અને વાનપ્રસ્થ એ ચાર આશ્રમો પૈકી કોઈ પણ આશ્રમમાં માણસ હોય તેને તો તે આશ્રમને સોએ સો ટકા દીપાવવાનો જ છે. પોતપોતાના વર્તુલમાં રહી પોતે સ્વીકારેલ તત્કાલીન ધર્મને પૂરેપૂરો ન્યાય આપી ઉત્તરોત્તર પ્રગતિ કરી છેવટે સૌએ મોક્ષ સાધવાનો છે. એ તદ્દન સાચું છે કે 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' આ હેતુથી જ લેખક કહે છે:–

"केलीहासुम्मीसो पंचपयारेहिं संजुओ रम्मो ।
सो खलु कामो भणिओ अन्नो पुण रासहो कम्मो" ॥ ५।६६ ॥

વીરચંદ્ર જેવો દરિદ્રનારાયણ દુનિયાનું શું દાળદર ટાળશે, એ સંબંધમાં લેખક શ્રી મહેશ્વરસૂરિ છઠ્ઠા આખ્યાનમાં દરિદ્રતા ઉપર એક વાસ્તવદર્શી કટાક્ષ ફેંકે છે. માતા પિતા, ભાઈ ભગિની, બેટો બેટી અને સ્ત્રી પણ–સારો લોક દરિદ્રીથી વિમુખ થઈ જાય છે. દરિદ્રીનું મોઢું પણ સવારમાં જોવાનું કોઈ પસંદ કરતું નથી. દરિદ્રીની વાણી ઘણી મીઠી હોય અને એણે આપેલી સલાહ પણ ઘણી કિંમતિ હોય તોય ભંગીના કુવાની માફક એની બધી સારી બાબતોનો સૌ પરિત્યાગ કરે છે. જ્ઞાન, કલા, વિજ્ઞાન, વિનય, શૌર્ય અને ધૈર્ય એ બધા ગુણો પુરુષનાં નકામા–એક જો દારિદ્ય દોષ તેનામાં હોય તો.

"मित्तो सयणो धूया माया य पिया य भाइभाईया ।
सव्वे वि होंति विमुहा दालिद्दकलंकियनणूणं ॥ ६।१९ ॥
गोट्ठी वि मुट्ठु मिट्ठा दालिद्दविडंबियाण लोएहिं ।
वज्जिज्जइ दूरेणं सुसलिलचंडालकूव व्व ॥ ६।२३ ॥
नाणकलाविन्नाणं विणओ सुरत्तणं च धीरत्तं ।
दालिद्दनिवासाणं सव्वं पि निरत्थयं होइ" ॥ ६।२६ ॥

આ છેલ્લા સુભાષિતમાં "दारिद्यदोषो गुणराशिनाशी" એ સૂક્તિનો પ્રતિધ્વનિ સંભળાય છે.

મહેશ્વરસૂરિનો સંસારનો તથા સમાજનો અભ્યાસ કેટલો વેધક અને વિશાળ હતો તે તેમણે વાપરેલ સાતમા આખ્યાનના એક વ્યાવહારિક સુભાષિત ઉપરથી આપણને જાણવા મળે છે. તેઓ માને છે કે સંસાર ઉપર જ સ્વર્ગ અને નરકનો અનુભવ થઈ રહે છે, તો પછી શાસ્ત્રમાં વાપરેલ સ્વર્ગ અને નરકના અસ્તિત્વસૂચક પરોક્ષ કથનો વિષે

શા માટે અવિશ્વાસ ધરાવવો જોઈએ? Instead of going to heaven we can bring down heaven on earth. સંસારમાં સ્વર્ગનાં સુખ અનુભવવાં હોય, દેવલોકના દિવ્યાનંદ અને મઝા–મસ્તી લૂંટવાં હોય તો એક તો ખરાબ સ્ત્રી ન હોવી જોઈએ, બીજું દારિદ્ય ન હોવું જોઈએ, ત્રીજું વ્યાધિઓ ન હોવા જોઈએ અને ચોથું સંતાનમાં કન્યાનું બાહુલ્ય ન હોવું જોઈએ. આટલાં વાનાં હોય તો સંસાર એ સ્વર્ગતુલ્ય જ છે અન્યથા તે નરક સમાન છે. આ ચાર વસ્તુ જેની પાસે હોય તે જીવનનો રસાસ્વાદ માણી શકે. સાતમા આખ્યાનમાં પદ્માભ નામના દ્વિજને તેની સ્ત્રી ધન્યા પાસે નિમ્નોક્ત ગાથા તેઓ કહેવડાવે છે:–

"दुकलत्तं दालिद्दं वाही तह कन्नयाण बाहुल्लं ।
पच्चक्खं नरयमिणं सत्तुवइट्ठं च वि परोक्खं" ॥ ७६ ॥

જૈન સાધુ માટે લગભગ અસ્પૃશ્ય ગણાતા રાજનીતિ જેવા ગહન વિષય ઉપર પણ પોતાનો દ્રઢ અને અનુભવસૂચક અભિપ્રાય સૂરિવર્યે જણાવ્યો છે. તેઓ કહે છે કે કર્ણ-ધાર વિનાના વહાણ જેવી સ્થિતિ અમાત્ય અને શિષ્ટજન વિનાના રાજ્યની છેઃ–

"कण्णद्धारविहीणं बोहित्थं जह जलंमि डोल्लेइ ।
सिट्ठमहंतयरहियं रज्जं पि हु तारिसं होइ" ॥ (८, २१)

શુકન શાસ્ત્ર જેવા વ્યાવહારિક વિષયના સંબંધમાં પરાપૂર્વથી ચાલી આવેલી એક રૂઢિને સૂરિવર્યે સૂક્તિમાં સુંદર રીતે ગુંથી કાઢી છે. આંધળો, કુષ્ઠના રોગવાળો, લંગડો, હોઠ કપલો, નાક કાન વિનાનો–આટલાને પ્રસ્થાન કરતી વખતે શુભ ફળની આશા સેવનારે પ્રયત્નપૂર્વક વર્જવાઃ–

"अंधो कुट्ठी पंगू छिन्नोट्ठो छिन्नकन्ननासो य ।
पढमं चिय चलिएणं वज्जेयव्वा पयत्तेणं" ॥ ९।१० ॥

કામદેવના સર્વવિજયીપણા વિષે અને સંગીતશાસ્ત્રની પ્રાસાદિકતા વિષે સૂરિશ્રી દસમા આખ્યાનમાં કહે છે કે સંગેમરમરની પૂતળી સદશ કોઈ નાજુકનયનીના હાવ-ભાવથી અને સંગીતના મધુર આલાપથી જેનું હૃદય મુગ્ધ થતું નથી તે કાં તો પશુ છે અથવા દેવ છેઃ–

"वरजुवइविलसिएणं गंधव्वेणं च एत्थ लोयंमि ।
जस्स न हीरइ हिययं सो पसुओ अहव पुण देवो" ॥ १०।२९४ ॥

આટલી ચર્ચા પછી આપણે એમ કહેવાની સ્થિતિમાં જરૂર છીએ કે "પંચમી-માહ૫્પ" કથા એક એની જ જાતિનો અલૌકિક પર્વકથા ગ્રન્થ છે જે પ્રકાશિત થયે ઘણી જ બાબતો ઉપર પ્રકાશ પડવા સંભવ છે. તેના વિદ્વાન લેખક શ્રી મહેશ્વરસૂરિ એક પ્રકાંડ પંડિત, કુશળ કવિ, અઠંગ અભ્યાસી અને નિપુણ નિરીક્ષક હતા.

*

भारतवर्षनुं महान् वाकाटक साम्राज्य

*

लेखक — श्रीयुत डुंगरसी धरमसी संपट, — करांची

ભારશિવ સામ્રાજ્ય

અંગ્રેજ ઇતિહાસકારોએ ઈ. સ. ૧૫૦ થી ઈ. સ. ૩૪૮ સુધીના હિંદના ઇતિહાસને અપ્રાપ્ત સાધનોથી આલેખ્યો નથી. પરંતુ ડૉ. જાયસવાલની શોધોથી નાગવંશના ભારશિવોના સામ્રાજ્યની (ઈ. સ. ૧૫૦ થી ઈ. સ. ૨૮૪ સુધી)ની હકીકત આગલા લેખમાં અપાઈ છે. આ ભારશિવોએ દશ અશ્વમેધ યજ્ઞો કર્યા હતા. એઓ પરમ શ્રદ્ધાળુ શિવભક્તો હતા. તેમણે પ્રાકૃત ભાષાને ઉત્તેજન આપ્યું હતું. પોતાના સિક્કાઓ ઉપર પ્રાકૃત ભાષાનો ઉપયોગ કર્યો હતો. રાજ્યબંધારણમાં તેઓ પ્રજાસત્તાવાદી હતા. કુશાનો ગૌહત્યા અને વૃષભહત્યા કરતા હતા. ભારશિવોએ વૃષભને પોતાના પૂજ્ય ચિન્હ તરીકે સ્વીકાર્યું હતું. હમણાના હિંદુધર્મ અને હિંદુત્વના આરંભનો પાયો ભારશિવોના સામ્રાજ્યમાં પડ્યો હતો. વાકાટક સામ્રાજ્યમાં આનો વિકાશ થઈ ગુપ્ત સામ્રાજ્યમાં એનો સંપૂર્ણ ઉત્કર્ષ થયો હતો.

વાકાટક સામ્રાજ્ય

આ સામ્રાજ્યનો આરંભ ઈ. સ. ૨૪૮ થી ૨૮૪ સુધીમાં થયો હતો. એનો વિકાશ ઈ. સ. ૨૮૪ થી ઈ. સ. ૩૪૮ સુધી થયો હતો. અને એનો અસ્ત કાળ ઈ. સ. ૩૪૮ થી ૫૫૦ સુધી હતો. સમુદ્રગુપ્તના પ્રાદુર્ભાવથી ૧૦૦ વર્ષોની પણ પહેલાં વાકાટકોનું સામ્રાજ્ય અસ્તિત્વમાં હતું. વાકાટકનો પ્રથમ સમ્રાટ્ વિધ્યશક્તિ હતો. એમનું ગોત્ર ભારદ્વાજ ગોત્રની શાખા વિષ્ણુવૃદ્ધ હતું. આ વંશનો બીજો સમ્રાટ્ પ્રવરસેન ૧ લો હતો. એણે ચાર અશ્વમેધો કર્યા હતા. એણે જ પ્રથમ હિંદના સમ્રાટ્નો અધિકાર ધારણ કર્યો હતો. એણે લાંબા વખત સુધી રાજ્ય કર્યું હતું. એનો પુત્ર ગૌતમીપુત્ર એના જીવન દરમ્યાન જ સ્વર્ગસ્થ થયો હતો. આથી એનો પૌત્ર રૂદ્રસેન પહેલો એના પછી રાજ્યારૂઢ થયો હતો. સમ્રાટ્ પ્રવરસેન પહેલાનો યુવરાજ ગૌતમીપુત્ર બ્રાહ્મણ જાતની રાણીનો પુત્ર હતો. પરંતુ સ્વયં ગૌતમીપુત્ર ભારશિવ સમ્રાટ્ ભાવનાગની રાજકન્યા સાથે પરણ્યો હતો. એ બન્ને વંશોના જોડાણથી રૂદ્રસેન ૧ લો, પ્રવરસેન અને ભાવનાગનો સંયુક્ત વારસ હતો. રૂદ્રસેનનો પુત્ર પૃથ્વીસેન હતો. આ વંશને ત્યારે ૧૦૦ વરસ પસાર થયા હતા. આનો ઉલ્લેખ કરાયો છે —

'वर्षशतं अभिवर्द्धमानकोशदंडसाधनः'

આની સમૃદ્ધિ અને શાસન ૧૦૦ વરસોથી વિકાશ પામ્યાં હતાં.

પૃથ્વીસેનના વંશજો

પૃથ્વીસેન મહાન્ સમ્રાટ્ થઈ ગયો છે. એ શૂરો, ઉદાર અને પ્રજા ઉપર પ્રેમ રાખનાર હતો. એણે કુન્તલના રાજાને પોતાનો ખંડીઓ બનાવ્યો. કુન્તલ એ કર્ણાટકનો

ભાગ છે. કદંબના રાજ્યને પણ એણે પોતાની છત્રછાયા નીચે આણ્યું હતું. પૃથ્વી-સેનનો પુત્ર રૂદ્રસેન બીજો એની પાછળ સમ્રાટ્ થયો. એનો વિવાહ સમ્રાટ્ ચંદ્રગુપ્ત બીજા (વિક્રમાદિત્ય)ની પુત્રી પ્રભાવતી ગુપ્ત સાથે થયો હતો. પ્રભાવતી ગુપ્તની માતાનું નામ કુબેરા નાગ હતું. તે નાગવંશ (ભારશિવો)ની કન્યા હતી. રૂદ્રસેન બીજા પછી એની સામ્રાજ્ઞી પ્રભાવતીએ રાજપ્રતિનિધિ (રીજેન્ટ) તરીકે રાજ્યનું રક્ષણ કર્યું હતું. રૂદ્રસેન બીજાના મરણ સમયે એનો યુવરાજ દિવાકરસેન માત્ર ૧૩ વર્ષની ઉમરનો હતો. એ સમયે સામ્રાજ્ઞીએ રાજ્ય સંભાળવાનો લેખ બહાર પાડ્યો હતો (પુનાના તામ્રપટો). દિવાકરસેન પછી એનો ભાઈ દામોદરસેન સમ્રાટ્ થયો હતો. એ દામોદર-સેનના તામ્રલેખ પણ પ્રાપ્ત થયા છે. આ લેખ એણે પોતાના ૧૯ વરસના રાજ્ય સમયે બહાર પાડ્યા હતા. પ્રભાવતી ગુપ્તની રીજન્સી ૨૦ વર્ષ સુધી ચાલી હોવાની ગણત્રી થાય છે. પ્રભાવતી ગુપ્ત અથવા એના પુત્રોએ ગુપ્ત સંવત્નો ઉપયોગ કર્યો નથી. આથી વાકાટક રાજ્યમાં એ સંવત્નો ઉપયોગ ચંદ્રગુપ્ત બીજાના સમયમાં થતો નહોતો. પરંતુ સમુદ્રગુપ્ત પછી વાકાટકોએ ગુપ્તોનું ચક્રવર્તિપણું માન્ય રાખ્યું હશે. પરંતુ તેઓની રાજા તરીકે તો સંપૂર્ણ સ્વતંત્રતા અખંડિત હતી. સગપણ, સ્નેહસંબંધ અને વિકાશની દૃષ્ટિએ બન્ને જોડાયલા હતા.

વાકાટકોનું સામ્રાજ્ય

અજંતાના લેખો અને બાલાઘાટના તામ્રપત્રોથી જણાય છે કે વાકાટકો રાજા તરીકે સંપૂર્ણ સ્વતંત્ર હતા. તેઓના પોતાના ખંડીઆ રાજાઓ હતા. તેઓ યુદ્ધ અને સુલેહ પોતાની સંપૂર્ણ સ્વતંત્રતાથી કરી શકતા હતા. તેઓએ ત્રિકુટ, આન્ધ્ર અને કુન્તલના રાજ્યોને પોતાને વશવર્તી બનાવ્યા હતા. તેઓનું સામ્રાજ્ય બુંદેલખંડના પશ્ચિમના ભાગથી શરૂ થતું હતું. અજયગઢ, પન્ના અને મધ્યપ્રાંતોનું બધું રાજ્ય એમનું હતું. વિરાટ (વરાડ?)માં પણ એમની આણ હતી. ઉત્તરકોંકણ ઉપર પણ એમના સૂબાઓ હતા. સમુદ્રપર્યંતનો મરાઠા પ્રદેશ તેમના તાબે હતો. કુન્તલ (કર્ણાટક) અને આન્ધ્ર દેશના તેઓ પ્રતિવાસી હતા. વિધ્યાચલ અને સાતપુડાની ખીણોમાં મૈકાલની ગિરિમાળા શીખેના મેદાનોમાં એમનું રાજ્ય હતું. દક્ષિણમાં અજતાના પાર્વતીય માર્ગ ઉપર એમનો કાબુ હતો. તેમના ખડીઆઓમાં દક્ષિણ કોશલ, આન્ધ્ર, પશ્ચિમ માળવા અને ઉત્તર હૈદરાબાદ આવી ગયા હતા. આ સિવાય ભારશિવોના વારસા તરીકે એમના હાથમાં કેટલોક દેશ આવ્યો હતો. તેઓના હાથનો વિસ્તીર્ણ પ્રદેશ સમુદ્રગુપ્તના વિજયોથી અંકુશિત બન્યો હતો. પરંતુ તેના જ સમયમાં એ અંકુશ હટાવી એનો સંપૂર્ણ ઉદ્ધાર થયો હતો. પૃથ્વીસેન પહેલાએ એ મહાન્ સમ્રાટ્ના સમયમાં કદંબનું રાજ્ય જીતી લીધું હતું.

વાકાટક વંશનો ઇતિહાસ

વાકાટક વંશના સીધા ઇતિહાસનાં સાધનો સુપ્રાપ્ય નથી. પરંતુ પુરાણો અને ભાર-શિવોના ઇતિહાસમાંથી એમની હકીકતો મળી શકે છે. વાકાટક વંશનો ઇતિહાસ એ હિંદની અર્ધી સદીનો ઇતિહાસ છે. ગુપ્ત વંશના ઉદય અને વિકાશ સમજવા માટે

વાકાટક વંશનો ઇતિહાસ અતિ અગત્યતા ભોગવે છે. પ્રવરસેન પહેલાના સ્થાપેલા સામ્રાજ્યનો મોટો ભાગ અને વારસો ગુપ્તવંશની આણુ નીચે આવ્યો હતો. ગુપ્તવંશના વિકાસમાં વાકાટક વંશનો મુખ્ય ફાળો છે. વાકાટકો પહેલાના સમ્રાટો "દ્વિરશ્વમેધ યજ્ઞિન્" એવો અધિકાર અને ઇલ્કાબ ધારણ કરતા હતા. થોડા શત વર્ષો પહેલાં થયેલા પુષ્યમિત્ર સુંગ (આર્યાવર્તના સમ્રાટ્) અને શ્રી સાતકીર્તિ પહેલા (દક્ષિણાપથના સમ્રાટ્)ના સમયમાં આ યજ્ઞો કરાયા હતા. સમ્રાટ્ પ્રવરસેને ચાર અશ્વમેધો કર્યા હતા. આ સિવાય એણે બૃહસ્પતિસવ નામનો માત્ર બ્રાહ્મણોથી જ કરાતો યજ્ઞ કર્યો હતો. આ સિવાય એ સમ્રાટે વાજપેય અને બીજા કેટલાક વૈદિક યજ્ઞો કર્યા હતા. એણે દક્ષિણને પણ પોતાની સત્તા નીચે આણ્યું હતું. આથી જ એનું સમ્રાટનું બીરૂદ યોગ્યતાથી ધારણ કરાયું હતું. ભારશિવો કે મૌર્યો જે કામો ન કરી શક્યા તે આ સમ્રાટે કર્યા હતા. ઉત્તરદક્ષિણાપથનો મોટો વિભાગ તેના સામ્રાજ્યની આણમાં આવી ગયો હતો.

વાકાટકો અને પુરાણો

હમણાના ઇતિહાસોમાં વાકાટકો સંબંધી એક લીંટી પણ દેખાતી નથી. પરંતુ પુરાણો આ વંશના સમ્રાટો વિષે ઉલ્લેખ કરવાનું ભૂલ્યા નથી. મહાન્ માંધાતા અને વસુ મહારાજાની પેઠે ચાર અશ્વમેધો કરનારને પુરાણો કેવી રીતે ઉવેખી શકે? પુરાણો તો પરદેશી વંશોની વંશાવળીઓ ગાઈ ગયા છે ત્યારે સ્વદેશી સમ્રાટોને કેમ ભૂલી શકે? પુરાણો તુખારા કુશાનોના પતનની નોંધ કરે છે. તે પછીના સમ્રાટોને તેઓ વિન્ધ્યકો તરીકે સંબોધે છે. એના પ્રથમ સમ્રાટનું નામ એઓ વિન્ધ્યશક્તિ અને બીજાનું નામ પ્રવીર તરીકે ઉલ્લેખે છે. એને મહાન તરીકે એઓ ગણાવે છે. એણે વાજપેય યજ્ઞો કર્યા હતા તેવા પણ ઉલ્લેખો મળે છે. વાયુપુરાણમાં એણે વાજીમેધ (અશ્વમેધ) કર્યાનો ઇસારો છે. એનું શાસન ૬૦ વર્ષો સુધીનું સુદીર્ઘ હતું એ પણ જણાવ્યું છે. આને વાકાટક તામ્રપત્રો પણ ટેકો આપે છે. સમય પણ બંધબેસ્તો થાય છે. તુખારા કુશાનો પછી અને ગુપ્તો પહેલાં એની યોજના યોગ્ય થઈ છે. એ વંશના પ્રથમ પુરુષનું નામ પણ મળે છે. સમ્રાટ્ પ્રવીરનું લાંબુ રાજ્ય અને એણે કરેલા અશ્વમેધો સંબંધી પણ ઉલ્લેખ મળે છે. જૂના લેખો જે સ્થળે અજવાળું પાડતા નથી ત્યાં પુરાણો ગાળાં પુરે છે.

વાકાટકોનું મૂળ

ઘણે ભાગે વાકાટકો બ્રાહ્મણો જ હોવા જોઈએ. બૃહસ્પતિસવ યજ્ઞ બ્રાહ્મણો સિવાય બીજા કોઈને કરવાનો અધિકાર નથી. તેઓનો ગોત્ર વિષ્ણુવૃદ્ધ પણ બ્રાહ્મણગોત્ર છે. વિન્ધ્યશક્તિને ખાસ દ્વિજ તરીકે સંબોધવામાં આવ્યો છે. द्विजः प्रकाशो भुवि विन्ध्यशक्तिः એઓને વિન્ધ્યક એટલે વિન્ધ્યાન કહેવામાં આવ્યા છે. એઓ કિલકિલા નદીના કિનારે મૂળ સ્થાન ધરાવતા હતા. એ નદી પન્ના નજદિક આવેલી છે. અજયગઢ–પન્ના પાસે વાકાટકોના જૂના લેખો પ્રાપ્ત થયાં છે. ભાગવતપુરાણ, વિદિશા નાગો અને પ્રવીરકોનું વર્ણન કરતાં આમને કિલકિલા રાજાઓ તરીકે ઉલ્લેખે છે. બુંદેલખંડમાં આ વંશનું મૂળ સ્થાન હતું એ નિર્વિવાદ છે. वाकाटकानां महाराजश्री એ ઉપરથી એમના વાકાટક વંશની સિદ્ધિ થાય છે. એમનું વંશપરંપરાનું નામ ત્રૈકૂટ હતું. સીધો ઇતિહાસ ઉપલબ્ધ નથી

પણ આમ કિલકિલા, પુરાણો અને લેખોમાંથી માહીતી મળે છે. પુરાણો વિન્ધ્યશક્તિને રાજાઓનો વંશજ હોવાનું જણાવે છે.

વાકાટકોની રાજ્યધાની

અજંતાની ગુફા નં૦ ૧૬માં વાકાટકો સંબંધી લેખ મળે છે. એમાં એને વાકાટકવંશનો મૂળ પુરુષ માનેલો છે, અને એને वाकाटकवंशकेतु તરીકે વર્ણવેલો છે. એને માટે એ લેખમાં चकार पुण्येषु परं प्रयत्नम् આવો ઉલ્લેખ છે. તે બ્રાહ્મણ તરીકે હમેશાં ધર્મપ્રતિપાલન કરનાર રહ્યો. એણે આન્ધ્ર અને નૈષધ વિદુરમાં મોટા વિજયો મેળવ્યા હતા. પ્રવરસેનની રાજ્યધાની "ચાનકા" હતી. એ વિન્ધ્યશક્તિએ વસાવી હશે. જુની કિલ્લેબંધીવાળા શહેર ગંજ નચાના એ ચાનાકી અથવા કંચનકા હોય એ સંભવીત છે. આ સ્થળે પાર્વતી અને ચતુર્મુખના બે મંદિરો છે. આ સ્થળે પૃથ્વીસેન ૧ લાના ત્રણ શિલાલેખો મળી આવ્યા છે. સ્થાપત્ય ઉપરથી મદિરો ગુપ્ત સમયની શરૂઆતના લાગે છે.

વાકાટક સિક્કાઓ

સિક્કાઓ ઉપરથી બે વાકાટક સમ્રાટોનાં નામો મળે છે. પ્રવરસેન ૧ લો અને રૂદ્રસેન ૧ લો. વિન્ધ્યશક્તિનો કોઈ સિક્કો મળ્યો જ નથી. એ રાજા ભારશિવ નાગોનો ખંડણી આપનાર રાજા હતો. ઉપલા બન્ને સમ્રાટોના સિક્કાઓ તો ઘણા સમય ઉપર મળ્યા હતા. પરંતુ તે વાંચી અને સમજી બેસાડી શકાયા નહોતા. પ્રવરસેનના સિક્કા અહિછત્ર ટંકશાલમાં પાડવામાં આવ્યા હતા. રૂદ્રસેન પછીના રાજાઓ ગુપ્ત ચક્રવર્તિપણા નીચે આવ્યા હતા. પરંતુ પૃથ્વીસેન પહેલાને પોતાના સ્વતંત્ર સિક્કાઓ ચલાવવા દેવાનો અધિકાર મળ્યો હતો. એ પૃથ્વીસેનનો પુત્ર, ચંદ્રગુપ્ત બીજા (વિક્રમાદિત્ય)ની પુત્રી પ્રભાવતી ગુપ્તા સાથે પરણ્યો હતો. એના નાના સુઘડ સિક્કાની પુંઠે વૃષભની આકૃતિ છે. મોઢા ઉપર વૃક્ષ અને પર્વત છે. એના ઉપર પૃથ્વીસેનનું નામ લખાયેલું છે. તે પછીના વાકાટકોના સિક્કાઓ મળ્યા નથી.

વાકાટકોના લેખો

બધા વાકાટકોના લેખો નીચે પ્રમાણે ગોઠવી શકાય છે.

પ્રવરસેન ૧ લો– ત્રણ ટુંકા પ્રશસ્તાના લેખો. એમાં વ્યાઘ્રદેવે પૃથ્વીસેનના રાજ્ય દરમ્યાન નચાના અને ગંજ ખાતે ધાર્મિક સ્થાનો સ્થાપ્યાં હતાં.

પ્રભાવતી સામ્રાજ્ઞી (રીજેન્ટ)ના લેખોમાં નંદીવર્ધનથી દાનો આપવાની હકીકતો છે.

પ્રવરસેન બીજો– રૂદ્રસેન બીજાનો આ પુત્ર થાય. આના લેખો ચમક (વીરાટના છલીચીપુર જીલ્લાના ચમક ગામડા)થી મળ્યો હતો. એને લગતો એ લેખ છે. સીવનીના લેખો ઇલીચપુરની મિલ્કતો સંબંધી છે.

દામોદરસેન પ્રવરસેન– આના લેખમાં રામગીરી પાસે દાનનો ઉલ્લેખ છે. આ રીતે પૃથ્વીસેન બીજા, દેવસેન, હરિસેનના લેખો મળી આવ્યા છે.

અજન્તાના લેખો

ગુફા નં. ૧૬માં દેવસેને રાજ્યત્યાગ કરીને પોતાના પુત્ર હરિસેનને ગાદીએ બેસાડ્યાની હકીકત છે. લેખનો પહેલો ભાગ કુટુંબના વંશવિસ્તારને દેખાડે છે. એ ક્ષિતિપતિપૂર્વી છે. એ પહેલાથી ૧૮ શ્લોકો સુધી વિન્ધ્યશક્તિથી સમ્રાટો ગણાવે છે. બીજા ભાગમાં દેવસેનના મંત્રી હસ્તિભોજે સોળ નંબરની ગુફામાં બુદ્ધધર્મની સ્થાપના કરવાનો ઉલ્લેખ છે. એ જ ગુફાના બીજા લેખ (બુલ્હર નં. ૪)માં રાજા હરિસેનના ખંડીઆ રાજાઓના કુટુંબ વિસ્તારની હકીકતો આપવામાં આવી છે. દશ પેઢીઓ સુધીના વૃત્તાંતો એમાં બતાવવામાં આવ્યા છે. સત્તર નંબરની ગુફા ભગવાન્ બુદ્ધને ચરણે મુકવાની પ્રતિજ્ઞા લેવામાં આવી છે.

આ સિવાય બીજા બે શિલાલેખો પણ મળે છે. આ સમ્રાટોનો ક્રમ નીચે પ્રમાણે આપી શકાય છે. કૌંસમાં આપેલા રાજાઓ રાજ્યાસને બેઠા નહોતા.

૧ વિન્ધ્યશક્તિ—રાજા (મૂર્ધાભિષિક્ત).

૨ પ્રવરસેન ૧ લો—પ્રવીર સમ્રાટ્ ૬૦ વર્ષોનું દીર્ઘ રાજ્યશાસન.

૩ (ગૌતમીપુત્ર)—પ્રવીર સમ્રાટ્‌ના જીવન દરમ્યાન સ્વર્ગવાસી થયો. એના ૪ પુત્રોમાંથી રૂદ્રસેન સમ્રાટ્ થયો. બાકીના ત્રણ ખંડીઆ રાજા થયા.

૪ રૂદ્રસેન ૧ લો—ભારશિવોનો એ દૌહિત્ર હતો. એ સમુદ્રગુપ્તના સમયમાં થઈ ગયો છે. પ્રવરસેનની દેખરેખ નીચે એ ભારશિવોનું રાજ્ય સંભાળતો હતો.

૫ પૃથ્વીસેન ૧ લો—સમુદ્રગુપ્ત અને ચંદ્રગુપ્ત બીજાનો સમકાલીન. એણે કુન્તલના રાજ્યને જીત્યું હતું.

૬ રૂદ્રસેન ૨ જો—એ પ્રભાવતી દેવીને પરણ્યો હતો. (પ્રભાવતી દેવી ચંદ્રગુપ્ત બીજાની અને કુબેરા નાગની પુત્રી હતી).

૭ (દિવાકરસેન)—યુવરાજ. એણે બહુ અલ્પ સમય રાજ્ય કર્યું હશે અથવા યુવરાજ અવસ્થામાં સ્વર્ગવાસી થયો હશે.

૮ દામોદર—પ્રવરસેન ૨ જો—૨૩ વર્ષ રાજ્ય કર્યાનું લેખોમાં જણાવ્યું છે. એની રાજ્યધાની મધ્યપ્રાંતના પ્રવરપુરમાં હતી.

૯ નરેન્દ્રસેન—(અજંતાની ગુફામાં આનું નામ નથી) બાલાઘાટ લેખોમાં એનું નામ મળે છે. કોશલ, મેકાલા અને માળવાના રાજાઓ એના ખંડીઆ હતા.

૧૦ પૃથ્વીસેન ૨ જો—(બીજું નામ દેવસેન) એ વિલાસી રાજા હતો. भोगेषु यथेष्ट चेष्टा એવું વિશેષણ અપાયું છે. એણે પોતાના પુત્રને રાજ્ય સોંપ્યું હતું.

૧૧ હરિસેન—એણે કુંતલ, અવન્તિ, કલિંગ, કોશલ, ત્રિકૂટ, લાટ અને આન્ધ્ર જીતી લીધા હતા. એના મંત્રી હસ્તિભુજે અજંતાની ૧૬ નંબરની ગુફા કરાવી છે. એના પિતા પૃથ્વીસેને મોજમજાહ ભોગવવા માટે સમ્રાટ્ તરીકે પોતાના પુત્ર હરિસેનને બેસાડ્યો.

કેટલીક ચર્ચા

ચંદ્રગુપ્ત બીજાના સમયમાં પૃથ્વીસેન ૧ લો અને રૂદ્રસેન ૨ જો હતા, એ હવે ચોક્કસ નિર્ણય થાય છે. અલાહાબાદના સ્તંભના લેખથી પુરવાર થાય છે કે પ્રવરસેન ૧ લો મહાસમ્રાટ્ તે સમયે (સમુદ્રગુપ્તના) હતો નહિ. સમુદ્રગુપ્તની છાયા નીચે આ સેનો સ્વતંત્ર રાજાઓ તરીકે રહ્યા હોય એ બનવા જોગ છે. પરંતુ ગુપ્તો એમને સમોવડીઆ ગણીને એમને પુત્રીઓ આપતા હતા, એ એમની સ્વતંત્રતાને સૂચવે છે. કદાચ એ મિત્રઆશ્રિત રાજ્ય પણ કહી શકાય. પુરાણો તો વિન્ધ્યશક્તિના વંશજોની માત્ર ૯૬ વર્ષની કાર્કિર્દી ઉલ્લેખે છે. વિન્ધ્યશક્તિના ૩૬ વર્ષ અને પ્રવરસેન પહેલાનાં ૬૦ વર્ષો. રૂદ્રસેન પહેલાથી એમના વંશનો ઉલ્લેખ પુરાણો કરતા નથી. આથી સમુદ્રગુપ્તના પ્રકાશ પછી રૂદ્રસેનનું સમ્રાટ્ તરીકે નામ પુરાણોમાં મળતું નથી. સમુદ્રગુપ્તે એમને નાગમિત્રો સાથે હરાવ્યા હશે. પુરાણોએ આથી એમનું મહાન્ સમ્રાટો તરીકે અસ્તિત્વ સ્વીકાર્યું નથી. ગુપ્તવંશના ઉદય પહેલાં એમનો સ્વીકાર ભારતના સમ્રાટો તરીકે ગણ્યો છે. ૯૬ વર્ષોની જેટલી એમની કાર્કિર્દી પણ તે માટે જ ગણાવી લાગે છે. રૂદ્રસેનના સિક્કા ઉપર ૧૦૦ નો આંકડો પણ આ વાત સૂચવે છે.

એમની વંશાવળીના વર્ષો

પુરાણો અને લેખો ઉપરથી એમની વશાવળીના વર્ષો નીચે મુજબ ગણી શકાય.

૧ વિન્ધ્યશક્તિ	ઈ. સ. ૨૪૮ થી ૨૮૪
૨ પ્રવરસેન	,, ૨૮૪ થી ૩૪૪
૩ રૂદ્રસેન ૧ લો	,, ૩૪૪ થી ૩૪૮
૪ પૃથ્વીસેન ૧ લો	,, ૩૪૮ થી ૩૭૫
૫ રૂદ્રસેન ૨ જો	,, ૩૭૫ થી ૩૯૫
૬ પ્રભાવતી ગુપ્ત રિજેન્ટ દિવાકરસેન	,, ૩૯૫ થી ૪૦૫
દામોદરસેન—પ્રવરસેન બીજો	,, ૪૦૫ થી ૪૧૫
૭ પ્રવરસેન ૨ જો રાજ્યાભિષેક પછી	,, ૪૧૫ થી ૪૩૫
૮ નરેન્દ્રસેન (૮ વર્ષની ઉમરે રાજ્યગાદીસ્થ થયો)	,, ૪૩૫ થી ૪૭૦
૯ પૃથ્વીસેન ૨ જો	,, ૪૭૦ થી ૪૮૫
૧૦ દેવસેન (ગાદી ત્યાગી)	,, ૪૮૫ થી ૪૯૦
૧૧ હરિસેન	,, ૪૯૦ થી ૫૨૦

ચંદ્રગુપ્ત બીજો અને વાકાટકો

ચંદ્રગુપ્ત બીજાએ વિવાહસંબંધો બાંધીને પોતાના સામ્રાજ્યનું સમર્થન કર્યું. એણે પોતાની પુત્રીને વાકાટકોના નૃપતિ રૂદ્રસેન બીજા સાથે પરણાવી. કદમ્બરાજાની કન્યા પોતાના કુટુંબ માટે સ્વીકારી. એ પોતે નાગ કન્યા કુબેરા સાથે પરણ્યો હતો. કુબેરા નાગને મહાદેવી તરીકે વર્ણવી છે. એની મુખ્ય પત્નીનું નામ ધ્રુવદેવી છે. આ ધ્રુવદેવીને

કુબેરાદેવી સપત્નિ હતી કે એ નામની એક જ રાણી હતી તે જણાયું નથી. આ રીતે વાકાટકોને ચંદ્રગુપ્ત બીજાએ સંબંધીઓ તરીકે સ્વીકાર્યા હતા. ગુપ્તોના રાજ્યમાં વાકાટકો અમુક વિશેષ પ્રમાણમાં સ્વતંત્રતા ભોગવતા હતા. એમને યુદ્ધ, સુલેહ અને વિજયોની સ્વતંત્રતા ગુપ્તોએ આપી હતી. નરેન્દ્રસેનના સમયમાં વાકાટકો તદ્દન સ્વતંત્ર થયા હતા. વરાડ, મરાઠા દેશ, કોંકણ, કુન્તલ, પશ્ચિમ માળવા, ગુજરાત, કોશલ, મેકાલા અને આન્ધ્ર એમની સત્તા નીચે આવ્યા લાગે છે. હરિસેન વાકાટકે પણ એ જ સીમાપર્યંત પોતાનું સામ્રાજ્ય ટકાવી રાખ્યું હતું. ખરેખરરીતે તો પશ્ચિમ, દક્ષિણ અને કુન્તલ પ્રદેશ સુધી ગુપ્તોનું સામ્રાજ્ય એમના હાથમાં આવ્યું હતું.

વાકાટકોના ત્રણ થરો

એમને ઇતિહાસમાં ત્રણ વિભાગોમાં વહેંચી શકાય. ૧ સામ્રાજ્ય, ૨ ગુપ્તોના ચક્રવર્તિપણા નીચે, ૩ ગુપ્તોથી સ્વતંત્ર. એમાં પ્રવરસેને મોટું સામ્રાજ્ય જીતી લીધું. રૂદ્રસેન પહેલાના સમયમાં સમુદ્રગુપ્તનું ચક્રવર્તિપણું સ્વીકારાયું હશે. અને ત્રીજું સ્વતંત્ર રાજ્ય નરેન્દ્રસેનથી હરિસેન સુધીનું સ્થાપાયું હશે.

વાકાટકશાહી બંધારણ

આ સામ્રાજ્યના સમ્રાટો, પોતાના પુત્રો અને નજદિકના સગાઓને, નાના નાના રાજ્યોના રાજ્યકર્તા નીમી મૂળ મધ્યસ્થ રાજ્યને ટકાવી રાખતા હતા. પ્રવરસેનના ચાર પુત્રોએ નાનાં નાનાં ત્રણ રાજ્યો સ્થાપ્યાં હતાં. ત્રણ વંશો વિવાહસંબંધથી અને એક વંશ પરંપરાએ ચાલ્યો હતો. મહિસી, મેકાલા, કોશલ અને વિદુર એ પશ્ચિમ માળવાની રાજ્યધાની હતી. આમાંથી મેકાલાનો વંશ, વાયુપુરાણમાં વાકાટકોનો ખાસ વંશ ગણવામાં આવ્યો છે. આ મેકાલાનો પ્રદેશ હમણા મૈકાલ પર્વતમાળાની દક્ષિણેથી શરૂ થાય છે. બસ્તરનું રાજ્ય એમાં જ આવ્યું છે. અહીંથી આન્ધ્ર દેશ શરૂ થાય છે. રાયપુરથી બસ્તર સુધીમાં નાગ સંસ્થાનોના અવશેષો પ્રાપ્ત થાય છે. દશમા સૈકાના નાગ વંશજોના લેખો આ સ્થળોએ પુષ્કળ પ્રમાણમાં મળે છે. મધ્યપ્રાંત સાથે આ વિભાગ નાગ સામ્રાજ્યમાં આવેલો હતો. વિન્ધ્યકો પણ આ પ્રદેશના શાસકો હતા. આના વંશની એક શાખા સાત પેઢી સુધી અહીં ખંડીઆ રાજાઓ તરીકે શાસન કરતી હતી. વાકાટકોની બીજી ત્રણ શાખાઓ વિવાહસંબંધોથી સંબંધીઓ બનાવીને સ્થાપવામાં આવી હતી. એમને લેખોમાં वैवाहिकाः આ સંબંધથી ઉલ્લેખવામાં આવ્યા છે. નૈષધ પ્રાંત નળ રાજાના વંશજોના હાથમાં હતો. એનું મુખ્ય શહેર વિદુર હતું. એ શહેરનું હમણાનું નામ બીદર છે. અગાઉ એ નિઝામની રાજ્યધાની હતી. મહિસીના રાજાઓ બે ભાગમાં હતા. એક શાખા મહિસીઓમાં મુખ્ય હતી. જ્યારે પુષ્યમિત્રો બે શાખાઓ સહિત રાજાઓ કહેવાતા નહોતા.

મહિસી અને ત્રણ મિત્ર પ્રજાસત્તાકો

મહિસીનો એક રાજ્યકર્તા પોતાને सुप्रतिकनभारा શાક્યમાનનો પુત્ર માને છે. એ મહિસીનો મોટો રાજા થઈ ગયો છે. એના સિક્કાઓ પણ મળ્યા છે. સિક્કામાં महाराज

श्री प्रतिकार એટલા અક્ષરો છે. આ સિવાય મહિસી નીચે ત્રણ ખંડીઆ રાજાઓ હતા. એમનાં નામોને છેડે "મિત્ર" આવે છે. વિષ્ણુપુરાણ એમનાં નામો પુષ્પમિત્ર, પધ્ધુમિત્ર અને પદ્મમિત્ર એવાં આપે છે. વાયુ અને બ્રહ્માણ્ડ પુષ્પ અને પતુમિત્રો આપે છે. પરંતુ બ્રહ્માણ્ડપુરાણ ત્રિમિત્ર તરીકે ઓળખાવે છે. શ્રીભાગવત પુષ્પમિત્રને राजन्य તરીકે ગણાવે છે. જે પ્રજાસત્તાકના અધિષ્ઠાતા તરીકે વપરાયું છે. પુરાણોમાં त्रिमित्राः શબ્દો આવે છે. આથી આ રાજ્ય ત્રણ ભાગોમાં વહેંચાયલું હતું. એના દશ વંશજો થયા હતા. તેઓ પશ્ચિમ માળવામાં હતા. ગુપ્ત સમયમાં એમને अवन्त्याः તરીકે ઓળખાવ્યા છે. પુષ્પમિત્ર પોતાના શૌર્ય અને શક્તિથી મોટા વિકાસને પામી શક્યો હતો. આભીરો સાથે મળીને એણે ગુપ્ત વંશના કુમારગુપ્ત સમ્રાટ્ ઉપર આક્રમણ કર્યું હતું. એમના વંશજો પ્રજાસત્તાકના અધ્યક્ષો હતા એમ માનવાનું કારણ મળે છે. વાકાટકોએ માળવા ઈ. સ. ૩૦૦ – ૩૧૦ લગભગ જીત્યું હશે.

મેકાલા

ઈ. સ. ૨૭૫ થી ૩૪૫ સુધીના ૭૦ વર્ષોમાં મેકાલામાં ૭ રાજાઓ થઈ ગયા છે. વિન્ધ્યશક્તિના સમયમાં આ પ્રદેશનો વિજય કરાયો હશે. આ દેશના રાજાઓ વિન્ધ્યશક્તિના વંશજો હતા. પુરાણો પણ આ રાજાઓના વર્ણનના ઈશારા આપે છે. એમના સમયને ચોકસ કરે છે.

કોશલ

વાકાટકો નીચેના નવ વંશજો આ દેશમાં થયા. ભાગવત સાત ગણાવે છે. તેઓને મેઘો નામ આપવામાં આવ્યું છે. તેઓ ઓરીસાના ચેદીઓ અને કલિંગોના વંશજો હશે. ખારવેલ વંશના ચેદીઓ પાસે જ્યારે સામ્રાજ્ય હતું, ત્યારે તેઓ મહામેઘ કહેવાતા હતા. વિષ્ણુપુરાણ પ્રમાણે समकोशल હતા. પુરાણો એ રાજાઓને મોટા શક્તિશાળી અને તેજસ્વી ગણાવે છે. આ મેઘો ગુપ્તાના સામ્રાજ્યમાં કૌસંબીના સૂબાઓ તરીકે દેખાય છે. એમના બે લેખો મળ્યાં છે.

નૈષધ–બીરારનો પ્રાંત

બીરારના પ્રાંત (નૈષધ)ની રાજ્યધાની વિદુર (હાલની બીદર) હતી. એ નલના વંશજોની રાજ્યધાની હતી. આ રાજાઓ શૂરા અને તેજસ્વી હતા. માત્ર વિષ્ણુપુરાણ જ એમના નવ વંશજોના નામોનો ઉલ્લેખ કરે છે. વિષ્ણુ એમને भविष्यन्ति आ मनु क्षयात् એટલે મનુના વંશજોના હાથથી નાશ પામશે એમ ગણાવ્યું છે, અથવા મનુના વંશના નાશ પછી એમનો ઉદય થશે એમ બન્ને અર્થો થઈ શકે છે. નળો ચુતુ માનવોના નાશ પછી ઉદય પામ્યા હતા. સાતવાહનોના પતન પછી જે રાજ્યો ઉદ્ભવ્યાં હતાં તેમને વિન્ધ્યશક્તિએ ભારશિવોના સેનાધ્યક્ષ તરીકે જીતી એ રાજ્યનો અંત આણ્યો હતો. નૈષધ રાજ્યોનો અંત સમુદ્રગુપ્તના વિજયોથી આવ્યો હતો. તેઓનો વંશ નવ પેઢીઓ સુધી ચાલ્યો હતો કે કેમ તે જણાયું નથી.

પુરિકો અને વાકાટકોનું સામ્રાજ્ય

પુરિકોની સત્તામાં નાગપુર, ખાનદેશ અને અમરાવતી હતા. પ્રવીર એ પુરિક અને ચાનકાનો સાર્વભૌમ હતો. માલવા નાગવંશના હાથમાં હતું. એની રાજ્યધાની માહિષ્મતી નગરી હતી. પૂર્વ અને દક્ષિણ બાગેલખંડ, શીરગુજા, બાલાઘાટ અને ચંદા મેકાલા રાજાઓના હાથમાં હતા. ઓરીસાનો પશ્ચિમ અને કલિંગ કોશલ રાજ્યને તાબે હતા.

હરિસેનની નોંધની સાથે સરખાવતાં કુન્તલ પાછળથી લેવામાં આવ્યું હતું. લાટ શરૂવાતના વાકાટક સામ્રાજ્યમાં માહિષ્મતી નીચે આવી ગયું હતું. ઈ. સ. ૫૦૦ લગભગ એ એમના કબજામાં હતું.

સિંહપુરનો યાદવ વંશ

પૂર્વ પંજાબમાં ખંડીઉ રાજ્ય "સિંહપુરવંશ" જલંધરના રાજા હતા. મહાભારતના સમયમાં આ કિલ્લેબંધી શહર જણાયેલું હતું. લાખા મંડળ (દહેરાદુન જીલ્લા)માં એમનો એક લેખ મળ્યો છે. તેમાં આ વંશના રાજાઓની સત્તા શિવાલીક પર્વત સુધી ફેલાયલી હોવાનું જણાવ્યું છે. આ લેખમાં એના બાર વંશજો પેઢી દર પેઢી થયાના અને ઈ. સ. ૨૫૦ લગભગ એની સ્થાપના થયાનો ઉલ્લેખ મળે છે. તેઓ યાદવ છે. (ક્રમશઃ)

*

श्री निम्बार्काचार्य

लेo श्रीमती कुमारी सुशीला महेता, एम्. ए. एल्एल्. बी.
[रीसर्च फॅलो, भारतीय विद्या भवन]

*

દ્વૈતાદ્વૈત અથવા ભેદાભેદને નામે ઓળખાતા પ્રાચીનમતના આદ્યસ્થાપક શ્રીનિમ્બાર્કાચાર્ય. પ્રધાન આચાર્ય તરીકે તેમનું નામ ગણાવતાં છતાં આ મત ઘણો પ્રાચીન છે એ વાત નિઃશંક છે. બ્રહ્મસૂત્રમાં[1] પણ દ્વૈતાદ્વૈતવાદ તથા તેના આચાર્ય ઔડુલોમિનું નામ જોવામાં આવે છે. છતાં સામ્પ્રદાયિક રીતે જે મતની શિક્ષા શ્રીનિમ્બાર્કે લીધી તે મતને એણે પોતાની પ્રતિભાથી અતિશય ઉજ્જ્વલ બનાવ્યો.

તેમનો જન્મ નિંબ નામના ગામમાં થયો હતો. ડૉ. ભાંડારકરના[2] અનુમાન મુજબ આ નિમ્બગામ એ હાલના બેલારી જીલ્લાનું નિમ્બપુર છે. તૈલંગ બ્રાહ્મણ કુટુમ્બમાં, વૈશાખ સુદ ત્રીજને દિવસે તેમનો જન્મ થયેલો. તેમના પિતાનું નામ જગન્નાથ તેમ જ માતાનું સરસ્વતી હતું. નિમ્બાર્ક પ્રણીત દશશ્લોકીના ટીકાકાર હરિવ્યાસદેવ આચાર્યના જન્મના તિથિ-માસ નોંધે છે, પણ વર્ષ નોંધતાં તદ્દન જ ભૂલી ગયા છે, અને એ કારણે એમની જન્મસાલ હજીસુધી માત્ર અનુમાનનો, ગણતરીનો અને વિદ્વાનોની ચર્ચાનો જ વિષય રહ્યો છે. નિમ્બાર્ક એટલે નિમ્બના સૂર્ય. નિમ્બાર્કનું મૂળ નામ ભાસ્કર હતું. એમને વિષે એવી એક દંતકથા ચાલે છે કે જ્યારે એ વૃન્દાવનમાં રહેતા હતા ત્યારે એક જૈન સંન્યાસી તેમના આશ્રમે આવ્યા. બન્ને વચ્ચે સંધ્યાકાળ થતાં સુધી ચર્ચા ચાલી. ભાસ્કરાચાર્યની અતિથિને ભોજન કરાવવાની ઇચ્છા હતી પણ જૈનોને સંધ્યા કે રાત્રીભોજન નિષિદ્ધ હોઈ એ જૈનસાધુએ ભોજન લેવા ના પાડી. ત્યારે ભાસ્કરે પોતાની યોગસિદ્ધિના પ્રભાવથી સૂર્યની ગતિ રોકી રાખી. સમીપના નીમવૃક્ષપર સૂર્ય સ્થિર થઈ ગયો. અતિથિ માટે ભોજન તૈયાર થયું અને એણે જમી લીધું, પછી જ સૂર્ય ભાસ્કરની રજા લઈ અસ્ત થયો. ત્યારથી ભાસ્કર નિમ્બાર્ક કે નિમ્બાદિત્યને નામે પ્રસિદ્ધ થયા એવી આ કથાની મતલબ છે. પણ અનુયાયી વર્ગમાં એ સૂર્યના નહીં પણ વિષ્ણુના આયુધ સુદર્શન ચક્રના અવતાર મનાય છે. સંન્યાસદીક્ષા લીધા પછી એણે નિયમાનન્દ નામ ધારણ કર્યું

આ સિવાય એમને વિષે કશુંય વધારે જાણવામાં આવ્યું નથી. શ્રદ્ધાળુવર્ગમાં નિમ્બાર્ક દ્વાપરયુગમાં થઈ ગયા હોવાની માન્યતા છે. દક્ષિણ પ્રદેશમાં ગોદાવરીનદીને કિનારે વૈદૂર્યપત્તન પાસે અરૂણાશ્રમમાં અરૂણમુનિની પત્ની શ્રીજયન્તીદેવીને પેટે તેમણે જન્મ લીધો અને ઉપનયન સસ્કાર વેળાએ સાક્ષાત્ નારદે શ્રીગોપાલમન્ત્રની દીક્ષા આપી, તેમજ શ્રી-ભૂ-લીલા સહિત શ્રીકૃષ્ણની ઉપાસનાનો ઉપદેશ કર્યો. સામ્પ્રદાયિક પરમ્પરા પ્રમાણે સનત્કુમાર આ મતના આદ્યઉપદેશક હતા. તેમની પાસેથી નારદે બ્રહ્મવિદ્યાનો ઉપદેશ ગ્રહણ કર્યો અને નારદે નિમ્બાર્કને ઉપદેશ્યો. આ માન્યતાનું મૂળ છાન્દોગ્ય ઉપનિષદ્‌ના સનત્કુમાર – નારદ આખ્યાયિકામાં છે. સનકને આ મતના

---

૧ બ્ર. સૂ. ૩. ૪, ૪૫.

૨ ડૉ. ભાંડારકર, Vaisnavism, etc. પૃ. ૬૨.

મુખ્ય ઉપદેશક તરીકે માન્ય રાખીને, આ સમ્પ્રદાય સનકાદિસમ્પ્રદાયને નામે પણ ઓળખાય છે. નિમ્બાર્ક પણ પોતાના ભાષ્યમાં સનત્કુમાર તેમ જ નારદનો ઉલ્લેખ કરે છે. ભૂમાનો અર્થ प्राण ન કરતાં તેને पुरुषोत्तम તરીકે ઘટાવતાં આચાર્ય કહે છે કે परमाचार्यैः श्रीकुमारैरस्मद्गुरवे श्रीमन्नारदायोपदिष्टो भूमात्वेव जिज्ञासितव्यः इति अत्र भूमा प्राणो न भवति किं तु श्रीपुरुषोत्तमः ।[3] છતાં કોઈ ઇતિહાસવિદ્ આ માન્યતા ન સ્વીકારે એ સ્વાભાવિક છે.

અર્વાચીન વિદ્વાનોને મતે નિમ્બાર્કાચાર્ય અગીઆરમા – બારમા શતકમાં થઈ ગયા હોવાનું માનવામાં આવે છે. ડૉ. ભાંડારકર[4] દલીલ કરે છે કે નિમ્બાર્ક રામાનુજ પછી થયા છે, કારણ તે રામાનુજના બ્રહ્માત્મૈક્ય પ્રતિપાદક સિદ્ધાન્તનું ખંડન કરે છે એમ કેશવ કાશ્મીરી કહે છે. વળી નિમ્બાર્ક પછી તેની જ આચાર્ય પરમ્પરામાં તેત્રીશમા પુરુષ, દામોદર ગોસ્વામી વિ. સં. ૧૮૦૬ – ઈ. સ. ૧૭૫૦ – માં થઈ ગયા. નિમ્બાર્ક પેઠે આનન્દતીર્થ ઉર્ફે મધ્વાચાર્યની પણ પરમ્પરા મળે છે, જેમાં તેમના તેત્રીશમા વારસ વચ્ચે આશરે છસ્સો વર્ષનું અંતર છે. એવી જ રીતે જો નિમ્બાર્ક અને તેમના તેત્રીશમા વારસ એટલે દામોદર ગોસ્વામી વચ્ચે લગભગ એટલા જ વર્ષોનું અંતર પડ્યું હોય એવું અનુમાન કરીએ અને બીજાં પંદરેક વર્ષ વધુ દામોદર ગોસ્વામીના આયુષ્યકાળ જેટલાં છૂટના મૂકીએ તો નિમ્બાર્કનું મરણ ઈ. સ. ૧૧૬૪ આસપાસ થયું હોય એમ ધારી શકાય.

અલબત્ત આવી ગણતરી વિશ્વસનીય તો ન જ ગણાય. વળી આ વિચારયુક્તિમાં બીજો પણ એક વાંધો છે. શ્રીવલ્લભાચાર્યના ચરિત્રલેખક ગદાધર, નિમ્બાર્કપરમ્પરાના ત્રીશમા પુરૂષ કેશવ કાશ્મીરી વલ્લભાચાર્યના વખતમાં વિદ્યમાન હતા એમ કહે છે. એટલે કે જો તેત્રીશમા પુરૂષ વિ. સ. ૧૮૦૬ માં હોય તો ત્રીશમા લગભગ ૧૭૪૦ માં હોવા જોઈએ. પણ ગદાધરના કહેવા પ્રમાણે તો ૧૫૪૦ ની આસપાસ થઈ ગયા. એટલે કાં તો આ પરમ્પરાનો ક્રમ બરાબર ન હોય અથવા તો ૩૦, ૩૩ વગેરે આંકડાઓ ભૂલ ભરેલા હોય. કદાચ એમ પણ બને કે વલ્લભાચાર્યના સમકાલીન અને નિમ્બાર્કપરમ્પરાના કેશવ કાશ્મીરી ભિન્ન વ્યક્તિઓ જ હોય!

નિમ્બાર્કના સમય વિષે એક બીજો પણ મત પ્રચલિત છે, અને એ પંડિત કિશોરદાસનો. પુરૂષોત્તમાચાર્યની દશશ્લોકીની ટીકાની ભૂમિકામાં શ્રીકિશોરદાસ કહે છે કે નિમ્બાર્કાચાર્ય ગૌડપદાચાર્યના સમકાલીન હતા. એમને મતે નિમ્બાર્કાચાર્યની પરમ્પરાના તેરમા, દેવાચાર્ય વિ. સં. ૧૧૧૨ માં જન્મ્યા હતા. એટલે નિમ્બાર્ક દેવાચાર્ય કરતાં ઘણા વહેલા જન્મ્યા હોવા જોઈએ. ઉપરાંત નિમ્બાર્કે કે એના શિષ્ય, શ્રીનિવાસદાસે શંકરાચાર્યના માયાવાદનું ખાસ ખંડન કર્યું નથી, પણ શ્રીનિવાસદાસના પુત્ર પુરૂષોત્તમાચાર્યે માયાવાદનું ખંડન કર્યું છે. જો નિમ્બાર્ક રામાનુજ પછી થયા હોત તો તે પણ રામાનુજ પેઠે જ માયાવાદનું ખંડન કરત!

---

૩ वेदान्तपारिजातसौरभम् – બ્ર. સૂ. ૧-૩-૮ પર ભાષ્ય.

૪ ડૉ. ભાંડારકર, Vaiṣṇavism, S'aivism, etc. પૃ. ૬૨.

પણ નિમ્બાર્કની રાધા-પૂજા શ્રીકિશોરદાસની વિરૂદ્ધ મત આપવા આપણને પ્રેરે છે. રાધાના નામનો ઉલ્લેખ સુદ્ધાં હરિવંશ, વિષ્ણુપુરાણ કે ભાગવતપુરાણમાં મળતો નથી, તો પછી રાધાકૃષ્ણના પૂજક નિમ્બાર્કને પાંચમા–છઠ્ઠા શતક જેટલા વહેલા કાળમાં શા આધારે મૂકી શકાય? ગમે તેમ પણ, નિમ્બાર્ક રામાનુજ પછી થયા છે એ વાત યોગ્ય લાગે છે.

કેટલાક નિમ્બાર્કના મૂળ નામ ભાસ્કર પરથી ભેદાભેદવાદના આદ્યપ્રવર્તક અને બ્રહ્મસૂત્રના **ભેદાભેદ ભાષ્ય**ના કર્તા ભાસ્કરાચાર્ય એમ અનુમાન કરે છે. પણ ભાસ્કરાચાર્ય રાધાપૂજક નથી. તેમજ જો ભાસ્કરાચાર્ય અને નિમ્બાર્ક એક જ હોય તો **ભેદાભેદભાષ્ય** જેવો ગ્રન્થ રચી, બ્રહ્મસૂત્ર પરજ નાની શી વૃત્તિ લખવાની અનાવશ્યક પ્રવૃત્તિ શા માટે કરે?

નિમ્બાર્કાચાર્યના ગ્રન્થોમાં માત્ર **બ્રહ્મસૂત્રવૃત્તિ** કે **વેદાન્તપારિજાતસૌરભ** અને **દશશ્લોકી** અથવા **સિદ્ધાન્તરત્ન** આ બેજ અત્યારે મળે છે. પોતાના મુખ્ય સિદ્ધાન્તોનું સરસ નિરૂપણ માત્ર દશ જ શ્લોકમાં નિમ્બાર્કે કર્યું છે. આ ઉપરાંત, **કૃષ્ણરાજસ્તવ, ગુરૂપરમ્પરા, વેદાન્તતત્ત્વબોધ, વેદાન્તસિદ્ધાન્તપ્રદીપ, સ્વધર્માવબોધ** અને **ઐતિહ્યતત્ત્વસિદ્ધાન્ત**ના નિમ્બાર્ક કર્તા હોવાનુ કહેવાય છે. પણ આમાંની એકેય કૃતિ હાલ ઉપલબ્ધ નથી. વળી સંપ્રદાયના અન્ય પુરૂષોએ અનેક ગ્રન્થો રચ્યા છે. દાખલા તરીકે, નિમ્બાર્કના શિષ્ય શ્રીનિવાસે **વેદાન્તપારિજાતસૌરભ** પર ભાષ્ય લખ્યું છે, તેમ જ શ્રીનિવાસના શિષ્ય પુરૂષોત્તમાચાર્યે દશશ્લોકી પર **વેદાન્તરત્નમંજુષા** નામની ટીકા લખી છે. હરિવ્યાસદેવની **લઘુવેદાન્તરત્નમંજુષા** પણ ઉપલબ્ધ છે. ઉપરાંત, દેવાચાર્યનું **સિદ્ધાન્તજાહ્નવી**, તે પર સુંદરભટ્ટની સેતુ નામે ટીકા, તેમ જ પુરૂષોત્તમપ્રસાદનું **શ્રુત્યન્તસુરદ્રુમ** પણ મળે છે. બીજી અનેક સામ્પ્રદાયિક કૃતિઓ હજી અપ્રસિદ્ધ છે. નિમ્બાર્કમતના ગ્રન્થોમાં એક વસ્તુ ખાસ ધ્યાન ખેંચે છે કે એ મતના કોઈ પણ આચાર્યે ઇતરમતોનું ખંડન કર્યું નથી. માત્ર દેવાચાર્યના ગ્રન્થામાં શાંકરમત પર આક્ષેપ નજરે પડે છે.

દ્વૈતાદ્વૈત અથવા ભેદાભેદના બે પ્રકાર છે. અભેદપ્રતિપાદક શ્રુતિઓની માફક ભેદપ્રતિપાદક શ્રુતિઓ પણ છે. શંકરાચાર્ય માને છે કે અભેદ એ જ સત્ય છે, પરમાર્થ છે; જ્યારે ભેદ માયિક છે, દેખીતો છે; એટલે વસ્તુતઃ ભેદ છે જ નહીં. પણ આ મતનું સમર્થન કરતાં શંકરાચાર્યને ભેદપ્રતિપાદક શ્રુતિઓના અર્થને ઠીક પ્રમાણમાં મરોડવો પડે છે. કારણ કે કાર્ય તથા કારણનો ભેદ તથા અભેદ આપણે પ્રત્યક્ષ જોઇએ છીએ. બ્રહ્મ, જગતનું કારણ, કાર્ય જગતમાં ગુંથાએલું માલમ પડે છે. બન્ને સત્ય છે. નામરૂપ ઉપાધિને લીધે ભેદ અને એ ઉપાધિઓને ન ગણકારીએ તો અભેદ. આ સિદ્ધાન્ત શ્રીભાસ્કરભટ્ટે પ્રતિપાદન કર્યો છે. મતલબ કે ભાસ્કરાચાર્ય **ઔપાધિક ભેદાભેદ**માં માને છે. આ ભેદાભેદનો એક પ્રકાર. ભાસ્કરાચાર્ય નિમ્બાર્કના લગભગ સમકાલીન હતા. શંકરાચાર્ય પર અંગત આક્ષેપો કર્યા સિવાય તેમનું માયાવાદનું ખંડન ઘણું સરળ અને ચમત્કારિક છે.

ભેદાભેદનો બીજો પ્રકાર શ્રીનિમ્બાર્કાચાર્યનો **સ્વાભાવિક ભેદાભેદવાદ.** જડ જગત, જીવ, અને બ્રહ્મ વસ્તુતઃ ભિન્ન છે, છતાં જગત તેમજ જીવનાં સ્વરૂપ, ઉત્પત્તિ સ્થિતિ, લય, પ્રવૃત્તિ સર્વથા ઈશ્વર પર જ અવલંબે છે. "ઔપાધિક ભેદાભેદમાં ઉપાધિવડે પરમેશ્વરનો ભેદ જણાવવામાં ભેદનું માયિકરૂપ જાણ્યેઅજાણ્યે ઉભું થાય છે અને માયાવાદ બળાત્કારથી સ્વીકારવો પડે છે." પણ સ્વાભાવિક ભેદાભેદમાં બ્રહ્મનો જગત અને જીવ અથવા ચેતન અને અચેતનથી સ્પષ્ટભેદ હોવાથી માયાવાદ બહુ સરળતાથી તેમ જ સહેલાઈથી અવગણી શકાય છે. બ્રહ્મ એ ચેતન અને અચેતન બન્નેમાં રહેલું–છૂપાયલું તત્ત્વ છે, "એ સર્વનું નિયામક છે, સર્વમાં વ્યાપક છે, સ્વતંત્ર અસ્તિત્વવાળું છે, સર્વનો આધાર છે; અને જડ અને અજડ તે બ્રહ્મવડે નિયમમાં રહે છે. બ્રહ્મ વડે વ્યાપ્ત છે, બ્રહ્મને અધીન છે અને બ્રહ્મમાં આધેયરૂપે રહે છે. બ્રહ્મરૂપ વસ્તુ આ પ્રકારે ચેતન અને અચેતન વર્ગના સર્વભેદોને પોતાનાં પેટમાં સમાવી રહેલું છે."[૫]

અચિન્ત્ય, અનન્ત શક્તિવાળા બ્રહ્મની ઇચ્છા–સંકલ્પમાત્રથી આ જગતની ઉત્પત્તિ થાય છે. બ્રહ્મસૂત્રમાં કહેલું બ્રહ્મ જગતનું અભિન્નનિમિત્તોપાદાન કારણ છે એ મત નિમ્બાર્કને સર્વથા માન્ય છે. એ કહે છે કે "સૂક્ષ્મ અવસ્થાને પ્રાપ્ત થએલા અને પોતપોતાની સ્વાભાવિક શક્તિ જેમાં રહી છે એવા ચેતન અને અચેતન પદાર્થોને બ્રહ્મ પોતાની શક્તિથી પ્રકટ કરે છે માટે એ એનું ઉપાદાન કારણ છે અને પોતપોતાના અનાદિકર્મસંસ્કારને વશ થએલ તથા સ્મૃતિ અત્યન્ત સંકુચિત હોવાથી જ્ઞાન માટે અયોગ્ય જીવોને કર્મના ફળ ભોગવવા યોગ્ય જ્ઞાન આપીને, તે તે કર્મના ફળરૂપ તે તે ભોગના સાધનો સાથે જીવોનો સંયોગ ઈશ્વર કરી આપે છે માટે એ નિમિત્ત કારણ છે."[૬]

જીવનું સ્વરૂપ વર્ણવતાં એ કહે છે કે "જીવ જ્ઞાનસ્વરૂપ, સ્વયંજ્યોતિ, ચૈતન્યરૂપ, અણુ, જ્ઞાતા, કર્તા, ભોક્તા હરિને અધીન, શરીરના સંયોગવિયોગયોગ્ય અને જુદા જુદા દેહોમાં ભિન્ન છે. આ જીવનું સ્વરૂપ અનાદિ માયાથી વીંટાયેલું છે એટલે એ ઓળખી શકાતું નથી. પણ કેટલાક ભક્તો ભગવત્કૃપાથી એને જાણી શકે છે. જીવોના ત્રણ ભેદ છે. બદ્ધ, મુક્ત, અને બદ્ધમુક્ત"[૭].

જીવની આ ત્રણ શ્રેણિનો વિસ્તાર પુરુષોત્તમાચાર્યે વેદાન્તરત્નમંજુષામાં કર્યો છે. બદ્ધના બે પ્રકાર હોવાનું ટીકાકાર કહે છે, એક બુભુક્ષુ એટલે ભોગની ઇચ્છા રાખનાર, બીજો મુમુક્ષુ એટલે મોક્ષની ઇચ્છા રાખનાર. મુમુક્ષુના બે ભેદ છે, એક વર્ગ ભગવદ્ભાવાપત્તિરૂપ મોક્ષની ઇચ્છા રાખે છે, જ્યારે બીજો વર્ગ નિજસ્વરૂપપ્રાપ્તિની આકાંક્ષા રાખે છે. વળી બુભુક્ષુ જીવો પણ બે પ્રકારના હોય છે; જેઓ ભવિષ્યમાં શ્રેય મેળવવા ઇચ્છે છે અને તે માટે પ્રયત્ન કરે છે; વળી બીજા કેટલાક નિત્યસંસારી અવ-

---

૫ ન. દે. મહેતા હિન્દતત્ત્વજ્ઞાનનો ઇતિહાસ ઉત્તરાર્ધ, પૃ. ૧૮૮–૧૮૯.

૬ सिद्धान्तरत्नमंजुषा. શ્લો. ૧.

૭ दशश्लोकी. શ્લો. ૧. ૨.

ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम् ।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः ॥
अनादिमायापरियुक्तरूपं त्वेनं विदुर्वै भगवत्प्रसादात् ।
मुक्तं च बद्धं किल बद्धमुक्तं प्रभेदबाहुल्यमथैतु बोध्यम् ॥

સ્થામાં જ રહે છે. તેમની આંખો દુન્યવી આનંદની પર કંઈ અલૌકિક આનંદ છે એવું જોઈ શકતી જ નથી અને તુચ્છવિષયવાસનાઓમાં કીડાની જેમ આનંદ માણતાં તેઓ સદાય જન્મમરણરૂપ સંસારની ઘટમાળમાં આંટા માર્યા કરે છે. બીજા, મુક્ત જીવો, જે બે પ્રકારના છે: મુક્ત અને નિત્યમુક્ત. ભગવાનની કૃપાથી જે જીવો સંસારમાંથી મુક્ત થાય છે એ મુક્ત જીવો; અને ભગવાનનાં અલંકારો, દાખલા તરીકે, કુંડલ, કિરિટ વિગેરે તેમજ ભગવાનના પાર્ષદો જેવા કે નારદ, ગરૂડ, વિષ્વક્સેન એ બધા નિત્યમુક્ત જીવો છે. મુક્ત જીવોમાંથી કેટલાક ભગવદ્‌ભાવ પામે છે જ્યારે બીજા પોતાના સ્વરૂપાનુભવમાં જ સંતોષ માને છે.

જડની વ્યવસ્થા નિમ્બાર્કે **દશશ્લોકી**ના ત્રીજા શ્લોકમાં આપી છે. "અચેતન જડ ત્રણ પ્રકારનું છે: (૧) અપ્રાકૃત – પ્રકૃતિમાંથી ન ઉત્પન્ન થએલું, (૨) પ્રાકૃત – પ્રકૃતિમાંથી ઉત્પન્ન થએલુ અને (૩) કાળસ્વરૂપ. પ્રાકૃતને માયા અથવા પ્રધાન પણ કહેવામાં આવે છે. અને તેમાં શુક્લ. લોહિત અને કૃષ્ણ અને સત્ત્વ, રજસ્ અને તમસ્ એવા ત્રણ ભેદો છે."[૮]

ઉપર્યુક્ત પ્રાકૃત અચેતનમાં સમસ્ત જડસૃષ્ટિનો સમાવેશ થાય છે. પુરાણોના સાંખ્ય તેમજ ભૂગોળના વર્ણનોને જ આ જડસૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ, વિસ્તાર, લય વિગેરે અનુસરે છે. કાળ અચેતનનો વિસ્તાર વગેરે પણ પુરાણોની પેઠે જ વર્ણવ્યો છે. અને બાકી રહેલા ત્રીજા અચેતન એટલે અપ્રાકૃત અચેતન વિષે ટીકાકાર કહે છે કે ભગવાનના દિવ્ય ધામમાં નગર, રસ્તા, ગૃહ, આયુધ વિગેરે જે વસ્તુઓ છે તેનો આ પ્રકારમાં સમાવેશ થાય છે. તે સર્વેની ઉત્પત્તિ પ્રકૃતિમાંથી નથી તેમ જ તેમનાં સ્થિતિ, લય વિગેરે પ્રકૃતિના નિયમોથી પર છે. તે જ્યોતિઃ સ્વરૂપ છે અને ભગવાન્ અને નિત્યમુક્ત જીવોના ઉપભોગાર્થે જ તેમનું અસ્તિત્વ છે. તે દિવ્ય છે, અનાદિ છે, નિત્ય છે; તેમની ઉત્પત્તિ ભગવાનના સંકલ્પને જ વશ છે. સૃષ્ટિના પ્રલય વખતે આ જડસૃષ્ટિનો પણ બ્રહ્મમાં જ લય થાય છે.

પરમાત્માનું સ્વરૂપ: જગતના કારણભૂત બ્રહ્મની સ્તુતિ કરતાં નિમ્બાર્ક કહે છે કે "સ્વતઃ જેમાં કોઈ પણ દોષ નથી, જે સર્વકલ્યાણગુણોના રાશિ છે, એવા વ્યૂહોના અંગી, વરેણ્ય, કમલનેત્ર, પરબ્રહ્મ, હરિ, શ્રીકૃષ્ણનુ અમે ધ્યાન ધરીએ છીએ."[૯]

બ્રહ્મ સર્વશક્તિમાન્ સગુણભાવવાન્ તથા નિર્વિકાર હોવા છતાં જગત રૂપે પરિણમે છે પરંતુ તે નિર્ગુણ, જગદતીત જ રહે છે. પ્રલય વખતે જગત બ્રહ્મમાં સમેટાઈ જાય છે છતાં તેમાં કંઈ વિકાર થતો નથી. આ રીતે ગુણ અને ગુણિન્ કિંવા અંશ તથા અંશિન્‌નો અભેદ છે. ટુંકાણમાં, સ્વરૂપતઃ નિર્ગુણ બ્રહ્મ સૃષ્ટિકારણરૂપે સગુણ બને છે અને આ સગુણ બ્રહ્મ એ જ શ્રીકૃષ્ણ.

---

૮ **दशश्लोकी**. श्लो. ३

अप्राकृतं प्राकृतरूपकं च कालस्वरूपं तदचेतनं मतम् ।
मायाप्रधानादिपदप्रवाच्यं शुक्लादिभेदाश्च समेऽपि तत्र ॥

९ **दशश्लोकी**. श्लो. ४.

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम् ।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ॥

રામાનુજમતની માફક આ સંપ્રદાયમાં પણ ભગવાનને સર્વકલ્યાણગુણોના રાશિ કહ્યા છે. કલ્યાણગુણોમાં જ્ઞાન, શક્તિ, બલ, ઐશ્વર્ય, વીર્ય, તેજ, સૌશીલ્ય, વાત્સલ્ય, આર્જવ, સૌહાર્દ, સ્થૈર્ય, સામ્ય, કારુણ્ય, ગાંભીર્ય, ઔદાર્ય, શૌર્ય, પરાક્રમ વિગેરે અનન્ત ગુણો નિરતિશયરૂપમાં ગણાવ્યા છે. આ ગુણો અપ્રાકૃત છે, દિવ્ય છે. કૃષ્ણ વ્યૂહોના અંગી છે એટલે કે વ્યૂહો એનાં અંગો કિંવા મૂર્તિઓ છે. વાસુદેવ, સંકર્ષણ, પ્રદ્યુમ્ન અને અનિરુદ્ધ એ ચાર વ્યૂહો ઉપરાંત કેશવ, ગોવિંદ વિગેરે બાર નામો તેમ જ મત્સ્ય, કૂર્મ વિગેરે અવતારો પણ વ્યૂહમાં જ ગણ્યા છે. અવતાર ત્રણ જાતના છે: ગુણાવતાર (બ્રહ્મા, રૂદ્ર, વિગેરે); પુરૂષાવતાર (સમષ્ટિ વ્યષ્ટિના અંતર્યામીઓ); અને લીલાવતાર (કૂર્મ, મત્સ્ય, વિગેરે). લીલાવતાર બે જાતના છે: આવેશાવતાર એટલે કે ભગવાનનો કોઈ ભક્તના શરીરમાં પ્રવેશ (નર, નારાયણ કપિલ વિગેરે); અને સ્વરૂપાવતાર. સ્વરૂપાવતાર અંશાવતાર હોય કાં તો પૂર્ણાવતાર હોય. નૃસિંહ, દાશરથી રામ, અને કૃષ્ણ એ પૂર્ણાવતારના દષ્ટાન્તો છે, જ્યારે ઇતર અવતારોને અંશાવતારો માન્યા છે.

વળી કૃષ્ણ સર્વદોષરહિત છે, એમ પણ કહ્યું છે. દોષ એટલે પાતંજલયોગમાં વર્ણવેલા, જીવને અવરોધતાં તત્વો: ક્લેશ, કર્મ, વિપાક અને આશય.

નિમ્બાર્કમતમાં કૃષ્ણ એકલા ઉપાસ્ય દેવ નથી. "આ પરમદેવ કૃષ્ણના ડાબા અંગમાં આનંદથી વિરાજતી દેવી વૃષભાનુજા – રાધાનું અમે સ્મરણ કરીએ છીએ, જે કૃષ્ણનાં જેવાં જ સૌંદર્યવાળી, હજારો સખીઓથી વીંટાયેલી અને સર્વકામનાઓને પૂર્ણ કરનારી છે."[10]

પુરુષોત્તમાચાર્ય આ શ્લોકની ટીકામાં રાધા સાથે લક્ષ્મી તેમ જ સત્યભામા બંનેનું સૂચન છે એમ ઘટાવવા માગે છે. વૈષ્ણવસંપ્રદાયમાં રાધાપૂજાનો પ્રચાર નિમ્બાર્કથી જ થયો છે. તે પહેલાં કૃષ્ણની પત્ની તરીકે લક્ષ્મીનો ઉલ્લેખ થતો, પણ રાધાને કૃષ્ણની વલ્લભાનું સ્થાન તો નિમ્બાર્કે જ આપ્યું. છતાં પુષ્ટિ સમ્પ્રદાયમાં જે શૃઙ્ગારભક્તિ નજરે ચઢે છે તે અહીં જણાતી નથી. આમાં તો માત્ર પ્રેમભાવે ઉપાસનાનો જ આદર્શ છે અને કૃષ્ણ સાથે રાધાનો યોગ જ નિમ્બાર્કને પાંચમા – છટ્ઠા શતક જેટલા જૂના કાળમાં મૂકવાની વિરૂદ્ધ જાય છે, એ આપણે જોયું.

કૃષ્ણની રાધાસહિત અને ટીકાકારના મતે સત્યભામા – રૂક્મિણી સહિત ઉપાસના એ જ મનુષ્ય જીવનાનું પરમધ્યેય. નિમ્બાર્ક ઉપદેશે છે કે "મનુષ્યોએ અજ્ઞાનરૂપી અન્ધકારના સંબંધનો નાશ કરવા માટે હંમેશા ઉપર્યુક્ત પુરુષોત્તમની ઉપાસના કરવી જોઈએ." અને આ માર્ગની નિશ્ચિતતાની ખાત્રી આપતાં એ કહે છે કે "સનન્દન વિગેરે મહામુનિઓએ જ સર્વતત્ત્વોના સાક્ષી નારદને પરમ પ્રાપ્તિ અર્થે આ દિશા સૂઝાડી હતી."[11]

આ શ્લોકમાં સમ્પ્રદાયની પરમ્પરા વિવક્ષિત છે. છાન્દોગ્યઉપનિષદ્‌ની જેમ સનત્કુમાર પાસેથી નારદ બ્રહ્મવિદ્યા શીખે છે અને ટીકાકાર ઉમેરે છે કે નારદે જ નિમ્બાર્કને એનો ઉપદેશ કરેલો. મહાભારતના નારાયણીય પર્વમાં નારાયણ નારદને પાઞ્ચરાત્ર

---

१० **दशश्लोकी**. श्लो. ५.

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥

११ **दशश्लोकी**. श्लो ६.

उपासनीयं नितरां जनैः सदा प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं श्रीनारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे ॥

સિદ્ધાન્તનો ઉપદેશ કરે છે. તદનુસાર, ટીકાકાર નારદને પાઞ્ચરાત્ર પ્રવર્તક કહે છે, કારણ સ્વયં ભગવાને જ એ કામ નારદને સોંપ્યું હતું.

વળી પોતાના ભેદાભેદવાદની વિશિષ્ટતા બતાવતાં, નિમ્બાર્ક બ્રહ્માત્મૈક્યની યથાર્થતા નીચે પ્રમાણે સિદ્ધ કરે છેઃ–

"શ્રુતિ અને સ્મૃતિ પ્રમાણે સર્વ વસ્તુઓ બ્રહ્માત્મક હોવાથી બ્રહ્મ જ સર્વ છે; એ વિજ્ઞાન યથાર્થ છે. વેદ જાણનારાઓનો પણ એ જ મત છે. વળી સર્વ પદાર્થોનું ત્રિરૂપપણું પણ શ્રુતિ અને સૂત્રથી સિદ્ધ છે, માટે એ પણ યથાર્થ છે."[१२]

બ્રહ્મ સર્વે વસ્તુમાં અન્તર્ગત છે, વ્યાપક છે, નિયન્તા છે, દરેક વસ્તુ જે રીતે છે તેનું કારણ પણ બ્રહ્મ છે, તેનો નાશ પણ બ્રહ્મને આધીન છે અને એટલે જ શ્રુતિ કહે છે કે **सर्वं खलु इदं ब्रह्म**। છતાં પણ ભોક્તા, ભોગ્ય અને નિયન્તા, એ ત્રણ પદાર્થો વસ્તુતઃ જુદા છે; આપણે તેમને જુદા જોઈએ છીએ; ઓળખીએ છીએ. આ હકીકત સિદ્ધ કરતી શ્રુતિઓ મળે છે, તેમ જ બાદરાયણના સૂત્રો પણ એ જ વસ્તુ ઘટાવે છે. માટે અભેદ સત્ય છે તેમ ભેદ પણ સત્ય છે. માત્ર અભેદની જ સત્યતા માની ભેદનાં માયિત્વ કે કાલ્પિનિકતા સ્વીકારવાની આવશ્યક્તા નિમ્બાર્કને નથી લાગતી. જગત અને તેની પર રહેલાં પરમાર્થતત્ત્વને વાસ્તવદર્શીની આંખે જોઈ, તે બન્ને જ ખરાં છે એમ આચાર્ય કહે છે.

બ્રહ્મારૂદ્ર જેવા દેવોને દુર્લભ પરમદેવ માત્ર અંતઃકરણની ભક્તિ અને પ્રપત્તિથી સુપ્રાપ્ય છે. ભક્તિ સિવાય બીજી ગતિ પણ નથી. "બ્રહ્મા અને શિવથી વન્દિત કૃષ્ણના પદારવિન્દ સિવાય બીજો એકેય મોક્ષનો માર્ગ નથી. ભક્તની ઇચ્છાને વશવર્તી કૃષ્ણ ધ્યાનસુલભ રૂપ ધારણ કરે છે, છતાં એની શક્તિ અચિન્ત્ય છે, એનું તત્ત્વ દુર્જ્ઞેય છે."[१३]

અચિન્ત્યશક્તિના અધિષ્ઠાતા દેવ ભક્ત ખાતર ગમે તે રૂપ ધારણ કરે છે તે તેનાં વાત્સલ્ય, કરુણા, દયા વિગેરે ગુણોને લીધે. માત્ર ભક્તિ, નિર્મલ શુદ્ધ હૃદયની ભક્તિ જ પરમાત્મપ્રાપ્તિ માટે આવશ્યક છે. ટીકાકાર આ ભક્તિ અને પરમપ્રાસન્ન્યના પ્રયત્નોમાં–દરેક સમ્પ્રદાયની રીત અનુસાર, ગુરુસમ્બન્ધને પણ સ્થાન આપે છે. ગુરુને શરણે જઈ, તેની પાસેથી ધ્યેયપ્રાપ્ત્યર્થે જરૂરી જ્ઞાન લેવું એ જ પ્રભુ પામવાનો સહેલો ઉપાય છે.

આવી ભક્તિની વ્યાખ્યા કરતાં આચાર્ય કહે છેઃ "જેનામાં દૈન્ય વિગેરે ગુણો હોય છે તેના પર પરમાત્માની કૃપા થાય છે, અને એ કૃપાથી જ અનન્ય અધિપતિ મહાત્માની પ્રેમલક્ષણા ભક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે. એ ભક્તિ દ્વિવિધ છે, એક સાધનરૂપ, બીજી પરા અથવા ફળરૂપ."[१४]

---

१२ दशश्लोकी. श्लो. ७.

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः ।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं त्रिरूपतापि श्रुतिसूत्रसाधिता ॥

११ दशश्लोकी. श्लो. ८.

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात् ।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहादचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात् ॥

१४ दशश्लोकी. श्लो. ९.

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा ।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधनरूपिकापरा ॥

ભગભગ દરેક સમ્પ્રદાયની માફક આ સમ્પ્રદાયમાં પણ ભક્તિના બે પ્રકાર ગણાવ્યા છે અને એ ભક્તિ માત્ર ભગવત્કૃપાથી જ સંભવે છે. દૈન્યગુણશાલી એટલે કે વિનમ્ર મનુષ્યને ભક્તિયોગ્ય ગણી ભગવાન જ પોતે–અનુગ્રહથી કહો કે દયાથી કહો–ચૂંટી કાઢે છે. પરમાત્માના આ વરણની વાત તો છેક ઉપનિષદ્કાળ જેટલી જૂની છે. એટલે સાધનોના ગર્વનો ત્યાગ અને શરણાગતિ એ જ પ્રપત્તિ. રામાનુજસમ્પ્રદાયના જ પ્રપત્તિના છ પ્રકાર[15] અહીં ગણાવ્યા છે. છતાં આ ભક્તિ–પ્રપત્તિમાં કંઈ ફળની અભિલાષા રાખવાનું નથી કહ્યું. નિષ્કામ ભગવત્સેવા એ જ ભક્તિ. અનેક જન્મોના સંચિત પુણ્યના ફળરૂપ ભક્તિને સાધનરૂપ ભક્તિ કહે છે. સાધનરૂપ ભક્તિ બે પ્રકારની છે, વૈદિક અને પૌરાણિક. વેદમાં ઉપદેશેલી મધુવિદ્યા, શાણ્ડિલ્યવિદ્યા આદિ વિદ્યાઓના અનુષ્ઠાનરૂપ ભક્તિને વૈદિક ભક્તિને નામે ઓળખાવવામાં આવે છે. બ્રહ્મજીજ્ઞાસાધિકારી એક પછી એક એમ નીચે ગણાવેલી કોટિમાંથી પસાર થાય છે. (૧) वेदाध्ययन, (२) कर्मफलविचार, (३) कर्ममीमांसा, (४) कर्मनिरादर, (५) गुणश्रवण, (६) सद्गुरुश्रवण, (७) भक्ति, (८) प्रसाद અથવા दर्शन. એટલે જીજ્ઞાસુને વેદાધ્યયન પછી કર્મફલના વિચારનો આરંભ શરૂ થાય છે. ધર્મ જાણવાની આકાંક્ષા રાખતો એ મનુષ્ય કર્મની મીમાંસા કરે છે, અને કર્મફળ અનશ્વર માની તે જ કર્મનો નિરાદર કરવા પ્રેરાય છે, ત્યારે જ મુમુક્ષુ ભગવાનના ગુણના શ્રવણકીર્તન પ્રત્યે આકર્ષાય છે અને ભગવાનની પ્રસન્નતા કે એના દર્શન કરવાની ઇચ્છાથી સદ્ગુરુને શરણે જાય છે ને ભક્તિપૂર્વક અચિન્ત્યશક્તિ, બ્રહ્મશબ્દ વાચ્ય પુરૂષોત્તમનું જ્ઞાન મેળવે છે. આ ભક્તિના ઉદય પછી જ બ્રહ્મમીમાંસાનો અધિકાર પ્રાપ્ત થાય છે. વેદનો અભ્યાસ શૂદ્રોને નિષિદ્ધ હોઈ, સ્વાભાવિક રીતે જ આ પ્રકારની ભક્તિનો અધિકાર ઉપલા ત્રણ વર્ણોનો જ છે. જયારે બીજા પ્રકારની પૌરાણિક, એટલે કે પુરાણોમાં વર્ણવ્યા પ્રમાણે ભગવાનની આરાધના શૂદ્રોને સાધ્ય છે.

આથી ભિન્ન ફળરૂપ ભક્તિ ભગવાનના અનુગ્રહનું પરિણામ છે. શાસ્ત્રોક્ત ઈશ્વરના આદેશને અનુસરતા મનુષ્ય પર ઈશ્વર સ્વેચ્છાએ જ પોતાની કૃપાનો કળશ ઢોળે છે, અને સહજ આત્મજ્ઞાન મેળવી ઈશ્વરનો દાસ–ભક્ત બની રહે છે જેવી રીતે સામાન્ય મનુષ્ય સદાય પોતાનું ચિત્ત દુન્યવી વસ્તુઓમાં પરોવેલું રાખે છે. તેવી રીતે ભક્તનું ચિત્ત પળેપળે અને ક્ષણેક્ષણે ઈશ્વરનાં ગુણરૂપ આદિનું જ ચિંતન કર્યા કરે છે. બીજી દરેક વસ્તુ તેને તુચ્છ અને અસાર લાગે છે. આ ફલરૂપ પ્રેમલક્ષણા ભક્તિનું લક્ષણ.

નિમ્બાર્કમતે નિમ્નોક્ત પાંચ જ્ઞેય અર્થો છે. "ઉપાસ્યનું રૂપ, ઉપાસકનું રૂપ, કૃપાનું ફળ, ભક્તિનું રૂપ અને ભગવત્પ્રાપ્તિમાં વિરોધી ભાવોનું સ્વરૂપ."[16]

ઉપાસ્ય, ઉપાસક અને ભક્તિનાં રૂપ તો જોયાં. હવે બાકી રહ્યાં કૃપાનું ફળ અર્થાત્ મોક્ષ તેમ જ વિરોધીભાવોનું સ્વરૂપ.

---

१५ आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासः गोप्तृत्ववरणं तथा ।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ॥

१६ दशश्लोकी. श्लो. १०.
उपास्यरूपं तदुपासकस्य च कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम् ।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्तेर्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभिः ॥

નિમ્બાર્કસમ્પ્રદાયમાં મોક્ષ એટલે સર્વકર્મનો નાશ અને અવિદ્યાનિવૃત્તિ. પછી સતત ભગવાનના સ્વરૂપનો અનુભવ. આ સમ્પ્રદાયમાં ઈશ્વર સાથે ઐક્યનો સંભવ જ નથી. આ સ્વરૂપાનુભવ એટલે જ ભગવદ્ભાવાપત્તિ, સાયુજ્ય અથવા સામ્યરૂપ મુક્તિ.

ભગવત્પ્રાપ્તિના વિરોધી ભાવોમાં ટીકાકારે નીચે નોંધેલા ગણાવ્યા છે. દેહ, ઇન્દ્રિયો, મન, બુદ્ધિ ઇત્યાદિ અનાત્માને આત્મા તરીકે માનવાં; શ્રુતિ, સ્મૃતિ, વિગેરેમાં કહેલા ભગવાનના આદેશોનું ઉલ્લંઘન; અસત્શાસ્ત્રની અભિલાષા, અન્ય દેવોનું અર્ચન, પૂજન, વંદન, વિ૦; પોતે સ્વતંત્ર છે એવી ભાવના, અહંકાર, મમત્વ, ગુરુમાં અવિશ્વાસ વિગેરે. આ બધી મનુષ્યસ્વભાવની દુષ્ટવૃત્તિઓ શત્રુવત્ વર્તી, તેના આધ્યાત્મિક વિકાસને અવરોધકર્તા નીવડે છે, અને પરમપ્રાપ્તવ્ય પ્રત્યે દોરનાર માર્ગને રૂંધી લે છે.

નિમ્બાર્કમતને રામાનુજના મત સાથે સરખાવતાં ઘણું સામ્ય માલમ પડે છે. બે મતો વચ્ચે તફાવત માત્ર એટલો જ છે કે રામાનુજની ભક્તિ ધ્યાનપ્રધાન – ઉપાસનાપ્રધાન છે. જ્યારે નિમ્બાર્કની ભક્તિમાં – ઉપાસનામાં પ્રેમનો અંશ નજરે પડે છે. રામાનુજ કૃષ્ણ સહિત શ્રી-ભૂ-લીલાને પૂજે છે, જ્યારે નિમ્બાર્ક રાધાકૃષ્ણની ભક્તિ ઉપદેશે છે.

નિમ્બાર્કનો જન્મ જો કે દક્ષિણમાં થયો હતો છતાં તેમણે પોતાનો વાસ મોટે ભાગે મથુરા – વૃન્દાવનમાં રાખ્યો હતો. અને તેમની રાધાપૂજા તેમના વૃન્દાવનવાસનેજ આભારી છે. નિમ્બાર્કસમ્પ્રદાયની ગાદીઓ યમુના નદીને કિનારે ધ્રુવ ક્ષેત્રમાં છે. તે મતના અનુયાયીઓ પણ મોટેભાગે ઉત્તર તથા પશ્ચિમ હિંદુસ્થાનમાં તેમ જ થોડા પ્રમાણમાં બંગાળામાં મળી પડે છે. તેઓ કપાળમાં ગોપીચન્દનની બે સીધી લીટીઓ વચ્ચે કાળો ચાંદલો કરે છે, તુલસીની કંઠી પહેરે છે અને રાધાકૃષ્ણના નામનો જપ કરે છે.

નિમ્બાર્ક મતની બે શ્રેણિઓ છે – એક વિરક્ત, બીજી ગૃહસ્થ. તેમના પછી આશરે બસ્સો એક વર્ષે આ બે ફાંટાઓ પડ્યા છે. વિરક્તશ્રેણિના આચાર્ય કેશવભટ્ટ થઈ ગયા અને ગૃહસ્થશ્રેણિના હરિવ્યાસદેવ.

વળી હરિવ્યાસમુનિ નામના આ સમ્પ્રદાયના એક સંગીતવિદ – જે અકબરના દરબારમાં પ્રસિદ્ધ તાનસેનના ગુરુ ગણાય છે – તેણે હરિદાસી કે ટટ્ટીપંથ ચલાવ્યો છે. આ પંથનું મંદિર વૃન્દાવનમાં છે, જ્યાં નિમ્બાર્કસમ્પ્રદાયનું પણ મુખ્ય મંદિર છે. વ્રજભૂમિ સિવાય બીજે ક્યાંય પણ પહેલાં આ સંપ્રદાયનો પ્રચાર ન હોય એ સંભવિત છે કારણ કે સર્વદર્શનસંગ્રહમાં નિમ્બાર્કમતનો સાર નથી જ્યારે તેની પછી થએલા મધ્વાચાર્યના દર્શનનું ટુંક વિવેચન તેમાં છે.

નિમ્બાર્કમતની વિશિષ્ટતા તો એ કે તેને એકેય મત કે સમ્પ્રદાય સાથે વિરોધ નથી. તેનું દર્શન એટલું વાસ્તવ અને સર્વગ્રાહી છે, કે દરેક મત સાથે તે સંમત થઈ શકે છે. તે દરેકની સત્યતામાં માને છે, એટલે અનાવશ્યક ચર્ચા – દલીલને તેમાં સ્થાન જ નથી. સનાતન સત્ય તરિકે એક વાત સર્વદા બનતી આવી છે અને આવશે કે બ્રહ્મ, તેનાં ભિન્નભિન્ન સ્વરૂપમાં ધ્યાતાની વિશિષ્ટ અવસ્થા તથા ઉત્તરોત્તર વધતીઓછી પાત્રતા અનુસાર, તેને પ્રાપ્ત થયા કરશે.

*

डॉ. कत्रेनां विल्सन भाषाशास्त्रीय व्याख्यानो

सारसंग्राहक – श्रीयुत हरिवल्लभ भायाणी, एम्. ए.
[रीसर्च फॅलो – भारतीय विद्या भवन]

*

[मुंबई युनिवर्सिटीना उपक्रम नीचे अपातां 'विल्सन भाषाशास्त्रीय व्याख्यानो' ('विल्सन फाईलोलॉजीकल लेक्चर्स') आ वरसे, पूनाना डेक्कन-कोलेज पोष्टग्रेज्युएट रिसर्च इन्स्टिट्युटना भारत-युरोपीय भाषाशास्त्रना प्रधान अध्यापक डॉ. एस्. एम्. कत्रेए आप्यां हतां. नीचे आपेलो विस्तृत सार, व्याख्यान दरमियान लीधेली नोंधो अने व्याख्याताए दरेक व्याख्यानने अंते वहेंचेला ते ते व्याख्यानना मुख्य मुद्दाओना टाईप-लेख परथी तैयार करवामां आव्यो छे. आवा प्रयत्नमां स्पष्टता अने सळंगसूत्रता जाळववा माटे अनिवार्य गणीने केटलाक उडतो उल्लेख पामेला मुद्दाओनो जरूरजोगो विस्तार अने स्थळे स्थळे वीगतपूर्ति कर्या छे.]

*

व्याख्यान पहेलुं – इतिहासलक्षी भाषाशास्त्रनो परिचय

पूर्वकार्य पर दृष्टिपात

आशरे चार सहस्राब्दी उपर विस्तरी रहेली भारतीय-आर्य भाषाओने ऐतिहासिक दृष्टिए त्रण युगमां विभक्त करी शकाय. पहेलो प्राचीन भारतीय-आर्य युग, वैदिक समयमां नित्यव्यवहारमां प्रचलित बोलीओ, ऋग्वेद, इतर वेदो ने ब्राह्मण ग्रंथोमां स्वरूपभेदे वपराएली प्राचीन साहित्यभाषा अने पाणिनि-व्याकरणने अनुसरती काव्य-नाटकादिनी शिष्टकालीन ('क्लासिकल') संस्कृत; — ए सौने आवरी ले छे. आ युगना भाषा अने साहित्यना अभ्यासथी ज पश्चिमना विद्वानोए प्राचीन भारतीय संस्कृतिनो परिचय मेळववानी शरूआत करी. तेमना अभ्यासनुं भाषाशास्त्रीय महत्त्ववाळुं प्रथम फळ ते बोथलीङ्क ने रोथ कृत "संस्कृत अभिधानकोश" ['संस्कृत वोर्टेर्बुख़'] (इ. स. १८५५–७५). आ पछी इ. स. १८७९ मां व्हीट्नीनुं संस्कृत व्याकरण प्रसिद्ध थयुं. प्राचीन भारतीय-आर्यना व्याकरणी अभ्यासना परिपक्व फळ तरीके, त्यार पछी सत्तर वरसे, भारतीय-आर्यनो भारत-युरोपीय संबंध लक्षमां राखी, सूक्ष्मतम मुद्दाओने गणतरीमां लई, सर्वस्पर्शी चर्चा करतुं, मुख्यत्वे वैदिक भाषानुं शास्त्रीय व्याकरण, वाकरनागले प्रसिद्ध करवानो आरंभ कर्यो. ए 'प्राचीन-भारतीय व्याकरण' ('आल्टिन्डीशे ग्रामाटिक')नो पहेलो ग्रंथ तथा बीजा ग्रंथनो एक भाग, अनुक्रमे इ. स. १८९६ अने इ. स. १९०५ मां

प्रसिद्ध थया; ज्यारे त्रीजो भाग डेब्रुनरना सहकर्तृत्व साथे ठेठ इ. स. १९३० मां बहार पड्यो. बाकी रहेला ग्रंथो पूरा करवा जेटलुं वाकरनागलनुं आयुष न रह्युं. दरमियान रेनु, डेल्ब्रुक, श्वाय्यर, ग्रास्मान, मेकडोनल, कीथ, व्युस्त, बेल्वेल्कर वगेरेए प्राचीन भारतीय - आर्यना आभ्यासमां पोतानो फाळो आप्यो.

बीजा युगनी – एटले के मध्यकालीन भारतीय - आर्य भाषाओमां धार्मिक प्राकृत (पालि, अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री अने जैन शौरसेनी), उत्कीर्ण लेखोनी प्राकृत, साहित्यिक प्राकृत (काव्यनी महाराष्ट्री, कथानी पैशाची, तथा नाटक, व्याकरणग्रंथो अने इतर प्राकृत ने अपभ्रंश साहित्यमां उपयुक्त प्राकृतभेदो), भारतबाह्य प्राकृत (चीनाई तुर्कस्तानमांथी मळेला प्राकृत 'धम्मपद' अने बीजा प्राकृत ग्रंथोनी भाषा) अने छेल्ले 'लौकिक' संस्कृत (एटले के बौद्ध अने जैन ग्रंथकारोनुं तथा वीरचरित काव्योनुं, शिष्टमान्य धोरणनो भंग करतुं प्राकृत लक्षणोवाळुं 'संकर' संस्कृत) – ए सौनो समावेश थाय छे. आरंभमां विद्वानोए मध्यकालीन भारतीय - आर्य तरफ उपेक्षावृत्ति सेवेली; पण धीमे धीमे अभ्यासीओए तेना तरफ ध्यान आपवा मांड्युं अने इ. स. १९०० मां पीशलनुं "प्राकृत भाषाओनुं व्याकरण" ['ग्रामाटिक डेर प्राकृत श्प्राखेन'] बहार पड्युं. पीशले आ ग्रंथमां पालिनो स्पर्श कर्यो नहोतो. ते काम गायगरे तेना "पालि-साहित्य अने भाषा" ['पालि – लिटेराटुर उन्ट श्प्राख'] (१९१६) मां साध्युं. पछी जेम जेम प्राकृत अने अपभ्रंश साहित्य प्रकाशमां आवतुं गयुं तेम तेम अभ्यासकोए मध्यकालीन भारतीय - आर्य तरफ विशेष लक्ष आपवा मांड्युं. तेमां सिल्वाँ लेवी, याकोबी, प्रीन्स, ल्युडर्स, विन्डीश, ब्लूमफील्ड, एजर्टन, वैद्य, आल्सडोर्फ, श्रीमती नीती दोल्ची वगेरेनां नामो अग्रगण्य छे.

छेल्लो युग अर्वाचीन भारतीय - आर्यनो आवे छे. आमां उत्तर हिंदनी घणीखरी भाषाओने, सींहलीने अने युरोपना जुदा जुदा प्रदेशना जीप्सीओनी भाषाओने – तेमनी अपभ्रंशोत्तर (के तेथीये प्राचीन) काळथी मांडी अर्वाचीन समयसुधीनी भूमिकाओ साथे गणावी शकाय. शरूआतमां मीशनरीओए अर्वाचीन भाषाओनुं अध्ययन करवा मांड्युं, अने मोल्सवर्थनो मराठी - अंग्रेजी कोश (इ. स. १८५७) अने केटलांक व्याकरणो लखायां. आ आरंभकालीन अध्ययनोमां स्वाभाविक रीते ज भाषासामग्रीनी खोटी के ढीली पकड अने शास्त्रीय सूक्ष्मतानो अभाव होय. इसवी ओगणीशमी सदीना छेल्ला चरणने अर्वाचीन

भारतीय - आर्य भाषाओना आभ्यासनो खरो आरंभकाळ गणी शकाय. इ. स. १८७२, इ. स. १८७५ अने इ. स. १८७९ मां अनुक्रमे त्रण भागमां प्रसिद्ध थयेला "भारतनी अर्वाचीन आर्य भाषाओनुं तुलनात्मक व्याकरण" ('कम्पेरेटीव ग्रामर ओफ धी मोडर्न आर्यन लेंग्वेजीज ओफ इन्डिया') ए बीम्सना ग्रंथे अर्वाचीन भारतीय - आर्यना तुलनात्मक व्याकरणनो पायो नाख्यो. आठ वरस पछी ते ज धाटीनुं हॉर्न्लेनुं "गौडी भाषाओनुं तुलनात्मक व्याकरण" ('कम्पेरेटीव ग्रामर ओफ धी गौडीयन लेंग्वेजीज') लखायुं. दरमियान इ. स. १८७७ मां विल्सन भाषाशास्त्रीय व्याख्यानो आपनार सौथी पहेला विद्वान रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकरे सात व्याख्यानोमां भारतीय - आर्य भाषाओना समग्र इतिहासनुं विहंगावलोकन करवानो प्रथम प्रयत्न कर्यो. पछीथी थएला संशोधनोना प्रकाशमां तेमनां घणां निर्णयो अने विधानो हवे पुनरवलोकन मागे तेवां छे, तो पण आ प्रकारना अभ्यासमां अणिशुद्ध शास्त्रीय पद्धति योजवानुं मान एमने घटे छे. ट्रम्प, केलोग वगेरेना छूटाछवाया प्रयत्नो पछी आ पेढीनी पूर्ति ग्रीअर्सन अने कोनोवना सदा यादगार बनी रहे तेवा "भारतवर्षनुं भाषाकीय पर्यवेषण" ('लिङ्ग्वीस्टिक सर्वे ओफ इन्डिआ') [इ. स. १९०३ – २८]-थी थाय छे.

ब्लोख, टर्नर, टेसीटोरी वगेरेथी अर्वाचीन भारतीय - आर्यना अभ्यासमां नवी भूमिका आरंभाय छे. ब्लोखना एकविषयी शास्त्रग्रंथ ('मोनोग्राफ') "मराठी भाषानुं घडतर" ('ला फोर्मेश्यों द लाँग मराथे') [इ. स. १९२०] मां अर्वाचीन भारतीय - आर्यना व्यक्तिगत शास्त्रीय अभ्यासनी पहेल थई. भारत - युरोपीय अने संस्कृतना अभ्यासमां जळवाएला शास्त्रीय धोरणे ए ग्रंथ तैयार थयो छे. आ ज धाटीए लखाएलो सुनीतिकुमार चेटरजीनो 'बंगाळी भाषानां मूळ अने विकास' ('ओरीजीन एन्ड डेवेल्पमेन्ट ओफ धी बेंगाली लेंग्वेज') ए विस्तृत पाण्डित्यपूर्ण ग्रंथ इ. स. १९२६ मां प्रकाशित थयो. जो ब्लोखे अर्वाचीन भारतीय - आर्यना व्यक्तिगत अभ्यासनी पहेल करी, तो टर्नरे तेना "नेपाळी भाषानो तुलनात्मक अने व्युत्पत्तिदर्शक शब्दकोश" ('ए कम्पेरेटीव एन्ड इटीमोलॉजीकल डिक्शनरी ओफ नेपाली लेंग्वेज') [इ. स. १९३१] मां अर्वाचीन भारतीय-आर्यना तुलनात्मक कोशनी दिशामां प्रथम प्रशस्य शास्त्रीय प्रयास कर्यो. ए पछी त्रण वरसे ब्लोखनो ग्रंथ "भारतीय-आर्य: वेदथी मांडी

अर्वाचीन समय सुधी" ('लाँदो – आर्यनः थु वेद ओ तौं मॉर्दर्न') आवे छे. आ सळंगसूत्र इतिहासने एक रीते भाण्डारकरना व्याख्यानोनी परिपूर्ति गणी शकाय. समग्र भारतीय अभ्यासना प्रदेशमां शुद्ध भाषाकीय अध्ययनोनो सर्वस्पर्शी इतिहास आनी अगाउ विन्डीशे तेना 'संस्कृत भाषा-साहित्यिक अभ्यासनो तथा भारतीय पुरातत्त्वशोधनो इतिहास' ('गेशिश्टे डेर संस्कृत-फीलोलोगी उन्ट् इन्डीशेन आल्टर्टुम्स्कुन्डे') [इ. स. १९१७] एमां आप्यो छे. अर्वाचीन भारतीय-आर्य क्षेत्रमां बीजा विद्वानोमां टर्नर, टेसीटोरी, ग्रीअर्सन, सिद्धेश्वर वर्मा, बनारसीदास जैन, बाबुराम सक्सेना वगेरेए काम कर्युं छे, तेमां सक्सेनानो बहुमूल्य ग्रंथ 'अवधीनो विकासक्रम' ('इवोल्युशन ओफ अवधी') [इ. स. १९३८] तेमां रजू थयेलां शास्त्रपूत पद्धति, सूक्ष्म अवलोकन अने भाषासामग्री परना सर्वग्राही प्रभुत्वने लीधे खास उल्लेखनीय छे.

छेल्ला साठ वरसना भारतीय-आर्य भाषाकीय अभ्यासने लगता आ पायारूप ग्रंथोने तपासतां, तेमां एक वस्तु स्पष्ट तरी आवे छे के भाषाकीय अभ्यासने लगता होवा छतां, ए ग्रंथोमांना घणाखरा वर्णनात्मक अने मात्र वस्तुस्वरूपनुं कथन करती पद्धतिए लखायेला छे. काळना प्रवाह साथे थएलो भाषाकीय घटनाओनो उद्गम अने तेमनो वस्तुनाए थएलो विकास – ए बने वच्चे मेळ जळवाई रहे तेवी रीते तेमनुं प्रतिपादन भाग्ये ज करवामा आव्युं छे. अने तेनुं मुख्य कारण ए छे के, ए ग्रंथकारोनो अभ्यास मुख्यत्वे सळंग युगो जेवडा समयना विस्तृत गाळाओ पूरतो मर्यादित हतो. आथी ए युगोना अवान्तर गाळा, पहेलाना जेम वणस्पर्श्या रह्या. विशेषमां सहजन्य बोलीओ ('कॉन्टॅक्ट डायलेक्ट्स्') वच्चे भाषासामग्रीनी आप-ले सतत चालु रहेती होवाथी सामान्यतः उपयोगमां लेवाती समविकार-रेखा ('आसोग्लोस') नी पद्धति पण काम आवी शके तेम हतुं नहि. खरो भाषाकीय अभ्यास ऐतिहासिक दृष्टिए थवो जोइए अने तेमां अमुक समये प्रचलित भाषानां जीवंत अने बंधियार बंने प्रकारनां विकास अने परस्पर संबंधनी गवेषणा वच्चे भेद जळवावो जोइए. परिवर्तन पाम्ये जती भाषाभूमिकाओनुं बोलचालमां वपरातुं स्वरूप ते जीवंत स्वरूप; ज्यारे बाह्य परिस्थिति अने धार्मिक के साहित्यिक अगत्यने अंगे अमुक बोली, जे प्रकारनी विकासथी पर एवी बंध्य अवस्थाने पामे ते प्रकारनी अवस्थाने बंधियार स्वरूप कही शकाय. भारतीय-आर्यना इतिहास पर एक उडती नजर नाखतां आ वस्तु वधारे स्पष्ट बनशे.

भारतीय-आर्यना युगशः विकासनी रूपरेखा

'ऋग्वेद'मां रजू थएला भाषाभेदमां मळती केटलीक द्योतक भाषाकीय घटनाओ अने पालि – प्राकृत – अपभ्रंशमां जळवाई रहेला केटलाक कालातीत अवशेषो साबित करे छे के वैदिक समयमां जुदी जुदी बोलीओ व्यवहारमां होवी जोईए, जेमांथी एकनुं धार्मिक - साहित्यिक स्वरूप ते 'ऋग्वेद'नो भाषाभेद. एक ज दाखलो लईए – 'ऋग्वेद'नी '**सुरे दुहिता**' ए उक्ति बे रीते समजाववानो प्रयत्न थयो छे. एक मत प्रमाणे अहीं संबंधदर्शक चतुर्थी ('डेटीव ऑफ कीन्शीप')नो प्रयोग छे [जेम अंग्रेजीमां daughter to the Sun god कही शकाय तेम]. पण वाकरनागले आपेली उपपत्ति ज प्रतीतिजनक छे. अहीं मूळना '**सूरः दुहिता**'नुं सामान्यरीते प्रचलित संधिनियम प्रमाणे '**सूरो दुहिता**' थवुं जोईए; तेने बदले, जेम बीजी प्राकृतोमां वीरो (< वीरः) वगेरेमां मूळना विसर्गनुं स्थान 'उ' ले छे, पण मागधीमां तेवा ज संजोगोमां वीले (< वीरः) वगेरेमां मूळना विसर्गने स्थाने 'इ' आवे छे, तेम अहीं पण '**सूरः दुहिता**' ('सूर्यनी पुत्री')नुं '**सुरे दुहिता**' एवुं विलक्षण संधिरूप थयुं छे. एटले के पाछळना समयमां मागधी विशिष्टता तरीके मूर्तिमन्त थयेला वलणनुं आ एक पुरोगामी चिह्न छे, अने परिणामे वैदिक समयमां बोलीभेद होवानो ते एक मजबूत पुरावो पूरो पाडे छे. वैदिक शिथिर – (< √ श्रथ्), कृच्छ्र – (< * कृप्त्र –), ज्योतिस् – (*द्योतिस् –) वगेरे पण बीजस्वरूपमां रहेला प्राकृतसदृश वलणोना द्योतक छे, अने ऋग्वेदना भाषाभेदथी ध्वनिविकासमां आगळ वधेलुं अन्य भाषास्वरूप ते समये प्रचलित होवानुं साबित करे छे.

समय जतां अनेक शब्दो तेम ज काळ अने अर्थना केटलाक भेदो वपराशच्युत थतां, सादृश्यना नियमना परिबळे गणव्यवस्था सादी बनतां, अने आथी वैदिक भाषानी रूपसमृद्धि अने संकुलता दूर थतां रूपतंत्रमां केटलीक सरळता आवी. शुक्र० – शुक्ल० जेवामां उच्चारभेदे अर्थान्तर विकस्यो, तो केटलाक शब्द-युग्मनी बाबतमां एक अर्थनी समानता, बीजा अमौलिक अर्थनुं आरोपण थवामां कारणभूत बनी; आम भाषाविकासमां सामान्य एवा केटलाक फेरफारो व्यक्त करती, छतां मूळनुं ध्वनितंत्र यथास्थित जळवाई रह्युं होवाथी मर्यादित अने विलक्षण विकासना परिणामरूप गणी शकाय तेवी शिष्टकालीन ['क्लासीकल'] संस्कृत तैयार थई. 'ऋग्वेद'ना भाषाभेदमां नथी तेवा केटलाक भारत-युरोपीय

वाचको ('वॅकेवल्स') पण तेमां संघराया छे, ते बोलीओनी अरसपरसनी आप-लेनुं सूचक छे. पाणिनिना तलस्पर्शी अने सर्वग्राही अभ्यासने परिणामे एक सर्वमान्य, अने जराये घरेडभंग न सही शके एवुं कडक धोरण बंधायुं. आवी अस्वाभाविक स्थितिने लीधे संस्कृतनो विकास रूंधाई गयो. छतांये ध्यानमां राखवा जेवुं छे के चंद्रगोमी जेवा पाणिनिना अनुगामी वैयाकरणो, जेमनी शिष्टकालीन ('क्लासीकल') संस्कृतमां हस्ती ज नथी तेवां केटलांक रूपो ने प्रयोगोनी नोंध ले छे. दरमियानमां वैदिक बोलीओमांथी ध्वनिविकास अने सादृश्यना नियमना प्रभावे पालि वगेरे **मध्यकालीन भारतीय-आर्य** भाषाभेदो विकसे छे. ते जे स्वरूपमां जळवाई रह्या छे ते स्वरूप, जीवंत — बोलचालनी — भाषानी पाळळ होय छे तेवी मानव पृष्ठभूमिकाना अभावे अत्यंत कृत्रिम अने विकासशून्य छे. आ मुशीबत उपरांत प्राकृतोना मूळ आधाररूप हाथप्रतोनी विश्वसनीयता, प्राचीन लेखनशैलीने लगती मुश्केलीओने लीधे घणी कमी थाय छे. हाथप्रतो अने प्राकृत वैयाकरणोना विधानो वच्चे विरोध ऊभो थाय त्यारे बे प्रकारनुं वलण स्वीकारवुं शक्य छे: कां तो पी शल नी जेम हे म चं द्र जेवा वैयाकरणोने प्रमाणभूत गणी ते प्रमाणे हाथप्रतोनी भाषामां फेरफार करवा; अथवा मात्र प्राकृत व्याकरणकारोनुं ज प्रमाण नहीं पण दरेक **मध्यकालीन भारतीय-आर्य** भाषास्वरूप ध्यानमां लई तेना प्रकाशमां दरेक हाथप्रतनो निरनिराळो अभ्यास करवो. अने आ बीजी पद्धति ज वधारे शास्त्रीय छे. तेमां दरेक हाथप्रत उपरनी तेना प्राप्तिस्थाननी असरने पण लक्षमां राखवी घटे छे. उदाहरण तरीके 'म हा भा र त'नी दक्षिणनी वाचनाओमां संबंधार्थ चतुर्थीनो प्रयोग मळे छे ते द्राविडी असरथी सहेजे समजावी शकाय. आ उपरांत आंकडाशास्त्रनो आधार लेतां लहियाओनी भूलोनी पण निष्पक्षपणे तपास थवी शक्य बने छे, जो के हेतुपूर्वक कराएली भाळसेळने पारखवी ए घणुं कठण छे. एटलुं सारुं छे के उत्कीर्ण लेखोनी भाषा आवा प्रकारनी अशुद्धिओथी अलिप्त रही शकी छे. तुर्फन हाथप्रतो पण दटाईने जळवाई रही होवाथी, तेमनी एक ज वाचना होवा छतां घणी विश्वसनीय गणाय.

मध्यकालीन भारतीय-आर्यना अभ्यासमां वीरचरित काव्यो अने बौद्ध-जैन ग्रंथोना 'लौकिक' संस्कृतनुं अध्ययन पण खास आवश्यक छे. तेमां मळी आवता व्याकरणविरुद्धना 'अव्याकरणी' ने आर्ष प्रयोगोनी, तेम ज वीरचरित काव्योना पाठान्तरोनी आंकडाबद्ध गवेषणा, गर्भदशामां रहेलां अस्पष्ट **मध्यकालीन भारतीय-आर्य** वलणोना द्योतक बने तेम छे.

विकारक बळोने वश थई मध्यकालीन बोलचालनी भाषाओए, इसवी अगि-आरमी सदी लगभग अर्वाचीन युगमां प्रवेश कर्यो. अर्वाचीन युगना अभ्यासने मुश्केल बनावती घटनाओमां बे खास उल्लेखार्ह छे. विकसती बोलीओनी परस्पर एक बीजी उपर थयेली विस्तृत, अनेकविध अने संकुल असर; अने आमां द्राविडी जेवी परभाषानो फाळो केटलो ते नक्की करवानी कठिनता.

भारतीय-आर्यना विकासनी आ रूपरेखामांथी सळंगसूत्र वीगतवार इतिहास बनाववा आडे बे चार मोटा अंतरायो छे. एक तो चोक्कस समय-निर्णयने अभावे मात्र सापेक्ष समयगणना ज आपवी शक्य छे. आथी भाषाकीय घटनाओना सीलसीलाबंध वृत्तान्तने बदले आपणे मोघम युगोना उल्लेखथी चलवी लेवुं पडे छे. परिणामे पृष्ठभूमि अने वेष्टनोथी वंचित एवी आ घटनाओनी खरी मुलवणी के स्वरूप-ओळख थई शकती नथी. बीजुं, उपर सूचव्युं तेम जे भाषा-भूमिकाओनो अभ्यास करवानो छे तेमना ते ते समयनां जीवंत बोलचालनां स्वरूपोने बदले आपणी पासे साहित्यिक अने कृत्रिम भाषास्वरूपो छे. खळखळ वहेता झरणने बदले बंधियार खाबोचिया साथे काम करवानुं छे. आथी विकासना वास्तविक स्वरूपनी आपणे मात्र झांखी ज करी शकीए छीए. त्रीजो अंतराय ते खामी भरेली प्रतिपादन-पद्धति छे. ते विशे पण उपर सूचन कर्युं छे. आ माटे हवेथी इतिहासलक्षी पद्धतिनो स्वीकार घणो ज आवश्यक छे. भाषाशास्त्रना प्रदेशमां इतिहासलक्षी पद्धति एटले दरेक भाषाकीय हकीकत अने घटनानो स्थळ-काळ साथेनो पूर्वापर संबंध ध्यानमां राखी, तुलनात्मक व्याकरण-शास्त्रनी दृष्टिए अमुक भाषा-परिवारनो अभ्यास करवो. आवी, समयगणना अने भौगोलिक स्थानने लक्षमां लेती प्रतिपादन-पद्धति घडी काढवाथी भारतीय-आर्यनो सळंग विकासक्रम समजवामां हजी पण—खास करीने मध्यकालीन भारतीय-आर्य क्षेत्रमां—रहेलां खाडा-गाबडां पूरी दई शकाशे. मध्यकालीन भारतीय-आर्यनी सामग्रीमां अभ्यास माटे हजी घणो अवकाश छे; अने खास करीने पूनाना भाण्डारकर प्राच्यविद्यामंदिर द्वारा संपादित थता 'महाभारत'नुं अने विवेचक दृष्टिए ('क्रीटीकली') संपादित थता तेवा बीजा ग्रंथोनुं आंकडा-बद्ध पृथक्करण कराय तो, ते ते ग्रंथोमां मळी आवता पाठभेदोमां जळवाई रहेलां मध्यकालीन भारतीय-आर्य लक्षणोनी स्थळमर्यादा अने समयगणना नक्की करवामां ते घणुं सहायक बने. आथी अमुक शब्दोनो वहेलामां वहेलो क्यारे

उपयोग थयो ते जाणी शकाय अने शास्त्रीय कोश तैयार करवा साथे संकळायला कोयडाओनो पण उकेल आवे. एक बे उदाहरणथी आ वस्तु वधारे स्पष्ट थशे; – दाल्गादोए तेना 'एशिआई भाषा पर फीरंगी शब्दभंडोळनी असर' ('इन्फलुएन्सीआ दो वोकाबुलारीओ पोर्तुगेस एम लिंगुआस एसिआतिकास') [इ. स. १९३१] मां मराठी शब्द 'भोपळा'ने एक फीरंगी शब्द साथे सांकळ्यो छे; पण ए ज अर्थमां इसवी अगीआरमी सदीनी एक हाथप्रतमां 'बहुफलक०' मळतो होवाथी नक्की थाय छे के 'भोपळा' फीरंगी मूळनो नथी पण शुद्ध तद्भव छे. मराठी 'दोन०', 'दुजा०', 'दुसरा०', 'दुणा०', वगेरेमां देखाता 'द' उपरांत 'बारा०', 'बीज०', 'बावीस०' जेवामां 'ब' देखाय छे. ते कोई समीपनी बोलीना ऋण तरीके ज समजावी शकाय. पण तेनो स्वतंत्र पुरावो मध्यकालीन भारतीय-आर्यना अभ्यासमांथी ज मेळववो रह्यो. आ बाबतमां संस्कृत कोशोमां नोंधाएला संख्याबंध मध्यकालीन भारतीय-आर्य शब्दो खास तपास मागी ले छे.

अंतमां, कहेवुं प्राप्त थाय छे के उपरोक्त लक्षणवाळी इतिहासलक्षी भाषाशास्त्रीय दृष्टि राखी नवी पद्धतिए अन्वेषण हाथ धरवानो समय आवी पहोंच्यो छे. भारत–युरोपीयना अभ्यासमां पण आवा प्रकारनी प्रतिपादन-पद्धतिनो हमणा हमणा थएलो विकास उल्लेखनीय छे.

आ पछीना बीजा व्याख्यानमां हुं भारतीय-आर्यना 'आख्यातिक अंगो' ('वर्बल बेइजीज') पर विचार करवानुं, साहसभर्युं गणी शकाय तेवुं पगलुं लईश. ते एटला माटे के तेमांथी दोरेला निर्णयो भारतीय-आर्यने इतिहासलक्षी-भाषाशास्त्रीय पद्धति लागु पाडवी एटले शुं, ए पूरतुं स्पष्ट करी शकशे.

*

व्याख्यान बीजुं – भारतीय-आर्यना आख्यातिक अंगो

आमां अने आनी पछीना व्याख्यानमां भारतीय-आर्यना समग्र शब्द-भंडोळमांथी मात्र आख्यातिक अंगोनी ऐतिहासिक दृष्टिए छणावट करवामां आवी छे.

सा म ग्री

आवा अभ्यास माटे प्राचीन, मध्य तेम ज अर्वाचीन युगो माटे आपणने केटलीक सामग्री मळे छे. पाणिनि (आशरे इ. पूर्वे पांचमी सदी)नो **धातुपाठ** [वेस्टगॉर्ट संपादित – १८४१; बोथ्लिङ्क संपादित – १८८७] अने तेना परनी क्षीरस्वामी (आशरे इ. स. १०५०) कृत **क्षीरतरङ्गिणी** [लीबीश संपादित – १९३०], माधवीय **धातुवृत्ति** (आ. १३५०), भट्टोजी दीक्षितनी (आ. १६३०) वृत्ति, वगेरे; **चांद्र धातुपाठ** (आ. ४७०) [लीबीश् – संपादित]; दुर्गसिंह कृत (आ. आठमी सदी) **कातंत्रधातुपाठ** (लीबीश् – संपादित, १९१९); **शाकटायन धातुपाठ** (नवमी सदी); **हेमचंद्रधातुपाठ** (बारमी सदी); हर्षकीर्ति कृत **सारस्वत धातुपाठ** (सोळमी सदी) – वगेरे प्राचीन भारतीय-आर्य माटे गणावी शकाय. संस्कृत धातुओना सामान्य अभ्यासनी दृष्टिए व्हीट्नीए 'संस्कृत भाषाना धातुओ, आख्यातिक रूपो अने कृदन्त रूपो' ('धी रूट्स वर्ब-फॉर्म्स एन्ड प्रायमरी डेरीवेटीव्ज् ऑफ धी संस्कृत लैंग्वेज' १८८५) ए ग्रंथ लख्यो. पीटर्सबर्गना बृहद् अभिधान-कोश-(१८५५ – ७५)मां एकठी कराएली सामग्रीनो एमां उपयोग करायो हतो. आ दिशामां आ पछीना सौथी वधारे ध्यान खेंचे तेवा प्रयत्न लेखे लीबीश्नो 'धातुपाठ माटेनी सामग्री' ('माटेरीआलीन त्सुम् धातुपाठ' – १९२१) ए ग्रंथ गणावी शकाय.

मध्य भारतीय-आर्य तरफ वळतां पालि माटे **धातुपाठ, धातुमञ्जूषा** (बंने दिनेस आन्दर्सन अने हेल्मर स्मीथ संपादित, १९२१) अने **धातुमाला** (हेल्मर स्मीथ संपादित, १९२९) ए प्रसिद्ध थया छे. आने आधारे डॉ. कत्रेए 'पाली धातुपाठगत धातुओ' ('रूट्स ऑफ धी पालि धातुपाठाज्' – प्रसिद्ध 'बुलेटीन ऑफ धी डेक्कन कॉलेज रीसर्च इन्स्टीट्युट' – मार्च, १९४०) ए नाम नीचे पालि धातुओनो संग्रह प्रसिद्ध कर्यो छे.

प्राकृत माटे, हेमचन्द्र, क्रमदीश्वर, मार्कण्डेय, रामशर्मन्, त्रिविक्रम, चण्ड वगेरेना प्राकृत व्याकरणोमां, तेम ज धनपालनी **पाइयलच्छीनाममाला** अने हेमचंद्रनी **देशीनाममाला** जेवा देशी कोशोमां सामग्री पडेली छे. ग्रीअर्सने आ प्राकृत व्याकरणकारोनी कृतिओनो उपयोग करीने 'प्राच्य अने प्रतीच्य संप्रदायना वैयाकरणो प्रमाणेना प्राकृत धात्वादेशो' ('प्राकृत धात्वादेशाज् एकोर्डिंग टु धी वेस्टर्न ॲन्ड ईस्टर्न स्कुल्स ऑफ प्राकृत ग्रामेरीअन्स'' – १९२४) ए ग्रंथमां प्राकृत धातुओनो संग्रह प्रसिद्ध कर्यो छे. आथी बहु ज वहेलां डेलिअसे 'प्राकृत धातुओ' ('रादिकेस प्राकृतिकाए' – १८३९) ए ग्रंथ लखेलो.

अंगोनुं वर्गीकरण

व्हीट्नी तेना उपरोक्त ग्रंथमां आख्यातिक अंगोना आखा समुदायने छ विभागमां वहेंची नाखे छे : वैदिक साहित्यमां प्रयुक्त, ब्राह्मण साहित्यमां प्रयुक्त, औपनिषदिक साहित्यमां प्रयुक्त, सूत्रसाहित्यमां प्रयुक्त, वीरचरित साहित्यमां प्रयुक्त अने शिष्टकालीन साहित्यमां प्रयुक्त. व्हीट्नीना आ छ विभागो सामान्य-पणे त्रण खंडमां वहेंचाएला छे : (१) भाषानी मात्र प्राचीन भूमिकामां प्रचलित होय तेवा वाचको ('वॉकेबल्स') (२) मात्र अर्वाचीन भूमिकामां प्रचलित होय तेवा वाचको अने (३) प्राचीन तेम ज अर्वाचीन बंने भूमि-कामां प्रचलित होय तेवा वाचको.

बीजी दृष्टिए पण आख्यातिक अंगोनी वर्गवहेंचणी थई शके तेम छे : (१) वारसागत अंश – (अ) भारत-युरोपीय अंगो, (आ) भारत-इरानीय अंगो; (२) अ-भारत-युरोपीय ऋण अंगो. आ छेवटनो अंश ए नवतर अंश छे. नवा विचारो, अनुभवो अने वस्तुओनी अभिव्यक्ति माटे दरेक भाषाना – अने खास करीने जीवन्त भाषाना – इतिहासमां नवा नवा वाचकोनी जरूर उभी थती होय छे. तेवी जरूर पूरवा माटे आ नवतर अंश स्वीकराएलो छे.

उपलब्ध संस्कृत साहित्यमा प्रयुक्त थया होय तेवां प्राचीन भारतीय-आर्य अंगोना गणवार आंकडाओ व्हीट्नीए आम आप्या छे :

अदादि (२)	१४३	क्र्यादि (९)	५३
जुहोत्यादि (३)	४९	भ्वादि (१)	५२९
रुधादि (७)	२९	तुदादि (६)	१४२
स्वादि (५)	५०	दिवादि (४)	१३३
तन्वादि (८)	८	कुल	११३६

आ दरेकमां मात्र प्राचीन भूमिकामां मळता; प्राचीन तेम ज अर्वाचीन भूमिकामां मळता; अने मात्र अर्वाचीन भूमिकामां मळता — एवा त्रण विभाग छे. दाखला तरीके बीजा गणना ८० धातुओ एवा छे के जे मात्र प्राचीन भूमिकामां ज वपराया छे. पछीनी भाषामां ते न देखाता होवाथी ते भूमिकानी दृष्टिए ए कालग्रस्त अंश छे. ४९ धातुओ बंने भूमिकामां मळे छे. आ स्थिर अंश छे. बाकीना १४ धातुओ मात्र अर्वाचीन भूमिकामां ज मळे छे. आ नवतर अंश छे. व्हीट्नीए नोंधेला ११३६ धातुओमांथी आशरे ८०० वैदिक साहित्यमां अने बाकीना चारसोएक वीरचरित अने शिष्टकालीन साहित्यमां मळे छे. आ बारसोमांथी अरधा जेटला भारत - युरोपीय भूमिकामांथी वारसामां ऊतरी आवेला छे. तेमनी विभागवहेंचणी करीए तो, (अ) १७१ एवा छे के जे मात्र वैदिक भाषामां मळे छे; (आ) ३१८ अंगो सामान्यपणे वपराएला छे; (इ) १२२ मात्र शिष्टकालीन (के वीरचरित) संस्कृतमां ज मळे छे. प्राचीन भूमिकामां अनुपलब्ध एवा आ भारत - युरोपीय मूळना १२२ धातुओनी उपपत्ति केम आपवी ? आ माटे बे शक्यता छे: (१) बीजी भारत-युरोपीय (ग्रीक, इरानी वगेरे) भाषाओ साथे भारतीय - आर्यनो संपर्क थएलो साबित करी शकाय तो केटलाक धातुओ ऋण शब्दो तरीके आव्या होय; (२) केटलाक भारत - युरोपीय भूमिकामांथी प्राचीन भारतीय - आर्य लोकबोलीओमां ऊतरी आवेला अने मध्य भारतीय - आर्यमां जळवाएला होय; अने भाषाभूमिकाना पलटाओ साथे ध्वनिपलटो अने रूपपलटो पामतां पामतां, ए लौकिक भाषाभेदोने साहित्यकीय स्वरूप मळ्युं, त्यारे ते सामान्य प्रचारमां आव्या होय. पछीथी ते वेळाना प्राकृत स्वरूपने अतिसंस्कार ('हायूपर्-संस्कृतीज़ेशन') अपायो होय अने ए स्वरूपमां छेवटे धातुपाठमां नोंधाया होय.

रूपतंत्रमां थयेलां परिवर्तन

ऐतिहासिक दृष्टिए भारतीय - आर्य आख्यातसामग्री तपासतां तेनां स्वरूप अने रूपमां आवेला पलटाओ स्पष्टपणे आपणी सामे उपस्थित थाय छे. भारतीय - आर्य आख्यातिक अंगोमां विविध गणो, अर्थो ('मुड्ज़्') अने प्रयोगो ('वॉय्सीज़्') अनुसार विविध रूपो धरवानी शक्ति हती. पदमां थएला फेरफारो आपणे तपासीए तो जणाशे के केटलाक धातुओ प्राचीन भूमिकामां अमुक एक पदना छे, ज्यारे पछीनी भूमिकामां तेथी जुदा ज पदमां अथवा

तो बंने पदमां वपराता थया छे. उ. त. **अक्षत्** (वैदिक), **अक्षते** (वीर-चरित); **अस्यते** (ऋग्वैदिक), **अस्यति, आस्ते, आस्ति** (वीरचरित); **इच्छति** (वैदिक), **इच्छते** (शिष्टकालीन); वगेरे. प्राचीन भूमिकामां परस्मैपदी होय पण पछीथी आत्मनेपदी थया होय एवा धातुओनी संख्या आशरे १५०नी छे; आत्मनेपदीना परस्मैपदी थया होय तेवानी संख्या १००नी छे; ज्यारे १०० बंने भूमिकामां उभयपदी रह्या छे. आ पदव्यत्ययनुं कारण शुं ? परस्मैपद अने आत्मनेपद वच्चे मूळमां रहेलो सकर्मक – अकर्मकनो तात्त्विक भेद, समय जतां भाषामांथी लुप्त थई गयो. मात्र तेमना नाममां ते अवशिष्ट रही गयो. आम पद व्याकरणी विभाग ('केटेगरी') तरीके निरर्थक बनतां पदप्रमाणे लगाडवाना प्रत्ययोमां पण शिथिलता आवी अने छंदना चोकठामां बेसाडवा माटे जरूर पडे त्यां एकने बदले बीजुं पद वापरवुं सगवड भर्युं बन्युं. वळी ४था गणना आत्मनेपदी धातुना कर्तरि रूपो अने कर्मणि रूपो वच्चे आघात ('एक्सन्ट') पूरतो ज फरक होवाथी, समय जतां ते गणमां पद बाबत शिथिलता प्रवर्तवा लागी. वीरकाव्योमां तो पदव्यत्ययनां केटलांये उदाहरणो मळे छे. आ विषयनो आंकडावार अभ्यास थवो जरूरी छे. सार्थकता लोपातां अंतमां मध्य भारतीय-आर्य भूमिका सुधीमां तो पदनो विभाग तद्दन लुप्त थई गयो.

भारतीय वैयाकरणोए धातुओना जुदा जुदा गणमां करेला वर्गीकरणनो ऐतिहासिक दृष्टिए विचार करतां, गण-व्यत्ययनां पचासेक उदाहरणो मळे छे. उ. त. **अनति** (वैदिक), **अनिति; अमेत्** (वैदिक), **अमीति; नवते** (वैदिक), **नुवते** (शिष्ट०); **वनते** (वैदिक), **वनुते;** वगेरे. पहेला अने छट्ठा गण वच्चे आघात ('एक्सन्ट') पूरतो ज भेद होवाथी तेमनी वच्चे गरबड थवानी घणी संभावना हती. समग्रपणे जोतां कही शकाय के पाछला युग करतां आगला युगनी भाषाभूमिकामां अमुक एक अंगमांथी जुदा जुदा गणोने अनुसरता प्रातिपदिको घडवानी वधारे प्रमाणमां शक्ति हती. पाछळना युगमां साधारणीकरण ('नॉर्मलायझेशन') अने अविकरणी अंगोने विकरणी बनाववा ('थेमेटीझेशन')नुं वलण वध्ये गयुं छे. वळी केटलीक बाबतमां एक अंगने स्थाने बे अंगो वपरातां थयां छे. दा. त. मूळ √इ०ने स्थाने पाछळना समयमां √अय्० पण वपरातुं थयुं छे. तेवी ज रीते गणनिशानी धातुदेहनी अंशभूत गणवाथी शिष्टकालीन भूमिकामां केटलांक नवां आख्या-

तिक अंगो अस्तित्वमां आवेलां छे. उ. त. √ पृ० मांथी √ पृण्०. आम आख्यातिक अंगोमां विविध परिवर्तन थयां छे.

धातुपाठ अने पाश्चात्य विद्वानो

भारतीय-आर्यना आख्यातिक अंगोनी व्हीट्नीए करेली चर्चामां खास लक्ष खेंचे तेवी बाबत ए छे के संस्कृत वैयाकरणोए आपेला धातुपाठोनी तेमां सख्त टीका करवामां आवी छे. व्हीट्नीना संशोधनो प्रमाणे मात्र ११३६ धातुओ साहित्यमां प्रत्यक्षपणे योजाएला मळे छे, एटले एटला ज धातुओ खरा अने प्रमाणभूत गणी शकाय. आथी पाणिनिए आपेली धातुओनी आशरे २३००नी संख्यामांथी अरधाने व्याकरणकारोए कृत्रिमरीते घडी काढेला गणवा जोईए.[1] धातुपाठमां घुसाडवामां आवेलो आ कचरो तद्दन अप्रमाणित गणवो जोईए. पण बीजा केटलाक विद्वानोए व्हीट्नीना आ अभिप्रायने सखत रीते वखोडी काढ्यो छे. वेबर, बेन्फे वगेरे संस्कृत वैयाकरणोने विश्वसनीय गणवाना मतना हता. ब्युलरे व्हीट्नीना मतनी चर्चा करता एक लेखमां[2] व्हीट्नीए अप्रमाणित गणेला धातुपाठगत केटलाक धातुओ पालि—प्राकृतमां अथवा अर्वाचीन भारतीय-आर्य बोलीओमां अस्तित्व धरावता होवानुं देखाड्युं छे. आम धातुपाठना केटलाक धातुओ भारत-युरोपीय मूळना होई, लौकिक भाषाओमां जळवाई रहीने मध्य अने अर्वाचीन भारतीय-आर्यमां ऊतरी आवेला छे.[3]

धातुपाठना धातुओ सामे बीजी एवी दलील करवामां आवी छे के तेमांना केटलाक तो प्रासमेळ के ध्वनिसंवादनी असर उपजाववा माटे घडी काढवामां आव्या होय तेम लागे छे. उ. त. सेवृ गेवृ ग्लेवृ. पण आ दलीलमां अंशतः ज सत्य रहेलुं छे. मात्र प्रासमेळ के ध्वनिसंवाद धातुओने कृत्रिम न ठरावी शके.

---

१ जुओ व्हीट्नी 'हिंदु व्याकरणने लगनां नवा अध्ययनोनुं अवलोकन' ('रीव्यू ऑफ रीसंट स्टडीज़ इन हिंदु ग्रामर')—'अमेरीकन जर्नल ऑफ फायलोलॉजी', ग्रंथ १४; ते पहेलां, व्हीटनी ('अमेरीकन जर्नल ऑफ फायलोलॉजी' ग्रंथ ५), एड्ग्रेन 'संस्कृत भाषाना आख्यातिक धातुओ' ('वर्बल रूट्स ऑफ संस्कृत लेंग्वेज')—'जर्नल ऑफ धी अमेरीकन ओरिएन्टल सोसायटी', ग्रंथ ११.

२ जुओ 'इन्डिअन एन्टीक्वेरी', जून—सप्टे. १८९४.

३ आ विषय माटे सरखावो, ग्रे, 'पंदर प्राकृत—भारत—युरोपीय व्युत्पत्तिओ' (फीफ्टीन प्राकृत—इन्डो—युरोपीअन इटीमोलॉजीज़') 'जर्नल ऑफ धी अमेरीकन ओरिएन्टल सोसायटी', ग्रंथ ६०, अंक ३, पा. ३४३; सप्टे० १९४०.

√घस्० √भस्० के इनोति, हिनोति, जिनोतिमां प्रासमेळ होवा छतां, ते तद्दन प्रामणित धातुओ छे. खरुं जोतां, धातुपाठोना धातुओ विशे सर्वस्पर्शी शास्त्रीय मत बांधतां पहेलां मध्य तेम ज अर्वाचीन भारतीय-आर्य भाषा-भूमिकाओने तपासवानी जरूर छे. केम के केटलाक धातुपाठना धातुओना अर्वाचीन अवतारो तेमांथी मळी आवे छे.

धातुपाठना केटलाक धातुओ देखीता ज मध्य भारतीय-आर्यमां प्रचलित केटलाक ध्वनिवलणोने आधारे घडाया छे. √ग्लेव्० > √गेव्०, के म्लेव् > मेव्मां अस्थिर व्यंजनस्तबकोनुं ऋजूकरण ('सीम्प्लीफीकेशन') देखाई आवे छे. [मूळ √ऋ०ना विस्तारथी सधाएला] *√ऋत्०ना रूपान्तरो √अत्० (वैदिक), *इट्० (वैदिक), ने √अट्० (शिष्ट०)मां; √कृन्त्० : √कुट्ट्०मां; √छृन्त्० : छुट्मां; √गृज्० : √गज्०, √गञ्ज्०, गुञ्ज्०मां, √*भृत्० : √भट्०मां के √गृन्थ्० : √गुण्ट्०मां, मध्य भारतीय-आर्यमां सामान्यपणे जाणीती बे प्रक्रिया — ऋकारनुं रूपान्तर अने घणुंखरुं तेनो सहचारी मूर्धन्यभाव — स्पष्टपणे जोई शकाय छे. √चुप्ट्० — √चुण्ड्० के √अर्प्० — √अर्ब्० जेवामां अघोषनुं घोषीकरण छे. प्रासानुप्राणित शब्दघडतरने आधारे केटलाक धातुओ समजावी शकाय तेम छे. आ पण एक मध्य भारतीय-आर्य वलण छे. संख्याबंध अंगो मध्य भारतीय-आर्यमांथी अंतिसंस्कार करी स्वीकारी लीधेला प्रतिरूपो ('बेकफॉर्मेशन्स') तरीके समजावी शकाय तेवा छे. बाकी केटलाक आख्यात-विस्तारना सिद्धान्तनां उदाहरणो पूरां पाडे छे.

आर्यी मध्य तेम ज अर्वाचीन भारतीय-आर्य भूमिकाओ, इरानी वगेरे इतर भारत-युरोपीय भाषाओ अने द्राविडी, मुण्डा वगेरे पडोशना भाषा-कुळो — ए सौने गणतरीमां लीधा विना 'धातुपाठो एश-आरामी विद्वानोए प्रामाणिक धातुसामग्रीमां कृत्रिम कचरो मेळवीने घडी काढ्या छे' एवो निर्णय बांधी देवो ए तद्दन अयोग्य छे. उलटुं तेमना गुणदर्शन तरीके केटलुंक गणावी शकाय तेम छे. दा. त. तेमणे आपेला धातुस्वरूपोमां कोईक वार, बीजे न जळवाई रहेलां लक्षण जळवाई रहेलां देखाय छे. पठति(<*पृथति)मां अणधार्यो अने बीजे क्यांईथी न जाणी शकाय तेवो मूळ धातुना अप-ध्वनि-रूप('एब्लाउट फॉर्मेशन')नो अवशेष छुपाएलो छे. √मस्ख्०ना स् नी

जाण आपणने धातुपाठ द्वारा ज थाय छे. ए खरुं के तेमां केटलीक भूलो पण थएली देखाय छे. दा. त. √ लज्ज्० ना मूळरूप तरीके खोटीरीते ज √ लस्ज्० आप्युं छे. पण आवा रड्याखड्या दाखला परथी धातुपाठकारो कोई लेभागु के नवशिखाउ पंडितंमन्यो हता एवा आत्यंतिक निर्णय पर आवी जवुं ए जरा पण उचित नथी.

उपसंहार

अंतमां, सूचन करवानुं के प्राचीन भारतीय - आर्यनी पाछली भूमिकामां ज मळी आवता भारत - युरोपीय अंशनुं फरी अन्वेषण करी तेने मध्य भारतीय आर्यमांथी प्रति - घडतर ('बेक फॉर्मेशन') थई प्राचीन भारतीय - आर्यमां प्रवेशेला अंश तरीके; अथवा तो बीजी भारतबाह्य भारत - युरोपीय भाषाओ- मांथी ऋणरूपे स्वीकाराएला अंश तरीके (केम के खास करीने मौर्ययुग दरमि- यान तेम ज ते पहेलां पण भारतवासीओ अने ग्रीको वच्चे केटलोक संपर्क थएलो) घटाववो ए जरूरी छे. भारतीय - आर्यनी बधीय भूमिकाओना शब्द - भंडोळनो, उक्त प्रकारनी प्रतिपादनपद्धतिए अभ्यास करवामां आवे, तो ज भारतीय - आर्यने इतिहासलक्षी भाषाशास्त्रनी महोरछाप लागे.

* * *

केटलीक शब्दशास्त्रविषयक चर्चा

ले० — श्रीयुत हरिवल्लभ भायाणी एम्. ए.

[रिसर्च फेलो — भारतीय विद्या भवन]

*

७ — 'विगत (वीगत)'

श्री नरसिंहराव[1] आ शब्दना मूळ तरीके सं० **व्यक्ति°** 'भेद' 'विवेक' '(सामान्यना विरोधमां) विशिष्ट स्वरूप' आपे छे. आ व्युत्पत्ति विश्वसनीय अने स्वीकार्य लागे ते माटे (१) आमां देखाता ध्वनिविकारो ते ते भूमिकामां प्रचलित ध्वनिवलणोने आधारे ज थयेला छे; अने (२) आवां बीजां पण समान्तर उदाहरणो मळी आवे छे — ए देखाडवानी जरूर छे.

(१) **विगत** (२) (**वीगत**) उपरांत (३) **वक्ति** (ई. स. १६०६[2]), (४) **विगत्य** ने (५) **वगत्य** (लौकिक गुजराती) ए गुजराती; तथा (६) **विगति** ने **विगत** (ई. स. १६५०) ए बे मारवाडी स्वरूपो[3] टांकी शकाय तेम छे. आ सौ अने तेमनो अरसपरस साथेनो संबंध आपणे समजाववो जोईए.

आमांथी **वक्ति** देखीतो ज एक अर्वाचीन तद्भव (के अर्धतत्सम) छे. बाकीना पण अर्वाचीन घडतरना होवाथी ए ज कोटीमां आवे. तेमनो अरसपरस संबंध आ प्रमाणे बांधी शकाय —

सं. **व्यक्ति°** {
- (१) **वक्ति** > ***वगति** (प्रा. गुज.) > **वगत्य** (लौकिक)
- (२) **विगति** (जू. प. रा.) { **विगत्य** (लौकिक) > **विगत** (शिष्ट) / **वगत्य** (लौकिक)
- (३) **वियगति** > ***विअगति** > **वीगत्य** > **वीगत**

(१) मां संयुक्त °**क्त्**°नो स्वरभेग बाटे विश्लेष ('ॲनेप्टीक्सीस'), तथा छूटा पडता पूर्वव्यंजन °**क्**°नो घोषभाव ए प्रक्रिया मारफत ***वगति** अने स्त्रीलिंगतासूचक अंत्य °**इ**°ना यश्रुतिमां विकास द्वारा **वगत्य** सधाया छे.

(२) मां संप्रसारणथी **विगति** अने °**इ**°ने स्थाने यश्रुति अने पछी तेना लोपथी **विगत्य** ने **विगत** आपणने मळे छे. (१) मां **वगत्य**ने व्युत्पन्न

---

१ नरसिंहराव — 'गुजराती लॅंग्वेज एण्ड लिटरेचर', ग्रंथ १, पा. २७९, ४२१, ४५०.

२ नरसिंहराव — एजन, पा. ४२१.

३ भारतीय विद्या, २–१, आश्विन १९९७, पा. ३४, ३५, ३६, ३७, ४०, वगेरे.

करवानी एक रीत सूचवी छे. बीजी रीते ते आ **विगति**मांथी पण आदि अक्षरना **इ**°नो परागति द्वारा **अ** थवाथी सिद्ध थई शके.

(३) मां अंतिम स्वरूप **वीगत**नो दीर्घ **ई** समजाववा माटे **व्यक्ति**°नो **वियगति** एवो असाधारण विकास कल्पवो ज रह्यो. पछी तो **य्**नो लोप °**इ**ना अनुवर्ती °**अ**°नो लोप अने पूर्वस्वरनो दीर्घभाव ए क्रमे **वीगत**नो **ई** साधवो सरळ छे.

समांतर उदाहरण तरीके जुगत्य्, जुगत, जुगति (सं. **युक्ति**°) सकत्य्[४] (सगत्य्) (सं. **शक्ति**°) पंगत्य्, पंगत (सं. **पङ्क्ति**°) आपी शकाय.

उल्लेखो –

विश्लेष माटे जुओ –

प्राकृत तथा अपभ्रंश माटे पीशल – "ग्रामाटिक" §§१३१ – १४०; तथा हेमचंद्र ८।१।१४५; ८।२।७३,७५,१०० – ११५; ८।४।८,८८,१७०, १८२,२३५,२७०,३१४,३२२; अपभ्रंश माटे ८।४।३२९ (**किलिन्नओ**), ४४२ (१) (**परावर्हिं**), ४४४ (३) (**दीहर**). जूनी पश्चिम राजस्थानी माटे टेसीटोरी – "नोट्स", § २ (३); अर्वाचीन गुजराती माटे नरसिंहराव – एजन, पा. ४०० – ४०४; २७२ – २७५; बंगाळी माटे अने सामान्यपणे चेटर्जी – 'धी ओरीजीन एन्ड डेवेलप्मेन्ट ऑफ धी बेङ्गाली लॅंग्वेज' भाग १ (१९२६), पा. ३७४ – ३७७; १७१.

°क्°ना घोषभाव माटे जुओ –

प्राकृत माटे पीशल – एजन, § २०२; तथा हेमचन्द्र – ८।१।१७७,१८२; अपभ्रंश माटे पीशल – एजन, § १९२; तथा हेमचन्द्र – ८।४।३९६,३७७ (**खयगालि**), ४२७ (**नायगु**); जूनी गुजराती माटे दवे – 'गुजराती लॅंग्वेज' (१९३५) – शब्दसूची (**आगर, उपगरण, उपगार, सुगालि** वगेरे). मराठी माटे अने सामान्यपणे जुल ब्लोक् – 'लांग मराठे' (१९१९)नुं परांजपेकृत मराठी भाषान्तर 'मराठी भाषेचा विकास' (१९४१), पा. १३६. बंगाळी माटे चेटर्जी – एजन, पा. ४४५ – ४४६,४६२.

---

४ काठियावाडना अमुक वणिक कुटुंबोमां माता अने गोत्रज माटे थता वार्षिक नैवेद्यने अंगे थती विधिमां कुटुंबनो गोर बहेनभाईने वाराफरती पूछे छे "कोण सकत्य् (सगत्य्)?" "कोण वीर"?

अंत्य °इ > यश्रुति माटे जुओ –

नरसिंहराव – एजन, पा. २२३ – २२५; दवे – एजन, पा. २७ (परिच्छेद ३) पर आपेला इकारान्त अंगोने लगतां सूचीमां आपेलां अर्वाचीन गुज० शब्दस्वरूपो.

संप्रसारण माटे जुओ –

प्राकृत माटे पीशल – एजन, § १५१; तथा हेमचन्द्र – ८।१।४६,५२,५४, ६४,७३,७४, १४९,१६५,१६६,१६७,१७०,१७१,१७२ ए सूत्रो नीचे प्रस्तुत शब्दो; जूनी पश्चिम राजस्थानी माटे टेसीटोरी – एजन, § ५२; अर्वाचीन गुजराती माटे नरसिंहराव – एजन, पा. ४२० – ४२४; मराठी माटे ब्लोक् (परांजपे) – एजन, पा. ११२ – ११३; बंगाली माटे चेटर्जी – एजन, पा. ४०६ – ४०७, ३२९ – ३३०.

शब्दान्तर्गत °इ° > °अ° माटे जुओ –

प्राकृत माटे हेमचंद्र – ८।१।८८ – ९१; पण तेनी टीका माटे पीशल – एजन, § ११५. जुनी पश्चिम राजस्थानी माटे टेसीटोरी – एजन, § ४ (१); अर्वाचीन गुजराती माटे नरसिंहराव – एजन, पा. २२५ – २२७; ग्रीअर्सन – 'ऑन धी फोनोलॉजी ऑफ धी मॉडर्न इन्डिअन आर्यन वर्नाक्युलर्स' (ZDMG, पुस्तक ४९ – ५०), § १२० – २३; मराठी माटे अने सामान्यपणे ब्लोक् (परांजपे) – एजन, पा. ७६ – ७७; बंगाळी माटे चेटर्जी – एजन, पा. ३३२ – ३३.

व्य > विय° माटे सरखावो –

अर्धमागधी **दुवालस** (हेमचंद्र ८।२।२५४) **दुवार, दुआर;** गुज. **सुवास** (लौकिक) < **श्वास.** प्रा. **चियत्त** < ***तियत्त** < **त्यक्त°;** प्रा. **चिच्चा** < ***तिइत्त्वा** < **तियत्त्वा** < **त्यक्त्वा** (पीशल – एजन, § २७९. पा. १९३) तेम ज हेमचंद्र – ८।२।१०७.

इय° < इअ °< ई माटे जुओ –

टेसीटोरी – एजन, § १५; दवे – एजन, पा. १४; **नरसिंहराव – एजन,** पा. ४४३ तथा ४१४ – ४१९; चेटर्जी – पा. ३०२ – ३,३०७,३५२.

*

८—'रांदल'

आ शब्दना मूळ तरीके पंडित बेचरदासे **रत्नादेवी** योग्य रीते ज सूचव्यो छे.[5] अहीं तेना विशे केटलीक वधारे चर्चा करी छे.

मोनीअर विलियम्सनो संस्कृत कोश **रत्नादेवी** 'सूर्यपत्नी' ए शब्द नथी आपतो. मात्र तेने **राजतरङ्गिणी**मां आवती एक राजकुंवरीना नाम तरीके नोंधे छे. एटले **रत्ना** के **रत्नादेवी** ए 'सूर्यपत्नी'ना अर्थमां प्राचीन के बहु प्रचलित होय एम नथी लागतुं. पंडित बेचरदासे निर्देश कर्यो छे तेम हेमचंद्र (१२मी सदी)ना **योगशास्त्र**मां **रत्नादेवी** शब्दनो "सूर्यपत्नी" ए अर्थमां उपयोग थयो छे. आ पछी तेरमी सदीना बे उल्लेखो मळे छे.[6] नगरा गाममां भीडभंजनना दहेरामांनी सूर्यमूर्तिने जमणे तेम ज डाबे पडखे स्त्रीनी एक एक मूर्ति छे. जमणी मूर्तिना चरण नीचे एवा अर्थनुं उत्कीर्ण लखाण मळे छे के नारद मुनिना वसावेला नगरा गाममां जूनुं जयादित्यनुं देवळ घणा वरसादथी संवत् ९०३ना वरसमां पडी गयुं. ते पछी वस्तुपाळे रत्नादेवीनी मूर्ति करावी. डाबी तरफनी मूर्ति नीचे पण एवुं ज लखाण छे; तेमां उपरोक्त देवळम रत्नादेवीनी मूर्ति नाश पामी एटले वस्तुपाळे संवत् १२९२मां तेनी फरी स्थापना करी होवानुं कह्युं छे. आ उपरथी ते समे रांदलपूजा ठीक ठीक प्रचारमां होय एम जणाय छे.

गुजरातीमां **रन्नादे, रानादे, रान्दल, रान्देल, रान्देर** एवा पांचेक-मूळ शब्दो मळे छे. तेमांथी पहेलो **रत्नादेवी** > प्रा. ***रन्नादेवी** > ***रन्नादेई** > **रन्नादे** ए क्रमे सधायो छे. तेमां **रयणादेवी**ने एक वधारेना अवान्तर पद तरीके धारवानी जरूर नथी. **रन्नादे**मांथी सीधुं **रानादे** थयुं छे. धार्मिक वपराशना शब्दो भाषाना बीजा वाचको ('वॉकेबल्स') करतां वधारे प्राचीन स्वरूपमां जळवाई रहेता होवाने लीधे **रन्नादे**मां, स्वाभाविक रीते थवा जोईतां संयोगलोप अने पूर्वस्वरदीर्घत्व नथी थयां. पछीनो **रान्दल**, **रत्ना** > **रन्ना** > ***रान; रान + ०ल्ल = रानल्ल** > **रानल** > **रान्दल** ए रीते सिद्ध थयो होय ए घणुं ज शक्य छे. **रन्नादेल**ना त्वरित उच्चारणथी **रान्दल** साधवामां ध्वनि-

---

५ भारतीय विद्या: १–२, मार्च १९४०, पा. १५६.

६ 'भावनगर प्राचीन शोधसंग्रह'–नं. १६२–६३; दुर्गाशंकर के. शास्त्री–'गुजरातनो मध्यकालीन राजपुत इतिहास' भाग २ (१९३९), पा. ३९३.

दृष्टिए केटलीक मुश्केली छे, ज्यारे उपरोक्त रीते **रानलना** विकास तरीके **रान्दल** स्वाभाविक लागे छे, केम के, नीचे नोंध्युं छे तेम तेनां समान्तर उदाहरणो मळी आवे छे.

रान्देल समजाववो जरा मुश्केल छे. पण तेना ०दे०ने **०देवी०ना ०दे०** साथे कांई संबंध होय ए ध्वनिदृष्टिए ओछुं शक्य लागे छे. ***रान+०ल्ल** एम उपर **रान्दलनुं** मूळ सूचव्युं, तेमां स्त्रीलिंगदर्शक **०आनो** अंगमांथी लोप थयो छे. पण बीजां स्त्रीलिंग अंगोनी असर नीचे ***रान०नुं** स्त्रीलिंग सूचववा तेने नवो प्रत्यय लाग्यो होय अने तेथी ***रान + ल्ली > रानल्य > रान्दल्य > रान्देल** ए प्रमाणे शब्दावतारनो क्रम होय. जेम **रान्दल** ने **रान्देल छे,** कंइक ते ज प्रमाणे **वाघण्य** ने **वाघेण, भरवाडण्य** ने **भरवाडेण** वगेरे छे. आ सौमां अंत्य यश्रुति उपान्त्य अक्षर पर प्रतिबिंबित थाय छे, अने **सौन्दर्य०** > प्रा. **सुन्देर, ब्रह्मचर्य०** > प्रा. **बम्भचेर,** वगेरे; के जू. प. रा. **घिन < घन्य०, चाणिक < चाणक्य०,** वगेरे; के **बोल्यो** > (प्रान्तिक) **बोइलो, मार्युं** > (प्रान्तिक) **माइरुं,** वगेरेनी जेम प्रतिबिम्बिता ('एपेन्थी-सीस')ना नियम अनुसार ए सौ सधाया छे. **वाघण्य** वगेरेमां मूळरूप ईका-रान्त होवाथी यश्रुति छे, ज्यारे **रान्दलना** मूळमां रहेलुं **रन्ना** अंग आकारान्त होवाथी तेमां यश्रुति नथी. वळी **वाघेण** वगेरेमांनो उपान्त्य **ए** (आपणे त्यां प्रचलित परिभाषा प्रमाणे) विवृत छे ज्यारे **रान्देलमां** ते संवृत छे, तेनुं कारण **वाघेण** वगेरेना नासिक्य ध्वनि णमां छे. जूज अपवादो बाद करतां अर्वाचीन गुजरातीमां सर्वत्र नासिक्य ध्वनिनी पहेलाना **ए** अने **ओ** विवृत ज उच्चाराय छे.

बाकी रहेलो **रान्देर,** उच्चारण-भेदनुं अथवा तो **रान्देर** जेवा स्थळनामना संगदोषनुं परिणाम होय एम मानवा सिवाय, बीजी कोई रीते समजावी शकाय तेम लागतुं नथी.

उल्लेखो –

व्‍०ना लोप माटे

प्राकृत माटे पीशल – एजन § १८६; हेमचंद्र – ८।१।१७७; जूनी पश्चिम राजस्थानी माटे टेसीटोरी – एजन, § ३५; स्त्रीलिंगी अंगोना अंत्य **आ** ना **अ** माटे हेमचंद्र – ८।१।३२९,३३०.

शब्दमध्य रहेला नासिक्य वर्णो पछी वर्गतृतीयना आगम माटे–

°म्र > * °म्ब्र > °म्बिर पीशल–एजन, § २९५; हेमचंद्र–८।२।५६, ८।४।३७६ (१). टर्नर–'गुजराती फोनोलॉजी', § ८४; ब्लोक (परांजपे)–एजन, § १२३, पा. १६१; नरसिंहराव–एजन, पा. ३२८–३३३.

°ल्ल° > ल° माटे–

°अल्ल प्रत्यय माटे पीशल–एजन § ३९५, पा. ४०४; हेमचंद्र–८।२।१६५. अर्वाचीन गुजराती 'नणदल' 'बगलुं' 'जगलो' 'जोएल' वगेरे-मांनो **°ल** प्रत्यय मूळ **°ल्ल**मांथी ज आवी शके; मूळना **°ल** नो अर्वा० गुज **°**मां °ळ थाय छे. जुओ टर्नर–'गुजराती फोनोलोजी' § ७०; नरसिंहराव–एजन पा. ३६२–३६८.

९–"साधु" वाणियो

गुजरात-काठियावाडना धर्मिष्ठ हिंदुओमां सत्यनारायणनी कथा करवानो प्रचार छे. ते कथामां सत्यनारायण देवे करेली माणसोनी सत्यपरीक्षानां जे केटलांक दृष्टान्तो छे, तेमांनुं एक "साधु"–वाणियानुं छे. आ साधु–वाणियो परदेशथी द्रव्य रळी, वहाणमां भरी स्वदेश तरफ प्रयाण करे छे, त्यारे मार्गमां तेनी सत्यपरीक्षा करवामां आवे छे. आमांथी अहीं आपणने मात्र "साधु" ए शब्द ज प्रस्तुत छे. वाणियाने "साधु" केम कह्यो ते कंई समजातुं न हतुं. सं० **साधु**°नो अर्थ 'सारो' 'भलो' वगेरे थाय छे, पण ते उपाधि वाणियाने लगाडवामां कांई खास औचित्य होय एवुं नहोतुं लागतुं. अचानक ज केटलीक माहिती अथडाता, आ बाबत पर प्रकाश पड्यो. संस्कृत **साधु**°ना उपरोक्त अर्थ उपरांत "झवेरी" तेम ज "वेपारी" "शराफ" "शावकार" एवा अर्थ पण कोशकारोए नोंधेला छे.[७] अने प्रस्तुत कथामां आ "वेपारी" के "शावकार" अर्थ उद्दिष्ट छे.

आमां एटलुं लक्षमां राखवानुं छे के **साधु**°ना "वेपारी" वगेरे अर्थो पाछळना समयमां विकसेला छे, केम के ते अर्थमां ए शब्दनो सामान्यपणे शिष्टकालीन संस्कृतमां वपराश नथी मळतो. पण **साधु**°ना अर्वाचीन भारतीय-आर्य अवतारो "वेपारी" वगेरे नवा विकसेला अर्थोमां ज वपराय छे. हिंदी **साहु**; पंजाबी **साऊ**; सिंधी **साहू, साऊ**; गुजराती **साहु, साउ, साहुकार,**

७ मोनीयर विलिअम्स : 'संस्कृत-इंग्लीश डिक्शनरी' पा १२०१, साधु शब्द नीचे.

साउकार, सावकार, शावकार; मराठी **साऊ, साव;** बंगाली **साहुकार,** नेपाळी **साउ, साहु**—सं. **साधु॰**, प्रा. **साहु**मांथी नीपजेला आ शब्दो[8] सामान्यपणे "सन्मान्य गृहस्थ" "शराफ" "धीरधार करनार" एवा अर्थमां प्रयोजाय छे.

आमां गुजराती (१) **साउ** ए स्वरूप सं. **साधु॰** > प्रा. **साहु** > जू. प. रा. ***स्हाउ** >**साउ** ए क्रमे, (२) तेमांथी **साउ + ॰कार** < [प्रतिसंप्रसारण द्वारा] **सावकार** अने (३) तेना समानार्थ फारसी **शाह** (दा. त. **शाहसोदागर**) ए शब्दना आदि ध्वनिनी असरथी **शाहुकार** के **शावकार** सधाया छे.

उल्लेखो—

हूनी पीछेहठ अने लोप माटे—

नरसिंहराव—एजन, पा २८४–३०८.

प्रतिसंप्रसारण माटे—

'टर्नर—गुजराती फोनोलॉजी' §२७ (४), २९,४९; नरसिंहराव—एजन पा. १२५–१२८; ०**कार** माटे सरखावो अ. गु. 'सूनकार' (=शून्य).

१०—तब, तबे, वगेरे.

पंडित बेचरदासे **तब, कब** वगेरेना मूळ विशे माहिती मागी छे.[9] श्री सुनीतिकुमार चेटर्जीना ग्रंथ 'धी ओरिजीन एन्ड डेवेलप्मेन्ट ओफ धी बेङ्गाली लेंग्वेज' भाग २ (१९२६), पा. ८५६–८५७, परिच्छेद ६०२ मांथी आ विषयमां प्रस्तुत अंशनो सार अहीं आप्यो छे.

बंगाळीना **तबे, एबे, जबे, कबे**ने मळतां व्रजमां **तबै, अबै—अबे, जबै, कबै;** आसामीमां **तेबे, एबे, जेबे, केबे;** ने हिंदीमां **तब, अब, जब, कब** छे. आमां ॰**ए**कारान्त के ॰**ऐ**कारान्त रूपो सप्तमीना होवा जोईए. सप्तमीनो प्रत्यय ॰**ए**, ॰**ऐ** < **अहि, अहिँ** एम समजावी शकाय. एटले ए रूपोने आधारे आपणे ***तब॰** (**तेॅब॰**), **ऍब॰**, ***जब॰** (***जेॅब॰**), ***कब॰** (**केॅब॰**)

---

८ ब्लोक (परांजपे)—एजन, पा. ४६२, साव शब्द नीचे; टर्नर—'नेपाली डिक्शनरी' पा. ५९५, साउ शब्द नीचे.

९ 'शिक्षण अने साहित्य', ओक्टो. १९४१, पा. १८; वळी जुओ टर्नर—'नेपाली डिक्शनरी', पा. १८ अब नीचे.

अने सप्तमीना ***तब्बहि** (***तेंबहि**), **ऍंबहि**, वगेरेने मूळना शौरसेन के मागध अपभ्रंश रूपो तरीके कल्पी शकीए.

वैदिक भाषामां **एव**, **एवा** ए अव्ययनो मूळ अर्थ 'आवी रीते' थतो; पछीथी ते मात्र भारदर्शक तरीके ज वपरावा लाग्यो, ज्यारे 'आवी रीते' ए अर्थ दर्शाववा वैदिक समयना पाछळना भागमां, कदाच **एव**, **एवा**नुं विस्तीर्ण रूप **एवम्** वपरावा लाग्युं. आ **एवम्** नुं मध्य भारतीय-आर्यना बीजा थरमां **ऍंवं** थयुं, अने तेना स्वरूपान्तर तरीके ***ऍंबं**, **ऍंबा** पण ते समये वपराशमां होवा जोईए, अने तेमना मूळना रीतिवाचक अर्थमांथी कालवाचक अर्थ विकस्यो होवो जोईए. आ कालवाचक अर्थना दृढीकरण माटे ते शब्दने सप्तमीनो प्रत्यय लगाडवामां आव्यो होय (**ऍंबहिँ** ***ऍंबहि**).

अपभ्रंश भूमिकामां आ **ऍंबहिँ**, **ऍंबहि**नो सार्वनामिक अंग **ए० < एत०** साथे जाणे के ते तेमांथी सधायुं होय तेम मेळ बेसी गयो होय. मध्य भारतीय-आर्यनी शरूआतनी भूमिकामां ***तेवं**, ***येवं**, ***केवं** जेवा बीजा सार्वनामिक क्रियाविशेषणो सादृश्ये घडायां होय ए घणुं ज संभवित छे. आमांथी ***तेंवं** > ***तेंबं**, वगेरे थया होय; अने °अकारान्त सार्वनामिक अंगो **त°**, **य°**, **क°** पूर्व अंश तरीके मूकातां ***तवं** > ***तबं**, वगेरे सधायां होय. आम ए सौ **एव**, **एवम्** > **ऍवं** ना आधारे घडायां छे. **अबे**, **अब** ए **अ°** वाळां रूप **एबै**, **एबे**ना क्षीण थवाथी थयां होय एम लागे छे.

आ कल्पनाने आधार आपे तेवां केटलांक रूपो खरेखर हेमचंद्रना प्रतीच्य अपभ्रंशमां मळी आवे छे. **एव** ने आधारे घडाएला ***तेव**, ***येव**, ***केव** एमां रहेला °**व्**° ना नासिक्यभावथी **एंव=एवँ**; **तेंव=तेवँ**; **जेंव=जेवँ**, **जिवँ**; **केंव=केवँ**, **किवँ** ए सौ सधायां छे. अर्वाचीन भारतीय-आर्यमां आ रीतिदर्शक क्रियाविशेषणोना वंशजो मळी आवे छे.[10] आ क्रियाविशेषणोनां सप्तम्यन्त रूपो कालसूचक क्रियाविशेषणो तरीके प्रतीच्य अपभ्रंशमां वपरातां. हेमचंद्रमां ज **एवँहिँ** टांकेलुं मळे छे. एटले उपर सूचवेला **अबे**, **एबे** ना उद्भवक्रम माटे आथी पुष्टि मळे छे.

*

---

१० उ. त. गुजराती **एम**, **कॅम**, **जॅम**, **तॅम**. आम गुजराती शब्दोनी व्युत्पत्ति पर पण प्रकाश पडे छे.

प्राकृत भाषाका मदनमुकुट कामशास्त्र

ले० – श्रीयुत अगरचंदजी नाहटा; बीकानेर

प्राकृत भाषामें जैनेतर विद्वानोंके रचित मौलिक ग्रंथोंका प्रायः अभाव सा है। कुछ ग्रन्थ रचे गये अवश्य हैं पर खोज-शोधके अभावसे हमें अद्यावधि उनका कोई पता नहीं है। इस वर्ष बीकानेर स्टेट लायब्रेरीके* हस्तलिखित ग्रंथोंका अवलोकन करते समय, प्राकृत भाषाके जैनतर ग्रन्थ नजर आये; †जिनमेंसे "लीलावती" नामक कथा-ग्रंथकी प्रतियाँ तो अलग भी उपलब्ध हैं पर दूसरा "मदनमुकुट" नामक कामशास्त्र नया ही उपलब्ध हुआ। उसी ग्रन्थका परिचय इस लघुटिप्पणीद्वारा कराया जा रहा है।

प्रस्तुत ग्रंथकी प्रति व्याकरण विषयक बंडलके भीतर बंधी हुई थी। मेरे ख्यालसे मेरे अवलोकनसे पूर्व इस स्वतंत्र ग्रंथके अस्तित्वका कोई पता नहीं था। क्योंकि यह व्याकरण विषयक पत्रोंमें संलग्नरूपसे लिखित है। इस प्रतिके प्रथम पत्रके प्रथम A पृष्ठमें "इति आख्यातप्रकरणे परसूत्राणि समाप्तानि" लिखा है। B पृष्ठसे इस ग्रंथका प्रारंभ होता है और इसके केवल ५ ही पत्र उपलब्ध हैं। अतः यह ग्रंथ यहां अपूर्ण है। विद्वानोंसे अनुरोध है कि इस ग्रंथकी पूर्ण प्रति कहीं उपलब्ध हो तो सूचित करनेकी कृपा करें।

मदनमुकुटका प्रारंभ

तियलोयं कुसुमसिलीमुहेहि जो जियइ तणुविमुक्कोवि।
सो भीमरूपतवभंगकारणो जयइ पंचसरो ॥ १ ॥
सो जयउ मयणराओ अलिउलकुलबहलपरियणो जस्स।
मलयाणिलमत्तगइंदसंठिओ कुसुमधणुधरणो ॥ २ ॥
आसि पुर सिंधुतीरे माणिणिमाणिक्कमहाउरम्मि कयनिलओ।
वेओअहिपारगओ विप्पवरो गोसलो नाम ॥ ३ ॥
संसारे मयणमहंधयारे दीउव्व पयडियपहावं।
नामेण मयणमउडं पयासियं तेण मणहरणं ॥ ४ ॥
जो पढइ मयणमउडं अत्थविहूणो वि रूवरहिओ वि।
सो सयलकामिणीणं पाणसमो वल्लहो होइ ॥ ५ ॥
जुवई य पुरंधीओ अन्ना जा का वि पोढमहिलाओ।
दास व्व जत्थ मुणिए वहंति तं पयडियं पयं ॥ ६ ॥

प्रथमपरिच्छेद० – पद्मिनी आदि ४ स्त्रीलक्षण

इति मयणमउडे पढमो परिछेओ ॥ गाथा – २७

द्वितीयपरिच्छेद० – चन्द्रकला पुरुषलक्षण

इअ मयणमउडे बीओ परिच्छेओ ॥ गाथा – १० से ५०

ग्रंथकर्त्ता – सिंधुनदीतीरवर्ती माणिकपुरनिवासी गोसल विप्र।

प्रान्त – ८१ वीं गाथा –

धम्मिलबंधयमिसेण थणहरं किंपि पयडए नाहि।
मुत्तूण निबिडगंठि, कु ....॥ ८१ ॥

पउमचरिय और पद्मचरित

[प्राकृत और संस्कृत दोनों जैन रामायणोंकी तुलना]

ले० – श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी

*

परिचय

आचार्य रविषेणका **पद्मचरित**[1] (पद्मपुराण) संस्कृतका बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है और उसका हिन्दी अनुवाद तो उत्तर भारतके जैनोंमें घर घर पढ़ा जाता है, परन्तु विमलसूरिके **पउमचरिय**को[2] बहुत ही कम लोग जानते हैं, क्यों कि एक तो वह प्राकृतमें है और दूसरे उसका कोई अनुवाद नहीं हुआ।

रविषेणने पद्मचरितकी रचना महावीर भगवान्के निर्वाणके १२०३ वर्ष छह महीने बाद अर्थात् वि० सं० ७३४ के लगभग[3] और विमलसूरिने वीर नि० सं० ५३० या वि० सं० ६० के लगभग की थी[4]। इस हिसाबसे पउमचरिय पद्मचरितसे ४७४ वर्ष पहलेकी रचना है। जिस तरह पउमचरिय प्राकृत जैन-कथा-साहित्यका सबसे प्राचीन ग्रन्थ है, उसी तरह पद्मपुराण संस्कृत जैन-कथा-साहित्यका सबसे पहला ग्रन्थ है।

विमलसूरि राहू नामक आचार्यके प्रशिष्य और विजयाचार्यके शिष्य थे[5]। विजय नाइलकुलके थे। इसी तरह रविषेण अर्हन्मुनिके प्रशिष्य और लक्ष्मण-सेनके शिष्य थे। अर्हन्मुनिके गुरु दिवाकर यति और उनके गुरु इन्द्र थे[6]।

---

१ माणिकचन्द्र-जैन-ग्रन्थमाला, बम्बई, द्वारा प्रकाशित।

२ जैनधर्मप्रसारक सभा, भावनगर, द्वारा प्रकाशित।

३ द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्धचतुर्थवर्षयुक्ते।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धे चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ॥ १८५ ॥

४ पंचेव वाससया दुसमाए तीसवरससंजुत्ता।
वीरे सिद्धिमुवगए तओ निबद्धं इमं चरियं ॥ १०३ ॥

५ राहू नामायरिओ स-समय-परसमयगहियसब्भाओ।
विजओ य तस्स सीसो नाइलकुलवंसनंदियरो ॥ ११७ ॥
सीसेण तस्स रइयं राहवचरियं तु सूरिविमलेण।
सोऊणं पुव्वगए नारायण-सीरि-चरियाइं ॥ ११८ ॥

६ आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनिः।
तस्माल्लक्ष्मणसेनसन्मुनिरदःशिष्यो रविस्तुस्मृतः ॥ ६९ ॥

नाइलकुलका उल्लेख नन्दिसूत्र-पट्टावलीमें मिलता है। भूतदिन्न आचार्यको भी – जो आर्य नागार्जुनके शिष्य थे – 'नाइलकुलवंशनंदिकर' विशेषण दिया गया है। जैनागमोंकी नागार्जुनी वाचनाके कर्त्ता यही माने जाते हैं। मुनि श्रीकल्याणविजयजी आर्य स्कन्दिल और नागार्जुनको लगभग समकालीन मानते हैं[1] और आर्य स्कन्दिलका समय वि० सं० ३५६ के लगभग है। पुष्पिकामें विमलसूरिको पूर्वधर कहा है।

रविषेणने न तो अपने किसी संघ या गण-गच्छका कोई उल्लेख किया है और न स्थानादिकी ही कोई चर्चा की है। परन्तु सेनान्त नामसे अनुमान होता है कि शायद वे सेनसंघके हों; यद्यपि नामोंसे संघका निर्णय सदैव ठीक नहीं होता। इनकी गुरुपरम्पराके पूरे नाम इन्द्रसेन, दिवाकरसेन, अर्हत्सेन और लक्ष्मणसेन होंगे, ऐसा जान पड़ता है।

उद्योतनसूरिने अपनी कुवलयमालामें – जो वि० सं० ८३५ की रचना है – विमलसूरिके **'विमलांक'**[2] (पउमचरिय) और **'हरिवंश'** इन दो ग्रन्थोंकी तथा रविषेणके पद्मचरितकी[3] (जटिलमुनिके वरांगचरितकी भी) प्रशंसा की है[4]। इससे मालूम होता है कि उनके सामने ये दोनों ही ग्रन्थ मौजूद थे[5]। हरिवंशको उन्होंने 'प्रथम' कहा है जिसका अर्थ संभवतः यह है कि हरिवंशकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें सबसे पहले उन्हींने लिखा।

---

१ देखो, 'वीर-निर्वाण-संवत् और जैन-कालगणना', नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १०-११

२ जारिसयं विमलंको विमलं को तारिसं लहइ अत्थं।
अमयमइयं च सरसं सरसं चिय पाइयं जस्स ॥ ३६ ॥

बुहयणसहस्सदइयं हरिवंसुप्पत्तिकारयं पढमं।
वंदामि वंदियं पि हु हरिवंसं चेव विमलपयं ॥ ३८ ॥

३ जेहिं कए रमणिज्जे वरंग-पउमाण चरियवित्थारे।
कहव ण सलाहणिज्जे ते कइणो जडिय-रविसेणे ॥ ४१ ॥

४ पुन्नाटसंघीय जिनसेनने और अपभ्रंश भाषाके कवि धवलने रविषेणके बाद जटिल-मुनिका उल्लेख किया है, इससे अनुमान होता है कि जटा-सिंहनन्दिका वरांगचरित शायद रविषेणके पद्मचरितके बादका हो।

५ पउमचरियकी, वि० सं० ११९८ में जयसिंहदेवके राज्य-कालमें, भड़ोचमें लिखी गई एक ताडपत्रीय प्रति उपलब्ध है। (देखो जैसलमेरके ग्रन्थ-भंडारकी सूची, पृ० १७)

आचार्य जिनसेन (पुन्नाटसंघीय) ने भी अपने हरिवंशपुराण (वि० सं० ८४०) में — जो उद्योतनसूरिके पाँच वर्ष बाद ही की कृति है — रविषेणके पद्मचरितकी प्रशंसा[1] की है।

प्राकृतका पल्लवित छायानुवाद

दोनों ग्रन्थकर्ताओंने अपने अपने ग्रन्थमें रचनाकाल दिया है, उससे यह स्पष्ट है कि पउमचरिय, पद्मपुराणसे पुराना है और दोनों ग्रन्थोंका अच्छी तरह मिलान करनेसे मालूम होता है कि पद्मपुराणके कर्त्ताके सामने पउमचरिय अवश्य मौजूद था। पद्मपुराण एक तरहसे प्राकृत पउमचरियका ही पल्लवित किया हुआ संस्कृत छायानुवाद है। पउमचरिय अनुष्टुप् श्लोकोंके प्रमाणसे दस हजार है और पद्मचरित अठारह हजार। अर्थात् प्राकृतसे संस्कृत लगभग पौने दो गुना है। प्राकृत ग्रन्थकी रचना आर्या छन्दमें की गई है और संस्कृतकी प्रायः अनुष्टुप् छन्दमें, इसलिए पद्मपुराणमें पद्य तो शायद दो गुनेसे भी अधिक होंगे। छायानुवाद कहनेके कुछ कारण —

१ दोनोंका कथानक बिल्कुल एक है और नाम भी एक हैं।

२ पर्वों या उद्देसों तकके नाम दोनोंके प्रायः एकसे हैं।

३ हरएक पर्व या उद्देसके अन्तमें दोनोंने छन्द बदल दिये हैं।

४ पउमचरियके प्रत्येक उद्देसके अन्तिम पद्यमें 'विमल' और पद्मचरितके अन्तिम पद्यमें 'रवि' शब्द अवश्य आता है। अर्थात् एक **विमलाङ्क** है और दूसरा **रव्यङ्क**।

५ पद्मचरितमें जगह जगह प्राकृत आर्याओंका शब्दशः संस्कृत अनुवाद दिखलाई देता है। ऐसे कुछ पद्य इस लेखके परिशिष्टमें नमूनेके तौरपर दे दिये गये हैं और उसी तरहके सैकड़ों और भी दिये जा सकते हैं।

पल्लवित कहनेका कारण यह है कि मूलमें जहाँ स्त्री-रूपवर्णन, नगर-उद्यानवर्णन आदि प्रसंग दो चार पद्योंमें ही कह दिये गये हैं वहाँ अनुवादमें ड्योढ़े-दूने पद्य लिखे गये हैं। इसके भी कुछ नमूने अन्तमें दे दिये गये हैं।

पउमचरियके कर्त्ताने चौथे उद्देसमें ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति बतलाते हुए कहा है कि — जब भरत चक्रवर्तीको मालूम हुआ कि वीर भगवानके अवसानके बाद

---

[1] कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता।
मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया॥ ३४॥

ये लोग कुतीर्थी पाषण्डी हो जायँगे और झूठे शास्त्र बनाकर यज्ञोंमें पशुओंकी हिंसा करेंगे, तब उन्होंने उन्हें शीघ्र ही नगरसे निकाल देनेकी आज्ञा दे दी, और इस कारण जब लोग उन्हें मारने लगे, तब ऋषभदेव भगवानने भरतको यह कहकर रोका कि हे पुत्र, इन्हें 'मा हण, मा हण' = मत मारो, मत मारो, तबसे उन्हें 'माहण' कहने लगे।[1]

संस्कृत 'ब्राह्मण' शब्द प्राकृतमें 'माहण' (ब्राह्मण) हो जाता है। इसलिए प्राकृतमें तो उसकी ठीक उपपत्ति उक्त रूपसे बतलाई जा सकती है परन्तु संस्कृतमें वह ठीक नहीं बैठती। क्यों कि संस्कृत 'ब्राह्मण' शब्दमेंसे 'मत मारो' जैसी कोई बात खींच-तानकर भी नहीं निकाली जा सकती। संस्कृत 'पद्मपुराण'के कर्त्ताके सामने यह कठिनाई अवश्य आई होगी, परन्तु वे लाचार थे। क्यों कि मूल कथा तो बदली नहीं जा सकती, और संस्कृतके अनुसार उपपत्ति बिठानेकी स्वतंत्रता कैसे ली जाय? इस लिए अनुवाद करके ही उनको सन्तुष्ट होना पड़ा—

> **यस्मान्मा हननं पुत्र कार्षीरिति निवारितः।**
> **ऋषभेण ततो याता 'माहना' इति ते श्रुतिम्॥ ४-१२२**

इस प्रसंगसे यही जान पड़ता है कि प्राकृत ग्रन्थसे ही संस्कृत ग्रन्थकी रचना हुई है।

परन्तु इसके विरुद्ध कुछ लोगोंने यह कहने तकका साहस किया है कि संस्कृतसे प्राकृतमें अनुवाद किया गया है। परन्तु मेरी समझमें वह कोरा साहस ही है। प्राकृतसे तो संस्कृतमें बीसों ग्रन्थोंके अनुवाद हुए हैं[2] बल्कि सारा का सारा प्राचीन जैनसाहित्य ही प्राकृतमें लिखा गया था। भगवान् महावीरकी दिव्यध्वनि भी अर्धमागधी प्राकृतमें ही हुई थी। संस्कृतमें ग्रन्थ-रचना करनेकी ओर तो जैनाचार्योंका ध्यान बहुत पीछे गया है और संस्कृतसे प्राकृतमें अनुवाद किये जानेका तो शायद एक भी उदाहरण नहीं है।

---

१ मा हणसु पुत्त एए जं उसमजिणेण वारिओ भरहो।
तेण इमे सयल जिय वुच्चंति य 'माहणा' लोए॥ ४-८४॥

२ उदाहरणार्थ भगवती आराधना और पंचसंग्रहके अमितगतिसूरिकृत संस्कृत अनुवाद, देवसेनके भावसंग्रहका वामदेवकृत संस्कृत अनुवाद, अमरकीर्तिके 'छक्कमोवएस' का संस्कृत 'षट्कर्मोपदेश-माला' नामक अनुवाद, सर्वनन्दिके लोकविभागका सिंहसूरिकृत संस्कृत अनुवाद, आदि।

इसके सिवाय प्राकृत पउमचरियकी रचना जितनी सुन्दर, स्वाभाविक और आडम्बररहित है, उतनी संस्कृत पद्मचरितकी नहीं है। जहाँ जहाँ वह शुद्ध अनुवाद है, वहाँ तो ख़ैर ठीक है, परन्तु जहाँ पल्लवित किया गया है वहाँ अनावश्यक रूपसे बोझिल हो गया है। उदाहरणके लिए अंजना और पवनंजयके समागमको ले लीजिए। प्राकृतमें केवल चार पाँच आर्या छन्दोंमें ही इस प्रसंगको सुन्दर ढंगसे कह दिया गया है, परन्तु संस्कृतमें बाईस पद्य लिखे गये हैं और बड़े विस्तारसे आलिंगन-पीडन, चुम्बन, दशनच्छद, नीवी-विमोचन, सीत्कार आदि काम-कलायें चित्रित की गई हैं जो अश्लीलताकी सीमा तक पहुँच गई हैं।

पउमचरियके रचनाकालमें सन्देह

विमलसूरिने स्वयं पउमचरियकी रचनाका समय वीर नि० सं० ५३० (वि० ६०) दिया है; परन्तु कुछ विद्वानोंने इसमें सन्देह किया है। डा० हर्मन जाकोबी उसकी भाषा और रचना-शैली परसे अनुमान करते हैं कि वह ईसाकी चौथी पाँचवीं शताब्दीसे पहलेका नहीं हो सकता[1]। डा० कीथ,[2] डा० बुल्नर[3] आदि भी उसे ईसाकी तीसरी शताब्दीके लगभगकी या उसके बादकी रचना मानते हैं। क्यों कि उसमें 'दीनार' शब्दका और ज्योतिषशास्त्रसम्बन्धी कुछ ग्रीक शब्दोंका उपयोग किया गया है। स्वर्गस्थ दी० ब० केशवलाल ध्रुवने तो उसे और भी अर्वाचीन कहा है। वे छन्दोंके क्रम-विकासके इतिहासके विशेषज्ञ माने जाते थे। इस ग्रन्थके प्रत्येक उद्देसके अन्तमें जो गाहिणी, शरभ आदि छन्दोंका उपयोग किया गया है, वह उनकी समझमें अर्वाचीन है। गीतिमें यमक और सर्गान्तमें 'विमल' शब्दका आना भी उनकी दृष्टिमें अर्वाचीनताका द्योतक है। परन्तु हमें इन दलीलोंमें कुछ अधिक सार नहीं दिखता। ये अधिकतर ऐसे अनुमान हैं जिनपर बहुत भरोसा नहीं रक्खा जा सकता; ये गलत भी हो सकते हैं और जब स्वयं ग्रन्थकर्त्ता अपना समय दे रहा है, तब अविश्वास करनेका कोई कारण भी तो नहीं दिखता। इसके सिवाय डा० विंटरनीज़, डा० लायमन, आदि विद्वान् वीर नि० ५३० को ही पउमचरियकी रचनाकाल मानते हैं। न माननेका उनकी समझमें कोई कारण नहीं है।

---

१ 'एन्साइक्लोपिडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स' भाग ७, पृ० ४३७ और 'मॉडर्न रिव्यू' दिसम्बर सन् १९१४। २ कीथका संस्कृत साहित्यका इतिहास। ३ इन्ट्रोडक्शन टु प्राकृत।

रामकथाकी विभिन्न धाराएँ

रामकथा भारतवर्षकी सबसे अधिक लोकप्रिय कथा है और इसपर विपुल साहित्य निर्माण किया गया है। हिन्दू, बौद्ध और जैन इन तीनों ही प्राचीन सम्प्रदायोंमें यह कथा अपने अपने ढँगसे लिखी गई है और तीनों ही सम्प्रदायवालोंने रामको अपना अपना महापुरुष माना है।

अभी तक अधिकांश विद्वानोंका मत यह है कि इस कथाको सबसे पहले वाल्मीकि मुनिने लिखा और संस्कृतका सबसे पहला महाकाव्य (आदि काव्य) वाल्मीकि-रामायण है। उसके बाद यह कथा महाभारत, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, अग्निपुराण, वायुपुराण आदि सभी पुराणोंमें थोड़े थोड़े हेर फेरके साथ संक्षेपमें लिपिबद्ध की गई है। इसके सिवाय अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण आदि नामसे भी कई रामायण-ग्रन्थ लिखे गये। बृहत्तर भारतके जावा, सुमात्रा आदि देशोंके साहित्यमें भी इसका अनेक रूपान्तरोंके साथ विस्तार हुआ।

अद्भुत-रामायणमें सीताकी उत्पत्तिकी कथा सबसे निराली है। उसमें लिखा है कि दण्डकारण्यमें गृत्समद नामके एक ऋषि थे। उनकी स्त्रीने प्रार्थना की कि मेरे गर्भसे साक्षात् लक्ष्मी उत्पन्न हो। इसपर उसके लिए वे एक घड़ेमें प्रतिदिन थोड़े थोड़े दूधको अभिमंत्रित करके रखने लगे कि इतनेमें एक दिन वहाँ रावण आया और उसने ऋषिपर विजय प्राप्त करनेके लिए अपने बाणोंकी नोंकें चुभा चुभाकर उनके शरीरका बूँद बूँद रक्त निकाला और उसी घड़ेमें भर दिया। फिर वह घड़ा उसने मन्दोदरीको जाकर दिया और चेता दिया कि यह रक्त विषसे भी तीव्र है। परन्तु मन्दोदरी यह सोचकर उस रक्तको पी गई कि पतिका मुझपर सच्चा प्रेम नहीं है और वह नित्य ही परस्त्रियोंमें रमण किया करता है; इस लिए अब मेरा मर जाना ही ठीक है। परन्तु उसके पीनेसे वह मरी तो नहीं, गर्भवती हो गई! पतिकी अनुपस्थितिमें गर्भ धारण हो जानेसे अब वह उसे छुपानेका प्रयत्न करने लगी और आखिर एक दिन विमानमें बैठकर कुरुक्षेत्र गई और उस गर्भको जमीनमें गाड़कर वापस चली आई। उसके बाद हल जोतते समय वह मन्दोदरी-गर्भजात कन्या जनकजीको मिली और उन्होंने उसे पाल लिया। वही सीता है।

विष्णुपुराण (४ – ५) में भी लिखा है कि जिस समय जनकवंशीय राजा सीरध्वज पुत्रलाभके लिए यज्ञभूमि जोत रहे थे, उसी समय लाङ्गलके अग्रभागसे सीता नामक दुहिता उत्पन्न हुई।

बौद्धोंके जातक ग्रन्थ बहुत प्राचीन हैं जिनमें बुद्धदेवके पूर्व-जन्मोंकी कथाएं लिखी गई हैं। दशरथ जातकके अनुसार काशीनरेश दशरथकी सोलह हजार रानियाँ थीं। उनमेंसे मुख्य रानीसे राम लक्ष्मण ये दो पुत्र और सीता नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। फिर मुख्य रानीके मरनेपर दूसरी जो पट्टरानी हुई उससे भरत नामका पुत्र हुआ। यह रानी बड़े पुत्रोंका हक मारकर अपने पुत्रको राज्य देना चाहती थी। तब इस भयसे कि कहीं यह बड़े पुत्रोंको मार न डाले, राजाने उन्हें बारह वर्षतक अरण्यवास करनेकी आज्ञा दे दी; और इस लिए वे अपनी बहिनके साथ हिमालय चले गये और वहाँ एक आश्रम बनाकर रहने लगे। नौ वर्षके बाद दशरथकी मृत्यु हो गई और तब मंत्रियोंके कहनेसे भरतादि उन्हें लेने गये, परन्तु वे पिताद्वारा निर्धारित अवधिके भीतर किसी तरह लौटनेको राजी नहीं हुए, इस लिए भरत रामकी पादुकाओंको ही सिंहासनपर रखकर उनकी ओरसे राज्य चलाने लगे। आखिर बारह वर्ष पूरे होनेपर वे लौटे, उनका राज्याभिषेक हुआ और फिर सीताके साथ ब्याह करके उन्होंने १६ हजार वर्ष तक राज्य किया। पूर्वजन्ममें शुद्धोदन राजा दशरथ, उनकी रानी महामाया रामकी माता, राहुलमाता सीता, बुद्धदेव रामचन्द्र, उनके प्रधान शिष्य आनन्द भरत, और सारिपुत्र लक्ष्मण थे।

इस कथामें सबसे अधिक खटकनेवाली बात रामका अपनी बहिन सीताके साथ ब्याह करना है। परन्तु इतिहास बतलाता है कि उस कालमें शाक्योंके राजघरानोंमें राजवंशकी शुद्धता सुरक्षित रखनेके लिए भाईके साथ भी बहिनका विवाह कर दिया जाता था। यह एक रिवाज था।

इस तरह हम हिन्दू और बौद्ध साहित्यमें रामकथाके तीन रूप देखते हैं, एक वाल्मीकि-रामायणका, दूसरा अद्भुत-रामायणका और तीसरा बौद्ध जातकका।

जैन रामायणके दो रूप

इसी तरह जैन-साहित्यमें भी रामकथाके दो रूप मिलते हैं, एक तो

पउमचरिय और पद्मचरितका; और दूसरा गुणभद्राचार्यके उत्तरपुराणका। पद्मचरित या पउमचरियकी कथा तो प्रायः सभी जानते हैं, क्यों कि जैन-रामायणके रूपमें उसीकी सबसे अधिक प्रसिद्धि है; परन्तु उत्तरपुराणकी कथाका उतना प्रचार नहीं है, जो उसके ६८ वें पर्वमें वर्णित है। उसका बहुत संक्षिप्त सार यह है –

राजा दशरथ काशी देशमें वाराणसीके राजा थे। रामकी माताका नाम सुबाला और लक्ष्मणकी माताका नाम केकेयी था। भरत-शत्रुघ्न किसके गर्भमें आये थे, यह स्पष्ट नहीं लिखा। केवल 'कस्यांचित् देव्यां' लिख दिया है। सीता मन्दोदरीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी; परन्तु भविष्यद्वक्ताओंके यह कहनेसे कि वह नाशकारिणी है, रावणने उसे मंजूषामें रखवाकर मरीचिके द्वारा मिथिलामें भेजकर जमीनमें गड़वा दिया था। दैवयोगसे हलकी नोकमें उलझ जानेसे वह राजा जनकको मिल गई और उन्होंने उसे अपनी पुत्रीके रूपमें पाल लिया। इसके बाद जब वह व्याहके योग्य हुई, तब जनकको चिन्ता हुई। उन्होंने एक वैदिक 'यज्ञ' किया और उसकी रक्षाके लिए राम-लक्ष्मणको आग्रहपूर्वक बुलवाया। फिर रामके साथ सीताको व्याह दिया। यज्ञके समय रावणको आमंत्रण नहीं भेजा गया, इससे वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और इसके बाद जब नारदके द्वारा उसने सीताके रूपकी अतिशय प्रशंसा सुनी तब वह उसको हर लानेकी सोचने लगा।

कैकेयीके हठ करने, रामको वनवास देने, आदि बातोंका इस कथामें कोई जिक्र नहीं है। पंचवटी, दण्डकवन, जटायु, सूर्पनखा, खरदूषण आदिके प्रसंगोंका भी अभाव है। बनारसके पास ही चित्रकूट नामक वनसे रावण सीताको हर ले जाता है और फिर उसके उद्धारके लिए लंकामें राम-रावण युद्ध होता है। रावणको मारकर राम दिग्विजय करते हुए लौटते हैं और फिर दोनों भाई बनारसमें राज्य करने लगते हैं। सीताके अपवादकी और उसके कारण उसे निर्वासित करनेकी भी चर्चा इसमें नहीं है। लक्ष्मण एक असाध्य रोगमें ग्रसित होकर मर जाते हैं और इससे रामको उद्वेग होता है। वे लक्ष्मणके पुत्र पृथ्वीसुंदरको राजपदपर और सीताके पुत्र अजितंजयको युवराजपदपर अभिषिक्त करके अनेक राजाओं, और अपनी सीता आदि रानियोंके साथ जिनदीक्षा ले लेते हैं।

इसमें सीताके आठ पुत्र बतलाये हैं, पर उनमें लव-कुशका नाम नहीं है। दशानन विनमि विद्याधरके वंशके पुलस्त्यका पुत्र था। शत्रुओंको रुलाता था, इस कारण वह रावण कहलाया। आदि।

जहाँ तक मैं जानता हूँ, यह उत्तरपुराणकी राम-कथा श्वेताम्बर संप्रदायमें प्रचलित नहीं है। आचार्य हेमचंद्रके त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितमें जो राम-कथा है, उसे मैंने पढ़ा है। वह बिल्कुल 'पउमचरिय' की कथाके अनुरूप है और ऐसा मालूम होता है कि पउमचरिय और पद्मचरित दोनों ही हेमचन्द्राचार्यके सामने मौजूद थे।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, दिगम्बर सम्प्रदायमें भी इसी कथाका अधिक प्रचार है और पीछेके कवियोंने तो प्रायः इसी कथाको संक्षिप्त या पल्लवित करके अपने अपने ग्रन्थ लिखे हैं। फिर भी उत्तरपुराणकी कथा बिल्कुल उपेक्षित नहीं हुई है। अनेक महाकवियोंने उसको भी आदर्श मानकर काव्य-रचना की है। उदाहरणके लिए महाकवि पुष्पदन्तको ही ले लीजिए। उन्होंने अपने उत्तरपुराणके अन्तर्गत जो रामायण लिखी है, वह गुणभद्रकी कथाकी ही अनुकृति है। चामुण्डराय-पुराणमें भी यही कथा है।

पउमचरिय और पद्मचरितकी कथाका अधिकांश वाल्मीकि-रामायणके ढंगका है और उत्तरपुराणकी कथाका जानकी-जन्म अद्भुत-रामायणके ढंगका। उसकी यह बात कि दशरथ बनारसके राजा थे, बौद्ध जातकसे मिलती जुलती है। उत्तर-पुराणके समान उसमें भी सीता-निर्वासन, लव-कुश-जन्म आदि नहीं हैं।

कथा-भेदके मूल कारण

अर्थात् भारतवर्षमें रामकथाकी जो दो तीन धाराएं हैं, वे जैन सम्प्रदायमें भी प्राचीन कालसे चली आ रही हैं। पउमचरियके कर्त्ताने कहा है कि मैं उस पद्मचरितको कहता हूँ जो आचार्योंकी परम्परासे चला आ रहा था और नामावलीनिबद्ध था[१]। इसका अर्थ मैं यह समझता हूँ कि रामचन्द्रका चरित्र उस समय तक केवल नामावलीके रूपमें था; अर्थात्, उसमें कथाके प्रधान-प्रधान पात्रोंके, उनके माता-पिताओं, स्थानों और भवान्तरों आदिके

---

१ णामावलियनिबद्धं आयरियपरंपरागयं सव्वं।
वोच्छामि पउमचरियं अहाणुपुव्विं समासेण ॥ ८ ॥
१.१.१०

नाम ही होंगे, वह पल्लवित कथाके रूपमें न होगा और विमलसूरिने उसीको विस्तृत चरितके रूपमें रचा होगा[१]।

श्रीधर्मसेन गणिने वसुदेवहिंडिके दूसरे खंडमें जो कुछ कहा है उससे भी यही माल्रम होता है कि उनका वसुदेवचरित भी गणितानुयोगके क्रमसे निर्दिष्ट था। उसमें कुछ श्रुत-निबद्ध था और कुछ आचार्यपरम्परागत[२]।

जब विमलसूरि पूर्वोक्त नामावलीके अनुसार अपने ग्रन्थकी रचनामें प्रवृत्त हुए होंगे, तब ऐसा माल्रम होता है कि उनके सामने अवश्य ही कोई लोक-प्रचलित रामायण ऐसी रही होगी जिसमें रावणादिको राक्षस, वसा-रक्त-मांसका खाने-पीनेवाला; और कुंभकर्णको छह छह महीने तक इस तरह सोनेवाला कहा है कि पर्वततुल्य हाथियोंके द्वारा अंग कुचले जाने, कानोंमें घड़ों तेल डाले जाने और नगाड़े बजाये जाने पर भी वह नहीं उठता था और जब उठता था तो हाथी भैसे आदि जो कुछ सामने पाता था, सब निगल जाता था[३]। उनकी यह भूमिका इस बातका संकेत करती है कि उस समय वाल्मीकि[४] रामायण या उसी जैसी कोई रामकथा प्रचलित थी और उसमें अनेक अलीक,[५] उपपत्तिविरुद्ध और अविश्वसनीय बातें थीं, जिन्हें सत्य, सोपपत्तिक और विश्वासयोग्य बनानेका विमलसूरिने प्रयत्न किया है। जैन-

---

१ जैनाचार्योंके अनेक कथाग्रन्थोंमें परस्पर जो असमानता है, भिन्नता है, उसका कारण भी यही माल्रम होता है। उनके सामने कुछ तो 'नामावलीनिबद्ध' साहित्य था और कुछ आचार्यपरम्परासे चली आई हुई स्मृतियाँ थीं। इन दोनोंके आधारसे अपनी अपनी रुचिके अनुसार कथाको पल्लवित करनेमें भिन्नता हो जाना स्वाभाविक है। एक ही संक्षिप्त प्लाटको यदि आप दो लेखकोंको देंगे तो उन दोनोंकी पल्लवित रचनाएं निस्सन्देह भिन्न हो जाएंगीं। यतिवृषभकी तिलोयपण्णत्तिमें, जो करणानुयोगका ग्रन्थ है, उक्त नामावलीनिबद्ध कथासूत्र दिये हुए हैं।

२ "अरहंत-चक्कि-वासुदेव-गणितानुयोग-कमणिद्दिट्ठं वसुदेवचरितं ति। तत्थ य किंचि सुयनिबद्धं किंचि आयरिय-परंपरागएण आगतं। ततो अवधारितं मे।"

३ देखो, आगे परिशिष्टमें, पउमचरियकी नं० १०७ से ११६ तककी गाथाएं।

४ महाकवि पुष्पदन्तने तो अपने उत्तरपुराणमें रामकथाका प्रारंभ करते हुए वाल्मिकी और व्यासका स्पष्ट उल्लेख भी किया है –

बम्मीय-वासवयणिहिं णडिउ, अण्णाणु कुमग्गकूवि पडिउ। – ६९ वीं सन्धि।

५ अलियं पि सव्वमेयं उववत्तिविरुद्धपच्चयगुणेहिं।
नय सद्दहंति पुरिसा हवंति जे पंडिया लोए॥

धर्मका नामावलिनिबद्ध ढाँचा उनके समक्ष था ही और श्रुतिपरम्परा या आचार्य-परम्परासे आया हुआ कोई कथासूत्र भी था। उसीके आधारपर उन्होंने पउमचरियकी रचना की होगी।

उत्तरपुराणके कर्त्ता उनसे और रविषेणसे भी बहुत पीछे हुए हैं, फिर उन्होंने इस कथानकका अनुसरण क्यों नहीं किया, यह एक प्रश्न है। यह तो बहुत कम संभव है कि इन दोनों ग्रन्थोंका उन्हें पता न हो; और इसकी भी संभावना कम है कि उन्होंने स्वयं ही विमलसूरिके समान किसी लोक-प्रचलित कथाको ही स्वतंत्र रूपसे जैनधर्मके साँचेमें ढाला हो। क्यों कि उनका समय, जो वि० सं० ९५५ है, बहुत प्राचीन नहीं है। हमारा अनुमान है कि गुणभद्रसे बहुत पहले विमलसूरिके ही समान किसी अन्य आचार्यने भी स्वतंत्र रूपसे जैनधर्मके अनुकूल सोपपत्तिक और विश्वसनीय रामकथा लिखी होगी और वह गुणभद्राचार्यको गुरु-परम्पराद्वारा मिली होगी। गुणभद्रके गुरु जिनसेनस्वामीने अपना आदिपुराण कविपरमेश्वरकी गद्यकथाके आधारसे लिखा था—"कविपरमेश्वरनिगदितगद्यकथामातृकं पुरोश्चरितम्[१]।" और उसके पिछले कुछ अंशकी पूर्ति स्वयं गुणभद्रने भी की है। जिनसेनस्वामीने कवि-परमेश्वर या कविपरमेष्ठीको 'वागर्थसंग्रह' नामक समग्र पुराणका कर्त्ता बतलाया है[२]। अतएव मुनिसुव्रत तीर्थंकरका चरित्र भी गुणभद्रने उसीके आधारसे लिखा होगा जिसके अन्तर्गत रामकथा भी है। चामुण्डरायने भी कवि-परमेश्वरका स्मरण किया है[३]।

तात्पर्य यह कि पउमचरिय और उत्तरपुराणकी रामकथाकी दो धाराएं अलग अलग स्वतंत्ररूपसे उद्गत हुई और वे ही आगे प्रवाहित होती हुई हम तक आई हैं।

---

१ देखो, उत्तरपुराणकी प्रशस्ति का १६ वाँ पद्य।

२ स पूज्यः कविभिर्लोके कवीनां परमेश्वरः।
वागर्थसंग्रहं कृत्स्नपुराणं यः समग्रहीत् ॥ ६० ॥—आदिपुराण

३ महामात्य चामुण्डरायका बनाया हुआ त्रिषष्टिलक्षणमहापुराण (चामुण्डराय-पुराण) कनड़ी भाषामें है। उसके प्रारम्भमें लिखा है कि इस चरित्रको पहले कूचि भट्टारक, तदनन्तर नन्दि मुनीश्वर, फिर कविपरमेश्वर और तदनन्तर जिनसेन-गुणभद्र आचार्य, एकके बाद एक, परम्परासे कहते आये हैं। इससे भी मालूम होता है कि कविपरमेश्वरका चौबीसों तीर्थ-करोंका चरित्र था। चामुण्डरायके समान गुणभद्रने भी उसीके आधारसे उत्तरपुराण लिखा होगा और कविपरमेश्वरसे भी पहले नन्दि मुनि और कूचि भट्टारकके इस विषयके ग्रन्थ होंगे।

इन दो धाराओंमें गुरुपरम्परा-भेद भी हो सकता है। एक परम्पराने एक धाराको अपनाया और दूसरीने दूसरीको। ऐसी दशामें गुणभद्र स्वामीने पउमचरियकी धारासे परिचित होनेपर भी इस खयालसे उसका अनुसरण न किया होगा कि वह हमारी गुरुपरम्पराकी नहीं है। यह भी संभव हो सकता है कि उन्हें पउमचरियके कथानककी अपेक्षा यह कथानक ज्यादा अच्छा मालूम हुआ हो।

पउमचरियकी रचना वि० सं० ६० में हुई है और यदि जैनधर्म दिगम्बर-श्वेताम्बर भेदोंमें वि० सं० १३६ के लगभग ही विभक्त हुआ है – जैसा कि दोनों सम्प्रदायवाले मानते हैं – तो फिर कहना होगा कि यह उस समयका है जब जैनधर्म अविभक्त था। हमें इस ग्रन्थमें कोई भी ऐसी बात नहीं मिली जिसपर दोमेंसे किसी एक सम्प्रदायकी कोई गहरी छाप लगी हो और जिससे यह निर्णय किया जा सके कि विमलसूरि अमुक सम्प्रदायके ही थे। बल्कि उसमें कुछ बातें ऐसी हैं जो श्वेताम्बर-परम्पराके विरुद्ध जाती हैं और कुछ दिगम्बर-परम्पराके विरुद्ध। इससे ऐसा मालूम होता है कि यह एक तीसरी ही, दोनोंके बीचकी, विचार धारा थी।

पउमचरियके कुछ विशिष्ट कथन

१ – इस ग्रन्थके प्रारम्भमें कहा गया है कि भगवान् महावीरका समवसरण विपुलाचलपर आया, तब उसकी खबर पाकर मगध-नरेश श्रेणिक वहाँ पहुँचे और उनके पूछनेपर गोतम गणधरने रामकथा कही[1]। दिगम्बर सम्प्रदायके प्रायः सभी कथा-ग्रन्थोंका प्रारम्भ इसी तरह होता है। कहीं कहीं गोतम स्वामीके बदले सुधर्मा स्वामीका नाम भी रहता है[2]। परन्तु जहाँ तक हम जानते हैं श्वेताम्बर सम्प्रदायमें कथा-ग्रन्थोंको प्रारम्भ करनेकी यह पद्धति नहीं है। उनमें आम तौरसे 'सुधर्मा स्वामीने जम्बूसे कहा' - इस तरह कहनेकी पद्धति है। जैसे कि संघदासवाचकने वसुदेवहिंडिके प्रथमांशमें कहा है, कि सुधर्म

---

१ वीरस्स पवरठाणं विउलगिरिमत्थये मणभिरामे।
तह इंदभूइकहियं सेणियरण्णस्स णीसेसं ॥ ३४ ॥

२ श्रेणिकप्रश्नमुद्दिश्य सुधर्मो गणनायकः।
यथोवाच मयाप्येतदुच्यते मोक्षलिप्सया ॥ – क्षत्रचूडामणि

स्वामीने जम्बूसे प्रथमानुयोगगत तीर्थंकर-चक्रवर्ति-यादववंशप्ररूपणागत वसुदेव-चरित कहा। अन्य ग्रन्थोंमें भी यही पद्धति है[1]।

२ – जिन भगवानकी माताको जो स्वप्न आते हैं, उनकी संख्या दिगम्बर सम्प्रदायमें १६ बतलाई है, जब कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें १४ स्वप्न माने जाते हैं। परन्तु पउमचरियमें १५ स्वप्न हैं[2]। आवश्यक सूत्रकी हारिभद्रीय वृत्तिमें (पृ० १७८) लिखा है कि विमान और भवन ये दो स्वप्न ऐसे हैं कि इनमेंसे जिनमाताओंको एक ही आता है। जो तीर्थंकर देवत्वसे च्युत होकर आते हैं उनकी माता विमान देखती है और जो अधोलोकसे आते हैं उनकी माता भवन देखती है। परन्तु पउमचरियमें विमान और भवन दोनों ही स्वप्न मरुदेवीने एक साथ देखे हैं[3]।

३ – दूसरे उद्देसकी ३० वीं गाथामें भगवानको जब केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तब उन्हें 'अष्टकर्मरहित' विशेषण दिया गया है[4] और यह विशेषण शायद दोनों सम्प्रदायोंकी दृष्टिसे चिन्तनीय है। क्यों कि केवल ज्ञान होते समय केवल चार घातिक कर्मोंका ही नाश होता है, आठोंका नहीं।

४ – दूसरे उद्देसकी ६५ वीं गाथामें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिको स्थावर और द्वीन्द्रियादि जीवोंको त्रस कहा है[5]। यह दिगम्बर मान्यता है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार पृथ्वी, जल और वनस्पति ही स्थावर हैं, अग्नि, वायु और द्वीन्द्रियादि त्रस हैं।

५ – चौथे उद्देसकी ५८ वीं गाथामें भरत चक्रवर्तीकी ६४ हजार रानियाँ

---

१ तत्थ ताव 'सुहम्मसामिणा जंबुनामस्स पढमाणुओगे तित्थयर-चक्कवट्टि-दसार-वंसपरूवणागयं वसुदेवचरियं कहियं' ति तस्सेव पभवो कहेयव्वो, तप्पभवस्स य पभवस्स त्ति।

२ वसह गैय सीहं वैरसिरि दोमं ससि रैवि झयं च कलसं च।
सैरं सीयरं विमोणं वरभैवणं रयणकूडैग्गी ॥ ६२ ॥ – तृ० उद्देस।

३ पद्मचरितमें दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार स्वप्नोंकी संख्या १६ कर दी गई है –
"अद्राक्षीत् षोडशस्वप्नानिति श्रेयोविधायिनः ॥" तृतीय पर्व, श्लो० १२३

४ अह अट्ठकम्मरहियस्स तस्स झाणोवओगजुत्तस्स।
सयलजगुज्जोयकरं केवलणाणं समुप्पण्णं ॥ ३० ॥

५ पुढवि-जल-जलण-मारुय-वणस्सई चेव थावरा भणिया।
वेइंदियाइ जाव उ, दुविहतसा सण्णि इयरे वा ॥ ६५ ॥

बतलाई हैं[1]। यह संख्या श्वेताम्बर परम्पराके अनुसार है, दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार चक्रवर्तीकी ९६ हजार रानियाँ होती हैं[2]।

६ – पउमचरियके दूसरे उद्देसमें कहा है कि भगवान् महावीर बाल-भावसे होकर तीस बरसके हो गये और फिर एक दिन संवेग होनेसे उन्होंने प्रव्रज्या उन्मुक्त ग्रहण कर ली। इसमें उनके विवाहित होनेकी कोई चर्चा नहीं है और कुमारावस्थामें ही दीक्षित होना प्रकट किया है[3]। बीसवें उद्देसकी गाथा ९७–९८ से भी यही ध्वनित होता है कि मल्लिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्व, महावीर और वासुपूज्य ये पाँच तीर्थंकर कुमारकालमें ही घरसे निकल गये और शेष तीर्थंकर पृथ्वीका राज्य भोगकर निष्क्रान्त हुए[4]। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह उल्लेख दिगम्बरपरम्पराके अनुकूल है। यद्यपि अभी अभी एक विद्वान्से मालूम हुआ है कि श्वेताम्बर सम्प्रदायके भी एक प्राचीन ग्रन्थमें महावीरको अविवाहित बतलाया है।

परिश्रम करनेसे इस तरहकी और भी अनेक बातोंका पता लग सकेगा जिनमेंसे कुछ दिगम्बर सम्प्रदायके अधिक अनुकूल होंगी और कुछ श्वेताम्बर सम्प्रदायके।

इन सब बातोंसे हमारा झुकाव इस तीसरी विचारधाराके विषयमें इस ओर होता है कि वह उस समयकी है जब दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायोंके मत-भेद व्यवस्थित और दृढ़ नहीं हुए थे। उन्होंने आगे चल कर ही धीरे

---

१ चउसट्ठिसहस्साइं जुवईणं परमरूवधारीणं।
बत्तीसं च सहस्सा राईणं बद्धमउडाणं ॥ ५८ ॥

२ पद्मचरितमें रविषेणने यह संख्या भी अपने सम्प्रदायके अनुसार संशोधित करके ९६ हजार कर दी है – "पुरन्ध्रीणां सहस्राणि नवतिः षड्भिरन्विताः।" च० प० श्लो० ६६

३ सुरवइदिन्नाहारो अंगुट्ठयअमयलेवलेहेणं।
उम्मुक्कबालभावो तीसइ वरिसो जिणो जाओ ॥ २९ ॥
अह अन्नया कयाई संवेगपरो जिणो मुणियदोसो।
लोगंतियपरिकिण्णो पव्वज्जमुवागओ वीरो ॥ ३० ॥

४ निद्दंनकणयवण्णा सेसा तित्थंकरा समक्खाया।
मल्ली अरिट्ठनेमी पासो वीरो य वासुपुज्जो य ॥ ९७ ॥
एए कुमारसीहा गेहाओ निग्गया जिणवरिंदा।
सेसा वि हु रायाणो पुहई भोत्तूण निक्खंता ॥ ९८ ॥

देखो, 'मेरा महाकवि स्वयंभु और त्रिभुवन स्वयंभु' शीर्षक लेख।

धीरे स्थायित्व और दृढत्व प्राप्त किया है। पहले वे किसी ग्रन्थके पाठभेदोंके समान साधारण मत-भेद थे, परन्तु पीछे समयने और सम्प्रदायमोहने उन्हें मजबूत बना दिया।

हमारा अनुमान है कि शायद यह तीसरी विचारधारा वह है जिसका प्रतिनिधित्व यापनीय संघ करता था और जो अब लुप्त हो गया है और पउमचरिय शायद उसीके द्वारा बहुत समय तक सुरक्षित रहा है। इस बातकी पुष्टि महाकवि स्वयंभूके 'पउमचरिय' से होती है जो यापनीय संघके थे और जिन्होंने अपने समक्ष उत्तरपुराणानुमोदित रामायणकथाके रहते हुए भी पउमचरियका ही अनुसरण किया है।

परिशिष्ट

[पउमचरिय और पद्मचरितके कुछ छायानुवादरूप उद्धरण]

सुव्वंति लोयसत्थे रावणपमुहा य रक्खसा सव्वे।
वस-लोहिय-मंसाई-भक्खणपाणे कयाहारा ॥ १०७ ॥
किर रावणस्स भाया महाबलो नाम कुंभयण्णो त्ति।
छम्मासं विगयभओ सेज्जासु निरंतरं सुयइ ॥ १०८ ॥
जइ वि य गएसु अंगं पेलिज्जइ गरुयपव्वयसमेसु।
तेल्लघडेसु य कण्णा पूरिज्जंते सुयंतस्स ॥ १०९ ॥
पडुपडहतूरसद्दं ण सुणइ सो सम्मुहं पि वज्जंतं।
नय उट्ठेइ महप्पा सेज्जाए अपुण्णकालम्मि ॥ ११० ॥
अह उट्ठिओ वि संतो असणमहा(णामह)घोरपरिगयसरीसो।
पुरओ हवेज्ज जो सो कुंजरमहिसाइणो गिलइ ॥ १११ ॥
काऊण उदरभरणं सुरमाणुसकुंजराइबहुएसु।
पुणरवि सेज्जारूढो भयरहिओ सुयइ छम्मासं ॥ ११२ ॥
अन्नं पि एव सुव्वइ जइ इंदो रावणेण संगामे।
जिणिऊण नियलबद्धो लंकानयरी समाणीओ ॥ ११३ ॥
को जिणिउं य समत्थो इंदं ससुरासुरे वि तेलोक्के।
जो सागरपेरंतं जंबुद्दीवं समुद्धरइ ॥ ११४ ॥
एरावणो गइंदो जस्स इ वज्जं अमोहपहरत्थं।
तस्स किर चिंतिएण वि अन्नो वि भवेज्ज मसिरासी ॥ ११५ ॥
सीहो मएण निहओ साणेण य कुंजरो जहा भग्गो।
तह विवरीयपयत्थं कईहि रामायणं रइयं ॥ ११६ ॥
अलियं पि सव्वमेयं उववत्तिविरुद्धपच्चयगुणेहिं।
न य सद्दहंति पुरिसा हवंति जे पंडिया लोए ॥ ११७ ॥

—पउमच० २ उद्देश

यह बात रविषेणने पद्मचरितमें इस प्रकार कही है –

श्रूयन्ते लौकिके ग्रन्थे राक्षसा रावणादयः ।
वसाशोणितमांसादिपानभक्षणकारिणः ॥ २३० ॥
रावणस्य किल भ्राता कुम्भकर्णो महाबलः ।
घोरनिद्रापरीतः षण्मासान् शेते निरन्तरम् ॥ २३१ ॥
मत्तैरपि गजैस्तस्य क्रियते मर्दनं यदि ।
तप्ततैलकटाहैश्च पूर्येते श्रवणौ यदि ॥ २३२ ॥
भेरीशंखनिनादेपि सुमहानपि जन्यते ।
तथापि किल नायाति कालेऽपूर्णे विबुद्धताम् ॥ २३३ ॥
क्षुत्तृष्णाव्याकुलश्चासौ विबुद्धः सन्महोदरः ।
भक्षयत्यग्रतो दृष्ट्वा हस्त्यादीनपि दुर्द्धरः ॥ २३४ ॥
तिर्यग्भिर्मानुषैर्देवैः कृत्वा तृप्तिं ततः पुनः ।
स्वपित्येव विमुक्तान्यनिःशेषपुरुषस्थितिः ॥ २३५ ॥
अमराणां किलाधीशो रावणेन पराजितः ।
आकर्णाकृष्टनिर्मुक्तैर्बाणैर्मर्मविदारिभिः ॥ २४१ ॥
देवानामधिपः क्वासौ वराकः क्वैष मानुषः ।
तस्य चिंतितमात्रेण यायाद्यो भस्मराशिताम् ॥ २४२ ॥
ऐरावतो गजो यस्य यस्य वज्रं महायुधम् ।
समेरुवारिधिं क्षोणीं योऽनायासात्समुद्धरेत् ॥
मृगैः सिंहवधः सोऽयं शिलानां पेषणं तिलैः ।
वधो गंडूपदेनाहेर्गजेन्द्रशासनं शुना ॥ २४६ ॥
अश्रद्धेयमिदं सर्वं वियुक्तमुपपत्तिभिः ।
भगवन्तं गणाधीशं सोऽहं पृष्टाऽस्मि गौतमम् ॥ २४८ ॥

—पद्मपुराण, द्वि० प०

आपुच्छिऊण सब्बं मायापियपुत्तसयणपरिवग्गं ।
तो मुयइ भूसणाइं कडिसुत्तयकडयवत्थाइं ॥ १३५ ॥

—पउमचरिय, तृ० उ०

सिद्धाण णमुक्कारं काऊण य पंचमुट्ठियं लोयं ।
चउहि सहस्सेहि समं पत्तो जइणं परमदिक्खं ॥ १३६ ॥

आपृच्छनं ततः कृत्वा पित्रोर्बन्धुजनस्य च ।
नमः सिद्धेभ्य इत्युक्त्वा श्रामण्यं प्रतिपद्यत ॥ २८३ ॥
अलंकारैः समं त्यक्त्वा वसनानि महामुनिः ।
चकारासौ परित्यागं केशानां पंचमुष्टिभिः ॥ २८४ ॥

—पद्मचरित, तृ० प०

अह एवं परिकहिए पुणरवि मगहाहिवो पणमिऊणं ।
पुच्छइ गणहरवसहं मणहरमहुरेहि वयणेहिं ॥ ६४ ॥
वण्णाण समुप्पत्ती तिण्हं पि सुया मए अपरिसेसा ।
एत्तो कहेह भयवं उप्पत्ती सुत्तकंठाणं ॥ ६५ ॥
तो भणइ जिणवरिंदो भरह न कप्पइ इमो उ आहारो ।
समणाण संजयाणं कीयगदुद्देसनिप्फण्णो ॥ ७१ ॥

—पउमच०, च० उद्देस

अथैवं कथितं तेन गौतमेन महात्मना ।
श्रेणिकः पुनरप्याह वाक्यमेतत्कुतूहली ॥ ८५ ॥
वर्णत्रयस्य भगवन् संभवो मे त्वयोदितः ।
उत्पत्तिं सूत्रकण्ठानां ज्ञातुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ ८६ ॥
इत्युक्ते भगवानाह भरतेयं न कल्पते ।
साधूनामीदृशी भिक्षा या तदुद्देशसंस्कृता ॥ ८७ ॥

—पद्मचरित, च० प०

एयं हलहरचरियं निययं जो पढइ सुद्धभावेणं ।
सो लहइ बोहिलाभं बुद्धिबलाउं च अइपरमं ॥ ९३ ॥
उज्जयसत्थो वि रिवू खिप्पं उवसमइ तस्स उवसग्गो ।
अज्जिणइ चेव पुण्णं जसेण सरिसं न संदेहो ॥ ९४ ॥
रज्जरहिओ वि रज्जं लहइ धणत्थी महाधणं विउलं ।
उवसमइ तक्खणं चिय वाही सोमा य होंति गहा ॥ ९५ ॥
महिलत्थी वरमहिलं पुत्तत्थी गोत्तनंदणं पुत्तं ।
लहइ परदेसगमणे समागमं चेव बंधूणं ॥ ९६ ॥

—प० च० ११८ उ०

वाचयति शृणोति जनस्तस्यायुर्वृद्धिमीयते पुण्यम् ।
चाकृष्टखड्गहस्तो रिपुरपि न करोति वैरमुपशममेति ॥ १५७ ॥

किं चान्यद्धर्मार्थी लभते धर्मं यशः परं यशसोऽर्थी ।
राज्यभ्रष्टो राज्यं प्राप्नोति न संशयोऽत्र कश्चित्कृत्यः ॥ १५८ ॥
इष्टसमायोगार्थी लभते तं क्षिप्रतो धनं धनार्थी ।
जायार्थी वरपत्नी पुत्रार्थी गोत्रनन्दनं प्रवरपुत्रम् ॥ १५९ ॥

—प० १२३ वाँ प०

एवं वीरजिणेण रामचरियं सिट्ठं महत्थं पुरा
पच्छाऽखंडलभूइणा उ कहियं सीसाण धम्मासयं ।
भूओ साहुपरंपराए सयलं लोए ठियं पायडं
एत्ताहे विमलेण सुत्तसहियं गाहानिबद्धं कयं ॥ १०२ ॥

—पउम०, ११८ वाँ उ०

निर्दिष्टं सकलैर्नतेन भुवनैः श्रीवर्द्धमानेन यद्,
तत्त्वं वासवभूतिना निगदितं जम्बोः प्रशिष्यस्य च ।
शिष्येणोत्तरवाग्मिना प्रकटितं पद्मस्य वृत्तं मुनेः,
श्रेयः साधुसमाधिवृद्धिकरणं सर्वोत्तमं मंगलम् ॥ १६६ ॥

—पद्मचरित, १२३ वाँ पर्व

*

नीचे कुछ ऐसे उद्धरण दिये जाते हैं जिनमें पद्मचरितकारने विषयको अनावश्यक रूपसे बढ़ाया है—

जं एव पुच्छिओ सो भणइ तओ नारओ पसंसंतो ।
अत्थि महिलाए राया जणओ सो इंदुकेउसुओ ॥ १५ ॥
तस्स महिला विदेहा तीए दुहिया इमा पवरकन्ना ।
जोव्वणगुणाणुरूवा सीया णामेण विक्खाया ॥ १६ ॥
अहवा किं परितुट्ठो पडिरूवं पेच्छिऊण आलेक्खे ।
जे तीए विब्भमगुणा ते बिय को वण्णिउं तरइ ॥ १७ ॥

—पउमचरिय, २९ वाँ उद्देस

अस्त्यत्र मिथिला नाम पुरी परमसुन्दरी ।
इन्द्रकेतोस्सुतस्तत्र जनको नाम पार्थिवः ॥ ३३ ॥
विदेहेति प्रिया तस्य मनोबन्धनकारिणी ।
गोत्रसर्वस्वभूतेयं सीतेति दुहिता तयोः ॥ ३४ ॥
निवेद्यैवमसौ तेभ्यः कुमारं पुनरुक्तवान् ।
बाल मा याः विषादं त्वं तवेयं सुलभैव हि ॥ ३५ ॥
रूपमात्रेण यातोऽसि किमस्या भावमीदृशं ।
ते तस्या विभ्रमा भद्र कस्तां वर्णयितुं क्षमः ॥ ३६ ॥

तया चित्तं समाकृष्टं तवेति किमिहाद्भुतम् ।
धर्मध्याने दृढं बद्धं मुनीनामपि सा हरेत् ॥ ३७ ॥
आकारमात्रमत्रैतत्तस्या न्यस्तं मया पटे ।
लावण्यं यत्तु तत्तस्या तस्यामेवैतदीदृशम् ॥ ३८ ॥
नवयौवनसंभूतकान्तिसागरवीचिषु ।
सा तिष्ठति तरंतीव संसक्ता स्तनकुंभयोः ॥ ३९ ॥
तस्या श्रोणी वरारोहा कान्तिसंप्लावितांशुका ।
वीक्षितोन्मूल्यत्स्वान्तं समूलमपि योगिनाम् ॥ ४० ॥

—पद्मचरित, २८ वाँ पर्व

इह जंबुदीवदीवे दक्खिणभरहे महंतगुणकलिओ ।
मगहा णाम जणवओ नगरागरमंडिओ रम्मो ॥ १ ॥
गाम-पुर-खेड-कब्बट-मडम्बदोणीमुहेसु परिकिण्णो ।
गोमहिसिवलवपुण्णो धणनिवहणिरुद्धसीमपहो ॥ २ ॥
सत्थाहसेट्ठिगणवइ-कोडुम्बियपमुहसुद्धजणणिवहो ।
मणिकणगरयणमोत्तियबहुधन्नमहंतकोट्ठारो ॥ ३ ॥
देसम्मि तम्मि लोगो विण्णाणवियक्खणो अइसुरूवो ।
बलविहवकंतिजुत्तो अहियं धम्मुज्जयमईओ ॥ ४ ॥
नडनट्टछत्तलंखयणिच्चं णच्चंतगीयसद्दालो ।
णाणाहारपसाहिय भुंजाविज्जंतपहियजणो ॥ ५ ॥
अहियं वीवाहूसव-वियावडो गंधकुसुमतत्तिल्लो ।
बहुपाणखाणभोयण मणवरयं वड्ढिउच्छाहो ॥ ६ ॥
पुक्खरणीसु सरेसु य उज्जाणेसु य समंतओ रम्मो ।
परचक्कमारितक्कर-दुब्भिक्खविवज्जिओ मुइओ ॥ ७ ॥

—द्वि० उ०

अथ जंबूमति द्वीपे क्षेत्रे भरतनामनि ।
मगधाभिख्यया ख्यातो विषयोऽस्ति समुज्ज्वलः ॥ १ ॥
निवासः पूर्णपुण्यानां वासवावाससन्निभः ।
व्यवहारैरसंकीर्णैः कृतलोकव्यवस्थितिः ॥ २ ॥
क्षेत्राणि दधते यस्मिन्नुत्खातान् लांगलाननैः ।
स्थलाब्जमूलसंघातान्महीसारगुणानिव ॥ ३ ॥
क्षीरसेकादिवोद्भूतैर्मन्दानिलचलद्दलैः ।
पुण्ड्रेक्षुवाटसंतानैर्व्याप्तानंतरभूतलः ॥ ४ ॥

अपूर्वपर्वताकारैर्विभक्तैः खलधामभिः ।
सस्यकूटैः सुविन्यस्तैः सीमांता यस्य संकटाः ॥ ५ ॥
उद्घाटकघटीसिक्तैर्यत्र जीरकजूटकैः ।
नितांतहरितैरुर्वी जटालेव विराजते ॥ ६ ॥
उर्वरायां वरीयोभिः यः शालेयैरलंकृतः ।
मुद्गकोशीपुटैर्यस्मिन्नुद्देशान्कपिलत्विषा ॥ ७ ॥
तापस्फुटितकोशीकैः राजमाषैर्निरन्तराः ।
उद्देशा यत्र किर्मीरा निक्षेत्रिय-तृणोद्गमाः (!) ॥ ८ ॥
अधिष्ठिते स्थलीपृष्ठे श्रेष्ठगोधूमधामभिः ।
प्रशस्यैरन्यशस्यैश्च युक्तप्रत्यूहवर्जितैः ॥ ९ ॥
महामहिषपृष्ठस्थगायद्गोपालपालितैः ।
कीटातिलंपटोद्ग्रीवबलाकानुगतध्वनिः ॥ १० ॥
विवर्णसूत्रसंबंधघण्टा रटति हारिभिः ।
क्षरद्भिरजरत्रासत्पीतक्षीरोदवत्पयः ॥ ११ ॥
सुखादुरससंपन्नैर्बाष्पच्छेद्यैरनंतरैः ।
तृणैस्तृप्तिं परिप्राप्तैर्गोधनैः सितकक्षपूः ॥ १२ ॥
सारीकृतसमुद्देशः कृष्णसारैर्विसारिभिः ।
सहस्रसंख्यैर्गीर्वाणस्वामिनो लोचनैरिव ॥ १३ ॥
केतकीधूलिधवला यस्य देशाः समुन्नताः ।
गंगापुलिनसंकाशा विभांति जिनसेविताः ॥ १४ ॥
शाककंदलवाटेन श्यामलः श्रीधरः क्वचित् ।
वनपालकृतास्वादैर्नालिकेरैर्विराजितः ॥ १५ ॥
कोटिभिः शुकचंचूनां तथा शाखामृगाननैः ।
संदिग्धकुसुमैर्युक्तः पृथुभिर्दाडिमीवनैः ॥ १६ ॥
वत्सपालीकराकृष्टमातुर्लिंगीफलांभसा ।
लिप्ताः कुंकुमपुष्पाणां प्रकरैरुपशोभिताः ॥ १७ ॥
फलस्वादपयःपानसुखसंसुप्तमार्गगाः ।
वनदेवीप्रपाकारा द्राक्षाणां यत्र मंडपाः ॥ १८ ॥ इत्यादि

—पद्मचरित, दू० पर्व

*

जैनसाहित्यमें चतुर्विध वाक्यार्थ ज्ञान का व्यवहार और उसके प्रकाशमें अहिंसाका निरूपण

*

ले० - श्रीयुत पण्डित सुखलालजी शास्त्री
[प्रधानाध्यापक जैनदर्शनशास्त्र, हिन्दु युनिवर्सिटी, बनारस]

उपाध्याय श्री यशोविजयजीने एक दीर्घ श्रुतोपयोग कैसे मानना यह दिखानेके लिए चार प्रकारके वाक्यार्थ ज्ञानकी मनोरंजक और बोधप्रद चर्चा की है, और उसे विशेष रूपसे जाननेके लिए आचार्य श्रीहरिभद्र कृत **'उपदेशपद'** आदिका हवाला भी दिया है। यहाँ प्रश्न यह है कि ये चार प्रकारके वाक्यार्थ क्या हैं और उनका विचार कितना पुराना है और वह किस प्रकारसे जैन वाङ्मयमें प्रचलित रहा है तथा विकास प्राप्त करता आया है। इसका जवाब हमें प्राचीन और प्राचीनतर वाङ्मय देखनेसे मिल जाता है।

जैन परंपरामें 'अनुगम' शब्द प्रसिद्ध है जिसका अर्थ है व्याख्यानविधि। अनुगमके छह प्रकार आर्यरक्षित सूरिने अनुयोगद्वार सूत्र (सूत्र० १५५) में बतलाए हैं। जिनमेंसे दो अनुगम सूत्रस्पर्शी और चार अर्थस्पर्शी हैं। अनुगम शब्दका निर्युक्ति शब्दके साथ सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम रूपसे उल्लेख अनुयोगद्वार सूत्रसे प्राचीन है इस लिए इस बातमें तो कोई संदेह रहता ही नहीं कि यह अनुगम-पद्धति या व्याख्यानशैली जैन वाङ्मयमें अनुयोगद्वारसूत्रसे पुरानी और निर्युक्ति के प्राचीनतम स्तरका ही भाग है जो संभवतः श्रुतकेवली भद्रबाहुकर्तृक मानी जाने वाली निर्युक्तिका ही भाग होना चाहिए। निर्युक्तिमें अनुगम शब्दसे जो व्याख्यानविधिका समावेश हुआ है वह व्याख्यानविधि भी वस्तुतः बहुत पुराने समयकी एक शास्त्रीय प्रक्रिया रही है। हम जब आर्य परंपराके उपलब्ध विविध वाङ्मय तथा उनकी पाठशैलीको देखते हैं तब इस अनुगमकी प्राचीनता और भी ध्यानमें आ जाती है। आर्य परंपराकी एक शाखा जरथोस्थ्रियनको देखते हैं तब उसमें भी पवित्र माने जाने वाले अवेस्ता आदि ग्रन्थोंका प्रथम विशुद्ध उच्चार कैसे करना, किस तरह पद आदिका विभाग करना इत्यादि क्रमसे व्याख्याविधि देखते हैं। भारतीय आर्य परंपराकी वैदिक शाखामें जो वैदिक

मन्त्रोंका पाठ सिखाया जाता है और क्रमशः जो उसकी अर्थविधि बतलाई गई है उसकी जैन परंपरामें प्रसिद्ध अनुगमके साथ तुलना करें तो इस बातमें कोई संदेह ही नहीं रहता कि यह अनुगमविधि वस्तुतः वही है जो जरथोस्थियन धर्ममें तथा वैदिक धर्ममें भी प्रचलित थी और आज भी प्रचलित है।

जैन और वैदिक परंपराकी पाठ तथा अर्थविधि विषयक तुलना —

१. वैदिक	२. जैन
१ संहितापाठ (मंत्रपाठ)	१ संहिता (मूलसूत्रपाठ) १
२ पदच्छेद (जिसमें पद, क्रम, जटा आदि आठ प्रकार की विविधानुपूर्विओं का समावेश है)	२ पद २
३ पदार्थज्ञान	३ पदार्थ ३, पदविग्रह ४
४ वाक्यार्थज्ञान	४ चालना ५
५ तात्पर्यार्थनिर्णय	५ प्रत्यवस्थान ६

जैसे वैदिक परंपरामें, शुरूमें मूल मंत्रको शुद्ध तथा अस्खलित रूपमें सिखाया जाता है; अनन्तर उनके पदोंका विविध विश्लेषण; इसके बाद जब अर्थ-विचारणा — मीमांसाका समय आता है तब क्रमशः प्रत्येक पदके अर्थका ज्ञान; फिर पूरे वाक्यका अर्थज्ञान और अन्तमें साधक-बाधक चर्चापूर्वक तात्पर्यार्थका निर्णय कराया जाता है; वैसे ही जैन परंपरामें भी — कम-से-कम निर्युक्तिके प्राचीन समयमें — सूत्रपाठसे अर्थनिर्णय तकका वही क्रम प्रचलित था जो अनुगम शब्दसे जैन परंपरामें व्यवहृत हुआ। अनुगमके छह विभाग जो 'अनुयोगद्वार-सूत्रमें हैं[1] उनका परंपराप्राप्त वर्णन जिनभद्र क्षमाश्रमणने विस्तारसे किया है[2]। संघदास गणिने "बृहत्कल्पभाष्य' में उन छह विभागोंके वर्णनके अलावा मतान्तरसे पाँच विभागोंका भी निर्देश किया है[3]। जो कुछ हो; इतना तो निश्चित है कि जैन परंपरामें सूत्र और अर्थ सिखानेके संबन्धमें एक निश्चित व्याख्यानविधि चिरकालसे प्रचलित रही। इसी व्याख्यानविधिको आचार्य हरिभद्रने, अपने दार्शनिक ज्ञानके नये प्रकाशमें — कुछ नवीन शब्दोंमें नवीनताके साथ — विस्तारसे वर्णन किया है। हरिभद्रसूरिकी उक्तिमें कई विशेषताएँ हैं जिन्हें जैन वाङ्मयको सर्व प्रथम उन्हींकी देन कहनी चाहिएँ। उन्होंने [4]उपदेशपदमें अर्थानुगमके

---

१ देखो, अनुयोगद्वारसूत्र सू० १५५ पृ० १६१। २ देखो, विशेषावश्यकभाष्य गा० १००२ से। ३ देखो, बृहत्कल्पभाष्य गा० ३०२ से। ४ देखो, उपदेशपद, गा० ८५९ – ८८५।

चिरप्रचलित चार भेदोंको कुछ मीमांसा आदि दर्शन-ज्ञानका ओप दे कर नये चार नामोंके द्वारा निरूपण किया है। दोनोंकी तुलना इस प्रकार है—

१. प्राचीन परंपरा	२. हरिभद्रीय
१ पदार्थ	१ पदार्थ
२ पदविग्रह	२ वाक्यार्थ
३ चालना	३ महावाक्यार्थ
४ प्रत्यवस्थान	४ ऐदम्पर्यार्थ

हरिभद्रीय विशेषता केवल नये नाममें ही नहीं है। उनकी ध्यान देने योग्य विशेषता तो चारों प्रकारके अर्थबोधका तरतमभाव समझानेके लिए दिए गए लौकिक तथा शास्त्रीय उदाहरणोंमें है। जैन परंपरामें अहिंसा, निर्ग्रन्थत्व, दान और तप आदिका धर्मरूपसे सर्वप्रथम स्थान है, अतएव जब एक तरफसे उन धर्मोंके आचरण पर आत्यन्तिक भार दिया जाता है, तब दूसरी तरफसे उसमें कुछ अपवादोंका या छूटछाटोंका रखना भी अनिवार्य रूपसे प्राप्त हो जाता है। इस उत्सर्ग और अपवाद विधिकी मर्यादाको लेकर आचार्य हरिभद्रने उक्त चार प्रकारके अर्थबोधोंका वर्णन किया है।

जैनधर्मकी अहिंसाका स्वरूप

अहिंसाके बारेमें जैन धर्मका सामान्य नियम यह है कि किसी भी प्राणिका किसी भी प्रकारसे घात न किया जाय। यह 'पदार्थ' हुआ। इस पर प्रश्न होता है कि अगर सर्वथा प्राणिघात वर्ज्य है तो धर्मस्थानका निर्माण तथा शिरोमुण्डन आदि कार्य भी नहीं किए जा सकते—जो कि कर्तव्य समझे जाते हैं। यह शंकाविचार 'वाक्यार्थ' है। अवश्य कर्तव्य अगर शास्त्रविधिपूर्वक किया जाय तो उसमें होने वाला प्राणिघात दोषावह नहीं, अविधिकृत ही दोषावह है। यह विचार 'महावाक्यार्थ' है। अन्तमें जो जिनाज्ञा है वही एक मात्र उपादेय है ऐसा तात्पर्य निकालना 'ऐदम्पर्यार्थ' है। इस प्रकार सर्व प्राणिहिंसा के सर्वथा निषेधरूप सामान्य नियममें जो विधिविहित अपवादोंको स्थान दिलाने वाला और उत्सर्ग-अपवादरूप धर्ममार्ग स्थिर करने वाला विचार-प्रवाह ऊपर दिखाया गया उसको आचार्य हरिभद्रने लौकिक दृष्टान्तोंसे समझानेका प्रयत्न किया है।

अहिंसाका प्रश्न उन्होंने सर्व प्रथम उठाया है जो कि जैन परंपराकी जड है। यों तो अहिंसा समुच्चय आर्य परंपराका सामान्य धर्म रहा है। फिर भी धर्म, क्रीडा, भोजन आदि अनेक निमित्तोंसे जो विविध हिंसाएँ प्रचलित रहीं उनका आत्यन्तिक विरोध जैन परंपराने किया। इस विरोधके कारण ही उसके सामने प्रतिवादियोंकी तरफसे तरह-तरहके प्रश्न होने लगे कि – अगर जैन सर्वथा हिंसाका निषेध करते हैं तो वे खुद भी न जीवित रह सकते हैं और न धर्माचरण ही कर सकते हैं। इन प्रश्नोंका जवाब देनेकी दृष्टिसे ही हरिभद्रने जैन संमत अहिंसास्वरूप समझानेके लिए चार प्रकारके वाक्यार्थ बोधके उदाहरण रूपसे सर्व प्रथम अहिंसाके प्रश्नको ही हाथमें लिया है।

दूसरा प्रश्न निर्ग्रन्थत्वका है। जैन परंपरामें ग्रन्थ-वस्त्रादि परिग्रह रखने-न-रखनेके बारेमें दलभेद हो गया था। हरिभद्रके सामने यह प्रश्न खास कर दिगम्बरत्वपक्षपातियोंकी तरफसे ही उपस्थित हुआ जान पडता है। हरिभद्रने जो दानका प्रश्न उठाया है वह करीब करीब आधुनिक तेरापंथी संप्रदायकी विचारसरणीका प्रतिबिम्ब है। यद्यपि उस समय तेरापंथ या वैसा ही दूसरा कोई स्पष्ट पंथ न था; फिर भी जैन परंपराकी निवृत्तिप्रधान भावनामेंसे उस समय भी दान देनेके विरुद्ध किसी-किसीको विचार आ जाना स्वाभाविक था जिसका जवाब हरिभद्रने दिया है। जैनसंमत तपका विरोध बौद्ध परंपरा पहलेसे ही करती आई है। उसीका जवाब हरिभद्रने दिया है। इस तरह जैन धर्मके प्राणभूत सिद्धान्तोंका स्वरूप उन्होंने **उपदेशपद**में चार प्रकारके वाक्यार्थबोधका निरूपण करनेके प्रसंगमें स्पष्ट किया है जो याज्ञिक विद्वानोंकी अपनी हिंसा-अहिंसा विषयक मीमांसाका जैन दृष्टिके अनुसार संशोधित मार्ग है।

भिन्न-भिन्न समयके अनेक ऋषियोंके द्वारा सर्वभूतदयाका सिद्धान्त तो आर्य-वर्गमें बहुत पहले ही स्थापित हो चुका था, जिसका प्रतिघोष है – 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' – यह श्रुतिकल्प वाक्य। यज्ञ आदि धर्मोंमें प्राणिवधका समर्थन करनेवाले मीमांसक भी उस अहिंसाप्रतिपादक प्रतिघोषको पूर्णतया प्रमाण रूपसे मानते आए हैं। अतएव उनके सामने भी अहिंसाके क्षेत्रमें यह प्रश्न तो अपने आप ही उपस्थित हो जाता था; तथा सांख्य आदि अर्ध वैदिक परंपराओंके द्वारा भी वैसा प्रश्न उपस्थित हो जाता था – कि जब हिंसाको निषिद्ध अतएव अनिष्ट-जननी तुम मीमांसक भी मानते हो, तब यज्ञ आदि प्रसंगोंमें कीजाने वाली हिंसा

भी, हिंसा होनेके कारण अनिष्टजनक क्यों नहीं ? । और जब हिंसाके नाते यज्ञीय हिंसा भी अनिष्टजनक सिद्ध होती है तब उसे धर्म का – इष्टका निमित्त मान कर यज्ञ आदि कर्मोंमें कैसे कर्तव्य माना जा सकता है ? । इस प्रश्नका जवाब बिना दिए व्यवहार तथा शास्त्रमें काम चल ही नहीं सकता था । अतएव पुराने समयसे याज्ञिक विद्वान अहिंसाको पूर्णरूपेण धर्म मानते हुए भी, बहुजन-स्वीकृत और चिरप्रचलित यज्ञ आदि कर्मोंमें होनेवाली हिंसाका धर्म – कर्तव्य रूपसे समर्थन, अनिवार्य अपवादके नाम पर, करते आ रहे थे । मीमांसकोंकी अहिंसा-हिंसाके उत्सर्ग-अपवादभाववाली चर्चाके प्रकार तथा उसका इतिहास हमें आज भी कुमारिल तथा प्रभाकरके ग्रन्थोंमें विस्पष्ट और मनोरंजक रूपसे देखनेको मिलता है । इस बुद्धिपूर्ण चर्चाके द्वारा मीमांसकोंने सांख्य, जैन, बौद्ध आदिके सामने यह स्थापित करनेका प्रयत्न किया है कि शास्त्रविहित कर्ममें की-जाने वाली हिंसा अवश्यकर्तव्य होनेसे अनिष्ट – अधर्मका निमित्त नहीं हो सकती । मीमसांकोंका अंतिम तात्पर्य यही है कि शास्त्र – वेद ही मुख्य प्रमाण हैं और यज्ञ आदि कर्म वेदविहित हैं । अतएव जो यज्ञ आदि कर्मको करना चाहे, या जो वेदको मानता है, उसके वास्ते वेदाज्ञाका पालन ही परम धर्म है, चाहे उसके पालनमें जो कुछ करना पडे । मीमांसकोंका यह तात्पर्यनिर्णय आज भी वैदिक परंपरामें एक ठोस सिद्धान्त है । सांख्य आदि जैसे यज्ञीय हिंसाके विरोधी भी, वेदका प्रामाण्य सर्वथा न त्याग देनेके कारण, अंतमें मीमांसकोंके उक्त तात्पर्यार्थ निर्णयका आत्यंतिक विरोध कर न सके । ऐसा विरोध आखिर तक वे ही करते रहे जिन्होंने वेदके प्रामाण्यका सर्वथा इन्कार कर दिया । ऐसे विरोधियोंमें जैन परंपरा मुख्य है । जैन परंपराने वेदके प्रामाण्यके साथ वेदविहित हिंसाकी धर्म्यताका भी सर्वतोभावेन निषेध किया । पर जैन परंपराका भी अपना एक उद्देश्य है जिसकी सिद्धिके वास्ते उसके अनुयायी गृहस्थ और साधुका जीवन आवश्यक है । इसी जीवनधारणमेंसे जैन परंपराके सामने भी ऐसे अनेक प्रश्न समय-समय पर आते रहे जिनका अहिंसाके आत्यन्तिक सिद्धान्तके साथ सम-न्वय करना उसे प्राप्त हो जाता था । जैन परंपरा वेदके स्थानमें अपने आगमोंको ही एक मात्र प्रमाण मानती आई है; और अपने उद्देशकी सिद्धिके वास्ते स्थापित तथा प्रचारित विविध प्रकारके गृहस्थ और साधु जीवनोपयोगी कर्तव्योंका पालन भी करती आई है । अतएव अन्तमें उसके वास्ते भी उन स्वीकृत कर्तव्योंमें

अनिवार्य रूपसे होजाने वाली हिंसाका समर्थन भी एक मात्र आगमकी आज्ञाके पालन रूपसे ही करना प्राप्त है। जैन आचार्य इसी दृष्टिसे अपने आपवादिक हिंसा मार्गका समर्थन करते रहे।

आचार्य हरिभद्रने चार प्रकारके वाक्यार्थ बोधको दर्शाते समय अहिंसा-हिंसाके उत्सर्ग-अपवादभावका जो सूक्ष्म विवेचन किया है वह अपने पूर्वाचार्योंकी परंपराप्राप्त संपत्ति तो है ही, पर उसमें उनके समय तककी विकसित मीमांसा-शैलीका भी कुछ-न-कुछ असर है। इस तरह एक तरफसे चार वाक्यार्थबोधके बहाने उन्होंने **उपदेशपद**में मीमांसाकी विकसित शैलीका, जैन दृष्टिके अनुसार संग्रह किया; तब दूसरी तरफसे उन्होंने बौद्ध परिभाषाको भी **'षोडशक'**[1] में अपनानेका सर्व प्रथम प्रयत्न किया। धर्मकीर्तिके **'प्रमाणवार्तिक'** के पहलेसे भी बौद्ध परंपरामें विचारविकासकी क्रमप्राप्त तीन भूमिकाओंको दर्शानेवाले श्रुतमय, चिंतामय और भावनामय ऐसे तीन शब्द बौद्ध वाङ्मयमें प्रसिद्ध रहे। हम जहां तक जान पाये हैं कह सकते हैं कि आचार्य हरिभद्रने ही उन तीन बौद्धप्रसिद्ध शब्दोंको ले कर उनकी व्याख्यामें वाक्यार्थबोधके प्रकारोंको समानेका सर्वप्रथम प्रयत्न किया। उन्होंने षोडशकमें परिभाषाएँ तो बौद्धोंकी लीं पर उनकी व्याख्या अपनी दृष्टिके अनुसार की; और श्रुतमयको वाक्यार्थ ज्ञानरूपसे, चिंतामयको महावाक्यार्थ ज्ञानरूपसे और भावनामयको ऐदम्पर्यार्थ ज्ञानरूपसे घटाया। स्वामी विद्यानन्दने उन्हीं बौद्ध परिभाषाओंका **'तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक'** में खंडन[2] किया, जब कि हरिभद्रने उन परिभाषा-ओंको अपने ढंगसे जैन वाङ्मयमें अपना लिया।

उपाध्याय यशोविजयजीने ज्ञानबिन्दुमें हरिभद्रवर्णित चार प्रकारका वाक्यार्थबोध, जिसका पुराना इतिहास, निर्युक्तिके अनुगममें तथा पुरानी वैदिक परंपरा आदिमें भी मिलता है; उस पर अपनी जैनी नैयायिक दृष्टिसे बहुत ही मार्मिक प्रकाश डाला है, और स्थापित किया है कि ये सब वाक्यार्थ बोध एक दीर्घ श्रुतोपयोग रूप हैं जो मतिउपयोगसे जुदा है। उपाध्यायजीने ज्ञानबिन्दुमें जो वाक्यार्थ विचार संक्षेपमें दर्शाया है वही उन्होंने अपनी **'उपदेशरहस्य'** नामक दूसरी कृतिमें विस्तारसे किन्तु **'उपदेशपद'** के साररूपसे निरूपित किया है।

---

१ षोडशक १. १०।

२ देखो, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० २१।

अहिंसाका स्वरूप और विकास

उपाध्याय यशोविजयजीने चतुर्विध वाक्यार्थका विचार करते समय ज्ञानबिन्दुमें जैन परंपराके एक मात्र और परम सिद्धान्त अहिंसाको ले कर, उत्सर्ग-अपवाद-भावकी, जैन शास्त्रोंमें परापूर्वसे चली आनेवाली जो चर्चा की है और जिसके उपपादनमें उन्होंने अपने न्याय-मीमांसा आदि दर्शनान्तरके गंभीर अभ्यासका उपयोग किया है, उसको यथासंभव विशेष समझानेके लिए, यहाँ अहिंसा संबंधी कुछ ऐतिहासिक तथा तात्त्विक मुद्दों पर प्रकाश डाला जाता है।

अहिंसाका सिद्धान्त आर्यपरंपरामें बहुत ही प्राचीन है और उसका आदर सभी आर्यशाखाओंमें एकसा रहा है। फिर भी प्रजाजीवनके विस्तारके साथ-साथ तथा विभिन्न धार्मिक परंपराओंके विकासके साथ-साथ, उस सिद्धान्तके विचार तथा व्यवहारमें भी अनेकमुखी विकास हुआ देखा जाता है। अहिंसा विषयक विचारके मुख्य दो स्रोत प्राचीन कालसे ही आर्य परंपरामें बहने लगे ऐसा जान पडता है। एक स्रोत तो मुख्यतया श्रमण जीवनके आश्रयसे बहने लगा, जब कि दूसरा स्रोत ब्राह्मण परंपरा – चतुर्विध आश्रम – के जीवनविचारके सहारे प्रवाहित हुआ। अहिंसाके तात्त्विक विचारमें उक्त दोनों स्रोतोंमें कोई मतभेद देखा नहीं जाता। पर उसके व्यवहारिक पहलू या जीवनगत उपयोगके बारेमें उक्त दो स्रोतोंमें ही नहीं बल्कि प्रत्येक श्रमण एवं ब्राह्मण स्रोतकी छोटी बडी अवान्तर शाखाओंमें भी, नाना प्रकारके मतभेद तथा आपसी विरोध देखे जाते हैं। तात्त्विक रूपसे अहिंसा सबको एकसी मान्य होने पर भी उसके व्यावहारिक उपयोगमें तथा तदनुसारी व्याख्याओंमें जो मतभेद और विरोध देखा जाता है उसका प्रधान कारण जीवनदृष्टिका भेद है। श्रमण परंपराकी जीवन-दृष्टि प्रधानतया वैयक्तिक और आध्यात्मिक रही हैं, जब कि ब्राह्मण परंपराकी जीवनदृष्टि प्रधानतया सामाजिक या लोकसंग्राहक रही है। पहलीमें लोकसंग्रह तभी तक इष्ट है जब तक वह आध्यात्मिकताका विरोधी न हो। जहाँ उसका आध्यात्मिकतासे विरोध दिखाई दिया वहाँ पहली दृष्टि लोकसंग्रहकी ओर उदा-सीन रहेगी या उसका विरोध करेगी। जब कि दूसरी दृष्टिमें लोकसंग्रह इतने विशाल पैमाने पर किया गया है कि जिससे उसमें आध्यात्मिकता और भौति-कता परस्पर टकराने नहीं पाती।

श्रमण **परंपराकी अहिंसा संबंधी** विचारधाराका एक प्रवाह अपने विशिष्ट **रूपसे बहता था** जो कालक्रमसे आगे जा कर **दीर्घतपस्वी** भगवान् **महावीरके**

जीवनमें उदात्त रूपमें व्यक्त हुआ। हम उस प्रकटीकरणको **'आचाराङ्ग'** **'सूत्रकृताङ्ग'** आदि प्राचीन जैन आगमोंमें स्पष्ट देखते हैं। अहिंसा धर्मकी प्रतिष्ठा तो आत्मौपम्यकी दृष्टिमेंसे ही हुई थी। पर उक्त आगमोंमें उसका निरूपण और विश्लेषण इस प्रकार हुआ है—

१. दुःख और भयका कारण होनेसे हिंसामात्र वर्ज्य है, यह अहिंसा सिद्धान्तकी उपपत्ति।

२. हिंसाका अर्थ यद्यपि प्राणनाश करना या दुःख देना है तथापि हिंसा-जन्य दोषका आधार तो मात्र प्रमाद अर्थात् रागद्वेषादि ही है। अगर प्रमाद या आसक्ति न हो तो केवल प्राणनाश हिंसा कोटिमें आ नहीं सकता, यह अहिंसाका विश्लेषण।

३. वध्य जीवोंका कद, उनकी संख्या तथा उनकी इन्द्रिय आदि संपत्तिके तारतम्यके ऊपर हिंसाके दोषका तारतम्य अवलंबित नहीं है; किन्तु हिंसकके परिणाम या वृत्तिकी तीव्रता-मंदता, सज्ञानता-अज्ञानता या बलप्रयोगकी न्यूना-धिकताके उपर अवलंबित है, ऐसा कोटिक्रम।

उपर्युक्त तीनों बातें भगवान् महावीरके विचार तथा आचारमेंसे फलित हो कर आगमोंमें ग्रथित हुई हैं। कोई एक या व्यक्तिसमूह कैसा ही आध्यात्मिक क्यों न हो पर जब वह संयमलक्षी जीवनधारणका भी प्रश्न सोचता है तब उसमेंसे उपर्युक्त विश्लेषण तथा कोटिक्रम अपने आप ही फलित हो जाता है। इस दृष्टिसे देखा जाय तो कहना पडता है कि आगेके जैन वाङ्मयमें अहिंसाके संबंधमें जो विशेष ऊहापोह हुआ है उसका मूल आधार तो प्राचीन आगमोंमें प्रथमसे ही रहा है।

समूचे जैन वाङ्मयमें पाए जाने वाले अहिंसाके ऊहापोह पर जब हम दृष्टिपात करते हैं, तब हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि जैन वाङ्मयका अहिंसा-संबंधी ऊहापोह मुख्यतया चार बलोंपर अवलंबित है। पहला तो यह कि वह प्रधानतया साधु जीवनका ही अतएव नवकोटिक—पूर्ण अहिंसाका ही विचार करता है। दूसरा यह कि वह ब्राह्मण परंपरामें विहित मानी जाने वाली और प्रतिष्ठित समझी जाने वाली यज्ञीय आदि अनेकविध हिंसाओंका विरोध करता है। तीसरा यह कि वह अन्य श्रमण परंपराओंके त्यागी जीवनकी अपेक्षा भी जैन श्रमणका त्यागी जीवन विशेष नियन्त्रित रखनेका आग्रह रखता है। चौथा यह कि वह जैन परंपराके ही अवान्तर फिरकोंमें उत्पन्न होने वाले पारस्परिक विरोधके प्रश्नोंके निराकरणका भी प्रयत्न करता है।

नवकोटिक — पूर्ण अहिंसाके पालनका आग्रह भी रखना और संयम या सद्गुणविकासकी दृष्टिसे जीवननिर्वाहका समर्थन भी करना — इस विरोधमेंसे हिंसाके द्रव्य, भाव आदि भेदोंका ऊहापोह फलित हुआ और अंतमें एक मात्र निश्चय सिद्धान्त यही स्थापित हुआ कि आखिरको प्रमाद ही हिंसा है। अप्रमत्त जीवनव्यवहार देखनेमें हिंसात्मक हो तब भी वह वस्तुतः अहिंसक ही है। जहाँ तक इस आखिरी नतीजेका संबंध है वहाँ तक श्वेताम्बर दिगंबर आदि किसी भी जैन फिरकेका इसमें थोडा भी मतभेद नहीं है। सब फिरकोंकी विचारसरणी परिभाषा और दलीलें एकसी हैं।

वैदिक परंपरामें यज्ञ, अतिथि सेवा, श्राद्ध आदि अनेक निमित्तोंसे होने वाली जो हिंसा धार्मिक मान कर प्रतिष्ठित करार दी जाती थी उसका विरोध सांख्य, बौद्ध और जैन परंपराने एकसा किया है फिर भी आगे जा कर इस विरोधमें मुख्य भाग बौद्ध और जैनका ही रहा है। जैनवाङ्मयगत अहिंसाके ऊहापोहमें उक्त विरोधकी गहरी छाप और प्रतिक्रिया भी है। पद-पद पर जैन साहित्यमें वैदिक हिंसाका खण्डन देखा जाता है। साथ ही जब वैदिक लोग जैनोंके प्रति यह आशंका करते हैं कि अगर धार्मिक हिंसा भी अकर्त्तव्य है तो तुम जैन लोग अपनी समाजरचनामें मंदिरनिर्माण, देवपूजा आदि धार्मिक कृत्योंका समावेश अहिंसक रूपसे कैसे कर सकोगे — इत्यादि। इस प्रश्नका खुलासा भी जैन वाङ्मयके अहिंसा संबंधी ऊहापोहमें सविस्तर पाया जाता है।

प्रमाद — मानसिक दोष ही मुख्यतया हिंसा है और उस दोषमेंसे जनित ही प्राणनाश हिंसा है। यह विचार जैन और बौद्ध परंपरामें एकसा मान्य है। फिर भी हम देखते हैं कि पुराकालसे जैन और बौद्ध परंपराके बीच अहिंसाके संबन्धमें पारस्परिक खण्डन-मण्डन बहुत कुछ हुआ है। **'सूत्रकृताङ्ग'** जैसे प्राचीन आगममें भी अहिंसा संबंधी बौद्ध मन्तव्यका खण्डन है। इसी तरह **'मज्झिमनिकाय'** जैसे पिटक ग्रन्थोंमें भी जैनसंमत अहिंसाका सपरिहास खण्डन पाया जाता है। उत्तरवर्ती निर्युक्ति आदि जैन ग्रन्थोंमें तथा **'अभिधर्मकोष'** आदि बौद्ध ग्रन्थोंमें भी वही पुराना खण्डन-मण्डन नये रूपमें देखा जाता है। जब जैन एवं बौद्ध दोनों परंपराएँ वैदिक हिंसाकी एकसी विरोधिनी हैं और जब दोनोंकी अहिंसासंबंधी व्याख्यामें कोई तात्त्विक मतभेद नहीं है, तब पहलेसे ही दोनोंमें पारस्परिक खण्डन-मण्डन क्यों शुरू हुआ और चल पडा — यह एक प्रश्न है। इसका जवाब जब हम दोनों परंपराओंके साहित्यको ध्यानसे पढते हैं

तब मिल जाता है। खण्डन-मण्डनके अनेक कारणोंमेंसे प्रधान कारण तो यही है कि जैन परंपराने नवकोटिक अहिंसाकी सूक्ष्म व्याख्याको अमलमें लानेके लिए जो बाह्य प्रवृत्तिको विशेष नियन्त्रित किया वह बौद्ध परंपराने नहीं किया। जीवन-संबंधी बाह्य प्रवृत्तियोंके अतिनियन्त्रण और मध्यममार्गीय शैथिल्यके प्रबल भेदमेंसे ही बौद्ध और जैन परंपराएँ आपसमें खण्डन-मण्डनमें प्रवृत्त हुई। इस खण्डन-मण्डनका भी जैन वाङ्मयके अहिंसा संबन्धी ऊहापोहमें खासा हिस्सा है जिसका कुछ नमूना आगेके टिप्पणोंमें दिए हुए जैन और बौद्ध अवतरणोंसे जाना जा सकता है। जब हम दोनों परंपराओंके खण्डन-मण्डनको तटस्थ भावसे देखते हैं तब निःसंकोच कहना पडता है कि बहुधा दोनोंने एक दूसरेको गलतरूपसे ही समझा है। इसका एक उदाहरण 'मज्झिमनिकाय'का उपालिसुत्त और दूसरा नमूना सूत्रकृताङ्ग (१.१.२.२४ – ३२;२.६.२६ – २८) का है।

जैसे-जैसे जैन साधुसंघका विस्तार होता गया और जुदे-जुदे देश तथा कालमें नई-नई परिस्थितिके कारण नए-नए प्रश्न उत्पन्न होते गए वैसे-वैसे जैन तत्त्वचिन्तकोंने अहिंसाकी व्याख्या और विश्लेषणमेंसे एक स्पष्ट नया विचार प्रकट किया। वह यह कि अगर अप्रमत्त भावसे कोई जीवविराधना – हिंसा हो जाय या करनी पडे तो वह मात्र अहिंसाकोटिकी अतएव निर्दोष ही नहीं है बल्कि वह गुण (निर्जरा) वर्धक भी है। इस विचारके अनुसार, साधु पूर्ण अहिंसाका स्वीकार कर लेनेके बाद भी, अगर संयत जीवनकी पुष्टिके निमित्त, विविध प्रकारकी हिंसारूप समझी जाने वाली प्रवृत्तियाँ करता है तो वह संयम-विकासमें एक कदम आगे ही बढ़ता है। यही जैन परिभाषाके अनुसार निश्चय अहिंसा है। जो त्यागी बिलकुल वस्त्र आदि रखनेके विरोधी थे वे मर्यादित रूपमें वस्त्र आदि उपकरण (साधन) रखने वाले साधुओंको जब हिंसाके नाम पर कोसने लगे तब वस्त्रादिके समर्थक त्यागियोंने उसी निश्चय सिद्धान्तका आश्रय ले कर जवाब दिया, कि केवल संयमके धारण और निर्वाहके वास्ते ही, शरीरकी तरह मर्यादित उपकरण आदिका रखना अहिंसाका बाधक नहीं। जैन साधुसंघकी इस प्रकारकी पारस्परिक आचारभेदमूलक चर्चाके द्वारा भी अहिंसाके ऊहापोहमें बहुत कुछ विकास देखा जाता है, जो **ओघनिर्युक्ति** आदिमें स्पष्ट है। कभी-कभी अहिंसाकी चर्चा शुष्क तर्ककी-सी हुई जान पडती है। एक व्यक्ति प्रश्न करता है, कि अगर वस्त्र रखना ही है तो वह बिना फाडे अखण्ड ही क्यों न रखा जाय; क्यों कि उसके फाडनेमें जो सूक्ष्म अणु उडेंगे वे जीवघातक जरूर होंगे।

इस प्रश्नका जवाब भी उसी ढंगसे दिया गया है। जवाब देने वाला कहता है, कि अगर वस्त्र फाड़नेसे फैलने वाले सूक्ष्म अणुओंके द्वारा जीवघात होता है; तो तुम जो हमें वस्त्र फाड़नेसे रोकनेके लिए कुछ कहते हो उसमें भी तो जीवघात होता है न? — इत्यादि। अस्तु। जो कुछ हो, पर हम जिनभद्रगणिकी स्पष्ट वाणीमें जैनपरंपरासंमत अहिंसाका पूर्ण स्वरूप पाते हैं। वे कहते हैं कि स्थान सजीव हो या निर्जीव, उसमें कोई जीव घातक देखा जाता हो या कोई अघातक ही देखा जाता हो, पर इतने मात्रसे हिंसा या अहिंसाका निर्णय नहीं हो सकता। हिंसा सचमुच प्रमाद — अयतना — असंयममें ही है, फिर चाहे किसी जीवका घात न भी होता हो। इसी तरह अगर अप्रमाद या यतना — संयम सुरक्षित है तो जीवघात दिखाई देने पर भी वस्तुतः अहिंसा ही है।

उपर्युक्त विवेचनसे अहिंसा संबंधी जैन ऊहापोहकी नीचे लिखी क्रमिक भूमिकाएँ फलित होती हैं —

(१) प्राणका नाश हिंसारूप होनेसे उसको रोकना ही अहिंसा है।

(२) जीवन धारणकी समस्यामेंसे फलित हुआ कि जीवन — खास कर संयमी जीवनके लिए अनिवार्य समझी जाने वाली प्रवृत्तियाँ करते रहने पर अगर जीवघात हो भी जाय तो भी यदि प्रमाद नहीं है तो वह जीवघात हिंसारूप न हो कर अहिंसा ही है।

(३) अगर पूर्णरूपेण अहिंसक रहना हो तो वस्तुतः, और सर्वप्रथम, चित्तगत क्लेश (प्रमाद) का ही त्याग करना चाहिए। यह हुआ तो अहिंसा सिद्ध हुई। अहिंसाका बाह्य प्रवृत्तियोंके साथ कोई नियत संबंध नहीं है। उसका नियत संबंध मानसिक प्रवृत्तियोंके साथ है।

(४) वैयक्तिक या सामूहिक जीवनमें ऐसे भी अपवाद स्थान आते हैं जब कि हिंसा मात्र अहिंसा ही नहीं रहती प्रत्युत वह गुणवर्धक भी बन जाती है। ऐसे आपवादिक स्थानोंमें अगर कही जाने वाली हिंसासे डर कर उसे आचरणमें न लाया जाय तो उलटा दोष लगता है।

ऊपर हिंसा-अहिंसा संबंधी जो विचार संक्षेपमें बतलाया है उसकी पूरी पूरी शास्त्रीय सामग्री उपाध्यायजीको प्राप्त थी अतएव उन्होंने 'वाक्यार्थ विचार' प्रसंगमें जैनसंमत — खास कर साधुजीवनसंमत — अहिंसाको ले कर उत्सर्ग-अपवादभावकी चर्चा की है। उपाध्यायजीने जैनशास्त्रमें पाए जाने वाले अपवादोंका निर्देश करके स्पष्ट कहा है कि ये अपवाद देखनेमें कैसे ही क्यों न अहिंसाविरोधी

हों, फिर भी उनका मूल्य औत्सर्गिक अहिंसाके बराबर ही है। अपवाद अनेक बतलाए गए हैं, और देश-कालके अनुसार नए अपवादोंकी भी सृष्टि हो सकती है; फिर भी सब अपवादोंकी आत्मा मुख्यतया दो तत्त्वोंमें समा जाती है। उनमें एक तो है गीतार्थत्व यानि परिणतशास्त्रज्ञानत्वका और दूसरा है कृतयोगित्व अर्थात् चित्तसाम्य या स्थिनप्रज्ञत्वका।

उपाध्यायजीके द्वारा बतलाई गई जैन अहिंसाके उत्सर्ग-अपवादकी यह चर्चा, ठीक अक्षरशः मीमांसा और स्मृतिके अहिंसा संबंधी उत्सर्ग-अपवादकी विचारसरणीसे मिलती है। अन्तर है तो यही कि जहाँ जैन विचारसरणी साधु या पूर्ण त्यागीके जीवनको लक्ष्यमें रख कर प्रतिष्ठित हुई है वहाँ मीमांसक और स्मार्तोंकी विचारसरणी गृहस्थ, – त्यागी सभीके जीवनको केन्द्र स्थानमें रख कर प्रचलित हुई है। दोनोंका साम्य इस प्रकार है –

१ जैन	२ वैदिक
१ सव्वे पाणा न हंतव्वा	१ मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि
२ साधुजीवनकी अशक्यताका प्रश्न	२ चारों आश्रमके सभी प्रकारके अधिकारियोंके जीवनकी तथा तत्संबंधी कर्तव्योंकी अशक्यताका प्रश्न
३ शास्त्रविहित प्रवृत्तियोंमें हिंसादोषका अभाव अर्थात् निषिद्धाचरण ही हिंसा	३ शास्त्रविहित प्रवृत्तियोंमें हिंसादोषका अभाव अर्थात् निषिद्धाचार ही हिंसा है
४ अन्तनो गत्वा अहिंसाका मर्म जिनाज्ञाके – जैन शास्त्रके यथावत् अनुसरणमें ही है।	४ अन्ततो गत्वा अहिंसाका तात्पर्य वेद तथा स्मृतियोंकी आज्ञाके पालनमें ही है।

यशोविजयजीने उपर्युक्त चार भूमिकावाली अहिंसाका चतुर्विध वाक्यार्थके द्वारा निरूपण करके उसके उपसंहारमें जो कुछ लिखा है वह वेदानुयायी मीमांसक और नैयायिककी अहिंसाविषयक विचार-सरणीके साथ एक तरहकी जैन विचारसरणीकी तुलना मात्र है। अथवा यों कहना चाहिए कि वैदिक विचारसरणीके द्वारा जैन विचारसरणीका विश्लेषण ही उन्हों ने किया है। जैसे मीमांसकोंने वेदविहित हिंसा को छोड कर ही हिंसामें अनिष्टजनकत्व माना है वैसे ही जैन उपाध्याय यशोविजयजीने अन्तमें स्वरूप हिंसाको छोड कर ही मात्र हेतु – परिणाम हिंसामें ही अनिष्टजनकत्व बतलाया है‡।

*

‡ सिंघी जैनग्रन्थमालमें, पं० श्री सुखलालजी द्वारा संपादित होकर शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले, यशोविजयोपाध्यायकृत '**ज्ञानबिन्दुप्रकरण**' नामक ग्रन्थकी विविधविषयविवेचनापूर्ण प्रस्तावनाके अन्तर्गत एक प्रकरणका यह उद्धरण है।

प्रथम पत्र

चौलुक्य वंशीय भीमदेव (द्वितीय) के समयका सं. १२५२ का ताम्रपत्र.

द्वितीय पत्र

चौलुक्य वंशीय भीमदेव (द्वितीय) के समयका सं. १२४७ का ताम्रपत्र.

चौलुक्य राजा भीमदेव (द्वितीय) के
गुहिलवंशी सामंत महाराजाधिराज अमृतपालदेवका
वि० सं० १२४२ का दानपत्र

*

ले०—महामहोपाध्याय रायबहादुर साहित्य-वाचस्पति
डाक्टर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर.

उदयपुर राज्य के सुप्रसिद्ध विशाल जलाशय जयसमुद्र (ढेबर) के सुदृढ़ बांधके नीचे अनुमान आध मीलपर वीरपुर नामका गांव है। वहांके ब्राह्मण किशनाके पास एक दानपत्र होनेकी सूचना मिलने पर मैं वहां गया और उसकी छाप ले आया। अनंतर मैंने उसका आशय अपनी राजपूताना म्यूज़ियम, अजमेरकी ई. स. १९२९-३० की वार्षिक रिपोर्ट में प्रकाशित किया[1]।

यह दानपत्र तांबेके दो पत्रोंके एक ही तरफ खुदा हुआ है। प्रत्येक पत्र की लंबाई १० इंच और चौडाई १०½ इंच है। पत्रोंके किनारे कुछ मुड़े हुए हैं, जो संभवतः लेखको सुरक्षित रखनेके लिए ऐसे बनाये गये हों। दोनों पत्र दो कडियोंसे जुड़े हुए थे जिन्हें अलग कर मैंने उनकी छापें ली थीं। प्रथम पत्रेमें बीस तथा दूसरेमें बाइस पंक्तियां हैं। अक्षर गहरे खुदे हुए हैं और उनका आकार औसत ¼ इंचका है। पत्रे साधारणतया अच्छी दशामें हैं, परन्तु दूसरे पत्रेकी पहली और दूसरी पंक्तिके कई अक्षर अस्पष्ट हैं।

लेख की भाषा संस्कृत और अक्षर नागरी हैं। लेख का अधिकांश भाग गद्यमें है। अंतिम भागमें तेरह श्लोक (पंक्ति २८ से ४०) तक हैं जिनमें दान देने और पालने वालेकी प्रशंसा एवं दानमें दी हुई भूमिको छीनने अथवा ऐसा करनेकी अनुमति देने वालेकी निंदा है।

यह दानपत्र अशुद्धियोंसे परिपूर्ण है। कुछ अशुद्धियां खोदने वालेकी अज्ञानता के कारण हुई हैं, जिनके शुद्ध रूप ताम्रपत्रोंके अक्षरान्तरके नीचे टिप्पणोंमें दिये गये हैं।

लेखन शैलीके सम्बन्धमें निम्न लिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं—

सम्पूर्ण लेखमें 'ब'के स्थानमें 'व'का प्रयोग हुआ है। 'रेफ'के नीचेका

---

१ पृष्ठ २-३।

व्यंजन बहुधा द्वित्व किया गया है, यथा कार्त्तिक (पंक्ति २), मार्त्तंड (पं. ४), प्रवर्त्तमाने (पं. ६), पर्व्वणि (पं. १७), शासनपूर्व्वकः (पं. २४), पूर्व्वस्यां (पं. २४), स्वर्ग्गे (पं. २९), पुण्यकर्म्माणौ (पं. ३२), स्वर्ग्ग० (पं. ३२) सुवर्ण्णं (पं. ३३), कृष्णसर्प्पा (पं. ३६), भूमिहर्त्ता (पं. ३७), निवर्त्तते (पं. ३७), गर्त्ता (पं. ३९) आदि। संधिके नियमोंका कहीं-कहीं पालन नहीं हुआ है, यथा अधिकेषु अंकतोपि (पं. १) श्रीउमापति (पं. ३), मार्त्तंड अभिनव (पं. ४) आदि। अवग्रहका प्रयोग केवल दो स्थलोंपर हुआ है, यथा – स्वहस्तोऽयं (पं. ४१ तथा ४२)।

पृष्ठमात्राका जगह जगह उपयोग किया गया है, यथा – शतेषु (पं. १), अधिके (पं. १), अंकतोपि (पं. १), वर्षे (पं. २), अद्येह (पं. २), परमेश्वर (पं. २) आदि। 'इ'का प्राचीन रूप (ॱॱ) भी दो जगह पाया जाता है, यथा वइजा (पं. १४) तथा इहहि (पं. ३७)।

दानपत्रका आशय नीचे लिखे अनुसार है –

ॐ स्वस्ति। विक्रमसंवत् १२४२ कार्त्तिक सुदी १५ रविवारको, अणहिल-पाटकमें रहते हुए, परमेश्वर परमभट्टारक शंकरके वरसे राज्य और राज्यलक्ष्मी पाये हुए, चौलुक्य कुलरूपी उद्यानके लिए सूर्यके समान, अभिनव सिद्ध-राज, श्रीमहाराजाधिराज श्रीभीमदेवके कल्याणकारी विजयराज्यमें, जब कि महा-मात्य श्रीदेवधर, श्रीकरण[2] आदि समस्त मुद्रा (= मोहरें) करता था; इस बड़े राजा (भीमदेव द्वितीय) की कृपापर निर्भर रहनेवाले (= सामंत) महाराजाधि-राज श्रीअमृतपालदेवका वागड़के वटपद्रकमंडल पर राज्य था। उस समय उसके नियत किये हुए महत्तम केल्हण आदि पंचकुल[3]की अनुमतिसे, [यह] दानपत्र

२ राज्यकी अनेक मुद्राओंमेंसे एकमें 'श्री' खुदा रहता था, जिसके लगानेको 'श्रीकरण' कहते थे। यह मुद्रा मुख्य मानी जाती थी। उदयपुर राज्यमें प्राचीन प्रथाके अनुसार अन्य मुद्राओंके अतिरिक्त एक मुद्रामें 'श्री' भी रहता है, जो रुपयोंके सम्बन्धके कागजों पर लगाई जाती है।

३ 'पंचकुल' एक महकमा था, जिसमें पांच पुरुष नियत रहते थे और उनका मुख्य काम राजकीय कर आदि उगाहना था। उनका मुखिया राज्यका मंत्री अथवा उसके समान उच्च अधिकारवाला व्यक्ति होता था। उसका प्रत्येक सभ्य 'पंचकुल' कहलाता था। इस से ही 'पंचोली' शब्द बना है। राजपूतानामें ब्राह्मण, महाजन, कायस्थ और गूजर पंचोली पाये जाते हैं। उदयपुर और जोधपुर राज्योंमें कायस्थोंके लिए पंचोली शब्दका भी प्रयोग होता है, जिसका कारण यह है कि कायस्थ लोग अधिकतर पंचकुल आदि राजकीय पदों पर नियुक्त होते थे।

लिखा जाता है। श्री गुहिलदत्त (गुहिलोत) वंशमें भर्तृपट्टाभिधान (उपनाम[4]) वाले महाराजाधिराज विजयपालके पुत्र महाराजाधिराज श्री अमृतपालदेव पुरोहित पाल्हा, ज्योतिषी यशदेव, पंचकुल (पंचोली) महिदिग, ज्योतिषी आमदेव, प्रतिहार मदन, मंगडेश्वरी मंदिरके भट्टारक मुनिभद्र, जल्हण, वटपद्रकके रहनेवाले सेठ सुपट, सेठ सादा, सेठ धांधलके पुत्र सेठ सावंत, सेठ केसरीके पुत्र केल्हा, नायक[5] लाखूके पुत्र सहदेव, नायक जोहड़, नायक वागड़सीह, नायक लखमणके पुत्र नरपति, भामद्रंती ग्राम-निवासी द्रांगिक[6] सहजाके पुत्र द्रांगिक साढा, मच्छिद्र ग्राम-निवासी द्रांगिक रणसीहके पुत्र द्रांगिक जयदेव, मुगहड ग्राम-निवासी पोपाके पुत्र बैजा, झाडूली ग्रामीय द्रांगिक पाल्हा, गातउड ग्रामीय वोसाके पुत्र विसहरा, ठाकुर वासुदेवके पुत्र ठाकुर भालण, सेठ सलखण[7] तथा वृद्ध अमात्यादिको बुलाकर सूचित करते हैं कि — हमने सूर्यग्रहणके पर्व पर पुण्यतीर्थमें स्नान कर; दो धुले हुए वस्त्र पहन; ग्रह, देवर्षि, मनुष्य और पितरोंको तृप्त कर; चराचरके गुरु श्रीमहादेव और श्रीविष्णुकी आराधना और नम-

---

४ यह उपनाम ऐसा ही है जैसा कि आजकल पाये जानेवाले शक्तावत, चूंडावत, सारंगदेवोत आदि हैं, जिनका आशय शक्तासिंहका वंशज, चूंडाका वंशज और सारंगदेवका वंशज है। भर्तृपट्टाभिधानका अर्थ भर्तृपट्ट (भर्तृभट्ट) का वंशज है। यह महाराजाधिराज विजयपालका दूसरा नाम नहीं है। इंगणोदा (देवास छोटा) से मिले हुए वि० सं० ११९० के शिलालेखमें महाराजाधिराज पृथ्वीपालको भर्तृपट्टाभिधान कहा है (इंडियन एन्टिक्वेरी; जिल्द ६, पृष्ठ ५५)। इसी प्रकार ठाकरडा (वागड, डूंगरपूर राज्य) से मिले हुए वि० सं० १२१२ के शिलालेखमें भी उसे भर्तृपट्टाभिधान कहा है (इंडियन एंटिक्वेरी; जि० ५६७, पृ० २२६)। इन दोनों लेखोंमें भर्तृपट्टाभिधानवाले राजाका वंश परिचय नहीं दिया है, किन्तु वीरपुरके इस दानपत्रमें उसे स्पष्ट रूपसे गुहिलदत्त (गहलोत) वंशी लिखा है। ठाकरडा और इंगणोदा उस समय गुहिलवंशियोंके अधिकारमें थे। भर्तृपट्ट मेवाडके गुहिलवंशी राजा खुंमाण (तीसरे) का पुत्र और अल्लटका पिता था। उसके समयके दो शिलालेख मिले हैं, जो वि० सं० ९९९ तथा १००० के हैं (मेरा उदयपुर राज्यका इतिहास; जि० १, पृ० १२१)। नामोंमें समानता होनेके कारण पहले मैंने भर्तृपट्टाभिधानवाले राजाओंको ग्वालियरके कछवाहे राजाओंका और पीछेसे कन्नौजके प्रतिहार राजाओंका वंशज मान लिया था, परन्तु प्रस्तुत दानपत्रके मिल जानेसे अब यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि मेवाडके गुहिलवंशी भर्तृपट्टके वंशधर थे।

५ राजकीय पद। ६ राजकीय पद।

७ ताम्रपत्रमें आये हुए ये नाम साक्षीरूप हैं। वागड (डूंगरपुर) में ऐसी प्रथा पहलेसे चली आती है और अब तक भी किसी कदर जारी है कि दानपत्रोंमें कुछ प्रसिद्ध नागरिकों आदिके नाम साक्षी रूपमें अवश्य रहते हैं।

स्कार कर; इस जीवनको कमलके पत्ते पर स्थित जलकी बूंदके समान क्षणिक और संसारको असार समझ कर; माता, पिता एवं अपने कल्याणके हेतु तीन प्रवरवाले भारद्वाज गोत्रके रायकवाल जातिके ब्राह्मण यज्ञकर्त्ता ठाकुर शोभाके पुत्र मदनको, पट्पंचाशत मंडलके गातोड़ ग्रामका लहसाडिया नामका एक अरहट, बाहरकी दो हलवाह भूमि तथा धान (चावल) का खेत, दानपत्रके साथ संकल्प कर दिया है। इसकी सीमा यह है—पूर्वमें ऊंबरुआ नामका रहट, दक्षिणमें गांव (गातोड), पश्चिममें टींकोल नामका रहट और उत्तरमें गोमती नदी[९]। यह रहट तथा भूमि उपर्युक्त सीमा सहित, वृक्ष, वास, लकडी, तथा जल संयुक्त हमने [दानमें] दी है सो हमारे वंशवालों तथा दूसरोंको पालना चाहिये। भगवान् व्यासने कहा है कि—सगर आदि अनेक राजाओंने पृथ्वीको भोगा है। जब जब जिसकी पृथ्वी रही है तब तब उसको इस (भूमिदान) का फल मिलता है (१)। पृथ्वी देनेका फल यह है कि स्वर्ग, कुबेरकासा कोष, राजसिंहासन, छत्र, गज, अश्व, रथ आदि वाहन, देनेवालेको प्राप्त होते हैं (२)। सूर्य, वरुण, वासुदेव, अग्नि और भगवान् महादेव भूमिदान देनेवालेका अभिनंदन करते हैं (३)। भूमिदान करनेवाला व्यक्ति राजा दिलीप और नहुष आदि दूसरे राजाओंके साथ रहेगा (४)। भूमि आदि देनेवाला और उसका पालन करनेवाला—दोनो पुण्यकर्मी पुरुष निश्चय स्वर्गमें जाते हैं (५)। सब दानोंका फल एक जन्म तक रहता है, किन्तु सुवर्ण, पृथ्वी और कन्यादानका फल सात जन्म तक रहता है (६)। जिसने भूमि दान की उसने मानो सुवर्ण, रजत, वस्त्र, मणि, रत्न और संपत्ति ये सब दिये (७)। भूमिदान देनेवाला साठ हजार वर्ष तक स्वर्गमें वास करता है और उसका हरण करनेवाला अथवा ऐसा करनेकी अनुमति देनेवाला उतने समय तक नर्कमें रहता है (८)। अपनी दी हुई अथवा दूसरोंकी दी हुई भूमिको छीननेवाला सौ बार श्वानकी योनि भोग कर चाण्डालोंमें जन्म लेता है

---

८ वि० सं० १२४२ ज्येष्ठ वदि ३० (ई. स. ११८५ ता. १ मई) बुधवारको सूर्य ग्रहण था। उस समय किये हुए भूमिदानका यह दानपत्र है। प्राचीन कालमें ऐसी भी प्रथा थी कि दानका संकल्प तो ग्रहण अथवा अन्य किसी पर्व आदिके समय पर कर दिया जाता था, परन्तु दानपत्र पीछेसे सुविधानुसार लिखा जाता था।

९ गोमती नदी पहले गातोडके पास होकर बहती थी। जयसमुद्र (ढेबर) का बांध बंध जाने पर यह उसी विशाल जलाशयमें लुप्त हो गई।

(९) । भूमिदानको लोपनेवाला, जलविहीन विंध्याटवीके सूखे वृक्षके कोटरमें रहनेवाला काला सर्प होता है (१०) । पृथ्वी छीननेवाले, कृतघ्न, पाकभेदी और भूमिदानको हरण करनेवालेकी नर्कसे कभी मुक्ति नहीं होती (११) । यह जीवन बादलकी लीलाके समान चंचल और इस संसारके सब सुख तिनकेके समान सारहीन होनेसे, यहां बुरी इच्छावाला नर्कके गहरे खड्डेमें पडनेको तत्पर दुष्ट पुरुष ही ब्राह्मणोंको दानमें दी हुई भूमिका हरण करता है (१२) । अपने तथा अन्य वंशवालोंसे मैं प्रार्थना करता हूं कि वे मेरे इस दानको न लोपें (१३) । हस्ताक्षर महाराजाधिराज श्री अमृतपाल देवके । हस्ताक्षर महाकुमार श्रीसोमेश्वर देवके । हस्ताक्षर पुरोहित पाल्हा पालापकके ।

*

प्रस्तुत दानपत्रमें जिन जिन स्थानोंका उल्लेख आया है, उनका परिचय नीचे लिखे अनुसार है—

अणहिलपाटक—यह वर्तमान अणहिलवाड़ा (पाटण) है, जो बड़ोदा राज्यके अन्तर्गत है और सोलंकियोंके समय उनकी राजधानी थी ।

वागड़—डूगरपूर और बांसवाड़ा दोनों राज्योंका सम्मिलित नाम वागड़ है । पहले यह एक राज्य था परन्तु राजा उदयसिंहने अपने राज्यके पिछले दिनोंमें उसके दो विभाग कर, माही नदीसे पूर्वका भाग अपने छोटे पुत्र जगमालको दिया और पश्चिमका भाग ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराजके लिए रक्खा; तब से वागड़ के दो राज्य हो गये ।

वटपद्रक—यह वर्तमान बड़ोदा है, जो वागड़की प्राचीन राजधानी थी । बड़ोदा नामके एकसे अधिक नगर होनेके कारण वागडका बड़ोदा बतलानेके लिए उसके साथ वागड़ शब्द जोड़ देते थे ताकि भ्रम न रहे ।

भामद्रंति और **मच्छिद्र** गावोंका ठीक पता नहीं लगता ।

मुगहड—यह डूंगरपुर राज्यका मूंगेडा गांव है ।

झाडूली—यह वर्त्तमान झाडोल गांव है, जो उदयपुर राज्यके अन्तर्गत जयसमुद्रके पास सलूंबर ठिकानेमें है ।

गातउड़—यह गांव अब ऊजड़ हो गया है । यह वीरपुर गांवसे, जहांसे यह ताम्रपत्र मिला है, मिला हुआ था । वीरपुर गातोड़के ऊजड़ होनेके बाद

बसा है। यहांका गातोड़जीका मंदिर वीरपुर गांवके पास विद्यमान है। इस मंदिरमें नागराज (सर्प) की विशाल मूर्ति है, जिसको गातोड़जी कहते हैं।

षट्पंचाशत् मंडल–इसको अब छप्पन कहते हैं। उदयपुर राज्यका जयसमुद्रके आसपासका प्रदेश अब भी छप्पनका परगना कहलाता है।

दानपत्रमें कई स्थलों पर सांकेतिक शब्दोंका उपयोग हुआ है, जिनका आशय इस प्रकार है–

पुरो०=पुरोहित; पंच०=पंचकुल; ज्योति०=ज्योतिषी; प्रती०=प्रतीहार; श्रेष्ठ०=श्रेष्ठि; उ०=उत, पुत्र; नाय०=नायक; डंगी०=द्रांगिक; ठकु०=ठाकुर।

*

प्रस्तुत दानपत्रसे पाया जाता है कि वि. सं. १२४२ में गहलोत वंशके महाराजाधिराज श्री अमृतपालदेवका वागड़ पर राज्य था और वह गुजरातके चौलुक्य राजा भीमदेव (द्वितीय) का सामंत था। उस (भीमदेव) का वहां कैसे राज्य हुआ और अमृतपालदेव कौन था, इस पर कुछ प्रकाश डालना यहां आवश्यक प्रतीत होता है।

मेवाड़के स्वामी क्षेत्रसिंहके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र सामंतसिंह वहांका स्वामी हुआ। आबू परके देलवाड़ा गांवके तेजपाल (वस्तुपालके भाई)के बनवाये हुए लूणवसही नामक नेमिनाथके जैनमन्दिरके शिलालेखके रचयिता गूर्जरेश्वर पुरोहित सोमेश्वरने लिखा है–'आबूके परमार राजा धारावर्षके छोटे भाई प्रह्लादनकी तीक्ष्ण तलवारने गुजरातके राजाकी उस समय सहायता की जब उसका बल सामंतसिंहने रणक्षेत्रमें तोड़ा था"[10]। इससे स्पष्ट है कि सामंतसिंहने गुजरात पर चढ़ाई कर वहांके राजाको परास्त किया था। यह राजा कौन था यह उक्त प्रशस्तिमें नहीं लिखा है। वही सोमेश्वर अपने 'सुरथोत्सव' काव्यमें अपने पूर्वज कुमारके प्रसंगमें लिखता है कि उसने कटुकेश्वर नामक शिव (अर्द्धनारीश्वर)की आराधना कर रणक्षेत्रमें

१० **शत्रुश्रेणीगलविदलनोन्निद्रनिस्त्रिं (स्त्रिं) शधारो
धारावर्षः समजनि सुतस्तस्य विश्वप्रशस्यः।............॥ ३६ [॥]
सामंतसिंहसमितिक्षितिविक्षतौजःश्रीगूर्जरक्षितिपरक्षणदक्षिणासिः।
प्रह्लादनस्तदनुजो दनुजोत्तमारि** चारित्रमत्र पुनरुज्ज्वलयां चकार ॥ ३८ ॥
आबूकी वि० सं० १२८७ की प्रशस्ति; एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ८ पृष्ठ २११।

लगे हुए अजयपाल राजाके अनेक घावोंकी पीड़ाको शांत किया[११]। इससे अनुमान होता है कि सामंतसिंहकी लड़ाई इसी अजयपालसे हुई होगी, जो उसका समकालीन भी था। इस लड़ाईमें सामंतसिंहकी शक्ति क्षीण हो गई और जब बदला लेनेके लिए गुजरात वालोंने उसपर चढ़ाई की, तो उसे मेवाड़को छोड़ना पड़ा। तब मेवाड़पर गुजरात वालोंका अधिकार हो गया[१२] और नाडोलके चौहान राजा आल्हणदेवका तीसरा पुत्र कीतू (कीर्तिपाल) वहांका शासक नियत हुआ। कुछ समय पश्चात् सामंतसिंहके छोटे भाई कुमारसिंहने गुजरातके राजाको प्रसन्न कर मेवाड़का राज्य पीछा प्राप्त किया। कुंभलगढ़के मामादेवकी वि. सं. १५१७ की महाराणा कुंभकर्णकी प्रशस्तिमें लिखा है कि कुमारसिंहने गुजरातके राजाकी कृपा प्राप्त कर कीतूको निकाला और आहाड़ (मेवाड़) का राज्य प्राप्त किया[१३]। कितूकी मृत्यु वि. सं. १२३९ के पूर्व होनी चाहिये[१४] अतएव इसके पूर्व ही किसी समय कुमारसिंहने मेवाड़का राज्य प्राप्त किया होगा।

मेवाड़का राज्य खो कर सामंतसिंहने वागड़में नया राज्य कायम किया।

---

११ यः शौचसंयमपटुः कटुकेश्वराख्यमाराध्य भूधरसुताघटितार्धदेहम्।
तां दारुणामपि रणाङ्गणजातघातमातव्यथामजयपालनृपादपास्थत् ॥ ३२ ॥
काव्यमालामें छपा हुआ 'सुरथोत्सव' काव्य, सर्ग १५।

"सामंतसिंहयुद्धे हि श्री अजयपालदेवः प्रहारपीडया मृत्युकोटिमायातः कुमारनाम्ना पुरोहितेन श्रीकटुकेश्वरमाराध्य पुनः स जीवितः।" वही; टिप्पण ५।

परमार प्रह्लादन रचित 'पार्थपराक्रमव्यायोग' की चिमनलाल डी. दलाल लिखित अंग्रेजी भूमिका, पृष्ठ ४ ('गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज' में प्रकाशित)।

१२ मेवाड़ पर गुजरात वालोंका अधिकार हो गया था, यह आबूके शिलालेखसे स्पष्ट है—
सामंतसिंह नामा।.. ॥ ३६ ॥
पों (खों) माणसंततिवियोगविलक्षलक्ष्मीमेनामदृष्टविरहां गुहिलान्वयस्य।
राजन्वतीं वसुमतीमकरोत्कुमारसिंहस्ततो रिपुगतामपहृत्य भूयः ॥ ३७ ॥
इंडियन एन्टिक्वेरी; जिल्द १६, पृष्ठ ३४९।

१३ ....सामंतसिंहनामा भूपतिर्भूतले जातः ॥ १४९ ॥
भ्राता कुमारसिंहोभूत् स्वराज्यग्राहिणं दरं।
देशान्निष्कासयामास कीतूसंज्ञं नृपं तु यः ॥ १५० ॥
स्वीकृतमाघाटपुरं गूर्जरनृपतिं प्रसाद्य......... ।
(कुंभलगढ़का लेख, अप्रकाशित)

१४ जालोरसे मिले हुए वि० सं० १२२९ के शिलालेखसे पाया जाता है कि उस संवत्में कीर्तिपाल (कीतू) का पुत्र समरसिंह वहांका राजा था (एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ११, पृ० ५३-४), अतएव किर्तिपाल (कीतू) का उस समयसे पूर्व मर जाना निश्चित है।

गुजरातके राजा (भीमदेव द्वितीय) ने वहां भी उसका पीछा कर उसे वहां-से निकाल दिया और उसके कुटुम्बी महाराजाधिराज विजयपाल अथवा उसके पुत्र अमृतपालदेवको वागड़का राज्य दिया, जैसा कि प्रस्तुत दानपत्रसे स्पष्ट है। सामंतसिंहके राज्य समयके वि. सं. १२२८[15] और १२३६[16] के दो शिलालेख मिले हैं। अमृतपालदेवको इस दानपत्रमें श्री गुहिलदत्त (गुहिलोत) वंशी भर्तृपट्टाभिधान महाराजाधिराज विजयपालका पुत्र लिखा है अर्थात् वह मेवाड़के स्वामी भर्तृपट्ट (भर्तृभट)—जिसका परिचय ऊपर टिप्पणमें दिया है—का वंशधर था। स्पष्ट है कि वह मेवाड़की छोटी शाखामें रहा होगा। उसका सामंतसिंहके साथ क्या सम्बन्ध था, इसका पता नहीं चलता। ठाकरड़ाके वि. सं. १२१२ के महाराज सुरपालदेवके शिलालेखमें उसे भर्तृपट्टाभिधान पृथ्वीपालदेवके पौत्र विजयपालदेवका पुत्र लिखा है[17]। संभवतः प्रस्तुत दानपत्रके अमृतपालदेवका पिता विजयपाल और सुरपालदेवका पिता विजयपालदेव एक ही व्यक्ति हों। ऐसी दशामें अमृतपालदेवको सुरपालदेवका भाई मानना पड़ेगा[18]।

---

१५ 'संवत् १३२८ वांरखे (वर्षे) फ (फा) ल्गुन सुदि ७ गुरौ श्री अंबिकादेवि (व्यै) महाराज श्री सामंतसिघ (ह) देवेन सुवर्न (र्ण) मयकलसं प्रदत्त [म्]।' (मेवाड़के छप्पन जिलेके जगतगांवके देवीके मंदिरके लेखकी छापसे)।

१६ संवत् १२३६ श्रीसावं (मं) तसिंह राज्ये। (डूंगरपुर राज्य के बोरेश्वर महादेव—सोलज गांवसे डेढ़ मील दूर—के लेख की छाप से।)

१७ 'ओं ॥ संवत् १२१२ वर्षे ॥ भाद्रपद सुदि १ रविदिने समस्तराजावलीविराजितभर्तृ-पट्टाभिधान श्रीपृथ्वीपालदेव [वः] तत्सुनुमहाराजश्रीत्रिभुवनपालदेव [वः] तस्य पुत्रो महाराज-श्रीविजयपालदेव [वः] तस्य पुत्रो [त्र] महाराजश्रीसुरपालदेव।'

(इंडियन एन्टिक्वेरी: जिल्द ५६, पृष्ठ २२६)

१८ डूंगणोदा तथा ठाकरड़ाके लेखों एवं वीरपुरके दानपत्रमें मिलनेवाली वंशावलियां—

डूंगणोदा (सं० ११९०)	ठाकरडा (सं० १२१२)	वीरपुर (सं० १२४२)
पृथ्वीपालदेव (भर्तृपट्टाभिधान)	पृथ्वीपालदेव (भर्तृपट्टाभिधान)	
तिहुणपालदेव	त्रिभुवनपालदेव	
विजयपालदेव	विजयपाल	विजयपालदेव (भर्तृपट्टाभिधान)
	सुरपालदेव	अमृतपालदेव
	महाराजपुत्र अनंगपालदेव	महाकुमार सोमेश्वरदेव

अमृतपालदेवका वि. सं. १२५१ का एक लेख, बड़ोदा गांवके बाहरकी एक हनुमानकी प्राचीन मूर्तिके आसन पर खुदा हुआ मिला है[19]। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक तो उसका वहां राज्य था। डूंगरपुरके वड़ा दीवड़ा गांवके शिवमन्दिरकी मूर्तिके आसन पर, वि. सं. १२५३ (ई. स. ११९६) का महराजा भीमदेव (द्वितीय) का लेख है,[20] जिससे ज्ञात होता है कि उक्त संवत् तक तो वागड़ पर भीमदेवका अधिकार था। डूंगरपुरके बड़वेकी ख्यातमें सामंतसिंहके बाद सीहड़देवका नाम मिलता है, जिसका सबसे पहला लेख वि. सं. १२७७ (ई. स. १२२०) का मिला है[21]। उक्त लेखमें उसके पिताका नाम नहीं है, परन्तु जगत गांवके माताके मंदिरके एक स्तम्भ परके वि. सं. १३०६ (ई. स. १२५०) के लेखमें उसके पिताका नाम जयसिंह लिखा है[22]। इसकी पुष्टि डूंगरपुरके वनेश्वरके पासके विष्णु मंदिरकी आषाढ़ादि वि. सं. १६१७ (चैत्रादि १६१८) की महारावल आसकर्णकी प्रशस्ति[23] तथा वहींके गोवर्द्धन नाथके मन्दिरकी आषाढ़ादि वि. सं. १६७९ (चैत्रादि १६८०) की महारावल पुंजराजकी बृहत् प्रशस्ति[24] से भी होती है। जयसिंह कब तक जीवित रहा और उसने वागड़का राज्य वापस लिया या नहीं, इसके

१९ 'संवत (त्) १२५१ वर्षे माहा (माघ) वदि १ सोमे राज अमृतपालदेव वज्य (विजय) राज्ये' [मूल शिलालेखकी छाप से]।

२० 'सं० १२५३ वर्षेऽद्येह महाराजश्रीभीमदेवविजयराज्ये.........उव्वणके श्रीनित्यप्रमोदित (तं)......मह[ं] [०] एन्द्रामुतवरजाक [:] प्रणमंति नित्यं। प्रतिमा कारापिता।' [मूल लेखकी छापसे]।

२१ 'संवत् १२७७ वरिषे (वर्षे) चैत्रसुदि १४ सोमदिने विशाष (खा) नक्षत्रे श्रीअंबिकादेवी (व्यै) महाराऊ (रावल) श्रीसीहडदेवराज्ये महासां० (=सांधिविग्रहिक) वेल्हणक राण- (राणकेन) रउणीजाग्रामं। [मूल लेखकी छापसे]।

२२ 'ॐ॥ संवत् १३०६ वर्षे फागुण (फाल्गुन) सुदि ३ रविदिने रेवति (ती) नक्षत्रे मीन स्थिते चंद्रे देवी अंबिका [यैं] सुवंन (सुवर्ण) दं (दं)ड (डं) प्रतिठि (ष्ठि) त (तं)। गुहिलवंसे (शे) रा० (=रावल) जयतसी (सिं)ह पुत्रसीहड पौत्र जयस्यंघ (सिंह) देवेन करापितं।' [मूल लेखकी छापसे]।

२३ 'सामंतसी (सिंह) रा० (=रावल) ३१ जीतसी (जयतसिंह) रा० ३२ सीहडदे (देव) रा०।' [मूल प्रशस्तिकी छापसे]।

२४ '..................सामंतसिंहोस्य विभुर्बिजग्ये (ज्ञे) ॥ ५३ ॥
सजि (जी) तसिंहं तनयं प्रपेदे य एव लोकं सकलं विग्यग्ये (ज्ञे)॥
तस्य सिंहलदेवोभूत्...............................॥ ५४ ॥
[मूल प्रशस्तिकी छापसे]।

विषयमें निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता; परन्तु इतना तो निश्चित है कि वि. सं. १२५३ के पश्चात् और वि. सं. १२७७ के पूर्व किसी समय सामंतसिंहके पुत्र जयसिंह अथवा पौत्र सीहड़देवने वागड़का राज्य पीछा लिया होगा।

ताम्रपत्र परका मूल लेख

प्रथम पत्र

१ ॐ ॥ श्वस्ति[1] श्रीनृपविक्रमकालातीतसंवत्सरद्वादशशतेषु द्विचत्वारिंशदधिकेषु अंकातोपि[2] ॥

२ संव [त्] १२४२ वर्षे कार्त्तिक सुदि १५ रवावद्येह श्रीमदणहिलपाटका [धिष्ठि]तपरमेश्वरपरमभट्टा-

३ रकश्रीउमापतिवरलब्धप्रसादराज्यराजलक्ष्मीस्वयंवरप्रौढप्रतापश्रीचौलुक्यकुलोद्या-

४ [3]नि मार्त्तंड अभिनवसिद्धराज श्रीमहाराजाधिसजश्रीमद्भीमदेवीयकल्याणविजयरा-

५ ज्ये तत्पादपद्मोपजीविनमहामात्यश्रीद्वेवधरि[5]श्रीश्रीकरणादि[6]समस्त[7]मुद्राव्यापरान्[8]

६ परिपंथयतीत्येवं काल[9] प्रवर्त्तमान[10] अस्य च परमप्रभोः प्रसादपत्तलायां भुज्यमान वा[11]

७ वागडवटपद्रकमंडले महाराजाधिराजश्रीअमृतपालदेवीयराज्ये तन्नियुक्तमहं ॥

८ केल्हणप्रभृतिपंचकुलप्रतिपत्तौ शासनपत्रमभिलिख्यते यथा ॥ श्रीगुहिलदत्तवंशे

९ श्रीमद्भर्तृपट्टाभिधान[12]महाराजाधिराजश्रीविजयपालसुतमहाराजाधिराजश्रीअमृतपा-

१० लदेव[13] पुरो० पाल्हा ज्योति० यशदेव पंच० महिदिग ज्योति आमदेव स्वमि० रतन प्रती

११ मदना श्री [मं] गलेश्वरीयभट्टारक [मु] निमद्र० जल्हण तथा वटपद्रकवास्तव्य श्रे० सूपट श्रे०

१२ साढा श्रे धांघल उ० श्रे० सावंत श्रे० केशरि[14]सुत०[15] श्रे० केला नाय० लाखु सुत सह-

१३ देव नायक जोहड़ नायक वागडसीह नायक लखमणउ० नायक नरपतिमा महं [ति] प्रा-

---

१ स्वस्ति. २ अंकतोपि. ३ °कुलोद्यान°. ४ °धिराज°. ५ देवधरे. ६ श्रीकरणादि. ७ समस्त. ८ °व्यापारान्. ९ काले. १० प्रवर्त्तमाने. ११ निरर्थक अक्षर है. १२ °पट्टाभिधान°. १३ °पालदेवः. १४ केसरि. १५ बिन्दु निरर्थक है.

१४ मीय डंगि[16] सहजा उ० डूंगि साढा मच्छिद्रहग्रामी० डूं [गि०] रण-
सीह सुत०[17] दंगि०[18] जगदेव

१५ मुगहडग्रामीय[19] पोपा उ० वहजा झाडउलि ग्रामीय दगि०[20] पाल्हा।
गातउडग्रामीय[21] वो-

१६ सा सुत०[22] विसहरा ठकुर[23] वासुदेव सु० ठकु० भालण श्रे सल-
षण[24] वृद्धामात्यादींश्च समा-

१७ हूय सबोधयत्यस्तु[25] वः संविदितं यथा। यदस्माभिः सूर्यपर्वणि
पुन्यैतीर्थोदकैः सुचि[26] स्ना-

१८ त्वा धौतवाससी परिधाय ग्रहमंत्रदेव[28]सि पंमनुप्यपितृन्[30] संतर्प्य
चराचर [गु] रुं श्रीभवानीपतिं श्री-

१९ पतिं च समभ्यर्थ[31] नमस्कारं च विधाय नलिनीदलगेत[32]जललवतर-
लतरं जीवि-

२० तव्यमाकलय्य संसारासारतां विनि [श्चा] त्वा मात्र[33]पित्रोरात्मनश्च
श्रेयसे

द्वितीय पत्र

२१ .... त् प्रवराय
भरद्वाजगो [त्रा]-

२२ य राय [क] वालो[ब्रा]तीय बा[ह्मण] ठकु०[35] सोभासुत ठकु०[36]
मदना जाजकायाः[38] पट्टपंचाशन्मंडले

२३ गातउडग्रामे ल्हिसाडियाभिधान अरघट्टमेकं[39] तथा वाह्यभूमीह-
लद्व [यसम] न्विता[40] चतुराघाट-

२४ सीमासमन्विता[41] सकेदाराः[42] शासनपूर्वकाः[43] उदकेन प्रदत्ता[44]।
अस्याः घाटाः। पूर्वस्यां सीमा ऊंवर ऊआ

२५ अरघट्ट[45]। दक्षिणायां[46] ग्रामेण सीमा। पश्चिमायां ढीकोलरघट्ट-
सीमा। उत्तरायां[47] गोमती नदी सीमा

२६ एतदरघट्टं[48] तथा भूमी च संतिष्टमान[49] चतुसीमापर्यंतं[50] सवृक्षमा-
लाकुलं[51] सोद्रं[52] सपरिकरं[53] सकाष्ठतृ-

---

१६ डूंगि. १७ बिन्दु निरर्थक है. १८ डूंगि. १९ ग्रामीय. २० डूंगि. २१ ग्रामीय. २२ बिन्दु निरर्थक है. २३ ठक्कुर. २४ सलखण. २५ संबोधयत्यस्तु. २६ पुण्य°. २७ शुचि°. २८ देवर्षि. २९ निरर्थक अक्षर है. ३० °पितॄन्. ३१ समभ्यर्च्य. ३२ °गतजल°. ३३ मातृपित्रो°. ३४ रायकवाल. ३५ ब्राह्मण. ३६ ठक्कुर. ३७ ठक्कुर. ३८ याजकाय. ३९ अरघट्ट एकः. ४० समन्वितः. ४१ समन्वितः. ४२ सकेदारः. ४३ शासनपूर्व्वकः. ४४ प्रदत्तः. ४५ अरघट्टः. ४६ दक्षिणस्यां. ४७ उत्तरस्यां. ४८ एष अरघट्टः. ४९ चतुस्सीमा. ५० पर्यन्तः. ५१ °मालाकुलः. ५२ सोद्रंगः. ५३ सपरिकरः.

२७ णोदकोपेतं[54] नवनिधानसहितं[55] असद्वंसजै[56]रन्येरपि[57] च पालनीयं[58]। यतः उक्तवान् भगवान् व्यासः

२८ बहुभि[59]र्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः। यस्य यस्य यदा भूमी[60] तस्य तस्य तदा फल[61] ॥ भूमिदत्रा[62] च

२९. चिह्नानि फलं स्वर्गे वसेन्नरः। शंखं भद्रासनं[63] छत्रं गजाश्वरथवाहना[64]। २ आदित्यो वरुणो ये[65] वा-

३० सुदेवो हुताशनः। शूलपाणिस्तु भगवान् अभिनंदंति भूमिदं ॥ ३ राजेन्द्रौ[66] दिलीपस्य नृपस्य नहु-

३१ षस्य च। अन्येषां च नरेंद्राणां भूमिदः संगमिस्यति[67]। ४ दाता पालयता चैव [भूम्या] दीनां च यो[68] नरौ [तौ]

३२ बुभौ[69] पुण्यकर्म्माणौ नियतौ[70] स्वर्गगामिनौ। ५ सर्वेषामेव दाना-नामेकजन्मानुगं फलं। हाटकक्षि-

३३ तिगौरीणां समजन्मानुगं फलं। ६ सुवर्ण्णं रजतं प्रस्त[71] मणिरत्नं वसूनि च। सर्वमेतद्भवेद्दत्तं वसुधां

३४ यः प्रयच्छति ॥ ७ षष्टिवर्षसहस्राणि[72] स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः। आच्छत्ता[73] चानुमंता च[74] तान्येव नरकं[75]

३५ व्रजेत्[76] ॥ ८ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधरां। स्वानयोनि-शतं गत्वा चंडालेष्वपि[78] जायते

३६ ९. विंध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिनः। कृष्णसर्प्पा प्रजायंते भूमिदानापहारकाः ॥ १०

३७ भूमिहर्त्ता कृतघ्नश्च पाकभेदी च यो नरः। नरकाश्च निवर्त्तंते भूमि-दानापहारकाः। ११। इ-

३८ ह हि जलदलीलाचंचले जीवलोके तृणलवलघुसारे सर्वसंसार-सौख्ये। अपरति[79] तु-

३९. राज्ञः शासनं ब्राह्मणानां[80] नरकगहनगर्त्तावर्त्तपातोत्सुको यः ॥ १२ अस्मद्वंशे तु ये जाता

४० ये जाता चान्यवंशजा[81]। तेषामहं करे लग्नो मम दत्तं न लोप्यतां ॥ १३

४१ स्वहस्तोऽयं महाराजाधिसुजैश्रीअमृतपालदेवस्य ॥ स्वहस्तोऽयं महा-कुमारश्रीसोमेश्वरदेवस्य

४२ स्वहस्तोयं पुरो० पाल्हा पालापकस्य ॥ शुभंभवतु[83] ॥ मंगलं महाश्रीः ॥

*

५४ °तृणोदकोपेतं. ५५ °सहितः. ५६ वंशजैः. ५७ °रन्यैरपि. ५८ पालनीयः. ५९ बहुभि°. ६० भूमिः. ६१ फलम्. ६२ भूमिदानस्य. ६३ भद्रासनं. ६४ रथवाहनं. ६५ वायु. ६६ राजेन्द्रस्य. ६७ संगमिष्यति. ६८ यौ. ६९ तावुभौ. ७० नियतं. ७१ वस्त्रं. ७२ सहस्राणि. ७३ आच्छेत्ता. ७४ चानुमंता च. ७५ नरके. ७६ वसेत्. ७७ श्वान. ७८ चांडालेष्वपि. ७९ अपहरति. ८० ब्राह्मणानां. ८१ वंशजाः. ८२ महाराजाधिराज. ८३ शुभं भवतु.

सोलंकी समयके राजपुरुषोंकी नामावलि

लेखक—श्रीयुत पं० दशरथ शर्मा, एम. ए. बीकानेर

*

श्रीयुत रामलाल चुनीलाल मोदीने भारतीय विद्याके भाग २, अंक १ में इस नामका एक लेख गुजराती भाषामें प्रकाशित किया है। पाठकवर्ग उसमें निम्नलिखित नाम और बढ़ा लें।

मूलराज द्वितीय

	नाम	अधिकार	समय	आधार
(१)	राष्ट्रकूट प्रतापमल्ल	सेनापति	लगभग सं. १२३४	सुरथोत्सव
(२)	कुमार	सेनानी	,,	,,

भीमदेव द्वितीय

	नाम	अधिकार	समय	आधार
(३)	राष्ट्रकूट प्रतापमल्ल	सेनापति	,,	कीर्तिकौमुदी
(४)	प्रतिहार जगदेव	राजप्रधान	सं. १२४४	श्रीजिनपाल रचित खरतरगच्छ पट्टावली एवं तिथि-रहित वेरावलका शिलालेख
(५)	अभय	दण्डनायक (आशापल्ली)		उपर्युक्त पट्टावली

पदवियोंके परिचयमें मेरा मोदीजीसे कुछ मतभेद है। प्रधान शब्दसे महामात्यका ही बोध होता है। खरतरगच्छपट्टावलीके अनुसार भीमदेव द्वितीयके प्रधान जगदेव प्रतिहारको संधि और विग्रह करने तथा संघोंको राज्यमें आने-जानेकी आज्ञा देने और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें रोकनेका अधिकार था। आशापल्लीका दंडनायक अभय उसकी आज्ञानुसार चलता था। सपादलक्षीय संघको सताने पर जगदेवने अभय दंडनायकको यहां तक धमकी दी थी कि यदि उसने संघसे कुछ छेड़-छाड़ की तो उसे गधेके पेटमें सी दिया जायगा।

दण्डनायकके विषयमें भी मोदीजीसे मेरा कुछ मतभेद है। यदि जीता हुआ मुल्क, मूल राजाको वापिस देकर उस पर दण्डनायक नामक कोई अधिकारी रखा जाता तो संभवतः आशापल्लीमें किसी दण्डनायककी विशेष आवश्यकता न होती। जहां तक मुझे ज्ञात है आशापल्ली संवत् १२४४ में किसी मांडलिक या भीमदेवसे भिन्न किसी मूल राजाके अधिकारमें न थी। मोदीजीने सम्भवतः अपना मन्तव्य आबूके शिलालेखोंके आधार पर स्थिर किया है। परन्तु आबूमें भी दण्डनायक विमलकी उसी समय आवश्यकता हुई थी जब परमार राजा धन्धुक राज्य छोड़ कर अवन्तिनाथ भोजके पास चला गया था। उसके वापिस आनेके बाद आबूमें दण्डनायककी सत्ता न रही। इसी प्रकार दण्डनायक वैजल्लदेवने विक्रम सम्वत् १२१० से १२१६ तक बहुत

प्रान्तमें शासन किया। उस समय यह प्रान्त सर्वथा कुमारपाल चौलुक्यके हाथमें था। सम्वत् १२०६ से १२१७ तक वहां नड्डूलवंशीय किसी राजाका कोई शिलालेख नहीं मिलता। यदि दण्डनायकका काम उत्खात-प्रतिरोपित मूल राजाकी देखरेख ही होता तो नड्डूलवंशीय राजाओंका इन वर्षोंमें एक आध लेख तो मिलता। संवत् १२१८ में आल्हण फिर नड्डूलका राजा हो गया और इसके बाद नड्डूलदेशमें किसी चौलुक्य दण्डनायककी सत्ता नहीं दिखाई पड़ती। इसलिये यह सिद्ध है कि मूल राजाओंकी देखरेख दण्डनायकका कार्य न था। उनके हाथमें सम्भवतः काफी सेना रहती थी और अकबरके फौजदारोंके समान वे दीवानी कामकी भी देखरेख करते थे। वे स्वयं राजाके प्रतिनिधि थे। उनके अधीन माण्डलिकादिका होना या न होना उनके मुख्य कार्यसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। वे एक प्रकारके फौजी शासक थे, और इसी कारण उनकी सत्ता अधिकतर नवविजित देशोंमें पाई जाती है। द्व्याश्रय महाकाव्यमें बल्लाल पर चौलुक्यराजके आक्रमणके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि दण्डनायकका मुख्य कार्य सेनाका नेतृत्व ही था, यद्यपि कार्यवशात् वे प्रबन्ध कार्य भी कर सकते और अधिकतर करते ही थे।

दूसरी पदवियोंके परिचयमें मोदीजीसे मेरा कोई मतभेद नहीं है।

*

ललितछंद – एक समीक्षा

ले० – श्रीमती कुमारी सुशीला महेता, एम्. ए. एल् एल. बी.
[रीसर्च फेलो, भारतीय विद्या भवन]

श्रीमद्भागवतना[1] गोपीगीतना वृत्तने गुजरातीमां ललितछंद नाम आपवामां आव्युं छे. मात्र गुजरातीना अभ्यासीने आ नाम जरा पण शंकास्पद लागे ए संभवित नथी. छतां संस्कृत पिंगलकृतिओने तपासतां नीचेनी हकीकतो स्पष्ट थई छे.

संस्कृत पिंगलकृतिओमां क्यांय पण आ माप, एटलेके । ⏑⏑⏑, –⏑–, –⏑–, ⏑– । नां वृत्तने ललितछंद नाम आपेलुं जोवामां आवतुं नथी. केदारभट्ट विरचित वृत्तरत्नाकरमां, कालिदासना श्रुतबोधमां के हेमचन्द्राचार्यप्रणीत छन्दोनुशासनमां आ मापनुं वृत्त ज उपलब्ध नथी. पिंगलाचार्य पोताना छन्दःशास्त्रमां आ वृत्तने ललितछंद नहीं पण 'वन्दिता' नामे ओळखावे छे.[2] गंगादासकृत छन्दोमंजरीमां[3] आने ज 'इन्दिरा' कहे छे. कदाच गोपिकागीतना पहेला श्लोकमां आवता इन्दिरा शब्द परथी आ नाम पड्युं होय![4] संस्कृतमां अन्यत्र पण आवी रीते पडेलां छन्दोनां नामनां उदाहरणो मळी आवे छे : जेवां के 'कुटज' अने 'नूतन'[5]. श्री माधव पटवर्धन[6] पण छन्दोमंजरीने आधारे तेने 'इन्दिरा' नाम आपे छे अने साथे साथे तेनां अन्य नामो 'वन्दिता' 'राजहंसी' तथा 'शुद्धकामदा' नी नोंध ले छे. जो के मराठीमां जे 'इन्दिरा' वृत्तनो प्रयोग कान्होबा रणछोडदास कीर्तिकरे कर्यो छे, ते वृत्त संस्कृत 'इन्दिरा' अर्थात् 'वंदिता' थी भिन्न छे[7] अने हेमचन्द्राचार्य[8] तेने 'केकिरव' नामे ओळखावे छे. श्री पटवर्धने 'इन्दिरा' नामना समर्थनमां संस्कृत सूत्र "न्रौ लौ ग् इन्दिरा चेः ।"[9] आप्युं छे पण तेनुं प्रमाण आप्युं नथी. वळी जे वृत्त संस्कृतमां 'ललित' ने[10] नामे मळे छे तेनां माप आदि गुजरातीना 'ललित' थी एटलां तो भिन्न छे के तेनो अहीं विचार सुद्धां करवो अप्रस्तुत छे.

---

१ भागवत १०, ३१, १ – १८.

२ छन्दःशास्त्रम्, पृ. ५८, टीप.

वन्दिताच्छन्दः – 'नरगजा गुरुर्वन्दिता मता ॥' वृत्तसारे.

३ छन्दोमञ्जरी २, ६४.

४ जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥
भागवत १०, ३१, १

५ पद्यरचनानी ऐतिहासिक आलोचना : श्री के. ह. ध्रुव, पृ. २२२.

६ छन्दोरचना, पृ. १८२, टीप ७१४.

७ एजन, पृ. २०७.

८ छन्दोनुशासन, १, १९१.

९ छन्दोरचना, पृ. १८२ टीप ७१४.

१० दा. त. १, ललित (न, न, म, र) – छन्दप्रभाकर, पृ. १५५.
२, ललित चरणना न भ न ज न न या धर कविवर रचनामां – रणपिंगळ, भाग पहेलानी पूरवणी, पृ. ८५.
३, "ततं नौ म्रौ" – छन्दोनुशासन, ३, १६६. छन्दःशास्त्रम्, ६, ३४

हिन्दी छन्दःप्रभाकरमां[११] श्री जगन्नाथप्रसादे पण तेने 'इन्दिरा' नाम, अन्य नाम 'कनकमंजरी' सहित आप्युं छे.

आ बधां परथी, एटलुं तो दीवा जेवुं स्पष्ट छे के संस्कृत, मराठी के हिन्दी भाषानुं वृत्तशास्त्र आ मापनां वृत्तने ललितछंदने नामे ओळखतुं नथी. पण कविश्री नर्मदाशंकरनी निम्नोक्त लीटीओ आ छंदना नामकरणविधिना विषयमां अबाधित प्रकाश नाखे छे –

"आ के १८५६ ना जुलाईनी शरुआतमां एक चोपडी वेचनारनी दुकाने दक्षणी वामन पंडितनुं करेलुं मरेठी 'गोपीगीत' मारा जोवामां आव्युं हतुं, ते मने निराश्रितनो निबंध लखतां सांभरी आव्युं; एटला माटे के निबंधने अंते 'गोपीगीत'ना ढाळमां बार महिना लखी, तेमां गरीबनी हालत बताववुं.........ए कविता प्रथम निराश्रितोना निबंधनी पछवाडे १८५६ मां अने पछी नर्मकविता अंक बीजामां (१८५८ मां) छपाई छे. ए गोपीगीतना ढाळने ललितवृत्त नाम पछवाडेथी आप्युं छे. ते सुरतमां थई गएला लालदास नामना दादुपंथी साधुना बनावेला पिंगळ उपरथी. दलपतराम कविए पण म्हारे म्होडेथी सांभळ्या पछी पोताना पिंगलमां दाखल कर्युं छे. ए वृत्त करुणारस कविताने घणुं ज अनुकूळ छे."

आ टिप्पणी सादी, सरळ भाषामां ललितछंदना जन्म, नामकरण, विकास इत्यादिनो केटलाक इतिहास आपणी समक्ष रजु करे छे.

रणपिंगळमां[१३] पण ललितनाम इन्दिरा, विगेरेनां नामान्तर तरीके स्वीकारायुं छे गुजराती – संस्कृत नाम बेउनो अहीं कर्ताए समन्वय साध्यो छे. ज्यारे दलपतपिंगळ[१४] मात्र एक ज नाम – ललितछंद – आपे छे.

आ छंदनो संस्कृतमां प्रथम प्रयोग श्रीमद्भागवतना 'गोपीगीत'मां ज थयो हतो ए वात निःसंशय छे. त्यारपछी, कवि नर्मदाशंकरे गुजरातीमां तेनुं अनुकरण कर्युं अने कोई गुजराती साधुए स्वीकारेला ललित नामने अपनावी, ते वृत्तने गुजरातीमां ललित तरीके कायम कर्युं. शक्य छे के तेनां अनिश्चित, भिन्न नामो संस्कृतमां तेना विरल प्रयोगने ज आभारी होय !

*

---

११ छन्दःप्रभाकर, पृ. १४५.

१२ नर्मकविता, पृ. ११, टीपण.

१३
ललित थाय छे, नाग नाचतो,
कनक मंजरी, इन्दिरा चते,
विबुधवंदिता, भामिनी भणो,
यति छये धरी, भाविनी गणो.
रणपिंगळ, भा. १, पृ. २९० – ९१.

१४
"नर रसो गणे, ग्याल हुं थयो,
ललित लक्षणे, जानमां गयो."
दलपतपिंगळ, पृ. ४२ – ४३.

भारतीय विद्या भवन

अध्यापक मण्डल

*

संस्कृत वाङ्मय और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

१. डॉ० मणिलाल पटेल, पीएच्. डी.; नियामक तथा श्रीमुंगालाल गोएनका अध्यापक, संस्कृत साहित्य और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

२. पं० मोतीराम शास्त्री, मुख्याध्यापक मुम्बादेवी संस्कृत पाठशाला

प्राकृत भाषावर्ग और हिन्दी वाङ्मय

श्री जिन विजयजी मुनि

भागवत धर्मशास्त्र

१. श्रीयुत दुर्गाशङ्कर केवलराम शास्त्री
अवैतनिक अध्यापक भागवत धर्मसाहित्य

२. डॉ० ए० डी० पुसालकर, एम्. ए. एलएल्. बी. पीएच्. डी.

३. श्रीमती कुमारी सुशीला महेता, एम्. ए. एलएल. बी.

जैन वाङ्मय

श्री अ० स० गोपाणि, एम्. ए.

भारतीय इतिहास

श्री शिवदत्त ज्ञानी, एम्. ए.

ग्रन्थ प्रकाशनकार्य

*

भारतीय विद्या ग्रन्थावली

प्रकाशित

१. विसुद्धिमग्ग [बुद्धघोषकृत पालीभाषाग्रंथ] सं० श्री धर्मानन्द कोसंबी

उक्तिव्यक्तिप्रकरण [संस्कृत] पं० दामोदरकृत -:- सं० श्री जिन विजयजी मुनि
सन्देशरासक – अब्दुल रह्मानकृत अपभ्रंश खण्ड काव्य ,,
योग्घमकृत – कौटल्य अर्थशास्त्र टीका ,,
वैजनाथकृत – कलानिधि [प्राचीनतम मराठी गद्य ग्रन्थ] ,,
राजस्थानीकी पुरानी बातें [राजस्थानी भाषा साहित्य] ,,
प्राचीन गुजराती गद्यनिदर्शन -:- तरुणप्रभाचार्यग्रन्थोद्धृत ,,
ऋग्वेद-संहिता, षष्ठ मण्डल -:- सं० डॉ० मणिलाल पटेल
नाणपंचमीकहा [महेश्वरसूरिकृत प्राकृत भाषामय] } सं० श्री
रिष्टसमुच्चय [दुर्गदेवकृत ,, ,,] } अ० म० गोपाणि
भारतीय संस्कृतीकी रूपरेखा – प्रो० शिवदत्त शर्मा
भारतीय विद्या [हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका] सं० श्री जि० वि० मुनि

*

BHARATIYA VIDYA (JOURNAL OF THE B. V. B.)
Editor Dr. Manilal Patel Ph. D.

JACOBI'S ESSAYS ON THE APABHRAMSHA
by Dr. Manilal Patel

VAISHNAVISM: A HISTORICAL RETROSPECT
by Shri Durgashanker K. Shastri
assisted by Miss Sushila Mehta, M. A., LL. B.

COMPARATIVE STUDIES IN THE PURANAS
by Shri A. D. Pusalkar

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press, 26-28, Kolbhat Street, Bombay

Published by Dr. Manilal Patel, Director, Bharatiya Vidya Bhavan, Andheri, Bombay

भारतीय विद्या

[बम्बईस्थित, भारतीयविद्याभवन द्वारा प्रकाशित
संशोधनविषयक त्रैमासिक पत्रिका]

भाग २] अक्टूबर, ई. स. १९४२ * आश्विन, संवत् १९९८ [अंक ३

संपादक

श्री जिन विजय मुनि

*

प्रकाशक

मंत्री, भारतीय विद्या भवन

नवगुजरात, अंधेरी, बंबई

प्रति अंक मूल्य १-८-० * वार्षिक मूल्य ५-०-०

भारतीय विद्या

द्वितीय भाग]　　　　आश्विन, सं. १९९८　　　　[तृतीय अंक

लेखानुक्रम

परिशिष्ट –

*

सिंघी जैन ग्रन्थ माला

संस्थापक

दानवीर साहित्यरसिक संस्कृतिप्रिय

बाबू श्रीबहादुरसिंहजी सिंघी

का

भारतीय विद्या भवन

को अभिनन्दनीय दान

कलकत्तानिवासी सुप्रसिद्ध दानवीर श्रीमान् बाबू बहादुरसिंहजी सिंघीने, अपने स्वर्गवासी साधुचरित पिता श्रीडालचंदजी सिंघीकी पुण्यस्मृति निमित्त, जैन साहित्यके उत्तमोत्तम और अपूर्व माने जानेवाले ग्रन्थरत्नोंको, आधुनिक शास्त्रीय पद्धतिके नियमानुसार, विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा संशोधित–संपादित करवा कर, सुन्दरतम रूपमें, प्रकाशित करनेके लिये हमारी विशिष्ट प्रेरणा और योजनाके मुताबिक, 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' नामक एक सर्वाङ्ग-सुन्दर और बहुमूल्य ग्रन्थावलि प्रकट करनेका बडा महद् एवं उदार कार्य प्रारंभ किया है। इसे चलते कोई १०–११ वर्ष व्यतीत हो गये हैं और इस बीचमें कोई १५–१७ जितने, साहित्य, इतिहास और तत्त्वज्ञान आदि विषयके बडे बडे प्रौढ और अपूर्व ग्रन्थ, भिन्न भिन्न विद्वानों द्वारा संपादित होकर प्रकट हो चुके हैं। इन प्रन्थोंके प्रकाशन निमित्त आजतक कोई ५०००० रुपये जितनी बडी भारी रकम श्रीमान् सिंघीजीने खर्च की है। लगभग इतने ही और ग्रन्थ वर्तमानमें छप रहे हैं तथा इनसे कहीं अधिक और तैयार हो रहे हैं।

भारतीय विद्या भवनके विद्याव्यसनी और साहित्योत्कर्षी संस्थापक सुहृद्वर श्री मुन्शीजीकी विनम्र विज्ञप्ति और तदनुकूल हमारी संपूर्ण सम्मतिसे प्रेरित होकर, बाबू श्री बहादुरसिंहजी सिंघीने, अब इस समग्र 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'का, भारतीय विद्या भवनको सोल्लास समर्पण कर देनेका अति ही अभिनन्दनीय और परम औदार्य प्रदर्शित किया है।

अतः अबसे 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' इस भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित होती रहेगी और इसका संपूर्ण कार्यालय, भवनके साथ संलग्न रहेगा। ग्रन्थमालाका कार्य भी अबसे कहीं अधिक वेग और विस्तारके साथ चालू रखनेकी सिंघीजीकी महती मनोभावना है।

*

इस प्रकार ग्रन्थमालाके समर्पणके अतिरिक्त, भारतीय विद्या भवनके भव्य मकानमें, ऊपरके हिस्सेमें, एक मध्यवर्ति विशाल 'हाल' बनवानेके लिये भी, हमारी प्रेरणासे, श्री सिंघीजीने १०००० रूपयेका एक और उदार दान देना प्रकट किया है।

*

एतदर्थ श्रीमान् सिंघीजीको हम अपने अनेकानेक हार्दिक अभिनन्दन समर्पित करते हैं।

* —जिनविजय मुनि

मुख्य संपादक
सिंघी जैन ग्रन्थमाला

विजयादशमी
विक्रम सं० १९९८

सिंघी जैन ग्रन्थमाला

अभी तक छपकर प्रकाशित हो चुके उन ग्रन्थोंकी सूची

*

		मूल्य
१	**प्रबन्धचिन्तामणि**, मेरुतुङ्गाचार्यरचित.	
	संस्कृत मूल ग्रन्थ, विस्तृत हिन्दी प्रस्तावना समन्वित	३-१२-०
२	**पुरातनप्रबन्धसंग्रह.**	
	प्रबन्धचिन्तामणि सदृश अनेकानेक अपूर्व और अज्ञात ऐसे पुरातन ऐतिहासिक प्रबन्धोंका विशिष्ट संग्रह	५-०-०
३	**प्रबन्धकोश**, राजशेखरसूरिरचित.	
	संस्कृत मूल ग्रन्थ, विस्तृत हिन्दी प्रस्तावना आदि सहित	४-०-०
४	**विविधतीर्थकल्प**, जिनप्रभसूरिकृत.	
	पुरातन जैन तीर्थस्थानोंका वर्णनात्मक अपूर्व ऐतिहासिक ग्रन्थ	४-४-०
५	**देवानन्दमहाकाव्य**, मेघविजयोपाध्यायविरचित.	
	माघ महाकाव्यकी समस्यापूर्तिरूप ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ	२-१२-०
६	**जैनतर्कभाषा**, यशोविजयोपाध्यायकृत.	
	मूल संस्कृत ग्रन्थ तथा पं० सुखलालजीकृत विशिष्ट नूतनव्याख्यायुक्त	२-०-०
७	**प्रमाणमीमांसा**, हेमचन्द्राचार्यकृत.	
	मूल ग्रन्थ तथा पं० सुखलालजीकृत विस्तृत हिन्दी विवरण सहित	५-०-०
८	**अकलङ्कग्रन्थत्रयी**, भट्टाकलङ्कदेवकृत.	
	न्यायशास्त्रविषयक ३ अप्रकाशित ग्रन्थ, हिन्दी विवरण युक्त	५-०-०
९	**प्रबन्धचिन्तामणि**, हिन्दी भाषान्तर.	
	विस्तृत प्रस्तावनादि सहित	३-१२-०
१०	**प्रभावकचरित**, प्रभाचन्द्रसूरिरचित.	
	संस्कृत भाषामें अद्भुत काव्यकृति, जैन ऐतिहासिक महाग्रन्थ	५-०-०
11	Life of Hemachandrāchārya : By Dr. G. Buhler.	
	(Transl. By Dr. Manilal Patel.)	3-8-0
१२	**भानुचन्द्रगणिचरित**, सिद्धिचन्द्रोपाध्यायरचित.	
	संस्कृत भाषाका अपूर्व आत्मचरित्र, विस्तृत इंग्लीश प्रस्तावनादि समेत, सर्वथा अज्ञात ऐसा ऐतिहासिक ग्रन्थ	६-०-०
१३	**ज्ञानबिन्दुप्रकरणम्**, यशोविजयोपाध्यायविरचित.	
	ज्ञानतत्त्व निरूपणका मौलिक ग्रन्थ, पं० सुखलालजी संपादित एवं विवेचित	१-८-०

*

सिंघी जैन ग्रन्थमाला

वर्तमानमें जो ग्रन्थ छप रहे हैं तथा छपनेके लिये तैयार हैं उनकी कुछ नामावलि.

*

ग्रन्थ जो छप रहे हैं—

१ खरतरगच्छगुर्वावलि.
२ कुमारपालचरित्रसंग्रह.
३ विविधगच्छीयपट्टावलिसंग्रह.
४ जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह, भाग १–२.
५ विज्ञप्तिलेखसंग्रह.
६ हरिभद्रसूरिकृत धूर्ताख्यान.
७ हरिषेणकृत बृहत् कथाकोश.
८ उद्योतनसूरिकृत कुवलयमालाकथा.
९ उदयप्रभसूरिकृत धर्माभ्युदयमहाकाव्य.
१० जिनेश्वरसूरिकृत कथानककोशप्रकरण.
११ भानुचन्द्रगणिकृत विवेकविलासटीका.
१२ मेघविजयोपाध्यायकृत दिग्विजय-महाकाव्य.
१३ पुरातन रास–भासादिसंग्रह.
१४ प्रकीर्ण वाङ्मय प्रकाश.
१५ पुरातनप्रबन्धसंग्रह – हिन्दी भाषांतर.
१६ शान्त्याचार्यकृत न्यायावतारवार्तिक वृत्ति.

इत्यादि. इत्यादि.

ग्रन्थ जो छपनेके लिये तैयार हो रहे हैं—

१७ भद्रबाहुसूरिकृत भद्रबाहुसंहिता.
१८ सिद्धिचन्द्रोपाध्यायविरचित वासवदत्ता टीका.
१९. जयसिंहसूरिकृत धर्मोपदेशमाला.
२० देवचन्द्रसूरिकृत मूलशुद्धिप्रकरणवृत्ति.
२१ रत्नप्रभाचार्यकृत उपदेशमाला टीका.
२२ यशोविजयोपाध्यायकृत अनेकान्त-व्यवस्था.
२३ जिनेश्वराचार्यकृत प्रमालक्षण.
२४ महानिशीथसूत्र.
२५ तरुणप्रभाचार्यकृत आवश्यकबालावबोध.
२६ राठोड वंशावलि.
२७ उपकेशगच्छप्रबन्ध.
२८ नयचन्द्रसूरिकृत हमीरमहाकाव्य.
२९. वर्द्धमानाचार्यकृत गणरत्नमहोदधि.
३० प्रतिष्ठासोमकृत सोमसौभाग्यकाव्य.

इत्यादि. इत्यादि.

* * *

भाग २] श्रावण, १९९८ [अङ्क ३

महाकवि स्वयंभु और त्रिभुवन-स्वयंभु

ले० – श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी

*

जैन विद्वानोंने लोकरुचि और लोकसाहित्यकी कभी उपेक्षा नहीं की। जन-साधारणके निकटतक पहुँचने और उनमें अपने विचारोंका प्रचार करनेके लिए वे लोक-भाषाओंका आश्रय लेनेसे भी कभी नहीं चूके। यही कारण है जो उन्होंने सभी प्रान्तोंकी भाषाओंको अपनी रचनाओंसे समृद्ध किया है। अपभ्रंश भाषा किसी समय द्रविड़ प्रान्तों और कर्नाटकको छोड़कर प्रायः सारे भारतमें थोड़े बहुत हेर-फेरके साथ समझी जाती थी। अतएव इस भाषामें भी जैन कवि विशालसाहित्य निर्माण कर गये हैं।

धक्कड़कुलके पं० हरिषेणने अपनी 'धम्मपरिक्खा'में अपभ्रंश भाषाके तीन महाकवियोंकी प्रशंसा की है, उनमें सबसे पहले चउमुह या चतुर्मुख हैं जिनकी अभी तक कोई रचना उपलब्ध नहीं हुई है, दूसरे हैं स्वयंभु देव जिनकी चर्चा इस लेखमें की जायगी और तीसरे हैं पुष्पदन्त जिनके प्रायः सभी ग्रन्थ प्रकाशमें आ गये हैं और जिनसे हम परिचित भी हो चुके हैं।

पुष्पदन्तने चतुर्मुख और स्वयंभु दोनोंका स्मरण किया है, और स्वयंभुने चतुर्मुखकी स्तुति की है, अर्थात् चतुर्मुख स्वयंभुसे भी पहलेके कवि हैं।

चतुर्मुख और स्वयंभु

प्रो० मधुसूदन मोदीने चतुर्मुख और स्वयंभुको न जाने कैसे एक ही कवि समझ लिया है[1]। वास्तवमें ये दोनों जुदा जुदा कवि हैं। इसमें सन्देहकी जरा भी गुंजाइश नहीं है। क्यों कि—

१ स्वयं स्वयंभूने अपने पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ (हरिवंसपुराणु) और स्वयंभु-छन्द इन तीनों ग्रन्थोंमें कहीं भी 'चतुर्मुख स्वयंभु' नामसे अपना उल्लेख नहीं किया है। सर्वत्र ही स्वयंभु लिखा है और स्वयंभुके पुत्र त्रिभुवनने भी अपने पिताका नाम स्वयंभु या स्वयंभुदेव ही लिखा है।

२ महाकवि पुष्पदन्तने अपने महापुराणमें जहाँ अपने पूर्वके अनेक ग्रन्थ-कर्त्ताओं और कवियोंका उल्लेख किया है वहाँ वे 'चउमुहु' और 'सयंभु'का अलग अलग प्रथमा एकवचनान्त पद देकर ही स्मरण करते हैं—

चउमुहु सयंभु सिरिहरिसु दोणु, णालोइउ कइईसाणु बाणु। १-५

अर्थात् न मैंने चतुर्मुख, स्वयंभु, श्रीहर्ष और द्रोणका अवलोकन किया, और न कवि ईशान और बाणका[2]। महापुराणका प्राचीन टिप्पणकार भी इन शब्दोंपर जुदा जुदा टिप्पण देकर उन्हें पृथक् कवि बतलाता है। "चउमुहु= कश्चित्कविः। स्वयंभु=पद्धडीबद्धरामायणकर्त्ता आपलीसंघीयः।"

३ पुष्पदन्तने आगे ६९ वीं सन्धिमें भी रामायणका प्रारंभ करते हुए सयंभु और चउमुहुका अलग अलग विशेषण देकर अलग अलग उल्लेख किया है[3]।

४ पं० हरिषेणने अपने 'धम्मपरिक्खा' नामक अपभ्रंश काव्यमें—जो वि०

---

१ देखो, भारतीय विद्या (अंक २ और ३, मार्च और अगस्त १९४०) में प्रो० मोदीका 'अपभ्रंश कविओ: चतुर्मुख स्वयंभु अने त्रिभुवन स्वयंभु' शीर्षक गुजराती लेख।

२ महाकवि बाणने अपने हर्षचरितमें भाषा-कवि ईशान और प्राकृत-कवि वायुविकारका उल्लेख किया है। देखो श्री राधाकुमुद मुकर्जीका श्रीहर्ष, पृ० १५८

३ कइराउ सयंभु महायरिउ, सो सयणसहासहिं परियरिउ।
चउमुहहु चयारि मुहाइं जहिं, सुकइत्तणु सीसउ काइं तहिं॥

अर्थात् कविराज स्वयंभु महान् आचार्य हैं, उनके सहस्रों स्वजन हैं; और चतुर्मुखके तो चार मुख हैं, उनके आगे सुकवित्व क्या कहा जाय?

४ पं० हरिषेण धक्कडकुलके थे। उनके गुरुका नाम सिद्धसेन था। चित्तोड़ (मेवाड़) को छोड़ जब वे किसी कामसे अचलपुर गये थे, तब वहाँ उन्होंने धम्मपरिक्खा बनाई थी।

स० १०४० की रचना है— चतुर्मुख, स्वयंभु और पुष्पदन्त इन तीनों कवियोंकी स्तुति की है और तीनकी संख्या देकर तीनोंके लिए जुदा जुदा विशेषण दिये हैं[1]।

५ हरिवंशपुराणमें स्वयंभु कवि स्वयं कहते हैं कि पिंगलने छन्दप्रस्तार, भामह और दंडीने अलंकार, बाणने अक्षराडम्बर, श्रीहर्षने निपुणत्व और चतुर्मुखने छर्दनिका, द्विपदी और ध्रुवकोंसे जटित पद्धड़िया दिया — "छंदणिय-दुवइ-धुवएहिं जडिय, चउमुहेण समप्पिय पद्धड़िय।" इससे चतुर्मुख निश्चय ही स्वयंभुसे जुदा हैं जिनके पद्धड़िया काव्य (हरिवंश—पद्मपुराण) उन्हें प्राप्त थे।

६ इसी तरह कवि स्वयंभु अपने पउमचरिउमें भी चतुर्मुखको जुदा बतलाते हैं। वे कहते हैं कि चतुर्मुखके शब्द और दंति और भद्रके अर्थ मनोहर होते हैं, परन्तु स्वयंभु काव्यमें शब्द और अर्थ दोनों सुन्दर हैं, तब शेप कविजन क्या करें?[2]

आगे चल कर फिर कहा है कि चतुर्मुखदेवके शब्दोंको, स्वयंभुदेवकी मनोहर जिह्वा (वाणी?) को और भद्रकविके[3] गोग्रहणको आज भी अन्य कवि नहीं पा सकते[4]। इसी तरह जलक्रीडा-वर्णनमें स्वयंभुको, गोग्रह-कथामें चतुर्मुखदेवको और मत्स्यवेधमें भद्रको आज भी कविजन नहीं पा सकते[5]।

इन उद्धरणोंसे बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि चतुर्मुखदेव स्वयंभुसे पृथक् और

---

१ चउमुहु कव्वविरयणे सयंभु वि, पुप्फयंतु अण्णाणु णिसुंभिवि।
तिण्णि वि जोग्ग जेण तं सीसइ, चउमुहमुहे थिय ताम सरासइ॥
जो सयंभु सो देउ पहाणउ, अह कह लोयालोयवियाणउ।
पुप्फयंतु ण वि माणुसु वुच्चइ, जो सरसइए कया वि ण मुच्चइ॥

२ देखो 'पउमचरिउ' के प्रारंभिक अंशका दूसरा पद्य।

३ भद्र अपभ्रंशके ही कवि मालूम होते हैं। उनका कोई महाभारत या हरिवंश होगा जिसके अन्तर्गत 'गोग्रह-कथा' और 'मत्स्य-वेध' नामके अध्याय या पर्व होंगे। चतुर्मुखका तो निश्चय ही हरिवंशपुराण था और उसमें 'गोग्रह-कथा' थी। क्यों कि अपभ्रंश-कवि धवलने भी अपने हरिवंशपुराणमें चतुर्मुखकी 'हरिपाण्डवानां कथा'का उल्लेख किया है—

हरिपंडुवाण कहा चउमुहवासेहिं भासियं जम्हा।
तह विरयमि लोयपिया जेण ण णासेइ दंसणं पउरं॥

इसमें चउमुहवासेहिं (चतुर्मुख-व्यासैः) पद श्लिष्ट है। स्वयंभु-छन्दमें चउमुहुके जो पद्य उदाहरणस्वरूप उद्धृत किये हैं, उनमेंसे ४-२, ६-८३, ८६, ११२ पद्योंसे मालूम होता है कि उनका पउमचरिउ भी अवश्य रहा होगा। क्यों कि उनमें राम-कथाके प्रसंग हैं।

४-५ पउमचरिउके प्रारंभिक अंशके पद्य नं० ३-४।

६ संभव है 'पउमचरिउ'के ये प्रारम्भिक पद्य स्वयं स्वयंभुके रचे हुए न हों और उनके पुत्र त्रिभुवनके हों, फिर भी इनसे चतुर्मुख और स्वयंभुका पृथक्त्व सिद्ध होता है।

उनके पूर्ववर्ती कवि हैं जिनकी रचनामें शब्द-सौन्दर्य विशेष है और जिन्होंने अपने हरिवंशमें गोग्रह-कथा बहुत ही बढ़िया लिखी है।

७ अपने स्वयंभु-छन्दमें स्वयंभुने पहलेके अनेक कवियोंके पद्य उदाहरण-स्वरूप दिये हैं और उनमें चतुर्मुखके 'जहा चउमुहस्स' कहकर ५–६ पद्य उद्धृत किये हैं इससे भी चतुर्मुखका पृथक्त्व सिद्ध होता है।

८ 'करकंडुचरिउ' के कर्ता कनकामर (कनकदेव) ने स्वयंभु और पुष्पदन्त दो अपभ्रंश कवियोंका उल्लेख किया है, परन्तु स्वयंभुको केवल 'स्वयंभु' लिखा है, 'चतुर्मुख स्वयंभु' नहीं[1]

९ पउमचरिउमें 'पंचमिचरिअ' के विषयमें लिखा है –

> चउमुह–सयंभुएवाण वाणियत्थं अचक्खमाणेण।
> तिहुअणसयंभु रइयं पंचमिचरिअं महच्छरिअं॥

इनके 'चउमुह – सयंभुएवाण' (चतुर्मुख – स्वयंभुदेवानाम्) पदसे चतुर्मुख और स्वयंभु दो जुदा जुदा कवि ही प्रकट होते हैं। क्यों कि यह पद एकवचनान्त नहीं, बहुवचनान्त है। (द्विवचन अपभ्रंशमें होता नहीं।)

इन सब प्रमाणोंके होते हुए चतुर्मुख और स्वयंभुको एक नहीं माना जा सकता। प्रो० एच्० डी० वेलणकर और प्रो० हीरालाल जैनने भी चतुर्मुखको स्वयंभुसे पृथक् और उनका पूर्ववर्त्ती माना है।

स्वयंभुदेव अपभ्रंश भाषाके आचार्य भी थे। आगे बतलाया गया है कि अपभ्रंशका छन्दशास्त्र और व्याकरणशास्त्र भी उन्होंने निर्माण किया था। छन्द-चूडामणि, विजयशेषित या जयपरिशेष और कविराज-धवल उनके बिरुद थे।

---

१ जयएव स्वयंभु विमालचित्त, वाएसरिघरु सिरिपुष्फयंतु।

२ हरिवंशपुराण और पद्मपुराणके समान 'पंचमी-कहा' भी जैनोंकी बहुत ही लोकप्रिय कथा है। संस्कृत और अपभ्रंशके प्रायः सभी प्रसिद्ध कवियोंने इन तीनों कथाओंको अपने अपने ढंगसे लिखा है। महापुराण (इसमें पद्मचरित और हरिवंश दोनों हैं) के अतिरिक्त पुष्पदन्तकी पंचमी-कथा (णायकुमारचरिउ) है ही, मल्लिषेणके भी महापुराण और नागकुमार-चरित हैं। इसी तरह चतुर्मुख और स्वयंभुके भी उक्त तीनों कथानकोंपर ग्रन्थ होने चाहिए। स्वयंभुके दो ग्रन्थ तो उपलब्ध ही हैं, रहा पंचमीचरित, सो उसका उल्लेख उक्त पद्यमें किया गया है। त्रिभुवन स्वयंभुने अपने पिताके तीनों ग्रन्थोंको सँभाला है। अर्थात् उनमें कुछ अंश अपनी तरफसे जोड़कर पूरा किया है। धनपालकी 'पंचमी कहा' प्रकाशित हो चुकी है।

३ स्वयंभु छन्दका इंट्रोडक्शन पेज ७१–७४, रायल एशियाटिक सोसाइटी बम्बईका जर्नल, जिल्द २, १९३५। ४ नागपुर यूनीवर्सिटीका जर्नल, दिसम्बर, १९३५।

उनके पिताका नाम मारुतदेव और माताका पद्मिनी था। मारुतदेव भी कवि थे। स्वयंभु-छन्दमें 'तहा य माउरदेवस्स' कहकर उनका एक दोहा उदाहरणस्वरूप दिया गया है[1]। स्वयंभु गृहस्थ कवि थे, साधु या मुनि नहीं, जैसा कि उनके ग्रन्थोंकी कुछ प्रतियोंमें लिखा मिलता है। ऐसा जान पड़ता है कि उनकी कई पत्नियाँ थीं जिनमेंसे दोका नाम पउमचरिउमें मिलता है—एक तो आइच्चंबा (आदित्याम्बा) जिसने अयोध्याकाण्ड, और दूसरी सामिअंब्बा, जिसने विद्याधरकाण्ड लिखाया था। संभवतः ये दोनों ही सुशिक्षिता थीं।

स्वयंभुदेवके अनेक पुत्र थे जिनमेंसे सबसे छोटे त्रिभुवन स्वयंभुको ही हम जानते हैं। उक्त दो पत्नियोंमेंसे ये किसके पुत्र थे, इसका कोई उल्लेख नहीं मिला। संभव है कि पूर्वोक्त दोके सिवाय कोई तीसरी ही उनकी माता हो। नीचे लिखे श्लिष्ट पद्यसे अनुमान होता है कि त्रिभुवन स्वयंभुकी माता और स्वयंभुदेवकी तृतीय पत्नीका नाम शायद 'सुअब्बा' हो—

सव्वे वि सुआ पंजरसुअ व्व पढि अक्खराइं सिक्खंति।
कइराअस्स सुओ सुअव्व-सुइ-गब्भसंभूओ॥

अपभ्रंशमें सुअ शब्दसे सुत (पुत्र) और शुक (सुअ=तोता) दोनोंका ही बोध होता है। इस पद्यमें कहा है कि सारे ही सुत पींजरेके सुओंके समान पढ़कर ही अक्षर सीखते हैं; परन्तु कविराजका सुत (त्रिभुवन) श्रुत इव श्रुतिगर्भसंभूत है। अर्थात् जिस तरह श्रुति (वेद) से शास्त्र उत्पन्न हुए उस तरह (दूसरे पक्षमें) त्रिभुवन सुअव्वसुइगब्भसंभूअ है, अर्थात् सुअब्बाके शुचिगर्भसे उत्पन्न हुआ है।

कविराज स्वयंभु शरीरसे बहुत पतले और ऊँचे थे। उनकी नाक चपटी और दाँत विरल थे[4]।

स्वयंभुदेवने अपने वंश गोत्र आदिका कोई उल्लेख नहीं किया। इसी तरह अन्य जैन ग्रन्थकर्त्ताओंके समान अपने गुरु या सम्प्रदायकी भी कोई चर्चा नहीं की। परन्तु पुष्पदन्तके महापुराणके टिप्पणमें उन्हें आपुलीसंघीय बतलाया है।[5] इस

---

१ लद्धउ मित्त भमंतेण रअणाअरचंदेण।
सो सिज्जंते सिज्जइ वि तह भरइ भरंतेण॥ ४-९

२-३ देखो पउमचरिउ, सन्धि ४२ और २० के पद्य।

४ अइतणुएण पईहरगत्तें, छिव्वरणासें पविरलदंतें।

५ सयंभु पद्धडीबद्धकर्ता आपलीसंघीयः।—म० पु० पृ० ९।

लिए वे यापनीय सम्प्रदायके अनुयायी जान पड़ते हैं। पर उन्होंने पउमचरिउके प्रारंभमें लिखा है कि यह राम-कथा वर्द्धमान् भगवानके मुख-कुहरसे विनिर्गत होकर इन्द्रभूति गणधर और सुधर्मास्वामी आदिके द्वारा चली आई है और रविषेणाचार्यके प्रसादसे मुझे प्राप्त हुई है।[१] तब क्या रविषेण भी यापनीय संघके थे?

स्वयंभुदेव पहले धनंजयके आश्रित रहे जब कि उन्होंने पउमचरिउकी रचना की और पीछे धवलइयाके आश्रयमें आये, जब कि रिट्ठणेमिचरिउ बनाया। इसलिए उन्होंने पहले ग्रन्थमें धनंजयका और दूसरेमें धवलइयाका प्रत्येक सन्धिके अन्तमें उल्लेख किया है।

त्रिभुवन स्वयंभु

स्वयंभुदेवके छोटे पुत्रका नाम त्रिभुवन स्वयंभु था। ये अपने पिताके सुयोग्य पुत्र थे और उन्हींके समान महाकवि भी। कविराज-चक्रवर्ती उनका विरुद था। लिखा है कि उस त्रिभुवन स्वयंभुके गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है जिसने बाल्यावस्थामें ही अपने पिताके काव्य-भारको उठा लिया।[२] यदि वह न होता तो स्वयंभुदेवके काव्योंका, कुलका और कवित्वका समुद्धार कौन करता? और सब लोग तो अपने पिताके धनका उत्तराधिकार ग्रहण करते हैं; परन्तु त्रिभुवन स्वयंभुने अपने पिताके सुकवित्वका उत्तराधिकार लिया।[४] उसे छोड़कर स्वयंभुके समस्त शिष्योंमें ऐसा कौन था जो उनके काव्य-समुद्रको पार करता? व्याकरणरूप हैं मजबूत कन्धे जिसके, आगमोंके अंगोंकी उपमावाले हैं विकट पद जिसके, ऐसे त्रिभुवन स्वयंभुरूप धवल (वृषभ) ने जिन-तीर्थमें काव्यका भार वहन किया[५]। इससे मालूम होता है कि त्रिभुवन भी वैयाकरण और आगमादिके ज्ञाता थे।

जिस तरह स्वयंभुदेव धनंजय और धवलइयाके आश्रित थे उसी तरह त्रिभुवन बंदइयाके। ऐसा मालूम होता है कि ये तीनों ही आश्रयदाता किसी एक ही राजमान्य या धनी कुलके थे — धनंजयके उत्तराधिकारी (संभवतः पुत्र) धवलइया और धवलइयाके उत्तराधिकारी बंदइया। एकके देहान्त होनेपर दूसरेके और दूसरेके बाद तीसरेके आश्रयमें ये आये होंगे।

बन्दइयाके प्रथम पुत्र गोविन्दका भी त्रिभुवन स्वयंभुने उल्लेख किया है जिसके वात्सल्यभावसे पउमचरियके शेषके सात सर्ग रचे गये[७]।

---

१ देखो संधि १, कडवक २। २-३-४-५ पउमचरिउके अन्तिम अंशके पद्य ३,७,९,१०। ६ अन्तिम अंशका चौथा पद्य। ७ अन्तिम अंशका १५ वाँ पद्य।

पउमचरिउके अन्तमें त्रिभुवन स्वयंभुने बन्दइयाके साथ नाग और श्रीपाल आदि भव्य जनोंको भी आशीर्वाद दिया है कि उन्हें आरोग्य, समृद्धि और शान्ति-सुख प्राप्त हों[१] ।

कवि कहाँके थे ?

अपने ग्रन्थोंमें इन दोनों कवियोंने न तो स्थानका नाम दिया है, न अपने समयके किसी राजा आदिका, जिससे यह पता लग सके कि वे कहाँके रहनेवाले थे । अनुमानसे इतना ही कहा जा सकता है कि वे दाक्षिणात्य जान पड़ते हैं और बहुत करके पुष्पदन्तके ही समान बरारकी तरफके होंगे । यद्यपि मारुतदेव, धवलइया, बंदइया, नाग, आइच्चंबा, सामिअब्बा, आदि नाम कर्नाटक जैसे हैं और ऐसे ही कुछ नाम अम्मइय, दंगइय, सीलइय आदि पुष्पदन्तने भी अपने परिचित जनोंके दिये हैं ।

ग्रन्थ-रचना

महाकवि स्वयंभु और त्रिभुवन स्वयंभुके दो सम्पूर्ण और संयुक्त ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, एक पउमचरिउ[२] (पद्मचरित) या रामायण और दूसरा रिट्ठणेमिचरिउ[३] (अरिष्टनेमिचरित) या हरिवंशपुराण । तीसरा ग्रन्थ पंचमिचरिउ (नागकुमारचरित) है जिसका उल्लेख तो किया गया है परन्तु जो अभी तक कहीं उपलब्ध नहीं हुआ ।

ये तीनों ही ग्रन्थ स्वयंभु देवके बनाये हुए हैं और तीनोंको ही उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभुने पूरा किया है । परन्तु उस तरह नहीं जिस तरह महाकवि बाणकी अधूरी कादम्बरीको उनके पुत्रने, वीरसेनकी अपूर्ण जयधवला टीकाको उनके शिष्य जिनसेनने और जिनसेनके आदिपुराणको उनके शिष्य गुणभद्रने पूरा किया था । पिता या गुरुकी अधूरी रचनाओंके पुत्र या शिष्यद्वारा पूरे किये जानेके अनेक उदाहरण हैं; परन्तु यह उदाहरण उन सबसे निराला है । कवि-

---

१ अन्तिम अंशका १६ वाँ पद्य ।

२-३ ये दोनों ग्रन्थ, भाण्डारकर इंस्टिट्यूट पूनेमें हैं - नं० ११२० आफ १८९४-९७ और १११७ आफ १८९१-९५ । पउमचरियकी एक प्रति कृपा करके प्रो० हीरालालजी जैनने भी मेरे पास भेज दी है जो सांगानेरके गोदीकाके मन्दिरकी है । यद्यपि उसके हासियेपर संवत् १७७५ लिखा हुआ है, परन्तु वह किसी दूसरेके हाथका है । प्रति उससे भी पुरानी है । हरिवंशकी एक प्रति बम्बईके ऐ० पन्नालाल सरस्वती-भवनमें भी है । इस लेखमें उक्त सब प्रतियोंका उपयोग किया गया है ।

राज स्वयंभुदेवने तो अपनी समझसे ये ग्रन्थ पूरे ही रचे थे परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभुको उनमें कुछ कमी महसूस हुई और उस कमीको उन्होंने अपनी तरफसे कई नये नये सर्ग जोड़कर पूरा किया।

जिस तरह महाकवि पुष्पदन्तके यशोधरचरितमें राजा और कौलका प्रसंग, यशोधरका विवाह और भवान्तरोंका वर्णन नहीं था और इस कमीको महसूस करके वीसलसाहु नामक धनीके कहनेसे गन्धर्व कविने उक्त तीन प्रकरण अपनी तरफसे बनाकर यशोधरचरितमें जोड़ दिये थे[1]; जान पड़ता है कि कविराज चक्रवर्तीने भी उक्त तीनों ग्रन्थोंकी पूर्ति लगभग उसी तरह की है। अन्तर सिर्फ इतना ही है कि गन्धर्वने उक्त प्रयत्न पुष्पदन्तसे लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष बाद किया था, परन्तु त्रिभुवन स्वयंभुने पिताके देहान्तके बाद तत्काल ही।

१ – पउमचरिउ

यह ग्रन्थ १२ हजार श्लोकप्रमाण है और इसमें सब मिलाकर ९० सन्धियाँ हैं – विद्याधरकाण्डमें २०, अयोध्या काण्डमें २२, सुन्दर काण्डमें १४, युद्ध-कांडमें २१ और उत्तरकांडमें १३[2]। इनमेंसे ८३ सन्धियाँ स्वयंभुदेवकी और शेष ७ त्रिभुवन स्वयंभुकी हैं। ८३ वीं सन्धिके अन्तकी पुष्पिकामें भी यद्यपि त्रिभुवन स्वयंभुका नाम है, इस लिए स्वयंभुदेवकी रची हुई ८२ ही सन्धियाँ होनी चाहिए परन्तु ग्रन्थान्तमें त्रिभुवनने अपनी रामकथा-कन्याको सप्तमहासर्गांगी या सातसर्गोंवाली कहा है, इसलिए ८४ से ९० तक सात सन्धियाँ ही उनकी बनाई जान पड़ती हैं। संभव है ८३ वीं सन्धिका अपनी आगेकी ८४ वीं सन्धिसे ठीक सन्दर्भ बिठानेके लिए उसमें भी उन्हें कुछ कडवक जोड़ने पड़े हों और इसलिए उसकी पुष्पिकामें भी अपना नाम दे दिया हो।

---

१ देखो, मेरा लिखा हुआ 'महाकवि पुष्पदन्त' शीर्षक लेख, महापुराण तृतीयखंडके प्रारंभमें।

२ देखो, पउमचरिउके अन्तके पद्य।

३–४ अपभ्रंश काव्योंमें सर्गकी जगह प्रायः 'सन्धि' का व्यवहार किया जाता है। प्रत्येक सन्धिमें अनेक कडवक होते हैं और एक कडवक आठ यमकोंका तथा एक यमक दो पदोंका होता है। एक पदमें यदि वह पद्धडियाबद्ध हो तो १६ मात्रायें होती हैं। आचार्य हेमचन्द्रके अनुसार चार पद्धडियोंका याने आठ पंक्तियोंका कडवक होता है। हर एक कडवकके अन्तमें एक घत्ता या ध्रुवक होता है।

२–रिट्ठणेमिचरिउ

यह हरिवंसपुराणु नामसे प्रसिद्ध है और अठारह हजार श्लोकप्रमाण है। तीन काण्ड हैं–यादव, कुरु और युद्ध। यादवमें १३, कुरुमें १९ और युद्धमें ६०, इस तरह सब मिलाकर इसमें ९२ सन्धियाँ हैं। सन्धियोंकी यह गणना युद्धकाण्डके अन्तमें दी हुई है और यह भी बतलाया है कि प्रत्येक काण्ड कब लिखा गया और उसकी रचनामें कितना समय लगा[1]। इससे इन ९२ सन्धियोंके कर्तृत्वके विषयमें तो कोई शंका ही नहीं हो सकती, ये तो निश्चयपूर्वक स्वयंभुदेवकी बनाई हुई हैं।

आगे ९३ से ९९ तककी सन्धियोंकी पुष्पिकाओंमें भी स्वयंभुदेवका नाम है और फिर उसके बाद १०० वीं सन्धिके अन्तमें त्रिभुवन स्वयंभुका नाम है। इसका अर्थ यह हुआ कि ९३ से ९९ तककी सन्धियाँ भी स्वयंभुदेवकी हैं और इस तरह उनका रचा हुआ रिट्ठणेमिचरिय ९९ वीं सन्धिपर समाप्त होता है। इस सन्धिके अन्तमें एक पद्य है जिसमें कहा है कि पउमचरिउ या सुव्वयचरिउ[2] बनाकर अब मैं हरिवंशकी रचनामें प्रवृत्त होता हूँ, सरस्वती देवी मुझे सुस्थिरता देवें। निश्चय ही यह पद्य त्रिभुवन स्वयंभुका लिखा हुआ है और इसमें वे कहते हैं कि पउमचरिउकी अर्थात् उसके शेष भागकी रचना तो मैं कर चुका, उसके बाद अब मैं हरिवंशमें अर्थात् उसके भी शेषभागमें हाथ लगाता हूँ। यदि इस पद्यको हम त्रिभुवनका न मानें तो फिर इस स्थानमें इसकी कोई सार्थकता ही नहीं रह जाती। हरिवंशकी ९९ सन्धियाँ बना चुकनेपर स्वयंभु देव यह कैसे कह सकते हैं कि पउमचरिउ बनाकर अब मैं हरिवंश बनाता हूँ! अतएव उक्त पद्यसे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वयंभुकी रचना इस ग्रन्थमें ९९ वीं सन्धिके अन्त तक है।

इसके आगेका भाग, १०० से ११२ तककी सन्धियाँ, त्रिभुवन स्वयंभुकी बनाई हुई हैं और इसकी पुष्टि इस बातसे होती है कि अन्तिम सन्धि तककी

१ स्वयंभुको ९२ सन्धियाँ समाप्त करनेमें छह वर्ष तीन महीने और ग्यारह दिन लगे। फाल्गुन नक्षत्र, तृतीया तिथि, बुधवार और शिव नामक योगमें युद्धकाण्ड समाप्त हुआ और भाद्रपद, दशमी, रविवार और मूल नक्षत्रमें उत्तरकाण्ड प्रारंभ किया गया।

२ राम लक्ष्मण आदि बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतके तीर्थमें हुए हैं, अतएव पउमचरिउ मुनिसुव्रतचरितके ही अन्तर्गत माना जाता है। मुनिसुव्रतचरितको ही संक्षेपमें 'सुव्वयचरिय' कहा है। 'सुव्वयचरिय'को 'सुद्दयचरिय' गलत पढ़ा गया है।

पुष्पिकाओंमें त्रिभुवन स्वयंभुका नाम दिया हुआ है। परन्तु इन तेरह सन्धियोंमेंसे १०६, १०८, ११० और १११ वीं सन्धिके पद्योंमें मुनि जसकित्तिका भी नाम आता है और इससे एक बड़ी भारी उलझन खड़ी हो जाती है। इसमें तो सन्देह नहीं कि इस अन्तिम अंशमें मुनि जसकित्तिका भी कुछ हाथ है, परन्तु वह कितना है इसका ठीक ठीक निर्णय करना कठिन है।

बहुत कुछ सोच विचारके बाद हम इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि मुनि जसकित्तिको इस ग्रन्थकी कोई ऐसी जीर्ण-शीर्ण प्रति मिली थी जिसके अन्तिम पत्र नष्ट-भ्रष्ट थे और शायद अन्य प्रतियाँ दुर्लभ थीं, इसलिए उन्होंने गोपगिरि (ग्वालियर) के समीप कुमरनगरीके जैनमन्दिरमें व्याख्यान करनेके लिए इसे ठीक किया, अर्थात् जहाँ जहाँ जितना जितना अंश पढ़ा नहीं गया, या नष्ट हो गया था, उसको स्वयं रचकर जोड़ दिया और जहाँ जहाँ जोड़ा वहाँ वहाँ अपने परिश्रमके एवजमें अपना नाम भी जोड़ दिया।

१०९ वीं सन्धिके अन्तमें वे लिखते हैं कि जिनके मनमें पर्वोंके उद्धार करनेका ही राग था, (पर्वसमुद्धरणरागैकमनसा) ऐसे जसकित्ति जतिने कविराजके शेष भागका प्रकृत अर्थ कहा; और फिर अपने इस कार्यका औचित्य बतलाते हुए वे कहते हैं कि संसारमें वे ही जीते हैं, उन्हींका जीवन सार्थक है, जो पराये विहडित (बिगड़े हुए या विशृंखल हुए) काव्य, कुल और धनका उद्धार करते हैं।

पिछली दो सन्धियोंकी रचना और भाषा परसे ऐसा मालूम होता है कि उनमें जसकित्तिका कुछ अधिक हाथ है। जसकित्ति इस ग्रन्थके कर्त्तासे ६—७ सौ वर्ष बादके लेखक हैं, उनकी भाषा इस ग्रन्थकी भाषाके मुकाबिलेमें अवश्य पहिचानी जा सकती है और हमारा विश्वास है कि अपभ्रंश भाषाके विशेषज्ञ परिश्रम करके इस बातका पता लगा सकते हैं कि इस ग्रन्थकी पिछली सन्धियोंमें जसकित्तिकी रचना कितनी है। हमें यह भी आशा है कि हरिवंशकी शायद कहीं ऐसी प्रति भी मिल जाय, जो स्वयंभु और त्रिभुवन स्वयंभुकी ही संपूर्ण रचना हो और उसमें जसकित्तिके लगाये हुए पेबन्द न हों।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि जसकित्तिका खुदका भी बनाया हुआ एक हरिवंशपुराण है और वह अपभ्रंश भाषाका ही है। इसलिए उनके लिए यह कार्य अत्यन्त सुगम था और क्या आश्चर्य जो उन उन अंशोंके

स्थानपर जो त्रिभुवन स्वयंभुके हरिवंशपुराणसे नष्ट हो गये थे अपने उक्त हरिवंशके ही अंश काट-छाँटकर जड़ दिये हों। इसका निर्णय जसकित्तिका[1] ग्रन्थ सामने रखनेसे हो सकता है।

३ – पंचमीचरिउ

दुर्भाग्यसे अभी तक इस ग्रन्थकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं हुई है; परन्तु पउमचरियमें लिखा है कि यदि स्वयंभुदेवके पुत्र त्रिभुवन न होते तो उनके पद्धड़ियाबद्ध पंचमीचरितको कौन सँवारता? इससे मालूम होता है कि स्वयंभुदेवका पंचमीचरित नामका ग्रन्थ भी अवश्य था और उसे भी उनके पुत्रने शायद पूर्वोक्त दो ग्रन्थोंके ही समान सँवारा था — बढ़ाया था।

स्वयंभूके तीनों ग्रन्थ सम्पूर्ण थे

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, स्वयंभुदेवने अपने तीनों ग्रन्थ अपनी समझ और रुचिके अनुसार सम्पूर्ण ही रचे थे, उन्हें अधूरा नहीं छोड़ा था। पीछे उनके पुत्र त्रिभुवनने अधूरोंको पूरा नहीं किया है बल्कि उनमें इजाफा किया है। इसकी पुष्टिमें हम नीचे लिखी बातें कह सकते हैं —

१ यह बात कुछ जँचती नहीं कि कोई कवि एक साथ तीन तीन ग्रन्थोंका लिखना शुरू कर दे और तीनोंको ही अधूरा छोड़ जाय। अपना अन्तिम ग्रन्थ ही वह अधूरा छोड़ सकता है।

---

१ मुनि जसकित्ति या यशःकीर्ति काष्ठासंघ-माथुरान्वय-पुष्करगणके भट्टारक थे और गोपाचल या ग्वालियरकी गद्दीपर आसीन थे। उनके गुरुका नाम गुणकीर्ति था। उनके दो अपभ्रंश-ग्रन्थ मिलते हैं एक हरिवंसपुराणु और दूसरा चंदप्पहचरिउ। पहला ग्रन्थ जैन सिद्धान्तभवन आरामें है। भास्कर (भाग ८, किरण १) में उसके जो बहुत ही अशुद्ध अंश उद्धृत किये गये हैं उनसे मालूम होता है कि दिवढा साहुके लिए उसकी रचना की गई थी —। "इय हरिवंसपुराणे कुरुवंसाहिट्ठिए विबुहचित्ताणुरंजणे सिरिगुणकित्तिसीसमुणिजसकित्तिविरइए साहु-दिवढानामंकिए तेरहमो सग्गो सम्मत्तो।" और पिछला ग्रन्थ फर्रुखनगरके जैनमन्दिरके भंडारमें है। उसके अन्तमें लिखा है — "इय सिरिचंदप्पहचरिए महाकइजसकित्तिविरइए महाभव्वसिद्धपालसवणभूसणे सिरिचंदप्पहसामिणिव्वाणगमणो णाम एयारहमो संधी सम्मत्तो।" यह प्रति श्रावण वदी १, शनि, संवत् १५६८ की लिखी हुई है। जसकित्ति तोमरवंशी राजा कीर्तिसिंहके समयमें विक्रमकी सोलहवीं शताब्दिके प्रारंभमें हुए हैं। जैनसिद्धान्त भवन आरामें ज्ञानार्णवकी एक प्रति है जो संवत् १५२१ आषाढ सुदी ६ सोमवारको गोपाचलदुर्गमें तोमरवंशी राजा कीर्तिसिंहके राज्यमें लिखी गई थी। इसमें गुणकीर्ति और यशःकीर्तिके बाद उनके शिष्य मलयकीर्ति और प्रशिष्य गुणभद्र भट्टारकके भी नाम हैं।

२ पउमचरिउमें स्वयंभुदेव अपनेको धनंजयका आश्रित बतलाते हैं और रिट्ठणेमिचरिउमें धवलइयाका। इससे स्पष्ट होता है कि इन दोनों ग्रन्थोंकी रचना एक साथ नहीं हुई है। धनंजयके आश्रयमें रहते समय पहला ग्रन्थ समाप्त किया गया और उसके बाद धवलइयाके आश्रयमें – जो कि शायद धनंजयका पुत्र था – रिट्ठणेमिचरिउ लिखना शुरू हुआ। पंचमीचरित शायद धनंजयके आश्रयमें ही लिखा गया हो।

३ दोनों ग्रन्थोंका शेष, त्रिभुवन स्वयंभुने उस समय लिखा जब वे बन्दइयाके आश्रित थे और इस बातका उल्लेख भी रिट्ठणेमिचरियकी ९९ वीं संधिके अन्तमें कर दिया कि पउमचरिउको (शेष भागको) कर चुकनेके बाद अब मैं हरिवंशपुराणकी (शेष भागकी) रचनामें प्रवृत्त होता हूँ। यह उल्लेख स्वयं स्वयंभुदेवका किया हुआ नहीं हो सकता।

४ पउमचरिउका लगभग ८/९ अंश और हरिवंशका ६/७ अंश स्वयंभुदेवका है और शेष १/९ और १/७ त्रिभुवनका। प्रश्न होता है कि पिता यदि दोनोंको अधूरा ही छोड़ता तो इतने थोड़े थोड़े ही अंश क्यों छोड़ता?

५ त्रिभुवन स्वयंभु अपने ग्रन्थांशोंको 'सेस' 'सयंभुदेव-उव्वरिअ' और 'तिहुअणसयंभुसमाणिअ' विशेषण देते हैं। शेषका अर्थ स्पष्ट है। आचार्य हेमचन्द्रकी नाममालाके अनुसार 'उव्वरिअ'का अर्थ 'अधिकं अनीप्सितं' होता है। अर्थात्, स्वयंभुदेवको जो अंश अभीप्सित नहीं था, या जो अधिक था, वह अंश। इसी तरह 'समाणिअ' शब्दका अर्थ होता है, लाया गया। इन तीनों विशेषणोंसे यही ध्वनित होता है कि यह अधिक या अनीप्सित अंश ऊपरसे लाया गया या जोड़ा गया है।

६ रिट्ठणेमिचरिउको देखनेसे पता चलता है कि वास्तवमें समवसरणके उपरान्त नेमिनाथका निर्वाण होते ही यह ग्रन्थ समाप्त हो जाना चाहिए। इसके बाद कृष्णकी रानियोंके भवान्तर, गजकुमारनिर्वाण, दीपायन मुनि, द्वारावतीदाह, बलभद्रका शोक, नारायणका शोक, हलधरदीक्षा, जरत्कुमार-राज्यलाभ, पाण्डव-गृहवास, मोहपरित्याग, पाण्डव-भवान्तर आदि प्रकरण जो ९९ से आगेकी सन्धियोंमें हैं वे नेमिचरितके आवश्यक अंश नहीं हैं, अवान्तर हैं। इनके बिना भी वह अपूर्ण नहीं है। परन्तु त्रिभुवन स्वयंभुने इन विषयोंकी भी

आवश्यकता समझी और इस तरह उन्होंने रिट्ठणेमिचरिउको हरिवंशपुराण बना दिया और शायद इसी कारण वह इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। पउमचरियकी अन्तकी सात सन्धियोंके विषय भी—सीता, बालि, और सीता-पुत्रोंके भवान्तर, मारुत-निर्वाण, हरिमरण आदि—इसी तरह अवान्तर जान पड़ते हैं।

४—स्वयंभु-छन्द

स्वयंभुदेवके इस छन्दोग्रन्थका पता अभी कुछ ही समय पहले लगा है। इसकी एक अपूर्ण प्रति[१] जिसमें प्रारंभके २२ पत्र नहीं हैं प्रो० एच० डी० वेलणकरको प्राप्त हुई है और उन्होंने उसे बड़े परिश्रमसे सम्पादित करके प्रकाशित कर दिया है।[२]

इसके पहलेके तीन अध्यायोंमें प्राकृतके वर्णवृत्तोंका और शेपके पाँच अध्यायोंमें अपभ्रंश छन्दोंका विवेचन है। साथ ही छन्दोंके उदाहरण भी पूर्व कवियोंके ग्रन्थोंमेंसे चुनकर दिये गये हैं।

इस ग्रन्थका प्रारंभिक अंश नहीं है और अन्तमें भी कर्त्ताका परिचय देनेवाली कोई प्रशस्ति आदि नहीं है। इसलिए सन्देह हो सकता है कि यह शायद किसी अन्य स्वयंभुकी रचना हो; परन्तु हमारी समझमें निश्चयसे यह छन्दोग्रन्थ इन्हींका है। क्यों कि—

१ इसके अन्तिम अध्यायमें गाहा, अडिल्ला, पद्धड़िया आदि छन्दोंके जो स्वोपज्ञ उदाहरण दिये हैं उनमें जिनदेवकी स्तुति है[३]। इसलिए इसके कर्त्ताका जैन होना तो असन्दिग्ध है। साथ ही इसमें (अ० ५—९) छड्डू अवजाईके उदाहरण स्वरूप जो घत्ता उद्धृत की है वह पउमचरिउकी १४ वीं सन्धिमें

---

१ यह प्रति बड़ोदाके ओरियण्टल इंन्स्टट्यूटकी है। आश्विन सुदी ५, गुरुवार संवत् १७२७ को इसे रामनगरमें किसी कृष्णदेवने लिखा था।

२ पहलेके तीन अध्याय रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बॉम्बेके जर्नल (सन् १९३५, पृ० १८—५८) में और शेप पाँच अध्याय बॉम्बे यूनीवर्सिटीके जर्नल (जिल्द ५, नं० ३ नवम्बर १९३६) में प्रकाशित हुए हैं।

३ तुम्ह पअकमलमूले अम्हं जिण दुक्खभावतविआइं।
दुरदुल्लिआइं जिणवर जं जाणसु तं करेज्जासु ॥ ३८
जिणणामें छिंदेवि मोहजालु, उप्पज्जइ देवइसामिसालु।
जिणणामें कम्मइं णिद्दलेवि, मोक्खग्गे पइसिअ सुह लहेवि ॥ ४४

बहुत ही थोड़े पाठान्तरके साथ मौजूद है,[1] घत्ता छन्दका जो उदाहरण (अ० ७ – २७) दिया है वह पउमचरिउकी पाँचवीं सन्धिका पहला पद्य है[2]। 'वम्महतिलअ' का जो उदाहरण है (अ० ६ – ४२) वह ६५ वीं सन्धिका पहला पद्य है, 'रअणावली' का जो उदाहरण है (अ० ६ – ७४) वह ७७वीं सन्धिके १३ वें कड़वकका अन्तिम पद्य है और अ० ६ का जो ७१ वाँ पद्य है वह पउमचरियकी ७७ वीं सन्धिका प्रारंभिक पद्य है। चूँकि ये कविकी अपनी और अपने ही ग्रन्थकी घत्तायें थीं; इसलिए इन्हें विना कर्त्ताके नामके ही उदाहरणस्वरूप दे दिया गया। यदि अन्य कवियोंकी होतीं तो उनका नाम देनेकी आवश्यकता होती। इससे भी यही निश्चय होता है कि पउमचरिउके कर्त्ता स्वयंभुदेव ही स्वयंभु-छन्दके कर्त्ता हैं। इस छन्दोग्रन्थमें ६ – ४५, ५८, ९८, १०२, १५२, ८ – २, ९ पद्य ऐसे हैं जो हरिवंशकी कथाके प्रसंगके हैं और ६ – ६५, ६८, ९०, १५५, ८ – २१, २५, ऐसे हैं जो रामकथाके प्रसंगके हैं और उदाहरणस्वरूप दिये गये हैं, परन्तु कर्त्ताका नाम नहीं दिया गया है। हमारा विश्वास है कि वे सब स्वयं स्वयंभुके हैं और खोज करनेसे रिट्ठणेमिचरिउ और पउमचरिउमें उनमेंसे अनेक पद्य मिल जायँगे।

२ रिट्ठणेमिचरिउके प्रारंभमें पूर्व कवियोंने उन्हें क्या क्या दिया, इसका वर्णन करते हुए कहा है कि श्रीहर्षने निपुणत्व दिया – "सिरिहरिसें णियणिउणत्तणउ।" और श्रीहर्षके इसी निपुणत्वके प्रकट करनेवाले संस्कृत पद्यके

---

१ कइवि सरुहिरइं दिट्ठइं णहग्गइं थणसिहरोवरि सुपहुणइं।
वेगिंग वलग्गहो मयणतुरंगहो णं पइ छुड्ड छुड्ड खित्तइं ॥ ९

२ अक्खइ गउतमसामि, तिहुअणलद्धपसंसहो।
सुण सेणिय उप्पत्ति, रक्खसवाणरवंसहो ॥

३ हणुवंतु रणे परिवेढिज्जइ णिसियरेहिं।
णं गयणयले बालदिवायरु जलहरेहिं।

४ सुरवर डामरु रावणु दट्ठु जासु जग कंपइ।
अण्णु कहिं महु चुक्कइ एव णाइ सिहि जंपइ ॥

५ माइविओएं जिह जिह करइ विहीसणु सोउ।
तिह तिह दुक्खेण रुवइ सहरिबलवाणरलोउ ॥

स्वयंभु-छन्दके मुद्रित पाठमें इस पद्यको 'चउमुह' का बतलाया है, परन्तु असलमें यह लेखककी कुछ असावधानी मालूम पड़ती है। वास्तवमें उस जगह 'चउमुह' का पद्य तो छूट गया है लिखनेसे और उसके आगे यह स्वयं स्वयंभुका अपना उदाहरण आ गया है।

एक चरणको स्वयंभु छन्दमें (१ – १४४) उद्धृत किया गया है – "जहा (यथा) – श्रीहर्षो निपुणः कविरित्यादि ।" चूँकि यह पद्य श्रीहर्षके नागानन्द नाटककी प्रस्तावनामें सूत्रधारद्वारा कहलाया गया है और बहुत प्रसिद्ध है, इसलिए कविने इसे पूरा देनेकी जरूरत नहीं समझी। परन्तु इससे यह सिद्ध हो जाता है कि स्वयंभुछन्दके कर्त्ता और पउमचरिउके कर्त्ता एक ही हैं, जो श्रीहर्षके निपुणत्वको अपने दोनों ग्रन्थोंमें प्रकट करते हैं ।

३ स्वयंभुदेवको उनके पुत्रने 'छन्दचूडामणि' कहा है । इससे भी अनुमान होता है कि वे छन्दशास्त्रके विशेषज्ञ थे और इसलिए उनका कोई छन्दो ग्रन्थ अवश्य होना चाहिए ।

स्वयंभु छन्दमें माउरदेवके कुछ पद्य उदाहरणस्वरूप दिये हैं और अधिक संभावना यही है कि ये माउरदेव या मारुतदेव कविके पिता ही होंगे। अपने पिताके पद्योंका पुत्रके द्वारा उद्धृत किया जाना सर्वथा स्वाभाविक है ।

पूर्ववर्ती कविगण

इस छन्दोग्रन्थमें प्राकृत और अपभ्रंश कवियोंके नाम देकर जो उदाहरण दिये हैं उनसे इन दोनों भाषाओंके उस विशाल साहित्यका आभास मिलता है जो किसी समय अतिशय लोकप्रिय था और जिसका अधिकांश लुप्त हो चुका है । यहाँ हम उन कवियोंके नाम देकर ही सन्तोष करेंगे –

प्राकृत कवि – बम्हअत्त (ब्रह्मदत्त), दिवायर (दिवाकर), अंगारगण, सुद्धसहाव (शुद्धस्वभाव), ललिअसहाव, (ललितस्वभाव), पंछमणाह, माउर-देव (मारुतदेव), कोहंत, णागह, सुद्धसील (शुद्धशील), हरआस (हरदास), हरअत्त (हरदत्त), धणदत्त, गुणहर (गुणधर), णिउण (निपुण), सुद्धराअ (शुद्धराज), उब्भट (उद्भट), चंदण, दुग्गसीह (दुर्गसिंह), कालिआस (कालिदास), वेरणाअ, जीउदेव (जीवदेव), जणमणाणंद, सीलणिहि (शील-निधि), हाल (सातवाहन), विमलएव (विमलदेव), कुमारसोम, मूलदेव, कुमारअत्त (कुमारदत्त), तिलोअण (त्रिलोचन), अंगवइ (अंगपति), रज्ज-

---

१ श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी,
लोके हारि च सिद्धराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम् ।
वस्त्वेकैकमपीह वांछितफलप्राप्तेः पदं किं पुन-
र्मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः ॥

उत्त (राजपुत्र), वेआल (वेताल), जोहअ, अजरामर, लोणुअ, कलाणुराअ (कलानुराग), दुग्गसत्ति (दुर्गशक्ति), अण्ण, अब्भुअ (अद्भुत), इसहल, रविवप्प (रविवप्र), छइल्ल, विअड्ढ, सुहडराअ (सुभटराज), चंदराअ (चन्द्रराग), ललअ ।

अपभ्रंश कवि—चउमुह (चतुर्मुख), धुत्त, धनदेव, छइल्ल, अज्जदेव (आर्यदेव), गोइंद (गोविन्द), सुद्धसील (शुद्धशील), जिणआस (जिणदास), विअड्ढ ।

इन कवियोंमें जैन कौन कौन हैं और अजैन कौन, यह हम नहीं जानते। हमारे लिए हाल (शातवाहन) कालिदास आदिको छोड़कर प्रायः सभी अपरिचित हैं। फिर भी इनमें जैन कवि काफी होंगे बल्कि अपभ्रंश कवि तो अधिकांश जैन ही होंगे। क्यों कि अबतक अपभ्रंश साहित्य अधिकांशमें उन्हींका लिखा हुआ मिला है।

वेताल[1] कविके पद्यके प्रारंभिक अंशका जो उदाहरण दिया है, उससे वह जैन जान पड़ता है। चौथे अध्यायके १७, १९, २१, २४, २६ नं० के जो छह पद्य हैं, वे गोइन्दके हैं और हरिवंशकी कथाके प्रसंगके हैं। उनसे माळूम होता है कि गोइन्द भी जैन है और उसका भी एक हरिवंशपुराण है। माउरदेव, जिनदास और चउमुह तो जैन हैं ही। चतुर्मुखके जो ४—२, ६—७१, ८३, ८६, ११२ नं० के पद्य हैं वे रामकथासम्बन्धी हैं और उनके पउमचरिउसे लिये गये हैं। चतुर्मुखके हरिवंस, पउमचरिउ और पंचमीचरिउ नामक तीन ग्रन्थोंके होनेका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

स्वयंभु-व्याकरण

हमारा अनुमान है कि स्वयंभुदेवने स्वयंभु-छन्दके समान अपभ्रंश भाषाका कोई व्याकरण भी लिखा था क्यों कि पउमचरिउके एक पद्यमें कहा है कि अपभ्रंशरूप मतवाला हाथी तभी तक स्वछन्दतासे भ्रमण करता है जबतक कि उसपर स्वयंभु-व्याकरणरूप अंकुश नहीं पड़ता और इसमें स्वयंभु-व्याकरणका स्पष्ट उल्लेख है।

---

१ कामवाणो वेआलस्स—
'सिद्धं णमो वीअराआ' एवमाइ त्ति ॥ १—१७७

एक और पद्यमें स्वयंभुको पंचानन सिंहकी उपमा दी गई है, जिसकी सच्छब्दरूप विकट दाढें हैं, जो छन्द और अलंकाररूप नखोंसे दुष्प्रेक्ष्य है और व्याकरणरूप जिसकी केसर (अयाल) है। इससे भी उनके व्याकरण ग्रन्थ होनेका विश्वास होता है।

समय-विचार

पउमचरिउ और रिट्ठनेमिचरिउमें स्वयंभुदेवने अपने पूर्ववर्ती कवियों और उनके कुछ ग्रन्थोंका उल्लेख किया है जिनके समयसे उनके समयकी पूर्व सीमा निश्चित की जा सकती है। पाँच महाकाव्य[1], पिंगलका छन्दशास्त्र, भरतका नाट्यशास्त्र, भामह और दंडीके अलंकारशास्त्र, इन्द्रका व्याकरण, व्यास, बाणका अक्षराडम्बर (कादम्बरी), श्रीहर्षका[2] निपुणत्व और रविषेणाचार्यकी रामकथा (पद्मचरित)। समयके लिहाजसे जहाँ तक हम जानते हैं इनमें सबसे पीछेके रविषेण हैं और उन्होंने अपना पद्मचरित वि० सं० ७३४ (वीर-निर्वाण संवत् १२०३) में समाप्त किया था[3]। अर्थात् स्वयंभु वि० सं० ७३४ के बाद किसी समय हुए हैं।

इसी तरह जिन सब लेखकोंने स्वयंभुका उल्लेख किया है और जिनका समय ज्ञात है, उनमें सबसे पहले महाकवि पुष्पदन्त हैं। पुष्पदन्तने अपना महापुराण वि० सं० १०१६ (श० सं० ८८१) में प्रारंभ किया था। अतएव स्वयंभुके समयकी उत्तर सीमा वि० सं० १०१६ है। अर्थात् वे ७३४ से १०१६ के बीच किसी समय हुए हैं। आचार्य हेमचन्द्रने भी अपने छन्दोनुशासनमें स्वयंभुका उल्लेख[4] किया है जो विक्रमकी तेरहवीं सदीके प्रारंभमें हुए हैं।

---

१ रघुवंश, कुमारसंभव, शिशुपालवध, किरातार्जुनीय और भट्टि। कोई कोई भट्टिके बदले श्रीहर्षके नैषधचरितको पाँच महाकाव्योंमें गिनते हैं।

२ नैषधचरितके कर्त्ता श्रीहर्ष नहीं किन्तु बाणके आश्रयदाता सम्राट हर्ष, जिनके नागानन्द, प्रियदर्शिका आदि नाटक-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। 'श्रीहर्षो निपुणः कविः' आदि पद्य श्रीहर्षके नागानन्दका ही है और उसे स्वयंभुछन्दमें उद्धृत किया गया है। इसी पद्यके 'निपुण' विशेषणका अनुकरण स्वयंभुने 'सिरिहरिसें णियणिउणत्तणउ' पदमें किया है। नैषधचरितके कर्त्ता श्रीहर्ष स्वयंभुसे और पुष्पदन्तसे भी पीछे हुए हैं। पुष्पदन्तने भी श्रीहर्ष (हर्षवर्द्धन) का ही उल्लेख किया है।

३ देखो मा० जै० ग्रन्थमालामें प्रकाशित पद्मचरितकी भूमिका।

४ देखो, निर्णयसागर-प्रेसकी आवृत्ति, पत्र १४, पंक्ति १६।

परन्तु यह लगभग तीन सौ वर्षका समय बहुत लम्बा है। हमारा खयाल है कि स्वयंभु रविषेणसे बहुत अधिक बाद नहीं हुए। वे हरिवंशपुराणकर्ता जिनसेनसे कुछ ही पहले हुए होंगे। क्यों कि जिस तरह उन्होंने पउमचरिउमें रविषेणका उल्लेख किया है, उसी तरह रिट्ठणेमिचरिउमें हरिवंशके कर्ता जिन-सेनका भी उल्लेख किया होता, यदि वे उनसे पहले हो गये होते तो। इसी तरह आदिपुराण-उत्तरपुराणके कर्त्ता जिनसेन-गुणभद्र भी स्वयंभुदेवद्वारा स्मरण किये जाने चाहिए थे। यह बात नहीं जँचती कि बाण, श्रीहर्ष आदि अजैन कवियोंकी तो वे चर्चा करते और जिनसेन आदिको छोड़ देते। इससे यही अनुमान होता है कि स्वयंभु दोनों जिनसेनोंसे कुछ पहले हो चुके होंगे। हरिवंशकी रचना वि० सं० ८४० (श० सं० ७०५) में समाप्त हुई थी। इसलिए ७३४ से ८४० के बीच स्वयंभुदेवका समय माना जा सकता है। परन्तु इसकी पुष्टिके लिए अभी और भी प्रमाण चाहिए।

नीचे दोनों ग्रन्थोंके वे सब महत्त्वपूर्ण अंश उद्धृत कर दिये जाते हैं जिनके आधारसे कवियोंका यह परिचय लिखा गया है।

*

परिशिष्ट

पउमचरिउके प्रारंभिक अंश

(१)

णमह णव-कमल-कोमल-मणहर-वर-वहल-कंति-सोहिल्लं ।
उसहस्स पायकमलं ससुरासुरवंदियं सिरसा ॥ १ ॥
चेउमुह-मुहम्मि सद्दो दंतीभद्दे[3] च मणहरो अत्थो ।
विण्णि वि सयंभुकवे किं कीरइ कइयणो सेसो ॥ २ ॥
चउमुहएवस्स सद्दो सयंभुएवस्स मणहरा जीहा ।
भद्दस्स य गोग्गहणं अज्ज वि कइणो ण पावंति ॥ ३ ॥
जलकीलाए सयंभुं चउमुहएवं च गोग्गहकहाए ।
भद्दं च मच्छवेहे अज्ज वि कइणो ण पावंति ॥ ४ ॥
तावच्चिय सच्छंदो भमइ अवब्भंस-मच्च-मायंगो ।
जाव ण सयंभु-वायरण-अंकुसो [तच्छिरे] पडइ ॥ ५ ॥
सच्छद-वियड-दाढो छंदालंकार-णहर-दुप्पिच्छो ।
वायरण-केसरड्डो सयंभु-पंचाणणो जयउ ॥ ६ ॥
दीहर-समास-णालं सद्द-दलं अत्थ[4]केसरग्घविया ।
बुह-महुयर-पीयरसं सयंभु-कव्वुप्पलं जयउ ॥ ७ ॥

(२)

वड्ढमाण-मुह-कुहर-विणिग्गय	रामकहाणए एह कमागय ।
अक्खर-वास-जलोह-मणोहर	सुयलंकार-छंद-मच्छोहर ।
दीह-समास-पवाहावंकिय	सक्कय-पायय-पुलिणालंकिय ।
देसीभासा-उभय-तडुज्जल	कवि-दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल ।
अत्थबहल-कल्लोलाणिट्ठिय	आसासय-सम-तूह-परिट्ठिय ।

---

१ मंगलाचरणके इस पद्यके बाद और दूसरे पद्यके पहले सांगानेरवाली प्रतिमें कवि ईशानशायनके संस्कृत 'जिनेन्द्ररुद्राष्टक'के सात पद्य दिये हैं । एक श्लोक शायद छूट गया है । मालूम नहीं, इनकी यहाँ क्या जरूरत थी ।

२ दूसरेसे छट्ठे तकके पद्य पूनेकी प्रतिमें नहीं है, परन्तु सांगानेरवाली प्रतिमें हैं ।

३ सांगानेरकी प्रतिमें 'दंतीसद्दं च' । ४ पूनेकी प्रतिमें 'अत्थकेसरद्धवियं' पाठ है ।

एह रामकह-सरि सोहंती गणहर-देवहिं दिट्ठ वहंती ।
पच्छइं **इंदभूइ**-आयरिएं पुणु **धम्मेण** गुणालंकरिएं ।
पुणु **एवहिं** संसाराराएं कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं ।
पुणु **रविसेणा**यरिय-पसाएं बुद्धिए अवगाहिय कइराएं ।
पउमिणि-जणणि-गब्भसंभूएं **मारुयएव**-रूव अणुराएं ।
अइतणुएण पईहरगत्तें छिव्वर-णासें पविरल-दंतें ।
घत्ता – णिम्मल-पुण्ण-पवित्त-कह-कित्तणु आढप्पइ ।
जेण समाणिजंतएण थिरकित्ति विढप्पइ ॥ २ ॥

(३)

बुहयण सयंभु पइं विण्णवइ मइं सरिसउ अण्णु[2] णत्थि कुकइ ।
वायरणु कयावि ण जाणियउ णउ वित्ति-सुत्तु वक्खाणियउ ।
णउ पच्चाहारहो तत्ति किय णउ संधिहे उप्परि बुद्धि ठिय ।
णउ णिसुणिउ सत्तविहत्तियाउ छव्विहउ समास-पउत्तियाउ ।
छक्कारय दस लयार ण सुणय वीसोवसग्ग पच्चय पहुय ।
ण बलाबल-धाउ-णिवाय-गणु णउ लिंगु उणाइ चउक्क वयणु ।
णउ णिसुणिउ पंच महायकव्वु णउ **भरहु** ण लक्खणु छंदु सव्वु ।
णउ बुज्झिउ **पिंगल** पत्थारु णउ **भम्मह दंडियलं**कारु ।
ववसाउ तोवि णउ परिहरमि वरि रयडावुत्त कव्वु करमि ।

अन्तिम अंश

तिहुयण-सयंभु णवरं एक्को कइराय-चक्किणुप्पण्णो ।
पउमचरियस्स चूडामणि व्व सेसं[3] कयं जेण ॥ १ ॥
कइरायस्स विजय-सेसियस्स वित्थारिओ जसो भुवणे ।
तिहुयण-सयंभुणा पउमचरियसेसेण णिस्सेसो ॥ २ ॥
तिहुयण-सयंभु-धवलस्स को गुणो वण्णिउ जए तरइ ।
बालेण वि जेण सयंभुकव्वभारो समुव्वूढो ॥ ३ ॥

---

१ सांगानेरवाली प्रतिमें 'बुद्धिइ णियइ अणिव कइराएं' पाठ है । २ उक्त प्रतिमें 'अण्णु-ण्णाहि कुकइ' पाठ है । ३ सांगानेरवाली प्रतिमें 'सेसे' ।

वायरण-दढ-क्खंधो आगम-अंगोपमाण-वियडपओ ।
तिहुयण-सयंभु-धवलो जिणतित्थे वहउ कव्वभरं[1] ॥ ४ ॥
चउमुह-सयंभुएवाण वण्णियत्थं अचक्खमाणेण ।
तिहुयण-सयंभु-रइयं **पंचमि-चरियं** महच्छरियं ॥ ५ ॥
सव्वे वि सुया पंजर-सुय व्व पढिअक्खराइं सिक्खंति ।
कइरायस्स सुओ सुय व्व सुइगब्भ-संभूओ ॥ ६ ॥
तिहुयण-सयंभु जइ ण हुंतु णंदणो सिरिसयंभुदेवस्स ।
कव्वं कुलं कवित्तं तो पच्छा को समुद्धरइ ॥ ७ ॥
जइ ण हुउ छंदचूडामणिस्स तिहुयणसयंभु लहुतणउ ।
तो पद्धडियाकव्वं **सिरिपंचमि** को समारेउ ॥ ८ ॥
सव्वो वि जणो गेण्हइ णियताय-विढत्त-दव्व-संताणं ।
तिहुयण-सयंभुणा पुण गहियं णं सुकइत्त-संताणं ॥ ९ ॥
तिहुयण-सयंभुमेक्कं मोत्तूण सयंभुकव्व-महरहरो ।
को तरइ गंतुमंतं मज्झे णिस्सेस-सीसाणं ॥ १० ॥
इय चारु पोमचरियं सयंभुएवेण रइय सम्मत्त ।
तिहुयण-सयंभुणा तं समाणियं परिसमत्तमिण ॥ ११ ॥
मारुय-सुय-सिरिकइराय-तणय-कय-पोमचरियअवसेसं ।
संपुण्णं संपुण्णं वंदइओ लहउ संपुण्णं ॥ १४ ॥
गोइंद-मयणसुयणंत विरइयं (?) वंदइय-पढमतणयस्स ।
वच्छलदाए तिहुयण-सयंभुणा रइयं महप्पयं ॥ १५ ॥
वंदइय-णाग-सिरिपाल-पहुइ-भव्वयण-समूहस्स ।
आरोगत्त-समिद्धी संति सुहं होउ सव्वस्स ॥ १६ ॥
सत्तमहासग्गंगी तिरयणभूसा सुरामकह-कण्णा ।
तिहुयण-सयंभुजणिया परिणउ वंदइय मणतणउ ॥ १७ ॥

इय रामायणपुराणं समत्तं ।

---

१ सांगानेरवाली प्रतिमें १, ३ और ४ को क्रमसे ८८, ८९ और ९० वीं संधिके प्रारम्भमें भी दिया है । २ 'वाणियत्थं' ।

[1]सिरि-विज्जाहर-कंडे संधीओ हुंति वीसपरिमाणं ।
उज्झाकंडम्मि तहा बावीस मुणेह गणणाए ॥
[2]चेउदह सुंदरकंडे एक्काहियवीस जुज्झकंडे य ।
उत्तरकंडे तेरह संधीओ णवइ सव्वाउ ॥ छ ॥

पउमचरिउकी सन्धियाँ

१ इय इत्थ पउमचरिए धणंजयासिय-सयंभुएवकए ।
जिण-जम्मुप्पत्ति इयं पढमं चिय साहियं पव्वं ॥
२ जिणवरणिक्कमणं इमं बीयं चिय साहियं पव्वं ॥

१४ जलकीलाए सयंभू चउमुहएवं च गोग्गहकहाए ।
भद्दं च मच्छवेहे अज्जवि कइणो ण पावंति ॥

२० इय विज्जाहरकंडं वीसहिं आसासएहिं मे सिट्ठं ।
एण्हिम उज्झाकंडं साहिज्जंतं णिसामेह ॥
धुवरायधोव (?) तइय भुअप्पणत्तिणतीसुयाणुपाढेण ।
णामेण सामिअव्वा सयंभुघरिणी महासत्ता ॥
तीए लिहावियमिणं वीसहिं आसासएहिं पडिबद्धं ।
सिरिविज्जाहरकंडं कंडं पि व कामएवस्स ॥

४२ **अउज्झाकंडं समत्तं ।**
आइच्चुएविपडिमोवमाए आइच्चबियाए ।
बीयउ उज्झाकंडं सयंभुघरिणीए लेहवियं ॥

७८ **जुज्झकंडं समत्तं ॥ ज्येष्ट वदि १ सोम ।**

८३ इय पोमचरिय-सेसे **सयंभुएवस्स** कहवि उव्वरिए ।
तिहुयण-सयंभु-रइयं समाणयं सीयदीव-पव्वमिणं ॥
वंदइआसिय-तिहुयणसयंभु-कइ-कहियपोमचरियस्स ।
सेसे भुवणपगासे तेयासीमो इमो सग्गो ॥
कइरायस्स विजयसेसियस्स वित्थारिओ जसो भुवणे ।
तिहुयणसयंभुणा पोमचरियस्स सेसेण णिस्सेसे ॥

१–२ सांगानेरकी प्रतिमें ये पद्य 'तिहुवणसयंभुणवरं' आदि पद्यके पहले दिये हैं ।

८४ इय पउमचरियसेसे सयंभुएवस्स कहवि उवरिए ।
तिहुयणसयंभुरइए सपरियण-हलीस-भवकहणं ॥
इय रामएव-चरिए वंदइआसियसयंभुसुय-रइए ।
बुहयण-मण-सुह-जणणो चउरासीमो इमो सग्गो ॥

८५ **वंदइआसिय**-महकइ**सयंभु-लहु-अंगजाय**-विणिबद्धो ।
सिरिपोमचरियसेसो पंचासीमो इमो सग्गो ॥

९० इय पोमचरियसेसे सयंभुएवस्स कहवि उवरिए ।
तिहुयणसयंभुरइए राहवणिव्वाणपव्वमिणं ॥
वंदइआसिय-तिहुयण-सयंभुपरिविरइयम्मि महाकव्वे ।
पोमचरियस्स सेसे संपुण्णो णवइमो सग्गो ॥

*

रिट्ठणेमिचरिउका प्रारंभिक अंश

सिरिपरमागम-णालु मयल-कला-कोमल-दलु ।
करहु विहूसणु कण्णे जायव-कुरुव-कुलुप्पलु ॥

* *

चिंतवइ **सयंभु** काइ करम्मि हरिवंस-महण्णउ कें तरम्मि ।
गुरु-वयण-तरंडउ लद्धु णवि जम्महो वि ण जोइउ को वि कवि ॥
णउ णाइउ बाहत्तरि कलाउ एक्कु वि ण गंथु परिमोक्कलाउ ।
तहिं अवसरि सरसइ धीरवइ करि कव्वु दिण्ण मइ विमलमइ ।
इंदेण समप्पिउ वायरणु रसु **भरहें वासें** वित्थरणु ।
पिंगलेण छंद-पय-पत्थारु **भम्मह-दंडिणिहिं** अलंकारु ।
बाणेण समप्पिउ घणघणउ तं अक्खर-डंबरु अप्पणउ ।
सिरिहरिसें णियणिउणत्तणउ अवरेहिं मि कइहिं कइत्तणउ ।
छंडणिय-दुवइ-धुवएहिं जडिय **चउमुहेण** समप्पिय पद्धडिय ।
जण-णयणाणंद-जणेरियए आसीसए सव्वहु केरियए ।
पारंभिय पुणु **हरिवंस-कहा** स-समय-पर-समय-वियार-सहा ।

घत्ता — पुच्छइ मागहणाहु, भवजरमरण-वियारा
थिउ जिण-सासणु केम, कहि हरिवंस भडारा ॥ २ ॥

अन्तिम अंश

इह-भारह-पुराणु सुपसिद्धउ णेमिचरिय-हरिवंसाइद्धउ ।
वीरजिणेसें भवियहो अक्खिउ पच्छइं **गोयमसामिण** रक्खिउ ।
सोहम्में पुणु **जंबूमामें** **विण्हुकुमारें** दिग्गयगामें ।
णंदिमित्त-अवरज्जियणाहें **गोवद्धणेण सुभद्दहवाहें** ।
एम परंपराइं अणुलग्गउ आयरियह मुहाउ आवग्गउ ।
सुणि संखेवसुत्तु अवहारिउ विउसें सयंभें महि वित्थारिउ ।
पद्धडिया-छंदें सुमणोहरु भवियण-जण-मण-सवण-सुहंकरु ।
जसपरिसेसिकविहिं जं सुण्णउ तं तिहुवण-सयंभु किउ पुण्णउ ।
तासु पुत्तें पिउ-भरणिव्वहिउ पिय-जसु णिय-जसु भुवणे पसाहिउ ।
गय तिहुयणसयंभु सुरठाणहो जं उव्वरिउ किं पि सुणियाणहो ।
तं **जसकित्ति**-मुणिहि उद्धरियउ णिएवि सुत्तु हरिवंसच्छरियउ ।
णिय-गुरु-सिरि-**गुणकित्ति**-पसाएं किउ परिपुण्णु मणहो अणुराएं ।
सरहसेणदं (?) सेठि-आएसें **कुमर-णयरि** आविउ सविसेसें ।
गोवगिरिहे समीवे विसालए पणियारहे जिणवर-चेयालए ।
सावयजणहो पुरउ वक्खाणिउ दिढु मिच्छत्तु मोहु अवमाणिउ ।
जं असुणंतें इह मइ साहिउ तं सुयदेवि खमउ अवराहउ ।
णंदउ सासणु सम्मइणाहहो णंदउ भवियण कय-उच्छाहहो ।
णंदण णरवइ पय-पालंतहो णंदउ दयधम्मु वि अरहंतहो ।
कालें वि य णिच्च परिसक्कउ कासु वि भणु कणु दिंतु ण थक्कउ ।
भद्दवमासि विणासिय-भवकलि हुउ परिपुण्णु चउद्दसि णिम्मलि ।

घत्ता — इय चउविह संघहं, विहुणिय-विग्घहं, णिण्णासिय-भव-जर-मरणु ।
जसकित्ति-पयासणु, अखलिय-सासणु, पयडउ संति सयंभु जिणु ॥१७॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयंभुएव-उव्वरिए ।
तिहुवण-सयंभु-रइए समाणियं कण्हकित्तिहरिवंसं ॥

---

१ बम्बईके ऐ० पन्नालाल सरस्वती-भवनकी प्रतिमें यह एक चरण और आगेके तीन चरण अधिक हैं। इससे सम्बन्ध ठीक बैठ जाता है। ये चारों चरण पूनेकी और प्रो० हीरालालजीकी प्रतिमें नहीं हैं। २ बम्बईकी प्रतिमें यह और आगेकी पंक्ति नहीं है।

गुरु-पव-वासमयं सुयणाणाणुक्कमं जहाजायं ।
सयमिक्क-दुदह-अहियं संधीओ परिसमत्ताओ ॥ संधि ११२ ॥
इति हरिवंशपुराणं समाप्तं ।

हरिवंशकी सन्धियाँ—

१ इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयंभुएवकए ।
पढमो समुद्दविजयाहिसेयणामो इमो सग्गो ॥

९२ तेरह जाइवकंडे कुरुकंडेकूणवीससंधीओ ।
तह सट्ठि जुज्झयकंडे एवं वाणउदि संधीओ ॥ १ ॥
सोमसुयस्स य वारे तइयादियहम्मि फग्गुणे रिक्खे ।
सिउणासेण य जोए समाणियं जुज्झकंडं व ॥ २ ॥
छव्वरिसाइं तिमासा एयारसवासरा सयंभुस्स ।
वाणवइ-संधिकरणे वोलीणो इत्तिओ कालो ॥ ३ ॥
दियहाहिवस्स वारे दसमीदियहम्मि मूलणक्खत्ते ।
एयारसम्मि चंदे उत्तरकंडं समाढत्तं ॥ ४ ॥
वरं तेजस्विनो मृत्युर्न मानपरिखण्डनम् ।
मृत्युस्तत्क्षणकं दुःखं मानभंगो दिने दिने ॥ ५ ॥

९९ इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयंभु-कए कविराजधवल-
विनिर्मिते श्री समवसरणकथनं नाम निम्याणवो संधिः ॥
काऊण पोमचरियं सुव्वय-चरियं च गुणगणप्पवियं ।
हरिवंस-मोहहरणे सरस्सई सुढिय-देह व ॥ छ ॥
इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयंभुवएव-उव्वरिए ।
तिहुवण-सयंभुमहाकइ-समाणिए समवसरणं णाम सउमो सग्गो ॥

१०२ इय............................सयंभु-उव्वरिए
तिहुवण-सयंभु-महकइ-समाणिए कण्ह-महिल-भवगहणमिणं ॥
तिहुवणो[1] जइ वि ण होंतु णंदणो सिरिसयंभुएवस्स ।
कव्वं कुलं कवित्तं तो पच्छा को समुद्धरइ ॥

१०६ घत्ता — ते धण्णा सउण्णा के वि णरा पालिय-संजुम फेडिय-दुम्मइ ।
इह भवे जसुकित्ति पवित्थरिवि हुंति सयंभुवणाहिवइ ॥
इय रिट्ठ.........सयंभुविरइए-णारायणमरण-पव्वमिणं ॥

---

१ यह पद्य बम्बईकी प्रतिमें यहाँपर नहीं है ।

१०७ घत्ता—**सइंभुयएण** विढत्तु धणु जिम विलसिज्जइ संत ।
तेम सुहासुह-कम्मडा भुंजिज्जहि णिब्भंत ॥
इय रिट्ठ.........सयंभुएव-उवरिए ।
तिहुवणसयंभु-रइए समाणियं सोयबलभद्दं ॥

१०८ पियमायरिहि विराइय महिविक्खाइय भूसियणिय**जसकित्ति** जणि ।
जिणदिक्खहे कारणे दुक्खणिवारणे देउ **सयंभुय** धरेवि मणि ॥
इय रिट्ठ............सयंभुएवउवरिए ।
तिहुयणसयंभुरइए हलहर-दिक्खासमं कहियं ॥
जरकुमररज्ज-लंभो, पंडवघरवास-मोहपरिचायं ।
सय-अट्ठाहिय संधी समाणियं एत्थ वरकइणा ॥

१०९ इय रिट्ठणेमिपुराणसंगहे धवलइयासियकइ-सयंभुएव-उवरिए ।
तिहुयण-सयंभुरइए समाणियं पंडुसुयहो भवं णवोहिय-सयं संधी ॥
इह जसकित्ति-कएणं पवसुद्धरण-राय-एक्कमणं ।
कइरायस्सुवरियं पयडत्थं अक्खियं जइणा ॥ ९ ॥
ते जीवंति य भवणे सज्जण-गुण-गणहरा य भावत्था ।
पर-कव कुलं वित्तं जे विहडियं पि समुद्धरहिं ॥ २ ॥

११० सवु सुयंगु णाणु जिण-अक्खिउ, भवसहंतरि किं पि ण रक्खिउ ।
णिय-जसुकित्ति तिलोए पयासिउ, जिह **सयंभु** जिणे चिरु आहासिउ ॥
इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयंभुएव उवरिए ।
तिहुवण-सयंभुकइणा समाणियं दहसयं सग्गं ॥
एक्को सयंभुविउसो तह पुत्तो णाम तिहुयण-सयंभू ।
को वण्णिउं समत्थो पिउभरणिव्वहण-एक्कमणो ॥ १ ॥

१११ घत्ता—तेतीससहसवरिसे असणं गिण्हंति माणसे सुच्छं ।
तेत्तियपक्खुस्सासं **जसकित्ति**-विहूसिय-सरीरे ॥ छ ॥
इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयंभुएवउवरिए ।
तिहुवण-सयंभुरइए णेमिणिव्वाणं पंडुसुयतिण्णं ॥

जैनेतर ग्रन्थोंपर जैन विद्वानोंकी टीकायें।

लेखक — श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटा.
(भू० पू० सम्पादक — "राजस्थानी")

*

अहिंसा और अनेकान्त जैनधर्मकी महान् देन है। यद्यपि अहिंसाको सभी दर्शनोंने महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है, फिर भी जैसी सूक्ष्मताके साथ किया गया अहिंसाका स्वरूप-विवेचन जैन दर्शनमें पाया जाता है वैसा अन्य किसी दर्शनमें नहीं। अहिंसाके सम्बन्धमें जैनोंने केवल सूक्ष्म विवेचन करके ही नहीं छोड़ा, बल्कि उसका सक्रिय रूप भी अन्य सभीकी अपेक्षा अधिक विकसित रूपसे जनताके सामने रखा है — अर्थात्, अहिंसाको जीवनमें उतारनेके प्रयत्नमें भी जैन सबसे अधिक सफल हुए हैं। अनेकान्त दृष्टिको तो एकमात्र जैन दर्शनकी ही महान् देन कह सकते हैं। क्यों कि अन्य दर्शनोंमें इस दृष्टिका नामनिर्देश भी नहीं मिलता। वास्तवमें इन दोनों विशेषताओंपर अधिक गंभीरतासे विचार करनेपर, जैन दर्शनके चरम लक्ष्य (वीतराग अवस्था) प्राप्त करने ही के ये दोनों सोपान नजर आते हैं। विचारोंका द्वन्द्व-संघर्ष अनेकान्तसे शमित होता है और व्यावहारिक संघर्ष सर्व जीवोंको अपने समान समझनेकी व्यापक भावनासे उपशम हो जाता है। इन सिद्धान्तोंके प्रचारकोंकी बुद्धि असाधारण रूपमें उदार होना स्वाभाविक ही है। इस उदार मानसका मूर्त्तरूप हम जैन व्यवहार और विचार (साहित्य) में स्पष्टतः देख पाते हैं। जैन धर्ममें जाति-पाँतिको विशेष महत्त्व न देकर सबके लिये धर्मका द्वार एक समान खुला रखा है। वैसे ही साहित्यके निर्माण एवं अध्ययन-अध्यापनमें भी जैन विद्वानोंकी दृष्टि बहुत विशाल रही है। जैनधर्मके प्रचारक आचार्यके लिये यह परमावश्यक माना गया है कि वह षड्दर्शनोंका ज्ञाता हो; क्यों कि दर्शनोंके सिद्धान्तोंका भलीभाँति अध्ययन किये बिना अपने दर्शनकी विशेषताको भलीभाँति प्रकट नहीं किया जा सकता, एवं अन्य दर्शनके प्रचारकों द्वारा अपने दर्शनके विषयमें किये गये आक्षेपोंका समुचित उत्तर नहीं दिया जा सकता; अतः उपरोक्त नियमके फलस्वरूप जैन विद्वानोंने जैनेतर ग्रन्थोंका भलीभाँति अध्ययन किया और उनपर विशद विवेचनात्मक पांडित्यपूर्ण टीकायें लिखीं, एवं अपने ग्रन्थोंमें अन्य दर्शनोंकी भलीभाँति आलोचना की। एक ही महत्त्वकी दलीलसे इस बातका समर्थन हो

जायगा कि जैन ग्रन्थोंमें जहाँ भी जैनेतर दर्शनोंकी आलोचनाएँ की गई हैं, वे प्रायः सर्वतः अभ्रान्त सिद्ध हुई हैं; क्यों कि उन्होंने उन दर्शनोंके साहित्यका भलीभाँति तलस्पर्शी अध्ययन किया है। जैनेतर विद्वानोंने जहाँ भी जैनधर्मकी खंडनात्मक आलोचना की है वह भ्रान्तिपूर्ण और जैनदर्शनके मन्तव्यसे अज्ञानमूलक प्रतीत होती है। क्यों कि उन्होंने जैन दर्शनके ग्रन्थोंका तलस्पर्शी अध्ययन नहीं किया। अतः उनमें कथित विषय (आशय) को सम्यक् प्रकारसे नहीं जान सके। उस विषयके सम्यक् परिज्ञानके अभावमें उनकी आलोचनाका सदोष होना स्वाभाविक ही है। उदाहरणार्थ शंकराचार्य एवं स्वामी दयानन्दको ही लीजिये, इन्होंने अपने ग्रन्थोंमें जैन दर्शनका जो कुछ खंडन किया है वह अधिकांश भ्रान्तिमूलक ही है। तब जैन विद्वानोंके रचित 'सन्मतितर्क' एवं 'षड्दर्शनसमुच्चय' आदिकी वृत्तिमें जैनेतर दर्शनोंकी आलोचना पढ़िये, उनके रचयिताओंके अन्य दार्शनिक ग्रन्थोंके तलस्पर्शी अध्ययनका परिचय स्वयं भासित हो जायगा।

समभावी उदारबुद्धिवाला व्यक्ति गुणग्राही हुवा करता है। वह उपयोगी साहित्यको अपनानेमें, चाहे वह फिर विरोधी-रचित ही क्यों न हो, अपनानेमें हिचकिचाता नहीं। वह स्वयं उसका उपयोग करता है, प्रचार करता है, अपने समय एवं शक्तिका सदुपयोग कर उसके भावको सम्यक् परिस्फुट करनेका प्रयत्न करता है। उदाहरणार्थ जैन विद्वानोंने सभी विषयके उपयोगी जैनेतर ग्रन्थोंपर प्रचुर संख्यामें टीकायें की हैं, जिनका परिचय कराना ही प्रस्तुत लेखका उद्देश है।

जैन विद्वानोंकी इस सेवाके विषयमें यह भी कहा जा सकता है कि जैन दर्शनमें वैसे उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका अभाव था अतः उन्हें अपनाना पड़ा। पर यह बात भी ठीक नहीं है, क्यों कि जैन विद्वानोंने सभी विषयोंके स्वतंत्र ग्रन्थोंका प्रचुर संख्यामें निर्माण किया है। यदि वह उदार नहीं होते तो अपने निर्मित ग्रन्थोंका ही प्रचार करते रहते। उनकी प्रतिभा भी कम नहीं थी कि वे जैनेतर साहित्यकी कोटिके नवीन साहित्यका निर्माण नहीं कर सकते थे।

केवल टीकायें रचनेके द्वारा ही उन्होंने जैनेतर साहित्यकी सेवा नहीं की थी पर उस साहित्यके संरक्षणमें भी उन्होंने बहुत योग दिया है, जिसके फलस्वरूप जैन भंडारोंमें आज भी हजारों जैनेतर ग्रन्थोंकी प्रतियाँ (प्राचीनसे प्राचीन एवं

शुद्ध सुवाच्य अक्षरोंमें लिखी हुई) उपलब्ध हैं। उनमें कई ऐसे दुर्लभ ग्रन्थ भी हैं जिनकी प्रतियाँ जैनेतर संग्रहालयोंमें नहीं मिलती; अतः उनकी रक्षाका श्रेय सिर्फ जैन समाजको ही दिया जा सकता है। यथा—गा. ओ. सि. प्रकाशित—१ तत्त्वोपप्लव, २ हेतुबिन्दुटीका, ३ तत्त्वसंग्रह, ४ काव्यमीमांसा, ५ रूपकषट्क, ६ प्रमाणसंग्रह, ७ उदयसुन्दरीकथा, आदिकी प्रतियाँ जैन भंडारोंसे ही उपलब्ध हुई हैं।

जैनोंने टीकाओंके निर्माण तथा साहित्यके संरक्षणके अतिरिक्त अन्य कई प्रकारसे भी जैनेतर साहित्यको अपनाया है, जिसमें पादपूर्त्तिरूप साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। जैन विद्वानोंने अपनी विलक्षण प्रतिभासे कई जैनेतर ग्रन्थोंकी पादपूर्त्तिके रूपमें रचना की है पार्श्वाभ्युदयकाव्य, शीलदूत, नेमिदूत, चंद्रदूत, मेघदूतसमस्या-लेखमें मेघदूत, शान्तिनाथकाव्यमें नैषधकाव्य, देवानन्दाभ्युदयकाव्यमें माघकाव्य, जैनमहिम्नस्तोत्रमें महिम्नस्तोत्रका पादपूर्त्तिके रूपमें उपयोग किया है। इस पादपूर्त्ति साहित्यके विषयमें मेरा "जैनपादपूर्त्ति साहित्य" शीर्षक लेख (प्रकाशित—जैनसिद्धान्तभास्कर वर्ष ३ अंक २।३) देखना चाहिये।

जैनोंका विवरणात्मक साहित्य अनेक प्रकारका है। इस लेखमें ऐसे ही साहित्यका परिचय दिया जा रहा है; अतः प्रसंगवश उसका थोड़ासा परिचय यहां दिया जाता है जिससे उसकी विशेषता एवं भारतीय विवरणात्मक साहित्यमें उसका कितना उच्च स्थान है, उसका पता चल जाता है।

अभिधानचिन्तामणि (देवकाण्ड) में आचार्यपाद हेमचन्द्र कहते हैं—

"सूत्रं सूचनकृद् भाष्यं सूत्रोक्तार्थप्रपञ्चकम्।
प्रस्तावस्तु प्रकरणं निरुक्तं पदभञ्जनम्॥ १६८
अवान्तरप्रकरण-विश्रामे शीघ्रपाठतः।
आह्निकमधिकरणं त्वेकन्यायोपपादनम्॥ १६९
उक्तानुक्तदुरुक्तार्थ-चिन्ताकारि तु वार्त्तिकम्।
टीका निरन्तरव्याख्या पञ्जिका पदभञ्जिका॥ १७०
निबन्ध-वृत्ती अन्वर्थे संग्रहस्तु समाहृतिः।
परिशिष्ट-पद्धत्यादीन् पथाऽनेन समभ्रयेत्॥ १७१
कारिका तु स्वल्पवृत्तौ बहोरर्थस्य सूचनी।
कलन्दिका सर्वविद्या निघण्टुर्नाम संग्रहः॥ १७२

भाष्य—सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥

जैन विवरणात्मक साहित्यकी संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है–

१ निर्युक्ति–प्राकृत भाषामें आर्याछन्दमें रची हुई टीका।

२ भाष्य–निर्युक्तिके समान ही प्राकृत आर्याछन्दोबद्ध टीकापर विशेष विशद।

३ चूर्णि–इसकी भाषा केवल प्राकृत ही न होकर संस्कृत मिश्रित (अंश सह) होती है। कहीं कहीं एक ही वाक्यमें कुछ अंश संस्कृत कुछ प्राकृत हुवा करता है। चूर्णि गद्य रूपमें होती है। इनमें भाष्य लघु और बृहद्, तथा चूर्णि–सामान्य चूर्णि और विशेष चूर्णि भेदसे दो प्रकारकी पाई जाती है।

४ टीका और उसके अन्य पर्यायवाची नाम इस प्रकार हैं–ये नाम संक्षेप एवं विस्तार, ग्रन्थगत समस्त शब्दोंकी व्याख्या और कठिन शब्द मात्रकी व्याख्या, सुगम दुर्गम आदि भेदों के सूचक है–

१ अक्षरार्थ, २ अर्थतत्त्व, ३ अवचूरि, ४ अवचूर्णि, ५ छाया, ६ टिप्पनक, ७ पर्याय, ८ पंजिका, ९ फक्किका, १० वार्त्तिक, ११ विवरण, १२ विवृति, १३ वृत्ति, १४ व्याख्या, १५ बालावबोध, १६ वचनिका, १७ स्तबक (टबा)

इनमेंसे वार्त्तिक एवं बालावबोध–लोकभाषामें अनुवाद; वचनिका–हिन्दी भाषाके विवरण और टबा–लोकभाषामें शब्दार्थके सूचक हैं, अर्थात् बालावबोध, वचनिका और टबा ये तीन संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंके जनसाधारणकी भाषामें शब्दार्थ या अनुवादके सूचक हैं। और भी विशेषतासूचक कई नाम इस लेखमें मिलेंगे, जैसे–दुर्गपदप्रबोधवृत्ति, मंडन, भूषण, विस्तारदीपिका; क्रियाचन्द्रिका, चन्द्रिका, सुबोधिनी, शिशुहितैषिणी, अर्थलापनिका, सुगमप्रबोधिका, पदार्थबोधिनी, तात्पर्यदीपिका, प्रदीपिका, मुग्धावबोध, सुखावबोधिका, रहस्यादर्श इत्यादि।

कई टीकाओंके नाम ग्रन्थकारोंके नामपर प्रसिद्ध हो गये हैं जैसे–धनसागरी, चारित्रवर्धनी, चन्द्रकीर्ती, जैनराजी, समयसुन्दरी, लक्ष्मीवल्लभी, इ०।

विविध जैन टीकाओंकी विशेषतायें–इस निबंधमें जिन जैनेतर ग्रन्थोंपर जैन टीकाओंका परिचय दिया गया है, उनमेंसे अनेक टीकाओंकी भिन्न भिन्न दृष्टिकोणसे विविध विशेषतायें हैं; यथा–

१ कई टीकायें मूलग्रन्थके निर्म्माणके समकालीन रचित हैं; कई उन ग्रन्थोंपर सर्व प्रथम टीकाके रूपमें*, अतएव ग्रन्थकारोंके समय-निर्णय एवं मूलपाठके

* जैसे काव्यप्रकाश पर माणिक्यचंद्र, काव्यालंकार पर नमि साधु, नैषध पर मुनिचंद्रसूरि आदिकी टीकायें।

निर्णयमें उनकी अनूठी उपयोगिता है। जिन ग्रन्थकारोंका समय अमीतक विवादग्रस्त या अज्ञात है, उनके समय-निर्णय-पथ को ये टीकायें प्रशस्त बना देती हैं।

२ कई टीकायें जैनेतर समस्त टीकाओंसे अधिक सुगम, उपयोगी एवं विशद विवेचन पूर्ण हैं, जिनके प्रकाशनसे विद्यार्थियोंको बड़ी भारी सहायता मिल सकती है। जैसे भानुचंद्र-सिद्धिचंद्र कृत कादम्बरी टीका आदि।

३ कई टीकायें अनेकार्थमय हैं—जैसे मेघदूतके प्रथम श्लोक पर समयसुन्दरकी टीका, शुभतिलककृत गायत्रीविवरण।

४ कई जैनेतर ग्रन्थोंपर जैनेतर विद्वानोंके द्वारा रचित एक भी टीका उपलब्ध नहीं है, उनपर भी जैन विद्वानोंने टीका रचकर एक अभाव एवं आवश्यकताकी पूर्त्ति की है।

५ कई ग्रन्थोंको तो जैन विद्वानोंने टीका रचकर ही सुरक्षित रखा है, अन्यथा उनका मिलना भी आज असंभवप्राय होता। जैसा—"सन्देशरासक"।

६ कई ग्रन्थों पर जैन विद्वानोंने इतनी अधिक टीकायें कीं हैं कि उन पर जैनेतर विद्वानों द्वारा रचित भी इतनी टीकायें नहीं मिलतीं।

७ जैन टीकाकारोंने कई संस्कृत ग्रन्थोंकी टीकायें लोकभाषामें की एवं कई भाषा-ग्रन्थोंकी टीकायें संस्कृत भाषामें भी रचीं, जो उनकी एक मौलिक विशेषता है।

८ जैन विद्वानोंने, जैनेतर विविध विषयक ग्रन्थों पर एवं बौद्धसे लेकर मुसलमानों तकके रचित ग्रन्थों पर टीका रच कर अपने समभाव का ज्वलन्त उदाहरण पेश किया है।

प्राचीनता—इस निबंधमें संकलित सूचीसे स्पष्ट होगा कि जैनेतर ग्रन्थों पर टीका करनेवाले सर्वप्रथम ग्रन्थकार हरिभद्रसूरि* हैं जिनका समय ९ वीं शताब्दी है। उसके बादसे, अविच्छिन्न रूपसे यह कार्य चलता रहा जो बीसवीं शताब्दी तक जारी रहा है।

प्रस्तुत निबंधका संकलन—यह निबन्ध मेरे ७–८ वर्षोंके परिश्रम एवं खोजका परिणाम है। इसके संकलनमें मौलिक अन्वेषणको ही प्रधानता दी

---

* पं. ला० भ० गांधीके मतसे मल्लवादि हैं जिनका समय वे ६ ठी शताब्दी मानते हैं।

गई है। करीब ९–१० वर्ष पूर्व "जैनसाहित्यका महत्त्व" शीर्षक लेख लिखनेके समय इसका सूत्रपात हुवा था। हमारी उस समय बनाई हुई सूची का उपयोग बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर ने अपने धार्मिक उदारता नामक लेखमें (प्र० जैन-सिद्धान्तभास्कर वर्ष २ अं० १) किया। इसके बाद हीरालाल कापड़ियाने शोभन चतुर्विंशतिभूमिका, पृ. ३०–३१ में, ऐसे ग्रन्थोंकी सूची प्रकाशित की। पश्चात् मुनि चतुरविजयजीने "जैनेतर साहित्य अने जैनो" शीर्षक गुजराती लेख "जैनधर्म प्रकाश" में प्रकाशित किया। इन पूर्व प्रकाशित लेखोंका उपयोग करने पर भी उनकी अनेकों अशुद्धियोंका संशोधन किया गया है, और प्रधानता अपनी स्वतन्त्र शोधको ही दी है। ऐसी टीकाओंकी सूची स्वर्गीय मुनि हिमांशुविजयजी एवं मुनि कान्तिसागरजी ने भी की है, ऐसा जानने में आया है। पर उनकी सूचियाँ प्रयत्न करने पर भी मेरे अवलोकनमें नहीं आई। इस निबंधमें उल्लिखित कई टीकाये ऐसी हैं जो अद्यापि मेरे अवलोकनमें नहीं आई। सम्भव है कि उनके उल्लेखकर्त्ताओंने गल्ती की हो; अतः ऐसे ग्रन्थोंके विषयमें भ्रान्तिमूलक लिखा गया हो तो मैं क्षन्तव्य हूं। जहां तक हो सका भूल-भ्रान्तियां न हों, ऐसा ही प्रयत्न किया गया है और मुनि पुण्यविजयजी एवं पं० लालचन्द्र भगवानदासको अवलोकनार्थ भेजकर उनके परामर्शसे भी लाभ उठाया गया है।

इस लेखको विशेष उपयोगी बनानेके लिये पूरा प्रयत्न किया गया है। मूल ग्रन्थकारके नामके साथ उनके समयका भी यथाज्ञात निर्देश किया है एवं टीकाकारके समयका भी निर्देश किया है। कोई ग्रन्थ-प्रकाशक इन्हें प्रकट करना चाहे तो प्रतियां कहाँ कहाँ उपलब्ध हैं? यह जानना आवश्यक होता है। अत एव प्रतियोंके मुख्य २ प्राप्तिस्थानका भी सर्वत्र उल्लेख कर दिया गया है, ता कि लेखकी प्रामाणिकता-वृद्धिके साथ साथ विशेष जाननेकी इच्छावाले प्रतिके प्राप्तिस्थानका पता पा लेने पर, प्रति मंगा कर, या देख कर अपनी जिज्ञासा तृप्त कर सकें, इसका सुयोग दिया गया है। आशा है इस लेखसे इन ग्रन्थोंके प्रकाशन, अध्ययन-अध्यापनकी स्फूर्तिदायक प्रेरणा मिलेगी।

एक आवश्यक निवेदन –

कई टीकाओंका केवल उल्लेखमात्र मिला है प्रतियाँ नहीं मिलीं; अतः यदि उनकी प्रतियां किसी सज्जनको मिलें या इस लेखमें कोई भूल-भ्रान्ति नजर आवे तो कृपया मुझे सूचित करनेका अनुरोध है।

इस निबंधमें उल्लिखित टीकाओंके अतिरिक्त और भी टीकायें यत्र तत्र उपलब्ध हैं, पर उनके कर्त्ताका निर्णय न हो सकनेके कारण उनका उल्लेख इस लेखमें नहीं किया गया है। पीछे दी हुई सूचीकी संक्षिप्त तालिका इस प्रकार है—

१ व्याकरणके	८ ग्रन्थोंपर	३५ टीकायें		९ नाटक के	२ ग्रन्थोंपर	५ टीकायें	
२ कोषके	२ ,,	२ ,,		१० भाषाकाव्यके	४ ,,	१२ ,,	
३ छंदके	२ ,,	८ ,,		११ न्यायके	११ ,,	१८ ,,	
४ अलंकारके	४ ,,	१४ ,,		१२ वैद्यक०	११ ,,	१४ ,,	
५ महाकाव्यके	९ ,,	४२ ,,		१३ ज्योतिष०	१४ ,,	२१ ,,	
६ खण्डकाव्य	१० ,,	२० ,,		१४ शकुन०	१ ,,	१ ,,	
७ गद्यकाव्य	२ ,,	४ ,,		१५ गणित०	१ ,,	१ ,,	
८ स्तोत्र	५ ,,	८ ,,		१६ योग०	१ ,,	१ ,,	
				१७ नीति०	२ ,,	३ ,,	
	४०	१३३			४७	७६	

अर्थात् १७ विषयोंके ८७ ग्रन्थोंपर २०९ टीकाओंका इस लेखमें परिचय है।

संकेताक्षरोंका स्पष्टीकरण—

र. रचना, मू. र. मूलरचयिता	शि. शिष्य
क. कर्त्ता	भा. भाग
ई. ईसवी	नं. नम्बर, बं. नं. बंडल नम्बर
सं. संवत्	वि. विक्रम
रा. ए. रायल एशियाटिक सो०	ख. खरतरगच्छीय
भा. रि. इ. भांडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट	
श. शताब्दी	ला. भ. लालचंद्र भगवानदास गांधी
C.C. कॅटेलोगज् कॅटेलोगोरम्	दि. दिगम्बर
श्वे. श्वेताम्बर	उ. उल्लेख

व्याकरण

१ पाणिनिसूत्र, मूलरचयिता—पाणिनि (समय ई. पू. ६००—७००; कई विद्वानोंके मतसे ई. पू. ३५०)

(१) शब्दावतारन्यास, कर्त्ता—पूज्यपाद (दि०) समय अज्ञात; श्लोक परिमाण ३००००; प्रति अनुपलब्ध। श्रीयुत नाथूराम प्रेमी संकलित "दिगम्बर

जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ" में इसका उल्लेख किया गया है। पत्र द्वारा प्रेमीजीसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि अब तक यह उपलब्ध नहीं है।

(२) काशिका विवरण पञ्जिका, कर्त्ता – जैनेन्द्रबुद्धि। इन्हें कई विद्वान् बौद्ध मानते हैं, कई जैन। जैन होनेकी संभावनाके विषयमें देखें जैनसिद्धान्त-भास्कर (वर्ष ८ पृ. ५८)।

२ कातंत्र† मूल रचयिता शर्ववर्मा, समय ई. सन ७८, शालिवाहन समय।

(१) दौर्गसिंहि वृत्ति, कर्त्ता – प्रद्युम्नसूरि, समय सं० १३६९। प्रति बीकानेर ज्ञानभंडार, पत्र ६५, श्लोक ३०००; सं० १३६९।

(२) दुर्गपदप्रबोध वृत्ति, कर्त्ता – खर० प्रबोधमूर्ति (जिनप्रबोधसूरि) ई. स. १३२८। प्रतियाँ – जेसलमेर भंडार (सूची पृष्ठ ५७), पाटण भंडार।

(३) बालावबोध वृत्ति, कर्त्ता–अंचलगच्छीय मेरुतुंगसूरि, र. सं. १४४४। प्रतियां – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी; बम्बई रायल एशियाटिक सोसायटी।

(४) कातंत्र विस्तार, कर्त्ता – वर्धमान (कर्णदेवोपाध्याय शि०) उल्लेख; प्रति – यति ऋद्धिकरणजी, चूरु।

(५) कातंत्ररूपमाला, कर्त्ता – भावसेन त्रैविद्य (दि०)। प्रति – जैन सिद्धान्त भवन, आरा; छप भी चुकी है।

(६) कातंत्ररूपमाला लघुवृत्ति, कर्त्ता – सकलकीर्त्ति (दि०) उल्लेख – "दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ" पृ. ३०।

(७) कातंत्रदीपक वृत्ति, कर्त्ता – मुनीश्वरसूरि शि० हर्षचंद्र (मंगलाचरण जैन है, कर्त्ता यही है या अन्य अज्ञात है)। प्रति – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी।

(८) कातंत्र भूषण, धर्मघोषकृत श्लोक २४००० } उ.पुरातत्त्वमें प्र.
(९) राजशेखरसूरिकृत वृत्तित्रय निबंध, महस्र ७ } प्राचीन सूचीमें।

३ सारस्वतप्रक्रिया, मू० र० अनुभूतिस्वरूपाचार्य, (समय अनिश्चित)

(१) दीपिका, कर्त्ता – बड़गच्छीय विनयसुंदर शि० मेघरत्न, र. सं. १५३६ वि.। प्रतियां – हमारे संग्रहमें अपूर्ण प्रति, महिमाभक्ति भंडारमें पत्र १०९ की पूर्ण प्रति, बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी। विशेष परिचय देखें – मुनि हिमांशुविजय लेखसंग्रह पृ. ३९८।

(२) टीका, (श्लोकबद्ध), कर्त्ता – तपा भानुचन्द्र शि० देवचन्द्र। प्रति – हमारे संग्रहमें, अपूर्ण।

† व्याकरणविषयक विभ्रमकारी कई प्रयोगोंको, कातंत्रसूत्रद्वारा सिद्ध करके विभ्रमनिवारण किया है; ऐसी कातंत्रविभ्रमकी दो टीकाएं – १ जिनप्रभसूरि, २ चारित्रसिंहकी – उपलब्ध हैं।

(३) क्रियाचन्द्रिका वृत्ति, कर्त्ता – खरतर गुणरत्न, र. सं. १६४१। प्रति – भुवनभक्तिभंडार बीकानेरमें, ४४ पत्रकी प्रति है।

(४) वृत्ति, कर्त्ता – खरतर सहजकीर्ति, र. सं. १६८१, (लक्ष्मीकीर्ति सहाय) प्रति – श्रीपूज्यजी संग्रह, पत्र ५२; चतुर्भुजजी संग्रह।

(५) चन्द्रकीर्ति टीका, कर्त्ता – चन्द्रकीर्तिसूरि, समय १७ वीं शताब्दी (प्रथमादर्श हर्षकीर्ति लि०) प्रतियां, हमारे संग्रहमें, एवं सर्वत्र प्रसिद्ध है। वेंकटेश्वरप्रेससे छप भी चुकी है।

(६) प्रक्रिया वृत्ति, कर्त्ता – खरतर विशालकीर्ति, समय १७ वीं श०। प्रतियां – दो प्रति हमारे संग्रहमें हैं।

(७) सारस्वतमंडन, कर्त्ता – श्रीश्रीमालज्ञातीय मंत्री मंडन, समय १५ वीं शताब्दी। प्रतियां बीकानेर राजलाइब्रेरी, बालोतरा – भावहर्षीय भंडार, पाटणभंडार।

(८) शब्दप्रक्रियासाधनी, सरला भाषा टीका, कर्त्ता – त्रिस्तुतिक राजेन्द्रसूरि, समय २० वीं शताब्दी। प्रतियां – राजेन्द्रसूरि भंडार, आहोर।

(९) वृत्ति, कर्त्ता – तपागच्छीय उपा० भानुचन्द्र, समय १७ वीं शताब्दी। प्रतियां – संघभंडार, पाटण; कान्तिविजयभंडार, छाणी।

(१०) रूपरत्नमाला, टीका कर्ता – तपा भानुमेरु शि० नयसुन्दर; र. सं. १६७६। प्रति – कृपाचन्द्रसूरि ज्ञानभंडार, पत्र २१२, परिमाण ग्रं० १४०००।

(११) भाषा टीका, कर्त्ता – उ० आनन्दनिधान, समय १८ वीं शताब्दी। प्रति – बहादुरमल बाँठिया संग्रह, भीनासर।

(१२) टीका, कर्त्ता – सत्यप्रबोध, समय अज्ञात; प्रति – पाटण (लींबडी सेरी) भंडार।

(१३) पंचसंधि टीका, कर्त्ता – सोमशील, प्रति – पाटण भंडार (लहेरु ११)

(१४) वृत्ति, कर्त्ता – दयारत्न
(१५) ,, ,, यतीश
(१६) ,, ,, हर्षकीर्ति

} उल्लेख मुनि चतुरविजयलिखित "जैनेतर साहित्य अने जैनो"। इनमेंसे नं. १५ तो नं. ४ ही होना संभव है।

(१७) चन्द्रिका, कर्त्ता – मेघविजय। उ० पंजाब भंडार सूची, भा. १ सं. १९१३।

(१८) पंचसंधि बालावबोध – कर्त्ता, उपाध्याय राजसी, समय १८ वीं श० का प्रारंभ। प्रति – खरतर आचार्यशाखा भंडार, पत्र १८।

(१९) धनसागरी टीका – (उल्लेख – मो. द. देशाई)।

४ **सिद्धान्तचन्द्रिका,** मूल रचयिता – रामचन्द्राश्रम, समय अनिश्चित ।

(१) वृत्ति, कर्त्ता – खरतरज्ञानतिलक (विजयवर्धन शि०) समय १८ वीं शताब्दी । प्रतियां – महिमाभक्ति भंडार, अबीरजी भंडार, बीकानेर ।

(२) वृत्ति, कर्त्ता – खरतर कीर्त्तिसूरिशाखाके सदानंद, र. सं. १७९८ । प्रति हमारे संग्रहमें है । यह वृत्ति छप भी चुकी है ।

(३) सुबोधिनी, कर्त्ता – खरतर रूपचन्द्र (रामविजय) समय १८ वीं का शेषभाग । प्रति – दानसागर भंडार (पूर्वार्ध खंड) पत्र ६८, श्लो० ३४९४ ।

५ **भूधातु**

(१) वृत्ति, कर्त्ता – खरतर क्षमाकल्याण, र. सं. १८२८ राजनगर, प्रति – महिमाभक्ति भंडार ।

६ **अनिट् कारिका**

(१) टीका, क० – नागपुरीय तपागच्छीय हर्षकीर्त्तिसूरि । समय १७ वीं शताब्दी । प्रति – दानसागर भंडार, बीकानेर ।

(२) अवचूरि, कर्त्ता – ख० क्षमामाणिक्य, जलंधरमें । समय १८ वीं श० अनुमान । प्रति – श्रीपूज्यजीसंग्रह, पत्र ३, अक्षयचंद्र पठनार्थ ।

कोष

१ **अमरकोष,** कर्त्ता – अमरसिंह, समय ई. चतुर्थ शतक ।

(१) टीका, कर्त्ता – दि० पं० आशाधर, समय वि. सं. १२५० से १३०० । उल्लेख – कर्त्ताने स्वयं अपने अन्य ग्रन्थप्रशस्तिमें किया है पर प्रति अभी तक नहीं मिली है ।

२ **शब्दप्रभेद,** मू० महेश्वर, समय ई. ११११ ।

(१) वृत्ति, कर्त्ता – खरतर ज्ञानविमल, सं. १६५४ । प्रति – जिनकृपाचंद्रसूरि भंडार, बीकानेर ।

छन्द

१ **श्रुतबोध,** मूलरचयिता कालिदास, समय ई. पू. प्रथम शतक ।

(१) वृत्ति, कर्त्ता – हर्षकीर्तिसूरि, समय १७ वीं शताब्दी । प्रति – बीकानेर राज लाइब्रेरी । विशेष जाननेके लिये देखें – "मुनि हिमांशुविजयजीना लेखो" पृ. ३४१ ।

(२) वृत्ति, कर्त्ता – नयविमल; उल्लेख उपरोक्त "हिमांशुविजयजीना लेखो" पृष्ठ ३४३ तथा हीरालाल कापडिया सम्पादित शोभनचतुर्विंशति भूमिका, पृष्ठ ३१ ।

(३) वृत्ति, कर्त्ता – मेघचन्द्र वाचक शिष्य। उल्लेख पी० रिपोर्ट ३, पृ. २२५, मुनि चतुरविजयजीने इनके अतिरिक्त 'हंसराज' रचित टीकाका उल्लेख किया है पर वह जैनेतर प्रतीत होता है।

२ वृत्तरत्नाकर, मूलरचयिता केदारभट्ट, समय १००० ई. प.* ।

(१) वृत्ति, कर्त्ता – वादिदेवसूरि परम्परागत जयमंगलसूरि शिष्य सोमचन्द्र, र. सं. १३२९। प्रति – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी; कृपाचन्द्रसूरि भंडार।

(२) टिप्पनक, कर्त्ता – खरतर जिनभद्रसूरि शिष्य क्षेमहंस, समय १५ वीं शताब्दी। प्रति – हेमचन्द्रसूरि पुस्तकालय, पत्र ९।

(३) वृत्ति, कर्त्ता – खरतर समयसुन्दर, र. सं. १६४९ दिवाली, जालोर। प्रति – हमारे संग्रहमें, नं. १५१७। कर्त्ताके विषयमें विशेष जाननेके लिये देखें – मत्प्रणीत 'युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि', पृ. १६७।

(४) वृत्ति, कर्त्ता – हर्षकीर्तिसूरि शिष्य अमरकीर्ति शिष्य यशकीर्ति; समय १७ वीं शताब्दीका शेषार्ध। प्रति – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी, पत्र १०, (कृपा० भांडार सूचीमें कर्त्ता हर्षकीर्ति लिखा है)।

(५) बालावबोध, खरतर मेरुसुन्दर, समय १६ वींका पूर्वार्ध। प्रति – प्रवर्तक कान्तिविजयसंग्रह, पत्र १९ (ग्रं. ११७६)।

अलंकार

१ काव्यालंकार, मू. र. रुद्रट, समय ईसवी ८५० के लगभग।

(१) टिप्पण, कर्त्ता – थारापद्रीयगच्छके शालिभद्रसूरि शिष्य नमिसाधु, र. सं. ११२५। प्रति बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी। यह छप भी चुका है।

२ काव्यप्रकाश, मू. र. मम्मट (राणा), समय ई. १०५० से ११००।

(१) टीका, कर्त्ता – राजगच्छीय सागरचन्द्रसूरि शिष्य माणिक्यचन्द्रसूरि, र. सं. १२४६। प्रति – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी, आनन्दाश्रम ग्रन्थमाला पूनासे, और मैसूर रा. सं. ग्रं. में छप भी चुकी है।

(२) टीका, कर्त्ता – दिगम्बर पंडित आशाधर, समय वि. सं. १२५० से १३००। उल्लेख – स्वयं आशाधरने अपने अन्य ग्रन्थोंकी प्रशस्तिमें किया है, पर प्रति अनुपलब्ध है।

(३) सारदीपिका, खरतर जिनमाणिक्यसूरि शिष्य विनयसमुद्र शिष्य गुणरत्न शिष्य रत्नविशालके लिये रचित। र. सं. १६१० (?) ज्येष्ठ कृष्ण ७,

* P. K. Gode लेख Annals XVII, पृ. ३९७-९९.

ग्रन्थ १०५०० । प्रतियाँ – कृपाचन्द्रसूरि ज्ञानभंडार (पत्र १६५), दानसागर भंडार, बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी, भां. रि. इ. पूना ।

(४) टीका, कर्त्ता – सुप्रसिद्ध तपागच्छीय उपाध्याय यशोविजय, समय १८ वीं शताब्दी । उल्लेख, स्वयं उपाध्यायजीने अपने अन्य ग्रन्थोंमें किया है, पर प्रति उपलब्ध नहीं हुई ।

(५) टीका, तपा० हर्षकुल रचित, समय १६ वीं शताब्दी । प्रति – पाटण भंडार (वं. नं. ६८) ।

(६) टीका, कर्त्ता – तपा० उपाध्याय भानुचन्द्र, समय १७ वीं शताब्दी । उल्लेख – भानुचन्द्रचरित ।

(७) टीकाखंडन, कर्त्ता – सिद्धिचन्द्र (भानुचन्द्र शि०) समय १७ वीं शताब्दी । प्रति – विमल भंडार, अहमदाबाद, बीजापुर भंडार ।

३ **सरस्वतीकंठाभरण**, मूलरचयिता राजा भोज, समय ई. १०१८ से ५६ ।

(१) पदप्रकाशवृत्ति, कर्त्ता – पार्श्वचन्द्रपुत्र आजड (जैनश्रावक), प्रति – पाटण भंडार (सूची पृष्ठ ३७) ।

४ **विदग्धमुखमंडन**, मू. र. बौद्ध धर्मदास, समय अनिश्चित ।

(१) वृत्ति, कर्त्ता – खरतर जिनप्रभसूरि, समय १४ वीं शताब्दी । प्रति – श्रीपूज्यजी संग्रह, बीकानेर ।

(२) काव्यालंकृतिटीका, कर्त्ता – खरतर जिनसिंहसूरि शिष्य लब्धिचन्द्र शिष्य शिवचन्द्र । समय सं. १६६९, अलवर । प्रति – श्रीपूज्यजी संग्रह, नं. ११९०; यति ऋद्धिकरणजी संग्रह, चूरू ।

(३) टीका, कर्त्ता – विनयसुन्दर शिष्य विनयरत्न, समय १७ वीं श०(अनुमानिक) । प्रति – कुशलचन्द्रजी पुस्तकालय पत्र ४२ । हमारे संग्रहमें अपूर्ण प्रति है, पत्र २२ से ३९ ।

(४) टीका, कर्त्ता – खरतर पिप्पलक शाखा जिनहर्षसूरि सन्तानीय सुमतिकलश शि० विनयसागर । रचना समय सं. १६९९, माघ सुदि ३, रवि. तेजपुर । प्रति – जयचन्दजीका भंडार, बीकानेर ।

(५) टीका, कर्त्ता – कुकुदाचार्य सन्ताने (?) प्रति – स्टेट लाइब्रेरी, पत्र ३१ ।

काव्य

१ **रघुवंश**, कर्त्ता – कालिदास, समय ई. पूर्व प्रथम शतक ।

(१) शिशुहितैषिणी वृत्ति, कर्त्ता – खर० जिनप्रभसूरिसन्ताने कल्याणराज शिष्य चारित्रवर्धन, समय १६ वीं श० । श्रीमाल सालिगपुत्र अरड़कमलकी अभ्यर्थनासे टीका बनाई ।

प्रति – जेसलमेर भंडार, हमारे संग्रहमें (अपूर्ण), पाटण भंडार, स्टेट लाइब्रेरी ।

(२) वृत्ति, कर्त्ता – तपा रामविजय शिष्य श्रीविजय, समय सं. १६७२ से ९६ के मध्य । प्रति – पूर्णचन्द्रजी नाहर संग्रह; पाटण भंडार ।

(३) विशेषार्थबोधिका वृत्ति, कर्त्ता – खरतर उपाध्याय जयसोम शिष्य गुणविनय । रचना सं. १६४६, विक्रमनगर । प्रति – दानसागर भंडार, महिमाभक्ति भंडार, बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी ।

(४) अर्थालापनिका वृत्ति, कर्त्ता – खरतर महोपाध्याय समयसुन्दर, रचना सं. १६९२, माधवमास, खंभात । प्रति – दानसागर भंडार, अबीरजी भंडार, श्रीपूज्यजी संग्रह ।

(५) वृत्ति, कर्त्ता – तपा शान्तिचन्द्र शिष्य रत्नचन्द्र, समय १६७४ के लगभग । प्रति – डेक्कन कालेज, पूना ।

(६) सुगमप्रबोधिका, कर्त्ता – खर० विनयमेरुशिष्य सुमतिविजय । ग्रं. १३००० । रचना समय – १६९९ (?) कार्तिक सुदी ११, विक्रमपुर । प्रति – जयचन्द्रजी भंडार, बद्रीदाससंग्रह, हमारे संग्रहमें अपूर्ण प्रति ।

(७) सुबोधिनी लघु टीका, कर्त्ता – वादी गुणरत्नगणि, रचना सं. १६६७, जोधपुर । प्रति – जैसलमेर भंडार ।

(८) वृत्ति, मुनिप्रभशिष्य धर्ममेरु (ला. भ. गान्धीने साथमें नाम महीमेरु भी लिखा है) । प्रति – पाटण भंडार (मुनिप्रभ और धर्ममेरुकी अलग अलग २ वृत्ति लिखी है) डेक्कन कालेज पूना, हमारा संग्रह ।

(९) वृत्ति, क्षेमहंस । उल्लेख – ला. भ. गान्धी का "कालिदासनां संस्मरणो" लेख ।

(१०) वृत्ति, कर्त्ता – उदयाकर । प्रति – पाटणभंडार (वखतजी सेरी बं. नं. ७१)

(११) वृत्ति, भाग्यहस, और उनके शिष्य कृत । उल्लेख – C.C. III. पृ. १ – ४

(१२) वृत्ति, समुद्रसूरि । उल्लेख C.C. I. पृ. ६९८।८४७

(४) टीका, कर्त्ता – शान्तिचंद्र शिष्य रत्नचन्द्र, समय १६६८ के लगभग। प्रति :– भां. रि. इं. पूना सं. १६६८ लिखित प्रति, नं. ३६९। १८८४

७ शिशुपालवध, मूल कर्त्ता – कवि माघ, समय ईसवी ६६० से ६७५।

(१) टीका, कर्त्ता – खरतर चारित्रवर्धन, समय – सं. १५१० के लगभग (चेचट गोत्रीय भैरवपुत्र सहसमलकी अभ्यर्थनासे रचित) प्रतियां – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी, भां. रि. इं. पूना, तंजोर लाइब्रेरी।

८ किरातार्जुनीय, मूल भारवि, समय ईसवी ६ ठी शताब्दीका उत्तरार्ध।

(१) टीका, बृहद्गच्छीय विनयसुन्दर, समय १६१३ फा. ५ शु.। प्रति – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी, भां. रि. इ. पूना।

(२) प्रदीपिका, धर्मविजय – समय १७ वीं शताब्दी (अनुमान)। प्रति – अहमदाबाद भाण्डार (उ० हिमांशुविजयजीना लेखो पृ० ४२७) भां. रि. इं. पूना।

९ राघवपाण्डवीय, मूल – कविराज, समय ई० १२ शतक। ओझाजी के मतानुसार ईसवी ८०० के लगभग।

(१) टीका, चारित्रवर्धन। उल्लेख भां. रि. इं. पूना।

(२) टीका, पद्मनन्दि – ,, C.C.I. Page-327

खण्डकाव्य

१ खण्डप्रशस्ति, मूल कर्त्ता – कवि हनुमान।

(१) टीका, कर्त्ता – खरतर० गुणविजय, रचना काल सं. १६४१। प्रतियाँ – श्रीपूज्यजी भंडार, जयचन्द्रजी भण्डार, स्टेट लाइब्रेरी, महिमाभक्ति भंडार, भां. रि. इं. पूना।

२ घटखर्पर, मूल क० – कवि घटखर्पर, समय ई० ५०० के लगभग।

(१) वृत्ति, कर्त्ता – पूर्णतल्ल गच्छीय वर्धमानसूरि शिष्य शान्तिसूरि। समय ११ – १२ वा शतक। प्रति – जैसलमेर भण्डार।

(२) टीका, कर्त्ता – बृहद्गच्छीय रत्नप्रभसूरि शिष्य लक्ष्मीनिवास। समय १५ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध। प्रतियां – महिमाभक्ति भंडार, बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी।

(३) टीका, कर्त्ता – पूर्णचन्द्र। उल्लेख – पंजाब भण्डार सूची, नं. ७४२।

३ वृन्दावन

(१) वृत्ति, क० – उपरोक्त शान्तिसूरि, प्रति जैसलमेर भंडार।

(२) ,, – (मुग्धावबोध) क. लक्ष्मीनिवास – रचना समय १४९६(?) सरसा। प्रति – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी।

४ मेघाभ्युदय, मूल क०— कवि मानांक ।

(१) वृत्ति, क० – उपर्युक्त शान्तिसूरि, प्रति – जैसलमेर भंडार ।

(२) मुग्धावबोध, क०— लक्ष्मीनिवास, प्रति – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी ।

५ शिवभद्र, मूल क० – शिवभद्र ।

(१) वृत्ति, क० – उपर्युक्त शान्तिसूरि । प्रति – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी, जैसलमेर भंडार, महिमाभक्ति भंडार ।

६ राक्षसकाव्य, मूल क० – कालिदास ।

(१) वृत्ति, उपरोक्त शान्तिसूरि, या खरतर जिनमहोपाध्याय । प्रति – जैसलमेर भंडार (सूची, पृष्ठ ५४) ।

७ शतकत्रय, मूल कर्त्ता – महाकवि भर्तृहरि, समय ई. ६५० ।

(१) टीका, कर्त्ता – उपकेशगच्छीय सिद्धसूरि शिष्य धनसार; समय १६ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध । प्रतियां – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी, हमारे संग्रहमें २४९२–९३, श्रीपूज्यजी भंडार, भां. इं. पूना ।

(२) भाषाटीका, खरतर रूपचंद, समय १७८८, कार्तिक वदि १३, सोजत । मंत्री मनरूप आग्रहसे रचित । प्रति – श्रीपूज्यजी भंडार ।

(३) भाषाटीका, ख० लक्ष्मीवल्लभ, समय १८ वीं श० का पूर्वार्ध । उल्लेख – पंजाब भंडार सूची, नं. २४७७ ।

(४) स्वार्थसिद्धिमणिमालावृत्ति, ख० बे० जिनसमुद्रसूरिकृत । प्रति – जैसलमेर भंडार ।

(५) हिन्दी पद्यानुवाद, कर्त्ता – विनयलाभ, समय १७ वीं श० । प्रति हमारे संग्रहमें ।

(६) हिन्दी गद्यपद्यानुवाद, कर्त्ता – खरतर यति नैनसिंह, सं. १७८६ विजयदसमी । प्रति हमारे संग्रहमें ।

(७) बाला० – ख० अभयकुशलकृत, सं. १७५५ । प्रति – यति प्रेमसुंदर ।

८ अमरुशतक, मूल क० – अमरु कवि, समय ई. ६५०–७५० ।

(१) टीका, कर्त्ता – उपरोक्त ख० रूपचंद्र, सं. १७९१, आश्विन शुक्ला १५ । प्रतियां – दानसागर भंडार, वर्धमान भंडार ।

९ गाथासप्तशती, मूल क०— कवि हाल, समय ई. स. २०० से ४५० । टी० आजड, उ० चतुरविजयजी एवं हीरालालके लेखोंमें ।

१० विषमकाव्यवृत्ति, मूल क० – अज्ञात, (१) टी० जिनप्रभसूरि ।

गद्य काव्य

१ कादम्बरी, मूल क० – बाणभट्ट और पुलीन्द्र, समय ई. ६४० ।

(१) टीका, कर्त्ता – तपागच्छीय उ० भानुचंद्र और शिष्य सिद्धिचंद्र, समय १७ वीं शताब्दी । प्रतियां – प्रकाशित हो चुकी है । भां. रि. इं. पूना ।

(२) पद्यमें कथासार, कर्त्ता – श्रीमाली ज्ञातीय ख० श्रावक मंत्री मंडन, समय १६ वीं श० का पूर्वार्ध । प्रतियां – पाटणभंडार ।

(३) कथासार, लोकभाषा (गुजराती) में उपरोक्त सिद्धिचन्द्रने सार भी लिखा है, जो कि 'पुरातत्त्व' त्रै० में प्रकाशित हो चुका है ।

२ वासवदत्ता, मूल क० – सुबन्धु, समय ई. ६०० ।

(१) टीका, कादम्बरी टीकाकार सिद्धिचंद्र, समय १७ वीं शताब्दी । प्रति – भां. रि. इं. पूना; नं ७८१ ।

स्तोत्र

१ लघुस्तव (त्रिपुरा स्तोत्र), मूल क० – लघु पंडित ।

(१) टीका, कर्त्ता – रुद्रपल्लीय सोमतिलकसूरि, समय विक्रमीय १४ वीं श० का उत्तरार्ध । प्रतियां – हमारे संग्रहमें न. २९ । यह कृति प्रकाशित भी देखनेमें आई है ।

(२) बालावबोध, खरतर रूपचंद्र, समय सं. १७९८, माघ वदि २ सोमवार । प्रति – हमारे संग्रहमें प्रेस कॉपी, मूल राजलदेसरमें ।

२ गंगाष्टक

(१) टीका, पूर्वाचार्यविरचित । उ० शोभनचतुर्विंशति भूमिका, पृ. ३१ ।

३ गायत्री

(१) वृत्ति, शुभतिलकोपाध्याय, समय १७ वीं श० (अनुमान) । प्रति – अनेकार्थरत्नमंजूषामें प्रकाशित ।

(२) वृत्ति, यशचंद्रकृत । उल्लेख – "जैनेतर साहित्य अने लेखो" लेखमें ।

(३) हिन्दी, अनुवाद, क० – आत्मारामजी, समय २० वीं श०, प्रकाशित ।

४ महिम्न, मूल क० – पुष्पदंत, वि. सं. ११२० के पूर्व, (श्रीनाथूराम प्रेमीके अनुमानसे दि० महाकवि पुष्पदंत) वि. सं. ११ वीं शताब्दी ।

(१) टीका, हर्षकीर्त्तिसूरि, समय १७ वीं शताब्दी । प्रति – भां. रि. इं. पूना ।

५ सूर्यशतक, मूल कर्त्ता – महाकवि मयूर, समय ई. ६२५ ।

(१) अवचूर्णि, कर्त्ता – मुनिसुंदरसूरि शि०, समय १५ वीं श० । प्रति – जयचंद्रजी भंडार, बीकानेर ।

चम्पू

१ **नलदमयन्तीकथा,** मूल क० – त्रिविक्रमभट्ट, समय ई. ९१५ ।

(१) वृत्ति, खरतरगच्छीय गुणविनय, रचना सं. १६४६ । प्रति – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी; बं. रा. ए. सोसायटी, एवं पाटण-भंडार ।

नाटक

१ **अनर्घराघव,** मूल क० – मुरारि, समय ई. ८५० के पूर्व ।

(१) रहस्यादर्शवृत्ति, मलधारि देवप्रभसूरि, (श्लोक ७५००) समय १३ वीं का उत्तरार्ध । प्रति – पाटण भंडार एवं बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी ।

(२) टिप्पन, उपर्युक्त देवप्रभसूरि (?) शिष्य नरचंद्रसूरि (श्लो० २३५०) समय १३ वीं श० का उत्तरार्ध । प्रति – जैसलमेर भंडार, भां. रि. इं. पूना ।

(३) टीका, तपागच्छीय जिनहर्ष, समय १५ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध । प्रति – पाटण-भंडार, भां. रि. इं. पूना ।

२ **कर्पूरमंजरी,** मूल क० – राजशेखर, समय ई. ९०० ।

(१) टीका, ख० पिप्पलक शाखाके धर्मचंद्र, रचना समय १४९८ से १५०५ । प्रति – बगाल रा. ए. सोसायटी (नं. १२६१), भां. रि. इं. पूना नं. ४१०. ।

(२) अवचूरि, नागपुरीय तपागच्छीय हर्षकीर्त्तिसूरि, समय १७ वां शतक । प्रति – बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी, पत्र १४ ।

भाषाकाव्य

१ **सन्देशरास,** मूल क० – अब्दुल रहमान, समय १५ वीं श० (अनु०) ।

(१) टीका, क० – रुद्रपल्लीय लक्ष्मीचन्द, रचना सं. १४६५ । प्रति–बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी, हरिसागरसूरि भंडार, जोधपुर राज लाइब्रेरी । विशेष परिचयके लिये देखें मेरा लेख – राजस्थानी वर्ष ३, अंक २, पृष्ठ ५६ में प्रकाशित ।

(२) टीका, लब्धिसुन्दररचित, अपूर्ण प्रति हमारे संग्रहमें है ।

यह ग्रन्थ वृत्तिद्वयसहित 'भारतीयविद्या ग्रन्थावलि' में शीघ्र ही प्रगट होगा ।

२ **पृथ्वीराजवेलि,** मूल क० – पृथ्वीराज, र. स. १६३७ ।

(१) वृत्ति, क० – पद्मसुन्दर शिष्य सारंग; संस्कृत रचना समय १६७८,

पालणपुर । प्रति – बृहद् ज्ञानभंडार, बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी । प्रकाशित, हिन्दुस्तानी एकेडेमीसे 'वेलि कृष्णरुक्मणीरी'के परिशिष्टमें ।

(२) टीका, कर्त्ता ख० श्रीसार, संस्कृत, र. सं. १७०३ विजयादशमी । प्रति – श्रीपूज्यजी संग्रह, गोविन्द पुस्तकालय ।

(३) बालावबोध, क० – खरतर जिनमाणिक्यसूरिसन्तानीय कुशलधीर, र. सं. १६४६ विजयदशमी । प्रति – पूर्णचन्द्र नाहर संग्रह, गुटका नं. ९८ ।

(४) बालावबोध, क० – खरतर समयसुन्दर शिष्य, हर्षनन्दन शिष्य जयकीर्ति, र. सं. १६८६ । मि० बीकानेर । प्रति – बृहद् ज्ञानभंडार ।

(५) टबा, कर्त्ता – ख० शिवनिधान, समय १७ वीं श० का शेषार्ध । प्रति – वर्धमान भण्डार, श्रीपूज्यजी भण्डार ।

(६) टबा, कर्त्ता – ख० कमलरत्नशिष्य दानधर्म, सं. १७२७ लि० प्रति – महिमाभक्ति भंडार, बं. नं. ३२ ।

३ विहारी सतसई, मूल क० – विहारी कवि, समय सं. १६६० से १७२० ।

(१) संस्कृत वृत्ति, क० – नागौरी लुंकागच्छीय वीरचन्दशिष्य, र. सं. १८६० माघ शुदी १ बीकानेर । प्रति – वर्धमानभण्डार, श्रीपूज्यजी संग्रह ।

(१) बालावबोध, क० – विजयगच्छीय मानसिंह, सं. १७३४ लि० प्रति । परिचय देखें, नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ९, पृ. १०२, एवं कर्त्ताके विषयमें मेरा लेख, देखें नागरी प्रचारिणी पत्रिका ।

४ रसिकप्रिया, मूल क० – केशवदास, समय सं. १६१२ से १६७४ ।

(१) टबा, कर्त्ता – ख० कुशलधीर, र. सं. १७२७, मि. सु. १५ जोधपुर (कुशललाभ कथनसे रचित) प्रति – वर्धमान भंडार, पत्र ९१; भां. रि. इं. पूना ।

(२) संस्कृत वृत्ति, कर्त्ता – ख० मतिरत्नशिष्य समरथ, र. सं. १७५१ (?) श्रा. सु. ५ जालिपुर । प्रति – श्रीपूज्यजी भण्डार, दानसागर भण्डार ।

बौद्ध न्याय

१ न्यायप्रवेश, मूल क० – बौद्धाचार्य दिङ्नाग, समय ई. ४२५ ।

(१) टीका, क० – हरिभद्रसूरि, समय वि. सं. ७५७ से ८२७ । प्रति – पाटण – भण्डार ।

(२) पंजिका, कर्त्ता – पार्श्वदेव (श्रीचन्द्रसूरि), समय विक्रमीय संवत् ११६९ । उपरोक्त ग्रन्थ टीका और पंजिकाके साथ 'गायकवाड़ ऑरिएन्टल सीरीज'से (नं. ३८) प्रकाशित हो चुका है । प्रति – पाटण भंडार ।

२ न्यायबिन्दु–धर्मोत्तरटिप्पण, क०–मूल धर्मोत्तर, समय ई. स. ६५० से ७२० ।

(१) टिप्पणकार, मल्लवादी, समय १० वीं शताब्दी (प्रभावकचरित्र पर्यालोचन पृष्ठ ५७) पं० राहुलमतानुसार समय ई. ८२५, पृ. ५७ । प्रति– जैसलमेर भंडार ।

३ न्यायालंकार, मूल क०–श्रीकण्ठ ।

(१) टिप्पणकार, ख० जिनेश्वरसूरि शिष्य अभयतिलक, समय सं. १३१२ के लगभग । प्रति–जैसलमेर भंडार ।

वैशेषिक

४ न्यायकन्दली, मूल क०–श्रीधर ।

(१) टिप्पण, क०–हर्षपुरीयगच्छीय मलधारी देवप्रभसूरि (?) शिष्य नरचन्द्रसूरि, समय १३ वीं शताब्दीका शेषार्ध । प्रति–पाटण भांडार ।

(२) पंजिका, क०–उपरोक्त नरचन्द्रसूरिकी परम्परामें राजशेखरसूरि, समय सं. १३८५ ।

५ न्यायसार, मूल क०–भासर्वज्ञ ।

(१) न्यायतात्पर्यदीपिका, क०–कृष्णर्षिगच्छीय जयसिंहसूरि, समय १५ वीं श० का पूर्वार्ध । प्रति–बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी, हमारे संग्रहमें, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल ।

(२) अवचूरि रूप पर्याय, क०–हर्षकीर्तिसूरि, लिखित सं. १६३२ । बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी ।

६ महाविद्याविडम्बन, मूल क०–भट्ट वादीन्द्र, (कुलीक योगाचार्य) ।

(१) टीका, क०–तपागच्छीय भुवनसुन्दरसूरि, समय १५ वीं श०का शेषार्ध । प्रति–बं. रॉ. ए. सोसायटी, प्रकाशित–गायकवाड ऑरिएन्टल सीरीज (नं. १२) ।

७ सप्तपदार्थी, मूल क०–शिवादित्य ।

(१) टीका, क०–खर० जिनवर्धनसूरि, र. समय १४१४ । प्रति–बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी, हमारे संग्रहमें ।

(२) टीका, कर्त्ता–ख० भावसागर, र. समय सं. १७३०, मि. सु. वेनातट । प्रति–कृपाचन्द्रसूरि ज्ञानभंडार ।

(३) टीका, क० – बालचन्द्र, प्रति – वीरविजय भंडार, राधनपुर (उल्लेख – जैन सप्तपदार्थी, पृ. १३)।

(४) टीका, क० – सिद्धिचन्द्र (विमलभंडार, अहमदावाद), उल्लेख – भानुचन्द्र चरित्र ।

८ **तर्कभाषा**, मूल क० – गार्ग्याचार्य (?) ।

(१) वार्तिक, क० – तपा० शुभविजय, र. स. १६६३ (पद्मसागर संशोधित), प्रति – अहमदाबाद पगथिया-भंडार ।

९ **तर्कभाषा**, मूल क० – केशवमिश्र ।

(१) टीका, सिद्धिचन्द्र । प्रति – विमल-भण्डार, अहमदावाद (उल्लेख – भानुचन्द्र चरित्र) ।

१० **तर्कसंग्रह**, मूल क० – अन्नंभट्ट ।

(१) फक्किका, कर्त्ता – ख० क्षमाकल्याण, रचना सं. १८२८ सूरत । प्रति – श्रीपूज्यजी संग्रह ।

(२) पदार्थबोधिनी टीका, कर्त्ता – ख० दीपचन्द्र शिष्य कर्मचन्द्र, र. सं. १८२४, नागपुर । प्रति – विजयधर्म ज्ञानमंदिर, आगरा ।

११ **लक्ष्मसंग्रह**, मूल क० – भट्ट नरोत्तम ।

(१) टीका, क० – रत्नशेखरसूरि । उ० पं० सुखलालजी लिखित "जैन न्यायनो विकाश क्रम" (प्र० जैन साहित्यसम्बन्धी लेखोनो संग्रह), प्रति – भां. इं. नं. ३९९, रि. १८७५–७६ ।

वैद्यक

योगरत्नमाला, मूल क० – नागार्जुन ।

(१) वृत्ति, क० – श्वेताम्बर गुणाकर, रचना समय १२९६ । प्रति, श्रीपूज्यजी संग्रह, बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी ।

२ **योगशत टीका**, मूल क० – वररुचि ।

(१) टीका, क० – पूर्णसेन । प्रति – हमारे संग्रहके गुटकेमें; पं. भगवानदासजी जयपुर, भां. रि. इन्स्टीट्यूट, पूना ।

३ **अष्टांगहृदय**, मूल कर्त्ता – वाग्भट (बौद्ध !) समय ई० ८०० के लगभग ।

(१) टीका, क० – दिगम्बर आशाधर, समय वि० १२५० से १३०० । उल्लेख – स्वयं आशाधरके अन्यान्य ग्रन्थोंमें ।

४ माधवनिदान, मूल क० – माधव, समय ई० ८०० के आसपास।

(१) टबा, क० – ख० ज्ञानमेरु, समय १७वीं श० के आसपास। प्रति – नसागर भंडार, पत्र १२०।

५ सन्निपातकलिका

(१) टबा, कर्त्ता – ख० हेमनिधान, र. सं. १७३३। प्रति – श्रीपूज्यजी ग्रह, नं. १४४१ पत्र ८।

(२) टबा, कर्त्ता – ख० रूपचन्द्र, र. स. १७३१ (९१?) मा. सु. १, लीपुर विजयसिंह राज्ये। प्रति – पूर्णचन्द्रजी नाहर संग्रह, नं. ४६०९ पत्र २५

६ पथ्यापथ्य

(१) टबा, क० – चैनरूप, र. सं. १८३५ मि. सु. १५ चतरु हेतवे। ति – दानसागर भण्डार।

७ वैद्यजीवन, मूल क० – लोलिम्बराज।

(१) पद्यानुवाद, कर्त्ता – गंगाराम यति, र० सं० १८७२। उल्लेख – The Search for Hindi Mss in Punjab, 1922-23.

(२) टबा, कर्त्ता – ख० सुमतिधीर। प्रति – यति ऋद्धिकरणजी संग्रह चूरु, सं. १८४१ लिखित।

(३) टबा, कर्त्ता – ख० चैनसुख, समय सं. १८१८। प्रति – यति विष्णु-दयालजी, फतेपुर।

८ कालज्ञान, मूल क० – शंभुनाथ।

(१) पद्यानुवाद चौपाई, क० – खरतर लक्ष्मीवल्लभ, र. सं. १७४१ नभ पूर्णिमा गु०। प्रति – हमारे संग्रहमें।

९ शार्ङ्गधर, मूल क० – शार्ङ्गधर, समय ई. १२००।

(१) पद्यानुवाद – (वैद्यविनोद), कर्त्ता – ख. रामचन्द्र, र. सं. १७२६ वै. सु. ५। प्रति – बीकानेर भण्डार।

१० तिब्ब सहावी, मूल क० – लुकमान हकीम।

(१) पद्यानुवाद, (वैद्य हुल्लास), कर्त्ता – मलूकचन्द्र, समय १८ वां शतक। प्रति – हमारे संग्रहमें।

१४ होरामकरन्द

(१) टीका, अंचल० सुमतिहर्षकृत । उल्लेख C.C. I. Page 128

शाकुन

१ वसन्तराज, मूल क० – वसन्तराज ।

(१) टीका, क० – तपागच्छीय भानुचन्द्र, समय १७ वीं शताब्दी । प्रति – जैसलमेर भाण्डार, प्रकाशित भी हो गया है ।

गणित

१ गणिततिलक, मूल क० – श्रीपति, स० ११ वीं शताब्दी ।

(१) टीका, क० – सिद्धतिलक सूरि, र. सं. १३२२ । प्रकाशित – गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज ।

योग

१ योगदर्शन, मूल क० – पातञ्जल ।

(१) वृत्ति, क०–तपागच्छीय सुप्रसिद्ध विद्वान यशोविजय, समय १८वां शतक ।

(२) हिन्दी में अनुवाद, पं. सुखलालजी । प्र. श्रीआत्मानन्द पु. प्र. मण्डल आगरा ।

नीति

१ बृहद्चाणक्य, मूल क० – चाणक्य ।

(१) टबा, क० – खरतर शान्तिहर्ष शिष्य लालचन्द्र, समय १८ वीं श० । प्रति – बालापुर भण्डार, पत्र ४६ ।

२ पंचतंत्र, मूल क० – विष्णुशर्मा, समय ईसवी २ रा शतक ।

(१) भाषापद्यानुवाद चौपाई, क० – पूर्णिमागच्छीय रत्नसुन्दर, र. सं. १६२२ आणंद । प्रति – मोहनलाल सेन्ट्रल लाईब्रेरी, महिमाभक्ति भण्डार ।

(२) भाषापद्यानुवाद – (पञ्चाख्यान) चौपाई, कर्त्ता – नागपुरीय तपा० वैद्यराज, र. स. १६४८ आ० सुदि ५ र० । प्रति – विजयधर्मसूरि ज्ञानमन्दिर ।

*

प्राकृत भाषा अने संघ विषेना महेश्वरसूरिनां 'नाणपंचमी' कथान्तर्गत मन्तव्यो

*

लेखक—श्रीयुत प्रो० अमृतलाल सवचंद गोपाणी, एम्. ए.

પ્રાકૃત ભાષા

જ્ઞાનપંચમીકથાના લેખક શ્રી મહેશ્વરસૂરિનો પ્રાકૃતભાષા તરફ પક્ષપાત હતો. "મંદ-બુદ્ધિવાળા મનુષ્યો સંસ્કૃત કાવ્યના અર્થને જાણી શકતા નથી તેથી સૌ કોઈથી સુખેથી સમજી શકાય તેવું આ પ્રાકૃત રચ્યું છે. ગૂઢાર્થવાળા દેશી—પ્રાકૃત શબ્દોથી રહિત, અત્યંત સુંદર વર્ણોથી રચેલું, આનંદદાયક પ્રાકૃત કાવ્ય કોના હૃદયને સુખ આપતું નથી? પરોપકારરત પુરુષે તો આ લોકને વિષે એ જ ભાષા બોલવી જોઈએ કે જેનાથી બાલા-દિક સર્વને વિશેષ બોધ થઈ શકે."[1]

ઉપર્યુક્ત શબ્દોમાં પ્રાકૃતભાષા તરફની પોતાની અભિરુચિ શ્રી મહેશ્વરસૂરિએ અસંદિગ્ધપણે અને ખૂબ જ આગ્રહપૂર્વક બતાવી છે. એટલે પ્રાકૃતભાષાની ઉપયોગિતા, તેનો સંસ્કૃત સાથેનો સંબંધ, તેની હૃદયંગમતા, સુખબોધકતા અને તેના તરફના સર્વ-વ્યાપી આદરભાવ વગેરે વિષે—ખુદ ભગવાન્ મહાવીરથી માંડી પ્રાચીન, અર્વાચીન જૈન—જૈનેતર વિદ્વાન વગેરેએ જે કાંઈ કહ્યું છે તેની ટુંક નોંધ, લેખકના પ્રાકૃત તરફના પ્રેમને પૂરો ન્યાય આપવા, લેવી અત્ર આવશ્યક છે.

અર્હતો ધર્મની પ્રરૂપણા અર્ધમાગધી (પ્રાકૃતનો જ શૌરસેન્યાદિની માફક એક ભેદ) ભાષામાં કરે છે.[2] ઔપપાતિકસૂત્ર જણાવે છે કે ભગવાન્ મહાવીર કૂણિકને અર્ધમાગધી ભાષામાં ધર્મોપદેશ આપતા હતા.[3] અર્ધમાગધી ભાષા જે બોલે—વાપરે તેને "ભાષાર્ય" (ભાષા+આર્ય) કહેવા એમ પ્રજ્ઞાપનાકાર શ્યામાચાર્ય કહે છે.[4] ભગવતીસૂત્રમાં કહ્યું છે કે દેવો પણ અર્ધમાગધી ભાષાને પ્રિય ગણે છે અને બોલાતી (કથ્ય) ભાષાઓમાં તે જ ભાષાને વિશિષ્ટ સ્થાન છે.[5]

---

१ सक्कयकव्वस्सत्थं जेण न याणंति मंदबुद्धिया ।
सव्वाण वि सुहबोहं तेणेमं पाइयं रइयं ॥
गूढत्थदेसिरहियं सुललियवण्णेहिं विरइयं रम्मं ।
पाइयकव्वं लोए कस्स न हिययं सुहावेइ ? ॥
परउवयारपरेणं सा भासा होइ एत्थ भणियव्वा ।
जायइ जीए विबोहो सव्वाण वि बालमाईण ॥

—नाणपंचमीकहा, १-२-५

૨ સમવાયાંગસૂત્ર, ૩૪. (આગમોદય સમિતિ પ્રકાશિત) પૃ. ૬૦.

૩ ઔપપાતિકસૂત્ર (આ. સ. પ્ર.) પૃ. ૭૭

૪ પ્રજ્ઞાપનાસૂત્ર (આ. સ. પ્ર.) પૃ ૫૬.

૫ ભગવતીસૂત્ર (આ. સ. પ્ર.) પૃ. ૨૩૧.

આગમો માટે અર્ધમાગધી ભાષા પસંદ કરવામાં ભગવાન્ મહાવીરની સફળ દીર્ઘદ્રષ્ટિનું આપણને અમોઘ દર્શન થાય છે. દૃષ્ટિવાદ નામના બારમા અંગ સિવાયના બધા કાલિક, ઉત્કાલિક અંગસૂત્રોને પ્રાકૃતમાં ભેોધવામાં અને રચવામાં સ્ત્રી – બાલ વગેરે જીવોને તે વાંચવામાં સરળતા રહે એ જ એક શુભાશય હતો.[6] દશવૈકાલિક ટીકામાં યાકિનીસૂનુ હરિભદ્રસૂરિ પણ એક શ્લોક ઉદ્ધૃત કરી એ જ તાત્પર્યનું કહે છે.[7] સર્વ સિદ્ધાન્ત ગ્રંથોને સંસ્કૃતમાં રૂપાંતરિત કરવાની ઇચ્છામાત્ર જ સેવનાર સિદ્ધસેન દિવાકરજીને શ્રી મહાનુભાવ સંઘે પારાંચિક નામનું પ્રાયશ્ચિત્ત ફરમાવ્યું હતું. આ ઘટના શ્રી સંઘના સર્વોપરિપણાની જેટલી દ્યોતક છે તેટલી જ સૌ કોઈએ અર્ધમાગધી ભાષા જ વાપરવી એ બાબતના આગ્રહની વ્યંજક છે – સમર્થક છે.[8] અહિ તો, ગણધરો, પૂર્વધરો કે વિદ્વાન મુનિવરોને સંસ્કૃત ભાષા આવડતી નો'તી એમ નો'તું. તેઓએ સંસ્કૃતમાં પણ પ્રકાંડ વિદ્વત્તાથી ભરપૂર ભાષ્યો, ટીકાઓ વગેરે તેમ જ અનેકાનેક સંગ્રહગ્રન્થો લખ્યાના દાખલાઓ પ્રકટ થયા છે અને કોણ જાણે કેટલાય હજુ અપ્રકટ પણ હશે!

તે જમાનો બ્રાહ્મણોની આપખુદ સત્તાનો હતો. તેમનો અહં જીવનના નાના મોટા દરેક પ્રસંગમાં જેમ સુસ્પષ્ટરીતે તરી આવતો હતો તેમ ભાષાપ્રયોગ સંબંધે પણ થયું. સંસ્કૃત ભાષા વિદ્વાનોની ભાષા છે. એનો અર્થ પ્રાકૃતભાષાભાષી વર્ગ વિદ્વાન નથી એમ ન કરવો જોઈએ. એનો સીધો અને એક જ અર્થ એ છે કે સંસ્કૃત ભાષા વાપરવામાં અને સમજવામાં સ્ત્રી – બાલ – મૂર્ખ અને મંદબુદ્ધિ માણસોને એક ખાસ વિશિષ્ટ પ્રયત્નની જરૂર છે જે વિશિષ્ટ પ્રયત્ન આર્થિક, સામાજિક કે સ્વાભાવિક કારણે તેઓ ન કરી શકે. તો પછી સમાજના આ મોટા ભાગને સંસ્કૃતિથી વિમુખ રાખવો? સાક્ષરતાનો ઇજારો સંસ્કૃતભાષાભાષી લોકોએ જ રાખવો? આ પ્રશ્નો સહેજે ઉપસ્થિત થાય. બ્રાહ્મણ વિદ્વાન વર્ગ પોતાના અહંને એકદમ ત્યજી દે એ પણ લગભગ અશક્ય જેવું હતું. તેથી ભગવાન્ મહાવીરે અર્ધમાગધીમાં અને ભગવાન્ ગૌતમ-બુદ્ધે પાલીમાં, બ્રાહ્મણોની આપખુદ સત્તા સામેના વિરોધ તરીકે અને પોતાના ધર્મોપદેશના મોજાઓ આબાલ – ગોપાલ સુધી પહોંચી શકે એ જ એક પરોપકારમય શુદ્ધ હેતુથી પોતપોતાના સિદ્ધાંતોની પ્રરૂપણા કરી. આ પ્રથા સ્થાપવામાં એ બન્ને ધર્મપ્રવર્તકોની નિરહંતા અને વ્યવહારદક્ષતા જણાઈ આવે છે. ટુંકામાં, સંસ્કૃતભાષાભાષી પુરુષ સાક્ષર અને પ્રાકૃતભાષાભાષી નિરક્ષર એ જૂના વખતથી ઘર ઘાલી ગયેલી માન્યતા કોઈપણ જાતના આધાર વિનાની છે એ, આ ઉપરથી, સ્પષ્ટ થઈ જવું જોઈએ.

સંસ્કૃત પહેલી અને પછી પ્રાકૃત અર્થાત્ સંસ્કૃતમાંથી પ્રાકૃત ઉદ્ભવી એ રૂઢ માન્યતા પણ એટલી જ ભ્રામક અને પૂર્વગ્રહથી ભરેલી છે. આ સંબંધમાં પ્રથમ જ મારે નિર્વિવાદપણે કહી દેવું જોઈએ કે સંસ્કૃત પ્રાકૃતની યોનિ કે પ્રાકૃત સંસ્કૃતની યોનિ એ વસ્તુ આપણે ઇતિહાસથી સિદ્ધ કરી શકીએ તેમ નથી. બન્ને પક્ષે વિચારણીય

---

૬ વર્ધમાનસૂરિકૃત આચાર દિનકરમાં ઉદ્ધૃત, ઉ. ૧૫.

૭ હરિભદ્રસૂરિકૃત દશવૈકાલિક ટીકા, પત્ર ૧૦૧.

૮ પ્રો. ગોપાણી અને આઠવલે અનુવાદિત સન્મતિતર્ક (પં. સુખલાલજી અને બેચરદાસજી સંપાદિત)ની અંગ્રેજી પ્રસ્તાવના, પૃ. ૨૭.

દલીલો છે.[9] આ બાબત તો આપણે મનુષ્યમાનસથી જ નિશ્ચિત કરી શકીશું. માનસ-શાસ્ત્રના અમુક મૂળભૂત સિદ્ધાંતો ત્રિકાલાબાધિત સનાતન સત્ય જેવા છે. એટલે વર્તમાન સમાજમાં પ્રવર્તતી સામાન્ય મનોવૃત્તિ તરફ જો આપણે દૃષ્ટિ કરીશું તો પણ આ બાબતનો ખરો ખ્યાલ આપણને મળશે. કોઈપણ સમાજ કોઈપણ એક કાળે એકભાષાભાષી હતો એ કલ્પવું તદ્દન અશક્ય છે. સંસ્કારવાળી ભાષા અને સંસ્કાર-વિહોણી ભાષા એ વસ્તુ તો સદા સર્વદા રહેવાની જ. જ્ઞાનના તરતમભાવે આ ભેદ શાશ્વત છે. સાક્ષરતા-નિરક્ષરતાના સર્જનજૂના ભેદ-પ્રભેદો સર્વકાળે વિદ્યમાન હતા અને રહેશે. એટલે આટલું તો હવે સ્પષ્ટ જ છે કે સસ્કૃત પ્રથમ નહિ, તેમ જ સંસ્કૃત-ભાષાભાષી જ વિદ્વાન એમ નહિ. સંસ્કૃત ભાષા અલ્પસંખ્યકની ભાષા અને પ્રાકૃત ભાષા બહુસંખ્યકની ભાષા-આ એક જ સત્ય નિરપેક્ષ સત્ય છે.

સંસ્કૃતને દુર્જનોના હૃદય જેવું દુઃખે ગ્રહણ કરી શકાય તેવું દાક્ષિણ્યચિહ્ન ઉદ્યોતન-સૂરિ પોતાની વિ. સં. ૮૩૫માં રચેલી મનાતી પ્રાકૃતભાષાબદ્ધ કુવલયમાળા કથામાં કહે છે.[10] વિ. સં. ૯૬૨માં થયેલ મનાતા પ્રકાંડ પંડિત સિદ્ધર્ષિ પોતાના ઉપમિતિભવ-પ્રપંચા નામના અતિ વિસ્તીર્ણ કથાગ્રંથમાં સસ્કૃત અને પ્રાકૃત એ બંને ભાષાઓ પ્રાધા-ન્યને યોગ્ય છે એમ કહે છે અને ઉમેરે છે કે સંસ્કૃત તો દુર્વિદગ્ધોના હૃદયમાં વાસ કરી રહ્યા છે જ્યારે પ્રાકૃત કે જે બાલકોને અને બાલાઓને પણ સદ્બોધ કરનારી અને કાનને ગમે તેવી હોવા છતાં પણ એ પંડિતપ્રવરોને ગમતી નથી.[11] મંદબુદ્ધિવાળા માણસો સંસ્કૃત કાવ્યનો અર્થ જાણી શકતા નથી એમ શ્રી મહેશ્વરસૂરિએ કહ્યું છે તે તો આપણે આગળ જોયું. દાક્ષિણ્યચિહ્ન ઉદ્યોતનસૂરિ, સિદ્ધર્ષિ, હરિભદ્રસૂરિ તથા મહેશ્વર-સૂરિએ કરેલી પ્રશસા ઉપર, જૈન વિદ્વાનોએ એ કરેલી છે એવો આક્ષેપ કદાચ કરવામાં આવે. એ માટે જૈનેતર વિદ્વાનોના અભિપ્રાયો તપાસવા જરૂરી છે.

"શભુરહસ્ય" જેવા પ્રસિદ્ધ જૈનેતર ગ્રંથમાં પ્રાકૃતને આર્યભાષા ગણાવી સંસ્કૃતની સમકક્ષ સ્થાપી છે;[12] કવિ દંડી પોતાના "કાવ્યાદર્શ" નામના અપૂર્વ ગ્રન્થમાં પ્રાકૃતના વખાણ કરે છે;[13] ત્રિવિક્રમદેવ પોતાના "પ્રાકૃતશબ્દાનુશાસન"માં પ્રાકૃતને અનલ્પ અર્થવાળું અને સરળતાથી ઉચ્ચારી શકાય તેવું ગણે છે-ગણાવે છે; વિક્રમીય દશમી શતાબ્દિમાં થયેલ મનાતા યાયાવરીય કવિ રાજશેખર પોતાના "કર્પૂરમઞ્જરીસટ્ટક"માં સંસ્કૃત અને પ્રાકૃતને, કઠોરતા અને સુકુમારતાની દૃષ્ટિએ, અનુક્રમે પુરુષ અને સ્ત્રી સાથે સરખાવે છે; પ્રાકૃત કાવ્યના લાલિત્યાદિ ગુણો માટે જયવલ્લભે "વજ્જાલગ્ગ" (પદ્યા-લય-પ્રાકૃત સુભાષિતસંગ્રહ)માં તો સ્થળે સ્થળે ઘણું કહ્યું છે; વાક્પતિરાજે પોતાના "ગઉડ વહો" કાવ્યમાં પ્રાકૃતમાંથી સંસ્કૃત નીકળ્યું છે એમ સ્પષ્ટ જણાવ્યું છે;[14] ભૂષણભટ્ટના પુત્ર કુતૂહલે પોતાની અપ્રકટ "લીલાવતી કથા"માં એક સ્ત્રી-પાત્રના

૯ પં. હરગોવિંદદાસ કૃત "પાઇઅ-સદ્-મહણ્ણવો", ઉપોદ્ઘાત, પૃ. ૧ થી ૧૨ તથા ૪૮ થી ૫૧.

૧૦ કુવલયમાલા કથા (જે. ભા. તા. પ્ર.), પત્ર ૫૭, ૫૮.

૧૧ ઉપમિતિભવપ્રપંચાકથાપીઠ, શ્લો૦ ૫૧-૫૩.

૧૨ શંભુરહસ્ય, ૫, ૧૭, ૧૮.

૧૩ કાવ્યાદર્શ, ૧, ૩૪.

૧૪ ગઉડવહો, ૬૫, ૬૨-૬૪.

મુખે પ્રાકૃતના ભારોભાર વખાણ કરાવ્યા છે.[૧૫] આ રીતે શંભુરહસ્યના રચનાર, દંડી, ત્રિવિક્રમદેવ, રાજશેખર, જયવલ્લભ, વાક્પતિરાજ અને કુતૂહલ જેવા વિશ્રુત જૈનેતર વિદ્વાનના મુખેથી પણ પ્રાકૃતભાષાના યશોગાન ગવાયા છે.

નાટ્યશાસ્ત્રમાં પણ પ્રાકૃતને વિશિષ્ટ સ્થાન છે. “દશરૂપક”નો રચનાર કવિ ધનંજય સ્ત્રીઓની ભાષા પ્રાયઃ પ્રાકૃત હોય છે એવું સૂત્ર સ્થિર કરે છે.[૧૬] એ ઉપરાંત અલંકાર-શાસ્ત્ર, વ્યાકરણ, પ્રાકૃત કોશો, છંદઃશાસ્ત્ર, કથાઓ, ઐતિહાસિક ગ્રન્થો, ચરિત્રો વગેરે વગેરે પ્રાકૃત સાહિત્યમાં પુષ્કળ લખાયું છે. રાજા મહારાજાઓએ પણ પ્રાકૃત વાઙ્મય ખેડ્યું છે. કવિવત્સલ સાતવાહનની “ગાથાસપ્તશતી”, પ્રવરસેનનો “સેતુબંધ” તથા મહારાજા યશોવર્માના આશ્રિત સામંત વાક્પતિરાજનો “ગઉડવહો” આના દૃષ્ટાંત છે. આ રીતે પ્રાકૃત વાઙ્મય, સંસ્કૃતની માફક, સર્વ દિશામાં ખેડાયેલું છે એ આપણે જોયું અને સાથે સાથે પ્રાકૃતની સુખબોધકતા, હૃદયંગમતા, મધુરતા, સ્વાદુતા વગેરે વિષેના જૈન–જૈનેતર વિદ્વાનોના અમૂલ્ય અભિપ્રાયો પણ તપાસ્યા. મહેશ્વરસૂરિએ પ્રાકૃતની સરળતા વિષે કાઢેલા ઉદ્ગારોનું રહસ્ય આપણને હવે બરાબર સમજાયું હોવું જોઈએ.

સંઘ

સંઘ તરફનો શ્રી મહેશ્વરસૂરિનો અનુકરણીય આદરભાવ ખાસ નોંધવા જેવો છે. જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્ર્યની ત્રિપુટીનો આધાર એકંદરે ગણો તો મહાનુભાવ સંઘ જ છે. સંઘની પૂજા કરો, સંઘનું બહુમાન કરો કે સંઘની આરાધના કરો એટલે પરંપરાએ જ્ઞાનની આરાધના જ થઈ. સંઘ પણ યોગ્ય માણસની, જ્ઞાનીની, મુનિની કદર ક્યાં નથી કરતો? તો પછી સંઘના પ્રોત્સાહન વિના એક ડગલું પણ આગળ વધી શકાય તેમ નથી. વાત્સલ્ય, અનુશાસ્તિ, ઉપબૃંહણા વડે સંઘ ભવ્ય જીવના ઉપકારમાં હંમેશાં તત્પર હોય છે. દેવો જેમના ચરણને પૂજે છે, ચૌદ રાજલોક જેની પાસે હસ્તામલકવત્ દેખાય છે એવા નિર્દોષ તીર્થંકર ભગવાન્ પણ સંઘને પ્રથમ વંદન કરે છે તો પછી બીજા માણસોએ તો તેમ કરવું જ જોઈએ એમાં નવાઈ શી?[૧૭] અર્ધમાગધીમાં લખા-

---

૧૫ આ કથાગ્રન્થનું સંપાદન પ્રો૦ ડૉ. એ. એન. ઉપાધ્યે, એમ. એ.; ડી. લિટ્. હાલ કરી રહ્યા છે.

૧૬ “દશરૂપક”, પરિચ્છેદ ૨, ૬૦.

૧૭
अह पंचहिं हारेहिं पंचहि रयणेहिं तहवि हु सेट्ठ ।
संघस्स कुणइ पूयं जहसत्तीए महासत्तो ॥
संघो महाणुभावो नाणाइतियस्स जेण आहारो ।
जइज्जंते नमि उ नाणाइं जइय होइ ॥
तह उवयारपरो वि हु संघो जीवस्स होइ भव्वस्स ।
वच्छल्लं अणुसट्ठिं उववूहणमाइ कुणमाणो ॥
अन्नं च तियसनमिओ केवललच्छीइ संजुओ विमलो ।
तित्थगरो वि हु भयवं आइए वंदए संघं ॥
तम्हा सइ सामत्थे संघं जयह सव्वकज्जेसु ।
पाविहिह तहं हु मोक्खो भोत्तूण विसयसोक्खाइ ॥

— नाणपंचमीकहा, १; २१-२७

ચેલા આગમગ્રન્થોને સંસ્કૃતમાં રૂપાંતરિત કરવાની ઇચ્છા કરનાર સિદ્ધસેન દિવાકરને શિક્ષા કરનાર પણ સંઘ જ હતો.[૧૮] અર્થાત્ ચતુર્વિધ સંઘની કલ્પના અને સ્થાપના ધર્મના સંરક્ષણ માટે જ છે; માટે ચતુર્વિધ સંઘ તરફનો ભક્તિભાવ દરેક ધર્મી પુરુષે બતાવવો જ જોઈએ.

વિક્રમીય છઠ્ઠી શતાબ્દિની પ્રથમ પચ્ચીસીમાં લખાએલ દેવવાચક ક્ષમાશ્રમણના નંદીસૂત્રમાં સંઘનું કાવ્યમય વર્ણન કરવામાં આવેલું છે જેનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે– "સંઘસ્વરૂપ મહામંદરગિરિને વિનયપૂર્વક વંદન કરૂં છું. (તે સંઘ કેવો છે?) સમ્યગ્દર્શન એ જ શ્રેષ્ઠ વજ છે જેનું; દઢ, રૂઢ, ગાઢ અને અવગાઢ જેનું પીઠ છે, ધર્મ એજ તેના ઉંચા શિલાતલોથી શોભનારા અને ચમકનારા ચિત્રવિચિત્ર કૂટ છે; સદ્ભાવયુક્ત શીલ એ તેનું સુગધયુક્ત નંદનવન છે; જીવદયારૂપી તેની સુંદર કંદરાઓ છે અને ઉત્સાહી મુનિવરરૂપી મૃગેન્દ્રોથી ભરાયલી છે; કુતર્કનો વિધ્વંસ કરનાર સેંકડો હેતુઓ તે મંદરગિરિના ધાતુઓ છે; સમ્યગ્દર્શન તેનું રત્ન છે; ઔષધીથી પરિપૂર્ણ ગુફાઓની ગરજ લબ્ધિઓ સારે છે. સંવરરૂપી શ્રેષ્ઠ જલનો વહેતો અખંડ પ્રવાહ એ તેનો હાર છે; શ્રાવકગણરૂપી શબ્દ કરનાર મોરોથી તેની ખીણો ગાજી રહી છે; વિનયવિનમ્ર યતિઓને તેના શિખર સાથે સરખાવ્યાં છે; અનેકવિધ સદ્ગુણો તેના કલ્પવૃક્ષોનાં વન છે અને જ્ઞાન એજ શ્રેષ્ઠ મણિઓથી સુશોભિત અને સ્પૃહણીય તેની વિમલ ચૂલિકા છે."[૧૯]

ઉપર્યુક્ત વર્ણન ઘણું જ અલંકારમય છે છતાં તદ્દન સાચું છે. સંઘ એ સર્વસ્વ છે. સંઘ પાછળની ભગવાન્ મહાવીરની મૂળભૂત કલ્પનાને આપણે બરાબર તપાસીએ તો સઘની કિમત અને મહેશ્વરસૂરિએ કરેલી સંઘપ્રશસ્તિની યથાર્થતા આપણને બરાબર સમજાય.

ભગવાન્ મહાવીરે વર્ણને ઉડાડી ત્યાગના સિદ્ધાંત ઉપર પોતાની સંસ્થાના બે મુખ્ય વર્ગ પાડ્યા. એક ઘરબાર વિનાનો, કુટુંબકબીલા રહિત, અપરિગ્રહી, પર્યટનશીલ, અનગાર વર્ગ અને બીજો પરિવારમાં રાચનાર, એક ઠેકાણે સ્થાન જમાવીને લગભગ સ્થિર જેવો અગારી વર્ગ. પ્રથમ વર્ગ સંપૂર્ણ ત્યાગી. એમાં પણ સ્ત્રી અને પુરુષ બન્ને આવે. અને તે શ્રમણી, શ્રમણ,–સાધ્વી, સાધુ કહેવાય. જ્યારે બીજો વર્ગ સંપૂર્ણ ત્યાગી નહિ પરંતુ ત્યાગ કરવાની ઉત્કટ અભિલાષાવાળો. એમાંય સ્ત્રી–પુરુષ બન્ને આવે. તેમના પારિભાષિક નામ છે શ્રાવિકા અને શ્રાવક. મૂળ કલ્પના તો બ્રાહ્મણોના ચતુર્વર્ણાશ્રમ ઉપરથી જ કરવામાં આવેલી પરંતુ તેને એવો અનોખો ઓપ આપવામાં આવ્યો કે જેથી જૈનધર્મના સંરક્ષણ માટે તેનો બરાબર ઉપયોગ થઈ શકે. સાધુસંઘની વ્યવસ્થા સાધુઓ કરે. એને માટે નિયમો, વિધિ, વિધાનો, બંધનો વગેરે તે ઘડી કાઢે. શ્રાવકસંઘના પણ નિયમો જુદા છે. છતાં આ બન્ને વચ્ચે અંતર છે અથવા ભિન્નતા છે એવું જરાય નથી. કારણ કે અમુક સાધારણ બાબતો એવી છે કે જેથી સાધુસંઘનો દાબ શ્રાવકસંઘ ઉપર અને શ્રાવકસંઘનો અંકુશ સાધુસંઘ ઉપર બરાબર રીતે જળવાઇ રહે. બન્ને વચ્ચે સુંદર સહકારને સંપૂર્ણ અવકાશ છે.

---

૧૮ જુઓ પાદ નોંધ, ૮.

૧૯ નંદીસૂત્ર (આ. સ. પ્ર.), પત્ર ૪.

આ વ્યવસ્થાના ઉત્પાદક ભગવાન્ મહાવીર છે એમ પણ નથી. ભગવતી જેવા અંગસૂત્રોમાં પાર્શ્વાપત્યોની વાતો આવે છે.[20] કેટલાક પાર્શ્વાપત્યો ભગવાન્ મહાવીર પાસે જતાં ખચકાય છે; કેટલાક પ્રશ્નો કરે છે; કેટલાક તર્ક-વિતર્કો કરે છે. ભગવાન્ એનું સમાધાન કરે છે અને અંતે એ પાર્શ્વાપત્યો ભગવાનની સાધુસંસ્થામાં પ્રવિષ્ટ થઈ જાય છે. અને સાધુસંઘ વળી પાછો જુદા રૂપે દ્રશ્યમાન થાય છે. આ બધી વ્યવસ્થા એક રાજતંત્ર જેવી આપણને લાગે. આ ઉપરથી આપણે એમ સમજી શકીએ કે એ વ્યવસ્થાના બીજ રોપનાર કેટલા વિચક્ષણ અને દીર્ઘદૃષ્ટિવાળા હતા! એકલા ભગવાન્ મહાવીરના જ વખતમાં ૧૪૦૦૦ હજાર શ્રમણો અને ૩૬૦૦૦ શ્રમણીઓ હતી. સાધુ-સંસ્થામાં સ્ત્રીઓને પણ સમાનકક્ષામાં મુકવાનું માન ભગવાનને જ ફાળે નથી જતું કારણ કે પાર્શ્વનાથના સમયમાં પણ એ પ્રથા પ્રચલિત હતી. અલબત્ત, ભગવાન્ મહા-વીરે ઘણી ઘણી બાબતોમાં જુદો ઓપ, જુદાં રૂપ, વગેરે વગેરે આપ્યાં છે એ નિર્વિવાદ છે. ભગવાન્ બુદ્ધ સ્ત્રીઓને સમાન સ્થાન આપવાની બાબતમાં મહાવીરથી કંઈક અંશે જુદો મત ધરાવતા હતા; પરંતુ ભગવાન્ મહાવીરે જોરશોરથી સ્ત્રીઓને પણ સ્થાન આપ્યું, તેથી ભગવાન્ બુદ્ધને પણ સ્ત્રીઓને સમુચિત સ્થાન આપવું પડ્યું. આ બધી રીતે તપાસતાં જૈનદર્શનમાં ચતુર્વિધસંઘનું માન અને સ્થાન અપૂર્વ છે. એટલે શ્રી મહેશ્વરસૂરિએ કરેલી શ્રી સંઘની સ્તુતિ જરાય અસ્થાને નથી એટલું જ નહિ પરંતુ આવશ્યક છે.

*

---

૨૦ "ભગવતીસૂત્ર", ૧, ૬; ૨, ૫; "સૂત્રકૃતાંગ", ૨, ૭, ૫ "રાજપ્રશ્નીય" ૨૧૪.

आभीर, त्रैकूटक अने मैत्रक

ले० – श्रीयुत डॉ. त्रिभुवनदास लहरचंद एल्. एम्. एस्.; एम्. आर्. ए. एस्.

*

આભીર, ત્રૈકૂટક અને મૈત્રક: આ નામની ત્રણ પ્રજાઓ ઈ. સ. ની પ્રથમની છ સદીમાં અથવા જેને આપણે ભારતીય ઇતિહાસનો પ્રાથમિક યુગ કહી શકીએ ત્યારે ઉદ્ભવી હતી. તેમને લગતા ઘણા પ્રશ્નો છણાઈને સ્પષ્ટપણે જાહેર થઈ ગયા હોવા છતાં કહેવું પડે છે કે, હજુ ઘણા મુદ્દાઓ ચર્ચાત્મક અવસ્થામાં પણ રહી ગયા છે. તેવા કેટલાક આ લેખકે, "આભીર"ના શીર્ષક નીચે ફાર્બસ સભાના ત્રૈમાસિકમાં (અંક)માં જણાવ્યા છે. બાકીની બે પ્રજાના – ત્રૈકૂટક અને મૈત્રકના – અત્રે જણાવવા ઇચ્છા છે. પ્રથમ ત્રૈકૂટકને લગતા મુદ્દા ચર્ચીશ.

त्रैकूटको

ગુપ્તવંશી સમ્રાટ્ સમુદ્રગુપ્તે આભીરપતિઓનો ત્રિરશ્મિ – ત્રિકૂટવાળો પ્રદેશ જીતી લઈ પોતાના સામ્રાજ્યમાં ભેળવી લીધો હતો તે "આભીર" પ્રજાની ચર્ચા કરતાં પુરવાર કરવામાં આવ્યું છે. ત્યારથી તે પ્રજાની સ્વતંત્રતા ગુમાઈ ગયાનું કહી શકાય. પરંતુ આગળ બતાવેલા બનાવો ઉપરથી સમજાય છે કે, તેમનું અસ્તિત્વ ભૂંસી નાંખવામાં નહોતું આવ્યું. જે પ્રદેશ ઉપર તેઓ કારોબાર ચલાવતા હતા ત્યાં ને ત્યાં કેટલીક સત્તા સુપ્રત કરી, પોતાના સૂબા તરીકે રાજવહીવટ ચલાવવા ગુપ્તવંશી સમ્રાટોએ તેમને રાખ્યા હતા. આ પ્રમાણે લગભગ દોઢસોક વર્ષ ચાલ્યા પછી ઈ. સ. ૪૬૭માં ગુપ્તવંશી સમ્રાટ્ સમુદ્રગુપ્તનું મરણ થતાં કુમારગુપ્ત બીજો તેની ગાદીએ આવ્યો. તેના વખતમાં ગુપ્તસામ્રાજ્ય ડગમગવા મંડી પડ્યું. ખડખડી ગયેલ સત્તાને કાંઈક અંશે બુદ્ધગુપ્ત ઉર્ફે નરસિંહગુપ્તે ઈ. સ. ૪૯૫ સુધી[1] જાળવી રાખી પરંતુ જેમ પડુપડુ ઇમારત જર્જરિત અવસ્થાને લીધે, દુરુસ્ત કર્યાને બદલે ઉતારી લેવી જ હિતકર મનાય છે તેમ કુદરતે પણ ગુપ્તવંશી સત્તાનું તે જ નિર્માણ કરી રાખ્યું હતું એમ સમજાય છે. આખરે તે સામ્રાજ્યનો વિનાશ બુદ્ધગુપ્તની પાછળ ગાદીએ આવનાર ભાનુગુપ્ત ઉર્ફે વૈન્ય – દ્વાદશાદિત્યના સમયે ઈ. સ. ૫૧૦ના અરસામાં[2] થઈ ચૂક્યો. તેમને અવંતિ છોડવું પડ્યું; ને દેખાય છે કે, બાકીના જે કોઈ તારક જેવા જરા જરા ઝગમગતા લાગતા હતા તે પોતપોતાના સગાંવહાલાંની ઓથે, કે સગેવગે આસપાસની સબળ સત્તાવાળા રાજવીના આશ્રયતળે જઈ રહ્યા; ને તેમને સમજાવી પોતાના બાપદાદાનું જે સામ્રાજ્ય ગુમાઈ ગયેલું હતું તે પાછું મેળવવા મરણિયો પ્રયાસ પણ આદરેલ, છતાં નિષ્ફળ જવાથી હમેશને માટે ઐતિહાસિક પટપરથી લય પામ્યા.

ઈ. સ. ૪૬૭માં સમુદ્રગુપ્ત મરણ પામ્યો અને કુમારગુપ્ત ૪૭૩માં ગાદીએ આવ્યો. તે વચ્ચેના છ વર્ષમાં સામ્રાજ્ય અસ્તવ્યસ્ત થઈ જવા પામ્યું હતું. "જેના હાથમાં

(1) Ind. Culture. 1939 p. 410 "Last date on the coins of Budhagupta" 176 G. S; A. D. 495.

(2) Ibid p. 410 "It is therefore clear that in A. D. 502 Guptas claimed the suzerainty over India."

તેના મોંમાં"ની કહેવત અનુસાર, ગુપ્ત સામ્રાજ્યના સૌરાષ્ટ્ર પ્રાંત ઉપર નિમાયેલ સૂબા ભટ્ટાર્ક–ઉર્ફે વિજયસેન સેનાપતિએ કાંઈક અશે સ્વતંત્ર બની પોતાના નવીન વંશની સ્થાપના કરી. ઈ. સ. ૪૬૯ (કે આસપાસ) તેનું રાજ્ય ૪૯૪ સુધી–૨૫ વર્ષ ચાલ્યું. તેની ગાદીએ તેનો પુત્ર ધરસેન પહેલો–સેનાપતિ ૪૯૪ થી ૪૯૯=૫ વર્ષ રહ્યો. તેની પછી તેનો પુત્ર દ્રોણસિંહ આવ્યો તે કાંઈક વિશેષ પરાક્રમી હતો–કે નિવડ્યો–કે સંયોગે તેને યારી આપી–ગમે તેમ હો, પણ તેમના સરદાર ગુપ્તવંશી રાજાઓથી, જો કે પોતે સ્વતંત્ર હતો છતાં, કાંઈ વિશેષ મહેરબાનીને પાત્ર બન્યો હતો. જેથી કરીને ઈ. સ. ૫૦૫માં તે વખતના ગુપ્તવંશી સમ્રાટ્, અને પોતાને "અખિલભુવનમંડલા-ભોગૈકસ્વામી પરમસ્વામી" કહેવરાવતા (બહુધા વૈન્ય દ્વાદશાદિત્ય) ભાનુગુપ્તના હસ્તે જ[3] 'મહારાજાપદ'નું બિરૂદ ધારણ કરી ખરેખરી સ્વતંત્રતાને પામતો હવો. (વિશેષ હકીકત આગળ ઉપર "મૈ ત્ર ક"ના શીર્ષકમાં જુઓ). ગુપ્તસામ્રાજ્યના સૌરાષ્ટ્ર-વાળા ભાગની ઉપર પ્રમાણે દશા જ્યારે થઈ ત્યારે મૂળ અવંતિવાળા પ્રદેશ ઉપર, ઉત્તરાપથના પંજાબને માર્ગેથી હૂણપ્રજાના ટોળેટોળાં લઈને ઉતરી આવેલ તેમના સરદાર તોરમાણે બધી ખાનાખરાબી કરી વાળી હતી અને પોતાને અવંતિપતિ કહેવ-રાવવા લાગ્યો હતો. જ્યારે વિંધ્યપર્વતની દક્ષિણવાળા ભાગ ઉપર તે વખતે હકુમત ચલાવતા સરદાર ઈંદ્રદત્તના પુત્ર ધરસેને (કો. આં. રે. લેખ નં. ૪૪, પારડી) ગુ. સં. ૨૦૭=ઈ. સ. ૫૨૬માં પોતાને હસ્તક લઈ ત્યાં પોતાનો રાજવંશ સ્થાપ્યો.

ઉપર્યુક્ત લેખ નં. ૪૪માં રાજા ધરસેને પોતાને "ત્રૈ કૂ ટ ક" તરીકે ઓળખાવ્યો છે. એટલે આપણે પણ તેને નિઃસંદેહ ત્રૈ કૂ ટ ક તરીકે જ જણાવી શકીશું. ઉપરાંત નં. ૪૫નો કન્હેરીનો લેખ રાજા વ્યાઘ્રસેન ત્રૈકૂટકના નામનો મળી આવેલ છે. તેમાં ગુ. સં. ૨૪૫=ઈ. સ. ૫૬૪નો આંક છે એટલે વિદ્વાનોએ તે લેખની ગણત્રી કરીને, ધરસેનની પાછળ ગાદીએ આવનાર વ્યાઘ્રસેનને–ઇન્દ્રદત્તને પ્રથમ ગણતાં વ્યાઘ્રસેનને ત્રીજો, અને ધરસેનને પ્રથમ લેખતાં બીજો–ગણાવ્યો છે. પરંતુ પારડીના લેખમાં ધરસેનનો સમય જ્યારે ઈ. સ. ૫૨૬ છે તેમ જ પોતાને "મહારાજેન્દ્રદત્તપુત્ર પરમવૈષ્ણવ શ્રી મહારાજ ધરસેન" તરીકે જણાવે છે ત્યારે તો એવો અર્થ નીકળે છે કે, તે પોતાને 'મહારાજ' કહેવરાવતો હતો એટલું જ નહી. પરંતુ પોતાના પિતા ઇન્દ્રદત્તે પણ 'મહારાજ' પદ ધારણ કર્યું હતું તેની પણ યાદ આપણને આપે છે. અને તેમ જ થયું હોવાની ખાત્રી એ ઉપરથી મળે છે કે, વલભીપુરના દ્રોણસિંહ મૈત્રકે ઈ. સ. ૫૦૫માં જેમ પોતાના મુરબ્બી અને માલિક સરદાર પાસેથી 'મહારાજ' પદની પ્રાપ્તિ કરી છે તેમ તે જ ગુપ્તવંશના આ સૂબાએ પણ, તે જ અરસામાં કાં 'મહારાજ' પદ મેળવ્યું ન હોય? (પ્રાપ્તિ થઈ કે સ્વયં ધારણ કર્યું તે વાત અલગ રાખીએ પરંતુ તે પોતાના માલિકથી છૂટો થયો હતો એવું તો જરૂર કહી શકાશે જ). ઉપરાંત, જેમ તે દ્રોણસિંહનો સત્તાકાળ લગભગ વીસેક વર્ષનો લેખાય છે તેમ આ ઇન્દ્રદત્તનો પણ તે પ્રમાણે લેખવતાં, ત્રૈકૂટક વંશની સ્થાપના ઇન્દ્રદત્તના સમયે ઈ. સ. ૫૦૫ના અરસામાં ઠરાવી, ઈ. સ. ૫૨૫ના અરસામાં તેનું મરણ નીપજતાં, તેના પુત્ર ધરસેને ઈ. સ. ૫૨૬માં ઉપર્યુક્ત

(3) ઉપરની ટી. નં. ૨ જુઓ.

પારડીનો લેખ કોતરાવ્યો હોય એમ ઠરાવવું સર્વથા સુઘટિત લેખી શકાશે. મતલબ કે ત્રૈકૂટક વંશની આદિ સમયાવલી આ પ્રમાણે કામચલાઉ સ્થાપિત થઈ ગણાશે.

(૧) ઇન્દ્રદત્ત　ઈ. સ. ૫૦૫ થી ૫૨૫
(૨) ધરસેન　,,　૫૨૫ થી ૫૫૫ આશરે અને
(૩) વ્યાઘ્રસેન　,,　૫૫૫ થી ૫૬૫ અને આગળ

આ પ્રમાણે તેમની ઉત્પત્તિ ગુપ્ત સામ્રાજ્યમાંથી તેમ જ આદિસમય ઈ. સ. ૫૦૫–૭ થી સાબિત થઈ ગયો કહેવાશે. પરંતુ તેઓ પોતાના લેખમાં કે સિક્કાઓમાં ગુપ્તસંવતનો જ ઉપયોગ કરતા હોવાથી તેટલે દરજ્જે ગુપ્તવંશ સાથેનો તેમનો સંબંધ, આરંભથી અંત સુધી જળવાઈ રહેલો ગણાશે. છતાં કેટલાકની માન્યતા જે એમ બંધાઈ છે કે, વ્યાઘ્રસેનનો સમય પણ 'ત્રૈકૂટક' હોઈને અને ત્રિકૂટક તથા કલચૂરિ–ચેદિ સંવત એક ગણાતા હોઈને, આ ત્રિકૂટક વંશની આદિ પણ ઈ. સ. ૨૪૯ માં જ ગણવી રહે છે. જેમ કરતાં ૨૦૭+૨૪૯=ઈ. સ. ૪૫૬ આવે અને ૨૩૭+૨૪૯=ઈ. સ. ૪૮૬ આવે. તે સમયે તેમ જ તે બાદ પણ ગુપ્તવંશી સમ્રાટોની સત્તા તો ચાલી રહેલી જણાય છે જ. અને એક સ્થાન ઉપર એક જ સમયે બે રાજવીઓની સત્તા સ્વતંત્રપણે ચાલી ન જ શકે તે તો નિયમ છે. તે સિદ્ધાંતાનુસાર ઈ. સ. ૨૪૯ ની આદિવાળા સંવતની શક્યતા જરા પણ સંભવતી નથી. વળી કો. આં. રે. પૃ. ૧૬૦, ટી. નં. ૧માં જણાવાયું છે કે It seems not improbable that the Traikutakas may be the Mauryas of the Northern konkan–because (p. 161, f. n. 6)–no mention of these kings under the same name has yet been found in any Indian record. મતલબ કે ત્રૈકૂટકોને મૌર્યો તરીકે લેખવાની સંભવિતતા દર્શાવી છે. પરંતુ જે દલીલ કરી છે તે બહુ સંગીન પ્રકારની કે વજનદાર ન હોવાથી તેમ જ તેનો નિર્દેશ કેવળ ફૂટનોટ તરીકે જ કરાયલો હોવાથી તે ઉપર વિશેષ વિચાર કરવા જેવું લાગતું નથી. એટલે પરિણામે એટલું પુરવાર થયું ગણવું રહે છે કે, ત્રૈકૂટકોએ ઈ. સ. ૩૧૯ થી આરંભાતો ગુપ્તસંવત જ વાપર્યો છે જ્યારે આભીરોએ ઈ. સ. ૨૪૯ થી પોતાનો સ્વતંત્ર સંવત જ વાપર્યો છે. આ ઉપરથી એમ પણ સિદ્ધ થઈ શકે છે કે ત્રૈકૂટકો અને આભીરો બન્ને એક પ્રજા પણ નથી. આપણા આ કથનને શિલાલેખથી પણ સમર્થન મળે છે. બેંગલોરથી પ્રસિદ્ધ થતા મિથીક સોસાઇટીના જરનલ, ૧૯૩૯ ઓકટોબર પુ. ૩૦, પૃ. ૧૫૨, ટી. નં. ૫ માં દક્ષિણ હિંદમાં આવેલ ચંદ્રાવલ્લી તળાવ બંધાવ્યાનો કદંબવંશી રાજા મયૂરશર્માનો લેખ છે તેમાં તેણે સ્પષ્ટપણે જણાવ્યું છે કે This tank was constructed by Mayursharma of the Kadambas, who has defeated Trikuta, Abhira, Pallava, Pariyatrik[4] Sakasthan, Sayindrikas, Punala and Mokari. આ શિલાલેખમાં ત્રિકૂટક અને આભીર બન્નેને ભિન્ન ગણીને ઉલ્લેખ કરાયો છે તેથી સ્પષ્ટ અને નિઃસંદેહ ખાત્રી થાય છે કે બન્ને પ્રજા ભિન્ન જ છે. ઉપરાંત, એટલું પણ નિશ્ચયપૂર્વક માનવું પડશે કે આભીરનુ અસ્તિત્વ જે રાજકીય

(૪) ત્યારે શું પારિયાત્રિકનું સ્થાન દક્ષિણ હિંદમાં માનવું રહે છે કે ? અરવલ્લીના પારિયાત્રિક–પારિપાત્રિક કહેવાય છે તે કેમ ?

ક્ષેત્રે લય પામી ગયું હતું એમ મનાતું રહ્યું છે તે લાંબો સમય સુધી ચાલતું આવ્યાનું પણ હવે જણાય છે.

હવે તેમના સ્થાન સંબંધે વિચાર કરીશું. સામાન્ય નિયમ એ કે, જે પ્રદેશમાંથી જેના શિલાલેખ કે સિક્કા મળે ત્યાં તેનો અધિકાર હોવાનું પુરવાર થયેલું લેખવું રહે જ. તે નિયમાનુસાર ડૉ. રેપ્સન જણાવે છે કે (કો. આં. રે. પૃ. ૧૫૯) It is possible that the Traikutaka kings may have been ruling the region of Gujerat, from which their inscriptions and coins are found during their life-time. વળી નં. ૪૫ નો લેખ, વર્તમાન સુરત જીલ્લાના નવસારી તાલુકે પારડી ગામેથી મળેલ હોવાથી તેમને વિશેષ લખવું પડ્યું છે કે, The coins are discovered not only in S. Gujerat and the Konkan but also in the Marattha country on the other side of the Ghats. મતલબ કે તેમનો સત્તાપ્રદેશ, ઠેઠ ઉત્તરે સુરત-નવસારી-પારડીથી માંડીને, દક્ષિણે દરિયા કિનારે કિનારે લાંબી પટી ઉપરાંત પૂર્વ ઘાટ ઓળંગીને પણ લંબાયેલ હતો. આ ઉપરથી સાબિત થાય છે કે, આભીર રાજાઓએ જેટલા પ્રદેશ ઉપર રાજ્ય કર્યું હતું લગભગ તેટલા જ પ્રદેશ ઉપર આ ત્રૈકૂટકોનો પણ અધિકાર લંબાયેલો હતો જ: બલ્કે ત્રૈકૂટકોના લેખ-સિક્કા, નાસિકની ઉત્તરેથી પણ મળતા હોવાથી તેમના રાજ્યની હદ, ઉત્તરે ગુજરાત પ્રાંતના દક્ષિણ વિભાગ સુધી લંબાયાનું ગણવું પડે છે. એટલું જ વધારે ખરૂં. છતાં આભીરોનું રાજ્ય ત્યા સુધી નહોતું લંબાયું, એમ ન માનવાનું પણ કારણ નથી. પરંતુ વિશેષ પુરાવા અત્યારે પ્રાપ્ત થયેલ ન હોવાથી, આભીરોની હદ નાસિક કે તેની ઉત્તરે થોડા માઇલ ઉપરની જ બાંધી લેવી પડશે. સારાંશ કે આભીરો કરતાં ત્રૈકૂટકોનો પ્રદેશ કાંઇક વધારે ઉત્તરમાં લંબાયો હતો. ડૉ. રેપ્સન પોતાના કો. આં. રે. પુસ્તકમાં પારિ. ૧૨૯, પૃ. ૧૩૬ માં તેમના રાજ્યવિસ્તાર અને પરસ્પર સંબંધની સમાલોચના કરતાં લખે છે કે, The precise connection between these early Abhiras and the later Traikutakas cannot be proved but it is certain that they ruled in the same region and there is no reason why they may not have belonged to the same dynasty. જો કે અહીં, પ્રથમના આભીરો અને પાછળના ત્રૈકૂટકો એમ લખી બન્નેને ભિન્ન હોવાનું લેખવ્યું છે, પણ તેમના સંબંધ વિષે નિશ્ચય નથી બતાવ્યો પરંતુ એક જ વંશના હોવાનું માનવાને લલચાય છે, છતાં વળી તે જ વિદ્વાન તેજ પુસ્તકમાં પારિ. ૧૩૫ માં જણાવે છે કે, It is impossible to determine, whether or not, the Abhiras and Traikutakas belonged to the same dynasty or to the same race. All that can be said at present is that the two groups of kings may well have ruled over substantially the same territory and that the similar formation of their names, which alike ended in-datta or sena-suggest the sort of relationship that may have existed between them. કહેવાનું તાત્પર્ય એ કે નામની રચના અને

રાજ્યવિસ્તાર – બન્ને બાબતોમાં આભીરો અને ત્રૈકૂટકો મળતા દેખાતાં હોવાથી, તે બન્નેને એક વંશના અને એક જાતિના જેમ માની પણ લયે છે તેમ વળી ઢચુપચુ બની, તેવું હોવા વિષે શંકા પણ બતાવે છે. સારાંશ કે કોઈ નિશ્ચય બાંધી શકતા નથી. આ પ્રમાણે કેવળ બે મુદ્દા જ તેમણે લક્ષમાં લઈને, ધરસેન – વ્યાઘ્રસેને દર્શાવેલા આંકમાં ૨૪૯ નો ઉમેરો કરી જે સમય બાંધવા આગળ પડ્યા છે (જુઓ ઉપર) તેને બદલે તેમના સિક્કા – ચિહ્નો તેમ જ તેમણે ધારણ કરેલાં બિરૂદો (જુઓ પ્રા. ભા. પુ. ૩, પૃ. ૪૦૩, આંક નં. ૧૦૩ – ૧૦૪) પણ સાથે સાથે તપાસ્યાં હોત, અથવા તો તેમણે કોતરાવેલ લેખોમાં, નિર્દિષ્ટ કરેલ સમયની ઢબ સરખાવી જોઈ હોત તો જરૂર જુદા જ અનુમાન ઉપર આવત. આભીરો ઈ. સ. ૨૪૯ થી આરંભાતો સંવત વાપરે છે, જ્યારે ધરસેન – વ્યાઘ્રસેન ત્રૈકૂટકો શબ્દ લખી ઈ. સ. ૩૧૯ થી શરૂ થતો ગુપ્ત સંવત વાપરે છે. અને સંવતનો ઉપયોગ તે રાજકીય સ્થિતિનું સૂચક હોવાથી, બન્નેની રાજકીય ભિન્નતા જણાઈ આવે છે. વળી ધાર્મિક ચિહ્ન બન્નેમાં "સૂર્ય, ચંદ્ર અને ચૈત્ય"નાં સરખાં હોવાથી,– ચષ્ઠણવંશીઓની પેઠે – તેઓ પણ જૈનધર્મ પાળતા હોવા જોઈએ, એમ સાબિત થાય છે. પરંતુ ત્રૈકૂટકો પોતાને 'પરમ વૈષ્ણવ' કહેવરાવતા હોવાથી સમજવું રહે છે કે, તેમણે જૈનધર્મમાંથી પલટો કરીને, પોતાના સરદાર – ગુપ્તવંશી રાજવીઓની પેઠે – વૈષ્ણવ ધર્મ સ્વીકાર્યો હશે. અને તેમ બનવું સંભવિત પણ છે; કેમ કે રાજકીય વાતાવરણની અસર સામાજીક તેમ જ ધાર્મિક તત્ત્વો ઉપર જલદી પડે છે તે સ્વાભાવિક અનુભવ છે.

આ બધા મુદ્દાઓની તપાસનું પરિણામ એ આવ્યું કહેવાશે કે, નામની રચના અને પ્રદેશવિસ્તારના મળતાપણાને લીધે આભીરો અને ત્રૈકૂટકો બન્ને એક જ પ્રજા – જાતિ અને વંશના હતા તેમ જ ત્રિરશ્મિ પ્રદેશમાં સત્તાશાળી હતા. પરંતુ રાજકીય સત્તાના ફેરફારને લીધે (જૈનધર્મી ચષ્ઠણવંશથી વૈષ્ણવધર્મી ગુપ્તવંશી સત્તાનો ફેરફાર થવાથી) પાછળથી તેમણે ધર્મપરિવર્તન કર્યું હતું તથા પોતાના સરદારોનો સંવત વાપરવા માંડ્યો હતો. વળી આભીરો, પ્રથમ જો કે ચષ્ઠણવંશના અમલદારો હતા, છતાં છૂટા પડ્યા ત્યારે પણ તેમણે, પોતાના સરદારોનો સંવત ગ્રહણ ન કરતાં, પોતાનો નવો જ સંવત ચલાવ્યો છે. તેટલી વિશેષપણે સ્વતંત્રતા તેમણે દાખવી કહેવાય. જ્યારે ત્રૈકૂટકોએ, પોતે ગુપ્તવંશના અમલદારો હોઈ, તેમનાથી છૂટા પડ્યાં છતાંયે, તેમનો જ સંવત વાપર્યે રાખ્યો છે તેટલે દરજ્જે રાજકીય પકડની છાપ તેમને શીરે વધારે જડાઈ ગયેલ ગણાય. આ પ્રમાણે તે બન્નેના પરસ્પર સંબંધની ચર્ચા જાણવી.

मै त्र को

હવે આપણે મૈત્રકોની વિચારણા કરીએ. ઠરાવેલ સૂચિ પ્રમાણે પ્રથમ તેમની ઉત્પત્તિ અને આદિસમયનો પ્રશ્ન હાથ ધરીએ. કલકત્તાથી "ધી ઇન્ડિયન કલચર" નામનું સંશોધન વિદ્યાનું પત્ર જે બહાર પડે છે તેના ૧૯૩૯ ના અંકમાં શ્રી જગન્નાથજી એમ. એ. અને શ્રી ધીરેન્દ્રનાથ મુકરજીએ "મૈત્રકો" સંબંધી ચિતનશીલ બે મહત્ત્વના લેખો લખ્યા છે, અને તેનો સારાંશ મુંબઈથી પ્રકટ થતા 'ધી ફારબસ ત્રૈમાસિક'માં તે જ સાલના પુ. ૪, અંક ૩ માં પૃ. ૩૬૯ થી આગળમાં ઉતારાયો છે. તેમાં આ મૈત્રક રાજાઓની ઉત્પત્તિ વિષે પ્રચલિત પાંચેક મતો દર્શાવ્યા છે. (૧) Dr.

Bhagwanlal Indrajit suggested that Maitrak was the sanskritized form of the word Mer, or Mehār, the original name of the tribe. (2) Dr. J. F. Fleet expressed "The Mihiras were a branch of Huns, who under the leadership of Tormāṇa and Mihirkula overthrew the power of the early Guptas. (I. A. 1886, p. 361). (3) D. R. Bhandarker expressed that the Maitrakas were like the Gurjaras, a tribe allied with the Huṇas and entered India with them (J. R. A. S. 1909, p. 183). (4) Prof. Monier Williams' Dictionary defines the word as "a person who worships in a Buddhist temple." (5) જ્યારે વિદ્વાન લેખક પોતાનો અભિપ્રાય એમ જાહેર કરે છે કે, Maitraka may be equated with Maitreyaka, meaning a particular caste, whose business it was to praise great men (Ind. Cult. 1939 April, p. 409). એ પાંચ મંતવ્યોને આપણે તપાસી જોઈએ.

નં. ૨ અને નં. ૩ મતવાળાઓએ, મૈત્રક અને હૂણ પ્રજા વચ્ચે સંબંધ હોવાનું તથા તેમની જ સાથે હિંદમાં પ્રવેશ કર્યો હોવાનું સૂચવ્યું છે. હૂણ પ્રજાનું નામ તોરમાણ હિંદમાં આવ્યો તે પૂર્વે રાજકીય ક્ષેત્રે ભારતીય ઇતિહાસમાં બિલકુલ જણાયું નથી જ અને તોરમાણે પોતાનો પગદંડો જમાવ્યો છે તે તો ગુપ્તવંશને ઉખેડી નાખ્યા બાદ જ છે. એટલે તોરમાણની પૂર્વે ગુપ્તવંશની હૈયાતી તેમ જ જાહોજલાલી સાબિત થાય છે જ. અને મૈત્રકો (વલભીવંશી રાજાઓનો પ્રથમ પુરુષ ભટ્ટાર્ક પણ) તો ગુપ્તવંશી સમ્રાટોના સૈન્યપતિ જેવા અવલ દરજ્જાના મહાજોખમદાર હોદ્દા ભોગવતા હતા. એટલે સ્પષ્ટ થાય છે કે, ગુપ્તવંશને તોરમાણે નાબુદ કર્યો તે પહેલાથી જ મૈત્રકો અવંતિમાં તેમ જ હિંદમાં જાણીતા થઈ ગયા હતા. એટલું જ નહીં, પણ જ્યારે તેમણે સેનાધિપતિ જેવું ઊંચામાં ઊંચુ અને અતિ વિશ્વસનીય પદ પ્રાપ્ત કર્યું છે ત્યારે એ પણ ફલિત થાય છે કે, તેમનું અસ્તિત્વ, ગુપ્તવંશની સમાપ્તિ ઈ. સ. ૫૦૯ માં કે બે ચાર આઘે પાછે વર્ષે થઈ તે પૂર્વે, બલ્કે તેમની સત્તાની પડતી આશરે ઈ. સ. ૪૯૦ માં થવા માંડી છે તે પૂર્વે–તેમ જ હૂણ પ્રજાનું આક્રમણ કાશ્મીર અને પંજાબ રસ્તે થઈને હિંદમાં ઈ. સ. ૪૯૦ માં થયું તે પૂર્વે–પણ ક્યારનું થઈ ચુક્યું હતું. જો અમે ભૂલતા ન હોઈએ તો ભટ્ટાર્કનો સેનાપતિપદનો સમય ઈ. સ. ૪૬૯ થી ૪૯૪=૨૫ વર્ષનો લગભગ મનાય છે. એટલે સ્વયં સિદ્ધ થઈ જાય છે કે મૈત્રકોનો હૂણ પ્રજા સાથેનો સંબંધ જોડી–કલ્પી–બનાવવો તે કોઈ રીતે સુઘટિત ઠરતો નથી. નં. ૪ ના મંતવ્ય પ્રમાણે મૈત્રકોને બૌદ્ધમતાનુયાયી ઠરાવવા પડશે. તે મત પણ ટકી શકે તેમ નથી કેમ કે જે જે તામ્રપત્રો, સિક્કાઓ કે લેખો તે રાજાઓના અદ્યાપિ પર્યંત મળી આવ્યા છે તેમાં કોઈ શબ્દ એવો નથી મળી આવતો કે જેથી તેમને આપણે બૌદ્ધધર્મી ઠરાવી શકીએ. ઉલટું સિક્કા–ચિહ્નો,–નંદી, વૃષભાદિ–તામ્રપત્રમાં વપરાયેલ પરમ માહેશ્વર આદિ બિરુદો, તેમ જ દાનને લગતાં વર્ણનો–ઉપરથી તો એમ વધારે મજબૂતી સાથે કહી શકાય છે

કે તેઓ પણ ગુપ્તવંશીઓની પેઠે વૈદિકમતાનુયાયીઓ હોવા જોઈએ. એટલે મૈત્રકોનો અર્થ બૌદ્ધધર્મી હોવાનું મંતવ્ય ખોટું ઠરે છે. અથવા બીજી રીતે ઉલટાવીને લખીએ તો (ડીક્ષનેરીની વ્યાખ્યા સાચી હોય તો) વલભીવંશી રાજાઓની સાથે જોડેલ મૈત્રક શબ્દ જ ખોટી રીતે સંયુક્ત થઈ ગયો લાગે છે. નં. ૧ થી મૈત્રકોની ઉત્પત્તિ 'મેહેર' કે 'મિહિર' સાથે સંબંધ ધરાવતી લેખી છે. મિહિરનો અર્થ સૂર્ય લેખતાં, તે પણ વાજબી ઠરતું નથી કેમ કે નિબંધલેખક વિદ્વાન મહાશય પોતે જ લખે છે કે, (p. 408) out of 21 kings of the dynasty – not a one was a devotee of the god Sun – 19 are described as worshippers of Siva; only one Dhardatta, the 5th in the line, is styled as a worshipper of the Sun. મતલબ કે, જ્યારે ૨૧માંથી ૧૯ રાજાઓને સૂર્યોપાસકો તે કહી શકતા જ નથી. એટલે પણ તે વંશનું નામ મૈત્રક ઠરાવવું તે વાજબી કહેવાશે નહીં. હજુ એમ બને કે – જો કે બહુધા તે પણ અસંભવિત જ છે: છતાં સોમાંથી એક ટકો પણ સંભવિતતાનો અંશ માની લઈએ તોયે – વંશસ્થાપક મૂળ રાજા સૂર્યોપાસક હોય અને પાછળનાઓએ ધર્મપરિવર્તન કરી નાખ્યું હોય છતાં પોતાના પૂર્વજના માન ખાતર વંશની સાથે જોડેલ શબ્દ પડતો ન મૂકતાં કાયમ જાળવી રાખ્યો હોય. આ કલ્પના પણ બંધબેસતી નથી. કેમ કે સૂર્યોપાસક કોઈ પણ રાજા જો હોય તો તે પ્રથમ પુરુષ નથી પરંતુ પાંચમો રાજા છે. ટૂંકમાં કે કોઈ પણ રીતે વિચાર કરતાં "મિહિર=સૂર્ય" સાથેનો સંબંધ પણ મૈત્રકોનો પુરવાર થઈ શકતો નથી. સૌરાષ્ટ્રમાં મહેર નામની જાતિના ખેડુતો – જમીન માલિકો અથવા તો કોઈ ને કોઈ રીતે ગ્રામ્યજીવન ગાળતી પ્રજા વસે છે ખરી. તેમનો મુખ્ય ભાગ પશ્ચિમે આવેલ પોરબંદર રાજ્ય અને બરડા ડુંગરમાં વસી રહેલ છે. તેમની ઉત્પત્તિ બહુ પ્રાચીન હોય એમ જણાતું નથી. છતાં જ્યાં સુધી તે મુદ્દો પાકે પાયે નિર્ણિત ન થાય ત્યાં સુધી તેની સંભાવના દૂર કાઢી શકાય નહીં જ. આ પ્રમાણે ૧–૨–૩ અને ૪ મુદ્દાઓનું અસંભવિતપણું જોઈ લીધા પછી હવે કેવળ નં. ૫ નો જ વિચાર કરવો રહે છે. વિદ્વાન લેખક એમ માનતા સમજાય છે કે મૈત્રક= પ્રશંસક; ને તેમણે ગુપ્ત રાજાઓની સેવા – નોકરીમાં અનેક વર્ષો ગાળ્યાં છે, તેથી તેમનાં યશોગાન ગાનાર તરીકે – પ્રશંસક તરીકે – પોતાને ઓળખાવેલ છે અને તેમનો આદિ પુરુષ ભટ્ટારક – ભટ્ટાર્ક કે ભટ્ટક અથવા કોઈ પણ તેને મળતો જ અપભ્રંશ થતો શબ્દ ભાટ – ચારણ જેવા અર્થમાં પણ કદાચ બનતો હોય એવી ભ્રાંતિ સેવી રહ્યા છે તથા આગળ વધી એમ પણ કહેતા જણાય છે કે, "મૈત્રકો અને ત્રૈકૂટકોના તામ્રપત્રો એકસરખાં હોવાથી મૈત્રકો ત્રૈકૂટકોના ખંડિઆ હોવાની સંભાવના વધુ છે (જુઓ ફાર્બસ ત્રૈ. પત્ર, પૃ. ૩૦૫)." અમારી એક દલીલ તો એ જ છે કે, બન્નેમાંથી એકને બીજાનો ખંડિયો માનવા કરતાં, કાં બન્નેને સમકાલીન ગણીને, કોઈ એક ત્રીજી જ મહત્ સત્તાના ખંડિયા તરીકે તે બન્નેને ન માનવા? અને વસ્તુસ્થિતિ છે પણ તેમ જ; જે આપણે ત્રૈકૂટકોના વિવેચનમાં (જુઓ ઉપર) પુરવાર કરી ગયા પણ છીએ કે તે બન્નેનાં ઉદ્દ્ગમ ગુપ્તવંશમાંથી તેમની પડતીના સમયે અને તે પણ લગભગ એક જ સમયે થયા છે. સારાંશ કે પાંચમું મંતવ્ય પણ કોઈ સંગીન પાયા ઉપર આપણને લઈ જતું નથી. તેમ જ પાંચમાંથી એકેને, તે વંશની જાતિ, ભક્તિ, ઉપાસના કે તેવું કોઈ

નિમિત્તભૂત કારણ હોવાનું પણ માનવાયોગ્ય નથી. ત્યારે પ્રશ્ન એ રહે છે કે, મૈત્રક શબ્દની ઉત્પત્તિ શી રીતે સંભવિત બની શકે છે? નામાંકિત અને આગળ પડી ચૂકેલ વિદ્વાનોને સ્વકલ્પનાનુસાર મંતવ્ય રજુ કરવાનો જે અધિકાર મળેલ છે તેનો અંશ જ–વિશેષ નહીં તો કિંચિત્ પણ–અમને જો અપાતો હોય તો અત્ર તે રજુ કરવા ઇચ્છું છું. પરંતુ અમારૂં તે અનુમાન અથવા મતદર્શન તેમના જ (મૈત્રકના) સાથીદાર ત્રૈકૂટકની પેઠે જ, તેમના ઉદ્ભવસ્થાન સાથે સંબંધ ધરાવતું હોઈને, આ લેખમાં આગળ ઉપર જણાવશું કે જેથી તેમની શક્યાશક્યતા વિષે વિચાર કરવાની વાચકવર્ગને અનુકૂળતા સાંપડે.

તેમનાં સમય અને સ્થાન — સામાન્ય પ્રચલિત માન્યતા એ છે, તેમ જ તેમના શિલાલેખોમાં રજુ થયેલ આંકડા ઉપરથી આપણે સાબિત પણ કરી ગયા છીએ કે, મૈત્રકો ગુપ્તવંશી સૂબા હોવાથી તેઓ ગુપ્ત સંવતનો આશ્રય લેતા આવ્યા છે. આ ગુપ્ત સંવતની આદિ ઈ. સ. ૩૧૯ થી ગણાય છે. પરંતુ ઉપર્યુક્ત "ઇન્ડિયન કલચર"ના પત્રમાં સન ૧૯૩૯ના પૃ. ૪૨૫–૨૯માં શ્રી. એસ. કે. દીક્ષિતે સિક્કા ઉપરથી સંશોધન કરીને એમ પુરવાર કરવા પ્રયત્ન કર્યો છે કે, ગુપ્ત સંવતની આદિ ઈ. સ. ૩૧૯ ને બદલે ઈ. સ. પૂ. ૫૭ થી છે અને જે ગુપ્ત સંવત છે તે વિક્રમ સંવત જ છે. માટે જ્યાં જ્યાં ગુપ્ત સંવત લખ્યો હોય ત્યાં ત્યાં વિક્રમ સંવત લેખી ઈ. સ. પૂ. ૫૭ તરીકે તેની ગણના કરવી જોઈએ. સંશોધન વિષય જ એવો છે કે, એકદમ આપણે કોઈ મંતવ્યને હસી કાઢવું ન જોઈએ. માટે આપણે તપાસવું રહે છે કે તેમની માન્યતા ટકી રહે તેવી છે કે કેમ?

તેમણે વાતો તો ઘણી ઘણી કરી છે. ને સઘળી અત્રે ઉતારવા યોગ્ય ન ગણાય પરંતુ તેમણે લીધેલ મૂળ પાયો આ પ્રમાણે છે. (જુઓ, ફાર્બસ ત્રૈમાસિક ૧૯૩૯, પૃ. ૩૭૯ ઉપરનું અવતરણ) "કનિષ્કનો સમય તેના શિલાલેખો મુજબ વિ. સં. ૩ થી ૨૩ છે.[૫] વધુમાં બુદ્ધના નિર્વાણ પછી પાંચસો વર્ષે કનિષ્કના સમયમાં ચોથી બૌદ્ધસભા[૬] મળી હતી. બુદ્ધનું નિર્વાણ ઈ. સ. પૂ. ૫૪૬માં થયું હોવાથી[૭] કનિષ્કનો સમય ઈ. સ. પૂ. ૪૫=વિ. સં. ૧૦માં તો આવી જ રહે છે. એટલે ઈ. સ. પૂ. ૫૩ થી ૩૩ના ગાળામાં કનિષ્કનું અસ્તિત્વ નિર્વિવાદ સિદ્ધ થાય છે." આ હકીકતમાં વિરોધ તો ઘણા પ્રકારનો છે. પરંતુ તે બધું ચર્ચાની ખાતર જતું કરીએ (જુઓ ફુટનોટ નં. ૬ અને ૭) તો પણ પ્રશ્ન એ છે કે, કનિષ્કનો સમય ઈ. સ. પૂ. ૩૩નો તમે ભલે માનો પણ તેને અને ગુપ્તને સંબંધ શો? કનિષ્ક પછી તો તેનો વંશ લગભગ દોઢસો વર્ષ ચાલ્યા બાદ ગુપ્તવંશ સત્તામાં આવ્યો છે. તે હિસાબે ગુપ્તવંશની શરૂઆત જ ઈ. સ.

---

(૫) આંક સંખ્યા બરાબર છે પણ તેઓએ 'વિક્રમ સંવત' લખ્યું જ નથી. લેખકે પોતે શબ્દ જોડી નાખ્યો છે. વળી કનિષ્ક પરદેશી માણસ છે તેને અને વિક્રમને શું સંબંધ કે તેનો સંવત વાપરવા તે લલચાય. આ પ્રમાણે અનેક વાંધા છે (કનિષ્ક સંવતની આદિ વિષે જુઓ પ્રાચીન ભારતવર્ષ ભા. ૪માં કુશાન વંશનું વર્ણન).

(૬) અર્વાચીન બૌદ્ધ સાહિત્યમાં આવી હકીકત કદાચ હશે. પ્રાચીન સાહિત્યમાં આવું લખાણ મળતું જણાતું નથી.

(૭) બુદ્ધ નિર્વાણ ઈ. સ. પૂ. ૫૪૩માં છે, (જુઓ પ્રા. ભા. પુ. ૨ પરિશિષ્ટ ૧); છતાં ૫૪૬ લેવાથી બે ત્રણ વર્ષનો ફેર બહાણી શકાય તેવો ગણાય તેમ છે.

૭૫ અને ૧૦૦ ની વચ્ચે આવશે. અને ઈ. સ. ૭૫-૧૦૦ એટલે વિક્રમ સંવત્ ૧૫૦ સેંજે આવે. જ્યારે તેમનું મંતવ્ય તો એ છે કે, ગુપ્તવંશી રાજાઓએ પોતાના વંશની આદિ વિ. સં. ૧ થી કરીને તેમના રાજ્યકાળના બધા આંકનું સમયદર્શન જ વિક્રમ સંવતમાં કરેલું છે. આ ઉપરથી જ સમજી શકાય તેવું છે કે તેમનું મંતવ્ય બેહુદું છે. વળી ગુપ્ત સંવત વિક્રમ સંવત છે તેવું ઉપર્યુક્ત લેખકનું મંતવ્ય કલ્પિત ઠરાવવા, ધી આસામ રીસર્ચ સોસાઇટીના જરનલમાં તેના પ્રમુખ અને તંત્રી શ્રીયુત રાય. કે. એલ. બરૂઆએ, ૧૯૩૯ ના પુ. ૭ અકટોબર અંક ૩ ના પૃ. ૮૮ ઉપર આસામના રાજ્યકર્તા ભાસ્કરવર્ધન, કે જે પહેલા પ્રસિદ્ધ સમ્રાટ્ હર્ષવર્ધન કનોજપતિનો સમકાલીન ગણાય છે (એટલે કે જેનો સમય ઈ. સ. ૬૩૦-૫ સાબિત થયેલ છે) તે ભાસ્કરવર્ધનનો નિધનપુરનો એક શિલાલેખ, જેમાં તેણે પોતાનાં ૧૧ પૂર્વજોનાં નામ આપ્યા છે તે લેખનો હવાલો આપી જણાવે છે કે, Following Mr. Mookerji, we take the Gupta era to begin from 58 B. C. Then Harjjara Varman must have been ruling in 452 A. D. or about 150 years before Bhasker Varman. From the Nidhanpur inscr. of Bhasker Varman, we get the names of his eleven ancestors immediately preceding him, but these do not include the name of Harjjar Varman. In 452 A. D. the ruling chief, according to this geneology, must have been either Kalyan Varman or Ganapati Varman. There can be no doubt as to the date of Bhasker Varman, who is a contemporary of Harsh Vardhan and the Chinese pilgrim Yuan Chwang, who must have therefore ruled during the first half of the 2nd Cent. આ પ્રમાણે લખીને પૃ. ૯૧ ઉપર પોતાનો અભિપ્રાય જાહેર કરે છે કે, It is not necessary to discuss other debatable points raised in this article, which are not quite germane to the main controversy at issue. આમાં તો શિલાલેખના આધારે જ તે મંતવ્ય ખોટું ઠરાવાયું છે એટલે તેની સત્યતા વિષે કાંઈ શંકા જ રહેતી નથી. છતાં આસામ જેવા દૂર સ્થળના કોઈક એકાદ લેખ ઉપર જ બધો આધાર ન રાખતાં, અવંતિ જેવા મધ્યવર્તી દેશના અને સમસ્ત ભારતવર્ષીય ઇતિહાસ ઉપર વર્ચસ્વ ભોગવતા સમ્રાટોના હવાલા પણ તેની વિરૂદ્ધમાં આપી શકાય તેમ છે. ગુપ્તવંશની આદિ વિક્રમ સંવતથી માનતાં, કુમારગુપ્ત પહેલાનો સમય ૯૪ થી ૧૩૬ અને સ્કંદગુપ્તનો ૧૩૬ થી ૧૪૮ નો આવશે.[૮] અને તે વખતે તેઓ અવંતિપતિ અને સર્વસત્તાધીશ હતા તે તદ્દન સ્પષ્ટ જ છે. જ્યારે પશ્ચિમી ક્ષત્રપાઃ=ચષ્ઠણવંશી ક્ષત્રપોમાંના ચષ્ઠણ અને રૂદ્રદામનનો સમય તેમના શિલાલેખો અને સિક્કાના આધારે તેમના શક પર અને ૭૨ નો અનુક્રમે આવે

(૮) Indian Culture, 1939 April, by Jagan Nath, M. A. p. 411:- Inscr. of Skandgupta. It is clear that Surastra was in possession of the Guptas upto the Gupta year 138. (આમાં સૌરાષ્ટ્રની હકીકત છે પરંતુ તે સમયે તે સાર્વભૌમ અવંતિપતિ હતો જ).

છે. તેને ઈ. સ. માં ફેરવી નાંખતા ૧૩૦ અને ૧૫૦: તથા વિક્રમ સંવતમાં ફેરવતાં ૧૮૭ અને ૨૦૭ આવશે. અને આ ક્ષત્રપો પણ અવંતિપતિના જ હતા. તો શું એક વખતે અવંતિ ઉપર બે વંશના સમ્રાટો આધિપત્ય ભોગવતા હતા એમ માનવું? મતલબ કે ગુપ્ત સંવત ને વિક્રમ સંવતની માન્યતા જ હવાઈ કિલ્લા સમાન લાગે છે.

હવે પાછા મૂળ વિષય ઉપર આવી જઈએ કે મૈત્રકોના સમયની આદિ ક્યારથી ગણવી? વિદ્વાન લેખકની માન્યતા[૯] પ્રમાણે "ભટ્ટાર્ક સેનાપતિએ વલ્લભી સંવત ૧૫૦ (ગુ. સં. ૧૫૦)=ઈ. સ. ૪૬૯ માં આધિપત્ય શરૂ કર્યું જણાય છે...વ. સં. ૧૮૪માં (ઈ. સ. ૫૦૩)[૧૦] વલભીના મૈત્રક દ્રોણસિંહ 'મહારાજ' તરીકે જાહેર થાય છે. વસ્તુસ્થિતિ આ પ્રમાણે છે ને વાસ્તવિક પણ છે. પરંતુ ભટ્ટાર્ક પોતાને 'સેનાપતિ' બિરૂદથી અપનાવે છે જ્યારે દ્રોણસિંહ પોતાને 'મહારાજ' કહેવડાવે છે. તો પછી વંશની આદિ ઈ. સ. ૪૬૯ થી ગણવી કે ઈ. સ. ૫૦૩ થી, તે ગૂંચવાડો તેમને થયો છે. એટલે 'સેનાપતિ' શબ્દ વિષે ખુલાસો જાહેર કરે છે કે (જુઓ તે લેખમાં પૃ. ૪૧૧) He had not become independent...આમ સ્વયં શંકા ઉઠાવીને, મનનું સ્વયં પાછું સમાધાન કરે છે કે, It may however be objected that the title Senapati has been used even for the Sunga emperor Pushyamitra. But in that case, it was simply reminiscent of his original position and was not used by his successors. તેમણે પોતે યોજેલ સમાધાનનો પ્રધાન સૂર એ છે કે, શુંગવંશી સમ્રાટ્ પુષ્યમિત્રે પણ પોતામાટે 'સેનાપતિ' શબ્દ જ વાપર્યો છે અને તે તો પોતાની મૂળ સ્થિતિનું અવશેષ માત્ર જ સમજવું. તે જ મિસાલે આ ભટ્ટાર્ક પણ તેના વંશનો આદિપુરુષ અને સેનાપતિ છે ને તેની પછીના ગાદીએ આવનારાઓએ તે પદ વાપરવું બંધ કર્યું છે. પરંતુ અમારૂં પોતાનું મતવ્ય તેથી જુદું જ થાય છે ને તે આ પ્રમાણે છે. જેમ આભીર વંશનો આદિપુરુષ ઈશ્વરસેન હોવા છતાં, તેના સંવતપ્રવર્તક તરીકે તેનો પુત્ર ઈશ્વરદત્ત હતો (ફાર્બસ ત્રૈમાસિક ૧૯૪૨ માં આભીરની હકીકતવાળો અમારો લેખ જુઓ). જેમ ક્ષહરાટ વંશનો આદિ પુરુષ ભૂમક હોવા છતાં, સંવતપ્રવર્તક તેનો પુત્ર નહપાણ હતો (જુઓ પ્રા. ભા. પુ. ૩, તેમના વૃત્તાંતો), જેમ કુશાન વંશનો આદિ પુરુષ કડફસીઝ હોવા છતાં, સંવતપ્રવર્તક કનિષ્ક હતો (જુઓ પ્રા. ભા. પુ. ૪), જેમ ચષ્ટણવંશનો આદિપુરુષ દસ્મોતિક હોવા છતાં, તેનો શકપ્રવર્તક તો તેનો પુત્ર ચષ્ટણ જ હતો (પ્રા. ભા. પુ. ૪), જેમ ગુપ્તવંશનો આદિપુરુષ શ્રીગુપ્ત હોવા છતાં, સંવત પ્રવર્તક તો તેનો અન્ય વંશજ છે ઇ. ઇ. ઘણાં દ્રષ્ટાંતો રજુ કરી શકાય તેવા છે. તે પ્રમાણે શુંગવંશનો આદિપુરુષ પુષ્યમિત્ર હોવા છતાં, સમ્રાટ તરીકે તો તેનો પુત્ર અગ્નિમિત્ર જ થયો હતો (પ્રા. ભા. પુ. ૩, શુંગવંશનું વર્ણન જુઓ), તેમ અત્ર મૈત્રકોમાં પણ આદિપુરુષ ભટ્ટાર્ક હોવા છતાં, સ્વતંત્રતા ધારણ કરીને વંશને ઉજ્જ્વલ બનાવનાર તો, તે વંશનો ત્રીજો રાજા દ્રોણસિંહ જ છે કે જેણે તે વંશના સર્વમાં પ્રથમ 'મહારાજ'નું

(૯) ફાર્બસ ત્રૈમાસિક, ૧૯૩૬, પુ ૪, અંક ૩, પૃ. ૩૦૧: મૂળ લેખ માટે ઉપરની ટી. નં ૮ જુઓ.

(૧૦) Ind. Cult. 1939, p. 410:–Maitraka kings have continued to use the Gupta era in dating their records without any break.

બિરુદ પોતા સાથે જોડ્યું છે. એટલે મૈત્રક વંશની આદિ તો ઈ. સ. ૪૯૯ થી જ ગણવી રહે છે. તે વંશના પ્રથમ બે પુરુષો ડગમગતી ગુપ્ત સત્તાના સેવકો હતા જ્યારે ત્રીજા પુરુષ દ્રોણસિંહે, તેટલી રહેલી ધુંસરી પણ ફેંકી દઈ સ્વતંત્રતા પ્રાપ્ત કરી હતી. તેથી જ ડૉ. રેપ્સને જે નોંધ કરી છે, "વંશની આદિ કરનાર અન્ય હોય છે છતાં તેના વંશમાંથી બીજો જ તેને આગળ વધારીને પ્રકાશમાં આણે છે ને પોતાના વંશનો સંવત ચલાવે છે ઉપરાંત પોતાના પૂર્વજના માનમાં સંવતની આદિ તો તે આદિ પુરુષે રાજસત્તા ગ્રહણ કરી ત્યારથી જ આરંભે છે"—તે નોંધ વાજબી ઠરે છે. અત્ર આપણે તેમાં એટલું વિશેષ ઉમેરવું રહે છે કે, જે સિદ્ધાંત શક-સંવત પ્રવર્તાવવાની સ્થિતિને લાગુ પડે છે તે જ સિદ્ધાંત સ્વતંત્રતા ધારણ કરવાની સ્થિતિને પણ લાગુ પડે છે.

હવે સ્થાન પરત્વે વિચાર કરીએ. સુવિદિત છે કે જે સૌરાષ્ટ્ર પ્રદેશમાં મૈત્રકોએ રાજ્યસત્તા સ્થાપી તેનું પાટનગર ગિરિનગર જ (વર્તમાન જુનાગઢ) હતું. પરંતુ આ મૈત્રકોએ તે સ્થાન કાયમ રાખ્યું હતું કે ફેરફારી કરી હતી, અને કરી હતી તો શા માટે ? મૈત્રકો વલભી રાજાઓના નામથી પણ સંબોધાય છે તેમ જ તેમના સંવતને પણ વલભી-સવત જ કહેવાય છે એટલે સમજાય છે કે તેમણે વલભીપુર—વર્તમાન વળા—શહેરને પસંદગી આપી હતી. ને ફેરફારી કરવામાં રાજનગરની ભૌગોલિક સ્થિતિ મૂળે જવાબદાર હોવાનું સમજાય છે. શિલાલેખો ઉપરથી સ્પષ્ટ થાય છે કે, ગિરિનગર ને રૈવતક-ઉજ્જયંત-ગિરનાર પર્વતની તળેટીમાં બંધાયેલ સુદર્શન તળાવના આવતાં જતાં પાણીના વહેણના માર્ગની સમીપ હતું. તેથી અમર્યાદિત વરસાદ પડતાં, તળાવ ઉભરાઈ જતું ને પરિણામે શહેર ભયમાં મૂકાઈ જતું. એપિ. ઇન્ડિ. પુ. ૮ માં ઉતારેલી સુદર્શન તળાવની પ્રશસ્તિ સાક્ષી આપે છે કે, મૌર્યવંશી સમ્રાટ્ ચંદ્રગુપ્તના સમયથી માંડી, ગુપ્તવંશી સમુદ્રગુપ્તની વચ્ચેના છસો વર્ષના ગાળામાં ત્રણથી ચારેક વખત તે તળાવની પાળ (બંધ) આ પ્રમાણે અસીમ વરસાદથી તૂટી ગઈ હતી અને ઘણી ખુવારી નીપજાવી હતી. એટલે ભવિષ્યમાં આવા કુદરતી કેરથી બચવા આ વલભી રાજાઓએ પાટનગરનું સ્થાન ફેરવવા વિચાર કર્યો હોય તે તદ્દન વાજબી અને ડહાપણભર્યું જ લેખવું રહે છે. આ વિષે મજકુર શ્રીયુત્ જગન્નાથજી પોતાના લેખમાં પૃ. ૪૧૧ ઉપર જણાવે છે કે, The whole city (Girinagar) was in danger of being washed away. For many days and nights, the citizens of Girinagar had no peace of mind...The new capital was located at Valabhi-which means a raised or lofty place. That the name of Valabhi is quite modern is shown by the absence of any reference to it in very early Buddhist or Hindu works. આ બે સિવાયના ત્રીજા ધર્મના જૈન સાહિત્ય ઉપરથી કહી શકાય છે કે, તેમનાં તીર્થાધિરાજ ગિરનાર અને શત્રુંજય બન્ને પ્રથમ એકત્રિત-એક જ ગિરિરાજના બે શૃંગો—હતાં. તે કાળક્રમે છૂટા પડતા ગયા છે. ઈ. સ. ની પ્રારંભિક સદીઓમાં વલભીપુર પાસે (વળા ચમારડી) શત્રુંજયની તળેટી હતી એટલે ગિરનારની તળેટી પાસેથી પાટનગર ખસેડીને, શત્રુંજયની તળેટી પાસેના કોઈ સ્થાને પાટનગર લઈ જવાય તો જૈનધર્મીઓને તે ફેરફારથી કોઈ જાતની અગ-

વડમાં પડવા જેવું હતું જ નહીં. જેથી તે સમયની સૌરાષ્ટ્ર દેશની વસતીનો મોટો અને મુખ્ય ભાગ બની રહેલ જૈન પ્રજાના[11] ધાર્મિક સહકાર સાથે, આવા લોકહિતના કાર્યને પણ સમર્થન મળનારી યોજનાને અમલમાં મૂકી હોય તો વલભી રાજાઓની દુરંદેશી અને ડહાપણ જ બતાવે છે.

બીજી કલ્પના – અત્યારે તો કલ્પના જ છે. કદાચ વિશેષ સંશોધનને અંગે તે સત્ય હકીકત પણ બની જાય. આ મૈત્રકોની ઉત્પત્તિની ચર્ચા કરતાં, પાંચેક વિદ્વાનોના મંતવ્યો ટાંકી તે કેવા નિરાધાર હતાં તે ઉપર આપણે સાબિત કરી ગયા છીએ. સાથે સાથે કહેલું કે અમારૂં મંતવ્ય સ્થાનની ચર્ચા કરતાં જણાવશું; કેમ કે તેને ઉત્પત્તિ સાથે સંબંધ હોવાનું અમારૂં માનવું થયું છે. સૌરાષ્ટ્રનો મૂળ પર્વત ગિરનાર ને રાજનગરનું નામ ગિરનગર – ગિરિનગર. તે પર્વતનું બીજું નામ રૈવતાચળ – ઉજ્જયંત (જે જૈન સાહિત્યમાં અતિ પ્રસિદ્ધ છે). આ રાજાઓનો અધિકાર સૌરાષ્ટ્ર ઉપર. એટલે જેમ, ગુપ્તવંશની પડતીના સમયે પોતાના જ સાથી અને સહકાર્ય કરતા એવા એવા જે ગુપ્તવંશી સરદારોએ દક્ષિણ હિંદના એક પ્રદેશના ત્રિરશ્મિ – ત્રિકૂટ નામે જૈન તીર્થ ઉપરથી પોતાના વંશનું નામ ત્રૈકૂટક પાડ્યું છે તેનું જ અનુકરણ કરીને આ તેમના વલભી સરદારોએ પણ સૌરાષ્ટ્ર પ્રદેશના ગિરનાર પર્વતના અપરનામ રૈવતાચળ (ટુંકુ નામ રૈવત) ઉપરથી પોતાના વંશને રૈવતક નામ કાં ન આપ્યું હોય? એટલે કે દક્ષિણ હિંદવાળા જેમ ત્રૈકૂટક કહેવાયા તેમ આ પશ્ચિમ હિંદવાળા રૈવતક કહેવાયા હોય. અને જેમ શિલાલેખોના ઉકેલમાં અનેક ગફલતીઓ થઈ જવા પામી છે તેમ રૈવતકના સ્થાને મૈત્રયક – મૈત્રક શબ્દ ગોઠવાઈ જવા પામ્યો હોય.

परस्पर संबंध — ત્રૈકૂટકો અને મૈત્રકોના પરસ્પર સબંધ વિષે અદ્યાપિ પર્યંત કાંઈ ચોક્કસ પણે જણાયું નથી. એટલે તેઓ બન્ને ગુપ્તવંશી સરદારો થતા હતા એટલું જ હાલ તો કહી શકાશે. તે સિવાય વિશેષ માહિતી અમને તો નથી જ.

મુંબઈના શ્રી ભારતીય વિદ્યા ભવન તરફથી "ભારતીય વિદ્યા" ત્રૈમાસિક ભા. ૨, અંક ૨, માર્ચ માસનો હમણા જ પ્રકટ થયેલ છે તેમાં વાકાટક સામ્રાજ્યને લગતો એક લેખ કરાંચીના શ્રી ડુંગરશી ધરમશી સંપટે લખેલ છે અને કુશાનવંશના અંત સાથે કોઈક વાકાટક અને વિન્ધ્ય નામની વ્યક્તિઓ સંબંધ ધરાવે છે એવી સ્મૃતિ હોવાથી આ લેખદ્વારા કાંઈક પ્રકાશ મળવાની જીજ્ઞાસાએ આખો લેખ વાંચી જવા મન થયું. તેમાંથી ચાર પાંચ વાક્યો ઉપયોગી તેમ જ ચાલતા વિષય પરત્વે પણ સંબંધિત લાગ્યા. તે અત્રે ઉતારશું અને સાથે સાથે તે ઉપરથી ઉપજતા વિચારો જણાવશું.

---

(૧૧) વલભી રાજાના દરબારમા બૌદ્ધ અને જૈનાચાર્યો વચ્ચે ધાર્મિક વાદવિવાદ અનેક વખત થયાની નોંધ તે તે સાહિત્યગ્રંથોમાંથી મળી આવે છે. વળી તેમાના એક શિલાદિત્ય (આ વંશમાં સાત રાજા શિલાદિત્યનામધારી થયા છે)ની બહેન દુર્લભદેવીને ભરૂચ – લાટ દેશના ગુર્જરવંશી દદ્દાક રાજાઓના વંશમાં પરણાવી હતી જેમના પુત્ર પ્રખ્યાત જૈનાચાર્ય મલ્લવાદિસૂરિએ બૌદ્ધાચાર્યને વાદમા હરાવ્યાની બીના જૈન સાહિત્યમાં સુવિદિત છે. આવાથી કે વલભી રાજાઓ પોતાની પ્રજાની ધાર્મિક લાગણીને આદરપૂર્વક સંતોષતા રહેતા હતા. એટલે વલભીપુર ગામે રાજગાદી લઈ જવામા નિમિત્તભૂત બન્યા હોય તો તે આ પ્રમાણે પણ એક કારણ હતું જ.

"પૃ. ૧૫૩—પુરાણો તુખારા કુશાનોના પતનની નોંધ કરે છે. તે પછીના સમ્રાટોને તેઓ વિંધ્યકો તરીકે સબોધે છે. આ સામ્રાજ્યનો આરંભ ૨૪૮ થી છે. વાકાટકો બ્રાહ્મણો જ હોવા જોઈએ કેમ કે તેઓએ અશ્વમેધ યજ્ઞો કર્યા છે...તેમનું વંશપરંપરાનું નામ ત્રૈકૂટક હતું.[૧૨] ગુપ્તવંશના ઉદય અને વિકાસ સમજવા માટે વાકાટકવંશનો ઇતિહાસ અતિ અગત્ય ભોગવે છે, કેમ કે ચંદ્રગુપ્ત બીજાએ પોતાની દીકરી પ્રભાવતીગુપ્તાને વાકાટક રૂદ્રસેન બીજાને પરણાવી હતી. (પૃ. ૧૫૫) રાજગાદી મધ્યપ્રાંતમાં પ્રવરપુરમાં હતી. (પૃ. ૧૫૮) તેમના એક વંશજે (ખંડિયા પુષ્યમિત્રે) આભીરો સાથે મળીને ગુપ્તવંશના કુમારગુપ્ત સમ્રાટ ઉપર આક્રમણ કર્યુ હતું...સાતવાહનોના પતન પછી જે રાજ્યો ઉદ્ભવ્યા હતા તેમને વિંધ્યશક્તિએ ભારશિવોના સેનાધ્યક્ષ તરીકે જીતીને રાજ્યોનો અંત આણ્યો હતો."

આમાં વાકાટકવંશી વિંધ્ય—વિંધ્યશક્તિએ પોતાના સામ્રાજ્યનો પ્રારંભ ઈ. સ. ૨૪૮ માં કુશાનવંશી તુખારોને હરાવીને કર્યાનો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ છે. એટલે એક વાત સાબિત થઈ ગઈ કહેવાશે કે કુશાનવંશનો અંત તે જ વર્ષે આવ્યો છે. વળી તેની રાજગાદી મધ્યપ્રાંતમા, કે જે પ્રાચીન સમયે ચેદી દેશ કહેવાતો હતો ત્યાં બતાવી છે તેમજ કલચૂરી યા ચેદી સંવતને માનનારા નૃપતિઓ પણ મધ્યપ્રાંત અને વરાડમાંજ વિશેષપણે થયા છે એટલે આ સંવત્સરનો પ્રારંભ પણ વિંધ્ય—વાકાટકે સામ્રાજ્ય સ્થાપ્યુ ત્યારથીજ—ઈ. સ. ૨૪૯ થી—થયો કહેવાય તે પણ બરાબર જ છે. બીજી બાજુ આપણે સાબિત કરી ગયા છીએ કે. આભીરો પણ ચષ્ઠણવંશી ભૂપતિઓથી ઈ. સ. ૨૪૯ માંજ સ્વતંત્ર બની પોતાનું રાજ્ય સ્થાપિત કરવા શક્તિવંત બન્યા હતા. જો કે આ ચષ્ઠણવંશીઓ અને કુશાનવંશીઓ એક જ ઓલાદની પ્રજા છે. પરંતુ ચષ્ઠણવંશીઓ પ્રથમ કુશાનવંશી સમ્રાટોના (જુઓ પ્રા×ભા. પુ. ૪, તે બંન્નેના વૃત્તાંતો) સૂબાઓ હતા ને પાછળથી સ્વતંત્ર થયા હતા એમ સિદ્ધ થયું છે. એટલે ઉત્તર હિંદમાં કુશાન વંશ અને દક્ષિણ હિંદમા ચષ્ઠણવંશીઓની સત્તા નબળી પડવાનો પ્રસંગ કેમ જાણે કુદરતે પણ સંકેત સાધીને એક જ વર્ષમાં આદરી દીધો હોય એમ દેખાઈ આવે છે તે માત્ર કાકતાલીય બન્યું છે. જેથી ઉત્તર અને મધ્ય હિંદનો કલચૂરી—ચેદી સવત અને દક્ષિણ હિંદનો આભીર સવત એક જ વર્ષમાં શરૂ થયા છે. પરંતુ તે બન્ને એક તો ન જ કહેવાય. વળી કલચૂરીના સ્થાપકો—વાકાટકો બ્રાહ્મણો હતા તથા અશ્વમેધ યજ્ઞો કરતા હતા એમ જણાવાયું છે જ્યારે આભીરો જૈનધર્મી હતા અને તેથી અશ્વમેધાદિ યજ્ઞોથી પર રહેતા હતા. આ પ્રમાણે પણ તે બન્ને સવતની ભિન્નતા પુરવાર થઈ શકે છે. બાકી વાકાટકની હકીકતના લેખક શ્રીયુત સંપટજીએ જે લખ્યું છે કે "એમનું વંશપરંપરાનું નામ ત્રૈકૂટક હતું" ને જે વિષે અમે શકા દર્શાવી છે (જુઓ ઉપર પાદટી. નં. ૧૨) તે અત્યારની પ્રચલિત માન્યતાની પ્રતીક છે એમ જાણવું રહે છે. કેમ કે તે વિંધ્યશક્તિના વંશજોએ ક્યાંય પણ પોતાને ત્રૈકૂટક તરીકે—અથવા વાકાટક સિવાયના કોઈ અન્ય સંબોધનથી—જણાવ્યાનું નીકળતું નથી. જ્યારે આભીરોએ

(૧૨) અમને પોતાને આ વિષે શંકા લાગે છે.

પોતાને આભીરો તરીકે જ–નહીં કે ત્રૈકૂટક નામથી–ઓળખાવ્યા છે. આ સઘળી હકીકતથી પુરવાર થાય છે કે, મૈત્રકોને કે ત્રૈકૂટકોને કોઈ જાતનો સામાજીક સંબંધ નહીં જ હોય.

एक अन्य हकीकत વાકાટક વિષ્યે ઈ. સ. ૨૪૮ થી ૨૮૪=૩૬ વર્ષ અને તે બાદ તેના પુત્ર પ્રવરસેન પહેલાએ (જેના નામ ઉપરથી પ્રવીરપુર નામ રાજનગરનું પડ્યું હતું.) ૨૮૪ થી ૩૪૪=૬૦ વર્ષ મળી કુલ ૯૬ વર્ષ (ભારતીય વિદ્યા પુ. ૨, પૃ. ૧૯૬) રાજ્ય કર્યું છે. તે બાદ મુખ્ય ગાદીએ નબળા તેમ જ સગીર રાજાઓ થયા છે. જ્યારે પ્રવરસેનના બીજા પુત્રો જે હતા તેમનાથી ઉતરી આવેલા સર્વે મૂળ ગાદીના ખંડિયા તરીકે રહ્યા દેખાય છે. વળી ગુપ્ત સમ્રાટ્ ચંદ્રગુપ્ત બીજાએ (સમય ઈ. સ. ૩૭૫ થી ૪૧૩) પોતાની પુત્રી પ્રભાદેવીગુપ્તાને, મૂળ ગાદીપતિ રૂદ્રસેન બીજાને (સમય ૩૭૫–૩૯૫=૨૦ વર્ષ) પરણાવી છે એટલે આ જોડાણથી વાકાટકો સાથે ગુપ્તવંશીઓનો સામાજીક સંબંધ બંધાયો હતો ને ચંદ્રગુપ્તે સગીર વાકાટકોના સમયે રાજસત્તા પોતાના હાથમાં લીધી હતી. તેમ જ પડોશના બસીર રાજ્યના નાગ રાજાની કુંવરી કુબેરાદેવીને[13] પોતે પરણી તેમની સાથેનો પણ સબંધ સાધ્યો હતો. એટલે કાંઇક પોતાના સામ્રાજ્યની, કાંઇક પોતાના જમાઈ વાકાટકની, અને કાંઇક પોતાના સસરા નાગની–એમ મળી ત્રણે સત્તાના જોરથી સમ્રાટ્ ચંદ્રગુપ્તે નિષ્ફીકર બની રાજધુરા ચલાવ્યે રાખી હતી. તેવામાં વાકાટકના એક વંશજ અને ખંડિયા પુષ્યમિત્રે આભીરો સાથે મળીને[14] ગુપ્તવંશી સમ્રાટ્ કુમારગુપ્ત ઉપર આક્રમણ કર્યું હતું, એવો ઉલ્લેખ મળી આવે છે. આમાં કુમારગુપ્ત પહેલો કે બીજો એમ સ્પષ્ટ લખ્યું નથી પરંતુ પહેલાનો સમય ઈ. સ. ૪૧૩–૪૫૫ અને બીજાનો ૪૭૩–૭૪ નોંધાયો છે એટલે કમમાં કમ ૪૧૩ સુધી અને મોડામાં મોડી ૪૭૩ સુધી આભીરોની હયાતી હતી એમ કળી શકાય છે. તેમ એટલું પણ સિદ્ધ છે કે, જ્યારે એક વ્યક્તિ બીજાની કુમકની માગણી ત્રીજા ઉપર હલ્લો લઈ જવા સમયે કરવા નીકળે ત્યારે તે કુમકની અપેક્ષા રાખનાર પ્રથમ વ્યક્તિની નજરમાં, જે બીજી વ્યક્તિ પાસે કુમકની માગણી કરાય છે તે, ત્રીજી વ્યક્તિના હરિફ અથવા તો સમોવડીયા તરીકે દેખાતો હોય ત્યારે જ. એટલે સમજવું રહે છે કે આ સમયે પણ આભીરપતિઓની ગણત્રી ઠીકઠીક સત્તાશાળી રાજ્યકર્તા તરીકે થતી હતી જ. આથી સિદ્ધ થાય છે કે આભીર સત્તાનો અંત સમુદ્રગુપ્તે ઈ. સ. ૩૫૦ આસપાસ કરી વાળ્યો હશે એવું અનુમાન કાઢવું અસ્થાને છે. બલ્કે ઈ. સ. ૪૨૦ આસપાસ ઠરાવી શકાશે. જેથી સાત આભીરપતિઓનો રાજ્યકાળ હવે ઈ. સ. ૨૪૯ થી ૪૨૦ સુધી=૧૭૦ વર્ષનો આશરે ઠરાવવો પડશે.

*

(૧૩) ભારતીય વિદ્યા પુ. ૨, પૃ. ૧૫૧:–કુબેરાનાગને મહાદેવી તરીકે વર્ણવી છે. એની (ચંદ્રગુપ્ત બીજાની) મૂળ પત્નીનું નામ તો ધ્રુવદેવી છે. આ ધ્રુવદેવી તે જ કુબેરાદેવી કે બન્ને સપત્નીઓ છે તે બરાબર જણાતું નથી.

(૧૪) એટલે સાબિત થાય છે કે આભીરોની હૈયાતિ આ સમય સુધી (ઈ. સ. ૪૧૩) હતી.

देवप्रभगणिकृत

कुमारपाल रास

[पंदरमा शतकनुं एक ऐतिहासिक गूर्जर काव्य]

संपादक—**भोगीलाल ज. सांडेसरा**, बी. ए. (ऑनर्स)

*

मारा मित्र पं. अमृतलाल मोहनलाल भोजक पासे आशरे पोणाबसो पानानो एक प्राचीन हस्तलिखित गुटको छे, जे आखोये सं. १५५९ तथा सं. १५६० एम बे वर्षोमां थईने कोई भुवनवल्लभगणि (संभवतः यति)ना हाथे लखायो छे; एम तेमांना पुष्पिकालेखो उपरथी जणाय छे. ए गुटकाना पृ. ११५ थी ११७मां देवप्रभगणिकृत 'कुमारपाल रास' ए एक महत्त्वनुं ऐतिहासिक काव्य लखायेलुं छे. काव्यना अंते आपेला पुष्पिकालेख उपरथी सं. १५५९ना चैत्र वद ३ ने शुक्रवारना दिवसे तेनी नकल थई होवानुं नक्की थाय छे.

काव्यनी छेल्ली कडीमां कर्ता देवप्रभगणि पोतानुं नाम आपे छे तथा सोमतिलकसूरि पोताना गुरु छे, एम जणावे छे. काव्य क्यारे रचायुं ते कर्ताए आपणने कह्युं नथी. परन्तु तपागच्छमां सोमतिलकसूरि नामना जे आचार्य थई गया छे तेमनो जन्म सं. १३५५, दीक्षा १३६९, सूरिपद १३७३ अने स्वर्गवास सं. १४२४मां थयां हतां, एम पट्टावलीओ उपरथी जणाय छे. एटले सोमतिलकसूरिनो समय तो निश्चित ज छे. हवे, पाटणना संघवीना पाडाना जैन ज्ञानभंडारनी सं. १४३५मां लखवामां आवेली 'पार्श्वनाथचरित्र'नी प्रतनी प्रशस्तिमां सोमतिलकसूरिना शिष्यमंडळमां देवप्रभगणिनुं नाम पण मळे छे.[1] अर्थात् देवप्रभगणि

---

१. ग्रन्थसंख्या ६०७४ ॥ छ ॥ संवत् १४३६ वर्षे पोष सुदि ६ गुरौ श्रीपार्श्वनाथचरित्रपुस्तकं लिखापितमस्ति ॥ छ ॥ × × ×

॥ छ ॥ श्रे० वीरा आल्हू सुतेन धार्मिकरणसिंहेन श्रीतपागच्छगगनभास्कर श्रीदेवेन्द्रसूरि तत्पट्टालंकरणश्रीविद्यानन्दसूरि – तत्प० श्रीधर्मघोषसूरि तत्प० श्रीसोमप्रभसूरि तत्प० श्रीविमलप्रभसूरि ॥ १ ॥ श्रीपरमाणंदसूरि ॥ २ ॥ श्रीपद्मतिलकसूरि ॥ ३ ॥ जगद्विख्यात**श्रीसोमतिलकसूरि** तत्प० श्रीचन्द्रशेखरसूरि श्रीजयानन्दसूरिचरणकमलचंचरीकाणां सांप्रतं गच्छनायकभट्टारकप्रभुश्रीदेवसुन्दरसूरिवराणां श्रीज्ञानसागरसूरि – श्रीकुलमण्डनसूरि – श्रीगुणरत्नसूरि महोपाध्यायश्रीदेवशेखरगणि – **पं० देवप्रभगणि** – पं० देवमंगलगणिप्रमुखपरिवारसहितानां श्रीसंघसभामध्ये व्याख्यानार्थं श्रीपत्तनीय सं० सोमार्षि सं० प्रथमादि श्रीसंघस्य लेखयित्वा समर्पितम् ॥ छ ॥

—देशविरति धर्माराधक समाज प्रकाशित प्रशस्तिसंग्रह, पृ. ७०–७१

सं. १४३६मां हयात हता, एटले तेमनो आ 'कुमारपालरास' पण विक्रमना पंदरमा शतकना पूर्वार्धमां रचायो होवानुं नक्की थई जाय छे. प्रस्तुत पुस्तक-प्रशस्तिमां कुलमंडनसूरिनुं नाम मळे छे. 'मुग्धावबोध औक्तिक'ना कर्ता तरीके जूनी गूजरातीना अभ्यासीओने सुपरिचित कुलमंडनसूरि सोमतिलकना शिष्य-समुदायमांना ज हता ए जाणीतुं छे. प्रशस्ति प्रमाणे, देवप्रभ अने कुलमंडन समकालीन हता. कुलमंडननुं 'मुग्धावबोध औक्तिक' सं. १४५०मां तथा 'विचारामृतसंग्रह' सं. १४४३मां रचायेलां छे. ए रीते पण देवप्रभनो आ 'कुमारपालरास' पंदरमा सैकाना पूर्वार्धमां रचायो होवानुं सिद्ध थई शके छे.

*

आ ४१ (४२-४३ जि. वि.) कडीनुं नानकडुं पण छटादार काव्य मुख्यत्वे रोळा छंदमां रचायुं छे. जो के वच्चे वच्चे छ वस्तु आवे छे. छंदोरचना उपर कविनो हाथ सारी रीते बेठेलो छे, ए कोई पण वांचनारने जणाई आवशे.

आरंभमां महावीर, गौतमस्वामी वगेरे मुनिवरो, सरस्वती, कपर्दी यक्ष, अंबिका-देवी वगेरेने नमस्कार करीने कवि कुमारपालना अपार गुणोनुं वर्णन करे छे. कुमारपाले अमारिघोषणा प्रवर्तावेली तेथी बोकडा, गाडर, ससलां, पारेवां, पाडा, हरण, रोझ, सूवर, चित्ता, तेतर वगेरे प्राणीओने अभयदान मळवाथी जे सुख थई गयुं हतुं तेनुं कवि वर्णन करे छे. जु अने मांकणने पण लोको मारता नथी. हेमसूरिना समयमां हरणो अने हरिणीओ सुखे केलि करे छे. पांजरामांनां लावां अने पोपट पण सुखपूर्वक रहे छे. काबर अने होला मेनाने कहे छे, "पाणीमांनां माछलीने हवे लोधा मारता नथी." सारस अने मोर कुमारपालने वधावे छे. कागडा, सर्प अने कुतराने पण कोई मारतुं नथी.

जे शिकारना व्यसनथी दशरथने पुत्रवियोग थयो हतो तेनो कुमारपाले निषेध करवाथी जलचर, थलचर अने खेचर जीवने हवे कोई मारतुं नथी. जे द्यूत-व्यसनथी नलदमयंतीनो वियोग थयो अने बार वरस सुधी वनमां भमतां पांडवना मनमां शोक पेदा थयो ते द्यूत हवे जुगारी रमता नथी; अने 'मारी' एम बोलता नथी. जे मदिरा व्यसनथी यादवकुलनो नाश थयो हतो तेनो हवे राजाज्ञाथी नाश थई गयो छे.

मांसव्यसन के जेने लीधे सुदास अने श्रेणिक नामे राजाओ दुःख पाम्या हता तेनो कुमारपाले निषेध कर्यो अने आमिष भोजनना दंडमांथी बत्रीस विहार

कराव्या. गणकागमननुं पण राजाए निवारण कर्युं. वेश्याओ पण सती सरखी बनी, जिनमूर्तिनुं पूजन अने गुरुनी पादवंदना करवा लागी. चोरनो उपद्रव पण देशमांथी नाश पामी गयो अने घरनां बारणां उघाडां मूकीने लोक निःशंक सूवा लाग्या. परस्त्रीगमननो पण कुमारपालना राज्यमां परिहार थई गयो.

कुमारपालना राज्यमां पाणी दिवसमां त्रणवार गळवामां आवतुं; तथा सर्वे लोको प्रतिक्रमण करता. अति सुन्दर शिल्पवाळा विहारो बंधावीने राजाए अणहिल-वाडनी शोभा वधारी दीधी.

मंत्रीए देश-विदेशमां खबर मोकली संघ एकटा कर्या, अने पछी गूजरातथी आखो संघ सोरठ तरफ चाल्यो. ठामेठामे मंगलाचार, दान, नाटारंभ अने रास थवा लाग्या. संघनी साथे श्रीहेमसूरि तथा बीजा सेंकडो श्रमणो तथा श्रमणीओ हतां. राजानी समृद्धि जोई लोकोने थवा लाग्युं के आ ते भरतराजा छे? सगर छे? दशार्णभद्र छे? के श्रीकृष्ण छे? नल राजा छे? के खुद इन्द्र छे?

गामेगाम जिनपूजा करता संघपति शत्रुंजय पहोंच्या. त्यां ऋषभदेवनी पूजा करी तथा गिरनार उपर यादवपति नेमिनाथनी पूजा करी. दान देतो राजा संघ-सहित वाजते गाजते पाछो वळ्यो. वनथळीमां महावीरने, मांगरोळमां पार्श्वनाथने, तथा दीव, कोडीनार अने सोमनाथ पाटणमां पार्श्वनाथने नमस्कार कर्या. कुमार-पाल कहे छे के, "हे ऋषभदेव, हुं एटलुं ज मागुं छुं के तारी ओळखाण थई न होय एवा कुळमां मने चक्रवर्ती न बनावीश, पण शत्रुंजय उपर पंखी बनावजे."

संघ पाटणमां आव्यो अने यात्रा करी आवनार लोको कुमारपाल अने हेम-सूरिने आशीष आपवा मंड्या. आवां आवां महाकार्यो करनार कुमारपाल जेवो राजा चार जुगमां थयो नथी अने थशे नहीं.

चौलुक्यवंशीय त्रिभुवनपालना कुल-अंबरमां भानु समान कुमारपाल विक्रम सं. ११९९मां गादीए बेठो हतो.

अंतमां कवि कहे छे के ज्यां सुधी मेरु पोताने स्थानेथी न चळे, ज्यां सुधी चंद्र अने सूर्य छे, ज्यां सुधी शेषनाग भूमि अने सागरनो भार धारण करे छे, ज्यां सुधी जगतमां धर्म छे अने ज्यां सुधी ध्रुव निश्चल छे त्यां सुधी कुमारपाल राजानो आ रास जगतमां आनंदो.

श्रीसोमतिलकसूरि गुरुना पादप्रसादथी देवप्रभगणिए आ रास रच्यो छे. जिननी रक्षा लईने जे आ रास भणशे—गणशे अने सांभळशे ते सर्वे दुरितोनो नाश करी शिवपुरी प्राप्त करशे.

आ रासमांथी कोई महत्त्वनी नवी ऐतिहासिक हकीकत जो के प्राप्त थती नथी, तो पण पंदरमां सैकामां ऐतिहासिक विषय उपर रचायेला एक काव्य तरीके तेम ज मुकाबले जूनी एवी हाथप्रत उपरथी अहीं तेनुं संपादन थयेलुं होई भाषाशास्त्रनी दृष्टिए पण ए काव्य अगत्यनुं छे ज. २३ मी कडीना उत्तरार्धमां –

देस विदेसह मिलिय संघ पहुतउ गूजरात,
वाहुड मंत्री विनवइ ए सुणि स्वामी वात ॥

ए प्रमाणे आवतो 'गूजरात'नो उल्लेख खास ध्यान खेंचे तेवो छे. आपणा प्रान्तने 'गूजरात' नाम क्यारे मळ्युं ए हजी चर्चास्पद विषय छे. प्राचीन गूजराती साहित्यमां पण 'गूजरात' शब्दनो प्रयोग वारंवार थयेलो नजरे पडतो नथी. सोळमा सैका सुधीना साहित्यमां एवा जे थोडाक उल्लेख मळ्या छे तेमां उपर्युक्त उल्लेख पण एक उमेरो करे छे.†

*

[**टिप्पणी** – भाई श्री भोगीलाल सांडेसरा द्वारा प्रथम ज प्रकाशित थता प्रस्तुत रासना छेल्ला प्रुफनुं संशोधन करी छापवानो ऑर्डर दीधा पछी, मने एनी मारी पासेनी प्रतिनुं स्मरण थयुं अने शोधतां ते तरत ज हाथमां पण आवी गई. तेनी साथे प्रुफ सरखावी जोता मने ए बे वच्चे केटलाक सामान्य अने केटलाक विशिष्ट पाठभेदो दृष्टिगोचर थया, तेथी तत्काल प्रेसमां जई मशीन ऊपर चढेला फार्मने उतरावी तेनुं फरी संशोधन – संपादन करवुं पड्युं छे; अने समयना अभावे, मूळ संपादकनी अनुमति लीधा सिवाय ज, में आ रासना पाठमां केटलुंक संशोधन – परिवर्तन कर्युं छे, जे भाई सांडेसरा क्षम्य गणशे.

मारी पासेनी प्रति २ पानानी छे अने ते वधारे शुद्ध होई, घणुं करीने वधारे जूनी पण छे. श्री सांडेसरावाळी पोथीनो पाठ केटलेक ठेकाणे भ्रष्ट छे अने केटलेक ठेकाणे विकृत पण छे. प्रारंभनां बे पद्यो (बीजुं अने त्रीजुं), जे प्रसंगानुरूप होई आवश्यक छे, ते सांडेसरानी पोथीमां मुद्दल नथी मळतां. हुं अहिं ए मारावाळी प्रतिना वधारे शुद्ध पाठोने मूळमां दाखल करी, सांडेसरानी प्रतिना पाठोने नीचे पादपंक्तिओमां मूकुं छुं. मारा वाळी प्रतिमां ३६ मा अंक वाळुं पद्य मळतुं नथी. मने ए क्षेपक होय एम पण लागे छे – **जिनविजय**]

* * *

† 'गूजरात' ए शब्दनो प्रयोग वि. सं. १२८९ मां रचाएला आबूरासमां उपलब्ध थाय छे तेथी वस्तुपाल युगमां तो ए शब्द प्रचारमां आवी गयो हतो एटलुं निश्चित थाय छे – जिनविजय

॥ ई० ॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

[रोला]

पढम जिणिंदह नमीय पाय अनइ[1] वीरह सामी,
गोयम पमुह जि सूरिराय मुणि सिद्धिहिं गामी;
समरवि सरसति, कवडि जक्ख, वरदेवि अंबाई,
[2]कुमरनरिंदह तणउ रासु पभणउं[3] सुहदाई. १

॥ वस्तु ॥

*चच्चनंदन चच्चनंदन गुणह संपन्न,
†पाहिणिदेवी उअरि धरिउ मोढवंसि उपन्न सुणीइ.
पुप्फवृष्टि सुरवइ करइ ए जास जनमि उवतार;
चंगदेव चिर जीविजिउ जिणिसासणि साधार. २

*बालकालि संजम लियउ गुरु विनय करंता,
हेमसूरि गुरु नाम दिन्न जगि जस जयवंता;
मति थोडी गुणतणी रासि हउं कहवि न जाणउं,
हेमसूरि गुरुतणउं चरित किम करीअ वक्खाणउं. ३

मेरु षडी फरसिय,[4] जाव मसि कीजइ सायर,
अंत न लाभइ गुणह तणउ[5] जिम चंद-दिवायर;
पहिलउं धरीइ धजपताक गिरि मेरु समाणा,
कुमरविहारह करउ भगति सवि मंडलिकराणा.[6] ४

सोवंनथंभे पूतली ए मइं मयगल दीठा,
संभलि कुमरनरिंद राउ[7] जिनपंडित बइठा;
रायहं कुमरनरिंद राय हेमसूरि बूझावइ,
आहेडउ वारिउ, सयलदेसि राय[8] धम्म करावइ. ५

अरिट्ठनेमि जिम कुमरपालि डांगरउ दिवारिउ,[9]
छाली बोकड करइ वात, गाडरि वधावइं;[10]
ससला नाचइ रुलियभरे अजरामर हूआ,
लहिया दहिया करइं आलि, पारेवइ सहीआ. ६

---

1 अनु. 2 मारी प्रतिमां घणे ठेकाणे 'कुमर'ना बदले 'कुमुर' एवी जोडणी करेली छे. 3 पभणूं. 4 फरिसियइ. 5 तणु. 6 मंगलकरणो. 7 राय. 8 सयल राउ धर्म्म. 9 डांगरुं दवारइ. 10 गाडरइं वधावउ. * आ बे पद्यो सांडेसरानी प्रतिमां सर्वथा नथी. † वस्तुनी आ कडीमां एक पाद त्रुटित होय एम लागे छे. जो के अर्थ दृष्टिए कांई अपूर्णता देखाती नथी पण छंदनी दृष्टिए एक पंक्ति खूटे छे.

भइंसा अनइ[1] हरिण रोझ सूयर अनइ[2] संबर,
चीत्रा कुमरनरिंदराजि रंगि नाचइं तीतर;
जूअ न मांकुण[3] लीख कोइ कहवि न[4] मारइ,
हरिणा-हरिणी[5] करइं केलि सुषि[6] हेमसूरिवारइ. ७

लावां लवइं पंजर थियां सुषि अच्छइं भूतलि,
सूइंडां[7] नवि पंजरइ थियां पुण नाचइं सीतलि;
काबरि अंनइ होल भणइ, सांभलि तूं[8] सारइ,
पाणी माहि जि मच्छली ए लोधा नवि मारइ. ८

सारसरी सरि हांस लवइ मोरडीअ वधावइं,
'अक्खई[9] होजे कुमरपाल, अम्ह मरण[10] न आवइं;'
काग सरप अनइ[11] सुणह घाउ कोइ नवि घालइ,
'न मरउं[12] कुमरनरिंद राजि, सखि हीयडउं[13] माचइ.' ९

कंटेसरि चामंड भणइ, 'सांभलि[14] तउं साउगि,
छंडि न पडणह तणीय वात अच्छि भइया सावगि[15];'
कंटेसरि आपणइ चित्ति थाकी[16] आलोची,
'हेमसूरि सरिसउ किसउ रोसु, जेह[17] न सकउं पहुंची.' १०

वालीनाह करहहडा[18] ए बे पडणि पडंता,
छंडि न आमिष तणी आस अच्छि बाकुल घंता;
वालीनाह[19] दिउ गाम, लीहावउ[20] वहीए,
मांडइ लाडूइं[21] करउ भगति अनइं[22] ईडरीए. ११

पारधि जीवन पोसीय ए बहु पावह जोगु,
पारधि खेलत दसरथह हूउ पुत्रवियोगु;
कुमरनेरसर नियरज्जि आहेडउ वारइं,
जलचर थलचर खचर जीव इह कोइ न मारइं. १२

---

1 अनूइ. 2 अनु. 3 मांकण लोक. 4 किम्हइ न वि. 5 हरणि. 6 मारी प्रतिमां सखि. 7 सूयडां. 8 तउ. 9 अषइ य. 10 मरिणु. 11 सरप सुणहडा. 12 मरउं. 13 सुषि हीडउं वुलणइ. 14 सांभलि असाउगि. 15 छंडणि पडणा तणीय टाप अछि भइआं सावगि. 16 थाउकी. 17 जस न सकुं. 18 वालीनाहहथारा. 19 वालीनाहह दियउ. 20 लेहावउ. 21 मंडइ लहुय. 22 अंतरइ.

॥ वस्तु ॥

पट्टणि[1] टालिय पट्टणि टालिय जीवसंघार,
सूअर संबर रोझ तहिं फिरइं, जेह[2] जिम मणह भावइं,[3]
दहीआ तीतर सालहिय कच्छ मच्छ नहु मरण आवइं;
छाली बोकड गाडरहं कोइ न घालइं घाउ,
राजु करइं जां मेइणिहिं कुमरड[4] रायहंराउ. १३

[रोला]*

जूअ वसणि हुउ नलनरिंद दमयंति विओगु,
अडवि भमंतां बार वरिस पांडव मनि सोगु;
देषी दूषण जूअतणउं नवि षेलइं सारि,
जूआरी नवि जूय रमइं, नवि बोलइं मारि. १४
मंसवसणि सोदास[5] राय, पामिउ दुहसेणीय,
दीठी नरगह तणीय भूमि नरवइ पुण सेणिय;
आमिषभोयण तणइ दंडि बत्तीस विहार,
राय करावइ[6] कुमरपाल जगि[7] तिहुअणसार. १५
दूषण[8] मदिरापान तणइ जायवकुलनासो,
किरिउं[9] दीवायणि दुट्ठ देवि बारवइ विणासो;
रायादेसइं नीच सेवे हिव मदिरा मेल्हइं,
मतवाला नवि मधु[10] करइं, भूंभली[11] न षेलइं. १६
गणिकागमणु निवारिउं ए नरवइ निय[12] राजि,
छंडवि वेशावसण लोग लागा सवि काजि;
वेशा कीधी माइ[13] सरिस तइं[14] कुमरड राय,
तां पण पूजइं जिणह मुत्ति, वंदइ गुरु-पाय. १७
वेशावसणिइं गमइ अरथ जो पुरिस अहन्नउ,
पाछइ झूरइ मनहमाहि जिम वणीय[15] कयन्नउ;

---

1 मारी प्रतिमां पडण टालिय. 2 जीह. 3 मारी प्रतिमां भावहिइ. 4 कुमारपाल.
* मूळ प्रतमां 'चुपइ' लख्युं छे. 5 सोदासि राइ. 6 कराविय. 7 जग. 8 दूसणि.
9 करीय. 10 मदु. 11 जूय भुलीय. 12 नरपति नइ. 13 सइय. 14 तहिं.
15 वणिउ.

चोरह जणणी इम भणइ ए, 'सांभलि वछ, वात,
निश्चइं जीवडउ[1] जाइसइ ए जइ पाडिसि घात.' १८
दीसइ चोर न देसमाहि, जिम सुसमइ[2] रंकु,
घरिं ऊघाडे बारणइ लोए सूयइ निसंकु;[3]
परस्त्रीदोसिहिं[4] रावणइ[5] ए दिउं नरगि पीआणुं,[6]
दसरथनंदणि रामदेवि किउं अकह[7] कहाणउं. १९
नियनिय मंदिरि भणइं नारी, 'सांभलि भरतार,
नारि पियारिय जोअतउ[8] हिव जाणिसि[9] सार;'
रंगिइं[10] घरणी भणइ, 'नाह, सुणि धम्म[11] विचारो,
मनसुद्धिहिं[12] हिव करि न सामि, परस्त्री परिहारो. २०

॥ वस्तु ॥

जूय वारिय जूय वारिय मंससंजुत्त,
सुरापाणु नवि जाणीइ,[13] वेसवसण नयणे[14] न दीसइ,
पारधि जीव न मारिइं,[15] चोर कोइ दृष्टिइं न दीसइ;
कुमरउ राउ उम्मूलि तउं[16] परस्त्रीनउ परिहार,
सातइ वसण निवारि करि[17] गहिउ धम्मह भार. २१
पाणिय गालइं तिन्नि वार अणात्थमिय[18] करंता,
कुमरनरिंदह तणइ राजि सावइ[19] पडिक्कंता;
वड्डा सरावग थिया अच्छइं, श्रावकविधि पालइं,
धम्महिं[20] लीणा रातिदिवस सवे पातग टालइं.[21] २२
बहिनडली बंधव भणइ, ए 'मज्झ कउतिगु भावइं,
हेमसूरि गुरु तणउ बोध अम्ह भलउ सुहावइं;'
कुमरविहार वंदावि चालि, जिण राय कराविय,
अणहिलवाडउं कुमरपालि तलितलि[22] मंडाविय. २३

---

1 **मारी प्रतिमां** जीवी जाइसि. 2 **मारी प्रतिमां** सूसमि. 3 घर उघाडइ बार लोक हिव सूउ निसंक. 4 दोसह. 5 **मारी प्रतिमां** रावणएहिं. 6 नरगपयाणिउ. 7 अकहि कहाणूं. 8 नारी पीआरी जोयतओ. 9 आणसि. 10 रंगहिं. 11 मनि धर्म्म. 12 °सुद्धि हिव. 13 जाणीयए. 14 वेस वसणिहि न. 15 मारीय ए. 16 रायउ मूलतउ. 17 वसनि निवार करी. 18 अणथमीय. 19 सविह. 20 धम्मिहिं 21 °दिवस पातक ते टालइ. 22 तिलतिल.

सोवनथंभे पूतली ए आपण जोअंती,
निरुवम रूविहि आपणइ ए तिहुयण मोहंती;
हीरे माणिक्य[1] चूनडी ए पाथरखंड जडिया,
निम्मल कंती बिंबरासि अइनिउणे घडिया. २४

मंतिय मोकलि देसि देसि बहु संघ मेलावइ,
धामी बहु आसीस दिइं, राउ जात चलावइ;
देस-विदेसह मिलिय संघ पहुतउ गूजरात,
बाहड[2] मंत्री वीनवइ ए, 'सुणि स्वामिय वात. २५

चउरा गूडर संघ तणा नवि लाभइ पार,
चालि न नरवर सुरठ[3] भणी म न लाइ सि[4] वार;'
दीधउं संघपति तीरथ भणी पहिलउं पीआणउं,[5]
भोली बुद्धिहिं आपणिए हुं किंपि वक्खाणउं[6] ? २६

॥ वस्तु ॥

बहुय देसह बहुय देसह संघ मेलेवि,
जिणभत्तिहिं एगमणि भूमिनाहु सेत्रुंजि वचइ,[7]
गाइं वाइं रुलिय[8] भरी, संघलोक आणंदि नचइं;
ठामि ठामि वधाविइं हिव हुइं मंगल चारु,
अरथहिं वरसइं मेह जिम दानि मानि सुविचारु. २७

[रोला]

सूरिराय सिरि हेमसूरि जिणधम्मधुरीणा,
समणा समणी सहससंख, मनि[9] समरसि लीणा;
मिलिया सावगतणा लाष, धनि[10] धनद समाणा,
सावीय वहती सीसकमलि गुरु-गुरुणी आणा. २८

भेरी भूंगल ढोल घणा घमघमइं[11] नीसाणा,
खेला नाचइं रंग[12] भरे नवनवा सुजाणा;
धामिणि तरुणि दिइं रासु करि[13] सग्रह आवी,
मधुरी वाणिहि भणइं भास किवि कंन सुहावी. २९

1 माणके. 2 बाहुड. 3 चालि न सुरठ. 4 लाइ हिव वार. 5 पीआणूं. 6 बोलि बुद्धि आपणीए हुं कंपि वखाणूं. 7 **मारी प्रतिमां**—एगमण भूमिनाह सेत्रुजि चल्लइं. 8 रलीय भरे. 9 मणि. 10 धणि. 11 घुमघुमइ. 12 रलीय भरे. 13 किर संग्रह.

बंदी जयजयकार करइं कइ दीहर सादि,
गायइं गायण सत्त सरे[1] कवि[2] किंनर सादि;
चालीय गयघड माल्हती[3] ए झरती मद वारि,
खोणी खणंता तुरय लाष, करहा सइं च्यारि. ३०
राउत पायक राजलोक अनइ मागणहार,
संख विवज्जिय मिलिय[4] लोक, कोइ जाणइ सार ?
किं अह[5] चालिउ भरत राउ ? किं सगरनरिंदो ?
राया संपइ ? दसनभद्द ? किं कन्ह गोविंदो ? ३१
किं वा दीसइ नलनरिंदु ? किं देवह राउ ?
भ्रंति उपज्जइ जोयतां ए नरवइ समदाउ;
संघपति करतउ गामिगामि जिण पूज अवारी
पहुतउ सेत्रुजि, दिइ दाण, रिद्धि गणइ असारी. ३२
देषी हरषी संघवी ए रिसहेसरु सामी,
वंदइ पूजइ थुणइ भावि, मिलिया सवि धामी;
मंडिय[6] रेवइमंडणउ[7] जायवकुलसारो,
सीलिहिं[8] सुन्दर, नाणवंतु सिरि नेमिकुमारो. ३३
संघसहित पहुपूज करी राउ दाणु दियंतो,[9]
वाजत[10] गाजत चालियउ हरसिहिं उल्हसंतो;
वीरु जुहारिय वउणथली, मंगलपुरि पासो,
दीव, अजाहरि, कोडिनारि, पाटणि जिणु पासो. ३४

॥ वस्तु ॥

चडिय भूपति चडिय भूपति नाहु सेत्रुजि,
रिसहेसर पणमीयइ नरय तिरिय जो दुक्ख वारइ,
तह उज्जिलि नेमि जिणु काम कोह तिहिं स्वामि[11] वारइ;
मंगलि[12] पाटणि वउणथलि, दीवि[13] अजाहरि देव,
कोडीयनारि जुहारि करि, पाटणि पहुतउ हेव. ३५

---

1 **मारी प्रतिमां** – गायण गाइं रंग भरे. 2 किव. 3 **मारी प्रतिमां** – चालंता. 4 चलिय लोग. 5 किइहुं. 6 वंदइ. 7 मंडणु. 8 सीलइं. 9 दियंतु. 10 वाजिंत्र. 11 कोध जो मोहु. 12 मंगल. 13 दीव.

*भणइ कुमरड भणइ कुमरड, 'रिसह अवधारि,
करि जोडी हूं वीनवउं, सामि पासि हूं काइ न मागउं;
जिहां कुले तिहां नवि उलखिउ तिहां चक्रवइ म देउ,
सिरि सेत्तुंजइ गिरिसिहरि वर पंषीउ करेइ.'† ३६

[रोला]

सांनिधि[1] सासणदेवि तणइ संघि कीधी जात,
पाटणि आवी नारि करइ घरि[2] घरि इम वात;
'कीधी जं पुण जात अम्हे एहु[3] सामि पसाउ,
प्रतपउ कोडि दीवालियहं[4] हेमसूरि सिउं राउ.' ३७
कासी कोसल मगध देस कोसंबी वच्छा,
मरहठ मालव लाडदेस सोरीपुर कच्छा;
सिंधु सवालप कासमीर कुरु कंति[5] सइंभरि,
कान्हडदेस कान्हडिय भणइ, जाणिय जालंधरि. ३८

॥ वस्तु ॥

मारि वारीय मारि वारीय देस अट्ठारि,
देस-विदेसह मेलि करि भविय लोक जिणि जत्त कारिय,
चऊदसहं[6] चालीसहं राय विहार किय रिद्धि[7] सारिय;[8]
मोगड[9] मूंकी जेण हिव जगि[10] लीधउ जसवाउ,
हूउ न होसिइं[11] चिहु युगे[12] कुमरड सरिसउ राउ. ३९

[रोला]

त्रिहु भुवणे[13] जसु[14] कीत्ति लई इणि गूजरराइं,
कृतयुग कय अवतारि नेव गंजइ[15] कलिवाइं;[16]
सहिय विभावठि कम्मदोसि[17] जिम बंभ चकीसरि,
देवभूमि गिइं सिद्धचक्क जयसिंह नरीसरि. ४०

---

* **आ पद्य मारी प्रतिमां नथी.** † वस्तुनी आ कडीमां एक पंक्ति खूटती लागे छे.
1 मानांध. 2 घरघरि. 3 इह. 4 दीवालीइं. 5 **मारी प्रतिमां** कुंती. 6 सहस चालिस हिय. 7 रिद्ध. 8 सारी. 9 गागडु. 10 **मारी प्रतिमां** जिणि. 11 होसइ. 12 जुगलि. 13 भवनि. 14 **मारी प्रतिमां** जस्स कीरति. 15 गंजीय. 16 वायइं. 17 सेवीय भाव विक्रम.

चुलिक्य[1] वंसी तिहुणपाल-कुलअंबर-भाणू,
विक्कम वच्छरि वरतत ए एगार नवाणूं;
पाटि बइठउ कुमरपालु बलि भीमसमाणउ,
मंडइ रणरंगइ जासु तणइ कोइ राउ न राणउ.   ४१

मेरु ठामह न चलइ जाव, जां चंद-दिवायर,
सेषनागु जां धरइ भूमि जां सातइं[2] सायर;
धम्मह[3] विसउ जां जगहमाहि, धूय निश्चल होए,
कुमरड रायहं तणउ रासु तां नंदउ लोए.   ४२

सूरीसर सिरि सोमतिलय गुरु पायपसाया,
बुह[4] देवप्पह गणिवरेण चिर नंदउ[5] राया;
पढइ गुणइ जे सुणइ रासु जण हरषिइं[6] लेई,
सविहु दुरियहं करइं छेह[7] सिवपुर पामेई.   ४३

॥ इति कुमारपालरास समाप्तः ॥

संवत् १५५९ वर्षे चैत्र वदि ३ शुक्रे भुवनवल्लभगणिलषितं ॥

*

1 चोलिक. 2 सीमहि. 3 भंम. 4 बहु. 5 रचिउ अइ. 6 जिण हरखे.
7 दुरियह करीय बेहु.

विश्वेश्वरस्मृतिः[1]।

*

लेखक – महामहोपाध्याय पण्डित श्रीविश्वेश्वरनाथ रेउ

षष्ठोऽधिकारः

पौत्रस्य मुखमालोक्य गार्हस्थ्ये शक्तमात्मजम्।
वार्धक्यं चापि देहे स्वे वानप्रस्थो भवेन्नरः॥ १॥

मनुष्य पौत्रके मुखको, गृहस्थीका बोझा सम्हालने लायक पुत्रको और अपने शरीरमें बुढापेके चिह्नोंको देखकर वानप्रस्थ हो जावे।

अत्यक्तनिजगेहोऽपि गृहभारं सुतेऽर्पयेत्।
असक्तो दर्शयेन्मार्गं यथाकालं सुखावहम्॥ २॥

घर न छोडकर भी घरका भार पुत्र पर छोड दे और (गृहस्थीमें) अलिप्त रहकर उसे समयानुसार कल्याणकारी मार्ग बतलाता रहे।

मोहं लोभं च मात्सर्यं क्रौर्यं चापि परित्यजेत्।
इन्द्रियाणि मनश्चाऽपि संयम्य स जितेन्द्रियः॥ ३॥

वह जितेन्द्रिय पुरुष, इन्द्रियोंको और मनको भी रोककर मोह, लोभ, ईर्ष्या और क्रूरताको छोड दे।

भोगैश्वर्ये ममत्वं च भोज्ये राजस-तामसे।
मादकं द्रव्यचिन्तां च मधुमांसान्यपि त्यजेत्॥ ४॥

सांसारिक भोग, संपत्ति, ममता, राजसी और तामसी भोजन, नशीले पदार्थ, रुपये–पैसेकी फिकर और शहद तथा मांसोंका भी त्याग कर दे।

मितभुक् सात्विकाऽऽहारो व्यवहारेऽपि सात्विकः।
वृष्टिशीताऽऽतपसहो स्यान् मितप्रियसत्यवाक्॥ ५॥

ठीक परिमाणसे भोजन करनेवाला, सात्विक भोजन करनेवाला, बरतावमें भी सात्विक रहनेवाला, वर्षा, सरदी और गरमीको सहन करनेवाला वह आवश्यकतानुसार बोलनेवाला तथा प्रिय और सच बोलनेवाला बने।

सुपक्वं भक्षयेद् भोज्यं लवणं सैन्धवं तथा।
नियमैरुपवासैश्च मनः कायं च शोधयेत्॥ ६॥

---

(१) पुराने समयके आचार्योंने अपने अपने युगोंमें होनेवाले अवस्था परिवर्तनोंको ध्यानमें रखकर समय समय पर अनेक स्मृतियोंका निर्माण किया है। इन स्मृतियोंमें 'मनुस्मृति' सबसे प्राचीन मानी जाती है। उसीको आधार मानकर युगानुरूप परिवर्तनके साथ इस 'विश्वेश्वर स्मृति' की रचना की गई है और उसका यह छठा और सातवां अधिकार 'भारतीय विद्या' के पाठकोंके विचारार्थ उपस्थित किया जाता है। इस स्मृतिकी 'कलावती' नामक भाषा टीका लेखक की धर्मपत्नीने लिखी है।

आसानीसे पचनेवाला (हलका) भोजन करे, सीन्धा नमक खाय तथा (अच्छे) नियमों और व्रतोंसे मन और शरीरको शुद्ध करे।

सुखेच्छां देहचिन्तां च त्यक्त्वोपनिषदुक्तिषु।
रमयेत् स्वं मनो येन न स्यात् मरणजं भयम्॥ ७॥

सुखकी इच्छा और शरीरकी चिन्ताको छोड़कर उपनिषदोंमें कही गई बातोंमें अपना मन लगावे जिससे मृत्युका डर न हो।

धर्मे मनः समाधाय प्राणिसेवापरायणः।
आत्मवत्सर्वभूतेषु पश्यन्नाप्नोति सद्गतिम्॥ ८॥

धर्ममें मन लगाकर सब प्राणियोंकी सेवामें लगा हुआ (पुरुष) अपने समान ही सब जीवोंको देखता हुआ अच्छी गति प्राप्त करता है।

यथासाध्यं न भिक्षेत वानप्रस्थगतोऽपि सन्।
स्वार्जितैः पुत्रदत्तैर्वा धनैः प्राणान् विनिर्वहेत्॥ ९॥

वानप्रस्थ आश्रममें प्रविष्ट हो कर भी जहां तक हो भीख न मांगे। अपनी कमाई या पुत्रकी दी पूंजी (के व्याज आदि) से प्राणोंका निर्वाह (गुजारा) करे।

अर्धकोटिप्रमाणैस्तु भिक्षुभिर्भारतेऽधुना।
गृहपार्जितवित्तस्य वृथा नाशो विधीयते॥ १०॥

इस समय भारतमें पचास लाख भिखारियों द्वारा गृहस्थोंके कमाये धनका निरर्थक ही नाश किया जाता है।

भैक्षी नाभिमता वृत्तिर्भारतेऽतोऽद्य पण्डितैः।
भिक्षया स्वात्मनो हानिर्देशहानिश्च निश्चिता॥ ११॥

इसीलिए बुद्धिमान् लोग इस समय भारतमें भिक्षासे गुजारा करनेको पसंद नहीं करते। भिक्षासे निश्चित तौर पर अपनी आत्माकी हानि और देशकी हानि होती है।

वानप्रस्थोचितो धर्मः कथितः स्मृतिसंमतः।
अथ संन्यासिनो धर्मो वक्ष्यते शास्त्रनिश्चितः॥ १२॥

(यहां तक) स्मृतियोंमें माना हुआ वानप्रस्थोंके योग्य धर्म कहा; इसके आगे शास्त्रोंमें निर्णय किया हुआ संन्यासियोंका धर्म कहा जायगा।

वीतलिप्सो गतामर्षो ममत्वरहितः पुमान्।
चतुर्थे आयुषः पादे संन्यस्ताश्रममाविशेत्॥ १३॥

इच्छाओंसे रहित, ईर्ष्यासे रहित और ममतासे रहित हुआ पुरुष आयुके चौथे भागमें संन्यस्ताश्रममें प्रवेश करे।

देवर्षिपित्रादिऋणाद् मुक्तो रागविवर्जितः।
स्यात्तत्त्वचिन्तनरत इन्द्रियार्थान् परित्यजन्॥ १४॥

देवताओं, ऋषियों और पितरों आदिके ऋणसे मुक्त हुआ और राग (ममता) से रहित पुरुष इन्द्रिय संबन्धी विषयोंको छोड़ता हुआ तत्त्व (असलियत) के समझनेमें लग जावे।

जीवनस्य मृतेश्चापि ब्रह्मण्युत्सृज्य चिन्तनम् ।
भावयंस्तदधीनत्वं शान्तात्मा शुद्धधीर्भवेत् ॥ १५ ॥

जीवन और मरणकी चिन्ताको परमात्मा पर छोड़कर और (अपनेको) उसका वशवर्ती समझता हुआ शान्त आत्मावाला और निर्मल बुद्धिवाला बने ।

लोष्टेऽथ हेम्नि समदृक् शत्रौ मित्रेऽपि वा पुनः ।
विशुद्धया धिया ब्रह्मनिष्ठः स्याच्चात्मचिन्तकः ॥ १६ ॥

मिट्टीके ढेले और सुवर्णमें तथा शत्रु और मित्रमें भी समान भाववाला पुरुष शुद्ध बुद्धिसे ब्रह्ममें मन लगानेवाला और आत्माका विचार करनेवाला बने ।

दण्डे कमण्डलौ चीरे कुटीरे भोजने तथा ।
शरीरे ममतां मुञ्चन्नेकाकी विचरेद् भुवि ॥ १७ ॥

दण्ड, कमण्डलु, वस्त्र, कुटी, भोजन और देहकी ममताको छोड़ता हुआ पृथ्वी पर अकेला ही भ्रमण करे ।

मुण्डितश्मश्रुकेशः स्यादवर्धितनखः पुनः ।
दण्डी त्वधातुजं पात्रं धारयेच्च कमण्डलुम् ॥ १८ ॥

डाढी—मूछ और सिर आदिके बाल मुंडाये रक्खे, नाखून भी बढाकर न रक्खे और दण्डधारी होकर धातुसे भिन्न किसी अन्य वस्तु (काष्ठ आदि) का बना भोजन-पात्र और कमण्डल रक्खे ।

यत्किंचित् सात्त्विकं भोज्यं वस्त्रं च सुलभं भवेत् ।
तुष्टस्तेनैव विहरेन्नापरं क्लेशयेत् क्वचित् ॥ १९ ॥

जो कुछ भी सात्त्विक भोजन और वस्त्र आसानीसे मिल सके, उसीसे सन्तोष कर घूमता फिरे । किसी दूसरेको (इनके लिए) कष्ट न दे ।

चरेच्छान्तिमये देशे जीवानुद्वेगकारकः ।
भैक्ष्ये चावश्यके ग्राममाविशेद्दिवसे सकृत् ॥ २० ॥

जीवोंको कष्ट न पहुँचानेवाला (वह) शान्त स्थानमें विचरण करे और भिक्षाकी आवश्यकता होने पर दिनमें एकबार गांवमें घुसे ।

तृतीये प्रहरे चाह्नश्चरेद् भिक्षां यतिः सदा ।
भुक्तवत्सु समस्तेषु जनेषु नियतेन्द्रियः ॥ २१ ॥

इन्द्रियोंका दमन करनेवाला संन्यासी सदा, सब लोगोंके खा लेने पर, दिनके तीसरे पहर भिक्षाके लिए जाय ।

परभागस्य हरणाद् येन न स्याद् विगर्हितः ।
लाभालाभे च भिक्षायास्तुष्ट्यतुष्टी विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

जिससे वह पराये के भागको लेनेके कारण निन्दित न हो । भिक्षाके मिलने पर प्रसन्नता और न मिलने पर अप्रसन्नता छोड़ दे ।

उपवासैर्मिताऽऽहारैः रहो निवसनेन च ।
रागद्वेषविनिर्मुक्तः परांगतिमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥

संन्यासी – व्रतोंसे, केवल आवश्यकतानुसार भोजन करनेसे और एकान्तमें रहनेसे राग और द्वेषसे मुक्त होकर – उत्तम गतिको प्राप्त करता है ।

उपवासो द्विधा प्रोक्तो निराहारोऽथ निर्जलः ।
मितसात्त्विकभुक्त्याऽथो एकया तु व्रतं भवेत् ॥ २४ ॥

उपवास दो प्रकारका कहा है – बिना भोजनवाला और बिना जलवाला । फिर एकवार आवश्यकतानुसार और सात्त्विक भोजन करनेसे व्रत होता है ।

एताभ्यां मलशुद्धिः स्याद् रक्तशुद्धी रुजाहरा ।
बलचैतन्यलाभश्चाध्यात्मशुद्धिस्ततः परम् ॥ २५ ॥

इन दोनों (उपवास और व्रत) से (आभ्यन्तरिक) मलकी शुद्धि और रोगको दूर करनेवाली रक्तकी शुद्धि होती है, और चेतना (फुर्ती) की प्राप्ति होती है, तथा उसके बाद आत्माकी शुद्धि होती है ।

यादृशेनोपवासेन कर्तुः स्वास्थ्यक्षतिर्भवेत् ।
तादृशो नैव कर्तव्यः प्रमाद्येन्न च पारणे ॥ २६ ॥

जिस प्रकारके उपवाससे करनेवालेके स्वास्थ्य (तन्दुरुस्ती) की हानि हो, वैसा उपवास कभी नहीं करना चाहिए और उपवासके बाद पारण (भोजन) करने में (भी) गफलत नहीं करनी चाहिए । (अर्थात् पारणके समय गरिष्ठ या अधिक भोजन नहीं करना चाहिए ।)

अभिमानोऽस्ति संमानाद् ममताऽपि च जायते ।
नाशनोऽप्येनमन्विच्छेदतः संन्यासमाश्रितः ॥ २७ ॥

अधिक आदर से अभिमान और ममता भी उत्पन्न होती है, इसलिए संन्यासी होकर इस (आदर) की थोडी भी इच्छा न करे ।

सङ्गात् संजायते रागो मात्सर्यं चासुखप्रदम् ।
तत् तं त्यजेद् वदेच्चापि मितं सत्यं हितं वचः ॥ २८ ॥

(दूसरेका) सङ्ग (साथ) करनेसे ममता या दुःख देनेवाली ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है, इसलिए उसको छोड दे और आवश्यकतानुसार, सच्चा और लाभदायक वचन बोले ।

शौचे स्नाने च गमने, पान-भोजनकर्मसु ।
अन्येषु चापि कार्येषु प्राणिरक्षापरो भवेत् ॥ २९ ॥

मल-मूत्रके त्यागमें, स्नान करनेमें, चलनेमें, पीने और खानेके कार्योंमें और दूसरे कार्योंमें भी जीवोंकी रक्षाका ध्यान रक्खे ।

मिथ्यावादातिवादैश्च गर्हितोऽपि सहेत तान् ।
परान् न प्रतिकुर्वीत वीतद्वेषोऽन्यदेहिषु ॥ ३० ॥

(लोगों द्वारा) झूटे कलङ्क लगाकर या थोडीसी बातको अधिक बढाकर बदनाम किये जाने पर भी उनको सहले और अन्य प्राणियोंमें द्वेष न रखनेवाला (वह) दूसरोंसे बदला न ले ।

कुद्धेऽप्यक्रोधनो नित्यं निन्दके चाप्यनिन्दकः ।
निर्द्वन्द्वो ममताहीनश्चर्चां विषयगां त्यजेत् ॥ ३१ ॥

सदा क्रोध करनेवाले पर भी क्रुद्ध न होनेवाला और निन्दा करनेवालेकी भी निन्दा न करनेवाला, तथा (सुख-दुःख आदि) द्वन्द्वोंसे मुक्त और ममतासे हीन होकर सांसारिक विषयोंसे संबन्ध रखनेवाली बातोंकी चर्चाको छोड़ दे।

अनेकविधविद्याभिर्भविष्यकथनैस्तथा ।
व्याख्यानैरुपदेशैश्च न स्वार्थं साधयेत् क्वचित् ॥ ३२ ॥

अनेक तरहकी विद्याओंसे, भविष्यकथन करनेसे, व्याख्यान देनेसे और उपदेश देनेसे कहीं भी अपने मतलबको सिद्ध न करे।

प्रियैर्वियोगं कालेन संयोगं चाप्रियैः सह ।
जरां व्याधिं च मरणं जन्म कर्मानुगं मनेत् ॥ ३३ ॥

समय पाकर प्रिय जनोंसे वियोग और अप्रिय जनोंसे समागम, बुढ़ापा, बीमारी, मरण और जन्म—इनको कर्मानुसार समझता रहे।

अधर्मप्रभवं दुःखं सद्धर्मप्रभवं सुखम् ।
इति संचिन्त्य चाचारं सकृद्दुष्टोऽपि न त्यजेत् ॥ ३४ ॥

अधर्मसे दुःख और सच्चे धर्मसे सुख होता है, ऐसा सोचकर एकवार दूषित होजाने पर भी आचारको न छोड़े।

लिङ्गैर्वर्णाश्रमाणां तु केवलैः सुधृतैरपि ।
धर्माचाराद् विना लोके सुखशान्ती न विन्दति ॥ ३५ ॥

संसारमें विना धर्मानुसार आचरण किये केवल वर्णों और आश्रमोंके चिह्नोंको ठीक तौरसे धारण करलेनेसे भी, सुख और शान्तिको नहीं पाता है।

यथा नामग्रहेणैव कतकस्य फलस्य नो ।
आपो निर्मलतां यान्ति तथा लिङ्गैर्न मानवाः ॥ ३६ ॥

जिस प्रकार निर्मलीके फलके केवल नाम लेनेसे ही जल निर्मल नहीं होता, उसी प्रकार केवल धर्मके चिह्नोंके धारण करनेसे ही मनुष्य निर्मल (पवित्र) नहीं होता।

शर्करानाममात्रेण मुखं न मधुरं यथा ।
तथैवाचाररहितैर्नरो लिङ्गैर्न शुध्यति ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार केवल शकरका नाम ले लेनेसे ही मुंह मीठा नहीं होता, उसी प्रकार आचारके बिना केवल धर्मके चिह्नोंसे ही पुरुष शुद्ध नहीं होता।

कुसुमे कृत्रिमे यद्वत् सुगन्धो नानुभूयते ।
तथैव कृत्रिमे लिङ्गे साफल्यं नोपलभ्यते ॥ ३८ ॥

जिस प्रकार बनावटी पुष्पमें सुगन्धिका पता नहीं चलता, उसी प्रकार बनावटी धर्मचिह्नोंमें सफलता नहीं मिलती।

यथा मलानि नश्यन्ति धातुगान्यग्निना तथा ।
प्राणायामेन नश्यन्ति मानसानि मलान्यपि ॥ ३९ ॥

जिस प्रकार धातुमें मिले मैल अग्निसे नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार मनके मैल प्राणायामसे नष्ट हो जाते हैं ।

व्याहृतिप्रणवैर्युक्तः प्राणायामः प्रशस्यते ।
इति शास्त्रैर्यदुक्तं तद् यथाशक्यं समाचरेत् ॥ ४० ॥

व्याहृति (भूःभुवःस्वः) और ओंकारसे युक्त प्राणायाम श्रेष्ठ है,– ऐसा जो शास्त्रोंने कहा है, उसको जहां तक हो ठीक तौरसे करे ।

ब्रह्मनिष्ठेन मनसा परमार्थस्य चिन्तया ।
समले नश्वरे देहे ममत्वं यत्नतस्त्यजेत् ॥ ४१ ॥

परब्रह्ममें मन लगाकर, असली तत्त्व (परमार्थ) के विचार द्वारा, मलोंसे भरे और नष्ट होनेवाले शरीरकी ममताको यत्नपूर्वक छोड दे ।

विषया विषसंकाशा मूर्च्छयन्ति धियं यतः ।
अतः परित्यजन्नेतान् योगी मोक्षं समश्नुते ॥ ४२ ॥

सांसारिक विषय विष (जहर) के समान हैं, क्यों कि वे बुद्धिको खराब कर देते हैं । इसलिए इनको छोडता हुआ योगी मोक्षको प्राप्त करता है (बन्धनोंसे छूट जाता है) ।

शनैः शनैः परिहरन् विषयेभ्यो निजं मनः ।
मात्राद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मलीनो भवेद् यतिः ॥ ४३ ॥

संन्यासी धीरे-धीरे विषय-वासनाओंमें अपने मनको हटाता हुआ, सुख-दुःखादिक द्वंद्वोंसे छूटकर ब्रह्मचिन्तनमें लग जाय ।

धर्मः संन्यासिनां प्रोक्तः स्मृतिशास्त्राभिनन्दितः ।
वेदसंन्यासधर्मस्तु मनूक्तः कथ्यतेऽधुना ॥ ४४ ॥

(यहां तक) स्मृति-शास्त्रोंमें प्रशंसित संन्यासियोंका धर्म कहा, अब मनुका कहा वेद-संन्यास धर्म कहा जाता है ।

गृहस्थाश्रमनिर्याता अपरे त्रय आश्रमाः ।
तेनैव परिपोष्याश्च श्रेष्ठस्तस्माद् गृही मतः ॥ ४५ ॥

दूसरे तीन (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास) आश्रम गृहस्थाश्रमसे (ही) निकले हैं और उसीसे पाले जाने योग्य हैं, इसलिए गृहस्थ ही सबसे श्रेष्ठ है ।

मेघपुष्टा यथा नद्यः सागरं यान्ति मार्गगाः ।
गृहिपुष्टास्तथाऽन्येऽप्याश्रमिणो ब्रह्मधर्मगाः ॥ ४६ ॥

जिस प्रकार बादलोंके बरसनेसे भरी-पूरी नदियां अपने रास्ते पर बहती हुई समुद्रमें पहुंच जाती हैं, उसी प्रकार गृहस्थसे पाले-पोसे दूसरे आश्रमवाले भी, धर्मके मार्ग पर चलते हुए, ब्रह्म तक पहुंच जाते हैं (अर्थात् उसे जान लेते हैं) ।

धर्मानुगो गृहस्थोऽत्र श्रेष्ठः सर्वाश्रमिष्वपि ।
योऽन्यानाश्रमिणः सर्वान् बिभर्ति स्वार्जितैर्धनैः ॥ ४७ ॥

संसारमें अपने धर्मके अनुसार चलनेवाला गृहस्थ सब आश्रमवालोंसे श्रेष्ठ है, जो अपने कमाये धनसे अन्य सब आश्रमवालोंका पालन करता है ।

दयां क्षमां धृतिं सत्यं दमधीशौचमार्जवम्।
विद्याऽस्तेये इति दश धर्ममूलानि धारयेत् ॥ ४८ ॥

दया, क्षमा, धीरज, सत्य, दम, (मन और इन्द्रियोंका दमन) बुद्धि, पवित्रता, नम्रता, विद्या और चोरीका त्याग – धर्मके इन दस मूल सिद्धान्तोंको धारण करे। (इन्हींसे अन्य धर्म मूलोंका भी पालन हो जाता है।)

मूलानि दश धर्मस्य स्वस्थचित्तः समाचरन्।
वेदान्तविद् ऋणैर्मुक्तः संन्यासाश्रममाविशेत् ॥ ४९ ॥

स्थिर चित्त होकर धर्मके दस मूल सिद्धान्तोंका पालन करता हुआ और वेदान्त शास्त्रके सिद्धान्तको जाननेवाला पुरुष देवता, ऋषि और पितरोंके ऋणोंसे मुक्त होकर संन्यस्ताश्रममें प्रवेश करे।

भोजनाच्छादने स्वीये पुत्रे संन्यस्य निर्ममः।
गार्हस्थ्यं संपरित्यज्य गृहस्थोऽपि परिव्रजेत् ॥ ५० ॥

अपने भोजन और वस्त्रका भार पुत्र पर रखकर, ममताको दूरकर और गृहस्थके धंधोंको पूरी तौरसे छोडकर घरमें रहता हुआ ही संन्यास ग्रहण करले।

प्राणायामैर्गतमलोऽधीत्योपनिषदः पुमान्।
अकर्मा विषयाऽलिप्त आत्मज्ञानरतो भवेत् ॥ ५१ ॥

प्राणायामोंसे मल-रहित हुआ मनुष्य, उपनिषदोंको पढकर, सब सांसारिक कामोंको छोडकर और विषयोंसे दूर रहकर आत्म-ज्ञानको प्राप्त करनेमें लग जाय।

संन्यासत्यक्तकर्माऽसौ द्वन्द्वमुक्तः सुनिर्मलः।
श्रेयः परमवाप्नोति नरोऽत्राऽमुत्र च क्रमात् ॥ ५२ ॥

संन्यस्त होनेके कारण सब सांसारिक कामोंको छोड देनेवाला, दुःख-सुखादिकी भावनाओंसे रहित और शुद्ध हुआ वह पुरुष क्रमसे इसलोक और परलोकमें उत्तम कल्याणको प्राप्त करता है।

आश्रमाणीह चत्वारि शास्त्रोक्तानि यथाक्रमम्।
ये द्विजा अनुगच्छन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ५३ ॥

शास्त्रोंमें कहे चारों आश्रमोंका, संसारमें जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, क्रमसे अनुगमन करते हैं, वे श्रेष्ठ गतिको पाते हैं।

यथाक्रमं यथाकालं यथाशास्त्रं यथाविधि।
आश्रमाणां चरन् धर्मं नरो याति परां गतिम् ॥ ५४ ॥

मनुष्य क्रमानुसार, समयानुसार, शास्त्रानुसार और विधिके अनुसार आश्रमोंके धर्मका पालन करता हुआ श्रेष्ठ गतिको प्राप्त करता है।

अनुसर्तुं क्षमश्चेत् स्यात् द्विजेभ्योऽन्योऽपि कश्चन।
आश्रमोक्तानिमान् धर्मान् सोऽपि क्षेममिहाप्नुयात् ॥ ५५ ॥

यदि जगत्में ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंसे भिन्न भी कोई इन चार आश्रमोंके संबन्धमें कहे धर्मोंका अनुसरण कर सके तो, वह भी कल्याणका भागी होता है।

स्थानं कालो ह्यवस्था च शौचाचारादिकं पुनः ।
वर्णाश्चापि न बाधन्ते ध्याने विश्वम्भरस्य तु ॥ ५६ ॥

स्थान, समय, हालत, पवित्रताके नियम आदि और वर्ण भी जगदाधार ईश्वरके ध्यानमें बाधक नहीं होते ।

तीर्थसेवनतोऽप्यत्र कल्याणं जायते ध्रुवम् ।
अत एवात्र कथ्यन्ते लाभास्तस्याऽपि निश्चिताः ॥ ५७ ॥

तीर्थोंके सेवन (यात्रा आदि)से भी संसारमें निश्चित रूपसे कल्याण होता है; इसलिए उसके निश्चित लाभ भी यहां पर कहे जाते हैं ।

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन देशा नानाविधास्तथा ।
मनुष्या यद्धि दृश्यन्ते ज्ञानवृद्धिकरं हि तत् ॥ ५८ ॥

तीर्थयात्राके द्वारा जो अनेक तरहके देश और मनुष्य देखनेमें आते हैं, वह निश्चय ही ज्ञानकी वृद्धि करनेवाला है ।

समागमश्च साधूनां मनसः शान्तिदो मतः ।
स्वास्थ्यदौ जलवायू च देहारोग्यं प्रयच्छतः ॥ ५९ ॥

वहां पर होनेवाला सत्पुरुषोंका समागम मनको शान्ति देनेवाला माना गया है, और वहांके स्वास्थ्यप्रद जल और वायु शरीरको स्वास्थ्य प्रदान करते हैं ।

शान्तं पूतं च तत्रत्यं वातावरणमद्भुतम् ।
आध्यात्मिकीमुन्नतिं हि कुरुते तीर्थसेविनः ॥ ६० ॥

(फिर) वहांका शान्त और पवित्र, अद्भुत वातावरण निश्चय ही तीर्थसेवन करनेवाले की आध्यात्मिक उन्नति करता है ।

अध्यापयेत् प्रकामं वा शिक्षयेद् बालकं गुरुः ।
वयःस्थ एव दीक्ष्यः सोऽनिवार्यत्वेऽपि संस्थितेः ॥ ६१ ॥

गुरु बालकको अपनी इच्छानुसार पढावे अथवा शिक्षा दे, परन्तु स्थिति (मौके) अनिवार्य (जरूरी) होने पर भी, उसको बडा होने पर ही (शिष्यत्व) की दीक्षा दे । अर्थात्–कम अवस्थावाले को चेला न मूंडे ।

यो नन्दनोऽजनि मुकुन्दमुरारिसूरे-
र्विश्वेश्वरः किल सतीमणिचाँदराज्याम् ।
वानस्थभिक्षुविधिरत्र समापि तेन
विश्वेश्वरस्मृतिगताऽधिकृतिर्हि षष्ठी ॥ ६२ ॥

पण्डित मुकुन्दमुरारिजीके, सती श्रेष्ठा चाँदरानीजीके गर्भद्वारा, जो विश्वेश्वर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ उसने विश्वेश्वरस्मृतिमें यहां पर वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमोंकी विधिवाला छठा अधिकार समाप्त किया ।

*

विश्वेश्वरस्मृतिः।

*

सप्तमोऽधिकारः

सारो हि नृपधर्माणां लोककल्याणकारकः।
यथाशास्त्रं यथाकालं संक्षेपेणात्र कथ्यते ॥ १ ॥

यहां पर (इस अध्यायमें) लोगोंका कल्याण करनेवाला, राज-धर्मका सार, शास्त्रके अनुसार और समयके अनुसार संक्षेपसे कहा जाता है।

राजोचितैः सुसंस्कारैरान्वीक्षिक्या च संस्कृतः।
सदाचारी सुकुशलो न्यायकर्मरतस्तथा ॥ २ ॥
पक्षः सामनि दाने च भेदे दण्डे तथा पुनः।
कालज्ञो धर्मनिपुणः सत्यवाक् च दृढव्रतः ॥ ३ ॥
तथ्यातथ्यगवेषी च पैशुन्ये बधिरश्रवाः।
प्रजाराष्ट्रहिताकाङ्क्षी निरालस्यः कुशाग्रधीः ॥ ४ ॥
व्यसनेष्वप्यनासक्तः प्रसादे धनमानदः।
क्रोधे दण्डधरो वीरो यः स राजा प्रशस्यते ॥ ५ ॥ (चक्कलकम्)

जो, राजाओंके योग्य संस्कारों (राज्याभिषेक अथवा शिक्षा आदि) से और तर्कविद्याके ज्ञानसे युक्त, अच्छे आचरणवाला, चतुर, न्यायके काममें लगा हुआ, साम और दान तथा भेद और दण्डमें कुशल, समयको पहचाननेवाला, धर्ममें प्रवीण, सच बोलनेवाला, नियमोंका पाबंद (पालन करनेवाला) सच-झूठका पता लगानेवाला, चुगली न सुननेवाला, प्रजा और राज्यका हित चाहनेवाला, आलस्यहीन, समझदार, मदिरा आदि व्यसनोंसे भी दूर रहनेवाला, प्रसन्न होने पर धन और मान देनेवाला, क्रुद्ध होने पर दण्ड देनेवाला और वीर हो, वह राजा प्रशंसा प्राप्त करता है।

ब्राह्मे क्षणे स उत्थाय शय्यास्थो हि विभुं स्मरेत्।
विश्वम्भरं च याचेत शुद्धां न्यायक्षमां मतिम् ॥ ६ ॥

(वह राजा) प्रातःकाल उठकर शय्या पर बैठा हुआ ही सर्व शक्तिमान् ईश्वरका स्मरण करे और जगत्की पालना करनेवाले परमेश्वरसे निर्मल और न्याय करनेमें समर्थ बुद्धि मांगे।

शौचादिभ्यो निवृत्तश्च नित्यकर्मादितस्तथा।
विद्वद्भ्यः शृणुयाच्छास्त्रं नीतिधर्मादिबोधकम् ॥ ७ ॥

और शौच-स्नान आदिसे तथा नित्य कर्म (स्मरण-पूजन आदि) से निबटकर विद्वानोंसे नीति और धर्मको बतलानेवाला शास्त्र सुने।

सभास्थश्च समायातैः पौरैर्जानपदैः समम्।
संभाष्य च सुखं तेषां पृष्ट्वा, तान् विसृजेत् ततः ॥ ८ ॥

और सभामें बैठा हुआ आये हुए नगरवासियों और राज्यके अन्य भागोंमें रहनेवालोंसे बात-चीतकर और उनका कुशल-क्षेम पूछ, बादमें उन्हें विदा करे।

ततो जितेन्द्रियमना अपव्यसनवर्जितः।
कामक्रोधादिभिर्मुक्तो न्याये बुद्धिं निवेशयेत्॥ ९॥

उसके बाद इन्द्रियों और मनकी चंचलताको जीतनेवाला, मदिरा आदि बुरे व्यसनोंका त्याग करनेवाला और काम तथा क्रोध आदिसे मुक्त (वह राजा) न्याय (करने) में बुद्धिको लगावे।

दिवास्वापः परीवादो द्यूते तौर्यत्रिते रतिः।
मृगयामदिरायोषाऽऽसक्तिर्व्यर्थाटनं तथा॥ १०॥
कामजानि दशेमानि व्यसनानि विवर्जयेत्।
साहसे पिशुनत्वं चासूयेर्ष्याद्रोहचिन्तनम्॥ ११॥
वाग्द-ण्डयोश्च पारुष्यं धनेऽन्याय्यं प्रवर्तनम्।
इत्यष्टौ क्रोधजा दोषा अपि त्याज्या मनीषिणा॥ १२॥ (तिलकम्)

दिनको सोना, बुराई (या निन्दा), जुए और गाने, बजाने, नाचनेसे प्रेम, शिकार, शराब और स्त्रीमें आसक्ति (लगा रहना) और बे मतलब घूमना, कामसे उत्पन्न होनेवाली इन दस बुराइयोंको छोड दे। बुरे कामोंमें उत्साह, चुगलखोरी, दूसरेके गुणोंमें दोष ढूंढना, दूसरेके गुणोंको न सहना, दूसरेसे द्वेष रखना, कठोर वचन कहना, या दण्डमें कठोरता करना और धनके विषयमें अन्याय करना (अर्थात् किसीका धन छीन लेना या वापस न लौटाना) – क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले इन आठ दोषोंको भी विद्वान् पुरुष छोड दे।

द्युताखेटसुरायोषागतिः कामं चतुष्टयम्।
करोति सुमतेर्नाशं तस्मात् त्याज्यं विशेषतः॥ १३॥

जूआ, शिकार, मदिरा और स्त्रीमें आसक्ति – कामसे उत्पन्न होनेवाली (ये) चार बुराइयां सुबुद्धिका नाश करती हैं, इसलिए इन्हें खास तौरसे छोड दे।

दण्डो निरपराधस्य धनापहरणं तथा।
वाक्क्रौर्यं च त्रयमिति मौख्यात् क्रोधमपि त्यजेत्॥ १४॥

बिना अपराधवालेको दण्ड देना, दूसरेका धन छीन लेना, और वचनमें कठोरताका प्रयोग करना – क्रोधसे उत्पन्न होनेवाली इन तीन बातोंको भी खास तौरसे छोड दे।

लोभो मूलमनर्थानामतस्तं यत्नतस्त्यजेत्।
न्याये मित्रेऽथ शत्रौ च समदृष्टिः प्रशस्यते॥ १५॥

बुराइयोंकी जड लोभ है, इसलिए उसको यत्नपूर्वक छोड दे। न्यायके समय मित्र और शत्रुमें समदृष्टि (पक्षपात न रखने) वाले राजाकी प्रशंसा होती है।

विद्वांसो न्यायमर्मज्ञाः सद्वंश्याश्चाथ धार्मिकाः।
कुलक्रमागता धीरा वीराः सत्यव्रतास्तथा॥ १६॥
विश्वस्ताः कुशला लोकराष्ट्ररक्षाहिते रताः।
लोभहीना अनलसा निर्मदा अविकत्थनाः॥ १७॥

दक्षाः परिणतिज्ञाने प्रजासु बहुसंमताः ।
राज्ञा सभासदः कार्याः सप्ताष्टौ वा यथेप्सिताः ॥ १८ ॥ (तिलकम्)

राजाको विद्वान्, न्यायके मर्मको समझनेवाले, अच्छे वंशमें पैदा हुए, धर्ममें श्रद्धावाले, पीढियोंसे संबन्ध रखनेवाले, धीरजवाले, बहादुर, सच बोलनेवाले, विश्वासयोग्य, चतुर, प्रजा और राज्यके लाभमें लगे, निर्लोभी, फुर्तीले, घमण्डरहित, शेखीसे दूर रहनेवाले, प्रत्येक कार्यके परिणाम (नतीजे) को समझनेमें चतुर, और प्रजामें बहुतों द्वारा संमान पानेवाले ऐसे सात-आठ या आवश्यकतानुसार सभासद (मंत्री) बनाने चाहिए ।

सर्वश्रेष्ठश्च यस्तेषु तं प्राधान्ये निवेशयेत् ।
कार्यभारं समर्प्यास्मै निरीक्षेत पुनश्च तम् ॥ १९ ॥

उनमें जो सबसे अच्छा (मंत्री) हो, उसे प्रधान (मंत्री) बनावे और उसको कामकी जिम्मेवारी सौंपकर फिर उस कार्यकी (स्वयं भी समय-समय पर) जाँच करता रहे ।

सामान्यमपि कर्मेह निस्सहायस्य दुष्करम् ।
राज्यकर्माण्यतः कुर्यात् सुसमालोच्य मन्त्रिभिः ॥ २० ॥

संसारमें साधारण कार्य भी विना सहायतावाले मनुष्यके लिए कठिन होता है, इसलिए राज्यके कामोंको मंत्रियोंके साथ अच्छी तरह सलाह करके करे ।

प्रधानामात्यसंमत्या कार्यसंचालनक्षमात् ।
परीक्षिताञ्शुचीन् प्राज्ञान् प्रजाविश्रम्भशालिनः ॥ २१ ॥
राष्ट्रलाभरतानन्यान् राष्ट्रियान् कुशलान् नृपः ।
कर्तुं विविधकार्याणि नियुञ्जीताधिकारिणः ॥ २२ ॥ (युग्मम्)

राजा प्रधान मंत्रीकी सलाहसे काम चलानेमें समर्थ, परीक्षा किये हुए, शुद्ध (विचारवाले), बुद्धिमान्, प्रजाके विश्वासपात्र, राज्यके लाभमें लगे, राज्यहीमें रहनेवाले और चतुर-ऐसे दूसरे मनुष्योंको अनेक कार्योंको करनेके लिए अधिकारी नियुक्त करे ।

व्यसनं विषवत् त्याज्यं राज्ञा तत्सचिवैस्तथा ।
न्यायाधीशैरनुचरैः सौविदल्लैश्च रक्षकैः ॥ २३ ॥

राजाको, मंत्रियों, न्यायाधीशों, राजाके सहचरों, कञ्चुकियों (रनवासके नौकरों) और रक्षा पर नियुक्त पुरुषोंको मदिरा आदि व्यसन जहरकी तरह त्याग देने चाहिये ।

अष्टवर्गं त्रिवर्गं च सप्ताङ्गानि च षड्गुणान् ।
तिस्रः शक्तीरुपायांश्च चतुरोऽथ बलाबले ॥ २४ ॥
शात्रवात् सुहृदश्चाथो अन्यान्यावश्यकानि च ।
चिन्तयेन्नित्यमेवाथ परीक्षेतोपधादिभिः ॥ २५ ॥ (युग्मम्)

राजा अष्टवर्ग (खेती, व्यापारके मार्गों, किलों, पुलों, हाथियों [अथवा मोटरों, टैंकों आदि] प्राप्त करनेके तरीकोंका और साधारण खानों तथा धातु, रत्नादिकी

खानोंके करों और सैनिकोंकी आवश्यक स्थानों परकी नियुक्ति) का; त्रिवर्ग (उपर्युक्त अष्टवर्गोंमें कमी, स्थिरता और बढती) का; सप्ताङ्गों (राजा, मंत्री, सहायक, खजाने, राज्यके चारों ओरकी भूमि, पर्वत और किले आदि दुर्गमस्थानों और सेना) का; षड्गुणों (मित्रता, लडाई, चढाई, मोरचाबंधी, बलवानके साथ संधि तथा निर्बलके साथ झगडे, और शत्रुसे पीडित होनेपर बलवान्के आश्रय) का; तीन शक्तियों (खजाने और फौजके प्रभाव, अपनी सेनाके उत्साह और मेल तथा लडाईकी सलाह) का; चार उपायों (समझाकर, कुछ दे-दिलाकर, फूट डालकर और दण्ड देकर काम बनाने) का; अपनी तथा शत्रुकी ताकत और कमजोरीका; दुश्मनोंका; दोस्तोंका तथा अन्य आवश्यक बातोंका सदा विचार करे, और धर्म, अर्थ, काम और भय द्वारा सबकी परीक्षा करे।

इङ्गिताकारभावज्ञा देशकालविदोऽभयाः।
वाग्मिनः पण्डिताः शुद्धा विश्वस्ताः शुभदर्शनाः ॥ २६ ॥
मर्मज्ञाः स्वपरेङ्गानां राजराष्ट्रहिते रताः।
राज्ञो दूताः प्रशस्ताः स्युर्निपुणाः संधिविग्रहे ॥ २७ ॥ (युग्मम्)

इशारे, सूरत और भावको समझनेवाले, देश और काल (समय) को जाननेवाले, निडर, बात-चीतमें चतुर, विद्वान्, सचे, विश्वासी, अच्छी शकलवाले, अपने और परायेकी चेष्टाओं (हरकतों) का मर्म ताडनेवाले, राजा और राज्यके लाभमें लगे और संधि-विग्रह (मेल और झगडा खडा करने) में चतुर-ऐसे राजाके दूत (ambassadors) प्रशंसाके योग्य होते हैं।

धीरो वीरश्च कुशलो विश्वस्तो व्यूहकोविदः।
सेनायाश्चतुरङ्गिण्याः सेनानीरत्र शस्यते ॥ २८ ॥

धैर्यवाला, वीर, चतुर, भरोसेका, फौजकी मोरचेबंदीमें कुशल-ऐसा राजाकी चतुरंगिणी (हवाई, समुद्री, टैंक और पैदल) सेनाका सेनानायक श्रेष्ठ माना जाता है।

राज्यकोशस्य रक्षाऽत्र राज्ञा कार्या प्रयत्नतः।
नष्टकोशस्य राष्ट्रस्य रक्षा भवति दुष्करा ॥ २९ ॥

यहां पर राजाको पूरे यत्नके साथ राज्यकोशकी रक्षा करनी चाहिए। राज्य-कोश (खजाने) से हीन राज्यकी रक्षा करना कठिन हो जाता है।

रम्येऽथ सुजले देशे शुद्धवायुसमन्विते।
आरामैर्वाटिकाभिश्च शोभिते वसतिः शुभा ॥ ३० ॥

सुन्दर, निर्मल जलवाले, शुद्ध वायुसे घिरे तथा बगीचों और बगीचियोंसे शोभित स्थान पर निवास करना शुभ (अच्छा या लाभ-दायक) होता है।

अनुकूले प्रदेशेऽतो राजमार्गैः परिष्कृतम्।
गृहैः प्रकाशपवनशुद्धैः स्वास्थ्यप्रदैर्युतम् ॥ ३१ ॥
वणिज्यया सुसंपन्नं कलाकौशलसंयुतम्।
व्यायामौषधशिक्षादि-शालाभिश्च समन्वितम् ॥ ३२ ॥

मनोरञ्जैः स्वास्थ्यदैश्च साधनैः परिभूषितम् ।
नवं पुरं प्रतिष्ठाप्य रक्षेद् न्यायरतः सदा ॥ ३३ ॥ (तिलकम्)

इसलिए अच्छे स्थान पर, सडकोंसे सुन्दर, प्रकाश और हवासे शुद्ध रहनेके कारण स्वास्थ्य (तंदुरुस्ती) बढानेवाले घरोंसे युक्त, व्यापारसे मालामाल, कल कारखानों-वाला, व्यायाम-शालाओं, औषधालयों और पाठशालाओंसे युक्त, मनको प्रसन्न करने-वाले और स्वास्थ्य (तंदुरुस्ती) देनेवाले साधनोंसे सजा हुआ नया शहर बसाकर उसकी सदा न्यायपूर्वक रक्षा करे । (अर्थात् – वहां पर पुलिस आदिका अच्छा प्रबन्ध करे ।)

तद्दुर्गं यत्र दुःखेन गम्येत रिपुभिस्ततः ।
तत् सार्थकान्वयं कार्यं देशकालोचितं पुनः ॥ ३४ ॥

जहां पर शत्रु कठिनतासे पहुंच सकें उसे दुर्ग (किला) कहते हैं इसलिए उस (किले)को उसके नामके अनुसार गुणवाला और स्थान और समयके उपयुक्त बनवाना चाहिए ।

गिरिदुर्गस्य शास्त्रेषु दुर्गमत्वं सुसंमतम् ।
परिखाधन्वदुर्गाणि रच्येरंस्तदसंभवे ॥ ३५ ॥

शास्त्रोंमें पहाडी किलेका (शत्रुओं द्वारा) कठिनतासे पहुँचने लायक होना माना है । उसके अभावमें खाईसे या निर्जल प्रदेशसे घिरे किले बनवाये जावें ।

प्रस्फोटनकरास्त्रेभ्यः क्षिप्तेभ्यो वायुयानतः ।
रक्षार्थं भूमिगर्भस्थं दुर्गमप्यद्य शस्यते ॥ ३६ ॥

वायु-यानसे गिराये फटनेवाले (बमके) गोलोंसे बचनेके लिए आजकल पृथ्वीके नीचे बने किले भी अच्छे समझे जाते हैं ।

जलधान्यायुधानां च तृणवाहनशिल्पिनाम् ।
यन्त्राणामथ योद्धृणां द्रव्याणां वाससां तथा ॥ ३७ ॥
युद्धोपकरणानां चान्येषामपि सुसंग्रहः ।
कार्यो दुर्गेषु सततं राज्ञा विजयमिच्छता ॥ ३८ ॥ (युग्मम्)

विजयकी इच्छा करनेवाले राजाको किलोंमें पानी, धान्य (नाज), शस्त्रों, घास, सवारियों, कारीगरों, मशीनों, योद्धाओं (सिपाहियों), धन, कपडों और युद्धमें काम आनेवाली अन्य वस्तुओंका भी बराबर संग्रह करना चाहिए ।

शिल्पिनां कर्षकाणां च वणिजां श्रमजीविनाम् ।
खनकानां प्रजानां चापरेषामपि कर्मिणाम् ॥ ३९ ॥
काले प्रतिनिधीनाप्तानामन्त्र्य विधिवत् स्वयम् ।
वार्षिका बलयोऽन्ये वा कराश्च नियमादयः ॥ ४० ॥
निर्णेया निजराष्ट्रस्य प्रजानां च हितेच्छया ।
पाल्यास्ते च प्रयत्नेन नापत्तिः स्याद् यतः कस्यचित् ॥ ४१ ॥ (तिलकम्)

राजाको स्वयं अपने राज्य और प्रजाकी भलाईकी इच्छासे समय पर कारीगरों, किसानों, व्यापारियों, मजदूरों, खान खोदनेवालों, साधारण प्रजाजनों और दूसरे

काम करनेवालोंके मान्य प्रतिनिधियोंको, नियमानुसार समय पर बुलवाकर वार्षिक कर या अन्य लगान और कायदे-कानून आदि निश्चित करने चाहिए और उनका यत्न-पूर्वक पालन करना चाहिए, जिससे कहीं भी विरोधकी भावना न रहे।

व्ययं श्रमं च लाभं च परिज्ञायाथवा पुनः।
करादिकं सुनिर्धार्य व्यापारे कृषिकर्मणि ॥ ४२ ॥

या फिर व्यापार और खेतीके काममें खर्च, महनत और आमदनीकी जाँच करके कर (लगान-महसूल) आदि निश्चित करना चाहिए।

निश्चिताऽऽयाधिकतयोत्तरोत्तर-विवर्धनः।
सर्वसाधारणैर्देयो यः स आयकरः स्मृतः ॥ ४३ ॥

निश्चित की हुई आमदनीसे अधिक आमदनी पर उत्तरोत्तर बढनेवाला (तथा) सब लोगोंसे दिया जानेवाला जो कर (टेक्स) होता है, वह आयकर (income tax) माना गया है।

नागरैर्नियता ये स्युः सभ्याः संघेऽथ नागरे।
स्वास्थ्यादिरक्षणकरे तैस्तु ये स्थापिताः कराः ॥ ४४ ॥
राजमार्गपरिष्कार-रथ्याशुद्धिकृतेऽथवा।
रथेष्वनेकरूपेषु वाहेष्वन्येषु वा पुनः ॥ ४५ ॥
यात्राकारिषु हर्म्येषु जलयानेषु निश्चिताः।
तेऽपि देया जनैरन्ये ये चान्ये राजनिश्चिताः ॥ ४६ ॥

नगर-वासियोंने जिनको नगरकी सफाई, तंदुरुस्ती आदिका प्रबन्ध करनेवाले संघ (municipality) में मेंबर नियुक्त किया हो और उन्होंने सडकोंकी मरम्मत अथवा गलियोंकी सफाईके लिए अनेक तरहकी गाडियों पर, दूसरी तरहकी सवारियों पर, यात्रियों पर, बडे घरों पर और नावों पर जो निश्चित कर (tax) लगाये हों, और जो दूसरे कर राजाने निश्चित किये हों, आज-कल लोगोंको वे भी देने चाहिए।

रोगिणो विकलाङ्गाश्च निःसामर्थ्याश्च निर्धनाः।
धर्मार्थं यत्र भोज्यन्ते करस्तत्र न संमतः ॥ ४७ ॥

जहां पर रोगी, विकृत अङ्गवाले (लूले, अंधे आदि) असमर्थ और गरीब लोगोंको धर्मके लिए भोजन दिया जाता है, वहां पर कर (टेक्स) लगाना ठीक नहीं माना है।

रहस्यं तु करस्यैतत् कृषि-व्यापारवर्धनम्।
प्रजासुखकरं चापि राष्ट्रसम्पत्तिवर्धकम् ॥ ४८ ॥

यह खेती और व्यापारको बढानेवाला, प्रजाको आराम पहुँचानेवाला और राज्यकी संपत्ति (माली हालतको) बढानेवाला कर (tax) की सार है।

अगृहीतकरो राजा क्षीणकोशबलो भवेत्।
अतिग्रहणतश्च स्याद् हीनराष्ट्रबलस्त्वसौ ॥ ४९ ॥

कर न लेनेवाला राजा खजानेके बलसे हीन हो जाता है और अत्यधिक कर लेनेसे वह (खेती और व्यापार आदिके नष्ट हो जानेके कारण राज्यकी संपत्ति घट जानेसे) राष्ट्रके बलसे हीन हो जाता है।

अतो मितकरग्राही काले तीक्ष्णो मृदुस्तथा ।
प्रजानां प्रियतामेति सोऽधृष्यश्च प्रजायते ॥ ५० ॥

इसलिए वाजिब कर लेनेवाला तथा समयानुसार कठोर और नरम होनेवाला वह (राजा), प्रजाका प्यारा बन जाता है और दूसरोंसे नहीं दबाया जा सकनेवाला हो जाता है ।

नियोज्याः सर्वकार्येषु राज्ञा योग्याधिकारिणः ।
संग्राह्याः सज्जनैरेव कराश्च वलयस्तथा ॥ ५१ ॥

राजाको सब कामोंपर योग्य अफसर नियुक्त करने चाहिए और कर (टैक्स) तथा साकाना लगान, भले लोगोंद्वारा ही वसूल करवाने चाहिए ।

गृह्णीयाद् द्वादशांशं स कुटुम्बार्थं तदायतः ।
कोशे च निश्चितं भागं निक्षिपेत् तदनन्तरम् ॥ ५२ ॥

वह (राजा) स्वयं उस कर आदिकी आयमेंसे बारहवां भाग अपने कुटुम्बके निर्वाहके लिए लेवे और उसके बाद आयका एक निश्चित भाग राज्यके खजानेमें जमा करे।

शेषं प्रजासमृद्ध्यर्थमार्यैश्च व्याययेदसौ ।
पालयेच्च प्रजाः स्वीयाः सन्ततीरिव यत्नतः ॥ ५३ ॥

आमदनीके बाकी भागको वह माननीय पुरुषोंद्वारा प्रजाकी उन्नतिके लिए खर्च करवावे और अपनी प्रजाका सन्तानके समान यत्नसे पालन करे ।

अदत्त्वैव भृतिं राजा निर्धनैः शिल्पजीविभिः ।
श्रमिकैश्चोचितं कार्यं कारयेदिति यद् वचः ॥ ५४ ॥
शास्त्रेषु लभ्यते तत्तु त्याज्यं तेषां हितेच्छया ।
आवश्यके पुनस्तत्र दद्यान्निर्वाहकं धनम् ॥ ५५ ॥ (युग्मम्)

राजा बिना मजदूरी दिये ही गरीब कारीगरों और मजदूरोंसे (बेगारमें) उचित काम करवा ले – ऐसा जो वचन (मनुस्मृति आदि) शास्त्रोंमें मिलता है, उसे उन (गरीबों)के हितकी इच्छासे छोड देना चाहिए। फिर उस (बेगार)के आवश्यक होनेपर उन्हें (कुटुम्बके) जीवन निर्वाहके लायक मजदूरी दे दे ।

प्रख्यातानां च विदुषां वीराणां शिल्पिनां तथा ।
सतां वैज्ञानिकानां च भूपैः कार्यः सदादरः ॥ ५६ ॥

राजाओंको प्रसिद्ध विद्वानों, वीरों, कारीगरों, सत्पुरुषों और विज्ञानके पण्डितोंका सदा आदर करना चाहिए ।

स्नातकं च वरं चाथ सर्वमान्यं मनीषिणम् ।
ब्रह्मनिष्ठं गुरुं चाऽध्वदानात् संमानयेन्नृपः ॥ ५७ ॥

राजा विद्या पढना समाप्त कर लौटते हुए ब्रह्मचारी, वर (दूल्हे), सर्वमान्य विद्वान् और ब्रह्मचिन्तनमें लगे गुरुको रास्ता देकर (इनका) संमान करे (अर्थात् मार्गमें मिलने पर पहले इन लोगोंको निकलनेका मार्ग दे ।)

पशवो हिंसका ये स्युर्ये स्युः कृषिविनाशकाः ।
अन्यहानिकरा ये च तेषामाखेटमाचरेत् ॥ ५८ ॥

जो पशु दूसरे जीवोंका नाश करनेवाले हों, जो खेतीको नुकसान पहुँचानेवाले हों और जो दूसरी तरहकी हानि करनेवाले हों, उनका शिकार करे ।

क्षत्रव्रतं न संत्याज्यं राज्ञा कुत्रापि कर्हिचित् ।
शरण्यः स्याद् विनीतानां दुष्टानां दमने क्षमः ॥ ५९ ॥

राजा कहीं भी और कभी भी क्षत्रिय धर्मको न छोडे । वह भले मनुष्योंकी रक्षा करे और दुष्टोंको दण्ड देनेमें समर्थ हो ।

न पृष्ठं दर्शयेद् युद्धे त्यक्तशस्त्रान्न मारयेत् ।
न लुण्ठेच्च प्रजाः शत्रोरपि स्वस्य तु का कथा ? ॥ ६० ॥

राजा युद्धमें पीठ न दिखावे, शस्त्र डाल देनेवालोंको न मारे और शत्रुकी प्रजाको भी न लूटे, (ऐसी अवस्थामें फिर) अपनी प्रजाके लूटनेकी तो बात ही कैसी ? ।

द्रव्योपकरणादीनि लभ्यन्ते यानि शत्रुतः ।
ततः स्ववीरमुख्येभ्यो देया युद्धपुरस्कृतिः ॥ ६१ ॥

शत्रुसे जो धन और सामान हाथ लगे, उसमेंसे अपने मुख्य-मुख्य वीरोंको युद्धमें दिखलाई वीरताके लिए, इनाम देना चाहिए ।

सैन्यशिक्षारतो नित्यं न्यायकार्यपरस्तथा ।
मन्त्रिमन्त्रार्थकुशलो वैरिमर्मविशारदः ॥ ६२ ॥
स्वच्छिद्रं गोपयन्नित्यं नाशयन् परिपन्थिनः ।
सुकर्मणः स्वपक्षीयाञ्जनान् राष्ट्रं च पालयेत् ॥ ६३ ॥ (युग्मम्)

सदा सैन्यशिक्षामें लगा हुआ, न्यायके कामोंमें तत्पर, मंत्रियोंकी सलाहको समझनेमें प्रवीण और शत्रुओंकी निर्बलताओं (अथवा उनके मर्म स्थानों) पर चोट करनेवाला राजा, सदा ही अपनी कमजोरीको प्रगट न होने देता हुआ और अपने विरोधियोंका नाश करता हुआ, अपने पक्षके सज्जनोंकी और राज्यकी रक्षा करे ।

अलब्धं मतिमानिच्छेल्लब्धं रक्षेत् सुयत्नतः ।
वर्धयेद् रक्षितं लोके वृद्धं लोकहितेऽर्पयेत् ॥ ६४ ॥

बुद्धिमान् (राजा) हाथ न लगी वस्तुकी (प्राप्तिकी) इच्छा करे, हाथ लगी हुई की यत्नसे रक्षा करे, रक्षित वस्तुको जगत्में (व्यापार आदिसे) बढावे और बढाई हुईको प्रजाके फायदेके कामोंके लिए दे दे ।

ऋते कारणमज्ञानात् पीडयेद् यो निजाः प्रजाः ।
स नश्यत्यचिरादेव सकुटुम्बपरिग्रहः ॥ ६५ ॥

जो (राजा) बिना कारणके ही मूर्खतासे अपनी प्रजाको दुःख देता है, वह भाई-बन्धुओं और साथियों सहित शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ।

प्रबन्धः शिक्षणे कार्यः प्रजाकल्याणमिच्छता ।
शिक्षिताः स्वास्थ्य-संपत्तिवाधितात्मा यतः प्रजाः ॥ ६६ ॥

भारतीय विद्या भवन

अध्यापक मण्डल

*

(१) डॉ. मणिलाल पटेल, पी-एच. डी. (संस्कृत)
(२) श्री. जिनविजयजी मुनि, (प्राकृत, हिन्दी)
(३) श्री. दुर्गाशंकर शास्त्री, (भागवत धर्म)
(४) डॉ. मोतीचंद्र, एम. ए., पी-एच. डी. (अवैतनिक, - भारतीय इतिहास)
(५) श्री. र. घ. शास्त्री, एम. ए. (अवैतनिक, - भारतीय इतिहास)
(६) डॉ. अ. द. पुसालकर, एम. ए., एल-एल. बी., पी-एच. डी. (भागवत धर्म)
(७) श्री. अ. स. गोपाणी, एम. ए. (जैनशास्त्र)
(८) श्री. शिवदत्त शास्त्री, एम. ए. (भारतीय इतिहास)
(९) पं. मोतीराम शास्त्री, (मुम्बादेवी संस्कृत पाठशाला)
(१०) पं. गोतमलाल दुबे, (ज्योतिष शिक्षापीठ)
(११) पं. गणेश त्र्यंबकेश जोशी, (भागवत धर्म)

'रिसर्च फेलो' –

(१) श्री. कुमारी सुशीला महेता, एम. ए., एल-एल. बी. (भागवत धर्म)
(२) श्री. हरिवल्लभ भायाणी, एम. ए. (संस्कृत)
(३) श्री. प्रभुदास शाह, एम. ए. (संस्कृत)
(४) श्री. हरिलाल पंड्या, एम. ए. (गुजराती)

'रिसर्च स्कॉलर' –

(१) श्री. मोहनलाल सूचक, बी. ए. (ऑनर्स, - गुजराती)
(२) श्री. ललितकान्त दलाल, बी. ए. (ऑनर्स, - गुजराती)
(३) श्री. अवन्तीलाल शाह, बी. ए. (ऑनर्स, - संस्कृत)
(४) श्री. गजानन बिके, बी. ए. (ऑनर्स, - संस्कृत)

*

ग्रन्थ प्रकाशनकार्य

*

'भवन' द्वारा प्रकाशित साहित्य-

पत्रिकाएँ-

(१) 'भारतीय विद्या' (अंग्रेजी)-षाण्मासिक

(२) 'भारतीय विद्या' (हिन्दी-गुजराती)-त्रैमासिक

(३) 'भारतीय विद्या पत्रिका' (हिन्दी)-मासिक

ग्रन्थ—

(१) बुद्धघोषकृत "विसुद्धिमग्ग" (प्रथमभाग) (सम्पादक-श्री धर्मानन्द कोसाम्बी)

(२) "भरतेश्वर बाहुबलिरास" (सम्पादक-श्री जिनविजयजी मुनि)

*

निम्न लिखित ग्रन्थ छप रहे हैं-

(१) "अपभ्रंश साहित्य पर डॉ. 'जेकोबी' के निबन्ध" (इंग्रेजी, डॉ. मणिलाल पटेल)

(२) "ऋग्वेदके छठे मण्डलका अनुवाद" (डॉ. मणिलाल पटेल)

(३) "सन्देशरासक" (अपभ्रंश काव्य, सम्पादक-श्री जिनविजयजी मुनि)

(४) "उक्तिव्यक्तिप्रकरण" (सम्पादक-श्री जिनविजयजी मुनि)

(५) वैजनाथ कृत कलानिधि (मराठी भाषाका प्राचीनतम ग्रन्थ-सं. जि. वि. मुनि)

(६) "रिष्टसमुच्चय" (प्राकृत ग्रन्थ सम्पादक-श्री अ. स. गोपाणी)

(७) "भास" (इंग्रेजी, डॉ. अ. द. पुसालकर)

(८) "भागवतधर्म" (इंग्रेजी, श्री दुर्गाशंकर शास्त्री तथा श्री कु० सुशीला महेता)

(९) "भारतीय संस्कृति" (हिंदी प्रबन्ध, श्री. शिवदत्त ज्ञानी)

*

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press, 26-28, Kolbhat Street, Bombay.

Published by Dr. Manilal Patel, Director, Bharatiya Vidya Bhavan, Andheri, Bombay.

भारतीय विद्या

[बम्बईस्थित, भारतीयविद्याभवन द्वारा प्रकाशित संशोधनविषयक
हिन्दी - गुजराती त्रैमासिक पत्रिका]

भाग २] आषाढ, संवत् १९९९ * जुलाई, ई. स. १९४२ [अंक ४

संपादक

श्री जिन विजय मुनि

[आचार्य - भारतीय विद्या भवन]

*

प्रकाशक

भारतीय विद्या भवन

बंबई

प्रति अंक मूल्य १-८-० * वार्षिक मूल्य ५-०-०

भारतीय विद्या

द्वितीय भाग] आषाढ, सं. १९९९ [चतुर्थ अंक

लेखानुक्रम

परिशिष्ट–

*

आवश्यकीय निवेदन – कतिपय विशिष्ट कारणोंके सबब भारतीय विद्याका प्रस्तुत अंक कुछ विलंबसे प्रकाशित हो रहा है । इनमें प्रधान कारण है – संपादक आ० श्री जिनविजयजीका, पिछले ६ महिनों, राजस्थानके सुप्रसिद्ध प्राचीन दुर्ग जेसलमेरमें संरक्षित जगद्विशिष्ट पुरातन ज्ञानभंडारके अवलोकन निमित्त, सतत वहां रहना और उसी कार्यमें एकाग्र होकर ज्ञानभंडारमें छिपे हुए अनेकानेक ग्रन्थरत्नोंका पर्यवेक्षण करना एवं उनकी प्रतिलिपि आदि करने – करवानेके महत् प्रयत्नमें व्यस्त रहना इत्यादि । इसलिये प्रस्तुत अंकके प्रकट होनेमें कुछ विशेष विलंब हुआ है ।

– महामात्र, भा. वि. भ.

सिंघी जैन ग्रन्थमाला संस्थापक

दानवीर-साहित्यरसिक-संस्कृतिप्रिय-

बाबू श्री बहादुर सिंहजी सिंघी

प्रदत्त

भारतीय विद्याभवनको अभिनन्दनीय दान

*

कलकत्तानिवासी सुप्रसिद्ध दानवीर श्रीमान् बाबू बहादुर सिंहजी सिंघीने, अपने स्वर्गवासी साधुचरित पिता श्री डाल चंदजी सिंघीकी पुण्यस्मृति निमित्त, जैन साहित्यके उत्तमोत्तम और अपूर्व माने जानेवाले ग्रन्थरत्नोंको, आधुनिक शास्त्रीय पद्धतिके नियमानुसार, विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा संशोधित एवं संपादित करवा कर, सुन्दरतम रूपमें प्रकाशित करनेके लिये, हमारी विशिष्ट प्रेरणा और योजनाके मुताबिक, 'सिंघी जैन ग्रंथमाला' नामक एक सर्वाङ्गसुन्दर और बहुमूल्य ग्रन्थावलि प्रकट करनेका बडा महद् एवं उदार कार्य प्रारंभ किया है। इसे चलते कोई १०-११ वर्ष व्यतीत हो गये हैं और इस बीचमें कोई १५-१७ जितने, साहित्य, इतिहास और तत्त्वज्ञान आदि विषयके बडे बडे प्रौढ और अपूर्व ग्रन्थ, भिन्न भिन्न विद्वानों द्वारा संशोधित संपादित होकर, प्रकट हो चुके हैं। इन ग्रन्थोंके प्रकाशन निमित्त आजतक कोई '५००००' रुपये जितनी बडी भारी रकम श्रीमान् सिंघीजीने खर्च की है। लगभग इतने ही और ग्रन्थ वर्तमानमें छप रहे हैं तथा इनसे कहीं अधिक और तैयार हो रहे हैं।

भारतीय विद्या भवनके विद्यानिष्ठ और साहित्योत्कर्षक संस्थापक महामनीषी सुहृद्वर श्री मुन्शीजीकी विनम्र विज्ञप्ति और तदनुकूल हमारी संपूर्ण सम्मतिसे प्रेरित होकर, बाबू श्री बहादुर सिंहजी सिंघीने, अब इस समग्र 'सिंघी जैन ग्रंथमाला' को, भारतीय विद्याभवनके तत्त्वावधानमें प्रकाशित होनेके लिये, सोल्लास समर्पण कर देनेका अति ही अभिनन्दनीय और परम औदार्य प्रदर्शित किया है।

अतः अबसे 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' इस भारतीय विद्याभवन द्वारा प्रकाशित होगी और इसका संपूर्ण कार्यालय, भवनके साथ ही संलग्न रहेगा। ग्रन्थमालाका कार्य भी अबसे कहीं अधिक वेग और विस्तारके साथ चालू रखनेकी सिंघीजीकी महती मनोभावना है।

इस प्रकार, ग्रन्थमालाके समर्पणके अतिरिक्त, भारतीय विद्या भवनके भव्य मकानमें, ऊपरके हिस्सेमें, एक मध्यवर्ति विशाल 'हाल' बनवानेके लिये भी, हमारी प्रेरणासे, श्री सिंघीजीने १०००० रूपयेका एक और उदार दान दिया है।

भारतीय विद्या भवनने, श्रीमान् सिंघीजीके इस विशिष्ट औदार्यदानके उपलक्ष्यमें, भवनका जो 'जैनशास्त्र संशोधन विभाग' है उसे 'सिंघी जैनशास्त्र शिक्षापीठ' के स्मरणीय नामसे सदैव प्रचलित रखनेका निर्णय किया है।

इस प्रकार भारतीय विद्या भवनने, जैन साहित्यके प्रकाशन और जैन वाङ्मयके अध्ययन-अध्यापनका एक बहुत ही भव्य और विशिष्टतर कार्यसंपादन करनेकी सिद्धि प्राप्त की है – जिसका लाभ जैन संस्कृतिके जिज्ञासु अधिक-अधिकतर रूपमें प्राप्त करें यही प्रार्थनीय है।

आषाढ शुक्ल, १ |
वि. सं. १९९९ |

जिन विजय
आचार्य – भारतीय विद्या भवन

सिंघी जैन ग्रन्थमाला

*

१. ग्रन्थ, जो अबतक छपकर प्रकट हो चुके हैं -

१ मेरुतुङ्गाचार्यरचित प्रबन्धचिन्तामणि.
२ पुरातनप्रबन्धसंग्रह.
३ राजशेखरसूरिरचित प्रबन्धकोश.
४ जिनप्रभसूरिकृत विविधतीर्थकल्प.
५ मेघविजयोपाध्यायविरचित देवानन्द-महाकाव्य.
६ यशोविजयोपाध्यायकृत जैनतर्कभाषा.
७ हेमचन्द्राचार्यकृत प्रमाणमीमांसा.
८ भट्टाकलङ्कदेवकृत अकलङ्कग्रन्थत्रयी.
९ प्रबन्धचिन्तामणि हिन्दी भाषान्तर.
१० प्रभाचन्द्रसूरिरचित प्रभावकचरित
11 Life of Hemachandrāchārya: By Dr. G. Buhler.
१२ सिद्धिचन्द्रोपाध्यायरचित भानुचन्द्रगणि-चरित.
१३ यशोविजयोपाध्यायविरचित ज्ञानबिन्दु-प्रकरणम्.

२. ग्रन्थ जो छप रहे हैं -

१ खरतरगच्छगुर्वावलि.
२ कुमारपालचरित्रसंग्रह.
३ विविधगच्छीयपट्टावलिसंग्रह.
४ जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह, भाग १-२.
५ विज्ञप्तिलेखसंग्रह.
६ हरिभद्रसूरिकृत धूर्ताख्यान.
७ हरिषेणकृत बृहत् कथाकोश.
८ उद्योतनसूरिकृत कुवलयमाला कथा.
९ उदयप्रभसूरिकृत धर्माभ्युदय महाकाव्य.
१० जिनेश्वरसूरिकृत कथानककोष प्रकरण.
११ मेघविजयोपाध्यायकृत दिग्विजय-महाकाव्य.
१२ शान्त्याचार्यकृत न्यायावतारवार्तिक वृत्ति.
१३ गुणपालकृत जंबूचरित्र (प्राकृत).

३. ग्रन्थ जो छपनेके लिये तैयार हो रहे हैं -

१ भानुचन्द्रगणिकृत विवेकविलासटीका.
२ पुरातन रास-भासादिसंग्रह.
३ प्रकीर्ण वाङ्मय प्रकाश.
४ भद्रबाहुसूरिकृत भद्रबाहुसंहिता.
५ सिद्धिचन्द्रोपाध्यायविरचित वासवदत्ता टीका.
६ जयसिंहसूरिकृत धर्मोपदेशमाला.
७ देवचन्द्रसूरिकृत मूलशुद्धिप्रकरणवृत्ति.
८ रत्नप्रभाचार्यकृत उपदेशमाला टीका.
९ यशोविजयोपाध्यायकृत अनेकान्त-व्यवस्था.
१० जिनेश्वराचार्यकृत प्रमालक्ष्म.
११ महानिशीथसूत्र.
१२ तरुणप्रभाचार्यकृत आवश्यकबालावबोध.
१३ राठोड वंशावलि.
१४ उपकेशगच्छप्रबन्ध.
१५ नयचन्द्रसूरिकृत हम्मीरमहाकाव्य.
१६ वर्द्धमानाचार्यकृत गणरत्नमहोदधि.
१७ प्रतिष्ठासोमकृत सोमसौभाग्यकाव्य.
१८ नेमिचन्द्रकृत षष्टीशतक (पृथक् पृथक् ३ बालावबोध युक्त)
१९ शीलांकाचार्य विरचित महापुरुष चरित्र (प्राकृत महाग्रंथ)
२० चंदप्पहचरियं (प्राकृत)
२१ नम्मयासुंदरीकहा (प्राकृत)
२२ नेमिनाह चरिउ (अपभ्रंश महाग्रंथ)
२३ उपदेशपदटीका (वर्द्धमानाचार्यकृत)
२४ निर्वाणलीलावती कथा (सं. कथा ग्रंथ)
२५ सनत्कुमार चरित्र (संस्कृत काव्य ग्रंथ)
२६ भोज चरित्र-राजवल्लभ पाठक कृत.
२७ वाग्भटालंकारवृत्ति-प्रमोद माणिक्य कृत.
२८ विदग्धमुखमण्डनवृत्ति-सोमदेवादि कृत.
२९ वृत्तरत्नाकरवृत्ति-समयसुन्दरादिकृत.
३० पाण्डित्य दर्पण.
३१ पुरातनप्रबन्धसंग्रह-हिन्दी भाषांतर.

* * *

मूलराज सोलंकी सहस्राब्दी महोत्सव ग्रंथ

THE GLORY THAT WAS GUJARATA

गुजरातका प्राचीन गौरव

सम्पादक – क. मा. मुन्शी, अध्यक्ष, भारतीय विद्याभवन

हमें यह सूचित करते हर्ष होता है कि वर्तमान गुजरातके संस्थापक मूलराज सोलंकीके सहस्राब्दी महोत्सवके उपलक्ष्यमें, गुजरातके प्राचीन इतिहाससे सम्बन्धित उपरोक्त ग्रन्थ अंग्रेजीमें शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। इस ग्रन्थमें प्रागैतिहासिक व प्रारम्भिक कालसे लेकर ई. स. १३०० तक गुजरातके सर्वाङ्गीण इतिहासका समावेश होता है। इसे गुजरातकी भौगोलिक सीमा तक ही परिसीमित नहीं रखा गया है, किन्तु उस बृहत् गुर्जर देशका इसमें वर्णन है, जिसके अन्तर्गत वर्तमान गुजरात, राजपूताना व मालवा आ जाते हैं और ये ही प्रदेश एक समय भारतके इतिहासमें सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर चुके थे। इसमें केवल भूतकालकी राजनैतिक घटनाओंका ही ब्योरा नहीं है, किन्तु तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक व कला-सम्बन्धी पहलुओंपर भी ऐतिहासिक दृष्टिसे अच्छा प्रकाश डाला गया है।

विषयसूचि व लेखक

प्रथम भाग – राजनैतिक इतिहास

वलभीका मैत्रकवंश – श्रीमती कृष्णा जे. वीरजी, *इं. हि. रि. इन्स्टिट्यूट, बम्बई*, व श्री. हरप्रसाद शास्त्री, *गुजरात व्हर्नाक्युलर सोसायटी, अमदाबाद*

पेरिप्लस व टोलेमी – श्री. धनप्रसाद मुंशी, बम्बई

साम्राज्यभोगी गूर्जरवंश – श्री. के. एम. मुंशी

गूर्जरोंका पतन – श्री. दुर्गाशंकर के. शास्त्री, *भारतीय विद्याभवन*

प्राचीन गुजरातके सिक्के – श्री. आर. जी. ग्यानी, *प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युज़ियम, बम्बई*

द्वितीय भाग – सामाजिक व सांस्कृतिक इतिहास

मानववंशशास्त्रकी दृष्टिसे सोलंकियोंकी उत्पत्ति – श्री. पी. जी. शाह, *अकाउन्टन्ट जनरल, बम्बई*

गुज० सामाजिक अवस्था – श्री. दुर्गाशंकर के. शास्त्री, *भारतीय विद्याभवन*

गुज० आर्थिक अवस्था – प्रो० के. एम्. कामदार, *बरोडा कालेज*

गुज० सामुद्रिक व्यापार – श्री. धनप्रसाद मुंशी, बम्बई

गुज० वास्तुनिर्माण आदि कला – श्री. कार्ल खण्डालावाला, *बार-एट्-ला.*

गुज० साहित्य – डो. मणिलाल पटेल, *भारतीय विद्याभवन*

गुज० नाटक – श्री. जी. व्ही. जोशी, आचार्य, *भारतीय विद्याभवन*

गुज० कथासाहित्य – प्रो० ए. एम्. गोपाणी, *भारतीय विद्याभवन*

गुज० भाषा – श्री. हरिवल्लभ भायाणी, *भारतीय विद्याभवन*

गुज० धर्म, शैव, भागवत आदि – श्रीमती सुशीला महेता, *भा० विद्याभवन*

गुज० जैनमत – प्रो० ए. एम्. गोपाणी, *भारतीय विद्याभवन*

कागजकी जबर्दस्त तंगीके कारण थोड़ी ही प्रतियां छप रही हैं। इसलिये यदि निराशासे बचना हो तो जल्द ही ग्रन्थके लिये 'आर्डर' भेजनेकी कृपा कीजिये। यह ग्रंथ, जिसमें लगभग ६५० पृष्ठ व 'आर्ट पेपर' पर बीस 'प्लेट' रहेंगी, आगामी नवेंबर-डीसेंबर महिने तक तैयार हो जायगा वर्तमान असाधारण परिस्थितिके कारण प्रकाशनका खर्च बहुत ही अधिक आया है, अतः हम सहानुभूति रखनेवाली जनतासे अपील करते हैं कि वे इस शुभ कार्यमें आर्थिक सहायता दें। उक्त ग्रन्थका हिन्दी एवं गुजराती अनुवाद भी बादमें शीघ्र ही प्रकाशित होगा। मूल्य एक प्रतिका १२) रु.

मंत्री, **भारतीय विद्याभवन**, हारवे रोड ३३-३५, मुंबई नं. ७
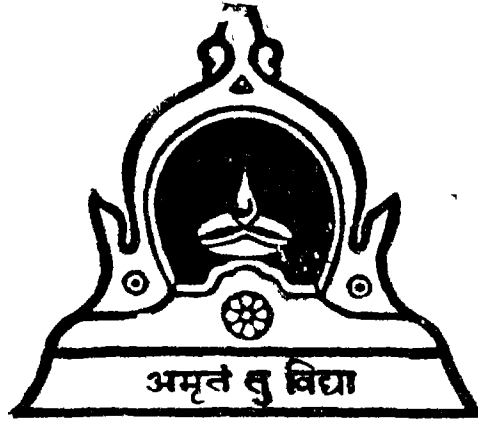
वर्ष २] पोष, सं० १९९९ जान्युआरी, सन १९४३ [अंक ४

उपनिषत्सिद्धान्त अने भागवत सिद्धान्त*

ले० – श्रीयुत दुर्गाशंकर के. शास्त्री

*

'ઉપનિષત્સિદ્ધાન્ત' એ કદાચ શિથિલ શબ્દપ્રયોગ છે. કારણ કે પ્રાચીન ગણાતાં ઉપનિષદોમાં અમુક જ સિદ્ધાન્ત સળંગ સંકલિત રૂપમાં કહેલો હોય એવું દેખાતું નથી. પાછળના આચાર્યોએ પોતાનો ઇષ્ટ વાદ ઉપનિષદોને માન્ય છે એવું સિદ્ધ કરવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે, પણ આવો પ્રયત્ન પરસ્પરવિરોધી મતના આચાર્યોથી થઈ શક્યો છે એ વસ્તુસ્થિતિ જ ઉપનિષદોમાં અમુક એક જ સિદ્ધાન્ત દૃઢ રૂપમાં પ્રતિપાદિત નથી એમ સિદ્ધ કરે છે. છતાં એટલું ચોક્કસ કહી શકાય એમ છે કે ધ્યાનાદિ જેવી યોગની પ્રક્રિયાઓ, ઉપાસના તથા ઈશ્વરભક્તિસંબંધી છૂટક વચનો તથા સાંખ્યવાદને અનુકૂળ કહી શકાય એવાં કોઈક વાક્યોને બાદ કરતાં ઈશાદિ દશ કે બાર ઉપનિષદોના મોટા ભાગમાં જ્ઞાનમાર્ગના કહી શકાય એવા આધ્યાત્મિક તથા સૃષ્ટિ અને પરમેશ્વરવિષયક વિચારો વેરાયેલા પડ્યા છે. વળી ઉપનિષદોનું સામાન્ય વલણ અદ્વૈતવાદ પ્રતિ છે.

અહીં ઉપનિષદોનું સ્વરૂપ ધ્યાનમા રાખવાની જરૂર છે. ઉપનિષદો કાંઈ સુગ્રથિત શાસ્ત્રગ્રન્થ નથી. શાસ્ત્રયુગ જ ઔપનિષદ કાળ પછી ઉદય પામ્યો છે. ન્યાયવૈશેષિકાદિ દર્શનો એ શાસ્ત્રયુગની રચના છે, પણ ઉપનિષદો તો કવિત્વમય ભાષામાં ઋષિઓના સ્વયંસ્ફુરિત અધ્યાત્મવિષયક ઉદ્ગારો છે. પ્રાચીનોએ તેને સ્વતઃપ્રમાણ ગણેલ છે. અર્વાચીન દૃષ્ટિએ જોતા ઉપનિષદ્વચનોમાં જે સત્ય છે તે પ્રમાણપુરઃસર વિચાર કરીને

---

* તા. ૨–૩–૧૯૪૨ ને રોજ ભારતીય વિદ્યાભવન તરફથી આપેલું વ્યાખ્યાન.

મેળવેલ સત્ય નથી, પણ કવિઓના દર્શન સર્જન જેવું, હૃદયગુહામાંથી પ્રકટેલ પ્રાતિભ દર્શન છે, એમ કેટલાંક ઔપનિષદ વચનોના સ્પષ્ટ કથનથી,[1] ભૃગુવલ્લીમાં કહેલ તપથી જ્ઞાત થયું હોવાની વાતથી, નચિકેતોપાખ્યાન, જાબાલોપાખ્યાન, ઉપકોસલોપાખ્યાન વગેરેમાં રહેલા ગર્ભિત સૂચનથી તથા સમગ્ર રીતે ઉપનિષદોમાં તર્કબદ્ધતાના અભાવથી સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે.

આ રીતે જોતાં 'ઉપનિષત્સિદ્ધાન્ત' એ શબ્દપ્રયોગ બરાબર નથી, છતાં શિથિલ રીતે ઉપનિષદોમાં મળી આવતા ફિલ્સૂફીના વિચારો માટે એ શબ્દ વાપરી તેની ભાગવત સિદ્ધાન્ત એટલે ભાગવત માર્ગનાં, કોઈ એક સંપ્રદાયનાં ખાસ નહિ પણ સામાન્ય, મન્તવ્યો સાથે તુલના કરવાનો અહીં પ્રયત્ન કર્યો છે.

ભાગવત માર્ગનો આદિ ગ્રન્થ ભગવદ્ગીતા છે.[2] ગીતાથી પ્રાચીનતર કોઈ ગ્રન્થ જૂના કાળમાં હશે તો એ અત્યારે ઉપલબ્ધ નથી, પણ શ્વે. ઉ. નાં તથા બીજાં પણ કેટલાંક ઔપનિષદ વચનો જોતાં ગીતા રચાયા પહેલાં પણ ભાગવતોના વિચારોનું અસ્તિત્વ હશે એમ લાગે છે. વળી ગીતામાં પોતામાં તથા ભાગવત સિદ્ધાન્તમાં કેટલાક વિચારો ઉપનિષદોમાંથી ઊતરી આવ્યા છે, અને કેટલાક તો બૌદ્ધ, જૈન અને બ્રાહ્મણ દર્શનોને સમાન માન્ય વિચારો છે. દા. ત. કર્મવાદ. ઉપનિષદોમાં કર્મવાદને લગતાં જે છૂટક થોડાં વચનો[3] મળે છે તેમાં કર્મવાદ પૂરા વિકસિત રૂપમાં દેખાતો નથી, એટલું જ નહિ, પણ કર્મવાદવિષયક ઔપનિષદ વચનોનો સમગ્ર રીતે વિચાર કરતાં એમ લાગે છે કે ઔપનિષદ કાળમાં જ એ વાદ ક્રમે ક્રમે વિકસ્યો છે. પાછલા કાળનાં ગણાતાં ઉપનિષદો-માં પ્રાચીનતર ઉપનિષદો કરતાં સ્પષ્ટતર રૂપમાં મળે છે, પણ બૌદ્ધ, જૈન અને ઉપનિષદુત્તરકાલીન બ્રાહ્મણસાહિત્યમાં કર્મવાદ પૂરા વિકસિત રૂપમાં મળે છે. ભાગવત માર્ગને પણ કર્મવાદ સંપૂર્ણ રીતે માન્ય છે.

કેટલાક વિચારો બૌદ્ધ જૈનને નહિ પણ ઉપનિષદોને તથા ભાગવત માર્ગને સમાન રીતે માન્ય છે. દા. ત. વૈદિક કર્મોની મોક્ષસાધકતામાં અશ્રદ્ધા. ભગવદ્ગીતા સ્પષ્ટ શબ્દોમાં વૈદિક કર્મોની નિન્દા કરે છે[4], જ્યારે ઉપનિષદો આત્મજ્ઞાનને જ નિઃશ્રેયસ સાધન માને છે અને કર્મોને અવગણે છે.[5]

---

૧ हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तः श्वे. ઉ. ૩–૧૩
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः મુંડક. ૩–૧–૮
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् । કઠ. ૨–૨૩

૨ જુઓ મારો વૈષ્ણવધર્મનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ, ૧૯૩૯, પૃ. ૩૫

૩ योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्ये नु संयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ કઠ. ૨–૫–૭

૪ જુઓ ગીતા ૨–૪૨,૪૩ :–

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ।
कामात्मानः स्वर्गपराः जन्मकर्मफलप्रदाम् ॥

૫ एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न कर्मणा वर्धते नो कनीयान् । બૃ. ઉ. ૪–૪–૨૩
नास्त्यकृतः कृतेन । મુંડક. ૧–૨–૧૨

ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ જોઈએ તો ઔપનિષદ કાળમાં યજ્ઞાદિ વૈદિક કર્મોથી વિચારશીલ માણસોને અસંતોષ થવા લાગ્યો. પરિણામે બૌદ્ધો અને જૈનોએ વૈદિક કર્મોનો જ નહિ, પણ તેનો ઉપદેશ કરનાર વેદોનો પણ બહિષ્કાર કર્યો, જ્યારે ઉપનિષદોમાંથી નીકળેલા વેદાંતમાર્ગે તથા ગીતાથી ચાલેલા ભાગવત માર્ગે વેદોને ધર્મના સ્વતઃપ્રમાણ મૂળ તરીકે માન્ય રાખ્યા પણ વૈદિક કર્મોને ગૌણ ગણ્યાં. વૈદિક કર્મોને તથા સંસારને ત્યજીને પરિવ્રજ્યા કરવાનું વલણ ઔપનિષદ કાળમાં સામાન્ય હતું; જો કે સંન્યાસ માટે આગ્રહ ઉપનિષદોમાં કે ગીતામાં નથી, પણ બૌદ્ધો, જૈનો, ઔપનિષદો અને ભાગવતો બધા ત્યાગમાં ગૌરવ માનતા એમ તો દેખાય છે. અને પાછળથી પણ જેમ વેદાન્તીઓમાં સંન્યાસનું મહત્ત્વ હતું તેમ ભાગવતોમાં પણ હતું. ભાગવત પુરાણ પોતે પારમહંસ્યસંહિતા કહેવાય છે. રામાનુજ, મધ્વ, ચૈતન્ય વગેરે વૈષ્ણવ આચાર્યોએ સંન્યાસ સ્વીકારેલો.

ઉપનિષદોમાં મુખ્ય વિચારધારા બે દેખાય છેઃ (૧) આધ્યાત્મિક ચિતનની અને (૨) સૃષ્ટિકરણ ચિંતનની. સ્થૂળ શરીર તો નશ્વર છેઃ "જેવું ઘાસ તેવું આ શરીર;"[૬] ત્યારે માણસમાં કાંઈ અવિનાશી તત્ત્વ છે કે નહિ એનું ચિંતન કરતાં ઇન્દ્રિયો, મન, બુદ્ધિ, આત્મા વગેરે આધ્યાત્મિક દ્રવ્યોને ઋષિઓની પ્રજ્ઞાએ પકડ્યાં છે. પણ અહીં સ્પષ્ટ કહેવું જોઈએ કે આધ્યાત્મિક વિચારમાં ચિત્તતંત્રની રચના કે કાર્યપ્રણાલીની વીગતોને ઉકેલવા તરફ ઔપનિષદ ઋષિઓએ વિશેષ ધ્યાન આપ્યું હોય એમ દેખાતું નથી, પણ જે તેઓને અંતરતમ લાગ્યું છે તે આત્મતત્ત્વ તરફ જ તેઓની સ્થિર દૃષ્ટિ છે. कोयमात्मा[૭] એ મહા પ્રશ્ન છે. વારંવાર જુદે જુદે રૂપે આત્મતત્ત્વને પકડવાનો પ્રયાસ કરતા ઋષિઓ જે ઉદ્ગારો કાઢે છે તેમાંથી એ દ્રષ્ટાઓનું ઊંડું મનોમન્થન દેખાય છે.

જેમ એક તરફથી અધ્યાત્મચિંતન ચાલતું હતું તેમ બીજી તરફથી સૃષ્ટિચિંતન ચાલતું હતું. कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः[૮] ક્યાંથી આ સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન થઈ? એ પ્રશ્ન તો ઉપનિષદોથી પ્રાચીનતર કાળમાં ઋગ્મન્ત્રમાં મળે છે. આ વિચારધારામાં પણ દૃશ્યમાન સૃષ્ટિની વીગતોના વિચારમાં ન પડતાં ઋષિઓનું ચિત્ત એના આદિ કારણને પકડવા મથે છે. જગતની ઉત્પત્તિનો ક્રમ ભિન્ન ભિન્ન રીતે વર્ણવાયેલો ઉપનિષદોમાં મળે છે, પણ એ ક્રમને ત્યાં મહત્ત્વ નથી અપાયું. મહત્ત્વ તો સર્વના મૂળનું છે અને જગતનાં સામાન્ય તત્ત્વરૂપ ત્રણ કે પાંચ મહાભૂતો અને એ સર્વના મૂળરૂપ સત્–બ્રહ્મનો નિશ્ચય કરનાર ઉદ્દાલકાદિ ઋષિઓએ तत्त्वमसिमां બેય પ્રવાહોનું અદ્વૈત જોયું. પણ ઔપનિષદ વિચારોનો વધારે વિસ્તાર અહીં અપ્રસ્તુત છે. પણ ઉપર કહેલ બે વિચારધારાઓનું તથા સામાન્ય રીતે ઉપનિષદોનું અવલોકન કરતાં એ દ્રષ્ટાઓની પ્રેરકવૃત્તિ જ્ઞાન માટેના કુતૂહલની સ્પષ્ટ દેખાય છે. અને એ કુતૂહલથી પ્રેરિત આધ્યાત્મિક ચિંતનને તેઓ બ્રહ્મવિદ્યા કે પરા વિદ્યા કહે છે.[૯]

---

૬ सस्यमिव पच्यते जन्तुः सस्यमिवाजायते पुनः । કઠ. ૧–૧–૬

૭ ઐ. ઉ. ૩–૧

૮ ઋ. ૧૦–૧૨૯–૫

૯ મુંડક ૧–૫ अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।
   „ ૧–૧માં બ્રહ્મવિદ્યા શબ્દ છે.

ઔપનિષદ ઋષિઓનું આ વિદ્યા તરફનું આકર્ષણ એ ભાગવતોનું મુખ્ય લક્ષણ નથી. ભાગવતો જ્ઞાન મેળવવા નહિ પણ ધાર્મિક વૃત્તિને સંતોષવાની ઇચ્છાથી પ્રેરાય છે. અલબત્ત, વૈદિક કર્મોથી તેઓની ધાર્મિક વૃત્તિને સંતોષ ન થયો અને તેઓ ઈશની ઉપાસના કે ભક્તિ તરફ વળ્યા.

વળી જેઓને વૈદિક કર્મોથી સંતોષ નહોતો થતો તેઓને સામાન્ય સાંસારિક કાર્યોમાં પણ રાગ નહોતો રહ્યો. કઠોપનિષદ (૧–૨–૨)માં કહ્યું છે કે श्रेयः प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः । એ વચન સ્પષ્ટ રીતે પ્રેય અને શ્રેયને સામસામાં મૂકે છે અને શ્રેયની ઇચ્છાને ઉચ્ચતર ગણે છે. બૃ. ઉ. માં મૈત્રેયી કહે છે येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्. ટૂંકામાં અમરતાની વાસના ઔપનિષદ વિચારકોમાં દેખાય છે. એને જ પાછળથી મુમુક્ષતા કહેલ છે. આ મુમુક્ષતા ભાગવતોમાં પણ છે. અર્જુનને "હું તને સર્વ પાપોમાંથી મુક્તિ આપીશ" એમ શ્રીકૃષ્ણ કહે છે. પણ અહીંથી આગળ બે માર્ગો જુદા પડે છે. ઉપનિષદ કહે છે કે મન્દ માણસ યોગક્ષેમ માટે પ્રેયને શોધે છે, ત્યારે ધીર માણસ પ્રેયને છોડીને શ્રેયને પસંદ કરે છે. મતલબ કે શ્રેયને માર્ગે જનારને યોગક્ષેમની મુશ્કેલીઓ પડે છે તે તેણે ધૈર્યથી સહન કરવાની છે. માટે જ અન્યત્ર કહ્યું છે કે नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ।[10] બીજી રીતે કહીએ તો જ્ઞાનમાર્ગે જનારને તિતિક્ષા વૈરાગ્ય વગેરેના આશ્રયથી દૃઢ રહેવું પડે છે.

હવે ભાગવતો આ બાબતમાં ઔપનિષદોથી જુદા પડે છે. ભાગવત માર્ગના જૂનામાં જૂના ગ્રન્થ ગીતામાં જ્ઞાન, યોગ, ભક્તિ બધાના વિચારો ગૂંથેલા છે. એટલે તપ, વૈરાગ્ય. તિતિક્ષા વગેરેની વાત એમાં છે જ, પણ ઔપનિષદ સાહિત્યમાં નથી, એવી નવી વાત ગીતાના નીચેના વચનમાં છે:–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ ગીતા. ૯–૨૨

એનો અર્થ એ કે ઈશ્વરની ભક્તિ કરનારના યોગક્ષેમની જવાબદારી ઇષ્ટને માથે છે. ગીતામા કહેલા આ આશ્વાસને ભાગવત ધર્મના સમગ્ર ઇતિહાસમાં ભારે ભાગ ભજવ્યો છે. પાછળના સંપ્રદાયોએ ગીતાના એ વચનને સ્વસ્વસંપ્રદાયનો એક અગત્યનો સિદ્ધાન્ત ગણ્યો છે. એ આશ્વાસન ભક્તિમાર્ગનું મોટું આકર્ષણ રહ્યું છે. ભક્તોનાં ચરિત્રો આ આશ્વાસનના બળથી કલ્પાયેલા ચમત્કારોથી ભર્યા છે.

ઔપનિષદ માર્ગ પહેલાં કહ્યું તેમ જ્ઞાનમાર્ગ છે, જ્યારે ભાગવત ધર્મ ભક્તિમાર્ગ કે ધર્મમાર્ગ છે એ પહેલો ભેદ અને ઉપર દર્શાવ્યો તે આશ્રયનો બે માર્ગો વચ્ચે બીજો પાયાનો ભેદ છે. ઔપનિષદ સાહિત્યને આધારે પાછળથી જે શાંકર વેદાંતમાર્ગ ચાલ્યો તેમાં પણ આશ્રયની વાત નથી, જ્યારે ગીતાથી જે ભાગવતમાર્ગ ચાલ્યો તેમાં આ આશ્રયની વાત પ્રધાન છે. મતલબ કે બે વચ્ચે આ ભેદ ચાલુ રહ્યો છે. હવે ઇષ્ટના સ્વરૂપ સંબંધે બે માર્ગોનું મન્તવ્ય શું છે તે જોઇએ. ઉપનિષદોમાં જેનું કવચિત્ અક્ષર, કવચિત્ બ્રહ્મ, કવચિત્ સત્ એમ વિવિધ નામથી વર્ણન કર્યું છે તે નિર્ગુણ નિરાકાર

---

૧૦ મુંડક ૩–૨–૪

તત્ત્વને જગતનું કારણ માનેલ છે.[11] અસ્થૂલ, અનણુ, અહ્રસ્વ, અલોહિત, અશબ્દ, અસ્પર્શ, અરૂપ જેવા સ્થૂલાદિ ગુણરૂપનો નિષેધ કરનાર શબ્દોથી ઉપનિષદોમાં એ પરમ તત્ત્વનું વર્ણન કર્યું છે. વાણી અને મનને એ અગોચર છે. વાણીથી એનું વર્ણન અશક્ય છે. ચક્ષુ આદિ ઇન્દ્રિયોથી તથા મનથી પણ એ ગ્રાહ્ય નથી. ખરી રીતે આ નહિ, આ નહિ, નેતિ નેતિ શબ્દોથી એ નિર્ગુણનું સૂચન થઈ શકે એમ છે એ પ્રમાણે ઉપનિષદોનાં ઘણાં બ્રહ્મવિષયક વચનોનો સાર છે પણ અહીં કહેવું જોઈએ કે ઉપનિષદોમાં સર્વત્ર આવું જ વર્ણન નથી. ક્યાંક સગુણ ઈશ્વરનું પણ વર્ણન છે. ઈશિતત્ત્વને મનોમય, પ્રાણશરીર, સત્યસંકલ્પ, સર્વકર્મા, સર્વકામ અને સર્વગન્ધ એક સ્થળે કહેલ છે.[12] અન્યત્ર વળી, જેનું માથું અગ્નિ છે, દિશાઓ કાન છે, ચન્દ્ર અને સૂર્ય જેનાં નેત્ર છે એવું વિરાટ પુરુષ તરીકે ઈશ્વરનું વર્ણન છે.[13] આ અને આવાં વચનોમાં પૌરુષેય રૂપની કલ્પના છે એમ કહી શકાય.

હવે ઉપનિષદોનું તાત્પર્ય નિર્ગુણવર્ણનમાં છે કે સગુણવર્ણનમાં એ પ્રાચીન વિવાદમાં ઊતરવાની આપણને જરૂર નથી. શંકરાચાર્યે નિર્ગુણમાં તાત્પર્ય માન્યું છે. રામાનુજાદિ વૈષ્ણવ આચાર્યોએ સગુણમાં તાત્પર્ય માન્યું છે. પણ અહીં ઉપનિષદ્‌વચનોના તાત્પર્યનો પ્રશ્ન જ નથી. ઐતિહાસિક દૃષ્ટિથી ઉપનિષદોનું વલણ સ્પષ્ટ સમજી શકાય છે. ઉપનિષદો પહેલાંના વેદમંત્રોમાં દેવોનાં વર્ણનો સ્પષ્ટ સગુણ અને પૌરુષેય છે. વળી ઋગ્વેદના દશમા મંડલના પુરુષસૂક્તમાં જગતના આદિકારણ તરીકે વિરાટ પુરુષનું વર્ણન છે, જ્યારે એ જ મંડલના નાસદીયસૂક્તમાં નિર્ગુણનું કથન છે. નાસદીયસૂક્તની નિર્ગુણવર્ણનની પરંપરાને ઉપનિષદોએ ખૂબ પુષ્ટ કરી. બીજી રીતે કહીએ તો વૈદિક વેદમંત્રોમાં અગ્નિ, સૂર્ય, વાયુ વગેરે તત્ત્વોમાં માનવભાવવાળું દેવત્વ આરોપાયેલું છે, ત્યારે ઉપનિષદોમાં માનવજીવનના તથા સૃષ્ટિના મૂળમાં શું છે તેનો તાત્ત્વિક વિચાર કરવામાં આવ્યો છે.

હવે ભાગવત માર્ગમાં પહેલેથી જૂનાં ઉપનિષદો કરતાં ઘણી વધારે સગુણ માન્યતા છે. ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ જોઈએ તો વેદમંત્રોનો સગુણવાદ ભાગવત ધર્મમાં ઊતર્યો છે. ભાગવત ધર્મના આદિ ગ્રન્થ ગીતામાં નિર્ગુણ સગુણની એકતા કરીને સગુણ ઈશ્વરનું પુરુષસૂક્તને અનુસરતું વર્ણન કર્યું છે ભાગવત પુરાણ પણ એ જ ધોરણને અનુસરે છે.

---

११ अस्थूलमनणु अह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायम... बृ. ३-८-८
यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षु श्रोत्रं तदपाणिपादम् नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम् ।
मुंडक १-१-६
अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम कठ १-३-१५
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । तै. उ. २-४
न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग् गच्छति, नो मनः केन उ. १-३
स एष नेति नेत्यात्मा । बृ. उ. ४-४-२२
१२ मनोमयः प्राणशरीरः भारूपः सत्यसंकल्पः
आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः छां. उ. ३-१४-२
१३ अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः ।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ मुंडक २-१-४

પરમ કારણનું નિર્ગુણપણું ઉપનિષદોની અસરથી તાત્ત્વિક વિચારકોમાં એવું દૃઢ સ્થાપિત થઈ ગયું હતું કે ભાગવતોને સગુણ ઈશ્વરને પરમ કારણ કહેવા માટે એની નિર્ગુણ સાથે એકતા માનવી પડી છે. મારા મતે આને ધર્મ ઉપર ફિલ્સૂફીની અસર કહી શકાય. બાકી ભાગવતોના ઇષ્ટ સગુણ ઈશ્વર જ છે એ ચોક્કસ છે.[14]

સૃષ્ટિપ્રક્રિયા – નિર્ગુણ સગુણના આ ભેદે સૃષ્ટિપ્રક્રિયા ઉપર સ્વાભાવિક અસર કરી છે. ઉપનિષદોની સૃષ્ટિપ્રક્રિયામાં यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । (તૈ.ઉ. ૩–૧) तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । (તૈ.ઉ. ૨–૧) વગેરે વચનોમાં સૃષ્ટિ મૂળ કારણમાંથી સ્વાભાવિક રીતે ઉત્પન્ન થતી હોવાનું સૂચન છે, ત્યારે બીજાં એવાં પણ स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति (ઐ.ઉ. ૧–૧) આદિ વચનો છે કે જેમાં પૌરુષેય ઇચ્છાનું સૂચન છે. પાછળથી વૈષ્ણવ, શૈવ અને શાક્ત માર્ગોમાં ઈશ્વરની આ ઇચ્છાશક્તિનો ઘણો વિકાસ થયો છે. પૌરુષેય ઇચ્છાનું એક રૂપાન્તર રમવાની ઇચ્છાને કહી શકાય. એક ઉપનિષદ્વચનમાં "પહેલાં પુરુષવિધ આત્મા એકાકી હતો ત્યારે એને ગમતું નહોતું માટે તેણે બીજાની ઇચ્છા કરી" આવી સૃષ્ટિના આરંભની કલ્પના કરી છે.[15] આમાંથી રમત માટે ઈશ્વરે સૃષ્ટિ કરી, જેમ બાળક રમકડાં રચે તેમ, એવીયે કલ્પનાનો નિર્દેશ છે.[16] ગૌડપાદે વેદાંતને અમાન્ય સૃષ્ટિપ્રયોજનો ગણાવતાં આ 'ક્રીડા માટે'નો નિર્દેશ કર્યો છે.[17] શાંકર વેદાંતમાં ઇચ્છાથી સૃષ્ટિ થવાનો કે ઉપભોગ અથવા ક્રીડા માટે ઈશ્વરે સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન કરી હોવાનો મત માન્ય નથી, પણ ભાગવત માર્ગમાં જુદે જુદે રૂપે છે. ભાગવતમાં ક્રીડા માટે સૃષ્ટિની વાત પણ છે.[18]

સૃષ્ટિપ્રક્રિયાના વિષયમાં ઔપનિષદો અને ભાગવતો વચ્ચે એક બીજો પણ મતભેદ છે. સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ બ્રહ્મમાંથી હોવાનો સામાન્ય ઔપનિષદ મત છે. સૃષ્ટિના કારણ તરીકે બ્રહ્મથી જુદા કોઈ તત્ત્વનો ઉપનિષદોમાં સ્વીકાર નથી, પણ ઉપનિષદ પછીના કાળમાં જે સ્વતંત્ર દર્શનો ઉત્પન્ન થયાં તેમાંથી વૈશેષિકમાં ભૂતોનાં પરમાણુઓને અંતિમ કારણ માનેલ છે, જ્યારે સાંખ્યમાં પ્રકૃતિને કારણ માનેલ છે. વૈશેષિક અને સાંખ્ય બે ય દ્વૈતવાદી છે એ અહીં સ્મરણમાં રાખવાનું છે. ગમે તે કારણથી પણ સાંખ્ય દર્શનની જૂના શિષ્ટ સમાજ ઉપર ઘણી અસર થઈ. મહાભારત પુરાણમાં એ અસર દેખાય છે. બ્રહ્મસૂત્રમાં સાંખ્યના ખંડનનો જે ભારે પ્રયત્ન કરેલો જોવામાં આવે

---

१४ अनादि मत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ।
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ગીતા ૧૩–૧૨, ૧૩
ગીતાના અગિયારમા અધ્યાયનું વિશ્વરૂપ દર્શન પણ સગુણ અને સાકાર ઈશ્વરનું નિરૂપણ કરે છે.

१५ स नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् બૃ. ઉ. ૧–૩–૩

१६ लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् । બ્ર. સૂ. ૨–૧–૩૩

१७ इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिरिति केचिद् व्यवस्थिताः ।
कालात्प्रसूतिं भूतानां मन्यन्ते कालचिन्तकाः ।
भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये क्रीडार्थमिति चापरे
देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा ॥ માંડૂક્ય ઉ. કારિકા ૯, ૯

છે તે પણ સાંખ્યની શિષ્ટપ્રિયતા સૂચવે છે. આ સાંખ્યની અસરથી સૃષ્ટિના કારણ તરીકે પ્રકૃતિનો સામાન્ય સૃષ્ટિવિચારમાં પ્રવેશ થયેલો હોવાથી ઉપનિષદોમાં દર્શનને રજૂ કરવા માટે જેની પ્રવૃત્તિ છે તે બ્રહ્મસૂત્રકારને બ્રહ્મ જ પ્રકૃતિ છે એમ ખાસ કહેવું પડ્યું છે.[19] પણ ભાગવતોએ પ્રકૃતિને પોતાના દર્શનમાં સમાવવાનો અને છતાં અદ્વૈતવાદ સાચવી રાખવાનો નવો કીમિયો શોધ્યો. સાંખ્યવાદ અને ઔપનિષદ વાદનું મિશ્રણ કરીને સાંખ્યની ત્રિગુણ પ્રકૃતિને ઈશ્વરની માયાશક્તિ કે પ્રકૃતિ તરીકે ઈશ્વરમાં મેળવી દીધી. પ્રકૃતિનું આવું વર્ણન ગીતામાં મળે છે.[20] સંક્ષેપમાં તો શ્વે. ઉ. માં પણ એ વાત છે જ.[21] ત્યાં પણ એને ભાગવત સિદ્ધાન્તની અસર ગણવી પડશે. આ ભાગવતોની માયા શક્તિ એ શાંકર વેદાંતની માયાથી ભિન્ન છે. પણ શંકરે અદ્ભુત બુદ્ધિકુશળતાથી જે શબ્દોમાં પોતાના અવિદ્યાવાદ સાથે ભાગવતોની આ માયાશક્તિનો મેળ બેસાર્યો છે તે માયાશક્તિની પૃથક્તા ખુલ્લી કરી દે છે.

સગુણ પૌરુષેય ઈશ્વરના વાદમાંથી જ ભાગવતોનો અવતારવાદ નીકળ્યો છે. જૂનાં ઉપનિષદોમાં અવતારવાદનું બિલકુલ સૂચન નથી, પણ ગીતા(૪–૧)માં એનો સ્પષ્ટ નિર્દેશ છે.–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

ગીતાથી ચાલેલા અવતારવાદનો પાછલા કાળમાં કેટલો વિકાસ થયો છે, એ પ્રસિદ્ધ છે.

એક બીજો ભેદ પણ ઉપનિષદ્માર્ગ અને ભાગવત માર્ગ વચ્ચે દેખાય છે. ઉપનિષદોના ઋષિઓનું બધું લક્ષ્ય પહેલાં જ્ઞાન તરફ અને પછી અમૃતત્વ કે મોક્ષ તરફ છે. સામાન્ય રીતે એમ કહી શકાય કે આપણાં બધાં દર્શનો જૈન, બૌદ્ધ અને બ્રાહ્મણ મોક્ષાર્થી છે; પણ અહીં મારું વક્તવ્ય એ છે કે ઔપનિષદોનું લક્ષ્ય પોતાના જ્ઞાનની કે જ્ઞાની તરીકેના પોતાના વર્તનની લોક ઉપર શી અસર થશે એ તરફ ગયું જ નથી, પણ ભાગવત ધર્મમાં ગીતાથી જ લોકસંગ્રહનો વિચાર છે;[23] પાછળથી જો કે શાંકર વેદાંતમાં યે લોકસંગ્રહનો થોડો વિચાર ઊતર્યો છે; પણ ભાગવત ધર્મના ઇતિહાસમાં પાછળથી ખાસ કરીને સંતોદ્વારા લોકવર્ગના કલ્યાણનું ભારે કાર્ય થયું છે.

---

૧૮ ૧૦–૨–૩૯ તથા બીજાં પણ એ મતલબનાં વચનો ભાગવતમાં છે.

૧૯ प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् બ્ર.સૂ.૧–૪–૨૩

२० प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ગીતા ૯–૮
सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ९–७
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ४–६

२१ मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । શ્વે. ઉ. ૪–૧૦

२२ જુઓ सर्वज्ञस्येश्वरस्यात्मभूते इवाविद्याकल्पिते नामरूपे तत्त्वान्यताभ्यामनिर्वचनीये संसारप्रपञ्चबीजभूते सर्वज्ञस्येश्वरस्य मायाशक्तिः प्रकृतिरिति श्रुतिस्मृत्योरभिलप्येते બ્ર. સૂ. ૨–૧–૧૪નું ભાષ્ય

२३ लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ગીતા ૩–૨૦

છેવટ સાધનવિષયમાં ઉપનિષદો અને ભાગવત માર્ગ વચ્ચે મોટો તફાવત છે. ઉપનિષત્ એટલે જ વિદ્યા. ઔપનિષદ ઋષિઓનું વલણ મુખ્યત્વે જ્ઞાન તરફ. પહેલું તો જ્ઞાન જ લક્ષ્ય. એ ઋષિઓની ચિંતનપ્રવૃત્તિ જ જ્ઞાન માટે. પાછળથી મુક્તિ લક્ષ્ય ઠરતાં જ્ઞાન સાધન ઠર્યું. જ્યારે ભાગવત માર્ગમાં ભક્તિ જ સાધન છે.

આ મુખ્ય સાધન સિવાય નિષ્કામતા, શ્રદ્ધા, વૈરાગ્ય, તિતિક્ષા, શમ, દમ, વગેરેનો ઉલ્લેખ ઉપનિષદોમાં આવે છે ખરો. "જ્યારે સર્વ કામનાઓ છૂટી જાય ત્યારે મર્ત્ય અમૃત થાય"[૨૪] એવાં વચનો ઉપનિષદોમાં મળે છે અને પાછળથી વેદાંતમાં શમાદિ સાધનસંપત્તિને બ્રહ્મજિજ્ઞાસાના સાધક માટે આવશ્યક ગણેલ છે, તેમ જ ભાગવત-ધર્મમાં પણ રાગ દ્વેષના ત્યાગની અને સત્સંગ, દયા, મૈત્રી, તપ, તિતિક્ષા વગેરે ગુણોની જરૂર માની છે.[૨૫]

ઔપનિષદ કાળમાં જ ભાગવત સિદ્ધાન્તના વિચારોનો ઉદ્ભવ થયો હશે અને ઉભય વિચારોનાં બીજ તો મંત્રભાગમાં છે, પણ ભાગવત વિચારો જૂના વખતથી ભિન્ન ગણાય છે.[૨૬] મહિમ્નઃ સ્તોત્રના પ્રખ્યાત શ્લોકમાં ત્રયી, સાંખ્ય, યોગ, પાશુપત મત અને વૈષ્ણવ ભિન્ન ગણાવ્યા છે તે ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ યથાર્થ છે.[૨૭] અને ઉપર આ બે સિદ્ધાન્તો વચ્ચે ભેદના જે મહત્ત્વના મુદ્દાઓ તે સ્પષ્ટ કરી દર્શાવ્યા છે. ટૂંકામાં એમ કહી શકાય કે ઉપનિષદો આધ્યાત્મિક જ્ઞાનની કેળવણીનું સાધન છે, ત્યારે ભાગવત સિદ્ધાન્ત ઈશ્વર તરફના પ્રેમની કેળવણીનું સાધન છે. બીજી રીતે કહીએ તો ઊંચી પારમાર્થિક ફિલસૂફી ઉપનિષદોમાં અને ઔપનિષદ દર્શનમાં છે, ત્યારે ઊંડી ધાર્મિક વૃત્તિ ભાગવત ધર્મમાં છે.

*

---

૨૪ यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येस्य हृदि श्रिताः अथ मर्त्योऽमृतो भवति

૨૫ ભાગવત ૧૧. ૩–૨૨થી૨૬

૨૬ મહાભારતના નારાયણીય પર્વમાં આપેલી પાંચરાત્ર શાસ્ત્રની ઉત્પત્તિ વેદથી ભિન્નતાની સૂચક છે.

૨૭ त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति

શ્રીમધ્વાચાર્ય

લે૦ શ્રીમતી કુમારી સુશીલા મહેતા, एम्. ए. एल्एल्. बी.

[रीसर्च फेलो – भारतीय विद्याभवन]

*

બ્રહ્મસૂત્રમાં અદ્વૈતવાદનો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ મળે છે જ, પછી ભલેને તે વિશિષ્ટાદ્વૈતરૂપે, શુદ્ધાદ્વૈતરૂપે કે ભેદાભેદવાદરૂપે હોય; પણ સળંગ દ્વૈતવાદ બ્રહ્મસૂત્રોમાંથી કોઈ પણ રીતે ઘટાવી શકાય તેમ નથી; દ્વૈતવાદનાં સૂચનરૂપે માત્ર છૂટાં છવાયાં સૂત્રો જ નજરે ચઢે છે; છતાં કેવળ અવિશિષ્ટ શુદ્ધ દ્વૈતવાદ જ જેણે પોતાના મત તરીકે રજૂ કર્યો છે તે **શ્રીમધ્વાચાર્ય.** મધ્વાચાર્યનો આ દ્વૈતવાદ માધ્વમત કે સ્વતન્ત્રાસ્વતન્ત્રભેદવાદને નામે પણ ઓળખાય છે. વૈષ્ણવોના ભક્તિવાદનું આ પરિણામ છે. જે સમયે ભક્તિવાદ અને શંકરાચાર્યના અદ્વૈતવાદ વચ્ચે દેશમાં ઘર્ષણ થઈ રહ્યું હતું, તે માધ્વમતનો ઉદ્ભવકાલ. "વિશિષ્ટાદ્વૈતવાદ કે ભેદાભેદવાદ પર તો શંકરાચાર્યની પ્રતિભાયુક્ત અસર અમુક અંશે દૃષ્ટિગોચર થાય છે, પણ માધ્વમતમાં શંકરાચાર્યનું અતિ ઉગ્ર, કટુતાભર્યું ખંડન જ થયું છે."[1] મધ્વાચાર્યના સિદ્ધાન્તોનું પૃથક્કરણ કરતાં પહેલાં તેનાં જીવન-ચરિત્ર* પર ઊડતી નજર નાખીએ.

દક્ષિણ કર્ણાટકના ઉદીપી તાલુકામાં વેલિગ્રામ નામે એક નાનકડું ગામડું છે. તે ગામને પાજકક્ષેત્ર પણ કહેતા. ત્યાંના મધ્યગેહ કુટુમ્બમાં મધિજીભટ્ટ નામે એક વિદ્વાન વેદવેદાઙ્ગપારંગત બ્રાહ્મણ રહેતા. ઈ. સ. ૧૧૯૯ ના આસો સુદ ૧૦, એટલે વિજયાદશમી જેવા શુભ દિને, એમને ત્યાં એક પુત્રનો જન્મ થયો – જે આગળ જતાં મધ્વાચાર્યને નામે ઓળખાયા. માધ્વમઠપરંપરા તેમનો જન્મ ઈ. સ. ૧૧૧૮ માં માને છે, જે સત્ય હોવાના પુરાવા ઉપલબ્ધ નથી. મધ્વની માતાનું નામ વેદવતી હતું. તેના જન્મ પહેલાં બે પુત્રો આ ધર્મરત દંપતીએ મૃત્યુને ખોળે ધરી દીધા હતા. તેમના આ ત્રીજા પુત્રનું નામ મધિજીભટ્ટે વાસુદેવ રાખ્યું. ઉપનયનસંસ્કાર પછી વાસુદેવને ગામની પાઠશાળામાં ભણવા બેસાડ્યો. પણ બાળપણમાં તેનું ધ્યાન ભણવામાં બિલકુલ ન હતું. માત્ર હરવા-ફરવામાં, રમવામાં અને કુસ્તી લડવામાં જ તેનો સમય વ્યતીત થતો. આને લીધે ગામના લોકો તેને 'ભીમ' કહેતા. માધ્વમતમાં એવી એક માન્યતા પ્રચલિત છે કે મધ્વ સ્વયં વાયુનો જ અવતાર હતા.

ગામની શાળાનો અભ્યાસ પૂરો કર્યા પછી વાસુદેવે પોતાને ઘેર શાસ્ત્રાભ્યાસનો આરંભ કર્યો. આ અભ્યાસે તેના મનમાં સંન્યાસની તીવ્ર ઇચ્છાનાં બીજ રોપ્યાં. પણ આ એકના એક લાડકવાયા પુત્રનું સંન્યાસ તરફ વલણ જાણી માબાપને ખૂબ દુઃખ થયું; એટલે કંઈક સમય થોભ્યા બાદ નાના ભાઈ વિષ્ણુતીર્થના જન્મ પછી તરત જ

---

૧ કલ્યાણ વેદાન્તાંક.

* આ મધ્વાચાર્યચરિત્રમાં કલ્યાણના વેદાન્તાંકના શ્રીમધ્વાચાર્ય પરના લેખોનો તેમ જ શ્રી. દુ. કે. શાસ્ત્રીના વૈષ્ણવધર્મના સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસમાં "મધ્વસંપ્રદાય" નામક પ્રકરણનો ઉપયોગ કર્યો છે.

તેણે અદ્વૈતવાદી સંન્યાસી અચ્યુતપ્રેક્ષ પાસે સંન્યાસદીક્ષા લીધી. આ વખતે તેનું વય માત્ર અગિયારજ વર્ષનું હતું. સંન્યાસ પછી એણે પોતાનું નામ બદલી પૂર્ણપ્રજ્ઞ રાખ્યું. અચ્યુતપ્રેક્ષનું વેદાન્તનું અધ્યાપન પૂર્ણપ્રજ્ઞને રુચ્યું નહિ; ગુરુની વ્યાખ્યાઓમાં તેને શંકા તથા અસંતોષ ઉદ્ભવ્યાં; અને વારંવાર ગુરુ સાથે વાદ-વિરોધના પ્રસંગો ઊભા થવા લાગ્યા. પૂર્ણપ્રજ્ઞને તો ભક્તિરસથી નીતરતો દ્વૈતવાદ જ વધુ આકર્ષક ને અનુકૂળ લાગ્યો. વેદાન્તાધ્યયન સંપૂર્ણ થતાં, મઠાધીશ તરીકે આનન્દતીર્થ નામ ધારણ કરી, મધ્વાચાર્યે આચાર્યપદ સ્વીકાર્યું અને ભજનસાધનમાં પોતાનું ચિત્ત પરોવ્યું. તેનાં અન્ય નામો આનન્દજ્ઞાન, જ્ઞાનાનન્દ, વગેરે પણ હતાં.

આચાર્યપદે આવ્યા પછી ઈ. સ. ૧૨૨૮ માં મધ્વ દક્ષિણવિજય માટે નીકળ્યા, અને રસ્તામાં અન્ય વિદ્વાનો સાથે વાદવિવાદ કરતા પોતાના મતનો પ્રચાર કરવા લાગ્યા. આ વિજયયાત્રામાં અનેક પ્રકારની યોગસિદ્ધિઓનું દર્શન કરાવી લોકોને આશ્ચર્યમુગ્ધ કરી દીધાં. તેની વિજયયાત્રાનો ક્રમ નીચે મુજબ હતો:–

મેંગલોરથી ૨૭ માઈલ દૂર વિષ્ણુમંગલ, ત્યાંથી ત્રિવેન્દ્રમ્, રામેશ્વર, શ્રીરંગમ્ અને ઉદીપી. ત્રિવેન્દ્રમમાં એમને રાજાની સમક્ષ શૃંગેરીમઠના અધ્યક્ષ સાથે ચર્ચા થઈ હતી. ઉદીપીમાં આવ્યા પછી મધ્વાચાર્યે શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતા પર એક ભાષ્ય રચ્યું, જેમાં પોતાના મતનો સંક્ષિપ્ત સાર આપેલો છે. ત્યાર પછી તે ઉત્તરમાં યાત્રાર્થે ગયા. કહેવાય છે કે આ મુસાફરીમાં તે મહારાષ્ટ્રના કોઈક ઈશ્વરદેવ નામના રાજાને મળ્યા હતા. શ્રીકૃષ્ણસ્વામી આયંગરના મતે આ ઈશ્વરદેવ એ જ દેવગિરિના યાદવવંશમાં થઈ ગયેલો મહાદેવ અને જેણે ઈ. સ. ૧૨૬૦ થી ૧૨૭૧ સુધી રાજ્ય ભોગવ્યું હતું. મધ્વાચાર્ય ઉત્તરમાં હરદ્વાર અને છેક બદરિકાશ્રમ સુધી પહોંચ્યા હતા, અને બદરિકાશ્રમથી વેદવ્યાસ તથા દિગ્વિજય રામની મૂર્તિઓ સાથે લેતા આવ્યા હતા. આ મૂર્તિના આગમન વિશે એવી એક દંતકથા છે કે ગીતાભાષ્યની રચના પછી મધ્વાચાર્ય બદરિકાશ્રમ ગયા, જ્યાં તેને વેદવ્યાસનાં પ્રત્યક્ષ દર્શન થયાં. આચાર્યે વિનમ્રભાવે પોતાનો ગીતાભાષ્ય ગ્રન્થ વ્યાસજીને અર્પણ કરી દીધો, જેથી પ્રસન્ન થઈ વ્યાસે શાલિગ્રામની ત્રણ મૂર્તિઓ આચાર્યને ભેટ કરી. આ સિવાય એક કૃષ્ણમૂર્તિની સ્થાપના પણ એમણે ઉદીપીમાં કરી છે. કહેવાય છે કે એક વેપારીનું વહાણ દ્વારકાથી મલબાર તરફ જતું હતું, તે તુલુવની સમીપ ડૂબી ગયું. એ વહાણમાં કૃષ્ણની એક મૂર્તિ હતી. મધ્વાચાર્યને ભગવાને આદેશ કર્યો કે એ મૂર્તિ પાણીમાંથી કાઢી એની ઉદીપીમાં સ્થાપના કરવી. ત્યારથી ઉદીપી માધ્વમતના અનુયાયીઓને માટે એક તીર્થનું ધામ થઈ રહ્યું છે. ઉત્તરની યાત્રા પછી આચાર્યે વેદાન્તસૂત્ર પર એક ભાષ્ય લખ્યું. કદાચ આ સમયે જ **મહાભારતતાત્પર્યનિર્ણય** નામનો ગ્રન્થ લખ્યો હશે.

વ્યાસ ભગવાનની આજ્ઞાથી આચાર્યે વૈષ્ણવસમ્પ્રદાય અને ભક્તિના પ્રચારનું કાર્ય હાથ ધર્યું. આમ પ્રચાર કરતાં, તે ચાલુક્ય રાજ્યની રાજધાની કલ્યાણમાં આવ્યા, જ્યાં શોભનભટ્ટ નામના એક શિષ્યે તેમની પાસે દીક્ષા લીધી. આચાર્યના મૃત્યુ પછી શોભનભટ્ટ પદ્મનાભતીર્થ નામ ધારણ કરી મઠાધીશ બન્યા. કલ્યાણથી ઉદીપી પાછા

---

૨ વૈષ્ણવધર્મનો સંક્ષિપ્ત ઈતિહાસ; (આ૦ ૨ જી) દુ. કે. શાસ્ત્રી પૃ. ૧૯૫.

આવ્યા પછી આચાર્યગુરુ અચ્યુતપ્રેક્ષે પણ પોતાના અદ્વૈતવાદનો ત્યાગ કરી વૈષ્ણવ-મતનો સ્વીકાર કર્યો.

કૃષ્ણમન્દિરની સ્થાપના ઉપરાંત બીજાં આઠ મન્દિરો મધ્વાચાર્યે ઉદીપીમાં સ્થાપ્યાં, જેમાં રામ-સીતા, લક્ષ્મણ-સીતા, દ્વિભુજકાલીયદમન, ચતુર્ભુજકાલીયદમન, વિટ્ઠલ આદિ મૂર્તિઓની સ્થાપના કરી. વળી યજ્ઞવિધિમાં અહિંસા ઉપદેશવાનું સુધારકકાર્ય પણ આચાર્યને ફાળે જાય છે. પશુબલિને બદલે ચોખાનો બકરો બનાવી બલિ આપવાની પ્રથા પણ તેમણે જ ચાલુ કરી.

ત્રિવિક્રમ નામના એક પંડિતે પણ આચાર્ય પાસે દીક્ષા લીધી. ત્રિવિક્રમને ઉપહાર તરીકે આપેલી કૃષ્ણની મૂર્તિ હજી પણ કોચીનમાં વિદ્યમાન છે. ત્રિવિક્રમના પુત્ર નારાયણે મધ્વવિજય અને મણિમંજરી નામના ગ્રન્થ લખ્યા. આશરે ઈ. સ. ૧૨૭૫માં મધ્વના પિતા મરણ પામ્યા. ત્યારપછી તેના નાના ભાઈ વિષ્ણુતીર્થે પણ સંન્યાસ લીધો.

મધ્વવિજય જણાવે છે કે વૃદ્ધાવસ્થામાં શૃંગેરીના શંકરાચાર્યો તરફથી એ પ્રદેશના રાજાદ્વારા તેમને કેટલીક કનડગત થયેલી. કદાચ આ જ કારણે એ પોતાનું પ્રિય ધામ છોડી સરિદન્તરમાં રહેવા ગયા હશે. મઠપરંપરા નોંધે છે કે મધ્વાચાર્ય ૭૯ વર્ષ ૬ માસ અને ૨૦ દિવસ ગાદી પર રહ્યા. પણ વધારે સંભવિત એ છે કે આ તેમનું આયુષ હોય! એટલે એમનો મરણકાળ ઈ. સ. ૧૨૭૮ સંભવે છે. અને સામ્પ્રદાયિક માન્યતા પ્રમાણેનો સમય, ઈ. સ. ૧૩૦૩ અસત્ય ભાસે છે.

શ્રીમધ્વાચાર્યે પોતાના જીવનનાં ત્રીસ વર્ષ સાડત્રીસેક જેટલા ગ્રન્થો લખવામાં વ્યતીત કર્યાં. નીચે ગણાવેલાં તેમની કૃતિઓ ગણાય છે:—

ગીતાભાષ્ય, બ્રહ્મસૂત્રભાષ્ય, અણુભાષ્ય, અણુવ્યાખ્યાન, પ્રમાણલક્ષણ, કથાલક્ષણ, ઉપાધિખડન, માયાવાદખડન, પ્રપઞ્ચમિથ્યાત્વવાદખંડન, તત્ત્વસંખ્યાન, તત્ત્વવિવેક, તત્ત્વોદ્યોત, કર્મનિર્ણય, વિષ્ણુતત્ત્વવિનિર્ણય, ઋગ્ભાષ્ય, દશોપનિષદ્ભાષ્ય, ગીતાતાત્પર્યનિર્ણય, ન્યાયવિવરણ, યમકભારત, દ્વાદશસ્તોત્ર, કૃષ્ણામૃતમહાર્ણવ, તન્ત્રસારસંગ્રહ, સદાચારસ્મૃતિ, ભાગવતતાત્પર્યનિર્ણય, મહાભારતતાત્પર્યનિર્ણય, જયન્તીકલ્પ, સંન્યાસપદ્ધતિ, ઉપદેશસાહસ્રીટીકા અને ઉપનિષત્પ્રસ્થાન. જરૂર સંખ્યા તો ખૂબ મોટી અને આશ્ચર્યચકિત કરી દે એવી છે!

મધ્વાચાર્યના શિષ્યોમાં ચાર મુખ્ય ગણાય છેઃ પદ્મનાભતીર્થ, નરહરિતીર્થ, માધવતીર્થ અને અક્ષોભ્યતીર્થ. મધ્વ પછી સાત વર્ષ પદ્મનાભતીર્થે ગાદી ભોગવી. પદાર્થસંગ્રહ અને તેની વ્યાખ્યારૂપે મધ્વસિદ્ધાન્તસાર તેના ગ્રન્થોમાં પ્રખ્યાત છે. પદ્મનાભતીર્થ પછી નરહરિતીર્થ ગાદીએ આવ્યા અને નવ વર્ષ સુધી, ગાદીએ રહ્યા. નરહરિતીર્થના ઉલ્લેખો કેટલાક લેખોમાં મળે છે; દાખલા તરીકે: ગંજમ જિલ્લાના ચીકાકોલે તાલુકાના શ્રીકૂર્મેશ્વરના મંદિરનો એક લેખ શક ૧૨૦૩ એટલે ઈ. સ. ૧૨૮૧માં નરહરિતીર્થે યોગાનન્દનૃસિંહની મૂર્તિ પધરાવ્યાનો ઉલ્લેખ કરે છે. આ લેખ, મધ્વના મરણકાલ વિશે જે ઉપર નિર્ણય કર્યો એને સમર્થન આપે છે. ડૉ. ભાણ્ડારકરનું[3] વલણ પણ આ તરફ છે.

---

૩ વૈષ્ણવિઝમ, શૈવિઝમ ઍન્ડ અધર માઈનોર રિલીજિયસ સિસ્ટિમ્સ ઑફ ઇન્ડિયા ડૉ. ભાંડારકર: પૃ. ૫૮–૫૯

મધ્વાચાર્યના જીવન વિશેના આ ટૂંક વૃત્તાન્ત પછી હવે આપણે તેના સિદ્ધાન્તો તરફ દૃષ્ટિપાત કરીએ. માત્ર એક જ શ્લોકમાં માધ્વમતના મુખ્ય સિદ્ધાન્તોનું રહસ્ય સમાવી દીધેલું પ્રાપ્ત થાય છે, કે

श्रीमन्माध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत् तत्त्वतो
भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः ।
मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनं
ह्यक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायवेद्यो हरिः ॥

અર્થાત્ "માધ્વમતમાં શ્રીહરિ જ સર્વોચ્ચ, સર્વશ્રેષ્ઠ તત્ત્વ છે; જગત્ સત્ય છે; ભેદ પણ વાસ્તવિક છે; નાનાવિધ જીવો હરિના અનુચરો – દાસ – છે; અને તેમાં તારતમ્ય પણ દૃષ્ટિગોચર થાય છે. મુક્તિ નિજ સુખનો અનુભવ છે; પવિત્ર હૃદયની ભક્તિ, – અમલા ભક્તિ મુક્તિનું સાધન છે; પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને શબ્દ, એ ત્રણ પ્રમાણ છે; અને સમસ્ત વેદો દ્વારા જાણવા યોગ્ય માત્ર શ્રીવિષ્ણુ જ છે."

આ માધ્વસિદ્ધાન્ત. સ્થાલીપુલાકન્યાય પ્રમાણે તેના આદ્ય પ્રવર્તક ચતુર્મુખ બ્રહ્માજી હોવાની સામ્પ્રદાયિક માન્યતા છે.

આપણે અહીં દ્વૈતવાદના સહેજ વિસ્તૃત નિરૂપણમાં ઊતરીશું.

દ્વૈત એટલે બે – અદ્વૈત નહિ તે. મધ્વાચાર્યનો આ દ્વૈતવાદ પાંચ ભેદયુક્ત છે.

जीवेश्वरभिदा चैव जडेश्वरभिदा तथा ।
जीवभेदो मिथश्चैव जडजीवभिदा तथा ।
मिथश्च जडभेदो यः प्रपञ्चो भेदपञ्चकः ॥[४]

(૧) જીવ અને ઈશનો ભેદ, (૨) જીવોનો પરસ્પર ભેદ, (૩) જડ અને ઈશનો ભેદ, (૪) જડનો પરસ્પર ભેદ અને (૫) જડ અને જીવનો ભેદ. આ પાંચે ભેદો અનાદિ છે, નિત્ય છે અને મુક્તિમાં પણ અનુસ્યૂત છે. સર્વદર્શનસંગ્રહ સ્પષ્ટ કહે છે કે अनादिरेवायं प्रकृष्टः पञ्चविधो भेदप्रपञ्चः ।[५] શંકરાચાર્ય માને છે તેમ આ ભેદ માયામૂલક નથી, સત્ય જ છે. न द्वैतं भ्रान्तिकल्पितम्, કારણ કે न हीश्वरे सर्वस्य भ्रान्तिः सम्भवति, विशेषादर्शननिबन्धनत्वाद्भ्रान्तेः ।[६] કેવી સચોટ દલીલ છે! ભ્રાન્તિ થાય, જરૂર થાય, પણ અપવાદ રૂપે; અથવા કોઈ એકાદને પણ ભ્રાન્તિ ન થાય એ સંભવે ખરું. છતાં ઈશ્વરના વિષયમાં સૌને ભ્રાન્તિ થાય છે, તો શું એને માત્ર ભ્રાન્તિ જ કહેવી? નહિ જ. જેની પ્રતીતિ સૌ કરે એને ભ્રાન્તિ કે માયા કેમ કહેવાય? અને તેથી જ द्वैतं न विद्यते इति तस्मादज्ञानिनां मतम् ।[७] દ્વૈત નથી એમ કહેવું એ કેવળ અજ્ઞાનનું પ્રદર્શન છે. ગીતા પણ કહે છે: –

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥[८]

---

૪ सर्वदर्शनसंग्रह [Govt. Oriental (Hindu) Series] पृ. १४२

૫ એજન, पृ. १४०

૬ " , पृ. १४१

૭ " , पृ. १४२

૮ श्रीमद्भगवद्गीता, અ૦ ૧૫ શ્લોક ૧૬

આ શ્લોક દ્વૈત કે ભેદનો પ્રતિપાદક નથી એમ કોણ માની કે મનાવી શકશે?

ઈશ્વર પેઠે જગત પણ સત્ય છે. જડ અને અસ્વતન્ત્ર એવા જગતના નિયામક ભગવાન છે. કાલની દૃષ્ટિથી જગત અસીમ છે. શંકરાચાર્યની પેઠે મધ્વાચાર્યે જગતનું મિથ્યાત્વ કે માયિકત્વ સ્વીકાર્યું નથી. દૃશ્ય જગતની અસત્યતા એમના દ્વૈતવાદ અને ભેદપ્રપઞ્ચની વિરુદ્ધ છે. આચાર્ય કહે છે કે જ્યારે જ્ઞાન નિર્વિકલ્પ નથી ત્યારે તેનો વિષય અથવા દૃશ્ય અવશ્ય સત્ય છે. જ્ઞેય સત્ય ન હોય તો જ્ઞાનની સ્ફૂર્તિ જ શક્ય નથી. કાર્ય ક્ષણિક હોય છતાં સત્ય હોઈ શકે. વિકાર થવાથી એ અસત્ય ઠરે એવું કંઈ નથી. "આ છે" એવા પ્રામાણિક જ્ઞાન પરથી "આ નથી" એ જ્ઞાન પ્રતિષ્ઠિત થાય છે. "આ નથી" કહેતાં પણ કોઈક વસ્તુની સત્તા પ્રમાણિત થાય છે ખરી. જે સત્ય છે તે જ્ઞાનનો વિષય ન જ થઈ શકે; ન તે મિથ્યાજ્ઞાનનો વિષય બની શકે, ન તો તે કાર્યકારણભાવથી સંબદ્ધ હોઈ શકે. જે જગતને મિથ્યા કહે છે, તે કાર્યકારણના નિયમનું ઉલ્લંઘન તેમ જ સ્વપ્રતિજ્ઞાવિરોધ કરે છે.[૬]

માધ્વસિદ્ધાન્ત દશ પદાર્થો સ્વીકારે છે: દ્રવ્ય, ગુણ, કર્મ, સામાન્ય, વિશેષ, વિશિષ્ટ, અંશિ, શક્તિ, સાદૃશ્ય અને અભાવ. આમાંનાં છ વૈશેષિક મતને અનુસરીને છે. દ્રવ્યો ૨૦ છે: પરમાત્મા, લક્ષ્મી, જીવ, અવ્યાકૃત આકાશ, પ્રકૃતિ, ગુણત્રય, મહત્તત્ત્વ, અહંકાર, બુદ્ધિ, મન, ઇન્દ્રિય, માત્રા, ભૂત, બ્રહ્માંડ, અવિદ્યા, વર્ણ, અન્ધકાર, વાસના, કાલ અને પ્રતિબિમ્બ. ગુણો અનેક છે: કર્મ ત્રિવિધ છે; વિહિત, નિષિદ્ધ અને ઉદાસીન. આ પ્રમાણે દરેક પદાર્થ વિશે વિસ્તૃત વિવેચન આપ્યું છે. તેમાં ૨૦ દ્રવ્યોમાંથી પહેલાં ત્રણ, એટલે કે, પરમાત્મા, લક્ષ્મી અને જીવનું સ્વરૂપ જોઈએ.

પરમાત્મા—અનન્તગુણયુક્ત અને પરિપૂર્ણ છે. લક્ષ્મી, જીવ, આદિ કરતાં પરમાત્મામાં અનેકગણા પ્રમાણમાં જ્ઞાન, શક્તિ, આનન્દ, વગેરેનું અસ્તિત્વ છે; અર્થાત્ પરમાત્માના અનન્ત ગુણો અનન્ત, અપરિમિત, નિરતિશય રૂપમાં વિદ્યમાન છે. સૃષ્ટિ, સ્થિતિ, સંહાર, નિયમ, જ્ઞાન, આવૃત્તિ, બન્ધ અને મોક્ષ પરમાત્મા પર જ અવલંબે છે. તે સર્વજ્ઞ છે. જડ, જીવ અને પ્રકૃતિ કિંવા મહાલક્ષ્મીથી ભિન્ન છે. એનાં સર્વે અંગો જ્ઞાનમય અને આનન્દમય છે. તે સર્વથી સ્વતંત્ર છે; અદ્વિતીય છે. એક હોવા છતાં એણે વાસુદેવ, સંકર્ષણ, પ્રદ્યુમ્ન, અનિરુદ્ધ, કૂર્મ, વરાહ, નૃસિંહ, વામન એમ અનેક રૂપો અનેક સમયે ધારણ કર્યાં છે. અને સર્વ રૂપો પૂર્ણ જ છે. પરમાત્માના અનન્ત ગુણો, અસંખ્ય અવતારો અને જગત્સર્જનની ક્રિયા એકમેકથી અભિન્ન છે.

લક્ષ્મી:—પરમાત્માથી ભિન્ન છતાં એને જ અધીન એવી લક્ષ્મી પરમાત્માની પત્ની છે. તે નિત્યમુક્ત તેમ જ અનેકરૂપધારિણી છે. પરમાત્માની જેમ તે પણ જડદેહ રહિત છે અને દેશકાલમાં પરમાત્માની જેમ જ વ્યાપ્ત છે.

જીવ:—અણુ તેમ જ પ્રતિશરીર ભિન્ન છે. તે અસ્વતન્ત્ર છે અને કદી પણ પરમાત્મા સાથે અભિન્નતા ભોગવી શકતા નથી. જીવ અને પરમાત્માનો ભેદ બહુ જ સ્પષ્ટ અને સંશયાતીત શબ્દોમાં **સર્વદર્શનસંગ્રહ**માં વર્ણવ્યો છે:–

---

૬ કલ્યાણ વેદાન્તાંક

यथा पक्षी च सूत्रं च नानावृक्षरसा यथा ।
यथा नद्यः समुद्राश्च शुद्धोदलवणे यथा ॥
चौरापहार्यौ च यथा यथा पुंविषयावपि ।
तथा जीवेश्वरौ भिन्नौ सर्वदैव विलक्षणौ ॥[૧૦]

"જેવી રીતે પક્ષી અને સૂત્ર ભિન્ન છે; અનેક પ્રકારનાં વૃક્ષો તેમજ તેના વિવિધ પ્રકારના રસો એકબીજાથી ભિન્ન છે; જેમ નદી અને સમુદ્રો, નિર્મલ જલ અને મીઠું, ચોર અને ચોરીનું ધન, પુરુષ અને વિષયો, એકમેકથી જુદાં છે, તેવીજ રીતે જીવ અને ઈશ્વર ભિન્ન છે, સર્વદા વિલક્ષણ છે." અને છતાં આ જીવ અને ઈશ્વરનું ઐક્ય દેખાય છે. શા માટે? ઈશ્વરના સૂક્ષ્મ રૂપને લઈનેજ. કહે છે કે:–

तथाऽपि सूक्ष्मरूपत्वान्न जीवात् परमो हरिः ।
भेदेन मन्ददृष्टीनां दृश्यते प्रेरकोऽपि सन् ॥[૧૧]

"મંદબુદ્ધિવાળાં મનુષ્યોને સૂક્ષ્મરૂપને લીધે પરમપુરુષ શ્રીહરિ, જો કે તેજ તેનો, એટલે કે જીવનો પ્રેરક હોવા છતાં જીવથી ભિન્ન દેખાતો નથી" છે તો ખરોજ. જીવો સંસારી છે અને તેજ કારણે અજ્ઞાન વગેરે દોષોથી લિપ્ત છે. જીવ ચેતન છે પણ તેનું જ્ઞાન સસીમ છે. જીવો ત્રણ પ્રકારના છે: મુક્તિયોગ્ય, નિત્યસંસારી અને તમોયોગ્ય. મુક્તિયોગ્યના પાંચ પ્રકાર છે: દેવો, ઋષિઓ, પિતૃઓ, ચક્રવર્તી રાજાઓ અને ઉત્તમ મનુષ્યો. આમાંથી ઉત્તમ મનુષ્યોના પણ બે ભેદ છે: ચતુર્ગુણોપાસક અને એકગુણોપાસક. સાત્ત્વિક, રાજસિક અને તામસિક ભેદથી પણ જીવના ત્રણ ભેદ છે.

સદાય સુખદુ:ખનો અનુભવ કરતા, જન્મમરણની ઘટમાળમાં સંડોવાયેલા જીવો એ નિત્યસંસારી જીવો. તે તેમનાં પાપપુણ્યના પ્રભાવે નરક, પૃથિવી તેમજ સ્વર્ગમાં હંમેશા ફર્યા કરે છે. આ મધ્યમ મનુષ્યો. દૈત્યો, રાક્ષસો અને પિશાચો એ અધમ કોટિના મનુષ્યો. "આ સર્વ જીવો પરસ્પર ભિન્ન છે, પરમાત્માથી પણ ભિન્ન છે, અને સંસારમાં તેમજ મુક્તિમાં તારતમ્યનો અનુભવ કરે છે. બ્રહ્મા વગેરે દેવો જીવોના અભિમાની દેવતા છે, પુરંજન નિત્યસંસારી જીવોના અભિમાની છે, અને કલિયુગ તમોયોગ્ય જીવોનો અભિમાની દેવતા છે."[૧૨]

પ્રકૃતિ—માધ્વમતે પ્રકૃતિ સાક્ષાત્ અને પરંપરાથી વિશ્વનું ઉપાદાન કારણ તેમજ ગુણત્રયનું ઉપાદાન કારણ છે. મધ્વાચાર્યે, ઈશ્વરના જગતના ઉપાદાન કારણ તરીકે સર્વથા ઈન્કાર કર્યો છે. પ્રકૃતિ જડરૂપ, નિત્ય અને અવ્યાપ્ત છે. રમા પ્રકૃતિની અભિમાની દેવતા છે. તે સર્વ જીવોના લિઙ્ગશરીરરૂપ, જીવોથી ભિન્ન અને અનેક જાતની છે. પૌરાણિક પ્રકારે આ પ્રકૃતિમાંથી ગુણો અને મહત્ આદિ સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ માની છે. જેમકે શુદ્ધ સત્ત્વગુણ મુક્ત જીવોના લીલાશરીરને ઉપયોગી છે. રજસથી સૃષ્ટિ

---

૧૦ **સર્વદર્શનસંગ્રહ** : પૃ. ૧૪૬

૧૧ એજન

૧૨ **વૈષ્ણવધર્મનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ** : પૃ. ૧૯૮

ઉત્પન્ન થાય છે. સૃષ્ટિની સ્થિતિ રજોગુણમાં રહેલા સત્ત્વગુણ પર અવલંબે છે, અને તમોગુણ તેનો નાશ કરે છે. સત્ત્વગુણની અભિમાની દેવતા શ્રી છે, રજોગુણની ભૂ અને તમોગુણની દુર્ગા છે. આ ત્રણ ગુણમાંથી ઉત્પન્ન થયેલું મહત્તત્ત્વ બ્રહ્માનું શરીર છે. મહત્તત્ત્વમાંથી ત્રિવિધ અહંકાર – વૈકારિક, તૈજસ અને તામસ – ઉત્પન્ન થાય છે. વૈકારિક અહંકારના અભિમાની દેવતા ગરુડ, તૈજસના શેષ અને તામસના રુદ્ર છે. આ પ્રમાણે બ્રહ્માંડની ઉત્પત્તિ પછી, પાણીમાં પોઢેલા ભગવાનની નાભિમાં કમળ ઉત્પન્ન થયું અને એ કમળમાં બ્રહ્માનો ઉદ્‌ભવ થયો. તેમાંથી ફરી દેવો, મન વગેરે ઉત્પન્ન થયાં. તેમાંથી પચપર્વા અવિદ્યા ઉત્પન્ન થઈ. અવિદ્યાનાં પાંચ પર્વો તે તમસ્, મોહ, મહામોહ, તામિસ્ર અને અંધતામિસ્ર. આ પંચપર્વા અવિદ્યા જીવની આશ્રિત છે.

કોઈપણ જાતનું, કોઈપણ સાધનથી પરિણમતું જ્ઞાન એ માત્ર પરમાત્માને જ અધીન છે. જ્ઞાન દ્વિવિધ છેઃ સંસારહેતુ અને મોક્ષહેતુ. દેહ, કુટુંબ – પરિવાર, વગેરેમાં મનતારૂપ જ્ઞાન સંસારહેતુ છે; ત્યારે યોગ્ય સાધનોદ્વારા ઊપજતું અપરોક્ષ જ્ઞાન મોક્ષહેતુ છે. મધ્વમતાનુસાર આ અપરોક્ષ જ્ઞાનના અધિકારી ત્રણ પ્રકારના છેઃ મન્દ, મધ્યમ અને ઉત્તમ. મનુષ્યોમાં જે ઉત્તમગુણસંપન્ન છે, તે મન્દ; ઋષિગન્ધર્વોનો મધ્યમ કોટિમાં સમાવેશ થાય છે; અને દેવતા ઉત્તમ અધિકારી છે. આ થયા જાતિગત ભેદો. ગુણગત ભેદો નીચે પ્રમાણે છેઃ પરમપુરુષ ભગવાન્‌માં ભક્તિભાવ રાખનારાં તેમ જ પોતાના અધ્યયનમાં રત મનુષ્યો અધમ; શમયુક્ત વ્યક્તિ મધ્યમ અને જેના મનમાં સમસ્ત વસ્તુ પ્રત્યે સાચો વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થયો હોય, જેનો એક માત્ર આશ્રય શ્રીવિષ્ણુનું પદ છે, તે ઉત્તમ અધિકારી છે. અપરોક્ષ મોક્ષહેતુ જ્ઞાન ઘણાં સાધનોથી ઉત્પન્ન થાય છે. વિવિધ સંસારદુઃખના અનુભવથી તેમ જ દર્શનથી અને સજ્જનના સમાગમથી ઇહામુત્રફલભોગવિરાગ, શમાદિસંપત્તિ, અધ્યયનસંપત્તિ, શરણાગતિ અને ગુરુકુલવાસ થાય છે. ગુરુના સદુપદેશથી સત્શાસ્ત્રનું શ્રવણ, સાંભળેલા તત્ત્વનું મનન, ગુરુભક્તિ, પરમાત્માની યથાયોગ્ય ભક્તિ, અધમ દીન પર દયા, ઉત્તમ પ્રત્યે ભક્તિ – માન, નિષ્કામકર્માનુષ્ઠાન, નિષિદ્ધ કર્મોનો ત્યાગ, ભગવાનને સર્વસમર્પણ, તારતમ્યનું એટલે જીવોની તથા બ્રહ્મા શંકર આદિ દેવોની પણ ન્યૂનાધિકતાનું અને વિષ્ણુની સર્વોત્કૃષ્ટતાનું જ્ઞાન, ભેદજ્ઞાન, પ્રકૃતિપુરુષના વિવેકનું જ્ઞાન, અયોગ્યની નિન્દા અને ઉપાસના; આ સાધનો સર્વ અધિકારી જીવો માટે સાધારણ છે.

ઉપાસના એ સાધનસામગ્રીમાં દ્વિવિધ છેઃ એક શાસ્ત્રના અભ્યાસરૂપ અને બીજી ધ્યાનરૂપ. દરેકેદરેક લૌકિક વસ્તુ પ્રત્યે તિરસ્કારદૃષ્ટિ અને ભગવાનની અખંડ અસ્ખલિત સ્મૃતિ એ ધ્યાનરૂપ ઉપાસના અર્થાત્ નિદિધ્યાસન. શાસ્ત્રવિચારમાં શ્રવણ – મનનદ્વારા અજ્ઞાન, સંશય, મિથ્યાજ્ઞાન વગેરેનો ધ્વંસ અને સત્યતત્ત્વની પ્રતીતિ એ નિદિધ્યાસન.

ભગવાનની સેવા એ મુક્તિનું આવશ્યક અંગ અને સાધન છે. સેવા ત્રણ પ્રકારની છે. सा च सेवा अङ्कननामकरणभजनभेदात् त्रिविधा ।[13] અંકન, નામકરણ અને ભજન આ ત્રણેની વ્યાખ્યા **સર્વદર્શનસંગ્રહમાં** નીચે પ્રમાણે આપી છેઃ–

---

૧૩ **सर्वदर्शनसंग्रह** : પૃ. ૧૩૭

तत्राङ्कनं नारायणायुधादीनां तद्रूपस्मरणार्थमपेक्षितार्थसिद्ध्यर्थं च ।[14]

નારાયણનાં આયુધો–શંખ, ચક્ર, ગદા, પદ્મ આદિની છાપ શરીરનાં અંગો પર ધારણ કરવી તે અંકન, જેથી તેના રૂપનું સતત સ્મરણ રહે ને ધારેલા અર્થો પાર પડે.

એવી જ રીતે, नामकरणं पुत्रादीनां केशवादिनाम्ना व्यवहारः, सर्वथा तन्नामानुस्मरणार्थम् ।[15]

નામકરણ એટલે પુત્ર વગેરેનાં કેશવ આદિ નામ પાડવાં જેથી સદાસર્વદા ભગવાનનાં નામનું અનાયાસેય સ્મરણ થાય. અહીં ભાગવતના અજામિલાખ્યાનની[16] યાદ આવે છે. જિંદગીભર કરેલાં અઘોર પાપોમાંથી મુક્તિ મેળવી, અજામિલ પરમાત્માના પરમધામને પ્રાપ્ત કરે છે, માત્ર એક જ કારણેઃ પુત્રનું નામ નારાયણ હતું. અજામિલ છેલ્લી ઘડીએ પોતાના પુત્રને "નારાયણ, નારાયણ" કરી પુકારે છે. તરત જ તેને બાંધી લઈ જવા આવેલા યમના દૂતો પાછા વળે છે અને તેને બદલે વિષ્ણુના પાર્ષદો તેના જીવને પરમધામમાં દોરી જાય છે. આ થયું નામકરણ.

હવે ત્રીજું ભજન. ભજન દશ પ્રકારનું છે. भजनं दशविधं, **वाचा** सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायः, **कायेन** दानं परित्राणं परिरक्षणं, **मनसा** दया स्पृहा श्रद्धा चेति ।[17] સત્ય બોલવું, હિતવાક્ય બોલવું, પ્રિયભાષણ તેમ જ સ્વાધ્યાય આ ચાર વાચિક ભજન: પાત્રે દાન, હીનદુઃખીનો ઉદ્ધાર અને શરણાગતની રક્ષા આ ત્રણ શારીરિક ભજન: દયા, સ્પૃહા અને શ્રદ્ધા એ ત્રણ માનસિક ભજન. अत्रैकैकं निष्पाद्य नारायणे समर्पणं भजनम् ।[18] આ દશેય પ્રકારનાં કાર્યોનું શ્રીવિષ્ણુને સમર્પણ તેનું જ નામ ભજન, કારણ સમર્પણ અને ત્યાગબુદ્ધિ સિવાયનાં કરેલાં કાર્યો નકામાં જ છે. મોક્ષની સૌથી અગત્યની ચાવી તે સમર્પણ.

આપણે પહેલાં એકગુણોપાસક અને ચતુર્ગુણોપાસક એવા જીવોના બે પ્રકાર જોયા. એકગુણોપાસક માત્ર આત્મત્વ એ એક જ ગુણવાળા ભગવાનની ઉપાસનામાં મસ્ત રહે છે; જ્યારે ચતુર્ગુણોપાસક સત્, ચિત્, આનન્દ અને આત્મા એ ચાર ગુણયુક્ત ભગવાનને સેવે છે. ઉત્તમ મનુષ્યો ચતુર્ગુણોપાસક છે; દેવો અને ઋષિઓ બહુગુણોપાસક છે અને બ્રહ્મા વેદોક્ત અનન્તગુણવિશિષ્ટ ઉપાસના કરે છે. પણ પ્રાજ્ઞોપાસના એટલે કે સર્વના હૃદયમાં વ્યાપી રહેલા ઈશ્વરની બિમ્બરૂપે ઉપાસના સર્વોચ્ચ કક્ષાએ મનાય છે.

અપરોક્ષ જ્ઞાનની ઉત્પત્તિ પણ અધિકારિ-ભેદ પ્રમાણે ભિન્ન પ્રકારની હોય છે. ઉત્તમ મનુષ્યોને બ્રહ્મજ્ઞાન વીજળીની જેમ પલકમાત્રમાં થાય છે; દેવોને તેજઃપુંજરૂપે થાય છે; ગરુડ અને રુદ્રને પ્રતિબિમ્બરૂપે થાય છે. બ્રહ્માને સર્વ અવયવયુક્ત

---

૧૪ એજન,

૧૫ " , પૃ. ૧૩૮

૧૬ **श्रीमद्भागवत** : ૬. ૧–૨

૧૭ **सर्वदर्शनसंग्रह** : પૃ. ૧૩૮–૩૯

૧૮ એજન,

ભગવાનનું યથાસ્થિત જ્ઞાન ઉદ્દ્ભવે છે. કેટલાક બ્રહ્માંડમાં વ્યાપ્તરૂપે તેની પ્રતીતિ કરે છે. ગમે તે પ્રકારનું અપરોક્ષજ્ઞાન માનસ છે. આવી જાતના જ્ઞાનથી દેવો વગેરે અણિમાદિ આઠ પ્રકારનું ઐશ્વર્ય પ્રાપ્ત કરે છે.

ઉપર કહ્યા મુજબ અપરોક્ષ જ્ઞાન ભગવત્કૃપા પર અવલંબે છે; તેમ જ અજ્ઞાન, બંધ અને મોક્ષ પણ પરમાત્માને જ અધીન છે. અપરોક્ષજ્ઞાન પછી પરમભક્તિ થાય છે. આ પરમભક્તિ ઉપર વર્ણવેલી સાધનભક્તિથી ભિન્ન છે, અને સાક્ષાત્કાર પછી જ તેનો જન્મ સંભવે છે. "નિરવધિ, અનન્ત, અનવદ્ય, કલ્યાણગુણના જ્ઞાનપૂર્વક, પોતાના આત્માથી અને સર્વ આત્મીય પદાર્થોથી અનેક ગણો વધારે અને હજાર અંતરાયોથી ન રોકાય એવો જે પ્રભુ પ્રતિ પ્રેમનો પ્રવાહ તે પરમભક્તિ." આ પરમભક્તિનો વેગ જ ભગવાનને રીઝવી શકે છે અને ભક્તભીડભંજન ભગવાનનો પ્રસાદ જ પ્રકૃતિ, અવિદ્યા ઇત્યાદિમાંથી મોક્ષ મેળવી આપે છે. मोक्षश्च विष्णुप्रसादमन्तरेण न लभ्यते ।[१९] વિષ્ણુ-પ્રસાદ સિવાય મોક્ષ લભ્ય નથી. આ એ જ ઉપનિષદ્કાળજૂની ભગવાનના વરણની વાત – જેને શ્રીવલ્લભાચાર્યે "અનુગ્રહ" તરીકે ઓળખાવી. મુમુક્ષુના કર્મપાશ તોડવા ભગવદ્દ્કૃપા જ આવશ્યક છે. વિષ્ણુપુરાણમાં કહ્યું છે તેમઃ–

> तस्मिन्प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते ।
> समाश्रिताद्ब्रह्मतरोरनन्तात् निःसंशयं मुक्तिफलं प्रयात ॥[२०]

અર્થાત્ "જો તે પરમપુરુષ પ્રસન્ન હો તો કઈ વસ્તુ અલભ્ય છે? ધર્માર્થકામની ભક્તને શી જરૂર છે? કારણ એ સઘળાં અલ્પ છે, તૃણવત્ છે. અનન્ત બ્રહ્મતરુનો આશ્રય લઈ તે નક્કી મુક્તિફળ મેળવે છે." જરૂર, જે મેળવવા યોગ્ય છે તે ત્યજી શા માટે નજીવી વસ્તુઓ પાછળ ફાંફા મારવાં?

માધ્વમતે મોક્ષ એટલે વૈકુંઠપ્રાપ્તિ. જીવન્મુક્તિ કે નિર્વાણમુક્તિ જેવી કોઈ વસ્તુ છે જ નહિ એમ શ્રીમધ્વાચાર્ય માને છે. એ માત્ર વાત જ છે, અર્થ વગરની, ફોગટ. સ્થૂળ અને સૂક્ષ્મ, સર્વ વસ્તુનું યથાર્થ જ્ઞાન થતાં જ મુક્તિ થાય છે. મુક્તિ માટે પંચભેદનું જ્ઞાન પણ આવશ્યક છે. મુક્ત જીવ પણ ઈશ્વરનો દાસ જ રહે છે.

પ્રારબ્ધ અનુભવ્યા પછી જ્ઞાનીઓ દેહબંધમાંથી છૂટા થઈ ક્રમેક્રમે વૈકુંઠલોકમાં જાય છે. ઊર્ધ્વગતિ કરતાં સર્વ જીવોને સત્યલોકમાં બ્રહ્મા ઉપદેશ કરે છે, અને ભક્તો શ્વેતદ્વીપમાં શ્રીવાસુદેવનું દર્શન કરે છે. સૃષ્ટિકાળે વૈકુંઠમાં મુક્તો સાલોક્ય, સામીપ્ય સાયુજ્ય અને સારૂપ્ય એ ચાર જાતની મુક્તિ ભોગવે છે અને પ્રલયકાળે તે સર્વે ભગવાનના ઉદરમાં પ્રવેશ કરે છે. મુક્ત જીવોના ઉપભોગો વૈકુંઠમાં પણ અનેક પ્રકારના હોય છે, પણ ઈર્ષ્યા વગેરે દોષરહિત અતિશય આનંદ ત્યાં કિલષ્ટ થતો નથી અને ભગવાનના ગુણો ગાવામાં તેમનો સમય વ્યતીત થાય છે.

મધ્વાચાર્ય ત્રણ પ્રમાણ સ્વીકારે છેઃ પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને શબ્દ. ઉપમાન, અર્થાપત્તિ અને અનુપલબ્ધિ સ્વતંત્ર પ્રમાણ તરીકે ગણ્યાં નથી, કારણ આ ત્રણનો

---

૧૯ એજન પૃ. ૧૪૪
२० विष्णुपुराण: १. १७. ९१
२.४.३

સમાવેશ પ્રત્યક્ષ અને અનુમાનમાં થઈ શકે છે. એવી જ રીતે સંભવ અને પરિશેષ પણ અનુમાનમાં જ આવી જાય! ત્રીજું શબ્દ પ્રમાણ એટલે स्वातंत्र्येण अशेषार्थविषयः, सम्यगतीन्द्रियार्थावगमकः निर्दोषः शब्दः । કોઈ બીજા પર આધાર રાખ્યાવગર જે વસ્તુનું યથાર્થ સ્વરૂપ સમજાવે, ઇન્દ્રિયપર વસ્તુઓનું સર્વોત્તમ દર્શન કરાવે અને જે દોષરહિત હોય તે શબ્દ.

આચાર્યે પ્રમાણભૂત ગ્રન્થો તરીકે ઉપનિષદ્, બ્રહ્મસૂત્ર, પાંચરાત્રસંહિતાઓ તથા પુરાણોને ગણાવ્યાં છે. જ્યારે રામાનુજ અને નિમ્બાર્કે પુરાણોમાં વિષ્ણુપુરાણને પ્રાધાન્ય આપ્યું છે ત્યારે મધ્વે, વલ્લભાચાર્યે અને ચૈતન્યે શ્રીમદ્ભાગવતને મુખ્ય પ્રમાણગ્રન્થ તરીકે સ્વીકાર્યો છે. ફેર માત્ર એટલો જ કે વલ્લભ અને ચૈતન્યે ભાગવતના શૃઙ્ગાર-રસને વધુ મહત્ત્વ આપી પ્રેમલક્ષણા ભક્તિનો – વલ્લભે ગોપીભક્તિ અને ચૈતન્યે માધુર્ય-ભક્તિનો — પ્રચાર કર્યો, જ્યારે મધ્વાચાર્યે ભાગવતનાં ઉપાસના અને ધ્યાન તત્ત્વ પર જ વધુ ભાર દઈ ઉપાસનાપ્રધાન કે ધ્યાનપ્રધાન ભક્તિનો ઉપદેશ કર્યો. પ્રેમ-લક્ષણાભક્તિનું પરિણામ વખત જતાં શારીરિક તેમજ માનસિક અધઃપતનમાં આવ્યું, પણ ઉપાસનાપ્રધાન ભક્તિએ આધ્યાત્મિક તત્ત્વને પ્રધાનપદ આપી નૈતિક ઉચ્ચતાનો આદર્શ કેળવ્યો.

દક્ષિણ ઉપરાંત આ મતના અનુયાયીઓ વૃન્દાવન તેમ જ ઉત્તરહિંદમાં પણ ઠીક સંખ્યામાં છે.

ચૌદમા શતકની પાછલી અર્ધશતાબ્દીમાં મધ્વાચાર્ય પછી વિષ્ણુપુરી નામે એક સંન્યાસી તિરહુતમાં થઈ ગયા. તેણે ભાગવતમાંથી ભક્તિને લગતાં વચનો વીણી કાઢી વિષયવાર ગોઠવ્યાં. આ ગ્રન્થ **ભક્તિરત્નાવલી** નામે પ્રસિદ્ધ છે. બોપદેવે સંગ્રહેલા **મુક્તાફળ** જેવો જ આ પ્રયાસ છે. **ભક્તિરત્નાવલી**નું બંગાળી ભાષાન્તર પંદરમા શતકમાં કૃષ્ણદાસે કર્યું છે. માધ્વમતના સંન્યાસી ઈશ્વરપુરીએ જ ચૈતન્યને વૈષ્ણવ ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો હતો. અને ચૈતન્યે દક્ષિણની યાત્રા પ્રસંગે ઉપદેશ તથા કીર્તન-દ્વારા માધ્વસંપ્રદાયનો પ્રચાર કર્યો હતો. શક્ય છે કે મધ્વાનુયાયીઓમાં કીર્તનની પ્રથા ચૈતન્યે જ પાડી હોય! ચૈતન્ય પછી મધ્વસંપ્રદાયમાં કાનડી ભાષામાં સ્તોત્રો રચાવા માંડ્યાં. માધ્વમતના કાનડી લેખકોમાં અગ્રણી પુરંદરદાસ છે. ચૈતન્યના સમ-કાલીન વ્યાસરાય માધ્વ સંસ્કૃતવિદ્વાનોમાં મુખ્ય હતા અને વિજયનગરના દરબારમાં સારી પદવી ભોગવતા હતા.

અઢારમા શતકમાં તિમ્પદાસે અને મધ્વદાસે કાનડી સ્તોત્રો રચ્યાં છે. ચિદાનન્દે કાનડી **હરિભક્તિરસાયન** નામનો એક ગ્રન્થ લખ્યો છે. બીજો **હરિકથાસાર** નામનો કાનડી ગદ્યગ્રન્થ માધ્વમતનું સારું વર્ણન આપે છે, પણ તેનો સમય અનિશ્ચિત છે.

આમ મધ્વની અસર જો કે ખૂબ પ્રસરેલી તો નહિ પણ અમુક અંશે ઇષ્ટ દિશામાં છે. માધ્વમતાનુયાયીઓનું નૈતિક ધોરણ સાધારણ રીતે ઉચ્ચ છે. મધ્વે યજ્ઞમાં પશુ-હિંસાને અટકાવવા વિરોધ ખમીને સુધારકની કોટિમાં સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું છે. પણ

બીજી કેટલીક બાબતમાં મધ્વની તેમ જ રામાનુજની અસર ઓછી પ્રશંસનીય છે. રામાનુજે, રામાનુજથી વધુ પ્રમાણમાં મધ્વે, મૂર્તિપૂજાનો પ્રચાર કર્યો. રામાનુજે જોકે વર્ણસમાનતા ઉપદેશી ખરી, પણ તેનો અમલ મર્યાદિત જ રહ્યો. માધ્વમતાનુયાયીઓનો એક પેટાભેદ કાનડી તેમ જ બીજી ભાષાના ધાર્મિક ગ્રન્થોને પવિત્ર માને છે ખરો, છતાં મધ્વે તો વર્ણ અને આશ્રમોનાં બંધનો સખતાઈપૂર્વક કાયમ જ રાખ્યાં હતાં. તદુપરાંત, રામાનુજ તેમ જ મધ્વ બન્નેમાં એક પ્રકારની અસહિષ્ણુતા થોડે ઘણે અંશે દૃષ્ટિગોચર થાય છે. દાખલા તરીકે, રામાનુજ વિષ્ણુસંપ્રદાયના ઇષ્ટ દેવો સિવાય બીજા દેવોની પૂજા માન્ય રાખતા નથી અને મધ્વાચાર્ય પોતાનો ઉગ્ર પ્રકોપ શંકરાચાર્યના અદ્વૈતવાદ તરફ જ ઠાલવે છે. પણ, હિંદના ફિલ્સૂફીચિંતક તત્ત્વજ્ઞાનપ્રેમી માનસને અદ્વૈતવાદ તરફ વિશેષ આકર્ષણ રહ્યું છે. અને રામાનુજ અમુક અંશે અદ્વૈતવાદી હોવાથી તેના તરફ મધ્વ કરતાં વધારે આકર્ષણ રહ્યું છે. મધ્વને ચૈતન્ય જેવા અનુયાયી હોવાનું સ્વામી વિવેકાનંદે પણ કબૂલ્યું છે અને તે એટલું જ દેખાડે છે કે પોતાની જન્મભૂમિ કરતાં ઉત્તરહિંદે મધ્વને પોતાના કરી લીધા.[૨૧] મીરાંબાઈ ઉપર પણ મધ્વની અસર હોય એમ સ્વ. શ્રી મૂલચંદ તેલીવાલા ધારે છે.[૨૨] ગમે તેમ પણ, ભક્તિવિષયમાં ઉત્તરભારત દક્ષિણના આચાર્યોનું ઋણી છે, એટલું તો સાચું જ.

---

૨૧ મેકનિકલ : ઇન્ડીઅન થીઇઝમ : પૃ. ૧૧૩–૧૪.

૨૨ વૈષ્ણવઝ ઓફ ગુજરાત : પ્રો. થૂથી : પૃ. ૨૨૯

पैशाचवर्गनी बोलीओनी उपयोगिता

*

लेखक – श्रीयुत प्रो. डोलरराय रं. मांकड

"हुं, एक अने होवुं नो मूळ इयु शब्द"ना मारा लेखमां[1] में बताव्युं छे के ए मूळ शब्द एन्त्स्[2] होवानो सम्भव छे. एनो उच्चार ए काळे एन्त्स्, ओन्त्स्, अन्त्स् के ऑन्त्स्मांथी गमे ते थतो होय, पण मूळ शब्द ए हतो. एना सम्बन्धमां में नोंध्युं हतुं के बश्गली नामे बोलीमां आजे पण 'हुं' माटे ओन्त्स् शब्द मळे छे.

अहीं मारे आ बश्गली विशे अने एना उपरथी फलित थती केटलीक उपपत्ति विशे लखवुं छे. सर ज्योर्ज ग्रीयर्सन आ बश्गलीने पैशाची वर्गनी गणे छे पैशाची बोलीओने एमणे सामान्य रीते दर्दिक (Dardic) बोलीओ पण कही छे. एमणे पोताना Linguistic Survey ना ८ मा पुस्तकना बे भागोमां आ पैशाची के दर्दिक बोलीओनी तपास करी छे. एमना मते काश्मीर, कोहिस्तान, काफिरिस्तान, दर्दिस्तान वगेरे वायव्य सरहदना भागोमां आ बोलीओ बोलाय छे. तेने तेओ Indo-Aryan पण नथी गणता, तेम, Indo-Iranian पण नथी गणता. आवी आ पैशाची बोलीओ विशे अहीं थोडुंक लखवा धार्युं छे. भाषाशास्त्रमां आपणे जेने इन्डो-युरोपियन काळ कहीए छीए अने जे काळ ऋग्वेदनी प्राथमिक भूमिकानो ज काळ होवानो सम्भव छे ते काळनी जातिओनी बोलीओनी सीधी विकृतिओ ते आ पैशाची बोलीओ छे एम मारुं मानवुं छे.

हुं एम धारुं छुं के आ बश्गली बोलीनो सम्बन्ध ऋग्वेदनी बाष्कली शाखानी साथे छे. कोहिस्तानमां आजे ज्यां आ बश्गली बोलाय छे त्यां बष्कली नामे एक नदी छे.[3] ए नदी उपरथी ए आखा भागनुं नाम बष्कल पड्युं होय अने त्यां रहेनारा लोको बश्गल के बाष्कल अने एमनी बोली बश्गली कहेवानी होय एवो सम्भव छे. कदाच देश अने लोको उपरथी नदीने ए नाम मळ्युं होय. पण एनी साथे आपणने सम्बन्ध नथी. उच्चारशास्त्रनी दृष्टिए बश्गली अने बाष्कली एक ज छे.

मारुं सूचन एवुं छे के आ कोहिस्तान, दर्दिस्तान, काफिरिस्तान वगेरे वायव्य कोणना जूदा जूदा प्रान्तोमां ज ऋग्वेद-यजुर्वेदनी जूदी जूदी शाखाओ प्रचारमां हती. हुं हमणां ज बतावीश के ए भागोमां बोलाती जूदी जूदी बोलीओमां आजे पण ऋग्वेदकाळनुं भाषावैशिष्ट्य जळवाइ रह्युं छे.

आपणे जाणीए छीए के यजुर्वेदना कृष्ण अने शुक्र एवा बे भागो छे. आजे तो विद्वानो एम माने छे के जे यजुर्वेद व्यवस्थित नथी ते शुक्र. पण आ विषयमां नीचेनुं सूचक छे.

---

१ जुवो बुद्धिप्रकाश, ऑक्टो-डिसे. १९४१.

२ आ त्स् नो मूळ उच्चार द् अने स् नी वच्चेनो, कदाक मराठी च् ना उच्चार जेवो छे. ए विशे मारा उपला लेखमां समजुती आपी छे ते जोवा विनंति छे.

३ LSI, Vol VIII, II Introduction, p. 4.

In later times it was assumed that because there were two main groups of Kafirs viz. the Siāh-pōsh or Black-clothed and the Sufed-pōsh or White-clothed, there were, therefore, two languages in Kafiristan corresponding to these two groups.[१]

एटले कृष्ण-शुक्ल जातिओनो भेद आजे पण आ प्रदेशमां चालु छे ते वात नोंधवा जेवी छे.

आ काफिर शब्दनी व्युत्पत्ति शी हशे? हुं अहीं एक सूचन करुं छुं. यजुर्वेदनी एक शाखानुं नाम कापिष्ठली छे. आ शाखा कपिष्ठल के कपिस्थल नामे प्रदेशमां रहेता लोकोनी ज होय ते देखीतुं छे. आ कपिस्थल उपरथी एम विचार सूझे छे के ए स्थळनुं ए नाम, एमां कपिः नामे लोको रहेता हता, तेथी पड्युं हशे. सं. कपिः नुं प्राकृतादिमां तो नहि पण इयु भाषाओमांथी अमुकमां कफिः थइ शके.[१] एटले मारुं सूचन एवुं छे के कपिस+स्थल=कफिस+स्थळ ते ज काफिर के काफिर+इ+स्थान छे. एटले आजनुं काफिर-इ-स्तान यजुर्वेदनी कापिष्ठली शाखाना लोकोनुं निवासस्थान हशे एम कही शकाय.[२]

वळी जेम बाष्कली ऋग्वेदनी शाखा छे तेम शाकल नामे एक शाखा पण ऋग्वेदनी छे; अने बाष्कलनो सम्बन्ध जेम बष्कल प्रदेशनी साथे होय तेम शाकलनो सम्बन्ध शकल नामे प्रदेश साथे होय. अने LSI VIII, II मां शिगल (Shigal) नामे एक प्रदेशनो उल्लेख छे. आ शिगल ते शकल होइ शके. खरी रीते शकल, बष्कल वगेरेमां (श+कल; ब:+कल) बीजुं पद जे कल छे तेनो अर्थ प्रदेश ज थाय छे. आ शब्द 'कल'नो सम्बन्ध

---

१ जुवो LSI (Linguistic Survey of India) Vol VIII, pt II, p. 29.

२ प ना फ माटे सरखावो पणि=Phanis=Phoenicions. etc. उपरांत नीचेनी बे नोंधो पण आ ज वात पुरवार करे छे.

(I) Apes are known as Hebrew in Koph. In Egyptian the word takes the form 'Kafu' and these are derived from Kapi. (Ancient India by S. K. Aiyanger I, P. 770).

(2) Yuan Chwang says that from Bamian he went to Ka-pi-shih. This Ka-pi-shih of Yuan Chwang is an equivalent of Kapis. And Watters has actually suggested "As Kaniṣka is Kanerka, so-Kapis may be Kafir a name which is preserved in the modern Kafiristan." (जुवो On Yuan Chwang by Thomas Watters p. 122-24).

३ अहीं कोइने एम शंका थाय के आ बधो तो यजुर्वेदनो प्रदेश थयो, शुक्ल कृष्णनो आ भेद पण यजुर्वेदनो थयो अने बष्कली-बाष्कली तो ऋग्वेदनी शाखा छे एनो मेळ केम मळे? पण मारे एम सूचववुं छे के जे काळे ऋग्वेद-यजुर्वेद एवा भेद पड्या न्होता ते काळे आवो बाध न ज होय. अने एवा काळे बाष्कली तेमज कापिष्ठली आदि बधी शाखाओ एक ज वेदनी गणाती होय अने पछी ज्यारे जूदा जूदा वेदोनो भेद ऊभो थयो त्यारे बाष्कली ऋग्वेदनी गणाइ अने कापिष्ठली यजुर्वेदनी गणाइ. आम होइ शके.

'गोकुल' मां 'कुल' छे तेनी साथे छे. कुल – कल, गुल – गलनो अर्थ प्रदेश (country) एम थाय छे, केमके आजे पण त्यांनी एक बोली Wasi – Veri मां गुलनो अर्थ country थाय छे. (जुवो. L S I, VIII II, पृ. ६५). उपरांत आ गल – गुल के कल शब्द ए तरफना देशोनां नामोमां ठीक ठीक देखाय छे. जुवो बरगल, शिगल उपरांत वैगल, प्रसून – गुल, वेझगुल, वस्त – गुल, पोगुल वगेरे शब्दो. (L S I, VIII, II पृ. ५७, ५९ वगेरे). ऋग्वेदनी एक शाखा मुद्गलशाखा छे तेमां पण आ ज 'गल' छे. मोंगोलियामां पण आ ज गल – गुल – गोल छे.[१]

वळी दर्द – (दर्द - इ - स्तान)नी व्युत्पत्ति शी हशे ? दर्द नामे लोको छे. तेने 'दरद' पण लखे छे. हवे आ पैशाची बोलीओमां द नो त थइ जवाना घणा दाखला मळे छे.[२] तेथी आ दर्द शब्दनुं रूपान्तर तर्त पण होय. दर्द – तर्तनो सम्बन्ध हुं तार्तरी साथे जोडुं छुं. तार्तरीमां मूळ शब्द तर्त ज छे. वळी जुवोः तर्तनुं एक रूपान्तर तत्त पण थइ शके. उपरांत संस्कृतना 'अ'ने स्थळे आ इयु बोलीओमां इ के ए मळे छे.[३] तेथी आ 'तत्त'नुं रूपान्तर 'तित्त' के 'तित्ति' पण होइ शके. तेने 'र' लागतां तित्तिर शब्द निष्पन्न थाय. ए शब्द, हुं धारुं छुं के, आपणा तैत्तिरीयनो मूळ शब्द छे. आम यजुर्वेदनी तैत्तिरीय शाखाना लोको ते ज दरदो – दर्दो के तार्तरो छे एम कही शकाय.

वळी ऋग्वेदनी शाकलशाखानी एक उपशाखानुं नाम मुद्गल छे. आ मुद्गलनुं रूपान्तर मोग्गल होय. अने एनो सम्बन्ध मोगल लोको साथे सूचवी शकाय. मोगल लोको मूळ तार्तरीना ज हता.

वळी तैत्तिरीयोनी एक उपशाखानुं नाम औकल छे.[४] आजे पण पैशाचवर्गनी एक बोलीनुं नाम अश्कुं (Ashku) छे. आ अश्कुं ते ज औक्ख होवानो सम्भव छे.

वळी 'अफघान' शब्दनी व्युत्पत्ति शी हशे ? हुं एक सूचन करुं छुं. अप्+गम् के गन् नी साथे ए शब्दनो सम्बन्ध लागे छे. प नो फ थाय छे ते तो आपणे जोयुं. अने भाषाशास्त्रीओने ग अने घ नो सम्बन्ध पण जाणीतो छे. गमनुं रूपान्तर गन् पण होवानो सम्भव छे, आजे पण काश्मीरी बोलीमां जवुं माटे √गन्म् शब्द छे, तेमां जो अनुनासिक उच्चार होय[५]

---

१ वळी बष्कल उपरथी बख्खल – बख्खर – बोखारा एवा शब्दो निष्पन्न थया होवानो पण सम्भव छे.

२ दा. त. अहीं पाछळ आपेली यादीमांनो pratot शब्द. उपरांत जुवोः "As compared with Sanskrit, its principal peculiarity is the hardening of the soft letters. Where Sanskrit has Dāmodar, Paishachi has Tāmotar......just as in Chulikā Paishachika, 'a boy' is pālaka not bālaka. (LSI, VIII, II, Intr, p. 4).

३ आ नियम पण में मारा बदला बु. प्र. ना लेखमां आप्यो छे.

४ जुवो History of Ancient Indian Literature by Max Müller.

५ आ अनुनासिक तत्त्व माटे पन्स्म् माटे जे सूचन, बु. प्र. ना उपमा लेखमां में कर्युं छे ते जोइ लेवा विनंति छे.

तो गन्स् थाय अने एमांथी गम् अने गन् बन्नेनी चावी मळे. आम अप+गन (पाणीमां चालनार, चालवामां कुशल) एनी साथे हुं 'अफघान' शब्दनो सम्बन्ध सूचवुं छुं. कंदहारने आपणे गान्धार गणीए छीए. गान्धारमां जो गन्धर्वो रहेता होय तो गन्धर्वना हंमेशना साथीदार अने पाडोशी 'अप्सर' क्यां रहेता होय? तेथी कंदहारना पाडोशी आ अफघानो ते ज 'अप्सरो' (अप्+सर् के अप्+गन्) छे एम मारुं सूचन छे.

उपरांत काश्मीरी पण पैशाची भाषा छे. सर ज्योर्ज ग्रीयर्सने नोंध्युं छे के काश्मीरीने त्यांनी तळपदी बोलीमां कशिरु अने काश्मीरीने कोशिरु कहे छे.[१] आ कशिरुने सर ज्योर्ज तो कश्मीर उपरथी ज व्युत्पन्न करे छे.[२] पण मने ए योग्य लागतुं नथी. मारुं सूचन एवुं छे के आ 'कशिरु' शब्द ते ज पौराणिक 'कशेरु' छे. आ शब्द जुदां जुदां पुराणोमां जुदी जुदी रीते लखायलो मळे छे: कसेरु के कशेरुक (वायु, ४५मो अध्याय), कसेरुणा (वामन, १३), कसेरुमान् (ब्रह्म, १९), कसेरु (अग्नि, ११८). भारतवर्षना उत्तर तरफना देशोमांनो एक आ 'कसेरु' छे एम पुराणोमां कह्युं छे अने आ कसेरुनी साथे ज 'दरद' पण भारतवर्षना उत्तर तरफना देश तरीके उल्लेखायेल मळे छे (उपरनां पुराणोमां). माटे हुं एम मानुं छुं के आ पौराणिक कसेरु ते ज काश्मीर छे.

आवी रीते जे प्रदेशमां आजे पैशाचीवर्गनी बोलीओ बोलाय छे, तेमांथी बश्गल, शिगल, काफिर-इ-स्तान, दर्द-इ-स्तान, मुद्गल, अरकूं, अफघान, काश्मीर वगेरे प्रदेश अने बोलीओनो सम्बन्ध ऋग्वेदकाळनी जुदी जुदी शाखाओ साथे बांधवो शक्य लागे छे. उपरांत कोहिस्तान शब्दनी व्युत्पत्ति पण (कोह-इ-स्तान) कुशस्थान उपरथी शक्य छे. कोह ते कुश होइ शके. उपरांत वेदोनी जुदी जुदी शाखाओनां नामोने बलुचिस्तान,[१] कोहिस्तान, दर्दिस्तान वगेरेनी जुदी जुदी बोलीओनां तथा प्रदेशोनां नामोनी साथे सरखावतां घणां वधारे साम्यो मळी आववानो सम्भव छे.

आवी रीते भाषाशास्त्रनी दृष्टिए जेने आजे आपणे दर्दिक के पैशाचीवर्ग कहीए छीए तेमांनी घणी खरी बोलीओ ऋग्वेद काळनी बोलीओ साथे सीधो सम्बन्ध धरावती होय एवो सम्भव छे. आ बधी बोलीओनो अभ्यास बराबर बारीकीथी हजी सुधी थयो नथी, छतां सर ज्योर्ज ग्रीयर्सनना पुस्तकोमांथी ज में केटलाक शब्दोनी यादी बनावी छे, जे नीचे टांकुं छुं. ए उपर टपके बनावेली यादी पण सिद्ध करे छे के आ पैशाची बोलीओमां आजे पण एवा घणा शब्दो छे जेने आपणे ऋग्वेदना काळना के इन्डो-युरोपियन काळना गणवा जोइए. आ नानो लेख लखवानुं मारुं मुख्य प्रयोजन तो ए छे के एवी तुलनात्मक भाषाशास्त्रना आपणा अभ्यासमां एक नवी दिशा खुले अने एना तरफ विद्वानोनी दृष्टि वळे. मने पोताने तो ए दिशामांथी घणां वधारे नक्कर परिणामो मळे एवी आशा छे.

---

१ LSI, VIII, II, article on Kashmiri.

२ LSI, VIII, II, " "

नोंधवा लायक पैशाची शब्दोनी यादी[१]

[उच्चार बराबर सूचवाय माटे शब्दो अंग्रेजीमां ज लख्या छे.]

१

Mats=Man[२]
trit=some; cp चित्
wās=day; cp वाः, वासर
Kāts=hair; cp केश
tā=father
brā=Brother; cp भ्रा+तृ
Nu=Mother
Sus=Sister; cp स्वसृ+क
Ju=Daughter; cp दुह (दुहितृ)
Imra=god; cp इन्द्र
yush, yosh = devil; cp यक्ष
Su=Sus; cp सु in सवितृ
Mās=Month; cp माः, मासः
Shtā=Star
Āw=water; cp आप्
taū, tso = dog; cp शु+न
pshash, pinshā = eat; cp puss
Kiti=some; cp कति
Pratot=प्रायात् gave
Tatos=then (ततः)
Su lu=far; cp सुदू+र
Udeshe=foreign, cp उद्देश=country
chorok=hair; cp चिकुर (व्यत्यय)
Āsh, Ashi, Ish=Mouth; cp आस्य

२

Pushpā=shepherd; cp पशु+प (पाल)
Kapor, Kapāl = Head; cp कपोल= cheek
Nishi+nam=to sit; cp नि+षिद्
Vir=man; cp वीर
Kalcträm=wife; cp कलत्रम्
yasha=food; cp यशः (Rv, food)
Ama=House; cp अम (Rv. House)
Kakawak=fowl; cp कृकवाकु.
Barah=then; cp परः
Bol=army; cp बल
Retai=said; cp रट् to roar
Karesaw=I would have done cp अ+करिष्यम्
Hamūnisāe=many years; cp अमूनि
Hui=call; cp हे - हू
Dur=House; cp द्वर्=door
No=Not; cp नो
Zap=To speak; cp जप्
Wots=the fatted calf; cp वत्स
Zyuthu=Elder; cp ज्येष्ठ
Gphliu=offer; cp आ+भृ
Esego=sent (Ese+go); cp प्र+इष्
Saprok=all; cp सर्व
Matr=to speak; cp मन्त्र

*

गुप्त साम्राज्यनो प्रारंभ

ले० श्रीयुत डुंगरसी धरमसी संपट

*

મગધ સામ્રાજ્ય એ ભારતવર્ષના હૃદય તરીકે ઇ. સ. પૂર્વે ઘણી સદીઓથી પ્રસિદ્ધ હતું. મગધ સામ્રાજ્યનો ઇતિહાસ આખા જગતમાં અવનવો છે. એના ઉપર હમણાં જ વિશેષ પ્રકાશ પડતો જાય છે. મગધ સામ્રાજ્યમાં કેટલાક વંશો અને સંસ્કૃતિઓનો વિકાસ થયો છે. મૌર્ય, શુંગ અને કણ્વ વંશોએ આ સામ્રાજ્યમાં પોતાની પ્રતિભા પ્રસારી હતી. કણ્વવંશનું સામ્રાજ્ય માત્ર ૪૫ વરસો સુધી જ અસ્તિત્વમાં રહ્યું હતું. ઇ. સ. પૂર્વે ૨૮ વર્ષો પહેલાં આંધ્રવંશનું સામ્રાજ્ય ૪૬૦ વર્ષ ટક્યું હતું. વાયુપુરાણ આ વંશને ૪૫૦ વર્ષોનું આયુષ આપે છે. ભીટારીનો લેખ આંધ્ર શાસનને ટેકો આપે છે. ડૉ. કે. એન દીક્ષિતને બીજો આંધ્ર સિક્કો પણ મળ્યો છે. મધ્યપ્રાંતમાં મળેલા આ સિક્કામાં એક હાથીની પ્રતિકૃતિ છે. સમ્રાટનું નામ શિવશ્રી આપીલક તે પુરાણોનો આપીલક તરીકે ઓળખી શકાયો છે.

આંધ્ર વંશ ઇ. સ.ના ત્રીજા સૈકાની આખરે પૂરો થયો જણાયો. આંધ્રવંશના સમ્રાટોના શાસન સમયે પણ બીજા કેટલાક વંશોનું અસ્તિત્વ દેખાય છે. લિચ્છવી વંશના જયદેવ પહેલા (ઇ. સ. ૩૩૦ થી ૩૫૫)ના વંશજ જયદેવ બીજાનો નેપાળનો શિલાલેખ ઈ. સ. ૪૫૮નો છે. જયદેવ પહેલાની અગાઉ ૨૩ નૃપતિઓ એ જ વંશમાં થઈ ગયા હતા. એનો મૂળપુરુષ સુપુષ્પ લિચ્છવી પાટલીપુત્રમાં જન્મ્યો હતો, તે ઇસ્વી સનના આરંભમાં હતો એમ અનુમાન થાય છે. જ્યારે સમ્રાટ કનિષ્કનો સચિવ વનસ્પાર મગધ ઉપર આક્રમણ લાવ્યો ત્યારે લિચ્છવીઓના સામ્રાજ્યનો અત આવ્યો જણાય છે. આંધ્રવંશની સમાપ્તિ પહેલાં આભીર, વિંધ્યકો, શકો, તુષારોના અને બીજા વંશોએ રાજકીય સ્વતંત્રતાઓ મેળવી લીધી હતી. વાકાટક વંશના વિંધ્યશક્તિ અને પ્રવરસેન ૧ લાનો ઉલ્લેખ પુરાણોમાં આવે છે. પ્રવરસેનના પુત્ર ગૌતમીપુત્રનો વિવાહ ભારશિવોના સમ્રાટ ભાવ નાગની કન્યા સાથે થયો હતો. ભારશિવોએ દશ અશ્વમેધ યજ્ઞો કર્યા હતા. એ વંશ એકસો વરસ ચાલ્યો હોય એમ જણાય છે. કુશાનોના શાસન પછી ઈ. સ. ૧૫૦માં એ વંશની મહત્તાનો વિકાસ થયો હશે.

આ સર્વમાંથી ઐતિહાસિક સાર એટલો જ નીકળે છે કે કણ્વોના વંશનો અંત સાતવાહન નૃપતિએ આણ્યો હતો. એ સાતવાહન મગધનો સમ્રાટ થયો. એની પછી લિચ્છવીઓ આવ્યા. લિચ્છવીઓએ કનિષ્કના સચિવને પાટલીપુત્ર સોંપવું પડ્યું હતું. આ રીતે કુશાનોનું ઉત્તર હિંદમાં શાસન સ્થપાયું હતું. કુશાનો પછી ભારશિવો આવ્યા. ઈ. સ. ૨૫૦ માં વાકાટક વંશ આગળ તરી આવ્યો. વાકાટક વંશનો ગુપ્તસમ્રાટ ચંદ્રગુપ્ત બીજા અને બાલાદિત્ય બીજાના સમય વચ્ચે અસ્ત થયેલ હશે. આ સમય સામ્રાજ્યભાવના, સંસ્કૃત ભાષાના વિકાસ અને સામાજિક પ્રગતિનો હતો.

ભારશિવોના વિકાસ (ઈ. સ. ૧૫૦) સમયે મગધ એક જૂના ક્ષત્રિયવંશના સ્વાધીનમાં હતું. ચીની પ્રવાસી ઇત્સીંગે (ઈ. સ. ૬૭૦ થી ૭૦૦) પોતાના પ્રવાસ-વર્ણનમાં જણાવ્યું છે કે ૫૦૦ વરસો ઉપર થઈ ગયેલા મહાન નૃપતિ શ્રીગુપ્તે એક મોટું મંદિર માર્ગશિક વનમાં ચીના પ્રવાસીઓ માટે બાંધ્યું હતું. આથી શ્રીગુપ્તનો સમય ઈ. સ. ૧૭૫ થી ૨૦૦ નો ઠરે છે. એલન શ્રીગુપ્તને ચંદ્રગુપ્ત પહેલાના પિતામહ તરીકે ગણે છે. પરંતુ ચીના પ્રવાસી ઇત્સીંગે આપેલ સમય જોતાં એ બંધબેસતુ થતું નથી. શ્રીગુપ્તના વંશજોનો ઇતિહાસ કે નામો લખ્યાં નથી.

અલ્હાબાદના સ્તંભના લેખથી જણાય છે કે સમ્રાટ શ્રીસમુદ્રગુપ્તને "મહારાજા" વિશેષણ લગાડવામાં આવ્યું છે. શ્રીપ્રભાવતી ગુપ્તાના વાકાટકના પૂનાના લેખમાં એ સમ્રાટને યોગ્ય રીતે आदिराजના વિશેષણથી ઉલ્લેખવામાં આવ્યો છે. વિન્સેન્ટ સ્મિથ સમ્રાટ સમુદ્રગુપ્તને ૨૭૫ થી ૩૦૦નો સમય આપે છે. તેને બીજાં સાધનોથી પણ ટેકો મળે છે. અલ્હાબાદનો સ્તંભલેખ મહારાજા ઘટોત્કચનો પણ ઉલ્લેખ કરે છે. ફ્લીટ નામે પુરાવિદ આ મહારાજા ઘટોત્કચને ઘટોત્કચ ગુપ્ત ગણે છે; પણ તે શંકાસ્પદ છે. કેટલાક એને ગુપ્ત વંશનો કોઈ નિકટનો સંબંધી માને છે. આ ઘટોત્કચનો સમય એલન ઈ. સ. ૩૦૦ અને ૩૫૦ ની વચ્ચે માને છે.

અલ્હાબાદનો સ્તંભલેખ સમ્રાટ સમુદ્રગુપ્તના પિતા ચંદ્રગુપ્તને મહારાજાધિરાજ વિશેષણ આપે છે. ચંદ્રગુપ્ત પણ પોતાના કાળમાં સ્વતંત્ર નૃપતિ બન્યો હોય એમ કલ્પી શકાય છે. ચંદ્રગુપ્તના સિક્કાઓ (જે સમ્રાટ સમુદ્રગુપ્તે પડાવ્યા હશે) માં લિચ્છવી-ઓની રાજ્યકન્યા કુમારદેવી સાથેના વિવાહથી એને સ્વતંત્ર નૃપતિપદ મળ્યું હોય એવો ધ્વનિ નીકળે છે. આ ચંદ્રગુપ્ત ગુપ્તવંશની મહત્તા અને સામ્રાજ્યનો પાયો નાંખ-નાર હતો. ઘણા લેખો, સિક્કાઓ અને શિલાલેખો આ માન્યતાને ટેકો આપે છે. આ ચંદ્રગુપ્ત પહેલાની ઐતિહાસિક કારકિર્દી આપણે બીજા કોઈ ગ્રંથદ્વારા મેળવી શકતા નથી. આખા ગુપ્ત વંશના ઇતિહાસનાં સાધનો અહીં તહીં શિલાલેખો, દાનપત્રો, સ્તંભ-લેખો, ચીની પ્રવાસીઓના ઉલ્લેખો, પુરાણોમાંના ઇસારાઓ વગેરેમાંથી સળગ મેળવ-વાનું કામ પુરાવિદોએ ખૂબ શોધખોળ સાથે ઉપાડ્યું છે. સૈંકડો વર્ષ સુધી એનું અસ્તિત્વ માત્ર જણાયું હતું, પરંતુ નામ નિશાન અને વિગતો હમણાં જ પ્રકાશમાં આવતાં જાય છે. ૩૦૦ વરસો સુધી હિંદમાં મહાન સામ્રાજ્ય ભોગવનાર સમ્રાટો સંબંધી સીધી ઐતિહાસિક હકીકતોનો અભાવ સાલે છે.

ઘટોત્કચ ગુપ્ત સ્વતંત્ર સમ્રાટ નહોતો, પરંતુ એનો વિકાસ ધીમે ધીમે સામ્રાજ્યમાં સ્વતંત્રતાની હદે પહોંચવા તરફ વલણ ધરાવતો હતો. સોનાના કેટલાક સિક્કાઓની એક તરફ "કચ" શબ્દ કોતરાયેલો છે. ઘણા એ સિક્કાઓને ઘટોત્કચગુપ્તના માને છે; પરંતુ એ સિક્કાઓની બીજી બાજૂએ "सर्वराजोच्छेता" એવું બિરદ છે, તે ઘટોત્કચ-ગુપ્તને ઘટી શકે નહિ, કારણ કે એ હજી ખંડિયા રાજાના બિરુદમાં જ રહ્યો હતો. અલ્હાબાદના સ્તંભ ઉપરના લેખમાં સમ્રાટ સમુદ્રગુપ્તના પિતા ચંદ્રગુપ્ત ૧ લા ને महाराजाधिराजના બિરુદથી ઉલ્લેખ્યો છે. આથી એણે જ વિશાળ રાજ્યનો મજબૂત

વિકાસવાન પાયો નાંખ્યો હોય એ સંભવિત છે. એમના સમયમાં ગુપ્તવંશના સૂર્યનો ઉદય પૂર્વમાં થતો હોય એવી માન્યતા છે. લિચ્છવી રાજ્યકન્યા સાથેનો વિવાહ એના ઉદયમાં મુખ્ય કારણ મનાય છે.

હિંદની રાજધાની દિલ્હીથી ૯ માઈલ દૂર આવેલા મિહિરપુરી ગામના કુતુબ મિનાર (મૂળ પૃથ્વીરાજની પુત્રીના માટે બનાવેલા પરંતુ પાછળથી કુતુબુદ્દિન સુલ્તાને પુનરુદ્ધાર કરી મહાન કરેલા)ના આંગણામા એક લોહસ્તંભ છે. આ અતિ પ્રાચીન છે. આવડો મોટો લોહસ્તંભ તે સમયે કેમ ઢાળી શકાયો હશે અને કેવાં સાધનોથી આ મોટા સ્તંભને અત્રે લાવવામાં આવ્યો હશે તે વાત અતિઆશ્ચર્યજનક, હમણાના ઍન્જીનિયરોને જણાઈ છે. આ સ્તંભના મૂળમાં ધાતુઓના કેટલાક ટુકડા નીકળ્યા છે તેથી એ આજ સ્થળે પ્રારંભથી મુકાયો હોય એવી માન્યતા છે. જો કે દંતકથા પ્રમાણે આઠમી ખ્રિસ્વી સદીમાં મહારાજા અનંગપાળે (પૃથ્વીરાજ અને જયચંદ્રના માતામહે) એ ઊભો કર્યો હોય એમ લોકકિવદંતી છે. એના ઉપર એક લેખ ઉત્તરની લિપિના અક્ષરોમાં મળે છે. આ અક્ષરો અલ્હાબાદના લેખના અક્ષરોને વધારે મળતા છે. લેખનો એક શ્લોક નીચે મુજબ છે:

> खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्गामाश्रितस्येतरां
> मूर्त्या कर्मजितावनीं गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ ।
> शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महान्
> नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशितरिपोर्यत्नस्य शेषः क्षितिम् ॥

આ લેખ તારીખ વગરનો છે. આમાં ચંદ્ર નામે સમ્રાટની સ્તુતિગાથા છે, પરંતુ ઉપલા શ્લોકોમાં સમ્રાટનું નામ નિશાન નથી, તેમ જ यस्य प्रतापो महान् અને महावने हुतभुजो વગેરે વિશેષણો નામરહિત સમ્રાટ હોવાનો આ માટે શક ઊભો કરે છે. કોઈ ચદ્ર નામે નૃપતિની પ્રશસ્તિરૂપે આ લોહસ્તંભ થયો હતો. ચંદ્રના શત્રુઓ સંયુક્ત થઈને બંગાળ તરફથી એના રાજ્ય ઉપર આક્રમણ લાવ્યા હતા. ચંદ્ર ભૂપતિએ શત્રુઓનો પરાજય કર્યો હતો. એ જ પ્રશસ્તિમાં तीर्त्वा येन मुखानि सप्त समरे सिन्धोर्जिता वाल्हिकाः છે; આથી સમજાય છે કે ચંદ્રરાજાએ બાલ્હિકો બાખ (બેક્ટ્રિયા)ને સિધુનાં સપ્તમુખો દ્વારા આક્રમણ કરાવી હરાવ્યા હતા. એને एकाधिराज्यम् એટલે ચક્રવર્તિપણાની પણ ઉપાધિ દેવામાં આવી છે.

આ ચંદ્ર નૃપતિ કોણ હતો ? શ્રી. આયંગાર આ ચંદ્રને ચંદ્રગુપ્ત ૧લા તરીકે હોવાનું માને છે. કેટલાક માને છે કે ચંદ્રગુપ્ત મૌર્યે આ લોહસ્તંભ ઊભો કર્યો હતો અને ૬૦૦ વરસો પછી સમુદ્રગુપ્તે પોતાના આદર્શસ્વરૂપ સમ્રાટ ચંદ્રગુપ્ત મૌર્યની પ્રશસ્તિના શ્લોકો કોતરાવ્યા હશે. કોઈ ચંદ્રગુપ્ત બીજાનો આ પ્રશસ્તિ સાથે સંબંધ બાંધવાની કોશીશ કરે છે. આ બધાં માત્ર અનુમાનોને ઐતિહાસિક કે બીજાં સાધનોનો ટેકો નથી. પરંતુ ફ્લીટ અને આયંગાર બન્ને આ સ્તંભને ચંદ્રગુપ્ત પહેલાના કિર્તિસ્તંભ તરીકે માને છે. તે માટે કેટલાંક કારણો આગળ ધરે છે. પરંતુ વિરુદ્ધમાં પણ તેવી જ સંગીન દલીલો અસ્તિત્વમાં છે. એટલે એ ચંદ્ર ભૂપતિ કોણ હતો તે વિશે કાંઈ પાકો નિર્ણય

બાંધી શકાયો નથી. શ્રી. આયર સદાચંદ્ર ભારશિવને આ ચંદ્ર માને છે. ભાવનાગ પછી એ નૃપતિપદ પામ્યો હતો. આમાં પણ તરફેણ અને વિરુદ્ધની અનેક દલીલો થઈ શકે છે. શ્રી. હરપ્રસાદ સાસ્ત્રી પુષ્કરના ચંદ્રવર્માને આ ચંદ્ર તરીકે માને છે. શ્રી. આર. ડી. બેનરજી એમને ટેકો આપે છે. પરંતુ સૂક્ષ્મ સમાલોચના આ પ્રસ્તાવનું સમર્થન કરતી નથી. ચંદ્રગુપ્ત બીજાના સિક્કાઓની ભાષા સાથે આ સ્તંભની ભાષાનું સામ્ય ચંદ્રગુપ્ત બીજાને સ્થાપક તરીકે સ્થાપે છે.

અહીં ચંદ્રગુપ્ત ૧લાના સિક્કા વિશે કહેવાનું પ્રાપ્ત થાય છે. આ સિક્કાઓ બે જાતના મલ્યા છે. હોયે જાતના સિક્કા ઉપર 'ચંદ્રગુપ્ત' અક્ષરો, એક છત્ર અને સમ્રાટનું ચિત્ર તથા બીજી તરફ 'વિક્રમાદિત્ય' એટલું છે. વાસુદેવ કુશાનની સિક્કાઓની ઢબ મુજબ આ સિક્કાઓની બનાવટ છે. ચંદ્રગુપ્ત પહેલાને વિક્રમાદિત્યનું બિરુદ નહોતું. આથી આ સિક્કાઓ ચદ્રગુપ્ત બીજાએ જ પડાવ્યા હોવા જોઇએ. બીજી જાતના સિક્કાઓમાં ચંદ્રગુપ્ત અને કુમારદેવીનાં સંયુક્ત નામો છે. સમુદ્રગુપ્તે આ સિક્કાઓ પોતાના પિતાની યાદદાસ્તમાં પડાવ્યા હોય એ સંભવિત છે.

કૌમુદી–મહોત્સવ નામે નાટકનો ઉલ્લેખ રામચંદ્રના "નાટ્યદર્પણ"માં મળી આવે છે. આ નાટક સંસ્કૃતમાં છે. એમાં ચંદ્રસેન રાજાની કથા નાટકરૂપે ગૂંથેલ છે. શ્રી. જાયસ્વાલની માન્યતા મુજબ આ રાજા તે ગુપ્તવંશનો સ્થાપક ચંદ્રગુપ્ત પહેલો હતો. આ નાટકના વસ્તુનો સારાંશ એમ છે કે ઇસ્વીના ૪ થા સૈકામાં મગધવંશનો સુંદરવર્મા નામે નૃપતિ પાટલીપુત્રમાં રાજ્ય કરતો હતો (ચંદ્રાવલીના મયૂરશર્માના શિલાલેખથી જણાય છે કે આ મૌખરીવંશના રાજાઓ ચોથી સદીમાં રાજ્ય કરતા હતા). સુંદરવર્મા અપુત્ર હોવાથી ચંડસેનને ખોળે છે. ચંડસેન એક લિચ્છવી રાજ્યકન્યા સાથે વિવાહ કરે છે. સુંદરવર્માને વૃદ્ધાવસ્થામાં એક પુત્ર જન્મે છે. ચંડસેન યુવરાજ પદમાંથી ચ્યુત થતાં તે સ્થળે કલ્યાણવર્મા આવે છે. લિચ્છવીઓ એટલે શ્વશુર પક્ષના સહકારથી ચંડસેન પાટલીપુત્ર ઉપર આક્રમણ કરીને એને જીતી લે છે. કલ્યાણવર્માને એના સચિવો વ્યાધ કિષ્કિંધા (પંપા સરોવર તીરે) લઈ જાય છે. ચંડસેન શબર અને પુલિંદોના બળવાને બેસાડવા સૈન્ય લઈ જાય છે. કલ્યાણવર્માના મંત્રીઓ મંત્રગુપ્ત અને કુંજરક મુત્સદીપણાના દાવપેચ લગાડીને પાટલીપુત્રમાં કલ્યાણવર્માનો અભિષેક કરાવી દે છે. એના શાસનને મજબૂત બનાવવા મથુરાના યાદવ કીર્તિસેન અને શૂરસેન જનપદના નૃપતિ સાથે સંધિઓ કરી એમની શક્તિનો સહકાર મેળવે છે. પાટલીપુત્રના કલ્યાણવર્માના વિજયનો કૌમુદી–મહોત્સવ ઊજવવાનો આ નાટકનો હેતુ છે. કવયિત્રી કિશોરિકા વિજ્જકાએ આ નાટક રચ્યું છે.

લિચ્છવીઓએ પોતાના જમાતા ચંડસેનને સહાય આપી પાટલીપુત્ર પાછું લીધું હશે એવી માન્યતા છે, કારણ કે પાછળથી કલ્યાણવર્માનો ભૂપતિ તરીકે ક્યાંયે ઉલ્લેખ નથી. આ નાટકની રચનાર કિશોરિકા ચંડસેનના વિરુદ્ધ સખ્ત ભાષા વાપરી એને ક્રૂર અને કપટી ચિત્રે છે. ચંડસેનને હલકા વંશનો કારસ્કર જાટ તરીકે ગણાવે છે. પુરાણોની ઉક્તિ પ્રમાણે ક્ષત્રિયો પછી શૂદ્રોનું રાજ્ય આવશે એ આ વાત સિદ્ધ કરે છે. શ્રી. જાયસ્વાલ નીચેના સિદ્ધાન્તો એ ગ્રંથમાંથી તારવી કાઢે છે:

૧ ચંદ્રસેન અને ચંદ્રગુપ્ત પહેલો એક જ વ્યક્તિ હતા. પ્રાકૃત ચંડ એ સંસ્કૃત ચંદ્ર છે. એણે સેન નામ છેડેથી કાઢીને ગુપ્ત નામ ઉમેર્યું હતું.

૨ ચંદ્રગુપ્તે લિચ્છવીઓની રાજકન્યા સાથે વિવાહ કર્યો હતો. આ વિવાહના લીધે જ મૌખરીઓનો પરાજય કરવાનું એને સગવડ ભરેલું થઈ પડ્યું હતું. આ વિજયોથી જ તે મહારાજામાંથી મહારાજાધિરાજ થયો હતો. અલ્હાબાદનો સ્તંભ આ વાતને સંપૂર્ણપણે ટેકો આપે છે.

૩ ચંદ્રગુપ્ત પહેલો કારસ્કર જાટ એટલે શૂદ્ર જાતિનો હતો.

૪ સરહદની જાતિઓ શબર વગેરે સાથે યુદ્ધ કરી એણે તેઓનો પરાજય કર્યો હતો.

૫ પાટલીપુત્ર લિચ્છવીઓના સહકારથી જીતી એણે પોતાના પુત્ર સમુદ્રગુપ્તને પોતાનો વારસ બનાવ્યો હતો.

શ્રી. જાયસ્વાલના આ નિર્ણયો સર્વમાન્ય થઈ શક્યા નથી. તેમાં પુરાવિદોને અનેક ત્રુટીઓ જણાઈ છે. એમાં ઐતિહાસિક સિદ્ધાન્તોનો ટેકો બીજા સાધનો મારફતે મળતો નથી. ચંદ્રનું ચણ્ડ પ્રાકૃતમાં થતું નથી. ચંડસેનનો લિચ્છવીઓની કન્યા સાથેનો વિવાહ થયો હોય તેનો ઉલ્લેખ ક્યાંયે મળતો નથી. ચંદ્રગુપ્તનો પિતા ઘટોત્કચ ગુપ્ત પોતે ભૂપતિ હોવાથી ચંદ્રગુપ્ત કોઈને ખોળે બેસે એ પણ માન્યતાથી પર છે. કૌમુદીમહોત્સવમાં નીચે મુજબના શબ્દો – वन्सानुबन्धः निहतः चण्डसेनहतकः ચણ્ડસેનના આખા કુટુંબનો ધ્વંસ કરવામાં આવ્યો એ શબ્દો પણ બંધ બેસતા નથી.

ગુપ્તો બંગાળમાંથી આવ્યા હતા. આ સમયે મગધ જૂના ક્ષત્રિય વંશ મૌખરી વંશના કબજામાં હતો. ભારશિવોએ ગંગાનો પ્રદેશ એમની પાસેથી જીતી લીધો હતો. ચોથી (ઈ.સ.ની) સદીમાં પુરાણો ગુપ્તવંશને ગંગા પ્રદેશના રાજ્યકર્તા અને વિજેતા ગણાવે છે. લિચ્છવીઓ પણ ઊતરતા વંશના (શૂદ્રો) હતા. એ સમય દરમિયાન તેઓ પણ મગધના વિજેતા હોય તો બનવા જોગ છે. આ દરમિયાન ઘટોત્કચ ગુપ્ત અને ચંદ્રગુપ્ત પહેલો ધીમે ધીમે આગેકૂચ કરતા હતા. ગુપ્તો અને લિચ્છવીઓનો વૈવાહિક સંબંધ ક્ષત્રિય પ્રાચીન કુટુંબોના પાસેથી પાટલીપુત્ર જીતવામાં સાધન હોય એ બનવા યોગ્ય છે. ગંગાનો પ્રદેશ તો ચંદ્રગુપ્તના હાથમાં હતો જ, મગધનો પ્રદેશ લિચ્છવીઓના સહકારથી એને મળ્યો હતો. ચંદ્રગુપ્તે બંગાળમાંથી પોતાની રાજધાની પાટલીપુત્રમાં ફેરવી હતી. એણે જ મગધમાં સુલેહશાંતિ પ્રસરાવ્યાં હતાં. ગુપ્તવંશનો એ પ્રથમ મહારાજાધિરાજ થયો હતો. ગુપ્તોનું કુળ ઊંચુ નહોતું, છતાં તેઓમાં ગોબ્રાહ્મણ-પ્રતિપાલક અને હિંદુધર્મના સ્તંભ સરખા મહાન સમ્રાટો થઈ ગયા છે.

ગુપ્તોના વંશની વિશેષ હકીકત અલ્હાબાદના સ્તંભ ઉપરના લેખથી મળે છે. એ ઉપરથી સ્પષ્ટ સમજાય છે કે ચંદ્રગુપ્ત પહેલાનું શાસન મગધ અને તેની પડોશના પ્રાંતો સુધી જ ફેલાયેલું હતું. એલનના મત મુજબ ચંદ્રગુપ્ત પહેલાની કારકિર્દી પૌરાણિક શ્લોકોમાં આવી અટકે છે. ચંદ્રગુપ્ત પહેલાએ વૈશાલીનો વિજય કર્યો હતો, એમ એલન માને છે. પરંતુ વૈશાલી તો પહેલાં લિચ્છવીઓની રાજધાની હતી. પાટલી-પુત્રમાંથી લિચ્છવીઓને કુશાનોના સેનાધ્યક્ષે કાઢી મૂક્યા પછી લિચ્છવીઓ વૈશાલી

પાછા ફર્યા હતા. સમુદ્રગુપ્તના વિજયોમાં વૈશાલીનું નામનિશાન નથી. ચંદ્રગુપ્ત બીજાએ (વિક્રમાદિત્યે) એનો વિજય કરી પોતાના કોઈ કુમારને એના શાસન માટે મોકલ્યો હતો.

ચંદ્રગુપ્ત ૧ લાના સમયે ઉત્તર હિંદમાં બે મોટાં રાજ્યો હતાં. એમાં એક ક્ષત્રપોનું અને બીજું વાકાટકોનું રાજ્ય હતું. આ બે રાજ્યોનો ચંદ્રગુપ્ત ૧લાની સાથે કેવો સંબંધ હતો તે વિષય રસમય છે. ક્ષત્રિય વંશના સિક્કાઓની બારીક તપાસ પછી ઇતિહાસજ્ઞ રૅપ્સન માને છે કે આ સમય એમની પડતીનો હતો. આ સમયમાં વાકાટક વંશના પ્રવરસેન ૧ લાનો સૂર્યોદય હતો. એણે પોતાના લેખોમાં સમ્રાટ પદવી ન્યાયપૂર્વક ધારણ કરી હતી. પ્રો. બ્યુલ્હર પુરાણોના પ્રવરસેન અને વિંધ્યશકિતને આ વાકાટકોના પ્રવીર અને વિંધ્યશક્તિરૂપે માનતાં અચકાય છે. વાકાટકના લેખો પ્રવરસેને કેટલાક અશ્વમેધ યજ્ઞો કર્યાનું ભારપૂર્વક જણાવે છે. એનો પુત્ર ગૌતમીપુત્ર રાજ્યારૂઢ થયો ન હોતો. એના નામનો સમ્રાટ તરીકે ઉલ્લેખ લબ્ધ થયો નથી. એટલે પ્રવરસેનનો પૌત્ર રુદ્રસેન પહેલો સમ્રાટ થયો હતો. પ્રવરસેનનાં બીજાં પરાક્રમો અને વિજયોની યશોગાથા પણ લબ્ધ થઈ નથી. રુદ્રસેન ૧લાના સમયમાં સમ્રાટપદ કોઈ સબળ કારણથી છોડી દીધું જણાય છે. વાકાટકો અને ગુપ્તો વચ્ચે સામ્રાજ્યશિરોમણિ થવાની તીવ્ર હરીફાઈ ચાલી હતી. પુરાણો અને બીજાં સાધનોથી એ સિદ્ધ થાય છે. છેવટે સમ્રાટ પદવી તો ગુપ્તોને વરી લાગે છે. ચંદ્રગુપ્ત ૧ લો એ વાકાટક સમ્રાટ પ્રવરસેનની ચક્રવર્તિધુરા નીચે આવ્યો જણાતો નથી. સમુદ્રગુપ્તે તો રુદ્રસેન ૧ લાને ખંડિયો બનાવ્યો હશે.

પ્રોફેસર રૅપ્સને ક્ષત્રપ સિક્કાઓનો બારીક અભ્યાસ કર્યો છે. રૅપ્સને હજારો સિક્કાઓ તપાસ્યા છે. એના અભિપ્રાય મુજબ ક્ષત્રપોનો ઈ. સ. ૩૦૫ થી ૩૪૮ સુધીના સિક્કાઓમાં મહાક્ષત્રપ અને પછી ક્ષત્રપ એ શબ્દો મૂકી દેવાયા છે. આથી કાંઈ વિઘ્ન નડ્યું હશે. કદાચ વંશચ્છેદ અથવા નવીન વંશનો પ્રવેશ અનુમાની શકાય છે. પરદેશી અથવા કોઈ મહાન શત્રુનો આવિર્ભાવ પણ દેખાડે છે. આ સમયના અર્ધા ભાગમાં વાકાટકોના સમ્રાટ પ્રવરસેન પહેલાના વિજયો દીપી નીકળ્યા હતા. ક્ષત્રપોના ભોગે વાકાટકોનો વિકાસ થયો હશે. ક્ષત્રપોએ માળવા ઉપરનો પોતાનો કેંદ્રસ્થ સત્તા તરીકેનો અધિકાર આ સમયમાં ખોયો હશે. રૅપ્સનના આપેલા સમયના પાછલા અર્ધા ભાગમાં ચંદ્રગુપ્ત ૧ લો સામ્રાજ્ય બાંધવા કેડ કસતો દેખાય છે. સમુદ્રગુપ્તની ઊગતી વિજયયાત્રાનો પણ આમાં સમાવેશ થાય છે.

ક્ષત્રપોનો પરાજય વાકાટકોના હાથે થયો હતો. વાકાટકોને સમુદ્રગુપ્તે પોતાને અધીન બનાવ્યા. સમુદ્રગુપ્તના વિજયોનો વિસ્તાર ઠેઠ વિંધ્યાચળ પર્વતોના પ્રાંતદેશ સુધી પહોંચે છે. આથી ક્ષત્રપોના દેશનો વિશેષ ભાગ એની વિજયયાત્રામાં સમાયેલો દેખાય છે. ચંદ્રગુપ્ત પહેલો વાકાટકો અથવા ક્ષત્રપોના સાથે યુદ્ધો ખેલ્યો હોય એવો સંભવ લાગતો નથી.

મગધનો વિજય ચંદ્રગુપ્ત પહેલાએ કર્યો ત્યારે એનું વય પ્રૌઢ ભાવને ઓળંગી ગયાનો સંભવ છે. તે વૃદ્ધાવસ્થામાં પ્રવેશ કરતો હતો. ગયાના તામ્રપત્રથી ચંદ્રગુપ્ત

પહેલાએ મગધમાં થોડાં વરસો સુધી જ શાસન ભોગવ્યું હતું એ સાબિત થાય છે. ગયાનું તામ્રપત્ર બીજી પણ અગત્યની હકીકતના અનુમાનને દેખાડે છે. ચંદ્રગુપ્ત પહેલો ઈ. સ. ૩૨૮ લગભગ મરી ગયો હોય એમ જણાય છે. એણે મગધ સામ્રાજ્યનો પાયો નાંખવા માટે જમીનમાં ખોદકામ તૈયાર કરાવ્યું. સમુદ્રગુપ્તે પાયો નાંખી ભીંતો ઊભી કરી. ચંદ્રગુપ્ત બીજાએ સુંદર, વિશાળ સામ્રાજ્યરૂપી મહાન સ્થાપત્ય ઊભું કર્યું હતું. મગધ જીતી ચંદ્રગુપ્ત પહેલાએ સમુદ્રગુપ્તના દિગ્વિજયના માટે માર્ગદર્શન કરાવ્યું છે.

ઘણી ઉપયોગી અને અલ્પ સંખ્યામાં મળેલી કેટલીક સુવર્ણની મુદ્રાઓ ઉપર "કચ" શબ્દ અંકિત થયેલો છે. આ કચ કોણ હતો, તે સંબંધે અનેક તર્ક વિતર્કો વિદ્વાનોએ કર્યા છે. આ સિક્કાઓ ચંદ્રગુપ્ત પહેલાના પિતા ઘટોત્કચના હોવાનું પ્રમાણો સિદ્ધ કરતાં નથી. ફ્લીટ અને વિન્સેન્ટ સ્મિથ બન્નેની માન્યતા મુજબ આ સિક્કા સમુદ્રગુપ્ત પોતાના જ હતા. એ સિક્કાઓ ઉપર सर्वराजोच्छेत्ता એવા શબ્દો છે. એમાં સમુદ્રગુપ્તનાં મહાન પરોપકારનાં કાર્યોના ઈસારા છે. આથી ફ્લીટ અને વિન્સેન્ટ સ્મિથને સમુદ્રગુપ્ત એ જ કચ એવા અનુમાન ઉપર આવવું પડ્યું છે. પરંતુ અદ્યાપિ સુધી જુદાં જુદાં બે બિરુદવાળા સિક્કાઓ સમુદ્રગુપ્ત સમ્રાટના પ્રાપ્ત થયા જ નથી. ગુપ્તસમ્રાટોના સિક્કાઓમાં સામાન્ય રીતે સમ્રાટની પ્રતિકૃતિઓ નીચે એનું નામ તથા બીજી તરફ એનાં બિરુદો બતાવેલ હોય છે. સાધારણ સિક્કાઓમાં ડાબી બાજૂએ સમ્રાટનું ટૂંકું નામ હોય છે. ચદ્રગુપ્ત બીજાને બદલે માત્ર ચંદ્ર એટલા જ અક્ષર મળે છે. કુ એટલો જ અક્ષર અથવા કુમાર એ એક જ શબ્દ કુમારગુપ્ત ૧ લા અથવા બીજાના સિક્કાઓમાં વપરાયેલ છે. "સ્કંદ" શબ્દ સ્કંદગુપ્ત માટે વપરાયો છે. વાકાટકોના લેખોમાં ચદ્રગુપ્ત બીજાને માટે "દેવગુપ્ત" શબ્દ યોજાયો છે. પરંતુ ચંદ્રગુપ્ત બીજાના સિક્કાઓમાં તો એ નામનું નામ નિશાન નથી. ફ્લીટ અને વિન્સેન્ટ સ્મિથની અટકળ આ રીતે ટકી શકતી નથી.

પ્રો. રૅપ્સન વળી બીજા અનુમાન ઉપર આવે છે. કચ કોઈ સમુદ્રગુપ્તનો ભ્રાતા હોવો જોઇએ એમ એની માન્યતા છે. એની ધારણા મુજબ ચંદ્રગુપ્ત પહેલાના મરણ પછી એ થોડા સમય માટે રાજ્યાસને આવ્યો હશે. પરંતુ ચંદ્રગુપ્ત ૧લા એ સમુદ્રગુપ્તને પોતાના જીવતાં જ પદ આપ્યું હતું. આથી રૅપ્સનના અનુમાનમાં દોષ છે. તે સિવાય "કચ" એ રામગુપ્તનું બીજું નામ હતું. રામ ગુપ્તનો સમુદ્રગુપ્ત પછી થોડા સમય માટે રાજ્યાભિષેક થયો હતો એ અનુમાન માટે તો અવકાશ જ નથી. ત્યારે આ કચ કોણ? એની ઐતિહાસિકતા કેમ સિદ્ધ કરવી? આ પ્રશ્ન મુશ્કેલ છે.

એલન અને રામ ચૌધરી પણ ફ્લીટ અને વિન્સેન્ટ સ્મિથને ગાડે બેસી "કચ" એ સમુદ્રગુપ્તનું બીજું ગૌણનામ હતું એમ માને છે. આયંગાર ચોકસ મત ઉપર આવ્યા નથી. સમુદ્રગુપ્તના અલ્હાબાદના સ્તંભલેખ ઉપર સમુદ્રગુપ્ત ચંદ્રગુપ્ત પહેલાનો એના જીવન દરમિયાન જ યુવરાજ હતો, એમ ચોકખો ઈસારો મળે છે. ગુપ્તો પોતાના યુવરાજોને પ્રથમથી નિર્દિષ્ટ કરતા હતા તે ચંદ્રગુપ્ત બીજાના માટે ગુપ્તવંશના લેખોમાં तत्परिगृहीत શબ્દથી સમજી શકાય છે. ચંદ્રગુપ્ત બીજાના ભિટારી અને મથુરાના લેખોમાં

ચંદ્રગુપ્ત બીજાને માત્ર યુવરાજ સ્વીકારવામાં આવ્યાનો ઉલ્લેખ છે, પરંતુ અલ્હાબાદના સ્તંભલેખમાં તો માત્ર સમુદ્રગુપ્ત યુવરાજ તરીકે નિમાયો એટલું જ નહિ પરંતુ એના બીજા ભાઇઓ આ માટે ભારે ઈર્ષ્યા કરતા હોવાનું પણ જણાવવામાં આવ્યું છે. સમુદ્રગુપ્તને કદાચ પોતાના ભાઇઓ સાથે રાજ્ય મેળવવા માટે યુદ્ધો પણ આદરવાં પડ્યાં હોય. અલ્હાબાદના લેખમાં કેટલાક શબ્દોનો લોપ થયો છે. આમાં આ યુદ્ધોનો ઉલ્લેખ હોય એ બનવા જોગ છે, કારણ કે.........યુદ્ધમાં પોતાના આયુધોથી વિજય મેળવ્યો. એના પહેલો શબ્દ ઊડી ગયો છે. બીજે સ્થળે અભિમાન પશ્ચાત્તાપમાં પરિવર્તન પામ્યું છે, એ શબ્દો કદાચ સમુદ્રગુપ્તના ભાઇઓ માટે લાગુ પડતા હોય એ શક્ય છે. સમુદ્રગુપ્તે પોતાના બંધુઓ સાથે યુદ્ધો કરી એમના બળવાને શાંત કર્યો હોય એ અનુમાન સંભવિત છે. અલ્હાબાદનો સ્તંભ હરિસેન નામના સમુદ્રગુપ્તના વિશ્વાસુ અધિકારીએ તૈયાર કરાવ્યો હતો. કેટલાક પુરાવિદો એણે આપેલ ગુપ્તની તવારીખ માટે શંકા બતાવે છે, પરંતુ તે માટે અવકાશ નથી.

આ માટે આપણી પાસે પાકાં ઐતિહાસિક સાધનો નથી. આથી જ જુદાં જુદાં અનુમાનો વિદ્વાનોને કરવાં પડ્યાં છે. પરંતુ એકેય અનુમાન દોષરહિત નથી. પરંતુ કદાચ એ શકય છે કે સમુદ્રગુપ્તની વિજયયાત્રા શરૂ થયા પહેલાં એને એના ભાઇઓ સાથે સામ્રાજ્ય માટે યુદ્ધો કરવાં પડ્યાં હોય. એ યુદ્ધોમાં સમુદ્રગુપ્તને સરળતાથી વિજય મલ્યો હોવો જોઇએ. સમુદ્રગુપ્ત અનુમાન પ્રમાણે ગંગાને બીજે કિનારે મરણ પામ્યો હશે. પાટલીપુત્રથી સમુદ્રગુપ્ત પિતાને મળવા નીકળ્યો હશે. પોતાના બીજા ભાઇઓના સહકારથી "કચ" નામે જ્યેષ્ઠ ભ્રાતાએ થોડા સમય માટે પાટલીપુત્રનો કબજો મેળવીને રાજપદે બિરાજી પોતાના નામના સિક્કા પડાવ્યા હશે. કચના સિક્કાઓ થોડા પ્રમાણમાં અને હલકી ધાતુના છે. આથી એના અલ્પ સમયનો રાજ્યાભિષેક ક્યાંયે નોંધાયો નહિ હશે, એટલે સિક્કાઓનું પ્રમાણ ઓછું મળ્યું છે. અલ્હાબાદના સ્તંભલેખમાં ખૂટતા શબ્દો આ જ હોય તો અસંભવિત નથી. પરંતુ કચના સિક્કાઓ ઉપર सर्वराजोच्छेत्तानुं બિરુદ ખાલી અભિમાની મહત્તા દેખાડવાને માટે પણ હોય. આ બધાં અનુમાનો છે.

આ લેખ માટે સ્વ૦ શ્રી. જાયસ્વાલનો હિંદનો ઇતિહાસ, આર. એન. દાંડેકરનો ગુપ્તનો ઇતિહાસ અને આયંગારના એન્શિયન્ટ ઇન્ડિયાનો સહકાર લીધો છે. હજી ગુપ્ત સંબંધી વિશેષ ઇતિહાસ હવે પછી અપાશે.

*

जैन कर्मशास्त्र अने कर्मतत्त्वनुं एक नवी दृष्टिए निरूपण

લે૦—श्रीयुत पं० सुखलालजी शास्त्री

[प्रधानाध्यापक, जैनशास्त्रशिक्षापीठ, हिन्दू युनिवर्सिटी, बनारस]

*

જૈન વાઙ્મયમાં અત્યારે જે કાંઈ શ્વેતાંબર અને દિગંબર કર્મશાસ્ત્ર વર્તમાન છે તેમાંના પ્રાચીન કર્મવિષયક ગ્રન્થોનો સાક્ષાત્ સંબંધ બન્ને પરંપરાઓ આગ્રાયણીયપૂર્વ સાથે જોડે છે. શ્વેતાંબર–દિગંબર એ બન્ને પરંપરાઓ દૃષ્ટિવાદ નામના બારમા અંગાન્તર્ગત ચૌદ પૂર્વોમાંથી બીજું આગ્રાયણીયપૂર્વ છે એમ કહે છે અને એ બન્ને પરંપરાઓની સામાન્ય માન્યતા એવી છે કે બાર અંગ અને ચૌદ પૂર્વો ભગવાન્ મહાવીરના સર્વજ્ઞ ઉપદેશનું સાક્ષાત્ ફલ છે. આ ચિરકાલીન સાંપ્રદાયિક માન્યતા અનુસારે વર્તમાન બધું કર્મવિષયક જૈન સાહિત્ય શબ્દરૂપે નહિ તો અન્તતઃ અર્થરૂપે ભગવાન્ મહાવીરના સાક્ષાત્ ઉપદેશનો જ પરંપરાપ્રાપ્ત સારમાત્ર છે. આ જ પ્રમાણે એક એવી પણ સાંપ્રદાયિક માન્યતા છે કે વસ્તુતઃ બધી અંગવિદ્યાઓ ભાવરૂપે માત્ર ભગવાન્ મહાવીરથી જ પૂર્વકાલીન નથી પરંતુ પૂર્વ પૂર્વમાં થનાર અન્યાન્ય તીર્થંકરોથી પણ પૂર્વકાલીન છે, એટલે એક રીતે અનાદિ છે. પ્રવાહરૂપે અનાદિ હોવા છતાં તે તે સમયે થનાર નવા નવા તીર્થંકરો વડે એ અંગવિદ્યાઓ નવું નવું રૂપ ધારણ કરે છે. આ જ માન્યતાને, નૈયાયિક જયન્તભટ્ટનું અનુકરણ કરી કલિકાલસર્વજ્ઞ આચાર્ય હેમચંદ્રે પ્રમાણમીમાંસામાં બહુ સુંદર રીતે પ્રકટ કરી છે કે—"अनादय एव एता विद्याः संक्षेपविस्तारविवक्षया नवनवीभवन्ति, तत्तत्कर्तृकाश्चोच्यन्ते । किन्नाश्रौषीः न कदाचिदनीदृशं जगत् ?" ।

એ માન્યતાને સાંપ્રદાયિક લોકો આજ સુધી અક્ષરશઃ વળગી રહ્યા છે અને જે રીતે મીમાંસકો વેદોના અનાદિપણાનું સમર્થન કરે છે તે જ પ્રમાણે તેનું સમર્થન પણ કરતા આવ્યા છે. સાંપ્રદાયિક મનુષ્યો બે પ્રકારના હોય છે—એક તો બુદ્ધિ-અપ્રયોગી શ્રદ્ધાળુ, જેઓ પરંપરાપ્રાપ્ત વસ્તુને બુદ્ધિનો પ્રયોગ કર્યા વિના જ શ્રદ્ધામાત્રથી માની લે છે; અને બીજા બુદ્ધિ-પ્રયોગી શ્રદ્ધાળુ, જેઓ પરંપરાપ્રાપ્ત વસ્તુને માત્ર શ્રદ્ધાથી નથી માનતા પણ તેનું બુદ્ધિથી યથાસંભવ સમર્થન પણ કરે છે. આમ સાંપ્રદાયિક લોકોમાં પૂર્વોક્ત શાસ્ત્રીય માન્યતા આદરણીય હોવા છતાં અહીં કર્મશાસ્ત્ર અને તેના મુખ્ય વિષય કર્મતત્ત્વના સંબંધમાં એક બીજી દૃષ્ટિએ પણ વિચાર કરવો પ્રાપ્ત છે અને તે દૃષ્ટિ છે ઐતિહાસિક દૃષ્ટિ.

એક તો જૈન પરંપરામાં પણ સાંપ્રદાયિક માનસ છોડીને ઐતિહાસિક દૃષ્ટિથી વિચાર કરવાનો યુગ ક્યારનોય શરૂ થઈ ગયો છે અને બીજું એ છે કે મુદ્રણ યુગમાં પ્રકાશિત થયેલ મૂલ અને અનુવાદ ગ્રન્થો જૈનો સુધી જ મર્યાદિત નથી રહેતા, જૈનેતર પણ તેને

વાંચે છે. સંપાદક, લેખક, અનુવાદક અને પ્રકાશકનું ધ્યેય પણ એ જ રહે છે કે કેવી રીતે તે બધા પ્રકાશિત ગ્રન્થો અધિકાધિક પ્રમાણમાં જૈનેતર પાઠકોના હાથમાં જાય. એ તો કહેવાની ભાગ્યે જ જરૂર છે કે જૈનેતર વાચક સાંપ્રદાયિક હોઈ શકે નહિ. એટલે કર્મતત્ત્વ અને કર્મશાસ્ત્રના વિષયમાં સાંપ્રદાયિક દૃષ્ટિથી ગમે તેટલું વિચારવામાં અને લખવામાં આવે પણ જ્યાંસુધી ઐતિહાસિક દૃષ્ટિથી એના વિશે વિચાર કરવામાં ન આવે ત્યાંસુધી એ મૂલ અને અનુવાદના પ્રકાશનનો ઉદ્દેશ ઠીક રીતે સિદ્ધ થઈ શકે નહિ. આ સિવાય પણ સાંપ્રદાયિક માન્યતાને બદલે ઐતિહાસિક દૃષ્ટિથી વિચાર કરવાના પક્ષમાં બીજી પણ દલીલો છે. પહેલી તો એ કે કર્મવિષયક જૈન વાઙ્મયનો પ્રવેશ કૉલેજોના પાઠ્યક્રમમાં પણ થયો છે, જ્યાંનું વાતાવરણ અસાંપ્રદાયિક છે. બીજી દલીલ એ છે કે હવે સાંપ્રદાયિક વાઙ્મય સંપ્રદાયની સીમા વટાવીને દૂર દૂર સુધી પહોંચવા લાગ્યું છે. તે એટલે સુધી કે જર્મન વિદ્વાન ગ્લેઝૂનપ્, જેણે 'જૈનિસ્મુસ્'–જૈનદર્શન જેવું પ્રસિદ્ધ સર્વસંગ્રાહક પુસ્તક લખ્યું છે, એ કર્મતત્ત્વના વિષયમાં પીએચ. ડી. પણ થયા છે. એટલે હું અહીં કર્મતત્ત્વ અને કર્મશાસ્ત્ર વિશે ઐતિહાસિક દૃષ્ટિથી થોડીક ચર્ચા કરવા ઇચ્છું છું.

મેં અત્યાર સુધીમાં જે કાંઈ વૈદિક અને અવૈદિક શ્રુત તથા માર્ગનું અવલોકન કર્યું છે અને તેના ઉપર જે કાંઈ થોડો ઘણો વિચાર કર્યો છે એના આધારે મારા મત પ્રમાણે ખાસ કરીને નીચે પ્રમાણે વસ્તુસ્થિતિ ફલિત થાય છે, જેના પ્રકાશમાં કર્મતત્ત્વ-વિચારકોની બધી પરંપરાઓની શૃંખલા ઐતિહાસિક દૃષ્ટિથી સુસંગત થઈ શકે છે.

પહેલો પ્રશ્ન કર્મતત્ત્વ માનવું કે નહિ અને માનવું તો ક્યા આધારે એ હતો. એક પક્ષ એવો હતો જે કામ અને તેના સાધનરૂપ અર્થ સિવાય બીજા કોઈ પુરુષાર્થને માનતો ન હતો. એની દૃષ્ટિમાં ઇહલોક જ પુરુષાર્થ હતો. એટલે એ એવું કોઈ પણ કર્મતત્ત્વ માનવા બાધિત ન હતો, જે સારાનરસા જન્માન્તર અથવા પરલોકની પ્રાપ્તિ કરાવનાર હોય. આ જ પક્ષ પછીથી ચાર્વાક પરંપરાને નામે પ્રસિદ્ધ થયો. પણ સાથે સાથે એ અતિ પ્રાચીન યુગમાં પણ એવા ચિંતકો હતા જે બતાવતા હતા કે મૃત્યુ પછી પણ જન્માન્તર છે,* એટલું જ નહિ પણ આ દૃશ્યલોકના સિવાય પણ બીજા શ્રેષ્ઠ–

---

* મારો એવો અભિપ્રાય છે કે આ દેશમાં કોઈ પણ બહારના ભાગમાંથી પ્રવર્તકધર્મ અથવા યાજ્ઞિક માર્ગ આવ્યો. અને તે જેમ જેમ પ્રચાર પામતો ગયો તેમ તેમ આ દેશમાં જે પહેલાંથી જ વિદ્યમાન હતો તે નિવર્તકધર્મ અધિકાધિક બલ પકડતો ગયો. યાજ્ઞિક પ્રવર્તકધર્મની બીજી શાખા ઇરાનમાં જરથોસ્તિયનધર્મરૂપે વિકસિત થઈ. અને ભારતમાં આવનારી યાજ્ઞિક પ્રવર્તકધર્મની શાખાનો નિવર્તકધર્મવાદીઓ સાથે પ્રતિદ્વન્દ્વીભાવ શરૂ થયો. આ દેશના પ્રાચીન નિવર્તકધર્મવાદીઓ આત્મા, કર્મ, મોક્ષ અને ધ્યાન, યોગ, તપસ્યા આદિ વિવિધ માર્ગો–આ બધું માનતા હતા. તેઓ ન તો જન્મસિદ્ધ ચાતુર્વર્ણ્ય માનતા કે ન ચાતુરાશ્રમ્યની નિયત વ્યવસ્થા. તેમના મતે કોઈ પણ ધર્મકાર્યમાં પતિ માટે પત્નીનો સહચાર અનિવાર્ય હતો નહિ, પ્રત્યુત ત્યાગ વખતે એકબીજાનો સંબંધવિચ્છેદ થઈ જતો પણ પ્રવર્તકધર્મમાં આથી બધું ઊલટું જ હતું. મહાભારત આદિ પ્રાચીન ગ્રન્થોમાં ગાર્હસ્થ્ય અને ત્યાગાશ્રમની પ્રધાનતાવાળા જે સંવાદ મળે છે તે ઉક્ત બન્ને ધર્મોના વિરોધને સૂચિત કરે છે. બધા નિવૃત્તિધર્મના દર્શનના સૂત્રગ્રન્થોમાં મોક્ષને જ પુરુષાર્થ કહ્યો છે, પરંતુ યાજ્ઞિક માર્ગનાં બધાં વિધાનો સ્વર્ગલક્ષી છે. આગળ જતાં અનેક અંશોમાં એ બન્ને ધર્મોનો સમન્વય પણ થઈ ગયો છે.

કનિષ્ઠ લોક છે. આ લોકો પુનર્જન્મ અને પરલોકવાદી કહેવાતા હતા; અને તેઓજ પુનર્જન્મ અને પરલોકના કારણરૂપે કર્મતત્ત્વ માનતા હતા. એમની દૃષ્ટિ એવી હતી કે યદિ કર્મ ન હોય તો જન્મ-જન્માન્તર એવં ઇહ-પરલોકનો સંબંધ બની શકે નહિ; એટલે પુનર્જન્મની માન્યતાના આધારે કર્મતત્ત્વનો સ્વીકાર આવશ્યક છે. આ કર્મ-વાદીઓ જ પોતાને પરલોકવાદી તથા આસ્તિક કહેતા હતા.

કર્મવાદીઓનાં મુખ્ય બે દલ હતાં. એકનું કહેવું એવું હતું કે કર્મનું ફલ જન્માન્તર અને પરલોક અવશ્ય છે, પણ શ્રેષ્ઠ જન્મ તથા શ્રેષ્ઠ પરલોક માટે કર્મ પણ શ્રેષ્ઠ જ જોઈએ. આ દલીલવાળા લોકો પરલોકવાદી હોવાથી તથા સ્વર્ગ નામક શ્રેષ્ઠ લોકના સાધન-રૂપે ધર્મનું પ્રતિપાદન કરતા હોવાથી ધર્મ, અર્થ અને કામ એ ત્રણજ પુરુષાર્થો માનતા હતા. એમની દૃષ્ટિમાં મોક્ષનું એક જુદા પુરુષાર્થરૂપે સ્થાન હતુંજ નહિ. જયાં જયાં આ પ્રવર્તક ધર્મનો ઉલ્લેખ આવે છે ત્યાં એ આ ત્રિપુરુષાર્થવાદી મન્તવ્યનો સૂચક છે એમ સમજવું. એનું મન્તવ્ય સંક્ષેપમાં એ છે કે ધર્મ—શુભકર્મનું સ્વર્ગ અને અધર્મ—અશુભ કર્મનું ફલ નરક આદિ છે. ધર્માધર્મજ પુણ્ય-પાપ તથા અદૃષ્ટ કહેવાય છે. એથીજ જન્મજન્માન્તરની ચક્રપ્રવૃત્તિ ચાલ્યા કરે છે, અને તેનો ઉચ્છેદ શક્ય નથી. શક્ય એટલુંજ છે કે જો સારો લોક અને અધિક સુખ પ્રાપ્ત કરવું હોય તો ધર્મ જ કર્તવ્ય છે. આ મતે અધર્મ યા પાપ તો હેય છે, પરંતુ ધર્મ યા પુણ્ય હેય નથી. આ દલ સામાજિક વ્યવસ્થાનું સમર્થક રહ્યું, એટલેજ તેણે સમાજમાન્ય, શિષ્ટ અને વિહિત આચરણોથીજ ધર્મની ઉત્પત્તિ બતાવી તથા નિંદ્ય આચરણોથી અધર્મની ઉત્પત્તિ બતાવી. આમ કરી તેમણે બધા પ્રકારની સામાજિક સુવ્યવસ્થાનોજ સંકેત કર્યો હતો. એજ દલ આગળ જતાં બ્રાહ્મણમાર્ગ, મીમાંસક અને કર્મકાંડી એવા નામે પ્રસિદ્ધ થયું.

કર્મવાદીઓનું બીજું દલ ઉપર્યુક્ત દલથી તદ્દન વિરુદ્ધ દૃષ્ટિ ધરાવતું હતું. તેનું માનવું હતું કે પુનર્જન્મનું કારણ કર્મ અવશ્ય છે. શિષ્ટસંમત અને વિહિત કર્મોના આચરણથી ધર્મ ઉત્પન્ન થઈ સ્વર્ગ પણ દે છે, પણ તે ધર્મ સુદ્ધાં અધર્મની જેમજ સર્વથા હેય છે. આના મતે એક ચોથો પુરુષાર્થ પણ છે અને તે મોક્ષ કહેવાય છે. આનું કહેવું છે કે એકમાત્ર મોક્ષજ જીવનનું લક્ષ્ય છે અને મોક્ષને માટે કર્મ માત્ર, પછી તે પુણ્ય હોય કે પાપ, ત્યાજ્ય છે. એમ પણ નથી કે કર્મનો ઉચ્છેદ અશક્ય હોય. પ્રયત્નથી તે પણ શક્ય બને છે. જ્યાં ક્યાંય નિવર્તક ધર્મનો ઉલ્લેખ છે તે બધો આ મતનોજ સૂચક છે. આના મતે આત્યન્તિક કર્મનિવૃત્તિ શક્ય અને ઇષ્ટ હોવાથી પ્રથમ દલથી વિરુદ્ધ જઈને કર્મની ઉત્પત્તિનું ખરું કારણ બતાવવું પ્રાપ્ત થયું. એણે કહ્યું કે ધર્મ અને અધર્મનું મૂલ કારણ પ્રચલિત સામાજિક વિધિનિષેધ નથી પણ અજ્ઞાન અને રાગદ્વેષ છે. ભલે ને સામાજિક આચરણ શિષ્ટસંમત અને વિહિત હોય, પણ જો તે રાગદ્વેષ અને અજ્ઞાનમૂલક હોય તો તેથી અધર્મની ઉત્પત્તિ થાય છે. આના મતે પુણ્ય અને પાપનો ભેદ સ્થૂલ દૃષ્ટિવાળાને માટે છે. વસ્તુતઃ પુણ્ય અને પાપ એ બન્ને અજ્ઞાન એવં રાગ-દ્વેષમૂલક હોવાથી અધર્મ અને હેયજ છે. આ નિવર્તકધર્મવાદીઓનું દલ સામાજિક નહિ પણ વ્યક્તિવિકાસવાદી રહ્યું. જ્યારે તેણે કર્મનો ઉચ્છેદ મોક્ષપુરુષાર્થ માની લીધો ત્યારે તેને કર્મના ઉચ્છેદક તથા મોક્ષનાં જનક કારણોનો પણ વિચાર કરવો પડ્યો. આ

વિચારના પરિણામે તેણે જે કર્મનિવર્તક કારણો સ્થિર કર્યાં તેજ આ દલનો નિવર્તક ધર્મ છે. આ પ્રમાણે પ્રવર્તક અને નિવર્તક ધર્મની દિશા પરસ્પર તદ્દન વિરુદ્ધ છે. એકનું ધ્યેય સામાજિક વ્યવસ્થાની રક્ષા તથા સુવ્યવસ્થાના નિર્માણનું છે, જ્યારે બીજાનું ધ્યેય પોતાના આત્યંતિક સુખની પ્રાપ્તિ હોવાથી માત્ર તે આત્મગામી છે. નિવર્તક ધર્મ જ શ્રમણ, પરિવ્રાજક, તપસ્વી અને યોગમાર્ગ આદિ નામોથી પ્રસિદ્ધ છે. કર્મ-પ્રવૃત્તિ અજ્ઞાન અને રાગદ્વેષજનિત હોવાથી તેની આત્યંતિક નિવૃત્તિનો ઉપાય અજ્ઞાન-વિરોધી સમ્યગ્જ્ઞાન, તથા રાગદ્વેષવિરોધી રાગદ્વેષનાશરૂપ સંયમ જ સ્થિર થયો. બાકીના તપ, ધ્યાન, ભક્તિ આદિ બધા ઉપાયો ઉક્ત જ્ઞાન અને સંયમના જ સાધનરૂપે માનવામાં આવ્યા.

નિવર્તકધર્મવાદીઓમાં અનેક પક્ષ પ્રચલિત હતા. એ પક્ષભેદો કેટલેક અંશે તે તે વાદોની સ્વભાવમૂલક ઉગ્રતા કે મૃદુતાને આભારી હતા, અને કેટલેક અંશે તત્ત્વજ્ઞાનની જુદી જુદી પ્રક્રિયાને આધારે હતા. મૂળમાં તો એવા ત્રણ જ પક્ષ રહ્યા લાગે છે: એક પરમાણુવાદી, બીજો પ્રધાનવાદી અને ત્રીજો પરમાણુવાદી હોવા છતાં પ્રધાનની છાયા-વાળો હતો. આમાંનો પ્રથમ પરમાણુવાદી મોક્ષસમર્થક હોવા છતાં પ્રવર્તક ધર્મનો પાછલા બેની જેટલો વિરોધી ન હતો. આ જ પક્ષ આગળ જતાં ન્યાયવૈશેષિક દર્શનને નામે પ્રસિદ્ધ થયો. બીજો પક્ષ પ્રધાનવાદી હતો અને તે આત્યંતિક કર્મનિવૃત્તિનો સમર્થક હોવાથી પ્રવર્તકધર્મ અર્થાત્ શ્રૌત-સ્માર્ત કર્મને પણ હેય જ બતાવતો. આ જ પક્ષ આગળ જતાં સાંખ્ય-યોગ નામે પ્રસિદ્ધ થયો. અને આના જ તત્ત્વજ્ઞાનની ભૂમિકા ઉપર અને એના જ નિવૃત્તિવાદની છાયામાં આગળ જતાં વેદાન્તદર્શન અને સંન્યાસ-માર્ગની પ્રતિષ્ઠા થઈ. ત્રીજો પક્ષ પ્રધાનચ્છાયાપન્ન અર્થાત્ પરિણામી પરમાણુવાદીનો રહ્યો જે બીજા પક્ષની જેમ જ પ્રવર્તકધર્મનો આત્યન્તિક વિરોધી હતો. આજ પક્ષ જૈન એવં નિર્ગ્રન્થ દર્શનના નામે પ્રસિદ્ધ છે. બૌદ્ધદર્શન પ્રવર્તકધર્મનો અત્યંત વિરોધી છે, પણ તે બીજા અને ત્રીજા પક્ષના મિશ્રણનો એક ઉત્તરવર્તી સ્વતન્ત્ર વિકાસ છે. બધા નિવર્તકવાદીઓનું સામાન્ય લક્ષણ એ છે કે કોઈ પણ રીતે કર્મોની જડ નષ્ટ કરવી; એવી અવસ્થા પામવી કે જ્યાંથી પાછું જન્મચક્રમાં આવવું ન પડે.

ક્યારેક માત્ર પ્રવર્તકધર્મ જ પ્રચલિત રહ્યો હોય અને નિવર્તકધર્મનો પાછળથી પ્રાદુર્ભાવ થયો હોય – એમ માનવાને કાંઈ કારણ નથી. પરંતુ પ્રારંભિક સમય એવો જરૂર કલ્પી શકાય જ્યારે સમાજમાં પ્રવર્તકધર્મની પ્રતિષ્ઠા મુખ્યરૂપે રહી અને નિવર્તકધર્મ તો વ્યક્તિઓ સુધી જ સીમિત હોવાથી પ્રવર્તકધર્મવાદીઓ દ્વારા તેની માત્ર ઉપેક્ષા જ ન થઈ પણ તેના વિરોધને પણ તે સહન કરતો રહ્યો. પરંતુ આગળ જતાં નિવર્તકધર્મવાદીઓની જુદી જુદી પરંપરાઓએ જ્ઞાન, ધ્યાન, તપ, યોગ, ભક્તિ આદિ આભ્યંતર તત્ત્વોનો ક્રમશઃ એટલો અધિકાધિક વિકાસ કર્યો કે પછી તો પ્રવર્તક ધર્મના હોવા છતાં આખા સમાજ ઉપર એક રીતે નિવર્તકધર્મની પ્રતિષ્ઠાની છાપ પડી. અને જ્યાં જુઓ ત્યાં નિવૃત્તિની જ ચર્ચા થવા લાગી તથા સાહિત્ય પણ નિવૃત્તિના વિચારોથી નિર્મિત અને પ્રચારિત થવા લાગ્યું.

નિવર્તકધર્મવાદીઓને મોક્ષના સ્વરૂપ તથા એના સાધનના વિશે તો ઊહાપોહ કરવો જ પડતો હતો, પણ તેની સાથે સાથે તેમને કર્મતત્ત્વના વિષયમાં પણ ઘણો વિચાર કરવો પડ્યો. તેમણે કર્મ તથા તેમના ભેદોની પરિભાષાઓ અને વ્યાખ્યાઓ સ્થિર કરી, કાર્ય અને કારણની દૃષ્ટિએ કર્મતત્ત્વનું વિવિધ વર્ગીકરણ કર્યું, કર્મની ફલદાત્રી શક્તિનું વિવેચન કર્યું, જુદા જુદા વિપાકોની કાલમર્યાદા વિચારી, અને કર્મોના પારસ્પરિક સંબંધ પર પણ વિચાર કર્યો. આ પ્રમાણે નિવર્તકધર્મવાદીઓનું ખાસું કર્મતત્ત્વ-વિષયક શાસ્ત્ર વ્યવસ્થિત થઈ ગયું. અને તેમાં દિન પ્રતિદિન નવા નવા પ્રશ્નો અને તેના ઉત્તરો દ્વારા ઉત્તરોત્તર અધિકાધિક વિકાસ પણ થતો રહ્યો. એ નિવર્તકધર્મવાદી જુદા જુદા પક્ષો પોતાની સગવડ પ્રમાણે જુદો જુદો વિચાર કરતા રહ્યા, પણ જ્યાંસુધી તે બધાનું એક સામાન્ય ધ્યેય પ્રવર્તક ધર્મવાદનું ખંડન કરવું રહ્યું ત્યાંસુધી તેમનામાં વિચારવિનિમય પણ થતો રહ્યો, અને તેમનામાં એકવાક્યતા પણ બની રહી. આ જ કારણને લીધે ન્યાય-વૈશેષિક, સાંખ્ય-યોગ, જૈન અને બૌદ્ધ દર્શનના કર્મવિષયક સાહિત્યમાં પરિભાષા, ભાવ, વર્ગીકરણ આદિનું શબ્દશઃ અને અર્થશઃ ઘણું બધું સામ્ય દેખવામાં આવે છે, જો કે એ દર્શનોનું વર્તમાન સાહિત્ય એ સમયની અધિકાંશે રચના છે જે સમયમાં તેમનો પરસ્પર સદ્ભાવ એકદમ ઘટી ગયો હતો.

પ્રથમથી જ મોક્ષવાદીઓ સામે એક જટિલ સમસ્યા એ હતી કે – એક તો પ્રથમથી બાંધેલાં કર્મો જ અનંત હોય છે, વળી તેમનું ક્રમશઃ ફલ ભોગવતી વખતે પણ પ્રત્યેક ક્ષણે નવાં નવાં કર્મો બંધાય છે તો પછી આ બધાં કર્મોનો ઉચ્છેદ શી રીતે સાધી શકાય? આ સમસ્યાનો ઉકેલ પણ તેમણે બહુ ખૂબીથી કાઢ્યો હતો. આ જ પ્રમાણે તે તે નિવૃત્તિવાદીઓના સાહિત્યમાં એ ઉકેલનું વર્ણન સંક્ષેપ કે વિસ્તારથી એક જેવું જ જોઈ શકીએ છીએ. આ વસ્તુસ્થિતિ એ સૂચિત કરવા પર્યાપ્ત છે કે ક્યારેક પણ એ નિવૃત્તિવાદીઓના ભિન્ન ભિન્ન પક્ષોમાં પણ ખૂબ વિચારવિનિમય થતો હતો. આ બધું હોવા છતાં ધીરે ધીરે એવો સમય આવી લાગ્યો કે જ્યારે આ નિવૃત્તિવાદીઓ પ્રથમની જેટલા નજદીક રહી શક્યા નહિ; તો પણ પ્રત્યેક પક્ષ કર્મતત્ત્વના વિષયમાં ઊહાપોહ તો કરતો જ રહ્યો છે. એ અરસામાં એમ પણ થયું કે કોઈ એક નિવર્તકવાદી પક્ષમાં એક ખાસ કર્મચિંતક વર્ગ જ સ્થિર થઈ ગયો જે બીજા મોક્ષવિષયક પ્રશ્નો કરતાં કર્મના વિષયમાં જ સૂક્ષ્મ વિચાર કરતો હતો અને પ્રધાનપણે તેનું જ અધ્યયન–અધ્યાપન કરતો હતો, જેવી રીતે અન્ય વિષયના ખાસ ચિંતકો પોતપોતાના વિષયમાં કરતા આવ્યા છે અને આજે પણ કરે છે. એ જ મુખ્યપણે કર્મશાસ્ત્રનું ચિંતન કરનાર વર્ગ જૈન દર્શનમાં પ્રસિદ્ધ કર્મશાસ્ત્રાનુયોગધર કે કર્મસિદ્ધાંતજ્ઞ વર્ગ છે.

કર્મનાં બંધક કારણો તથા તેના ઉચ્છેદક ઉપાયોના વિષયમાં તો સામાન્ય રીતે ગૌણમુખ્યભાવે બધા મોક્ષવાદીઓનું ઐકમત્ય છે, પરંતુ કર્મતત્ત્વના સ્વરૂપ વિશે અનન્તરોક્ત ખાસ કર્મચિંતક વર્ગનું મન્તવ્ય જાણવા જેવું છે. પરમાણુવાદી મોક્ષમાર્ગી વૈશેષિક આદિ કર્મને ચેતનાનિષ્ઠ માનીને તેને ચેતનધર્મ કહે છે, જ્યારે પ્રધાનવાદી સાંખ્ય-યોગ તેને અંતઃકરણસ્થિત માની જડધર્મ બતાવે છે, પરંતુ આત્મા અને પરમાણુને પરિણામી માનનાર જૈન ચિંતક પોતાની સ્વતંત્ર પ્રક્રિયા પ્રમાણે કર્મને ચેતન

અને જડ બન્નેના પરિણામરૂપે માને છે. એમના મતે આત્મા ચેતન છતાં સાંખ્યના પ્રાકૃત અંતઃકરણની જેમ સંકોચવિકાસશીલ છે, વળી તેમાં કર્મરૂપ વિકારનો પણ સંભવ છે અને તે જડ કર્માણુઓ સાથે એકરસ પણ થઈ શકે છે. વૈશેષિક આદિના મતે કર્મ એ ચેતનધર્મ હોવાથી વસ્તુતઃ ચેતનથી જુદું નથી. અને સાંખ્યના મતે કર્મ પ્રકૃતિધર્મ હોવાથી વસ્તુતઃ જડથી જુદું નથી. પણ જૈન ચિંતકોના મતે કર્મતત્ત્વ ચેતન અને જડ ઉભયરૂપ જ ફલિત થાય છે, જેને તેઓ ભાવ અને દ્રવ્યકર્મ પણ કહે છે. આ આખી કર્મતત્ત્વની પ્રક્રિયા એ કાલ જેટલી પુરાણી તો અવશ્ય છે કે જ્યારે કર્મતત્ત્વના ચિંતકોમાં પરસ્પર વિચારવિનિમય અધિકાધિક થતો હતો. એ કાલ કેટલો જૂનો છે એ તો નિશ્ચયરૂપે કહી શકાય જ નહિ, પણ જૈનદર્શનમાં કર્મશાસ્ત્રને ચિર-કાલથી જ સ્થાન છે; તે શાસ્ત્રમાં જે વિચારોનું ઊંડાણ, શ્રૃંખલાબદ્ધતા તથા સૂક્ષ્માતિ-સૂક્ષ્મ ભાવોનું અસાધારણ નિરૂપણ છે – એ ધ્યાનમાં રાખવાથી એટલું તો માન્યા વગર ચાલે તેમ છે જ નહિ કે જૈનદર્શનની વિશિષ્ટ કર્મવિદ્યા ભગવાન્ પાર્શ્વનાથના પહેલાં અવશ્ય સ્થિર થઈ ચૂકી હતી. એ જ વિદ્યાના ધારક કર્મશાસ્ત્રજ્ઞ કહેવાયા, એ જ વિદ્યા આગ્રાયણીયપૂર્વ તથા કર્મપ્રવાદપૂર્વને નામે વિશ્રુત થઈ. ભગવાન્ મહાવીરથી પહેલાંના ચાલ્યા આવતા શાસ્ત્ર વિશે જ 'પૂર્વ' શબ્દનો ઐતિહાસિક દૃષ્ટિથી અર્થ છે. વસ્તુતઃ એ પૂર્વો ભગવાન્ પાર્શ્વનાથથી પણ પહેલાંથી એક યા બીજે રૂપે પ્રચલિત હતાં. એક તરફ જૈન ચિતકોએ કર્મતત્ત્વના ચિંતનમાં ખૂબ ધ્યાન આપ્યું ત્યારે બીજી તરફ સાંખ્ય-યોગે ધ્યાનમાર્ગ પ્રત્યે સવિશેષ ધ્યાન આપ્યું. આગળ જતાં જ્યારે તથાગત બુદ્ધ થયા ત્યારે તેમણે પણ ધ્યાન ઉપર જ વધારે ભાર મૂક્યો. પણ બધાએ વારસામાં મળેલ કર્મચિંતનને અપનાવી રાખ્યું. એ જ કારણ છે કે સૂક્ષ્મતા અને વિસ્તારમાં જૈન કર્મશાસ્ત્ર પોતાનું અસાધારણ સ્થાન ધરાવે છે તો પણ સાંખ્ય-યોગ, બૌદ્ધ આદિ દર્શનોના કર્મચિંતનની સાથે તેનું ઘણું બધું સામ્ય છે; અને મૂળમાં એકતા પણ છે જે કર્મશાસ્ત્રના અભ્યાસીએ જાણવા જેવી છે.

*

डॉ. कत्रेनां विल्सन भाषाशास्त्रीय व्याख्यानो

सारसंग्राहक – श्रीयुत हरिवल्लभ भायाणी एम्. ए.

[युनिवर्सिटी रिसर्च फेलो – भारतीय विद्याभवन]

*

[मुंबई युनिवर्सिटीना उपक्रम नीचे अपातां 'विल्सन भाषाशास्त्रीय व्याख्यानो' (Wilson Philological Lectures) गये वरसे, पूनाना डेक्कन-कोलेज पोष्टग्रेज्युएट रिसर्च इन्स्टिट्यूटना भारत-युरोपीय भाषाशास्त्रना प्रधान अध्यापक (हवे उक्त संस्थाना अध्यक्ष) डां. एस्. एम्. कत्रेए आप्यां हतां. नीचे आपेलो विस्तृत सार, व्याख्यान दरमियान लीधेली नोंधो अने व्याख्याताए भारतीय विद्या (अंग्रेजी) ग्रं. २, भा. २ मां 'भारतीय-आर्यमां इतिहासलक्षी भाषाशास्त्रने लगता केटलाक प्रश्नो' (Some Problems of Historical Linguistics in Indo-Aryan) ए मथाळा नीचे प्रसिद्ध करेला मुख्य मुद्दाओना सारने आधारे तैयार करवामां आव्यो छे. आवा प्रयत्नमां स्पष्टता अने सळंगसूत्रता जाळववा माटे अनिवार्य गणीने, उक्त सारमां केटलाक ऊडतो उल्लेख पामेला मुद्दाओनो जरूरजोगो विस्तार अने स्थळे स्थळे वीगतपूर्ति कर्यां छे.]

व्याख्यान त्रीजुं – भारतीय - आर्यनां आख्यातिक अंगो (चालु)

लौकिक बोलीओमां जळवाई रहेतो प्राचीन अंश

"अर्वाचीन भारतीय-आर्यमां देखाता, संस्कृत कोशोमां अपनावायेला के धातुपाठोमां अंगो तरीके नोंधायेला केटलाय प्राकृत शब्दोने माटे संस्कृतमां कां तो बहु दूरदूरना सहजन्य शब्दो मळता होय अथवा तो तेमने मळतुं कंई पण न होय ए हकीकत खूब ज जाणीती होवाथी हवे चर्चाथी पर छे. पण, तपास करतां जणाय छे के आवा प्राकृत शब्दोनी सारी एवी संख्या भारत-युरोपीयनी अ-भारतीय शाखाओमां जाणीनां अंगोमांथी व्युत्पन्न करी शकाय तेम छे. आथी ए देखीतुं छे के पालिसहित प्राकृतना जुदाजुदा भाषाभेदोनो आ दृष्टिए करायेलो अभ्यास भारतविदोने तेम ज भारत-युरोपीयविदोने उपयोगी नीवडशे."[1] ग्रे आ लेख द्वारा अन्वेषणनुं एक हजी घटतुं ध्यान नहि पामेला

---

१ ग्रे : 'पंदर प्राकृत - भारतयुरोपीय व्युत्पत्तिओ' (Fifteen Prākrit Indo-European Etymologies)-जर्नल ऑफ धी अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी. ग्रंथ ६०,१९४०, पा. ३६१.

क्षेत्र तरफ अंगुलिनिर्देश करे छे. साहित्यभाषामां जेमनी निशानी पण न मळती होय तेवा केटलाक प्राचीन भूमिकाना शब्दो लोकभाषामां केटलीक वार जळवाई रह्या होय छे. आ वस्तुने आधारे प्राकृतोनी के अर्वाचीन देशभाषानी 'देश्य' सामग्रीना केटलाक अंशना मूळ माटे **भारत-युरोपीय** भूमिकानी तपास फळप्रद नीवडवानी घणी शक्यता छे. पण आ प्रकारना अन्वेषणनुं भयस्थान नजर बहार न रहेवुं जोईए. कोई वार अमुक शब्द **भारतवर्षनी** भूमि पर ज सधायेला विकासने आधारे समजावी शकाय तेम होय तो पण ते **भारत-युरोपीय** भूमिकाना जळवाई रहेला अवशेष तरीके खपी जवा संभव छे, केम के ए बे क्षेत्रने विभक्त करती स्पष्ट मरजाद-रेख निश्चित थई नथी. **पालि वीसति** ना **वी**०नो दीर्घ ईकार **जुल ब्लोक** (Jules Bloch) अने **हेल्मर स्मिथ** (Helmer Smith) ना मते **भारत-युरोपीय** *wīनो अवशेष छे, अने एना आधारमां तेओ **लेटिन** viginti टांके छे. पण **टर्नर** माने छे के आ बाबतमां **भारतीय** भूमिकाथी आगळ जवानी जरूर नथी. कारण, सारूप्यने लीधे निष्पन्न थयेला बेवडा उष्मव्यंजनोना ऋजुभाव साथे तेमनी पूर्वेना स्वरने दीर्घ करवानुं ध्वनिवलण **पालिमां** सुपरिचित छे. तेने आधारे सं. **सिंह**० > पा. **सीह**०नी जेम, सं. **विंशति** > पा. **वीसति** सरळताथी साधी शकाय. वळी, बीजदशामां रहेलां नूतन ध्वनिवलणोने बीजा वाचको (vocables) करतां संख्यावाचको वधारे जलदीथी वश थाय छे ए हकीकत पण आमां कारणभूत छे.

आख्यात विस्तार

ग्रेए चर्चेला शब्दोमांथी **अट्ट**०, **कट्ट**० वगेरे आख्यातविस्तारनी प्रक्रियानां उदाहरणो छे. आमां मूळ धातुनो साधको (formatives) वडे विस्तार थये नवां अंगो तैयार थाय छे. आवा बीजा आख्यातिक साधको (formatives) के निश्चायको (determinatives) छे. उ. त. **√भस्**० + **आ**० = **√प्सा**०, **√द्रा**० + ०**उ**० = **√द्रु**०, **√सृ**० + ०**ग्**० = **√सृज्**०, ***√कि**० (**चिकेति**) + ०**त्**० = **√चित्**०, (**चेतते**), **√स्था**० + ०**प्**० = **√स्थाप्**० **√भा**० + ०**स्**० = **√भास्**० वगेरे. आ आख्यातिक निश्चायकोने लीधे मूळ **भारत-युरोपीय** आख्यातिक अंगोनी संख्या घणी ज **वृद्धि** पामेली छे.

धात्वादेश

अंगसंख्यानी वृद्धि करनार बीजी घटना ते धात्वादेश (verbal Substitution) छे. विशिष्ट कारणोने लीधे कोई धातुनां वपराशलुप्त थयेलां अमुक रूपो माटे ते धातुना निकटना समानार्थ बीजा धातुनां तेटलां रूपो वपरावा लागे छे. एटले के ते धातुनां एटलां रूपो पूरतो बीजो धातु आदेश तरीके काम करे छे. **ब्रवीति** ने **उवाच**, **आह** अने **अवोचत्**, **पश्यति** ने **ददर्श**, **अस्ति** ने **जघास**, **हन्ति** ने **अवधीत्** वगेरेमां आ प्रत्यक्ष छे.

आख्यातसमास

त्रीजी घटना ते आख्यातसमास (Verbal composition) छे. अमुक आख्यातिक अंगना देहनो बीजा अंशो साथेना समासद्वारा उपचय थये नवां अंगो घडाय छे. आ तरफ विद्वानोनुं पूरतुं ध्यान हजी नथी खेंचायुं. आना जुदा जुदा प्रकारोनो उल्लेख करीए तो (१) पर्यायोक्त (Periphrastic) परोक्ष भूत अने भविष्यकाळ: **एधांबभूव**, **आसांचकार**, **गन्तास्मि** वगेरे; (२) च्विरूपो: **गोष्ठीकरोति**, **गङ्गीभवति** वगेरे; (३) संयुक्त अंगो: √**गवेष्**० <√**गविष्**० (=**गो**०+√**इष्**०)–**गवेषण**०, **गविष्टि**०; आमां आख्यातिक अंग कोई शब्द साथे संयुक्त दशामां रहेलुं होवा छतां रूप अने अर्थनी दृष्टिए ते एक शब्द तरीके ज गणाय छे. √**पलाय्**०मां उपसर्गयुक्त अंग छे. केटलांक उदाहरणोमां आवी एकरूपतानी मात्रा ओछी वधती होय छे; जेम के **आत्मसात्करोति**, **परमप्रसादयामास**. (४) प्रत्ययमिश्रित अंगो: केटलीक बाबतमां धातुमां भळी सधायेला कृत्-शब्दो परथी नवुं आख्यातिक अंग घडाय छे. √ **मार्ग्**० (<**मार्ग**०) ने √ **मृग्**० (<**मृग**०) बंने मूळ √**मृज्**० परथी, √**वेन्**० (< **वेन्**० : √**वन्**० परथी), √**येष्**० (सरखावो √**यस्**०)–ते ज प्रमाणे √**दा**० : √**दास्**०, √**हन्**०: √**हिंस्**०, √**शास्**० : √**शिक्ष्**०; केटलांक उदाहरणमां कर्मणि भूत-कृदन्त अंगनुं काम करे छे. पालि **बुद्धेयम्**, **छिन्नामि** (दिव्यावदान), **अपच्छिन्नति** (कौशिकसूत्र).

प्रकीर्ण

केटलांकमां मूळ एक अंगमांथी ध्वनिवलणोनी असर नीचे नवुं अंग ऊपजे छे. √**चृत्**० : √**कृत्**०, √ **जृ**० : √**गृ**०, √ **मद्**० : √**मन्द्**०, √ **स्तृ**० : √**तृ**०, √**ध्या**० √**धि**० वगेरे.

प्राकृत परथी अतिसंस्कार पछी सधायेलां अंगो पण ध्यानमां राखवानां छे : प्रा. √**हम्म्**० परथी सं. √**हन्**० (**गतौ**); प्रा० √**वज्झा**० (<**वि**० + **क्षै**०) परथी **विध्यै**० – **विध्ययिति**० "बुझावेलुं" वगेरे.

आ उपरान्त व्याकरणकारोए नोंघेलां **पचतकि** (= **पचति**) **यामकि** (= **यामि** – **कौ**षीतकी **ब्रा**ह्मण, २७,१) वगेरे.

मध्य भारतीय – आर्य अंगो : पालि

पालि धातुपाठोमां कुल आशरे १८०० अंगो आपेलां छे. तेमांथी अधथोडेरां उपलब्ध साहित्यमां वास्तविकपणे वपरायेलां छे. **मध्य भा**रतीय-**आर्य** धातुपाठो तपासतां तेमां अंगसंख्यानो वधारो करवामां केटलीक वार ध्वनिप्रक्रियाओ ज कारणरूपे रहेली जोई शकाय. जेम के √**अक्**० : √**अग्**० मां रहेलो घोषभाव. (घोषभाव **पा**लि ध्वनिमीमांसामां लाक्षणिकपणे जाणीतो नथी, एटले आने पाछळथी प्रचलित थयेल ध्वनिवलणनी आरंभदशाना सूचक तरीके लेखी शकाय.)

आख्यातिक अंग उपसर्ग साथे संयुक्त थई एक अंग तरीके प्रचलित थयानां केटलांक उदाहरणो छे : √**अनुरुध्**०, √**आगम्**० वगेरे.

केटलाक चोक्खा नामधातु छे : √ **अंग्**०, √**तिण्**० (<**तृण**०).

गणव्यवस्था **पा**लिमांथी तद्दन अदृश्य नथी थई. पण अविकरणी अंगोना विकरणभावनी (Thematization) प्रक्रिया धीमे धीमे वेग पकडती देखाय छे. सं. **वेत्ति** : पा. **विदति**, सं. **हन्ति** : पा. **हनति** वगेरे. पांचमा गणना धातुओनां नवमा गण प्रमाणे रूप थवा लाग्यां छे, ज्यारे सातमो गण विकरणी बनी √**मुच्**० – √**मुञ्च्**०नी हरोळमां आवी ऊभो रहे छे. आवा आवा फेरफारो थता जाय छे, छतां जूनी व्यवस्था तद्दन लुप्त नथी थई. मुख्यत्वे विकरणभाव तरफ वलण छे.

पदनी बाबतमां **पा**लिमां परस्मै अने आत्मने बन्ने जळवाई रह्यां छे, पण आत्मनेनो अस्त क्यारनोये आरंभाई चूक्यो छे. कोई स्थळे छंदने कारणे तो क्यांक प्राचीनतानो रंग लाववा ते योजायो छे, अने मुख्यत्वे ०**स** (सं. ०**स्व**) ने ०**इत्थ** प्रत्ययोमां ते मर्यादित छे. वर्तमान कृदन्तमां आत्मनेपदी प्रत्ययनो ज खूब प्रचार छे. **पा**लि आगमोना प्राचीन पद्यात्मक भागोमां आत्मनेपद विशेष मळे छे.

उत्कीर्ण प्राकृतो

पालि पछी **मध्य भारतीय-आर्य**नी सौथी प्राचीन अने वधुमां वधु अगत्यनी बोलीओ ते **अशोक**ना शिला-लेखोनी बोलीओ. **पालि**मां देखातां विकासवलणोनुं ज समर्थन आमां पण देखाय छे. लेखोना लखाणनुं प्रमाण अल्प होवाथी कोई दूरगामी निर्णयो दोरवा न पालवे; छतां मुख्य वलणोनुं स्वरूप स्पष्ट करवा माटे ते पूरतुं छे. विकरणभावनी बाबतमां अविकरणी प्रकारनां अंगोमां मात्र संयोजक (copula) तरीके वपराता √**अस्**०नां रूपो सर्वत्र जळवाई रह्यां छे. मोटो भाग पहेला गणना धातुओनो छे. **गि**रनारमां त्रीजामां मात्र √**हु**०ना, छठ्ठामां केटलाकना ने आठमामां √**कृ**०ना जळवायेला अवशेषो जोई शकाय छे. बीजा ने नवमानां केटलांक अंगो विकरणी बन्यां छे, ने बीजी केटलीक गणगरबड पण देखाय छे.

आत्मनेपदनी बाबतमां बीजा लेखोमां तेनो लगभग अभाव होवानुं कही शकाय, मात्र **गि**रनारमां **परिकमते पटिपखते** वगेरे मळी नव रूपो मळे छे. **का**ल्सीमां ०**इत्था**अंती रूपो ज देखाय छे, ज्यारे **धौ**ली ने **जौ**गडमां मात्र आत्मनेपदी वर्तमान कृदन्तो मळे छे.

भूतकृदन्तनी बाबतमां, **पालि**मां जूनां सेट् अंगो परथी सधायेलां तेम ज नवां घडतरनां कृदन्तो साथे साथे मळे छे. **गि**रनार वगेरेना शिला-लेखोमां घणां खरां कृदन्तो मूळे अनिट् अंगोमांथी सधायेलां छे. मूळनो प्रेरकार्थ ०**पू**० प्रत्यय शिला-लेखोमां तो मात्र एक धातुविस्तारकनुं काम करतो जणाय छे. **पालि**मां पण एवां उदाहरणो छे, पण मर्यादित संख्यामां ज. वाक्यसंकलननी बाबतमां पाळथी दृढमूळ बनेली नामिक वाक्यमूलक रचनानो[२] वधतो प्रचार सूचित करता कर्मणि भूतकृदन्तना प्रयोगना दाखला मळी आवे छे.

इसु पूर्वेनी अने पछीनी एक सदीना समयना, **तुर्फ**नमां मळेला, अने अध्यापक **ल्युडर्से** (Lüders) संपादित करेला, ग्रंथखंडोनी प्राकृतमां रड्या खड्या अवशेषो बाद करतां आत्मनेपदनो तद्दन अभाव छे, ज्यारे **ची**नाई **तु**र्कस्तानमां

---

२ आनी चर्चा माटे जुओ : **भाण्डारकर** : **विल्सन फाइलोलोजिकल लेक्चर्स**, १९१४. जुल ब्लोक: **भारतीय-आर्य** (L' Indo-Aryen), १९३४, पा. ३०३-५ सामान्य भाषाशास्त्रनी दृष्टिए : **वांद्र्ये** (Vendryes) : **भाषा** (Language), अंग्रेजी भाषान्तर १९३१, पा. १२५

मळेला त्रीजी सदीना **खरोष्ठी** लेखोनी भाषामां **वेनति** वगेरे, कर्मणिमां पण **वुचति** (= **उच्यते**),ने एकाद **वन्तदे** (= **वन्दते**) उपर्युक्त वलणोना वध्ये जता जोरना द्योतक छे.

साहित्यकीय प्राकृतो

समय ने प्रदेशनुं वैविध्य धरावती साहित्यकीय प्राकृतोमां पण जे उत्कीर्ण प्राकृतोमां प्रत्यक्ष थयेला छे ते ज विकासव्यापारोनी वधारे ऊंडी बनेली छाप जोई शकाय छे. गणभेद लुप्त थये विकरणी प्रकार सर्वस्वामी बनी रह्यो छे. विकास-रेखाओ हवे स्पष्टतर बनी छे. नामतंत्र करतां आख्याततंत्रमां वधारे जबरुं परिवर्तन थयेलुं जोई शकाय छे. आख्यातिक अंगो अनेक प्रकारभेदे घडायेलां जोई शकाय छे : (१) **प्राचीन भारतीय-आर्यनां** वास्तविकपणे मळतां प्रातिपदिकोमांथी – **करइ** < ***करति, करन्ति; उक्खिणइ** < **उद्** + ***क्षिणति (पीशल** माने छे तेम **खनति**मांथी नहि), **गमति** ( ); (२) **प्राचीन भार-तीय-आर्यनां** पुनर्घटित (reconstructed) प्रातिपदिकोमांथी – **किसइ** < ***कृशति** (**कृश्यति**ने बदले). (आ बन्ने प्रकारनां साहित्यभाषामांथी लुप्त थयेलां रूप घणी वार लोकभाषामां जळवाई रहेतां होवानां उदाहरण पूरां पाडे छे), (३) **प्राचीन भारतीय-आर्य** कर्मणि भूतकृदन्त परथी – **पिणद्धइ** < (**अ**) **पिनद्ध०, संथडइ** < **संस्तृत०** (४) चोथा गणनां के कर्मणि प्रातिपदिकोमांथी – **चलइ** के **चल्लइ** < **चलति, चल्यते** के ***चल्यति, अट्टइ** < ***अट्यति.**

आ उपरांत अवनवा आख्यातनिश्चायको (Verbal determinatives) ना उगमथी नवां विस्तारित अंगो ऊभां थतां जाय छे.

(१) **०र०** – **कप्पर०** "चीरा करवा" : **कप्प०** 'कापवुं' **चच्चार०** "ठपको देवो" : **चच्चा** "चर्चा."

(२) **०ड०** – **गुम्मड०** : **गुम्म०** "बेभान थवुं, गूंचवावुं".

(३) **०क०, ०उक०** – √**था०** (< √**स्था०**) : √**थक०** **घुरुक०** : सरखावो √**घुरघुर्०** "घूरकवुं, घुरघुर अवाज करवो"

(४) **०अल०, ०इल०, ०उल०** – **गुंजल्ल०, गुंजेल्ल०, गुंजोल्ल** **गुंज०** गूंजवुं.

कोई कोई उदाहरणमां वाक्यखंड परथी पण अंग घडायेलुं छे : √मंभीस्० (मब्भीसडी हेमचंद्र, ४–४२२–२२)–सरखावो सं. मा भैषीः

आ सौ उपरांत प्राकृत धात्वादेशोनी निराळी गणतरी करवी पडशे. ग्रीयर्सने (Grierson) तेमनुं प्रतिपादन एक सरस निबन्ध (monograph)[१]मां कर्युं छे. तेमनुं मूळ कां तो व्युत्पत्तिने आधारे प्राचीन भारतीय-आर्यमां जोई शकाय (जेम के विढवइ, विढविज्जइ, विढत्त०, विढप्प०, ए सौ ग्रीयर्सन प्रमाणे वि० + उद्० + √पद्० परथी पण खरी रीते पीशल प्रमाणे वि० + √धा० परथी – विधा० + ०प्० + ०य्० के ०त्० = विढप्प के पिढत्त, वगेरे अवतारी शकाय) अथवा तो मध्य भारतीय-आर्यमां मळी गयेला देशी वाचको (Vocable) परथी सधायेला होवानुं देखाडी शकाय. आ देशी अंशनी स्वरूप-ओळखमां द्राविडी अने अवाच्य-एशियाई Austro-Asiatic भाषापरिवारो तरफथी सारी सहाय मळे. उक्त त्रणेय क्षेत्रमां समान धोरणे विद्वानो व्यवस्थित संशोधनकार्य हाथ धरे तो ए झझूमना प्रश्नो झडपी उकेल आववानी आशा फळीभूत थाय.

*

व्याख्यान चोथुं – भारतीय-आर्यमां नामिक अंगोनुं घडतर

पूर्वकार्य

भारतीय-आर्य भाषा-अध्ययननो आ प्रदेश सौथी ओछो खेडायो छे. लिंड्नर (Lindner) ने वाकर्नागल-डेल्ब्रुक (Wackernagel-Delbrück)-ना उच्च कोटिना निबन्धो (monographs) के ह्वीट्नी (Whitney), मेक्डोनल (Macdonell), ने रेनु (Renow) ना व्याकरणग्रन्थोमां आपेली यादीओ एटलुं ज आ विषयमां मूडी तरीके छे. प्राचीन भारतीय-आर्य पूरतुं तो आटलुंये स्वरूपवर्णनात्मक के बहुमां ऐतिहासिक रीतनुं प्रतिपादन मळे छे, पण मध्य भारतीय-आर्यमां पीशल (Pischel) अने गायगरे (Geiger) आ बाबत पर नजीवुं ज लक्ष्य आप्युं छे. अर्वाचीन भारतीय-आर्यमां बंगाळी माटे

---

१ Prakrit Dhātvādes'as according to the Western and Eastern School of Prakrit Grammarians : एशियाटिक सोसायटी, बंगाळा, १९२४.

चट्टोपाध्याये केटलुंक कार्य कर्युं छे; पण नामिक अंगोना साधको (Formatives) नो समग्र भारतीय-आर्यने स्पर्शतो तुलनात्मक अभ्यास हजी कर्तव्य-कोटिमां ज छे. प्रस्तुत व्याख्यान आ दिशामां टूंका प्रवेशक तरीके गणवानुं छे. एटले एथी संशोधननी शक्यताओ खलास नथी थई जती.

कृत् अने तद्धित प्रत्ययो

संस्कृतमां बे प्रकारना नामसाधक प्रत्ययोनी व्यवस्था छे: प्राथमिक के कृत् प्रत्ययो ने द्वैतीयिक के तद्धित प्रत्ययो. कृत् प्रत्ययो क्रियापदना अर्थनी साथे निकटपणे संकळायेला छे, ज्यारे तद्धितो अमूर्त-अर्थवाची शब्दोनी सिद्धि करे छे. पहेला प्रकारना आशरे ७४ प्रत्ययो छे. उदाहरण तरीके –

शून्य प्रत्यय : **द्युत्०** < √**द्युत्०**, **चिकित्०** < √**कित्०**, वगेरे;
०**अ**० : **अय०** < √**इ०**, **प्रिय०** < √**प्री०**, वगेरे;
०**अत**० : **भरत०** < √**भृ०**, वगेरे.

बीजा प्रकारना आशरे ४९ छे. तेमांथी नमूना तरीके :–

०**अ**० : **मारुत०** < **मरुत्०**, वगेरे
परुष० < **परुस्**, वगेरे
स्त्रीलिंगना **०आ०** अने **०ई०**.

आमां केटलाक प्रत्ययो मिश्र स्वरूपना पण होय. **०देश्य०** < **देश०** + **०य०** (के √**दिश्०** परथी?), **०त्रिय०** < **०तृ०** + **०इय०** के एकात्मक?; **०आक०** (**जल्पाक०**, **कुट्टाक०**, **लुण्टाक०**, **स्मयाक०**, **हेवाक०** वगेरेमांनो) पण मिश्र जणाय छे.

प्रत्ययोना फळद्रूपना (Productivity) नी दृष्टिए बे वर्ग पाडी शकाय: जेमनी फळद्रूपता जीवती-जागती होय तेवाओ ने जे आगली भूमिकामांथी वारसा तरीके ऊतरी आवी हाल मृतप्राय अवशेष बनी रह्या होय तेवा.

आ फळद्रूपता (Productivity) मां स्वाभाविक रीते ज फरक छे; अने भाषाविकासने पगले पगले प्रत्ययोनी फळद्रूपतामां पण भरती-ओट थया करे छे. केटलाक प्रत्ययोनी साधकशक्ति "शिष्टकाल" (Classical period) मां लोपाई छे, तो केटलाक प्रत्ययो ते काळमां ज प्रथम देखा दे छे. कारक नामो साधता **०मन्०**नी फळद्रूपता शिष्ट संस्कृतमां नष्ट थई छे. **०वर०** (वैदिक **ईश्वर०**),

घस्वर०नुं अन्यरूप ०**मर**० (देखो **सृमर**०, **घस्मर**०, **अमर**०) शिष्ट संस्कृतमां ज छे.

वैदिक काळमां संख्याबंध ०**अस्**०अंती विशेषणो मळे छे, संस्कृतमां मात्र **वेधस्** छे. ०**तु**० अने ०**त्वन**० प्रत्ययान्तोनुं पण एम ज थयुं छे. आमांथी ०**त्वन**०ने बदले संस्कृतमां ०**त्व**०ज देखाय छे, ज्यारे प्राकृतोमां ०**त्वन**० वधारे फळद्रूप थयो छे. ०**आलु**०ने पीशले (Pischel) मध्य भारतीय-आर्य गण्यो छे, पण उत्तरकालीन संस्कृतमां **कृपालु**०, **स्पृहयालु**०, **घृणालु**०नो वपराश छे. एकनी एक भूमिकामां पण प्रत्ययदीठ वधती ओछी फळद्रूपता होय छे. ०**उ**० शिष्ट अने पुराणकाळ पूरतो मर्यादित लागे छे, पण तेनुं विस्तारित स्वरूप ०**उरु**० ब्राह्मण ग्रंथोमां ज प्रचलित छे. दरेक प्रत्ययना ऊगम अने प्रचार पाछळ आवो इतिहास होय छे.

प्राकृतमां प्रत्ययो

मध्य भारतीय-आर्य भूमिकामां ध्वनिमीमांसानुं स्वरूप ऋजु बनतां, प्राचीन भारतीय-आर्यना केटलाये प्रत्ययोनुं स्वत्व लुप्त थयुं. ०**अक**० > ०**अअ**०, ०**थ**० > ०**ह**०, वगेरे फेरफारोए प्रत्ययोनो सारो एवो रूपपलटो करी नाख्यो, अने तेमां मूळनां व्यंजनान्त अंगो साथे तेमना भळी जवाथी वधारे गूंचवाडो थयो. समग्र रीते जोतां प्रत्ययोनी संख्यामां घट आवी. प्राचीन भारतीय-आर्य अने पालि-प्राकृतमां एक ज अंगमांथी सधायेला शब्दो सरखावतां आ हकीकत प्रतीत थशे. उदाहरण तरीके √**कृ**०मांथी संस्कृतमां ३५ कृदन्तो ने तद्धितान्तो बन्या छे; प्राकृतोनो आंकडो २० नो छे.

नवा प्रत्ययोमां स्वामित्ववाचक ०**अल**० अने तेनां अन्यरूपो, कुत्सादिवाचक के स्वार्थिक ०**ड**०, भाववाचक नामो साधतो ०**त्तण**० (> वैदिक ०**त्वन**०) वगेरे धीमे धीमे वधारे अगत्यनो भाग भजवता जाय छे. अहीं प्राकृत अंगोनी प्रत्ययोने आत्मसात् करी देहनो विस्तार करवानी लाक्षणिकता पण ध्यानमां लेवा जेवी छे. **चिन्तणा** के **चिन्तणिया** (< **चिन्तन**०) जेवा स्वार्थिक ०**क**०थी विस्तृत बनेला शब्दो कोशनी वृद्धि करवामां सहायक बन्या छे.

अपेक्षित संशोधन

मध्य भारतीय-आर्य भूमिकामां केटला प्रत्ययो फळद्रूप हता—केटला नवा ज हस्तीमां आव्या ए प्रश्ननी तपास थवी जोईए. ते माटे वास्तविकपणे मळता बधां

कृदन्तो ने तद्धितान्तोनी साहित्यकीय टांचणो साथेनी ने प्रत्ययोनी फळद्रूपतानी स्थळ-मर्यादा अने समय-मर्यादाना निर्देश साथेनी यादी, प्रत्ययोनी आंकडाबद्ध गवेषणा अने जरूरी सूचीओ ऐटलुं तैयार करवुं घटे – अने पछी आवो अभ्यास भारतीय-आर्य बधीये भूमिकाने आवरी ले तेटलो विस्तारी शकाय. आ विषय भारतीय-आर्य भाषाशास्त्रमां एक नवो संशोधनप्रदेश खुल्लो करे छे, अने तेमां नवतर विकासनी शक्यताओ पण रहेली छे. अहीं तो मात्र प्रश्ननुं स्वरूप देखाडी दिशासूचन करवा उपरांत कशा वधारे माटे अवकाश नथी. आ प्रकारनुं अन्वेषण स्थळ-काळनी मर्यादाओने पूरेपूरी गणतरीमां लेती इतिहासलक्षी पद्धतिना ज फळ-रूप छे, अने तेथी जेम भारत-युरोपीय क्षेत्रमां ए पद्धतिना स्वीकारथी थयुं छे तेम अहीं पण केटलाय कूट कोयडानो संतोषप्रद उकेल मळशे.

*

व्याख्यान पांचमुं – इतिहासलक्षी भाषाशास्त्रना कोयडा

ऐतिहासिक बळोनो प्रभाव

दरेक भाषामां बने छे तेम भारतीय-आर्यमां थयेलां परिवर्तनो बे प्रकारनां छे : नवां रूपो घडता रहेवानुं भाषानी भीतरमां जे वलण होय छे तेने अंगेनां अने नवा संस्कृति-संपर्कोने लीधेनी बाह्य असरथी उद्भवेलां. त्रण सहस्राब्दीथीए वधारे काळथी भारतीय-आर्य भाषाप्रवाहने द्राविडी अने अवाच्य-एशियाई (Austro-Asiatic) भाषापरिवारो द्वारा व्यक्त थता विविधरंगी संस्कृति-प्रवाहोनो समागम थयेलो छे. उपरांत तेने इरानी वगेरे बीजी भाषाओनी पण थोडी थोडी छांट लागी छे. परिणामे ध्वनितंत्रमां ने शब्दभंडोळमां – अने अल्पांशे रूपतंत्रमांये – दूरगामी फेरफारो थवानुं शक्य बन्युं छे. एटले ऐतिहासिक घटना-ओना वहनथी भारतीय-आर्यना विकासव्यापारने छूटो पाडी शकाय तेम नथी. आ ऐतिहासिक बंध कांई ओछो दृढ होय तो तेने दृढतर करवा माटे भारतीय संस्कृतिनुं परसंस्कृतिनां पथ्य लागतां तत्त्वोने आत्मसात् करी लेवानुं ऊंडीने आंखे वळगे तेवुं लक्षण पूरतुं छे.

भारतीय-आर्य शब्दभंडोळ तपासतां तेमां विविध स्तरो सहज ज मळी आवे. तेमां रोजना वपराशनी केटलीक चीजोने लगता, वनस्पतिने लगता अने बीजा केटलाक छूटा छवाया शब्दो द्राविडी के अवाच्य-एशियाई (Austro-Asiatic)

मूळना होवानुं जणाय छे.[४] अने संस्कृतिनी एकरूपता होवाथी अने संस्कृत भाषा तेनी वाहक होवाथी तेमां परभाषा के लोकभाषामांथी ऋण तरीके नवी सामग्री अपनावी लेवानुं सतत चालु रह्युं छे.

मूर्धन्योनो उद्भव

परभाषानी असरनी वातमां, **भारतीय-आर्य**ना ध्वनितंत्रमां थयेला एक लाक्षणिक फेरफारनी चर्चा द्योतक बने तेवी छे. **भारतीय-आर्य**मां छे तेवा मूर्धन्य ध्वनिओ ते समयनी बीजी कोई पण सहजन्य **भारत-युरोपीय** भाषाओमां न हता. पण **भारतीय-आर्य**ना पडोशी **द्राविडी** भाषापरिवार अने **मुण्डा** वगेरे भाषाओमां ते ध्वनिओ अस्तित्व धरावता हता. आथी सामान्य रीते मनाय छे के **भारतीय-आर्ये** ए ध्वनिओ पडोशी भाषामांथी अपनावी लीधा होय. हवे, एक वस्तु तो स्पष्ट छे के मूर्धन्य तत्त्वनो भाषामां एकाएक प्रवेश थयो एवुं नथी. शरूआतमां मूर्धन्यो धीमे धीमे अने अमुक चोक्कस शरतोने अनुसरीने ज दंत्यो के ताल्व्योमांथी विकस्या छे. आ हकीकत पुरवार करे छे के आ परिवर्तन साधवामां भाषानी भीतरमां कार्य करी रहेला विकासव्यापारोनुं बळ परभाषानी असर करतां वधारे जवाबदार हतुं; अने वास्तविक रीते जोतां जणाय के **द्राविडी**आदिना संपर्कनी पहेलां ज आ प्रकारनुं परिवर्तक बळ काम करी रह्युं हतुं. एटले **द्राविडी** के **मुण्डा** असरनो फाळो गौण हतो.

द्राविडी-मुंडा असर

आ संबंधमां **जुल ब्लोके** सूचवेली केटलीक **द्राविडी** असरवाळी व्युत्पत्तिओ तपासीए. **ब्लोक प्राचीन भारतीय-आर्य** √**तड्**० (तेम ज **तण्डुल**० "छडेला चोखा"ना आदि अंश) ने तथा √**अट्**०ने अनुक्रमे **द्राविडी तट्टु** "टकोरा मारवा", अने **आटु** साथे सांकळे छे. पण ए शब्दोने शुद्ध **भारतीय-आर्य** सिद्धि तरीके समजाववा ए वधारे ठीक छे. √**तृद्**० : √**तड्**० ए संबंध—आवा प्रकारना मूर्धन्यभावनां **विकृत : विकट**, वगेरे आठ उदाहरणो ऋग्वेदमां ज मळतां होवाथी—स्वाभाविक लागे छे. √**अट्**० उपरांत √**अत्**०

---

४ जुओ : **सिल्वाँ लेवी वगेरे कृत : "हिंदमां प्राग्-आर्य अने प्राग्-द्राविडी तत्त्वो"** (Pre-Aryan and Pre-Dravidian in India)–अंग्रेजी भाषान्तरकार : **प्रबोधचंद्र बागची, कलकत्ता,** १९२९.

(**अतिथि०**) ने *√**इट्०**ने पण साथे ज समजाववा पडशे. अने ए सौनो संतोषप्रद उकेल मूळ धातु तरीके **भारतीय-आर्य** *√**ऋत्०** (= < **ऋ०** + निश्चायक **०त्०**) स्वीकारवाथी ज आवी शके. मूर्धन्यभाव न थतां √**अत्०**, तेवी प्रक्रिया नीचे √**अट्०** अने बीजी प्रक्रियाथी *√**इट्०** (सरखावो **शिथिर०** < ***श्रृथिर०**) निष्पन्न थाय. एटले ए सौने **मध्य भारतीय-आर्य** असर नीचे सधायेला अने प्रतिघडतर तरीके पाछा स्वीकारायेला गणवा जोईए. अने **ब्लोक** एटलुं तो स्वीकारे छे ज के अनेक उदाहरणोमां मूर्धन्यभावनी उपपत्ति बहारनी असरनो आधार लीधा विना आपी शकाय तेवी स्वयंप्रतीत छे. उपला बे शब्दोनी जेम ज **ब्लोके** सूचवेला √**मण्ड्०**ना **द्राविडी माळिगे, माडु** साथेना संबंधने बदले **प्राचीन भारतीय-आर्य** √**मृद्** *√**मृन्द्०** ए धातुमांथी साधवो वधारे उचित छे. आ अंगमांथी ज √**मृड्०** 'कृपाळु थवुं', √**मृद्०** 'घसवुं, मांजवुं' तेम ज √**मण्ड्०** 'शणगारवुं' ने √**मन्द्०** 'मुदित करवुं' ऊतरी आव्या छे.

एटले मूर्धन्यभावनुं मूळ दरेक वेळा **द्राविडी** के **मुण्डा** असरमां खोळवा बेसवानी जरूर नथी. **मध्य भारतीय-आर्य**मां प्रवर्तेला सामान्य ध्वनिवलणनी असरे पण ठीक ठीक काम कर्युं छे ए हकीकत पहेलेथी ज लक्ष्यमां लेवानी छे.

उपरना दाखला परथी एक अगत्यनी वात ए पण फलित थाय छे के व्युत्पत्ति-विचारमां छूटो एकलवायो शब्द लेवो ए ठीक नथी. अर्थथी परस्पर संकळायेलो एक आखो शब्दसमुदाय परभाषाना तेवा अर्थना द्योतक बीजा शब्दसमुदाय साथे सरखावीने ज ते शब्दो एक भाषामांथी बीजी भाषामां अपनावाया होवानुं चोकसपणे कही शकाय. दाखला तरीके अमुक अर्थसंबंधे संकळायेला दस शब्दोना समूहमांथी आठेक शब्दो एक भाषाए बीजी भाषामांथी लीधा होवानुं पुरवार थाय तो बाकीना शब्दो पण ते प्रकारना होवानी संभावनाने नोतरे ज. अने भाषानी हकीकतो पर सांस्कृतिक घटनाओनो निर्णय आधार राखतो होवाथी मूळ भाषा अने ऋण लेनार भाषानो निर्णय पूरती चोकसाईथी थवो जोईए. सं. **इष्टका** 'ईंट' ने माटे **द्राविडी** मूळ सूचवायुं छे. आ जो साबित थाय तो ईंटाळ चणतरनी कळा मूळे आर्येतर लोकोनी होवानुं स्पष्ट थाय.

जेणे **भारतीय-आर्य** अने **द्राविडी-मुण्डा** भाषासमूहोनो जातपरिचय न मेळव्यो होय तेवा संशोधकने अन्वेषणना आ क्षेत्रमां रहेलां भयस्थानो नजर सामे

राखवानी जरूर छे, कारण द्राविडी-मुण्डा भाषाओ अभ्यासनी अधकचरी भूमिका सुधी ज पहोंचेली होई, तेमना संबंधीनुं शास्त्रीय ज्ञान हजी सुलभ नथी बन्युं. एवी व्युत्पत्तिचर्चामां मुख्यत्वे त्रण मुद्दाओ मार्गदर्शक तरीके रहेवा जोईए: (१) चर्चाप्राप्त वाचको (Vocables) आर्येतर लक्षणो धरावे छे ते सुप्रतीत होवुं जोईए. नहि तो आर्य सामग्री आर्येतरमां खपी जवानुं बनशे. प्रा. √बोल्ल्०नो द्राविडी संबंध सूचवायो छे, पण सं. ब्रू०नो साधकप्रत्यय ०ल्ल्० द्वारा विस्तार थतां सरळताथी √बोल्ल्० आवी शके. (२) सहजन्य (cognate) तरीके दर्शावाता द्राविडी के मुण्डा शब्दो मात्र ऊडतां-अछडतां उदाहरणो नहि पण प्रामाणिकपणे द्राविडी के मुण्डा अंशो होवा जोईए. नहि तो व्युत्पत्तिओ खाली तर्कबाजीनो विलास बनी, तेमनी श्रद्धेयता खोशे. (३) द्राविडी ने मुण्डामां स्वीकारायेला भारतीय-आर्य ऋण शब्दोना स्वरूपनो पण अभ्यास जोईए. द्राविडी संस्कृति विकासनी ऊंची भूमिकाए पहोंची हती तेथी तेमांथी केटलीक संज्ञाओ अपनावाई होय ए देखीतुं छे. पण ते भाषाओए पण भारतीय-आर्यमांथी केटलाये शब्दो लीधा छे. आ दृष्टिए ए भाषाओनुं शास्त्रीय धोरणे तैयार करवामां आवेलुं ऐतिहासिक व्याकरण ए एक प्राथमिक जरूरियात छे. आ उपरांत तीबत्ती-ब्रह्मी परिवारनी भाषाओ पण साव गणतरी बहार न रहेवी जोईए. दाखला तरीके स्रोतानी हाथप्रतोमां आ भाषापरिवारमांथी ज केटलाक शब्दो लेवायेला छे.

ऐतिहासिक दृष्टिनी अगत्य

पहेला व्याख्यानमां जेनुं लक्षण बांधवामां आव्युं छे ते ऐतिहासिक भाषाशास्त्र पर पूरतुं ध्यान न देवामां आवे तो बीजी बधी रीते साधनसज्ज होय तेवा अभ्यासीने माटे पण विमार्गे चढी जवानो घणो संभव छे. पाउल टीमए (Paul Thieme) 'भारतीय शब्दो ने रिवाजो' (Indische Wörter and Sitte) ए लेखमां, इतिहासाभासी पद्धतिए, अत्यारसुधी द्राविडी मूळवाळा मनाता केटलाक शब्दोनी देखावमां तो प्रतीतिकर लागे तेवी जे भारतीय-आर्य व्युत्पत्तिओ आपी छे, ते तपासतां उपर करेला विधाननी सत्यता दृढीभूत थशे. शार्पेन्टीर (Chorpentier) सं. पूजानो संबंध द्राविडी पूशु, पूसु साथे जोडे छे. पण टीमअ देखाडे छे के तेनुं मूळ भारतीय-आर्य √पृच्०मां छे. अर्थदृष्टिए पूजा: पर्क० एवुं समीकरण बांधी शकाय. अथर्ववेदमां ज आ √पृच्०ना विकरणी

(thematized) अंगवाळुं **पृच्छति** मळे छे. आ परथी पर्यायोक्त (periphrastic) †**पृच्छांकृ** ने पछी ***पुच्छाम्**, ***पुञ्झाम्**, ***पुज्जाम् : पूजाम्.** आ सूचन खूब पांडित्यभर्युं ने सूक्ष्मदर्शी छे. छतां **जै**मिनीय उपनिषद्-**ब्राह्मण**मां मळता रूप माटे, अनुनासिकना परवर्ती स्पर्शध्वनिनो घोषभाव (***पुच्छाम् >** ***पुञ्झाम्**), सानुनासिक व्यंजनस्तबकनुं सारूप्य (**पुञ्झाम् > पुज्जाम्**) अने संयोगलोप तथा तज्जन्य पूर्वस्वरनो दीर्घभाव (**पुज्जाम् > पूजाम्**) ए फेरफारो धारणाबहार कही शकाय तेटला वहेला छे; अने घोषभाववाळा फेरफारे तो **अ**शोकना लेखोमां पण हजी देखा नथी दीधी. आम सूचित व्युत्पत्ति स्थळ-काळनी कसोटी पार करी शकती नथी. अहीं कदाच ए वांधो लेवामां आवे के **म**ध्य **भा**रतीय-**आर्य**नी प्राथमिक भूमिकामां ज केटलाक एवा दाखला मळे छे जेमां संयोगलोप अने तज्जन्य पूर्वस्वरदीर्घभाव प्रत्यक्ष छे, तेनुं शुं? पा. **दीघ० < दीर्घ०**, पा. **लाखा < लाक्षा** जेवामां ऋजुभाव आरंभाई गयो होवानुं स्वीकारवुं पडशे. पण आ वांधानो रदियो आपी शकाय तेम छे. उक्त उदाहरणो कां तो खामीभरेली लेखनपद्धतिने अथवा तो विशिष्ट उच्चारण-प्रकारने आभारी होय. **दीर्घ० > दीग्घ** ↗ **दिग्घ** ↘ **दीघ** आवो द्विविध—एकमां स्वरनी मात्रा पूर्ववत् जाळवी राखतो, बीजामां व्यंजनसंयोग जाळवी राखतो—विकासक्रम स्वीकारवाथी समाधान थई शके. अने **अर्वा**चीन **भा**रतीय-**आर्य**मां आने मळता ज वलणनां दर्शन **सिं**धी (मात्रारक्षी) ने **पं**जाबी (संयोगरक्षी) ए भाषाओमां थाय छे. एटले उपर सूचव्यां बे भिन्न रूपो भौगोलिक विस्तारना भेदे समजावी शकाय. आ बाबतमां वधारे श्रद्धेय अने विस्तृत परिणामो संशोधन आगळ वधे त्यारे ज लावी शकाय. एवुं ज आंतरस्वरीय व्यंजनोना लोपनुं छे. डॉ. **चट्टो**पाध्याय आ लोप चार भूमिकाना क्रममां सधायो होवानुं सूचवे छे: अघोष स्पर्श > घोष स्पर्श > घर्ष (spirant) > लोप. पण एके बाबतमां चारेय भूमिकाओ उपलभ्य नथी. मात्र **ख**रोष्ठी लेखोमां ज घर्षध्वनिओ (spirants) मळी आवे छे. श्रद्धेय निर्णय भावी संशोधन पर ज अवलंबे.

टीमअना उक्त लेखमांथी एक बीजो शब्द लईए. **प्राचीन भा**रतीय-**आर्य** **मुण्डते**ने एमां वैदिक **मृञ्जते**नी साथे जोडवामां आव्यो छे. **मृञ्जत**, ***मृञ्जे**, ***मृञ्झे**, ***मृंष्टे** अने पछी **मध्य भारतीय-आर्य** प्रक्रियाओने अनुसरी ***मृंष्टे >**

मुंटे > ***मुण्टे** (***मुण्ठे**) > **मुण्डे** एवो साधनाक्रम बांधी शकाय. समान्तर विकासना उदाहरण तरीके √**पिष्०: पिंष्टे** परथी ऊतरी आवेलुं **पिंड०** टांक्युं छे. पण अनुनासिक पछी आवता अघोष स्पर्शना घोषभावनी प्रक्रिया ए वायव्य प्रदेशनी ज लाक्षणिकता होई, **अ**शोकना लेखोमां पण हजी एनां चिह्नो मळतां नथी, ज्यारे चर्चाप्राप्त रूप **अ**शोक पहेलानुं – **सू**त्रकाळनुं छे. एटले **टी**मअनी व्युत्पत्ति ऐतिहासिक दृष्टिए निराधार बने छे. समान्तर उदाहरण तरीके आपेलो **पिण्ड०** बीजी रीते वधारे औचित्यथी समजावी शकाय :

√**पृ०** + **०ण्०** + भूतकृदन्तनो **०त०** (**०ट०**) = **पृण्ड०** > **पिण्ड०** आमः घोषभाव √**दह्०** + **०त०** = **दग्ध०** वगेरेनी जेम नियमित छे. आवी ज रीते √**तृ०** परथी **तुण्ड०** एटले √**मुण्ड्०**ना मूळ तरीके √**मृद्०** आगळ सूचवायेलुं ***मृन्द्०** वधारे उचित ठरे छे. **टी**मअनी बीजी व्युत्पत्तिओ पण स्थळकाळना संदर्भ प्रत्येनी काळजीनो अभाव सूचवे छे.

इतर प्रश्नो

मध्य **भा**रतीय-**आ**र्यना भाषाभेदोमां **निय** (Niya) प्राकृत केटलीक बाबतमां खास ध्यान खेंचे तेवी छे. तेमां स्पर्शो हजी लुप्त नथी थया. ते कां तो घोषभाव अथवा तो घर्षभाव (spirantization) पाम्या छे अने ए रीते एने वचगाळानो प्राकृतभेद गणी शकाय. तेना रूपतंत्रमां कर्मणि भूतकृदन्तने पुरुषवाचक प्रत्ययो लगाडी (उ. त. √**दा०** परथी **दितेमि, दितेसि** वगेरे) कर्तरि भूतकाळ घडी कढायो छे. आने मळतो विकास **बि**हारी अने **इ**रानीमां थयो छे, पण बीजा एके **म**ध्य **भा**रतीय-**आ**र्य भाषाभेदमां तेनी निशानी जडती नथी. आटली वहेली भूमिकाए आ प्रकारनो विकास केम समजाववो ? सरहद परनी पडोशी भाषाओनी असरनुं आ परिणाम हशे ? ते समयनो इतिहास अने पडोशी भाषाओनां अन्वेषण पछी ज आनो निर्णयात्मक उत्तर मळे.

मध्य अने **अ**र्वाचीन **भा**रतीय-**आ**र्यमां रहेलो **दे**श्य अंशनो अभ्यास करवामां पण स्थळकाळनी मर्यादाओने मान आपवानुं छे. ए हेतुथी तेम ज समग्र **भा**रतीय-**आ**र्यना विकासइतिहासनुं स्वरूप वधारे विशदताथी समजवा माटे हिंदमांना दरेक भाषापरिवारनुं ऐतिहासिक भाषाशास्त्रीय दृष्टिए अध्ययन करवानी तात्कालिक अगत्य उघाडी छे.

*

व्याख्यान छठ्ठुं : पर्यायविज्ञान, अणऊकल्या प्रश्नो अने अपेक्षाओ

पर्यायविज्ञान (Synonymics)

शब्दोना इतिहासमां कयां बळोने वश थईने अमुक वाचको (Vocables) व्यवहारलुप्त थाय छे अने बीजा तेनुं स्थान ले छे, एनी तपास एक अणखेडायेलो प्रदेश रजू करे छे. एकार्थवाची बे संज्ञाओमांथी एक जोर पकडे छे, ने बीजी वधारे प्राचीन धीमे धीमे अदृश्य थाय छे. जेम के सं. **अश्व॰**नुं स्थान पाछळथी **घोटक॰** ले छे, अने अर्वाचीन **भारतीय-आर्य**मां अश्ववाची संज्ञा **घोटक॰** परथी ज ऊतरी आवी छे. एटले दरेक शब्दना व्यवहार अने व्यवहारलोपज्ञान माटे ते ते शब्दना समकालीन तेम ज पूर्व ने उत्तरकालीन एकार्थवाची शब्दोनो अभ्यास जरूरी छे. आ नवी अध्ययनशाखाने पर्यायविज्ञान (Synonymics) नाम आपी शकाय. कोई एक भाषापरिवारनी दरेक भाषामां रहेला एकार्थवाची के पर्यायशब्दोनो अभ्यास करी तेमने ते भाषा पूरता व्युत्पत्तिदर्शक अने तुलनात्मक धोरणे अने रूपोनी कालानुपूर्वी प्रमाणे गोठववा ए पर्यायविज्ञाननो विषय छे. आथी दरेक वाचक (Vocable)ना अमुक अर्थने लगता वपराशप्रदेशनी अने तेना जीवन्त वपराशना समयनी सीमाओ निर्णीत करवामां अगत्यनी सहाय मळशे. आमां अरसपरस अपनावायेला ऋणशब्दोना प्रश्ननो पण केटलोक उकेल आववा संभव छे. अमुक एक अर्थनी वाचक संज्ञाओ बदलाती रहेवानां विविध कारणोमां नवा विचारोनो ऊगम, राजकीय ने सामाजिक परिवर्तनो, संस्कृतिसंपर्को, प्रतिभाशील व्यक्तिओ अने लेखकोनो प्रभाव वगेरे खास गणावी शकाय. आथी आ विषयना परिशीलनमां सांस्कृतिक इतिहासने पृष्ठभूमिने स्थाने राखवो ए अनिवार्य छे.

कोशविद्या (Lexicography)नो ऐतिहासिक पायापर अभ्यास आगळ वधे अने दरेक वाचक (Vocable)ना जूनामां जूना व्यवहारनो समय निश्चित थाय तो पर्यायविज्ञान इतिहास अने समाजशास्त्र माटे पण उपयोगी नीवडे. अवनवी अर्थछायाओ अने भावार्थो खीलववानुं वलण दरेक वाचक (Vocable)नी भीतरमां होय छे. आ अर्थविकासनो अभ्यास के शब्दार्थविज्ञान (Semantics) पर पण पर्यायविज्ञान प्रकाश नाखी शके. वैदिक भाषामां मळतां समानार्थ

अंगोनी आ पद्धतिए तपास करवामां सहायक थई पडे ते हेतुथी ह्वीट्नीना "धातुओ" जेवी जातनी कृतिओनुं नवेसरथी संकलन थवानी जरूर छे.

कर्तव्य कार्यो

भारतीय-आर्य भाषाशास्त्रना प्रदेशमां अपेक्षित कार्योनी वात करतां, **संस्कृत, प्राकृत** वगेरे भाषादीठ ऐतिहासिक लिपिविज्ञान (Historsical Paleaography)ने अवलंबीने **भारतीय-आर्य**ना दरेक भाषाभेदमां रचायेला ग्रंथोनुं शास्त्रीय पद्धतिए संपादन थवानी जरूरियातनो उल्लेख करी शकाय. लिपिविज्ञान ठीकठीक आगळ वध्युं होवा छतां तेनो ऐतिहासिक अभ्यास हजी सुधी हाथ धरायो नथी. ऐतिहासिक लिपिविज्ञानने आधारे अनिर्दिष्ट समयवाळी हाथप्रतोनो समयनिर्णय स्थूळमाने बने तेटली सांकडी मर्यादामां करी शकाय. आथी शब्दोना इतिहास पर पण केटलोक प्रकाश पडी शके. उ. त. **अञ्जीर०** शब्दने सामान्य रीते **भारतीय-आर्य**मां प्रवेशेलो इरानी ऋणशब्द गणवामां आवे छे. पण **महाभारत**नी **नीलकंठी** वाचनामां **वनपर्व**मां आ शब्द वपरायेलो देखाय छे. एटले जो ते मूळमां होय तो तेनी प्राचीनता ते परभाषानो होवा सामे संशय उत्पन्न करे. पण **महाभारत**नुं विवेचकीय संस्करण ए स्थळे **अञ्जीर०**ने बदले मूळपाठ जुदो होवानुं पुरवार करे छे. हाथप्रतोनुं शास्त्रीय संपादन आ विषयमां केटलुं सहायक थई शके ते आ परथी समजी शकाशे. बीजुं, **कालिदास** ने **भवभूति, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नरसी महेता** अने **तुलसीदास** जेवा लेखकोनी छूटक छूटक शब्दसूचीओ समजदारीपूर्वक अने शास्त्रीयपणे तैयार थवानी जरूर छे. आथी ते ते युगना ते ते लेखको पर पडेला प्रभावनो तेम ज युग पर पडेला लेखकप्रभावनो अभ्यास थई शके. पछीथी आ छूटक सूचीओ परथी युगेयुगना शब्दकोश रची शकाय. आ कोशो मात्र अभिधानसंग्रहो न बनवा जोईए. भाषाकीय अभ्यासमां शीघ्रताथी उपयोगमां लई शकाय तेवी रीते तेमनुं व्यवस्थित संकलन थवुं जोईए. उत्कीर्ण लेखोमां आवता संस्कृत, प्राकृत वगेरेनो अभ्यास अने शास्त्रीय कोश उपर्युक्त युगकोशोनी संज्ञाओने तेमनो स्थळकाळसंदर्भ पूरो पाडशे.

भारतीय-आर्यनी दरेक शाखा माटे ऊलट-सूचीओ (Reverse-indexes) विशेष नामोनो कोश, भौगोलिक कोश, वनस्पति अने पशुसृष्टिने लगती संज्ञाओनो समावेश करतो पारिभाषिक कोश अने कळाहुन्नरनी संज्ञाओनो कोश ए

बीजी जरूरियातो छे. जीवन्त भाषाओना अभ्यासनी बाबतमां, जुदी जुदी बोलीओनी ध्वनियंत्र द्वारा नोंध लेवावी जरूरी छे. केम के, आर्थिक भींस, सामुदायिक केळवणी, स्थळांतर वगेरे आधुनिक संस्कृतिनी घटनाओना प्रभावथी केटलाक बोलीभेदो झडपथी नामशेष थता जाय छे. आमां वय, लिंग, वर्ग ने प्रदेशने अनुसरीने भाषासामग्रीमां पडतो फरक, दरेक ध्वनिस (phoneme) अने तेनो अन्य ध्वनिस (phoneme) साथेनो सूक्ष्म भेद तेम ज बोलीभेदोनी प्रादेशिक वहेंचणी ए बधुंय नोंधावुं घटे. आ रीते घणुं घणुं थवुं हजी बाकी छे. ने एक वात तो स्पष्ट छे के साचा संशोधकने ज्ञानना सीमाडाओ विस्तारनारां नवां संशोधनक्षेत्रोनी खामी नथी पडती. पण एकल व्यक्तिथी थवुं जे अशक्य के खूब दुर्घट होय ते संस्थाओ माथे ले. एटले उपर सूचवेला कर्तव्यभारने हळवो करवामां हिंदनी युनिवर्सीटीओ अने भारतीय भाषा परिषद् (Linguistic Society of India) जेवी संस्थाओए हवे प्रवृत्त थवुं घटे. निश्चय होय तो केळवायेला कार्यकरो अने नाणांना अभावनी मुश्केली पण टाळी शकाय. भारतीय भाषा परिषदे (Linguistic Society of India) अत्यार सुधीमां भारतीय भाषाशास्त्रनी केटलीक नोंधपात्र सेवा करी छे. थोडाक समय पहेलां ज मद्रास युनिवर्सिटीए ध्वनिशास्त्रनो विभाग खोल्यो छे. त्यांथी चारपांच वरसमां सारा अभ्यासीओ तैयार थशे.

भाषाकीय अभ्यास प्रत्येनी उपेक्षा

व्यक्तिगत लेखकोए तैयार करेली भाषाकीय अध्ययनोने लगती कृतिओ प्रकाशको प्रसिद्धि माटे हाथ धरता नथी. गवर्नमेन्ट संस्कृत ॲन्ड प्राकृत सीरीझ पण बहु काममां नथी आवती. एटले युनिवर्सिटीओए ज आवा ग्रंथोनुं प्रकाशन करवानुं स्वीकारवुं जोईए. भाषाकीय अभ्यासना प्रदेशमां कार्यप्रवृत्ति मंद रहेनी होवानुं एक कारण ए छे के आ विषयमां ममजपूर्वक रस लेनार बहु ओछा छे. टर्नर वगेरे पश्चिमना विद्वानोना कार्यथी आपणी आंख ऊघडवी जोईए. आ विषयमां आपणे शरमथी नीचुं जोवुं पडे तेटला पाछळ पडी गया छीए. त्रीशेक वरस पहेलां एक प्राकृत अने एक संस्कृत शब्दकोशनुं शास्त्रीय धोरणे संकलन करवानी योजना विचाराई रही हती त्यारे तेमना संपादक तरीके एक इटालीय अने एक फ्रेंच विद्वाननुं नाम सूचवायुं हतुं. आपणो भूतकाळनो भव्य विद्यावारसो जोतां आ घणुं ज खेदजनक लागे छे.

छेवटमां मुंबाई युनिवर्सिटीए आ व्याख्यानमाळा योजी छे छतां तेना अस्तित्वना साठ वरसना गाळा दरमियान तेणे भाषाशास्त्रीय महत्त्वनुं बहु ओछुं प्रसिद्ध कर्युं छे. जे युनिवर्सिटी भाषाकीय अभ्यासनी अगत्य पिछाणवामां सौथी पहेली हती तेने माटे आ सूचन करवुं खूब ऊचित ज गणाशे के तामिळकोश माटे मद्रास युनिवर्सिटीए जे कर्युं छे तेने अनुसरी, तेणे डेक्कन कॉलेज रीसर्च इन्स्टिट्यूटने व्यवस्थाकेन्द्र तरीके राखीने, बीजी भाण्डारकर ओरियन्टल रीसर्च इन्स्टिट्यूट (पूना), भारतीय विद्याभवन (मुंबाई), गुजरात वर्नाक्युलर रीसर्च सोसायटी (अमदावाद), रामवर्मा रीसर्च इन्स्टिट्यूट (त्रीचुर) वगेरे संशोधनकर्त्री संस्थाओना, लिंग्विस्टिक सोसायटी ऑफ इन्डियाना तेम ज हिंदनी बीजी युनिवर्सिटीओना सहकार साथे एक संस्कृत भाषानो महाकोश ऐतिहासिक अने भाषाशास्त्रीय सिद्धान्तोने अवलंबीने तैयार करवानुं हाथ धरवुं जोईए. अंतमां, उपर सूचवेली कार्यदिशाओ तमारामांथी केटलाकने माटे आकर्षक के प्रेरक बनशे तोपण मारां व्याख्यानोने कृतार्थ बनाववामां एटले अंशे सहायक थशे.

*

कवि छीहलकृत

पंच सहेलीयांरी वात

[एक प्राचीन राजस्थानी विनोदात्मक कविता]

संग्राहक — श्रीयुत साराभाई म. नवाब

*

ईस्वी सनना सोलमा सैकानी शरूआतनी आ पंचसहेली वार्ता राजपूतानामां बहु ज प्रसिद्ध छे. आ वार्तानी बे पानानी एक प्रत मने मारा जयपुरराज्यना प्रवास दरमियान मळी आवेला हस्तलिखित ग्रंथोनी साथे मळी आवी हती; प्रत बहु ज सुंदर अक्षरोथी लखेली होवाथी सुवाच्य छे अने तेनी भाषा राजस्थानी मिश्र गुजराती छे. वळी कविना पोताना ज शब्दोमां आ कृति 'संवत १५७४ ना फागुण सुदी पूर्णिमा'ना दिवसे रचवामां आवी छे.

आ वार्तानो रचयिता छीहल नामनो कवि छे. छीहल नामनो एक अपभ्रंश भाषानो कवि पण पहेलां थई गयो छे, जेनो उल्लेख स्वयंभू छंदना रचयिताए करेलो छे.

प्रतनी शरूआतमां श्रीवीतरागाय नमः लखेलुं छे, तेथी आ प्रतनो लहियो जैन हशे एम साबित थाय छे, परंतु आ कृतिनो रचनार कवि छीहल कोण हशे ते बाबतनी कल्पना करवी मुश्केल छे; एटले ते नक्की करवानुं काम प्राचीन गुजराती भाषाना अभ्यासीओनुं छे.

सोळमा सैकाना लोकजीवन उपर आमांथी कांईक प्रकाश पडशे तेम धारीने में प्रसिद्ध करवानुं योग्य धार्युं छे.

९० । श्रीवीतरागाय नमः ॥ पंच सहेलीयांरी वात ।

दूहा

देल्या नगर सोहामणा, अधिक सुचंगा थान;
नाम चंदेरी परिगटी, सुरनर लोक समान. १

ठांमि ठांमि मंदिर सतपणा, सोने लघीया लेह;
छीहल ताकी उपमा, कहन न आवै छेह. २

ठांमि ठांमि सर पेषीयै, सुभर भरे निवांण;
ठांमि ठांमि कूया वावडी, सोहे फिटक समान. ३

पवन छत्रीस तिहां वसै, अति चतुर है लोक;
गुण विद्या रस आगला, जांणै प्रिमल भोग. ४

तिण ठांमि नारी पेषीयै, रंभाकी उणिहारि;
रूपवंत गुण आगली, अवर नही संसार. ५

पहेर सबेही आभर्ण, अरु दक्षिणरा चीर;
बहुत सहेली साथि मिलि, आई सरवर तीर. ६

चोवा चंदण थाल भर, परिमल पहिर अनंत;
पावै बीडी पांनकी, षेलई सषी वसंत. ७

केई गावै मधुर स्वर, केई देगवै रास;
केई हींडोलै हींचती, इणि विधि करै विलास. ८

तिणमैं पंचसहेलीयां, बैठी बांहां जोड;
नांही गावै नां हसै, नां मुख बोलै बोल. ९

नयणां काजल न दीयां, नां गलि पहिरया हार;
मुषे तंबोल न पाईया, न कछू कीया सिंणगार. १०

रूप केस न वनाईयां, मैलै कपडे तास;
वीलषी वैठी दूमणी, लेवै लेन उसास. ११

सूकै अहर प्रवालीयां, अति कमलाणां मुष;
तब मैं बुझ्या जायकै, कहौ तुम्हारा दुष. १२

दीसै जोवन वालियां, रूप दीपंती देह;
मोसुं कहो विचारकै, जाति तुम्हारी जेह. १३

तब उण साचा अषिया, मीठां बोल अपार;
नांम हमारी जातिका, **छीहल** सुणो विचार. १४

मालण अरु तंबोलणी, तीजी छीपणि नारि;
चोथी जाति कलालणी, वलि पंचमी सोनार. १५

जाति कही हम तुम्हसुं, अब सुणो दुष हमार;
तुम्ह हो सुगुणा आदमी, लहौ विडांणी सार. १६

अथ मालणी दोहा—

पहैली बोली माल्णी, मुझकुं दुष अनंत;
बालो जोवन छांडिकै, चलो दिसावर कंत. १७

निसदिन वहै नीर ज्युं, नयणां नीर प्रनाल;
विरहा माली दुषका, सुभर भरे कियार. १८
कमलवदन कमलाइया, सूकी सब वनराय;
वीज पीयारे कंत विण, वरस बराबर जाय. १९
तन तरवर फल लागीया, दोई नारंगी पूर;
सूकण लागी वेलडी, सींचणहारा दूर. २०
मनवाडी गुण फूलडा, पीव न लेता वास;
अवइ थानक रइण दिन, पीडौ विरह उदास, २१
चंपै केरी पंषडी, गूंथो नवसर हार;
जो हूं पहिरुं पीव विण, तो लागै अंग अंगार. २२
मालणि आपणै दुषका, विवरा कह्या विचार;
अब तूं वेदण आपणी, आषि तंबोलिण नार. २३

अथ बीजी तंबोलणी दोहा –

बीजी कहै तंबोलणी, सुणो चतुर नर वात;
व्रि(विर)हे मारी पीव विण, चोली भींतर गात. २४
हाथ मरोडुं सिर धुणुं, किसकुं करुं पोकार;
नमती रात्र वीललाय करि, तो हम दिसइ तार. २५
हीयडा भींतर पैसके, विरह लगाई आग;
पाणि पियें विण नां बुझै, जलै सलग सलग. २६
तनवाडी विरहा दहै, पीडा दुष असेस;
ए दिन दूभर कीं भरुं, य(ग)या पीव प्रदेस. २७
जवथी वालंभ विछड्या, नाठा सबही सुष;
छीहल मो तन विरहकी, नित ऋति वाल्हा दुष. २८
कह्या तंबोलण आप दुष, अब कहै छीपण एह;
कंत जु चल्तै मुझसुं, विरहै जु कीया जेह. २९

अथ तीजी छीपण बोली दोहा –

तीजी छीपण अषीयां, दुख भर लोयण नीर;
बीजा कोई न जाणही, मेरा जीवकी पीर. ३०

तन कपडा दुष कतरणी, दरजी विरहा एह;
पूरावै तन वैतीयां, सीस सूई कर लेह. ३१

चीणज बंधी एण करि, नान्हा बषीया देह;
तनकै लागी अंगीया, दाझण लागी देह. ३२

विरह रंगाडे अनरंगी, देह मजीठ सुरंग;
कसलीया अरट्टायकै, बाकस कीया अंग. ३३

मोडि मरोडि निचोयकै, पार दिया दुष अंत;
इह रिह मौर जीवकी, मेण कीये बहु भंत. ३४

सुप नाठा दुष मंचरया, देह करी सब छार;
बिरहै कीया पिव इण विधि, ए हमसुं उपगार. ३५

छीपण कह्या विचार करि, अपणा दुषसुष गेय;
अब कलालणी अषि तुं, विरहै कीया सोय. ३६

अथ चोथी कलालणी बोली, दोहा –

चोथी दुष सरीरका, लगी कहण कलाल;
हिवडां पिव विण प्रेमकी नितु रेप(वे)हु कलाल. ३७

मो तन भाठी युं नंप, नैण चवै मदधार;
विणही अवगुण मुझसुं, कसि करि ग्यौ भरतार. ३८

लंभ उलटा हुय रया, पडी पछाडी पाय;
.... ३९

इस विरहाके कारणे, वहू वदारु कीव;
चितका चेतन ठाहरई, गया पयाले जीव. ४०

माता जोवन फाग रित, प्रेम पीयारे दूर;
रली न पूगी एकही, मरुं विसूर विसूर. ४१

हीवडा भीतर झूरखुं, करै वणेरो सोस;
वैरी हूया वल(ल्ल)हा, विह किसेसा दोस(ष). ४२

मो सुं विवरा विरहका, कह्या कलालण नार;
अब तूं वेदन विहकी, सगली अषि सोनार. ४३

अथ पांचमी सोनारी बोलै, दोहा –

कहै सोनारी पंचमी, अंगे उपनो दाह;
हूं तौ बूडी विरहमै, मांहरो नाहीं थाह. ४४
हीयो अंगीठी मू सजीव, मदन सुनार अभाग;
कोयला कीया देहका, गलीया सबे सोहाग. ४५
टांका झाल्या दुषका, रती न देई धीर;
म्हाको मास न मूकीयो, सोझा सबे सरीर. ४६
तन तोलो टंकौ धरयौ, देगे के सरताय;
विरहै कुड सोनार जुं, घणु फिरया जुई यार. ४७
विरहै रूप छिपाइया, सूना सबही जीव;
किसै पुकारु जाइ करी, अब घर नाही पीव. ४८
षोटी वेदन विरहकी, मेरा हिवडा मांहि;
निसदिन काया कलमलै, नां सुष थाम न छांह. ४९
कहि कहि पंच सहेलीया, अपणा दुष सुष रोय;
बहुडज दुजी वार मिलि, जब्रह गहूको मेह. ५०
भुय नीली धण पुंगरी, गयण चमकी वीज;
बहू सहेली साथ मिलि, आई खेलण तीज. ५१
मै तो आमणदुमणी, देषीयी उण वार;
अबहू देषुं हस्तमुषी, मो सुं कहो विचार. ५२
छीहल हम तो तुम्हसुं, केहैतीयी सदभाय;
सांई आया रंगसुं, ए दिन सुखमई जाय. ५३
गयो वसंत वियोगमै, धूप ज काला मास;
पावस रित प्रीतम आवीया, पूगी मननी आस. ५४

१ मालणी फेरि मीली –

मालणका मुष कमलजुं, बहूत विकास करेय;
सांई आया सेज परि, प्रीय मधुकरि रस लेय. ५५

२ बीजी तंबोलणी –

चोली खोलि तंबोलणी, काया गात्र अपार;
रंग कीया बहू पीवसुं, नयण मीलाये तार. ५६

३ छीपण कहै –

छीपण करै वधाइया, जब पीव देषे दीठ;
अति रंग राती पीवसुं, जिम कपडै मजीठ. ५७

४ कलालणी कहै –

जोवन माती लटकति, रसकसभरी कलालि;
हस हस लगी पीव गल, करि करि बहुली आलि. ५८

५ सोनारी कहै –

काया कंचन ज्युं दीपै, ए सिंणगार अनूप;
आया पीव सोनारका, चढ्या चौगणा रूप. ५९
पिव आया सुष संपज्या, पूगी मनही जगीस;
तब वे पंच सहेलीयां, लागी देण आसीस. ६०
वारी तेरे बोलकुं, जिण वरणी सुठाम;
छीहल तुम्ह तै जगतमै, रह्यो हमारो नाम. ६१
धनि वे मंदिर धनि दिन, धनि वो पावस एह;
धनि वाल्भ घरि आइया, धनसुं वरसो मेह. ६२
निसदिन जाई आणंदमै, विलसै बहुविध भोग;
छीहल पंच सहेलीयां, कीयो पीव संयोग. ६३
मीठां मनका भावतां, कीया सरस वषाण;
अणजाण्यां मूरप हसै, रीझै चतुर सुजांण. ६४
संवत **पनरइ चहूतरइ, पूनिम फागुण** मास;
पंचसहेली वर्णवी, **छीहल** कियो प्रकास. ६५

इति पंचसहेली वार्ता संपूर्ण ॥

*

शौरसेन अपभ्रंश (?)

ले० —श्रीयुत केशवराम काशीराम शास्त्री

*

सौथी प्रथम आ हेमचंद्रे आपणने अपभ्रंश भाषानुं संपूर्ण व्याकरण तैयार करी आप्युं छे. ए पूर्वेनुं एक पण व्याकरण मळतुं नथी के जेमां अपभ्रंश भाषानुं व्याकरण आपवामां आव्युं होय. आ० हेमचंद्रनी पूर्वे कोई पण वैयाकरणने अपभ्रंशनी स्वतंत्रता खास व्यक्त थई नहि होय? ते पूर्वे मात्र प्राकृतलक्षणकार चंडने तेनो थोडोक ख्याल आव्यो हतो अने तेनो नामथी तो तेणे मात्र एक ज स्थळे निर्देश कर्यो छे: जेमके **न लोपोऽपभ्रंशेऽधो रेफस्य** ॥ ३ – ३१ ॥ = अपभ्रंश भाषामां जोडाक्षरना द्वितीय वर्ण तरीके आवेला **र्**-कारनो लोप थतो नथी. आ लक्षण अपभ्रंशने सर्वांशे लागु पडे छे के नहि ए प्रश्न जुदो छे पण चंडना समय जेटलो जूनो स्वतंत्र प्राकृत बोली तरीके अपभ्रंशनो स्वीकार अवश्य हतो तेटलुं आनाथी समजाय छे. चंड क्यारे थयो ते निश्चितरूपे कहेवुं मुश्केल छे, छतां प्राकृतप्रकाशकार वररुचि अने आ० हेमचंद्र ए बेउना वच्चेना कोई समयमां ए थयो छे, ए विशे संशय नथी, केमके प्राकृतप्रकाशकार अपभ्रंशना विषयमां तद्दन मौन सेवे छे, त्यारे आ० हेमचंद्र तो अपभ्रंशनुं स्वतंत्र व्याकरण ज रची आपे छे: चंड मात्र नामथी संतोष मानी ले छे. पण मने ए लाग्युं छे के चंडना प्राकृतमां पण शुद्ध अपभ्रंश क्यांक क्यांक जळवाई गयेल छे; एनां नीचेनां सूत्रोमां मने ए वस्तु मालूम पडी आवे छे :

(१) **सागमस्याप्यामो णो हो वा** (१–५) = छट्ठी विभक्तिना ब-व-मां नामने **णं** अने **हं** ए बे प्रत्ययो विकल्पे थाय छे. आ **बेमांनो णं**[1] प्रत्ययनो संबंध **नाम्** साथे छे; शौरसेनी अने महाराष्ट्रीमां जेनो प्रयोग विनाविकल्पे छे. अपभ्रंशमां मात्र **हं** प्रयोजाय छे. बेशक अपभ्रंशमां ए **हं** लुप्त पण **थई** जाय छे. वस्तुस्थितिए एमना **स्य** साथे संबंध धरावनार आ प्रत्यय मात्र अपभ्रंशमां ज प्रयोजायो छे, जेने चंड प्राकृतमां पण इच्छे छे. (मागधीमां **आमो डाहँ** वा (**सि. है.** ४–३००) मां आ० हेमचंद्रे स्वीकार्यो छे ते नोंधवा जेवुं छे.)

---

१ जो के मार्कंडेय अपभ्रंशमां **णं** स्वीकारे छे; साथोसाथ तेणे **हो-ह, सु, हं-इं** प्रत्ययो पण कह्या छे.

(२) **तुम्हे जसि (१–२३)** – **युष्मद्** शब्दना प्रथमा ब० व० मां **तुम्हे** एकरूप थाय. आ० हेमचंद्रे त्यां आठ रूप आप्यां छे; चंड मात्र एक ज आपे छे. एथी एम मानवा कारण रहे के चंडना समयमां **तुम्हे** जे अपभ्रंशमां ज अवशिष्ट रहेलुं ते एक ज प्राकृत माटे बची गयुं होय अने बीजां प्रचारमांथी नष्ट थयां होय.

(३) **तुह-तुज्झ-तुम्ह षष्ठ्याम् (१–२७)** **युष्मद्** – शब्दना षष्ठी ए० व० मां आ त्रण रूप प्रयोजाय. उपर जेम अहीं पण आ त्रण ज रूप चंड पासे अवशिष्ट रही गयां छे. आ० हेमचंद्रना अपभ्रंशमां **तुह** – **तुम्ह** नथी; ज्यारे तेमणे ब० व० मां **तुम्हहं** स्वीकारेल छे.

(४) **तुम्हमामि (१–२८)** – **युष्मद्** शब्दना षष्ठी ब० व० मां **तुम्हं** रूप थाय. उपर बताव्या प्रमाणे **तुम्हहं** (आ० हेम०)ने बदले चंडे **तुम्हं** स्वीकार्युं छे. अर्वाचीन गूजरातीमां ते "**तम**" तरीके रही गयुं छे. प्राकृतमां आ० हेमचंद्रे २३ जुदां जुदां रूपो स्वीकार्यां छे.

(५) **हउं-हं-अहं सौ सविभक्तेः (१–३१)** – **अस्मद्**ना प्रथमा ए० व० मां **हउं-हं-अहं** ए त्रण रूप थाय. आमांनुं **हउं** ए शुद्ध अपभ्रंश छे. आ० हेमचंद्र प्राकृतमां ए स्वीकारता नथी.

(६) **अम्हे जसि (१–३२), अम्हे शसि (१–३४)** – **अस्मद्**ना प्रथमा अने द्वितीया ब० व० मां **अम्हे** एक रूप थाय. आम अवशिष्ट रहेवा पामेलुं आ एक मात्र आपभ्रंशनुं छे. प्राकृतमां आ० हेमचंद्र बधु रूपो आपे छे.

(७) **मह – मज्झ ङसि (१–३८)** – **अस्मद्**ने षष्ठी ए० व० मां **मह** – **मज्झ** ए बे रूप थाय. अपभ्रंशमां **महु** – **मज्झु** ए बे रूप आ० हेमचंद्रे आप्यां छे. उकार मात्रनो भेद ए नजीवो छे. प्राकृतमां आ० हेमचंद्रे ९ रूपो आप्यां छे, ए लक्ष्यमां राखवा जेवुं छे.

(८) **अम्हमामि (१–३९)**–**अस्मद्**ने षष्ठी ब० व० मां **अम्हं** एक रूप थाय. आ० हेमचंद्रे प्राकृतमां १५ रूपो स्वीकार्यां छे. अपभ्रंशमां **अम्हहं** स्वीकार्युं छे. चंड इना लोपे **अम्हं** आपे छे, जे गूजरातीमां "**अम**" तरीके आवी रह्युं छे.

२.४.९

(९) त्तु-त्ता-त्ता-ट्टु-त्तुं-त्तूण-ओ-प्पि पूर्वकालार्थे (२-२४)—संबंधक भूत कृदंतना आ प्रत्ययोमां छेल्लो **प्पि** – अपभ्रंशना **एप्पि** जेवो छे. **कप्पि** < सं. **कृत्वा** = करीने.

बहु ऊंडाणमां न जतां, स्पष्ट तरी आवतां आ नव स्थळ तरफ ध्यान खेंचवा मागुं छुं. आ आटली अपभ्रंशीय लाक्षणिकता चंडना प्राकृतमां केवी रीते प्रवेश पामी गई हशे, ते मुश्केली उपजावे तेवी वात छे.

शुद्ध प्राकृतमां जे वस्तुनी संभावना नथी ए जैनागमनी भाषाने अनुसरी प्राकृते स्वीकारेली **प्रथमस्य तृतीयः** (२-१२) अने **प्रथम-द्वितीययोर्द्वितीय-चतुर्थौ** (२-११) आ बे सूत्रमांना एकदेशमां आवी जती **एकं-एगं, तीर्यकरो-तित्थगरो** अने **मथुरा-मधुरा, नाथो-नाधो,** ए प्रक्रिया छे. शौरसेनीनी आमांनी बीजी स्वाभाविक प्रक्रिया छे; जो के साहित्यकीय शौरसेनीमां विकल्पे स्वीकारई छे. **क**नो **ग** शौरसेनीनो स्वाभाविक छे, जे साहित्यकीय शौरसेनीना व्याकरणमां स्वीकारवामा आव्यो ज नथी. आ० हेमचंद्र प्राकृतमां क्वचित **क=ग**नां उदाहरणो स्वीकारे छे, पण ते शुद्ध प्राकृतनां नथी, पण बीजी भाषानी लाक्षणिकतावाळां छे तेवुं ते ज स्थळे (८-१-१७७नी वृत्तिमां) **व्यत्ययश्च** (८-४-४४७) ए व्याकरणांते आपेल्या एक बीजी भाषामां एक बीजी भाषामांथी आवी गयेल्यां रूपो तरफे निर्देश छे. स्वाभाविक शौरसेनीना केटलाक संस्कारो महाराष्ट्री प्राकृत अने अपभ्रंशमां ऊतरी आव्या छे [तेनी मुख्य लाक्षणिकता ज ए के अघोष व्यंजनने स्थाने घोष व्यंजन थाय: पालि अने महाराष्ट्री प्राकृत वच्चेनी आ भूमिका छे] ते आम क्वचित् प्रयुक्त थयेला मळी आवे छे; जुओ आ० हेमचंद्रनां ४-३९६ अने ४०१ ए सूत्रो.

विकासनी आ स्वाभाविक दृष्टि एटले के अघोषना घोष थवा अने पछी घोषनो लोप ज थई जवो, जेमके सं० **याति**>पालि **याति** >शौर. **जादि**> प्रा. अने अप. **जाइ** (गु. जाय), ए प्राकृत वैयाकरणोनी नजर बहार गई, एटले के स्वाभाविक पालिमांथी स्वा० शौरसेनी, स्वा० शौरसेनीमांथी स्वा० महाराष्ट्री प्राकृत, स्वा० महाराष्ट्री प्राकृतमांथी स्वा० अपभ्रंश, ए क्रम पकडी न शकायो, अने तेथी शौरसेनीनुं प्रधानपणे व्याकरण लखावुं जोइये तेने स्थाने महाराष्ट्री प्राकृतनां प्रधानपणे व्याकरण लखायां; शौरसेनी तो मात्र थोडा तफावत-वाळी एक प्रांतिक-बोली जेवी रही गई, के जेवी बीजी मागधी, पैशाची वगेरे प्रांतिक बोलीओ छे.

परिणाम ए आव्युं के आ बीजी प्रांतिक प्राकृत बोलीओने कई कई प्राकृत बोलीओनी उपजीव्यता रही छे ते बताववानो जुदाजुदा वैयाकरणोए छेक छेल्ला दिवस सुधी प्रयत्न कर्या कर्यो छे. एना जूना नमूना जाणीता छे, जेवा के प्राकृत भाषाओनुं व्याकरण पूरुं करी सूचववामां आवे के **शेषं संस्कृतवत्**; शौरसेनीनुं व्याकरण पूरुं लखी सूचववामां आवे के **शेषं प्राकृतवत्**; मागधीनुं, पैशाचीनुं अने अपभ्रंशनुं व्याकरण पूरुं करी सूचववामां आवे के **शेषं शौरसेनीवत्.** आ० हेमचंद्रे आ आजथी ८०० वर्ष उपर बताव्युं छे. आनो गडबडियो पण आबाद नमूनो मार्कंडेयना प्राकृतसर्वस्वमां मळी आवे छे. विस्तारभये ए अहीं उल्लिखित नथी करवामां आवतुं. आ लेखने माटे जे प्रसंग आमांथी उद्भवी आवे छे, तेने ज मात्र स्पर्श करुं छुं. ते ए के मार्कंडेये नागर अपभ्रंशनी व्याख्या आपतां "**नागरं तु महाराष्ट्रीशौरसेन्योः प्रतिष्ठितम्** (१७-१) नागर अपभ्रंश महाराष्ट्री प्राकृत अने शौरसेनीना केटकेटलाक विधिओथी तैयार थाय छे." आ० हेमचंद्रे पण अपभ्रंशनुं व्याकरण पूरुं करी **शौरसेनीवत्** (४-४४६) कह्युं छे. आ सर्वनुं परिणाम ए आव्युं छे के आ० हेमचंद्रनो अपभ्रंश ए **शौरसेन अपभ्रंश** छे, एम विद्वानो, खास करीने पाश्चात्य विद्वानोए बनाव्युं छे, जेने अनुसरी हिंदी विद्वानोए पण तेवुं ज स्वीकार्या कर्युं छे.

आ० हेमचंद्र अपभ्रंशव्याकरणनी वात करतां शरूमां जे जणावे छे तेनी मीमांसा हजी क्यांय थयेली जाणवामां आवी नथी. अने व्याकरणांते **शौरसेनीवत्** (४-४४६) मळी जवाथी एनी मीमांसा करवानो ख्याल पण कोईने खास आव्यो जाणवामां नथी. ए विशे अहीं थोडी चर्चा आपवा प्रयत्न करवामां आवे छे.

पूर्वपक्ष—अपभ्रंशनी प्रक्रिया पूर्ण करी आ० हेमचंद्र **शौरसेनीवत्** (४-४४६) कहे छे. तेनी वृत्तिमां उमेरे छे के **अपभ्रंशे प्रायः शौरसेनीवत् कार्यं भवति** ॥ अने जे उदाहरणो नोंध्यां छे त्यां **त**नो **द** थयेलो छे तेवां उदाहरणो तेमणे नोंध्यां छे. **किदु, रदिए, विहिदु,** वगेरे.—मार्कंडेय पण नागर अपभ्रंशनी प्रक्रिया शरू करी आवां **त** ना **द** वाळां उदाहरणो नोंधे छे; जेवां के **चलिदु, खण्डिदु** वगेरे, बेशक ते विकल्पे; अने आ० हेमचंद्रने पण **त**नो **द** अपभ्रंशमां विकल्पे ज इष्ट छे, ते ज प्रमाणे **थ** नो **ध** अने **ह** बेउ. आ कारणे आ० हेमचंद्रनो अपभ्रंश **शौरसेन अपभ्रंश** छे.

आ० हेमचंद्रे अपभ्रंशनी प्रक्रियाना आरंभमां पण **स्वराणां स्वराः प्रायोऽपभ्रंशे** (४–४२९) नी वृत्तिमां कह्युं छे के **प्रायोग्रहणाद्यस्यापभ्रंशे विशेषो वक्ष्यते तस्यापि क्वचित् प्राकृतवत् शौरसेनीवच्च कार्यं भवति;** एम तेमणे शौरसेनी जेवा कार्यनो विकल्पे पण स्वीकार कर्यो छे, ए बतावे छे के मुख्यतया तेमने अपभ्रंशमां शौरसेनीनी प्रक्रिया अपेक्षित छे. माटे **शौरसेन अपभ्रंश** तरीके ए अपभ्रंशने स्वीकारवो ए बरोबर छे.

आ मतने खास समर्थित करे एवी नीचेनी प्रक्रियाओ छे; जेवी के–

१. **अनादौ स्वरादसंयुक्तानां क-ख-त-थ-प-फां ग-घ-द-ध-ब-भाः** (४–३९६)–अपभ्रंशमां पदना आदिमां न होय तेवा, स्वर पछीना असंयुक्त क-ख-त-थ-प-फना अनुक्रमे ग-घ-द-ध-ब-भ प्रायः थाय छे. आ विकल्पसंस्कारमांना **त**नो **द** अने **थ** नो **ध** ए शुद्ध (साहित्यकीय) शौरसेनीना संस्कार छे. तेने अनुसरी **कथं – यथा – तथां थादेरेमेमेहेधा डितः** (४–४०१)–**कथम् यथा तथा**ना अंत्य व्यंजनने स्थाने **एम, इम, इह, इध** आदेश थाय. आमां **कथम्**नुं **किध, यथा**नुं **जिध** अने **तथा**नुं **तिध** थाय तेमां **थ** नो **ध** थाय छे ते शौरसेनीनी असर छे, भले ते विकल्पे होय.

२. **वर्त्स्यति – स्यस्य सः** (४–३८८)–अपभ्रंशमां भविष्यकाळमां विकल्पे **स्य**नो **स** थाय. **होसइ – होहिइ.**–आमां **स** नुं रहेवापणुं ए शौरसेनीनुं अवशिष्ट लक्षण छे. शौरसेनीमां **भविस्सदि** जेवां रूपो ज रह्यां छे. प्राकृतमां तो मात्र पहेला पुरुषनां रूपोमां ज **स्स** वपरातो हतो, त्रणे पुरुषमां नहि. (जुओ ३–१६७,१६८) (गूजरातीमां पछी **स** – वाळुं रूप ज ऊतरी आव्युं छे.)

३. संबंधक भूत कृदंतमां **इय** प्रत्यय **क्त्व इय–दूणौ** (४–२७१) प्रमाणे छे ते अपभ्रंशमां प्रयोजायो छे, पण **इ–इउ** तरीके, (जे आज सुधी गूजरातीमां वपरातो आव्यो छे **ई** तरी के ऊतरीने).

आ त्रण प्रक्रियाओ एवी छे के जे अपभ्रंशने शौरसेनी उपर उपजीव्यता होवानुं स्पष्ट रीते बतावे छे; माटे ए अपभ्रंशने **शौरसेन अपभ्रंश** कहेवो ए गेरवाजबी नथी.

उत्तरपक्ष—आ त्रण प्रक्रियामांनी शौरसेन लाक्षणिकता केटली वजूदवाळी छे ए तपासवा जेवुं छे. उल्टे क्रमे अहीं ए बतावबामां आवे छे के ए त्रणे प्रक्रियाओ अपभ्रंशने प्राकृत (Standard—किंवा महाराष्ट्री प्राकृत) तरफथी मळी छे; जेवी के—

३. संबंधक भूत कृदंतमां **इय** प्रत्यय शौरसेनीमांथी **इ** के **इउ** तरीके अपभ्रंशमां आव्यो एम कहिये, ते सामे ए कहेवानुं छे के खुद प्राकृत-(Standard)मां **इअ** प्रत्यय मळी आवे छे; जेवो के **क्त्वस्तुमत्तूण-तु आणाः (२-१४६)**—**क्त्वा** प्रत्ययने स्थाने **तुम्**, **अ**, **तूण** अने **तुआण** ए चार आदेश थाय; तेमांनो **अ** ए आ **इअ** छे, जेनो त्यां ज दाखलो **भमिअ** आ० हेमचंद्रे नोंध्यो छे. एटले आ प्रक्रिया शौरसेनीनी उपजीव्य नहि पण आगळ चाली प्राकृत (Standard) किंवा महाराष्ट्री प्राकृतनी छे.

२. शौरसेनीमां भविष्यकाळनां रूपोमां **स्स** छे, जेना उपरथी अपभ्रंशमां **स** विकल्पे ऊतरी आव्यो छे, ए स्वीकारिये तोपण प्राकृत-(Standard)मांनी, भले ते मात्र प्रथम पुरुष पूरती प्रक्रिया होय तेने आपणे जती नथी करी शकता. प्राकृत (Standard)नी एक भागनी संकुचित प्रक्रिया अपभ्रंश सुधीमां बे स्थितिने पामे: क्यां तो ए सदंतर लुप्त थई जाय, क्यां तो ए व्यापक बने. अपभ्रंशमां विकल्पे ए बधां रूपोमां व्यापक बनी छे, वधु सरळ बनी छे. एना उदाहरण तरीके उपरनो **इय>इअ>इउ>ई** ए क्रमे गूजरातीमां ऊतरी आवेला प्रत्ययनी व्यापकताने तेम ज **ह** लुप्त थतां मात्र **स** सांचवी छेक गूजरातीमां भविष्यकाळमां **श** रूपे व्यापकता थई तेने ज मूकी शकाय. आथी आ प्रक्रियाने पण शौरसेनीनी उपजीव्य कहेवा करतां आगळ चाली प्राकृत (Standard किंवा महाराष्ट्री प्राकृत)नी उपजीव्य कहेवी वधु वाजबी छे.

१. आ प्रक्रियानुं समाधान खास महत्त्वनुं छे. शौरसेनीनी अत्यंत स्वाभाविक लाक्षणिकतानी उपजीव्यता आमां आपणने माळूम पडी आवे छे; एटलुं ज नहि खुद आ० हेमचंद्र जेवो वैयाकरण एने टेको आपे छे. एथी ज एनी छणावट अहीं जरा वधु करवी पडशे, एटले ज ए १ ला मुद्दाने पछीना बे मुद्दा पछी अहीं हाथ धरवामां आवे छे.

आ० हेमचंद्र अपभ्रंशप्रक्रियाना आरंभमां जणावे छे के **प्रायो-ग्रहणाद्यस्यापभ्रंशे विशेषो वक्ष्यते तस्यापि क्वचित् प्राकृतवत् शौरसेनीवच्च कार्यं भवति**—एटले के मूळ सूत्र (४–३२९)मां **प्रायः** शब्द कह्यो छे तेनी मतलब ए छे के जे जे प्रक्रियाओना विषयमां **जे कांई विशेष** कहेवामां आवशे तेने स्थाने कोईवार प्राकृत (Standard किंवा महाराष्ट्री प्राकृत)नां रूप जेवां अने शौरसेनीनां रूप जेवां पण रूपो वापरी शकाय छे. अर्थात् के आ० हेमचंद्र आ वाक्यथी एम कहेवा मागे छे के नीचे प्रमाणे एक ज स्थळे त्रणे रूपो पण आवी शके :

१. विशिष्ट अपभ्रंश रूप,
२. तेनुं ज प्राकृत रूप,
३. तेनुं ज शौरसेनी रूप.

दाखला तरीके **दूरुड्डाणें पडिउ खलु**ने स्थाने **दूरुड्डाणेण पडिदु खलु** के **दूरुड्डाणेण पडिओ खलो** पण प्रयोजी शकाय.

सुकृत शब्द लइये तो **सुकिउ** अपभ्रंश रूप, **सुकिओ** प्राकृत रूप अने **सुकिदो** शौरसेनी रूप; छेल्ला रूपनुं **सुकिदु** एवुं शौरसेन्युपजीव्य रूप पण थाय. (संस्कृततुल्य **सुकृदु** रूप ए तो आनार्थीए वधारानुं जुदुं वपराय छे ज.) आ विकल्पविधानथी तो अपभ्रंशमां पेली बे भाषानां रूपो साथोसाथ वपराय तेटलुं ज स्फुट थाय छे; एटले के अपभ्रंशना विशेषने न वापरवो होय तो लेखक–वक्ता पेली बे भाषानां रूपो प्रयोजी शके. पण जेने ए विशिष्ट रूपो वापरवां ज होय तेने बाध नथी. आ० हेमचंद्रे सूत्रोमां सर्वत्र आ विशिष्ट रूपोनी ज प्रक्रिया आपी छे. जे प्रक्रियामां शौरसेनीनो गंध छे, ते पण प्राकृत (Standard किंवा महाराष्ट्री प्राकृत) द्वारा ज अपभ्रंशने मळी आवे छे, जेमांनी बे उपर आपी छे, ज्यारे १ली **त** ना **द** तथा **थ** ना **ध** नी छे. उपर शरूआतमां बताव्या मुजब चंडे प्राकृतलक्षणमां आ प्रक्रिया प्राकृतमां स्वीकारी छे. अने खुद आ० हेमचंद्र पण शौरसेनीमां ए प्रक्रियाने विकल्पे ज स्वीकारे छे. ते शौरसेनीनी प्रक्रिया खरुं जोतां प्राकृतद्वारा ज अपभ्रंशने वारसे मळी

छे; भले आ० हेमचंद्र तेने नोंधी न शक्या होय के जे चंडे नोंधी छे. मात्र मुश्केल बने छे ए **शौरसेनीवत्** (४–४४६) ए सूत्रनी वृत्तिमांनुं आ० हेमचंद्रनुं **अपभ्रंशे प्रायः शौरसेनीवत् कार्यं भवति** ए विधान छे. आपणे जोयुं तेम मात्र प्राकृतोपजीव्य त्रण प्रक्रिया ज शौरसेनीनी एवी छे के जे अपभ्रंशमां वपराय छे, त्यारे तेनुं समाधान केम मेळववुं ? मने एम लागे छे के अपभ्रंशमां शौरसेनी जेम, शौरसेनीमां प्राकृत जेम, अने प्राकृतमां संस्कृत जेम, एम उत्तरोत्तर उपजीव्यता आ० हेमचंद्रे बतावी छे; जे एम ज पुरवार करी शके के विशिष्ट कार्य उपरांतनुं ते ते कार्य तेनी गणाती सहायक भाषामांथी ते ले. आम आ विधान मात्र उपकारक दृष्टिए आवी रहे छे अने नहि के सिद्ध तरीके.

आ बधानो अर्थ तो त्यारे ए थाय के आ० हेमचंद्रनो अपभ्रंश **शौरसेन अपभ्रंश** नहि पण **महाराष्ट्र अपभ्रंश** छे. अने खरेखर अपभ्रंशनी समग्र रूपरचनानो आधार प्राकृत (Standard किंवा महाराष्ट्री प्राकृत) उपर छे, ए आ० हेमचंद्रनुं व्याकरण जोतां देखाई आवे छे. मार्कंडेयनी नागर अपभ्रंशनी व्याख्या नागर अपभ्रंशपूरती पछी भले साची होय; अने तेनां केटलांक लक्षणो कृत्रिम किंवा मात्र साहित्यकीय जेवां ज होवाथी आ० हेमचंद्रना अपभ्रंशथी ए जुदो एक प्रांतीय भेद छे (आ में अन्यत्र बताव्युं छे), एनाथी आ विधानने कांई बाध आवी शके तेम नथी.

त्यारे एम ज कहेवानुं प्राप्त थाय के **शौरसेन अपभ्रंश** नहि तो आ० हेमचंद्रनो अपभ्रंश ए **महाराष्ट्र अपभ्रंश** छे. आ बेउ खरां नाम छे ?

जवाब ए छे के ए खरां नाम नथी : अत्यार सुधीना एक पण व्याकरणमां **शौरसेन** अने **महाराष्ट्र** ए नामना अपभ्रंश कदी क्यांय नोंधायेला ज नथी. आ० हेमचंद्र तो जेम प्राकृत (Standard)नुं कांई नाम आपता नथी तेम अपभ्रंशनुं पण नाम आपता नथी. जे वैयाकरणो प्राकृत (Standard)नुं नाम महाराष्ट्री प्राकृत आपे छे, तेओ अपभ्रंश एक नहि पण घणा कहे छे. तेना २७ जेटला जे प्रांतीय भेदो नोंधायेला छे तेमां पण क्यांय **शौरसेन** के **महाराष्ट्र** अपभ्रंश एवां नाम मळी शकतां नथी. एवा कोई प्रांतीय भेद अपभ्रंशना हता नहि, एम ए उपरथी सिद्ध समजी शकाय छे. आजनी मराठी बोलीनुं जूनुं स्वरूप

तो **वैदर्भ अपभ्रंश**मांथी छे. मात्र समाधान खातर मारा तरफथी आ पूर्वे (आपणा कविओ भाग १ लाना पृ. ७६ वगेरे उपर) **महाराष्ट्र अपभ्रंश** एवुं स्वतंत्र नाम साहित्यकीय – Stadard अपभ्रंश माटे स्वीकारवामां आव्युं छे. खरुं जोतां उपर सूचव्या मुजब तेवां नामोनी संभावना ज नथी. वस्तुस्थितिए **भारती** भाषाना प्राकृत थरोमां मध्यदेशनी एक मुख्य (Standard) प्राकृत मध्यबिंदु तरीके युगे युगे रह्या करी छे, तेवी संस्कृत (जीवंत)नी साथोसाथनी मध्यदेशीय प्राकृत पालि हती, जेमांथी मध्यदेशनी प्राकृत शौरसेनी आवी, जे पछी मध्यदेशनी प्राकृत महाराष्ट्री आवी, जेमांथी नागर अपभ्रंश (Standard) आव्यो. वाग्विकासना क्रमे आ स्वाभाविक अवतार छे. उपरनी चारे भाषाओनुं जे साहित्यकीय स्वरूप ग्रंथोमां सचवाई रहेलुं छे तेमांथी पण आ स्वाभाविक क्रमनी प्रतीति थाय तेम छे. आ मुख्य परंपरानी बाजूमां बीजा प्रांतिक भेदो पण चालु रह्या छे. प्राचीन अर्धमागधी ए एवो भेद छे, के जे प्राचीन पालि > अर्धमागधी < प्राचीन मागधी एटले के प्रा. पालि अने प्रा. मागधीना संमिश्रणथी थयेली छे. प्राचीन अर्धमागधीमांथी, प्राचीन पालिमांथी साहित्यकीय पालि बौद्ध ग्रंथोमां सचवाई रही छे तेम साहित्यकीय अर्धमागधी जैनागममां सचवाई रही छे. अशोकनी धर्मलिपिमां प्रधान त्रण प्रांतीयता पकडी शकाय छे; आ त्रणेनो संबंध प्राचीन स्वाभाविक पालि साथे हतो. आजे आपणा लिखित जूनामां जूना भाषास्वरूपनो पुरावो अशोकनी धर्मलिपि ज पूरो पाडे छे. पैशाचभेदना असल स्वरूपथी तेम ज साहित्यकीय स्वरूपथी पण आपणे वंचित रह्या छिये. चंडना एकमात्र निर्देश अने आ० हेमचंद्रना पैशाची अने तेना भेद चूलिका पैशाचीना स्वरूप विशेना निर्देश सिवाय एक पण साधन आपणी पासे नथी. मुख्य एक प्राकृतनी नजीक तत्तत्कालीन प्रांतीय प्राकृतो हती, तेम मुख्य एक अपभ्रंशनी नजीक पण तत्तत्कालीन प्रांतीय अपभ्रंशो ते ते प्रांतीय प्राकृतोमांथी ऊतरी आवेला हता, अने होय ए अस्वाभाविक नथी. अने आम अपभ्रंशना अनेक भेद स्वीकारनाराओ समक्ष प्रधान अपभ्रंश तरीके एक **नागर अपभ्रंश** रहेलो छे. मार्कंडेये ए ज वातने लक्ष्य करी, पछी भले कृत्रिम रूपोथी, **नागर अपभ्रंश**नुं व्याकरण मुख्य आप्युं छे. सर ज्योर्ज ए. ग्रियर्सने प्रधान नागर अपभ्रंशनी साथे संबंध धरावता शौरसेन अपभ्रंश (जेमांथी पश्चिम हिंदीनो उद्गम थयो), उत्तर-मध्य-पंजाबनो टाक अपभ्रंश, दक्षिण पंजाबनो उपनागर (आमांथी पंजाबनी बोलीओ थई), आवंत्य

(जेमांथी राजस्थानीनो उद्भव थयो) अने गूजरातनो गौर्जर अपभ्रंश होवानुं स्वीकार्युं छे. ग्रियर्सन **शौरसेन अपभ्रंश** कहे छे, तेवुं नाम ज प्रामाणिक नथी; तेने बदले एमने जे जोइये छे ते खरूं नाम तो **आभीर अपभ्रंश** छे, जेमांथी व्रजभाषा ऊतरी आवी छे. स्वीकारवामां आवता एक अपभ्रंश (Standard)ना आ प्रांतीय भेदो छे; अने ए **नागर** ज होवो जोइये एम सामान्य मान्यता छे, ए स्वीकारवामां मने बाध नथी लागतो. ए ज नागर अने आ० हेमचंद्रनो अपभ्रंश एक ज छे के थोडा भेदे, ए मुख्य चर्च्य विषय रहे छे. Standard अपभ्रंशनुं नाम **नागर** स्वीकारिये तोये **नागर**नुं केवुं असल रूप हतुं ते आपणे जाणता नथी. प्राकृत पिंगळनी भाषा उपर मदार बांधी मार्कंडेये जे मुख्य अपभ्रंशने नागर कह्यो छे ते रूप पेला **जूना नागर**नुं होई शकवानी शक्यता ज नथी. आपणे कहेवुं होय तो **नागर**नुं नजीकमां नजीकनुं रूप आ० हेमचंद्रनुं होई शके. आ० हेमचंद्रना अपभ्रंशने ज Standard अपभ्रंश तरीके स्वीकारी तेने ज **नागर अपभ्रंश** कहिये तो नभी जाय, पण ते संदिग्ध ज छे. खुद आ० हेमचंद्रना अपभ्रंशमां पण एक रूप साथोसाथ बीजां वैकल्पिक रूपो नोंधायेलां छे, ए एक मुख्य अपभ्रंशना सर्वसामान्य लक्षण उपरांतना बीजां प्रांतीय लक्षणोनी संभावनाने पुष्टि आपे तेवां छे. स्व० डो. गुणेए आ० हेमचंद्रना अपभ्रंशमां आ पूर्वे प्रांतीयता जोई पण छे, ए लक्ष्यमां राखवा जेवुं छे. आ० हेमचंद्रमा समयमां अपभ्रंश साहित्यकीय भाषा तरीके स्वीकारावानी संपूर्ण स्थितिए पहोंची चूकेलो हतो, केमके आपणे जाणिये छिये ज के सं. १२४१मां शालिसूरि "भरतेश्वर-बाहुबलि रास" जेवी जेने **अ-गूजराती** न कही शकाय तेवी कृति आपे ज छे. ए ज काळमां, सोरठी लोकसाहित्यनी जेम लोकमां प्रचलित मौलिक साहित्यमांथी ज मोटे भागे पुष्कळ उदाहरणो मेळवी आ. हेमचंद्र आपणने एकठां करी आपे छे, जेमां ए भाषास्वरूप तेना जीवंत रूपमां केवुं होवुं जोइये ते जाणवानी सगवड मळी रही छे. आवुं जीवंत रूप ए क्यांय बीजा प्रांतोमांथी न मेळवे. ए पोताना प्रदेशना व्यापक भाषास्वरूपवाळा दोहरा एकत्रित करी आपे ए स्वाभाविकताने ख्यालमां राखी, अने ते समयमां गुर्जर देशने स्वतंत्र अपभ्रंश होवानी "सरस्वतीकंठाभरण"मां भोजे टकोर करी होवाथी, मारा तरफथी आ० हेमचंद्रे व्याकरणबद्ध करेलो अपभ्रंश **गौर्जर अपभ्रंश** होवानी संभावना करवामां आवी छे. आजे गूजरातनो प्रदेश जेटलो संकुचित क्षेत्रमां आवी गयो छे तेटलो

सोलंकीयुगमां नहोतो एटले ए दोहराओनुं भाषास्वरूप अत्यारना गूजरात प्रदेश उपरांत मारवाड अने मेवाडने पण आवरी लेतुं स्वीकारवुं गेरवाजबी नथी; एथी ज आ० हेमचंद्रना अपभ्रंशमांनी केटलीक लाक्षणिकता आजना गूजरातमां न पण मळे. दाखला तरीके –

ढोल्ला, मइं तुहुं वारिया मा कुरु दीहा माणु ।
निद्दए गमिही रत्तडी, दडवड होइ विहाणु ॥

[ढोला, में तुंने वारियो, म कर दीर्घ मान,
नींदरे गामी रातडी, दडवड (= झटपट) होय वहाणुं.]

आमां **वारिया** अने **दीहा** रूप तळगूजरातमां खास स्वतंत्र सचवाई रह्यां नथी. गूजरातमां सचवावा माटे **वारिउ** अने **दीहु** रूप जोइये. **माणु** अने **विहाणु**मांनो उकार शुद्ध Standard अपभ्रंशनो छे, ए कहेवानी भाग्ये ज जरूर छे, जे घसाई अर्वाचीन गूजरातीमां नष्ट थयो छे अस्वरित दशामां; स्वरित दशामां तो नरजातिमां **ओ** तरीके (क्वचित् उ तरीके रामु, केसु, बालु वगेरेमां छे तेम) अने नान्यतरजातिमां **उं** तरीके ऊतरी आव्यो छे. मारवाडी – मेवाडीमां नरजातिमां सचवायेलो **ओ** आ स्वरित उनो अवशेष छे, ए कहेवानी भाग्ये ज जरूर छे. **आ**कारवाळी प्रक्रिया मारवाड – मेवाडनी सरहद उपर क्यांक हशे ते आ त्रणे प्रदेशे सिद्ध नामना अंत्य स्वर तरीके तो गुमावी दीधी छे; मात्र प्रत्ययोनी पूर्वे अने तेवां निष्प्रत्यय (पण प्रथमा ए० व० सिवाय) विशेषणात्मक रूपोमां ते आज दिवस सुधी सचवाई रहेल छे. आ प्रक्रिया पूर्वीय हिंदी बोलीओमां गई छे. हिंदीमां **मैंने कहा** तरीके ते बची जवा पामेल छे; ज्यारे व्रजभाषामां **मैंने कह्यो** एम **ओ**कारांत तरीके सचवाई रही छे. **ओ**-यूथनी अने **आ**-यूथनी भाषाओना मूळमां आ तत्त्वनी पृथकृति स्पष्ट छे.

देशमां अपभ्रंश भाषा बोली तरीके खूब व्यापक बनी गई हती. तेनी खात्री चंडनुं प्राकृतलक्षण आपे छे. अपभ्रंशनां रूपो ते पोताना प्राकृतमां प्राकृत तरीके आपे छे, ए ओछुं सूचक नथी. वररुचिना प्राकृत करतां ए मोडानो समय छे. पण आ० हेमचंद्रना समयमां तो प्राकृतथी अपभ्रंशनो भेद एटलो चोख्खो स्पष्ट थई गयो हतो के एनो शंभुमेळो थई जतो एमना हाथे बची गयो छे, अने अपभ्रंशनुं स्वरूप अलग आपणे मेळवी शक्या छिये.

शुद्ध Standard अपभ्रंशनो नमूनो आ नीचे आपुं छुं :

दूरुड्डाणें पडिउ खलु अप्पणु जणु मारेइ ।
जिह गिरि-सिङ्गहुं पडिअ सिल अन्नु वि चूरु करेइ ॥
[दूर-उडाणे पड्यो खल आपणो जण मारे,
जिम गिरि-सिंगथी पडी सल्या अन्य य चूरो करे.]

जेमांथी शुद्ध गूजराती अंश ऊतरी आव्यो छे ते जुओ :

सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइं ।
सामि सुभच्चु वि परिहरइ सम्माणेइं खलाइं ॥
[सायर ऊपर्य तृण धरे, तळे घाले रयणां (रत्न),
स्वामी सुभृत्य य परहरे सन्माने खलां (खलोने).]

साहित्यना नहि, पण प्रचलित लोकभाषाना संस्कार आने केटला नजीक छे ते दृष्टिए विचारवानुं छे. ए जो भूली जवामां आवे तो समझवामां थोडी अगवड आवे. प्राकृतनी लाक्षणिकतावाळां केटलांक रूपो सदंतर घसाई जवाथी तेने स्थाने शुद्ध संस्कृत तत्सम शब्दोनो स्वीकार ए गूजराती भाषानी एक विशिष्टता छे. भाषा आ तरफ आवतां संस्कृतथी आढ्य बनती आवी छे. अने खुद मार्कंडेय पण **संस्कृताढ्या च गौर्जरी** एवुं लक्षण स्वीकारे छे.

गूजराती शुद्ध लाक्षणिकता आ० हेमचंद्रना अपभ्रंशमां केटली छे ते बतावववानुं कोई अन्य प्रसंग उपर राखी आ लेख नीचेना मुद्दाओ तारवी आपी पूरो करुं छुं. आ मुद्दा ए छे के—

१. चंडना प्राकृतलक्षणमां अपभ्रंशनां केटलांक लक्षणो प्राकृत भाषानां लक्षणो तरीके स्वीकाराई गयां छे; ए बोलाती बोलीना अंश होई अपभ्रंशनी स्वतंत्र हस्ती पुरवार करे छे.

२. Standard अपभ्रंश तरीके **नागर अपभ्रंश** ए नामे मुख्य भेद हशे, पण तेनुं खरुं स्वरूप केवुं होवुं जोइये ते मेळववानुं प्राचीन सघ्धर साधन आपणी पासे नथी. आ० हेमचंद्रनो अपभ्रंश ए **नागर छे,** एम बतावववा कोई सघ्धर पुरावो नथी.

३. **नागर अपभ्रंश** ए **शौरसेन अपभ्रंश** छे या तेना एक भेद तरीके ते छे एवुं सिद्ध थई शके तेम नथी. ऊलटुं **शौरसेन अपभ्रंश** के

महाराष्ट्र अपभ्रंश एवां नामो कोई पण वैयाकरणे कदी क्यांय नोंध्यां नथी.

४. एटले ज **आ० हेमचंद्रना अपभ्रंशने शौरसेन** कहेवो के तेना स्वरूपमां **महाराष्ट्री प्राकृतनुं** अनुसरण अत्यंत स्पष्ट होवाने कारणे तेटला मात्रथी ज **महाराष्ट्र अपभ्रंश** कहेवो ए अयुक्त छे.

५. **आ० हेमचंद्रना अपभ्रंशनुं** नाम जोईतुं होय तो युक्तियुक्त नाम **गौर्जर अपभ्रंश** छे.

६. **गौर्जर अपभ्रंशना** अवशेषो आजनी **गूजराती, मारवाडी** अने **मेवाडी** छे. एनी प्रक्रियाओ आ त्रण भाषामांथी एकत्रित करवी सहेली छे.

७. शूरसेन प्रदेशनो जो कोई **अपभ्रंश** होय तो ते **आभीर अपभ्रंश (मध्यदेशीय)** होई शके, जेनो संबंध **गौर्जर** साथे हतो. **आभीर अपभ्रंशमांथी** ऊतरी आवेली भाषा **व्रजभाषा** छे.

८. अने **आ बंने अपभ्रंश ओ-यूथनी भाषाना जनक छे.**

*

प्राकृत व्याकरणकारो

*

भाषान्तरकार – श्रीयुत हरिवल्लभ भायाणी एम्. ए.

[रिसर्च फेलो – भारतीय विद्याभवन]

[श्रीमती लुइजीया नीती – दोल्ची [Luigia Nitti – Dolci] **कृत "ले ग्रामेयूर्वे प्राकृत** [Les grammairiens Prakrits] **(** पारी Paris) **लीब्रेयूरी दामेरिक ए दोर्या आम्रां मेयू जो नैव, १९३८)ना "न्यू इन्डियन एन्टिक्वेरी" (पुस्तक २, मे १९३९, पा. १३५–१४२) मां प्रसिद्ध थयेला अवलोकन-लेखनुं भाषान्तर.]**

पुरुषोत्तमना **प्राकृतानुशासन**नी आवृत्ति[1] अने **प्राकृत** वैयाकरणो परनी प्रस्तुत अगत्यनी कृतिए भारतविदोनुं श्रीमती नीती-दोल्ची तरफ प्राकृतनां एक अतीव आशास्पद युरोपीय अभ्यासी तरीके हजी हमणा ज लक्ष्य खेंच्युं हतुं, त्यां तो

"गजभुजङ्गमयोरपि बंधनं शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम् ।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥"

ए भर्तृहरिना शब्दोनी याद आपवाने तेमना अकाळ अवसानना समाचार आव्या. विधिए तेने लासन(Lassen) अने पिशल(Pischel)नी परंपराने दिपावती प्रस्तुत कृति समाप्त करी प्रकाशित करवा दीधी एटलुं आपणा अध्ययननुं सुभाग्य छे. प्राकृत व्याकरणपरंपराने लगता मुख्य-मुख्य कोयडानी नवेसरथी करेली विस्तृत तपासणी आपणी पासे रजू करतां घणीवार ए कोयडाओनो रोचक उकेल सूचववामां, अथवा छेवटे कंई नहि तो तेमने नवी पीठिका पर ऊभा करवामां ग्रंथकर्त्रीने जे सफळता मळी छे ते, तेमनी भाषाशास्त्रीय तेम ज साहित्यानुशीलनने लगती (Philological) उचित केळवणीने अने भारतीय मूळग्रंथोना विशाळ ज्ञानने आभारी छे. आपणे आ अवलोकनना अंतमां, प्राकृत व्याकरणी संप्रदायोने लगतां तेम ज प्राकृत भाषाभेदोना वास्तविक स्वरूपने अंगेनां ग्रंथकर्त्रीनां संशोधनोमांथी फलित थता निर्णयो जोईशुं : आ हेतुथी, जे सात प्रकरणोमां कृतिने

---

१. "ल प्राकृतानुशासन द पुरुषोत्तम" पार लुइजीया नीती-दोल्ची : काये द ला सोसेते आस्यातीक, ६ पारी, १९३८. प्रस्तुत अवलोकनना विषयभूत पुस्तकना पृ० ९० उपर जे रामशर्माना प्राकृतकल्पतरुनो महाराष्ट्री विभाग पोते संपादित कर्यानो उल्लेख छे ते प्रसिद्ध थई गयो छे के हजी नथी थयो ते हुं जाणतो नथी.

वहेंची नाखवामां आवी छे तेनी, घणुंखरुं ग्रंथकर्त्रीना पोताना ज शब्दोमां, पृथक्करणात्मक रूपरेखा अहीं आपवी हुं योग्य धारुं छुं, अने आशा राखुं छुं के मात्र ऊडती उपरछल्ली नोंधथी संतोष न पामता होय तेवा आ सामयिकना वाचको आमां संमत थशे. स्वाभाविक रीते ज, आमां केटलीक झीणी विगतो, प्राकृतना ज्ञानमां केटलीक वखत तो सारी एवी अगत्यनी होवा छतां मारे जती करवी पडशे. मार्कण्डेय ६–३५ना आधारे आपणी जाणमां आवतां, दरेक काळ अने पुरुष माटे प्रचलित ०ओ० के ०आहि वाळां आख्यातिक रूपोना[२] वपराशनो, अथवा तो भारत-युरोपीय *०ओमांथी आवेला स्लावी ०ॲं (ꙋ)ने स्थाने आवता ०अनुं समान्तर उदाहरण पूरुं पाडता हेमचंद्रे ३–१४१मां आदेशेला ने ०आमिने स्थाने आवता ०अंनो मात्र सूचक उल्लेख करीने ज हुं अटकुं छुं. उक्त बंने घटनाओनो पिशले उल्लेख नथी कर्यो ए हकीकत, पिशलनी जीवन-कृति पछी पण प्राकृतना ज्ञान माटे हजी केटलुं बधुं करवानुं छे ए देखाडवा माटे पूरती छे.

पहेलुं प्रकरण वररुचि उपर छे. वररुचिनुं प्राकृतप्रकाशनुं कर्तृत्व समर्थित थई शके तेम नथी, तो तेने नकारी शकाय तेम पण नथी; कारण, "वररुचि-कात्यायनने इसुपूर्वेनी त्रीजी सदीथी मोडो मूकी शकाय नहि, ज्यारे (ए ज समयना) अशोकना उत्कीर्ण लेखो तो व्याकरणकारोना अने नाटकना प्राकृतथी प्राचीनतर भाषाभूमिका रजू करे छे" ए बात खरी, पण ए हकीकतने "वररुचिना समयमां आवी (एटले के वररुचिना व्याकरणमां रजू थइ छे तेवी) प्राकृतोनुं अस्तित्व होय नहि" एवुं धारी लेवा माटे एक मजबूत कारण तरीके न लेखी शकाय. वररुचिना ग्रंथपाठमां रहेलां विरोधी विधानो अने विशिष्टताओनी तपासणी ग्रंथकारने एवुं अनुमान करवा तरफ दोरे छे के गाथानी महाराष्ट्री—जेने लासन "प्रकृष्ट प्राकृत" (Prakritica Praecipua) कहे छे—ए एक ज प्राकृत वररुचिनां मूळ सूत्रोनो प्रतिपाद्य विषय छे. शौरसेनी, मागधी अने पैशाची परनां छेल्ला त्रण प्रकरणो (प्रकरण १०, ११, १२) कोई टीकाकारे उमेर्यां होवां जोईए. संभवित छे के प्रकरण १० अने ११ना विषयमां ए टीकाकार ते भामह होय; शौरसेनी परनुं १२मुं प्रकरण भामहनी कृति नथी.

२. जुओ प्रस्तुत ग्रंथ: पा. १११. ३ "सर इ. डेनिसन रोस-अर्पण ग्रंथ"मां में आ रूपोनुं टूंकमां आलोचन कर्युं छे. जुओ प्रस्तुत ग्रंथ : पा. १७४.

कारण के बधीए हाथप्रतोमां ते टीका विनानुं मळे छे. **भामह** सिवायना टीकाकारो मात्र मुख्य प्राकृतनी ज वात करे छे, **वररुचि** पर आधार राखता **प्राच्य वैयाकरणो** (Oriental Grammarians) बीजा **प्राकृतप्रकारोनुं** **वररुचि-भामहथी** भिन्न रीतनी गोठवणी द्वारा प्रतिपादन करे छे, **क्रमदीश्वर** मात्र **मुख्य प्राकृत** माटे ज **वररुचिनो** उपयोग करे छे, **हेमचंद्र** बीजा वैयाकरणो साथे बीजा **प्राकृतप्रकारोना** नहि पण **मुख्य प्राकृतना** ज विषय पूरतो झघडे छे अने ए द्वारा देखाडे छे के **वररुचि** सुधी पाछो पहोंचतो कोई अविच्छिन्न संप्रदाय न हतो : आ बधी हकीकतो, उपर दोरेला निर्णयोनुं समर्थन करे छे. आथी, **चण्ड** सिवायना बधा **प्राकृत** व्याकरणकारोने **वररुचिना** मात्र **मुख्य प्राकृत** परनां सूत्रोनी माहिती हती एवा निर्णय पर आपणे आवीए छीए. तो, आपणे ज्यारे **वररुचिनी** वात करीए, त्यारे आपणने **भामह–कोवेल** आवृत्तिना पहेलां नव प्रकरणो ज ख्यालमां होवां जोईए, अने एमां पण पांचमुं अने छठ्ठुं प्रकरण मूळ तो एक ज प्रकरण रूपे हतां.

पण **भामहना** **प्राकृतप्रकाशनां** १थी९ प्रकरणोये मूळनी खरी परंपराथी घणां वेगळां छे. **वररुचिना** संप्रदायना प्राबल्यने लीधे **वसंतराजनां** **प्राकृत-संजीवनी** अने **प्राकृतमञ्जरी** (तेम ज, वसंतराजनी कृतिना साररूप सदानंदकृत **प्राकृतसुबोधिनी** अने **नारायण** **विद्याविनोदकृत** **प्राकृतपाद**) ए **प्राकृत-प्रकाश** साथे **मुख्य प्राकृतनी** बाबतमां तो सुसंगत छे, मात्र **प्राकृतप्रकाशमां** प्रवेशेली नवतर सामग्रीनी बाबतमां ते ग्रंथो मतभेद धरावे छे : परिणामे तेओ **भामहनी** कृतिथी अपरिचित होवा जोईए.– आ निर्णय केटलांक सूत्रो परनी टीकाओनुं २४ अने पछीनां पृष्ठो पर सूक्ष्म पृथक्करण करीने प्रतिपादन करवामां आव्युं छे. एटले, **वररुचिनां** सूत्रो ए **भामहनी** टीका विना पण – स्वतंत्रपणे –अस्तित्व धरावती कृति छे अने **भामहथी** अपरिचित एवा तेना बीजा टीकाकारो अने अनुकृतिकारो पण हता. आथी **भामहे** स्वीकारेली वाचना ए **वररुचिनो** मूळ ग्रंथपाठ स्थिरपणे निर्णीत करवाना मुख्य साधनोमांनुं मात्र एक साधन ज गणी शकाय. मूळ ग्रंथपाठ नक्की करवा माटे तो बधांय उपलब्ध साधनोनो उपयोग जरूरी छे.

उपर जणाव्युं तेम **वररुचिनां** **मुख्य प्राकृत** परनां सूत्रो विशेष फेरफार सिवाय बधी टीकाओमां मळे छे, ते बतावे छे के ए सूत्रो प्राचीन छे अने वांधा

भरेलां गणी शकाय तेटलां खंडित थयां विना जळवाईने ऊतरी आव्यां छे. आथी तेमनी ऊंडी तपास करवी शक्य बने छे. तेमनी रचना एक व्यवस्थित व्याकरण तरीके काम आपवा माटे थई होय एवुं लागतुं नथी. दाखला तरीके ग्रंथनुं आदि मंगळ ज नथी मळतुं : आनो अर्थ कां तो ए होय के आ सूत्रो कोई संस्कृत व्याकरणना परिशिष्ट रूपे हतां (सरखावो – जेमके हेमचंद्रनी कृति), अथवा तो एम पण होय के वररुचिनो एक सळंगसूत्र व्याकरण निबन्ध रचवानो आशय न हतो; मात्र केटलाक छूटक प्राकृत व्याकरण-नियमो ज तेणे लखेला; कोईए आ नियमोने संकलित करी एक शीर्षक आप्युं अने टीकाकारोए तेमनी प्रवृत्ति शरू करी दीधी. आमांथी बीजी संभावनानुं समर्थन एटलाथी थाय छे के वररुचिनां सूत्रो आपणने प्राकृतनुं स्वरूप-वर्णन नथी आपतां, पण रूपोना मात्र अमुक समूहने संस्कृतमांथी अवतारवाना नियमो आपी ते रूपोनी प्रमाणसिद्धता पुरवार करवाना प्रयत्न जेवां ते कांईक लागे छे. ए सूत्रो अमुक एक ग्रंथने के सुनिश्चित स्वरूपना अमुक ग्रंथसमूहने उद्देशीने रचायां होय एवी छाप आपणा उपर पडे छे; अने टीकाकारोए (टीका दरमियान) करेला काव्यग्रंथो, छंदोरचना-मूलक फेरफारो वगेरेना उल्लेखो ए छापने दृढतर बनावे छे. हवे, वररुचिनां सूत्रो जेनुं स्वरूपवर्णन करे छे तेनो शब्दभंडोळ ४०६ रूपोनो बनेलो छे, जेमांथी २३३ वेबर (Weber) संपादित हालकृत गाहासत्तसईनी बीजी आवृत्तिनी शब्दसूचीमां मळे छे; अने आम वररुचिना अभ्यासप्रदेश नीचेना शब्दोमांथी ५९ टका शब्दो हालमां मळे छे एटलुं ज मात्र नहि, तेणे आदेशेला लगभग बधा बेवडा स्वरूपवाळा शब्दो (उदाहरण तरीके इति माटे इअ ने ति (त्ति), १–१४) पण सत्तसईमां देखाय छे. आथी ग्रंथकर्त्री अनुमान पर आवे छे के साहित्यकीय महाराष्ट्रीनुं स्वरूपघडतर गाथाओमां थयेलुं छे अने (महाराष्ट्रीमां रचायेलां) महाकाव्योए तेमनी भाषा कोई पण जातना फेरफार सिवाय एमांथी ज लीधी छे; अने खरेखर संचयात्मक स्वरूपवाळा गाथाग्रंथोमां तो एकमूळ शब्द-जोडीओ (doublets), लखाणपद्धतिनी विषमताओ वगेरेनुं अस्तित्व सरळताथी समजावी शकाय तेवुं छे, कारण के ए गाथाओ संभाव्यपणे भिन्नभिन्न भाषाभाषी अनेक लेखकोनी कृति छे. आथी वररुचिना ग्रंथपाठना निर्णय माटे तेना उपर आधार राखता टीकाकारो अने वैयाकरणोने ज नहि पण सत्तसई अने तेना जेवा हाल उपलब्ध महाराष्ट्री गाथासंग्रहोनेय गणतरीमां लेवा जोईए.

टूंकामां वररुचिनां सूत्रोमां आपणने कोई व्याकरण नथी मळतुं; तेमनी रचना संस्कृतनुं ज्ञान होय तेवा लोकोने प्राकृतमां गाथाओ केम रचवी ते शिखवाडवाना हेतुथी थई छे. शरूआतमां आ गाथाओ मुकाबले लोकभोग्य कही शकाय तेवी साहित्यरचनानो प्रकार होवी जोईए; पण अमुक समय पछी ते विद्वद्वर्गनुं विनोद-साधन बनी गई. विद्वानोनुं संस्कृत तेम ज लोकबोलीओ ए बंनेनुं ज्ञान, गीत्यात्मक (Lyrical) महाराष्ट्री जेवी – संस्कृतना रंगे रंगायेली अने असामान्य स्वरूपना जुदी-जुदी बोलीओना शब्दोथी प्रचुरपणे शणगारायेली – कृत्रिम भाषा लखवामां परिणम्युं.– आ प्रकरण त्रण मुख्य टीकाकारो प्रमाणेनी वररुचिना सूत्रोनां वाचनामां मळतां पाठान्तरोनी तुलनात्मक नोंध (पा. ५१ अने पछीना) साथे पूरुं थाय छे.

बीजा प्रकरणनुं शीर्षक भरत छे. जो के प्राकृत वैयाकरणोमांथी मात्र मार्कण्डेय ज भरतने प्रमाणरूपे टांके छे (अने तेना नाम नीचे मार्कण्डेये आपेलां छ टांचणोमांथी मात्र बे ज नाट्यशास्त्रना १७ मा प्रकरणमां मळे छे – पिशलनुं तो एवुं मानवुं हतुं के छमांथी एकेय टांचण जाणीता नाट्यशास्त्रकार भरतमांथी नथी), छतां कंई नहि तो दसमी के अगियारमी सदीमां तो प्राकृत उपरनो फकरो नाट्यशास्त्रनो एक भाग हतो ज एनी साक्षी अभिनवगुप्तनी टीका पूरे छे. ग्रंथकर्त्रीए आ फकरो (१७, १–६४) पृथक्करण अने अनुवाद साथे पा. ६३–७६ पर प्रसिद्ध कर्यो छे. अने ७६ अने पछीनां पान पर भाषाओ अने बोलीओनुं भरते करेलुं वर्गीकरण तपासवामां आव्युं छे. 'संस्कृत'नी घाटीए ज 'प्राकृत' एवो बीजा कोई विशिष्ट व्यपदेश वगरनो उल्लेख (भरते) कर्यो छे; ते पछी देशभाषाओ आवे छे. आ आपणने एवुं मानवा तरफ दोरे छे के 'प्राकृत' ए संस्कृतनी जेम आखा भारतवर्ष माटे एक साधारण भाषा (Common language) हती. बीजा मुद्दाओ स्पष्ट नथी थता. गमे तेम पण आपणे एटलुं तो कही शकीए के (१) भरतने बोलीओनी अमुक संख्यानी खबर छे अने ते तेमनो उपयोग करवानी छूट आपे छे; (२) आ बोलीओमां महाराष्ट्रीनुं नाम मळतुं नथी, तेम ज गद्य ने पद्यनी भाषा वच्चे कोई जातनो भेद पण पाडवामां आव्यो नथी : परन्तु 'प्राकृत' तरीके आपेलां रूपो एक पण अपवाद विना महाराष्ट्रीनां छे.

वररुचिनी बाबतमां जे कह्युं ते भरतने तो विशेषे करीने लागु पडे छे. भरत व्याकरण नथी आपतो, पण मात्र ध्वनिविकार (Sound changes)ना

नियमो आपे छे अने संभवित छे के ए नियमो ते, पाठ भजवती वखते जेमने **साहित्यकीय प्राकृत**मां बोलवानुं होय तेवा पोताना नटोने सूत्रधार तरफथी अपाती सूचनाओ ज छे. आ उच्चारण-सूचनाओनो हेतु एटलो के नटोनुं **संस्कृत** आ नियमोने अनुसरवाथी प्रेक्षक-जनताने **प्राकृत** जेवुं लागे अने तोय ते सुबोध रहे. आ भाषामां केटलाक देशी शब्दोनो छटकात्र थतां तेने छेवटनो संस्कार मळी रहेतो. खरेखर **सिल्वॉं लेवी** (Sylvain L'evi) ए कहेलुं छे ("तेमने (=प्राकृतने) 'संस्कृतनुं एक विशिष्ट रीते करेलुं उच्चारण' ए सिवाय भाग्ये ज बीजुं कांई कही शकाय") तेम नाटकनी **प्राकृत** ए **संस्कृत**नुं एक वेशांतर ज छे. परिणामे **संस्कृत** नाटकमां **संस्कृत** अने "प्राकृत" ए बे स्थिरपणे वपराती साहित्यभाषाओ होय छे, अने तेमनी आसपास केटलीक बोलीओ होय छे, जेमनी संख्यानो आधार ग्रंथकर्ता उपर, नटो अने प्रेक्षकोनी इच्छा उपर होय छे. आने अनुलक्षीने ग्रंथकर्त्रीए **बंगाळी** अर्वाचीन नाटकोमां तेम ज **इटालीना** "कोमेदीआ देल आर्ते" (एक आलंकारिक सुखांत नाट्यप्रकार)मां शुं बनतुं अथवा तो हाल शुं बने छे तेनी समुचित रीते ज सरखामणी आपी छे. ८४ अने पछीनां पान पर भरते पोताना ३२मा अध्यायमां आपेला ध्रुवाना नमूनानो निर्देश करवामां आव्यो छे. नाट्यप्रयोग दरमियान गावानां अने गीत्यात्मक (lyrical) **महाराष्ट्री**मां रचायेली गाथाओथी भिन्न, एवा आ पद्योनी भाषाने **भरत शौरसेनी** कहे छे. जो के नाटकनी **शौरसेनी**थी केटलीक बाबतमां आ भाषा जुदी पडे छे, छतां **याकोबी** (Jacobi) ए मान्युं छे ते प्रमाणे ग्रंथकर्त्री एम मानवा तैयार नथी के अहीं आपणे बे जुदी-जुदी भाषाओ गणवी.

त्रीजुं प्रकरण, प्राकृतानुशासनकार **पुरुषोत्तम, प्राकृतकल्पतरु**कार **रामशर्मा** अने **प्राकृतसर्वस्व**कार **मार्कण्डेय** – ए **प्राच्य वैयाकरणो** उपर छे. आमांथी **मार्कण्डेय**ने १४मी सदीना अंत पहेलां मूकी शकाय. ते त्रणे मळीने एक ऐकमत्य धरावतो खरो संप्रदाय बने छे. आ संप्रदाय जुदा-जुदा भाषाभेदोने चार घरमूळना वृक्ष नीचे एकत्रित करे छे: **भाषाओ, विभाषाओ, अपभ्रंश** अने **पैशाचिक. भाषाओमां महाराष्ट्री** सर्वोत्कृष्ट स्थान भोगवे छे अने तेनो अभ्यास बीजा भाषाभेदोना अभ्यासमां पायारूप बने छे. **प्राच्य वैयाकरणो शाकल्य**ने सौथी वधारे वार प्रमाण तरीके टांके छे, ज्यारे बीजा व्याकरणकारो आ **शाकल्य**थी तद्दन अजाण छे. **मार्कण्डेय** पोतानां प्रारंभिक पद्योमां **शाकल्य**नो सौथी

पहेलो निर्देश करे छे, अने जे बाबतो वररुचिमां न मळती होय तेमने माटे शाकल्यने नामे आदेश आपवामां आव्यो छे. आथी एवो निर्णय दोरवी शकाय के शाकल्ये (ए १३मी सदी पहेलां ज थयो होवो जोईए) मुख्य प्राकृत अने शौरसेनीनुं एक व्याकरण रचेलुं अने प्राच्य वैयाकरणोना मूळ आधारोमांथी एक ए हतो. आमां मार्कण्डेय, तेणे आपेलां प्रचुर टांचणोने लीधे, खास ध्यान खेंचे छे अने ए हकीकत तेनी प्रतिपाद्य-मर्यादा घणी विस्तृत होवानो पुरावो छे. आ टांचणोमांथी जेनी जेनी बाबतमां तेना कर्तानो उल्लेख करायो छे, ते दरेक, मात्र बे त्रण अपवाद सिवाय साचुं ठर्युं छे. आ वस्तु १०२ अने पछीना पानां पर बतावी छे. अनेक ग्रंथकारोने, वारंवार प्रमाण तरीके आपवामां आव्या छे, पण कदाच एक अपवाद बाद करतां, बधां टांचणो मुख्य प्राकृतने लगतां छे; हेमचंद्रनी बाबतमां पण आम ज छे. अने एनो अर्थ एवो करी शकाय के गीतात्मक (Lyrical) महाराष्ट्री जेवी लिखित अने साहित्यकीय भाषा उपर जेटला प्रमाणमां मुख्य प्राकृत शासन चलावे छे तेटला प्रमाणमां तेनुं व्याकरण स्थिर स्वरूपनुं अने परंपरागत हतुं. आ व्याकरणना आदि स्थापक तरीके वररुचिनुं प्रमाण चर्चाथी पर गणातुं अने तेनी आसपास टीकाकारो अने शिष्यो पोतानी जातने गोठवी देता. ज्यारे-ज्यारे मार्कण्डेय के हेमचंद्र अमुक रूपना संबंधमा कोई व्याकरणकारनो नामनिर्देश कर्या विना तेनो अभिप्राय टांके छे (**इति कश्चित्, इति केचित्**) त्यारे तेवी दरेक बाबतमां ए अभिप्राय वररुचिना ज कोई सूत्रनो कां तो विरोध करतो होय छे, कां तो तेनी अनुपूर्ति करतो होय छे, अथवा तो तेनो नवी पद्धतिए अर्थ बेसाडतो होय छे :—पण आनो अर्थ एवो नथी के मार्कण्डेय ने हेमचंद्रनी समक्ष बीजा भाषाभेदोनी बाबतमां कोई पुरोगामीओ न हता; मात्र एटलुं ज के तेमणे (एटले के मार्कण्डेय अने हेमचंद्रे) स्पष्ट निर्देश साथे आपेलां टांचणो वररुचि के भरत पूरतां ज मर्यादित होय छे; कारण के आवां परंपरापुनित नामोनो निर्देश तेमनी पोतानी कृतिने एक प्रकारनी उदात्तता अर्पे छे. ए संभवित छे के पुरुषोत्तम, मार्कण्डेय अने हेमचंद्र पासे तेमना पायाना आधार तरीके एक प्राचीनतर 'प्राच्य' व्याकरण हतुं. रामशर्माए हेमचंद्र उपर आधार राख्यो होय ए बनवाजोग छे, ज्यारे हेमचंद्र अने मार्कण्डेय वच्चे रहेली विशिष्ट प्रकारनी समानताओने सामान्य मूळ ग्रंथोना उपयोगना परिणामरूपे समजावी शकाय.

११० अने पछीनां पानां पर मार्कंडेये पोताना अग्रगण्य आधारभूत वररुचिमां महाराष्ट्रीनी बाबतमां करेला उमेरा तपासवामां आव्या छे. पान ११८थी बीजी "भाषाओ"ने विशे एक परिच्छेद आवे छे; ए "भाषाओ"मांथी शौरसेनीनो प्राच्य वैयाकरणोए खास अभ्यास कर्यो छे. प्राच्य वैयाकरणो परनी विचारणाने आधारे ग्रंथकर्त्री एवा निर्णय पर आवे छे के शौरसेनी बोली – एटले के विशिष्ट व्यक्तिओना वपराशनी देशभाषा शौरसेनी नहि पण भारतवर्षना कोई पण भागमांथी दरेक जणाना वपराशने योग्य एवी शौरसेनी – ए, जे कोई व्यक्तिने देवभाषा (संस्कृत) बोलवानो अधिकार न होय तेमने नाटकमां संस्कृतनी अवेजीमां वापरवानी भाषा छे. बीजी भाषाओना संबंधमां, रामशर्मा – २।३।३१ अने मार्कण्डेय – १६।२नी तपासणीने परिणामे, ग्रंथकर्त्री देखाडे छे के प्राकृत वैयाकरणोए साहित्यमां वपराता स्वरूपने आधारे प्राकृतोनुं वर्गीकरण करेलुं छे : एटले, रंगभूमि उपर बोलाती दरेक बोली, ते ते बोलनार व्यक्तिनी माननीयतानी मात्रा अनुसार "भाषा" के "विभाषा" होई शके. तेथी ऊलटुं, नाट्येतर साहित्यमां वपरातो भाषाभेद "अपभ्रंश" लेखातो.

पान १२५ पर आखा प्राच्य संप्रदाय अने तेनां मत-मंतव्योनी वधारे सामान्य धोरणे विचारणा शरू थाय छे. पुरुषोत्तमनी कृतिनी नेपाळी हाथप्रत दर्शावे छे के आ संप्रदाय कांई नहि तो तेरमी सदीनी तो पहेलां ज फाल्यो-फाल्यो होवो जोईए; अने पुरुषोत्तम ज एनो स्थापक हतो एवुं कहेवा माटे आपणी पासे जरा पण पुरावो नथी : ऊलटुं, तेने केटलाक पुरोगामीओ हता एम मानवाने प्रयोजन छे. कारण के मार्कण्डेय के रामशर्मा कोई तेनो उल्लेख करता नथी. उपर कह्युं तेम, आ बधा जेने प्रमाण तरीके आगळ धरे छे ते शाकल्य ए पुरोगामीओमांनो एक होवो जोईए; दुर्भाग्ये तेना विशे आपणे कांई पण जाणता नथी.

आ संप्रदाय अन्यान्य स्थळेथी अनेक वस्तु ग्रहण करवाना वलणवाळो = संचयलक्षी छे. उपर कह्युं तेम, गीत्यात्मक (Lyrical) महाराष्ट्री वररुचि प्रमाणे प्रतिपादित करवामां आवी छे. नाटकनी भाषाओनी बाबतमां प्राच्य वैयाकरणोना मुख्य मूळ-आधारो तरीके नटोना उपयोग माटे घडी काढेला, प्राकृतने लगता आदेशो – जेमनो एक नमूनो ना ट्य शा स्त्र ना १७मा अध्यायमां जळवाई रह्यो छे – होवा जोईए : (महाराष्ट्री सिवायनी) "भाषाओ" अने "विभाषाओ"ना संबंधे ना ट्य शा स्त्र अने प्राच्य वैयाकरणो वच्चे रहेलुं

मळतापणुं बतावे छे के ए कृत्रिम – अथवा छेवटे परंपरारूढ तो खरी ज – नाट्यभाषाओनुं **प्राकृत** व्याकरण परना शास्त्रीय ग्रंथोमां बरोबर आवा ज – परापेक्षी अने शरती स्वरूपवाळा अने परिणामे टूंक समयमां वपराशलुप्त थवाने निर्मायेला – आदेशो द्वारा प्रतिपादन करवानो चीलो पडेलो. "अपभ्रंश" माटे – एटले के **महाराष्ट्री** सिवायना भाषाप्रकारो जेटला प्रमाणमां गीतकाव्यो (जे **नागर अपभ्रंशमां** खास रचातां प्रमाणनी भाषा माटे वपराता हता तेटला माटे – ते वेळा खास व्याकरणो हतां अने **प्राच्य वैयाकरणोए** तेमनो उपयोग करेलो एवुं आ **ग्रंथकर्त्रीने** प्रमाणसाध्य लागे छे. छेवटमां, ते धारे छे के **पैशाची** ए कथावार्ता माटे ज वपराती भाषा हशे. कथावार्ताना साहित्ये आरंभ(**बृहत्कथा !**)थी ज पोतानो विशिष्ट भाषाभेद **नक्की** कर्या लीधेलो : पछीनी बधी कृतिओ माटे आ आरंभनी कृति एक निदर्शनरूप बनी रही अने कोईए ते बोलीना नियमो लखी, **गीत्यात्मक** (Lyrical) अने नाटकप्रयुक्त बोलीओ परना ते वेळा प्रचलित व्याकरणोना छेडे वळगाडी दीधा. ए परंपरा **प्राच्य वैयाकरणो** सुधी ऊतरी आवी. आम **प्राच्य वैयाकरणो**, व्याकरणोना ए जुदा जुदा साहित्यप्रकारने लगता ग्रंथो रचवा माटे उपयुक्त बने तेवा नियमोना, बने तेटला संपूर्ण बनावेला संग्रहो छे. कोई पण लेखकने तेमांथी **हालने** धोरणे **महाराष्ट्रीमां** गाथा लखवानुं; **मृच्छकटिक** के **शकुन्तला** जेवा नाटकना **प्राकृत** अंशो लखवानुं; **अपभ्रंशमां प्राकृतपिङ्गल–सूत्र** के **भविसत्तकह** जेवां पद्यो के काव्यो रचवानुं; के **बृहत्कथानी** ढबनां कथानको लखवानुं: – जे प्रकारनुं जोईए ते प्रकारनुं शिक्षण मळी शके. आथी आ व्याकरणोनी सामग्रीनुं मूल्य, **प्राच्य वैयाकरणोए** जे विशिष्ट ग्रंथो पोतानां व्याकरणो रचती वखते नजर सामे राखेला तेमना पूरतुं ज छे (**वररुचिए** पोतानां सूत्रो **हाल** वगेरेने अनुलक्षीने रच्या होवानुं उपर कह्युं छे ते अहीं सरखाववो); आथी तेमनी **शौरसेनी**, तेमनी गणतरीमांथी बातल रह्यां होय तेवां केटलांक नाटकोनी **शौरसेनी** जेवी कोईक बाबतमां न होय तो ते माटे तेओ दोषपात्र ठरता नथी. एटले, **शिष्ट संस्कृतनां** नाटकोना प्राकृतभेदोनो, तेमनामां अमुक समान धोरण प्रमाणेनी एकरूपता लाववा माटे स्वरूपबदलो करवानो संपादकोने केटलो ओछो **हक** छे ए वस्तु स्पष्ट बने छे.

चोथा प्रकरणमां, संक्षिप्तसारना कर्ता **क्रमदीश्वरने** लीधो छे. तेना विशेनुं "ते **पश्चिम बंगाळनो होवो** जोईए अने **हेमचंद्र** (१०८८ - ११७२)

अने **बोपदेव** (१३मी सदी)नी वच्चे थयो होवो जोईए" ए **त्साखारीए** (Zachariae)नुं विधान खास उत्साह (अनुमोदन) विना टांकवामां आव्युं छे. तेना व्याकरणना पहेला सात अध्यायमां **पाणिनिनी अष्टाध्यायीनो** सार आपवामां आव्यो छे अने आठमो पुरवणीनो अध्याय प्राकृत उपर छे. **जुमर-नंदी** (के **जूमरनंदी**)—जेना उपरथी आ संप्रदाय **जौर** कहेवाय छे—कृत **रसवती** ए आ आखा ग्रंथ परनी टीका छे; ए **रसवती** उपर पण टीका लखायेली छे, पण ते एकथी सात अध्याय उपर ज: आनो **अर्थ** एम नथी करवानो के **प्राकृत** विभाग ए मूळ **संक्षिप्तसार**ना भाग तरीके न हतो. **राजेन्द्रलाल मित्रे** कर्युं छे तेम, आपणे **नारायण** विद्याविनोदना **प्राकृत-पाद**ने **संक्षिप्तसार**नी टीका गणवानी नथी. ए तो जेम **वसंतराजे** कर्युं छे तेम **वररुचिनी** ज कृतिनुं करवामां आवेलुं एक संस्करण छे.

१३२ अने पछीना पानपर, **प्राकृतपाद**नुं पृथक्करण करी आ हकीकत दर्शाववामां आवी छे. समग्र रीते जोतां **क्रमदीश्वरने** महान वैयाकरण कही न शकाय; **मुख्य प्राकृत** माटे ते **वररुचि** पर आधार राखे छे; तेमां य केटलीक वार **वररुचिनां** केटलांक सूत्रो अगत्यनां होवा छतां पण संक्षेपप्रेमने लीधे छोडी दीधां छे, ज्यारे घणीवार तो नहि जेवी अगत्यनी बाबतो पर नवनर विचारणा आपी छे. आ उमेराओ **हेमचंद्र**मांथी लीधेला नथी आवी **त्साखारीए**(Zachariae)ए आपेलो पूर्वसंधि तद्दन असंगत लागे छे). बीजा भाषाप्रकारोमां **क्रमदीश्वरे अपभ्रंश, शौरसेनी, मागधी** अने **पैशाचीनुं** अध्ययन कर्युं छे; **अर्धमागधीनो** तो मात्र उल्लेख ज कर्यो छे, अने नाटकप्रयुक्त भाषाभेदो (जे **भरते** उल्लेख्या छे ते)नो ते बे चार शब्दोमां निकाल लावे छे. जे **हेमचंद्र** पासे हता तेना ते ज मूळ आधार **क्रमदीश्वर** पासे होय तेम लागे छे.

हेमचंद्र अने तेनो **सिद्धहेम** ग्रन्थ ए **पांचमा प्रकरणनो** चर्चा विषय छे. **जैन** धर्मना आ प्रकाण्ड पंडित माटे ग्रंथकारने बहु समभाव नथी: तेनामां मुद्दल मौलिकता नथी एवो अभिप्राय ते आरंभमां ज जणावी दे छे. आ विधानना समर्थनमां **प्रभवचरित्र***(१३मी सदी)नुं टांचण आपवामां आव्युं छे. तेमां कहेवामां आव्युं छे के **हेमचंद्रे** (पोताना ग्रंथमां) आठ प्राचीन

* **प्रभावकचरित्रने** बदले अवलोकनकारनी शरतचूकथी **प्रभवचरित्र** नाम अपायुं लागे छे—भाषान्तरकार.

व्याकरणोनुं संकलन कर्युं छे. पान १५२ पर एवा दाखला देखाडवामां आव्या छे के जेमां हेमचंद्र पोताना मूळ आधारने खोटी रीते समज्यो छे. मुख्य प्राकृत माटे तेणे सीधो वररुचिनो ज उपयोग कर्यो छे. अने १५८ अने पछीनां पान पर बताव्युं छे तेम, हेमचंद्रना जे मूळ आधारो होय तेमांथी एक तो नमिसाधुए रुद्रटना **काव्यालङ्कार** (२।११–१२) परनी पोतानी टीकामां जेनो उपयोग कर्यो छे ते ज छे: नमिसाधुनी ए टीका इ. स. १०६९मां–एटले के हेमचंद्रना जन्म पहेलां वीशेक वरसे–लखाई हती. वररुचि तेम ज उपर्युक्त आधार उपरान्त, हेमचंद्रे जैन आगमग्रंथोने पण उपयोगमां लीधा छे. एमनी भाषाने ते 'आर्ष' कहे छे. अने तेमनी घणीय लाक्षणिकताओ पर मुख्य प्राकृत परना विभागमां नोंधो आपे छे. आ विषयमां तेणे सामान्य रीते दोष विनानी गणी शकाय एवी सामग्री आपी छे, पण आगमेतर ग्रंथोनी जैन महाराष्ट्री माटे तेणे एटली चीवट नथी देखाडी. ए ग्रंथोनो तेने सारी रीते परिचय हतो छतां प्राचीन व्याकरणकारोनी कृतिओमांथी तेने संकलन करवानुं होवाथी, तेमने माटे तेणे बीजी दरकार न करी. मात्र अहीं-तहीं केटलीक माहिती मूकी छे. आ रीते तेनुं मुख्य प्राकृत ए गाथानी अने महाकाव्योनी महाराष्ट्रीनो अने जैन आगमिक तेम ज आगमेतर महाराष्ट्रीनो खीचडो छे. आथी तेना व्याकरणनो उपयोग करवो ए साहसभर्युं छे; केम के ग्रंथोना वधारे विशाळ ज्ञानने लीधे महाराष्ट्रीनां हेमचंद्रे आदेशेलां स्वरूपोने महाराष्ट्रीनी जुदी-जुदी जातवार वहेंचणीमां वहेंची नाखवानुं शक्य बनतुं नथी.

हेमचंद्रनी पैशाचीनी बाबतमां ग्रंथकर्त्री एवुं धारे छे (पा. १७५ अने पछीनां) के तेणे आपेला खंडको (Extracts) लाकोते (Lacôte)ए सोमदेव अने क्षेमेन्द्रना मूळ आधार तरीके तर्कथी स्वीकारेला **बृहत्कथासरित्सागर**मांथी लेवामां आव्या छे, ज्यारे मार्कण्डेय तेना मूळ आधारो मारफत गुणाढ्यनी **बृहत्कथा** मांथी टांचण आपे छे. पछीनी वात करतां, अपभ्रंश ए, हेमचंद्रना प्रतिपादन प्रमाणे, बीजा व्याकरणकारोथी अजाणी एवी एकरूपता अने स्थिरता वाळो एक भाषाभेद छे. हेमचंद्रे टांकेला दोहा अमुक अंशे **सत्तसई**नी गाथाओने मळता छे अने तेमने मुस्लिम आक्रमणना काळमां मूकवा तरफ ग्रंथकारनुं वलण छे.

त्रिविक्रम अने वाल्मीकिसूत्रो ए छठ्ठा प्रकरणनो चर्चाविषय छे. तेमां

ग्रियर्सने स्थापित करेला (प्राकृत वैयाकरणोना) "प्रतीच्य संप्रदाय"नो पण समावेश थाय छे. ग्रंथकर्त्रीना मते आ संप्रदायने "दाक्षिणात्य" कहेवो ए वधारे युक्त छे. त्रिविक्रमनुं **प्राकृत व्याकरण** (१०८५ श्लोक के आर्याना बनेला बार पादमां वहेंचेला त्रण अध्याय) – तेम ज **प्राकृत व्याकरण वृत्ति** – ए **सिद्धहेमचंद्र**नो पद्यमां ढाळेलो एक नवो आकार ज छे. तेनो समय तेरमी सदी होवो जोईए. सोळमी सदीना मध्यनी आसपास लक्ष्मीधरे तेना उपर **षड्भाषाचन्द्रिका** नामनी टीका लखी अने तेना पछी थोडा वखते (सोळमी सदीना अंतमां) अप्पयदीक्षितकृत **प्राकृतमणिदीप** ए बीजी टीका मळे छे. सिंहराजनो **प्राकृतरूपावतार** वधारे प्राचीन होवानी संभावना छे अने गमे तेम पण ते अंशतः तो त्रिविक्रमथी स्वतंत्र छे ज. त्रिविक्रम अने सिंहराज वच्चेनो संबंध तेम ज परंपरा प्रमाणे वाल्मीकिकृत मनातां सूत्रो त्रिविक्रमनी कृति छे के नहि ए प्रश्न १८६ अने पछीनां पान पर तपास्यो छे.—समयना वहेवा साथे आ संप्रदायना **शब्दचिन्तामणि**कार शुभचंद्र जेवा केटलाक व्याकरणकारो गौणपणे हेमचंद्रनो आश्रय लेवानुं वलण दाखवे छे.

हवे चण्डने लगतुं छेल्लुं एटले के **सातमुं प्रकरण** आवे छे. चण्डना **प्राकृतलक्षण** (मूळे कदाच प्राकृतमां लखेलुं : सरखावो पा. २०८ अने पछीनां)नी बाबतमां ह्योर्न्ले (Hoernle)ना मत विरुद्ध ग्रंथकर्त्रीनो एवो मत छे के ते ग्रंथ धारवामां आव्युं छे एटलो प्राचीन नथी अने आपणी पासे ते तूटक रूपमां आवेल छे. वररुचिए सूत्रित करेली गीत्यात्मक (Lyrical) महाराष्ट्रीमां न मळी आवतां केटलांक रूपो अने नियमो चण्ड अने हेमचंद्रमां समानपणे मळे छे : आ विधान उपरथी आपणे एवुं अनुमान करी शकीए के चण्ड जैन व्याकरणकारोना एक प्राचीन संप्रदायनी परंपरा चालु राखे छे; अथवा वधारे चोकसाईथी कहीए तो तेनी कृति ए जैनोए खास पोता माटे रचेला एक व्याकरण ग्रंथनुं प्रतिबिंबित स्वरूप ज छे. ए व्याकरण ग्रंथनी सामग्रीनो केटलोक भाग – संभाव्यपणे **प्राकृतलक्षण**नो प्राचीनतम गर्भरूप अंश – हेमचंद्रे पोताना व्याकरणमां समाव्यो छे अने एम पण लागे छे (जो के ग्रंथकारथी आ बातनुं स्पष्ट कथन करवानी हिंमत नथी देखाडाती) के **प्राकृतलक्षण**नां सूत्रो "आर्ष" भाषानुं प्रतिपादन करे छे : कंई नहि तो तेनी टीकामांनां उदाहरणो तो जैन आगमग्रंथोमांथी लेवायां छे ए नक्की. **प्राकृतलक्षण**ना उक्त

गर्भरूप जैन अंशने आधारे ग्रंथकर्त्री अंतमां एवो ऊह (Hypothesis) बांधे छे के संभाव्यपणे, जैनोए ब्राह्मणपरंपरा सामे पोतानो व्याकरणी संप्रदाय ऊभो करवानो प्रयास करेलो; पण तेओ आवी वधारे पडता महान आशयवाळी योजनाने पहोंची वळी शक्या नहि : कोईए – संभाव्यपणे चण्ड पहेलां केटलीय सदीए – सामान्य व्याकरणी नियमोने स्पर्शती छूटक आर्याओ अने तेमनी वच्चे रखडतां सूत्रोने भेगां कर्यां अने तेमनी मारफत गीत्यात्मक (Lyrical) महाराष्ट्री, अपभ्रंश अने पैशाचीनां व्याकरणोथी स्वतंत्र एवुं जैन ग्रंथोनुं व्याकरण रचवानो प्रयास कर्यो; पण ते माटेनी साधन-सामग्री न तो समृद्ध हती के न तो तेनी योग्य रीते वर्गवहेंचणी करेली हती, एटले ए प्रयत्नना परिणामने "व्याकरण" एवुं नाम न आपी शकाय.

* * *

ग्रंथमां एकठी करेली हकीकतोना मोटा पुंजमांथी ग्रंथकर्त्री प्रवेशकमां केटलाक निर्णयो दोरे छे. सौ पहेलां तो, लासेन(Lassen)ना समयथी विद्वानोमां प्रतिष्ठित थयेला चार पूर्वग्रहोथी आपणने चेतता रहेवानुं कहे छे :–

(१) महाराष्ट्री ए प्रकृष्टं प्राकृतम् (दण्डी १।३४) छे, ते बीजी प्राकृतो करतां महाराष्ट्री प्राकृत संस्कृतने वधारे मळती छे एटला माटे नहि (केम के ए मान्यता खोटी छे), पण एटला ज माटे के तेनुं साहित्य वधारे समृद्ध छे;

(२) जेम जेम व्याकरणकारो वधारे अर्वाचीन तेम तेम तेमणे प्रतिपादित करेला भाषाभेदोनी संख्या पण वधारे मोटी – आ साचुं नथी. उपलब्ध ग्रंथोमां वररुचिनी कृतिने बाद करतां जे प्राचीनतम छे ते ना व्य शा ख ने, बाकीना व्याकरणो करतां वधारे संख्यामां भाषाभेदोनी माहिती छे. सामान्य रीते जे व्याकरणो रंगभूमिने अर्थे होय छे तेमां ज वधारे संख्यामां भाषाभेदो मळे छे; जैनोमां प्राकृतने महाराष्ट्रीनुं स्वरूप आपी देवा तरफ वलण छे;

(३) वररुचिना व्याकरणमां महाराष्ट्री सिवायनी बोलीओ माटे मात्र गणतर सूत्रो आपवामां आव्यां छे ए साचुं नथी. बधी बोलीओनुं मुख्य प्राकृतनी साथे आंतरिकपणे प्रतिपादन थयेलुं ज छे. ते ते भाषा माटेनां खास सूत्रो मात्र तेमना महाराष्ट्री साथेना तफावतना मुद्दाओ ज रजू करे छे;

प्रकारोमांथी आपणने एक जातनुं अशुद्धिशोधक (Corrective) साधन मळी आवे छे. धार्मिक व्यवहारमां वपराती भाषाओ, ए सामान्यरीते लौकिक बोलीओनी ज थीजी गयेली परंपराओ होय छे, अने तेमां मूळनां रूपो निर्जीव सज्जडतामां–पण सारी एवी चीवटथी–घणीवार सचवाई रहे छे. आवां रूपोने वररुचिनी मुख्य प्राकृतनां रूपो साथे सरखाववाथी अने तेमनी एकरूपता शोधी काढवाथी आपणने मूळनी लौकिक महाराष्ट्रीनां केटलांक लाक्षणिक बाह्यचिह्नो पाछां मळी शके. गीत्यात्मक (Lyrical) अपभ्रंशनी अने आख्यानप्रयुक्त पैशाचीनी स्थिति-मर्यादाओ पण लगभग गीत्यात्मक (Lyrical) महाराष्ट्रीनी मर्यादाओ जेवी छे; मात्र गीत्यात्मक (Lyrical) महाराष्ट्रीने छे तेवा धर्मव्यवहारनी पूरकरूप भाषा तरफथी मळता अशुद्धिशोधकनी तेने खोट छे. आवी बोलीओ विशे व्याकरणकारो अने हाथप्रतोने आधारे अभिप्राय बांधवो ए, इटालीनी कोई एक बोलीना मूळ-स्थानथी जुदा ज प्रदेशनी रंगभूमि पर ते बोलीना जाणकार तरीके मानी लेवामां आवेलो कोई माणस जे भाषा वापरे, तेना उपरथी ते बोली विशे अभिप्राय बांधवो एना जेवुं गणाय. अवाजना लाक्षणिक आरोह-अवरोह, केटलाक ध्वनिओना उच्चारणमां थोडाक जाणीता फेरफारो अने थोडाक स्थानिक रंगवाळा शब्दो :–आटलुं राष्ट्रीय भाषामांथी कोई प्रादेशिक बोलीनी सुबोध नकल बनावी काढवाना साधन-रूप छे; प्रेक्षकोना विनोद माटे ए पूरतुं छे, पण प्रादेशिक बोलीना खरा स्वरूपनुं आवा खीचडा परथी अनुमान करवा माटे भाषाशास्त्रीओने ते तद्दन जुजवुं पडे.

एटले, "संस्कृत पवित्र भाषा होई शृंगारी काव्यो माटे तेनो उपयोग थई शकतो न हतो एटले तेवा प्रकारनां काव्यो रचवा माटे शृंगारप्रेमी कविओए घडी काढेली कृत्रिम भाषाओ ते साहित्यकीय प्राकृतो" एवो पोतानां प्रायोगिक संशोधन-व्याख्यानो (Habilitation-schrift)मां पिशले (Pischel) व्यक्त करेलो अभिप्राय अमुक अंशमां तो, घणा लोको धारे तेटलो खोटो न पण होय; साधारण भाषाओ (Common Languages) केवी रीते उद्भवे छे अने विकसे छे ए विशेना भविष्यना ग्रंथोमां प्राकृतो माटे एक लंबाणवाळुं प्रकरण आपवुं घटे छे, अने ते कार्य ज्यारे करवामां आवशे, त्यारे तेवा पुस्तकना लेखकने श्रीमती नीती-दोल्चीनुं "प्राकृत व्याकरणकारो" (Le Grammairien Prakrits) वारंवार उथलाववुं पडशे.

*

['न्यु इन्डियन एन्टीक्वेरी' नामना मासिक पत्रना सन् १९३९ ना बे महिनाना अंकमां वित्तोरे पिजानी (Vittore Pisani) नामना रोमना विद्वाने लखेला इंग्रेजी लेखनो आ गुजराती अनुवाद करवा माटे, ए पत्रना संपादक महाशयोए आपेली अनुमतिना आभार साथे, आ लेख प्रकट करवामां आवे छे. —हरिवल्लभ भायाणी]

जैनेतर ग्रन्थोंपर जैन टीकाएं

[पूर्वलेखानुपूर्ति]

लेखक—श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटा

भारतीय विद्याके गतांकमें उपर्युक्त शीर्षकका जो मेरा लेख प्रकाशित हुआ है उसमें कुछ अशुद्धियां रह गई हैं और उसके प्रकाशित होनेके पश्चात् तदनुरूप अन्य कई नये ग्रन्थोंकी भी प्राप्ति हुई है, अतएव इस लेखमें पूर्व लेखकी अशुद्धियोंका संशोधन एवं विशेष ज्ञातव्य प्रकाशित किया जा रहा है।

अशुद्धि संशोधन—

पृ० २७४ पंक्ति ३ विशद शब्दके आगे 'विवेचन' शब्द छूट गया है।

पृ० २७४ कातंत्र पर प्रबोधमूर्तिकी वृत्तिके रचनाकालके संकेत 'र' के स्थानपर 'ई' छप गया।

पृ० २७४ कातंत्र विस्तारके कर्त्ता वर्द्धमान कर्णदेवोपाध्यायके शिष्य छपा है वहां 'शिष्य' शब्द नहीं चाहिए। यह उनका उपनाम प्रतीत होता है।

पृ० २७७ वृत्तरत्नाकर वृत्ति (कर्त्ता—समयसुन्दर)का रचना काल सं. १६४९ छपा है, वहां सं. १६९४ चाहिए।

पृ० २७७ पंडित आशाधरकी टीका काव्यप्रकाश पर बतलाई गई है, पर यह काव्यालङ्कार पर समझनी चाहिए।

पृ० २७९ विदग्धमुखमण्डनकी टीका (विनयसागर कृत)का रचना काल सं. १६९९ न होकर सं. १६६९ है।

पृ० २७९ रघुवंशपर सुमतिविजयकी टीकाका रचना काल वृत्तिमें इस प्रकार है:—"निर्विषइ रस शशि" और महीना कार्तिक न होकर फाल्गुन है।

पृ० २८२ खण्डप्रशस्तिके टीकाकार गुणविजय छपा है वहां गुणविनय चाहिए।

पृ० २८२ वृन्दावन काव्यका कर्त्ता मानाङ्क है।

पृ० २८३ मेघाभ्युदयका कर्त्ता मानाङ्क न हो कर 'केलि' है।

पृ० २८३ राक्षसकाव्यका वृत्तिकार जिनमहोपाध्यायके स्थानपर जिनमतोपाध्याय चाहिए।

पृ० २८६ पृथ्वीराज वेलिपर कुशलधीरके बालावबोधका समय सं. १६४६ न होकर सं. १६९६ है।

पृ० २८९ सन्निपात कलिकापर रूपचंद्रके टब्बेका समय सं. १७३१ न होकर सं. १८३१ संभव है।

पृ० २९० शतश्लोकीके आगे जो विवरण है वह टब्बेके आगे होना चाहिए।

पृ० २९० लघुजातक टबाका (कर्त्ता – खुशालसुन्दर) रचनाकाल सं. १८३९ मिगसर सुदि १२ सोमवार है।

पृ० २९० महादेवीसारणी पर दीपिकाका समय सं. १६९२ ज्ये. सु. ८ पद्मावती पत्तन है।

पृ० २९२ पंचतन्त्र भाषापद्यानुवादके कर्त्ताका नाम वैद्यराज न होकर वच्छराज है।

पृ० २८७ न्यायकंदली पंजिकाकी प्रतिपर उल्लेख सूचन छूट गया है। वहाँ उल्लेख – पीटर्सन रिपोर्ट नं. ३, पृ० २७२ से २७५ समझना चाहिए।

नवीन उपलब्धि –

१ कातंत्र.

(९) वृत्ति – दुर्गसिंहकृत, मंगलाचरणसे दुर्गसिंह जैन प्रतीत होते हैं।

२ मेघदूत.

(१२) सुखबोधिका – तपा रामविजय शिष्य श्रीविजयकृत। र. सं. १७०९ माघ सु. १०

(१३) सुखबोधिका – मोटजीतकृत।

(१४) मेघलता – कर्त्ता अज्ञात जैन।

(१५) शिष्यहितैषिणी – कर्त्ता लक्ष्मीनिवास।

ये चारों वृत्तियां भाण्डारकर इन्स्टीट्यूट – पूनामें सुरक्षित हैं।

३ किरातार्जुनीय.

(३) अवचूरि – महेन्द्रसूरि शि. मेघकुमारकृत ।

प्रति त्रुटित एवं उदेई भक्षित हमारे संग्रहमें है ।

४ वैद्यजीवन.

(४) टबा – पार्श्वचन्द्र गच्छीय वीरचन्द्रकृत । र. सं. १८६१ मि. सु. १४ मेदनीपुर (मेडता) ।

प्रति – कुशलचन्द्र गणि पुस्तकालय, बीकानेर, पत्र २३ ।

५ बालतंत्र. (मूल कर्त्ता – कल्याणदास)

(१) हिन्दी भाषा टीका – खरतर दीपचन्द्रकृत ।

प्रति – हमारे संग्रहमें है ।

६ गणितसार. (मूल कर्त्ता – श्रीधर)

(१) वृत्ति – उपकेशगच्छीय सिद्धिसूरि ।

प्रति – आचार्य शाखा ज्ञानभंडार, बीकानेर ।

अब जैन ग्रन्थोंपर जैनेतर विद्वानोंकी रचित टीकाओंकी यथाज्ञात सूची भी आवश्यक समझकर नीचे दी जाती है । इनमेंसे अधिकांश टीकायें २० वीं शताब्दीकी रचित हैं; अतः एतद्विषयक प्राचीन कृतियोंका अभाव ही है ।

(१) वाग्भटालङ्कार.

१ टीका – कृष्णशर्मा सं. १६२७　　(बडौदाराज लाइब्रेरी)

इस व्याख्याका नाम ‘ वीरमार्तण्ड ’ है ।

यह बाघेला महाराजा रामचंद्रके युवराज वीरभद्रके आदेशसे लिखी गई है ।

२ विवृति – अनंतभट्ट सुत गणेशकृत ।

३ संस्कृत व भाषाटीका – प्रो. उदयवीरकृत ।　　(प्रकाशित)

४ सान्वय भाषाटीका – राजवैद्य मुरलीधर शर्मा ।　(प्र०)

(२) **धनञ्जयनाममाला.**

१ पद्यानुवाद (उर्वशीनाममाला)– मिश्र शिरोमणिकृत सं. १६८० बुरहानपुर । (P. C. माहर सं.; बडौदा ला.)

२ भाषाटीका – घनश्यामदासकृत ।

(३) **वैद्यवल्लभ.**

१ भाषाटीका – स्वामी नरोत्तमदासजीके संग्रहमें है ।

२ भाषाटीका – राधाचंद्र चतुर्वेदी (प्र.)

(४) **नन्दीसूत्र टीका** – पण्डित जयदयालजी सं. १९५९ (बीकानेर भं.)

(५) **योगचिन्तामणि** (हर्षकीर्तिकृत) – भाषाटीका पं. दत्तराम चौबे (प्र.)

(६) **द्वाश्रयकाव्य** (धनपालकृत ?) टि. (प्र. निर्णयसागर प्रेस)

(७) **प्रबन्धचिन्तामणि**

१ गुजराती भाषान्तर पं. रामचंद्र दीनानाथ शास्त्री (प्र.)

(८) **यंत्रराज** (महेन्द्रसूरिकृत) पर जयपुर नरेश जयसिंह रचित वृत्ति सुनी जाती है ।

(९) **चंद्रोन्मीलन** टी. (उ. चतुरविजयजी)

(१०) **भुवनदीपक** मू. क. पद्मप्रभसूरि; भाषाटीका नथूरामशर्मा (प्र.)

(११) **मानसागरी पद्धति** मू. मानसागर

[१] भाषावृत्ति अनूपमिश्रकृत (प्र.)

[२] भाषावृत्ति वंशीधर (प्र.)

(१२) **वर्ष प्रबोध** मू. मेघविजयोपाध्याय (प्र.)

भाषा टीका हनुमत्शर्मा (प्र.)

*

प्रजाकी भलाई चाहनेवाले (राजा)को शिक्षाके लिए प्रबन्ध करना चाहिए, क्यों कि पढ़ी लिखी प्रजा तंदुरुस्ती और धनकी जिम्मेदारीको जान लेती है ।

ग्रामाणां सप्तलक्षेऽत्र भारतस्य निवासिनः ।
चत्वारिंशत् कोटिजनाः संवर्ध्याः शिक्षणादिभिः ॥ ६७ ॥

इस भारतवर्षके सात लाख गांवोंमें रहनेवाले चालीस करोड़ (ग्रामीण) जनोंको शिक्षा आदि द्वारा उन्नत करना चाहिए ।

अशिक्षिता असंपन्ना रक्षासुखविवर्जिताः ।
प्रजाः स्युर्यस्य राज्येऽत्र स जीवन् मृत उच्यते ॥ ६८ ॥

संसारमें जिसके राज्यमें प्रजा अपढ़, गरीब और रक्षाके सुखसे वञ्चित हो, वह राजा जीतेजी मरा हुआ कहा जाता है ।

रक्षा-न्यायकृते राज्यं प्रान्तेषु प्रविभज्य सः ।
रक्षार्थं हि प्रतिग्रामं ग्रामपालान्नियोजयेत् ॥ ६९ ॥

वह (राजा) रक्षा और न्यायके लिए राज्यको जिलोंमें बाँटकर, प्रत्येक ग्रामकी रक्षाके लिए चौकीदारोंको नियुक्त करे ।

पुनः कतिपयानां च ग्रामाणां वृन्दरक्षणे ।
गुल्मं स्थाप्यं प्रयत्नेन सुगमं मध्यसंस्थितम् ॥ ७० ॥

और फिर कुछ गांवोंके समूहकी रक्षाके लिए, प्रयत्न करके सुगम और बीचके स्थानपर, चौकी (या थाना) स्थापित करना चाहिए ।

ग्रामसंघं प्रतिग्रामं कुर्यादुन्नतिकाम्यया ।
ग्रामणीः स नियोक्तव्यो ग्रामे यः सर्वसंमतः ॥ ७१ ॥

(प्रजाकी) उन्नतिकी इच्छासे, प्रत्येक गांवमें ग्रामसंघ (पंचायत) बनावे, और जो (गांवमें) सबके संमानित हो उसे गांवका मुखिया नियुक्त करे ।

ग्रामणीर्ग्रामपालस्य साह्येनोपद्रवान् स्वयम् ।
ग्रामजाञ्शमयेत् तूर्णं दापयेच्च करादिकम् ॥ ७२ ॥

गांवका मुखिया खुद, गांवके चौकीदारकी सहायतासे, गांवके झगड़ोंको शीघ्र (ही) शान्त करे और राज्यका कर आदिक (गांववालोंसे राजपुरुषोंको) दिलवावे ।

गुल्माध्यक्षो यथाऽपेक्षं ग्रामाध्यक्षेण याचितः ।
शमयेद् ग्रामवर्गे स्वे समुत्पन्नमुपद्रवम् ॥ ७३ ॥

गांवके मुखियाद्वारा आवश्यकतानुसार प्रार्थना किया गया थानेदार अपने गांवोंके हल्केमें उठे झगड़ेको शान्त करे ।

तत्तद्-ग्रामायतो द्रव्यं ग्रामणी-ग्रामसंघयोः ।
निर्वाहार्थं प्रबध्नीयात् शेषा वेतनवृत्तयः ॥ ७४ ॥

गांवके मुखिया और गांवकी पंचायतके खर्चके लिए उसउस गांवकी आमदनीमें से रकम बांध दे, बाकी सब तनखा पानेवाले हों ।

स्थापनीयाः प्रतिग्रामं यद्वा परिषदो नृपैः ।
सभ्याः स्युर्ग्रामसंमान्याः सुव्यवस्थाविधौ क्षमाः ॥ ७५ ॥
स्थानीयाः कुशलाः प्रौढाः पर्याप्ताया दृढव्रताः ।
शिक्षिताः कार्यपटवोऽनघा न्यायरतास्तथा ॥ ७६ ॥
व्यापारोद्योगमर्मज्ञा विश्वस्ताश्चाप्यदूषिताः ।
प्रतिवर्षं त्रिवर्षं वा नियुक्ता ग्रामजैर्जनैः ॥ ७७ ॥ (तिलकम्)

अथवा राजाओंको हर गांवमें पंचायतें स्थापित करनी चाहिए । उनके सभासद गांवमें मान्य, अच्छा प्रबन्ध कर सकनेवाले, उसी गांवके रहनेवाले, चतुर, प्रौढ (३५–४० वर्षकी आयुवाले) उचित आमदनीवाले, नियमोंमें पक्के, पढे–लिखे, कामके योग्य, अच्छे आचारवाले, न्यायप्रेमी, व्यापार और उद्योग (धंधो) के नफे नुकसानको समझनेवाले, विश्वास योग्य, बदनामीसे बचे हुए और गांववालों द्वारा, हरसाल अथवा हर तीसरे साल नियुक्त किये हुए हों ।

निर्णया ये परिषदस्तेषां कार्यं प्रवर्तनम् ।
राज्याधिकारिभिः कार्यं सति चावश्यके पुनः ॥ ७८ ॥

फिर उपर्युक्त पंचायतके जो फैसले हों, आवश्यकता होने पर, राज्याधिकारी उन्हें कार्यरूपमें परिणत करें (उनकी तामील करावें) ।

ग्रामस्थानां परिषदां सभ्यैः स्वेषु सुसंमताः ।
प्रादेशिकीभ्यो निर्वाच्याः परिषद्भ्यः सभासदः ॥ ७९ ॥

गांवकी पंचायतोंके पंच अपनेमेंसे विशेष माननीय पुरुषोंको तहसीलकी पंचायतोंके लिए सभासद चुनें ।

तैस्तु प्रान्तसभाभ्यश्च तेषां सभ्यैः पुनः स्वयम् ।
राष्ट्रियायै परिषदे निर्वाच्याश्च सभासदः ॥ ८० ॥

और वे (तहसीलोंकी सभाके पंच) प्रान्त (जिलों) की सभाओंके लिए और उन (जिलोंकी सभाओं) के पंच फिर खुद राज्यकी (बडी) पंचायतके लिए सभासद चुनें।

नागरीयैरपि पुनः स्थाप्यैका परिषन्निजा ।
ततोऽपि सभ्या निर्वाच्या राष्ट्रियायै तु संसदे ॥ ८१ ॥

फिर नगरवासियोंको भी अपनी एक सभा स्थापित करनी चाहिए और उसमें से भी राज्यकी (बडी) पंचायतके लिए सभासद चुनने चाहिए ।

राष्ट्रिया परिषन्मुख्या विधाय नियमादिकम् ।
राज्ञे निवेदयेत् सोऽपि तद् विचार्य प्रवर्तयेत् ॥ ८२ ॥

राज्यकी बडी (मुख्य) पंचायत नियम (कायदे–कानून) आदि बनाकर राजाके सामने पेश करे (और) वह भी उसपर विचार कर उसका प्रचार करे ।

सभ्या अनुपयुक्ता ये तेषां निर्वाचकास्तु तान् ।
विसृज्य, सुजनान् योग्यान् स्थापयेयुस्ततः परम् ॥ ८३ ॥

जो सभासद निकम्मे हों, उनके चुननेवाले उनको हटा कर उसके बाद (उनके स्थानपर) दूसरे योग्य पुरुषोंको नियुक्त करें ।

कृषीवलानां संघाः स्युर्ग्रामे ग्रामे स्वकर्मणाम् ।
उन्नत्यर्थमथो तेषु स्थाप्यास्तैस्तु सभासदः ॥ ८४ ॥

गांव-गांवमें खेती करनेवालोंके (भी) अपने कामोंकी उन्नतिके लिए संघ (पंचायतें) हों, और उनमें वे लोग सभासद नियुक्त करें ।

व्यापारि-शिल्पि-खनक-श्रमिणामपि संसदः ।
पूर्वोक्तरीत्या निर्वाच्य सभ्यान् कुर्युः समुन्नतिम् ॥ ८५ ॥

व्यापारियों, कारीगरों, खान खोदनेवालों और मजदूरोंकी सभायें भी, पहले कही रीतिसे (पंचायतोंके लिए अपने अपने) सभासदोंको चुन कर उन्नति करें ।

तन्मुख्यान् प्रेषयेयुस्तान्निजान् प्रतिनिधीनिव ।
मुख्यायां संसदि प्राज्ञान् स्वार्थरक्षाहिते रताः ॥ ८६ ॥

अपने हितकी रक्षामें लगी वे सभायें उन चुने हुए सभासदोंमेंसे मुख्य और विद्वान् सभासदोंको अपने प्रतिनिधिकी तरह मुख्य सभा (पंचायत)में भेजें ।

राजा वाऽमात्यमुख्यो वा महापरिषदः स्वयम् ।
अध्यक्षो वा प्रधानः स्यात् कार्यनिर्धारकस्तथा ॥ ८७ ॥

मुख्य राजसभा (बड़ी पंचायत)का सभापति या मुखिया और उसके कार्योंको निश्चित करनेवाला स्वयं राजा या (उसका) प्रधान मंत्री हो ।

राजाऽभावे तु निर्वाच्योऽध्यक्षः परिषदा निजः ।
त्रीणि वा पञ्चवर्षाणि राजकार्याणि साधितुम् ॥ ८८ ॥

राजाके न होने पर, सभाको राजाके कामको सम्हालनेके लिए, तीन वर्ष या पाँच वर्षके लिए अपना अध्यक्ष चुन लेना चाहिए ।

प्रादेशिकी तु ग्राम्याया निर्णयेन्निर्णयान् पुनः ।
प्रादेशिक्याश्च प्रान्तीया, यदि स्यात् तत्र कारणम् ॥ ८९ ॥

यदि उनमें उचित कारण हो तो गाँवकी पंचायतके फैसलोंका प्रदेश (तहसील) की पंचायत और प्रदेशकी पंचायतके फैसलोंको प्रान्त (जिले)की पंचायत फिरसे निर्णय करे ।

राज्याधिकारिणश्चापि कुर्युस्तेषां निरीक्षणम् ।
कालेऽथैत्य प्रतिग्रामं शिक्षयेयुः सभासदः ॥ ९० ॥

और राज्यके अफसर भी समय पर प्रत्येक गाँवमें पहुँचकर उन (फैसलों) की जाँच करें और पंचोंको (आवश्यक कर्तव्य) सिखावें ।

विशिष्टास्त्वभियोगा ये तेषां कुर्युः सुनिर्णयम् ।
राज्याधिकारिणो न्याये नियुक्ताः सचिवास्तथा ॥ ९१ ॥

जो खास मुकदमे हों, उनका ठीक-ठीक फैसला राज्यके अफसर और न्यायके लिए नियुक्त मंत्री लोग करें ।

नियोज्याः पुरुषा अन्ये नित्यं भ्रमणतत्पराः ।
स्वयं गत्वा प्रतिग्रामं ये वीक्षेरन् व्यवस्थितिम् ॥ ९२ ॥

बराबर दौरा करनेवाले (कुछ) दूसरे पुरुष (भी) नियुक्त करने चाहिए, जो स्वयं प्रत्येक गाँवमें जाकर (वहांकी) हालतकी जाँच करें।

सूचयेयुर्लिखित्वाऽथ सर्वं स्वानधिकारिणः।
तेऽप्यमात्यानधिकृतांस्ते भूपं, चेदपेक्षितम् ॥ ९३ ॥

इसके बाद वे (पुरुष) सब बात लिखकर अपने अफसरोंको सूचित करें, वे (अफसर) भी उस कामके लिए नियुक्त मंत्रियोंको इत्तिला दे और वे (मंत्री), अगर आवश्यक हो तो, राजाको निवेदन करें।

समये तु स्वयं गत्वाऽध्यक्षो गुल्माधिकारिणाम्।
गुल्मकार्याण्यवेक्षेत मन्त्रिणं स्वं च सूचयेत् ॥ ९४ ॥

पुलिसका अफसर खुद समय पर जाकर पुलिसथानोंके कार्योंकी देख-भाल करे और अपने विभागके मंत्रीको (उसकी) सूचना दे।

स्थाप्या रक्षिगणाऽध्यक्षाः पुरेषु बलसंगताः।
दुर्गेषु कोट्टपालाश्च वीरा धीरा बलान्विताः ॥ ९५ ॥

नगरोंमें पुलिसके साथ कोतवालोंको नियुक्त करना चाहिए और किलोंमें फौजके साथ बहादुर और धीरवाले किलेदार रखने चाहिए।

नरेशो मन्त्रिभिः शिष्टैश्चारैश्च सुपरीक्षितैः।
सर्वं राज्यगतं ज्ञात्वा युक्तं यत् स्यात् तदाचरेत् ॥ ९६ ॥

राजा अनुभवी मंत्रियों और अच्छी तौरसे परीक्षा किये हुए गुप्तचरों द्वारा राज्यका सारा हाल जानकर जो (कार्रवाई) उचित हो, वह करे।

य उत्कोचपरा भृत्याः प्रजापीडनकारिणः।
सिद्धेऽभियोगे ते दण्ड्या ये चान्यायरताः पुनः ॥ ९७ ॥

जो कर्मचारी रिशवत खानेवाले, प्रजाको पीडा देनेवाले या जो फिर अन्याय करनेवाले हों, अपराध सिद्ध होनेपर, उन्हें दण्ड देना चाहिए।

वेतनं सर्वभृत्येभ्यः कुटुम्बभरणोचितम्।
देयं ततोऽपि तृष्णा चेदुत्कोचे तर्हि दण्डनम् ॥ ९८ ॥

सब कर्मचारियोंको कुटुम्बके भरण-पोषणके योग्य तनखा देनी चाहिए। इस पर भी यदि वे अधर्म (रिशवत आदि)की तरफ झुकें तो उन्हें दण्ड देना उचित है।

अक्षमो हि यदा कर्तुं कस्मादपि तु कारणात्।
राजा कार्यं, तदा तस्मिन् मुख्यामात्यं नियोजयेत् ॥ ९९ ॥

जब राजा किसी भी कारणसे राज्यका काम (प्रबन्ध) करनेमें असमर्थ हो, तब उस काममें प्रधान मंत्रीको नियुक्त करे।

कुर्वाणो वाऽप्यकुर्वाणो राजकार्यं नृपः स्वयम्।
अव्यवस्थाकृते दोषी स्वयमेव भवेद् ध्रुवम् ॥ १०० ॥

राजा स्वयं अपना काम करता हुआ या न करता हुआ भी प्रबन्धमें होनेवाली गडबडके लिए निश्चित रूपसे खुद ही दोषी होता है।

राजितो राजकर्तव्यै राजा सार्थपदो भवेत्।
स्वकर्तव्यमकृत्वैव करहृद् दस्युरेव सः ॥ १०१ ॥

राजाके कर्तव्यों (के पूरा करने) से शोभित राजा अपने पद (दर्जे या नाम) को सार्थक करनेवाला होता है। अपने कर्तव्यको पूरा न करके यों ही कर लेनेवाला वह (राजा) डाकू ही है।

विश्वस्तैर्मन्त्रिभिर्भूपो विजने यत्र मन्त्रयेत्।
प्रवेशस्तत्र वार्यः स्याच्छुक-सारिकयोरपि ॥ १०२ ॥

राजा भरोसेवाले मंत्रियोंके साथ जिस निर्जन स्थानमें बैठकर सलाह करे, वहां पर तोता और मैना (मनुष्यकी बोलीकी नकल करनेवाले पक्षियों) तकका भी प्रवेश रोक दिया जाना चाहिए।

अन्यैरज्ञातमन्त्रस्तु राजा सिद्धिमवाप्नुयात्।
व्यक्तमन्त्रः स साफल्यं नैति स्व राज्य-कर्मणि ॥ १०३ ॥

दूसरोंसे नहीं जानी गई सलाहवाला राजा सिद्धि प्राप्त करता है और दूसरोंसे जान ली गई सलाहवाला वह (राजा) अपने राज्य-कार्यमें सफलता नहीं पाता।

रहःस्थः स्वस्थचित्तः स संमन्त्र्याप्तैः स्वमन्त्रिभिः।
तत्प्रदर्शितमार्गाणामौचित्यं चिन्तयेत् स्वयम् ॥ १०४ ॥

एकान्तमें बैठा और स्थिरचित्त हुआ वह (राजा) अपने भरोसेवाले मंत्रियोंसे सलाहकर, उनके बतलाये रास्तोंके ठीक होनेके विषयमें स्वयं विचार करे।

श्रेयस्करं तु यत्कार्यमात्मनश्च कुटुम्बिनाम्।
राष्ट्रस्य भृत्यवर्गाणां मित्राणां च तदाचरेत् ॥ १०५ ॥

जो काम अपने, कुटुम्बियोंके, राज्यके, नौकरोंके और मित्रोंके लिए लाभदायक हो, वह (काम) करे।

भीतिदं परपक्षस्य स्वपक्षबलवर्धि यत्।
स्वतेजोवृद्धिमूलं च कर्म तन्नित्यमाचरेत् ॥ १०६ ॥

जो शत्रुकी तरफवालोंको भय देनेवाला हो, अपनी तरफवालोंकी शक्ति बढ़ानेवाला हो और अपने तेजकी वृद्धि करनेवाला हो, वह काम सदा करे।

विश्वस्तानप्रमत्तांश्च नियुज्य कुशलांश्चरान्।
ज्ञेया स्वेषां परेषां च मण्डलानां स्थितिः स्वयम् ॥ १०७ ॥

(राजाको) भरोसेवाले, सावधान और होशियार गुप्तचरोंको नियुक्त कर अपनी तरफवालों और शत्रुकी तरफवालोंकी हालत खुद जानलेनी चाहिए।

बलाबले सुविज्ञाय स्वात्मनश्च परस्य च।
संधि-यानासनं कार्यं सुविचार्यैव मन्त्रिभिः ॥ १०८ ॥

अपनी और शत्रुकी शक्ति और निर्बलताको ठीक तौरसे जानकर और मंत्रियोंसे पूरी सलाह करके ही मेल, चढ़ाई और अपनी रक्षाके लिए मोरचेबंदी करनी चाहिए।

साधयेत् साम-दानाभ्यां यथाशक्यं नृपः पुरा।
कर्मासिद्धेऽत्र भेदं वा दण्डं व्यवहरेत् क्रमात् ॥ १०९ ॥

राजा पहिले जहां तक हो समझा-बुझाकर और दे-दिलाकर काम सिद्ध करे। परन्तु कामके सिद्ध न होनेपर वहां क्रमसे (पहले) फूट और (फिर) दण्डका प्रयोग करे।

सामदानोपजापानां दण्डस्यापि प्रवर्तनम्।
पूर्वेऽसिद्धेऽपरस्याथ क्रमात् कार्यं यथोचितम् ॥ ११० ॥

समझाना, (रुपया आदि) देना, फूट डालना और दण्ड देना इनमेंसे क्रमसे पहलेके निष्फल होने पर, ठीक देखकर, उसके बादवालेका प्रयोग करना चाहिए।

शत्रु-मित्र-तटस्थेषु लोकेऽद्य विविधैर्भृशम्।
प्रचारैः किंवदन्तीनां पाश्चात्याः सिद्धिवादिनः ॥ १११ ॥

आजकल जगत्में पश्चिमके लोग (यूरोपवाले) शत्रुओं, मित्रों और तटस्थों (neutrals) में अनेक तरहकी अफवाहोंके अत्यधिक प्रचारसे मतलबका सिद्ध होना बतलाते हैं।

शत्रु-मित्र-तटस्थानां प्राग् विचार्यैव निर्णयः।
कार्यो, यतो न चान्ते स्यात् पश्चात्तापो विपत्तिषु ॥ ११२ ॥

पहलेसे सोचकर ही शत्रु, मित्र और उदासीन लोगोंका निर्णय करना चाहिए, जिससे अन्तमें विपत्तिके समय पछतावा न हो।

प्राग् विलोक्य फलं भूते कृतानां कर्मणां नृपः।
वर्तमाने भविष्ये च सुखदं कार्यमाचरेत् ॥ ११३ ॥

राजा पहले (ही) भूतकाल (बीते हुए समय) में किये कामोंके नतीजेको देखकर वर्तमानमें और आगे सुख देनेवाला काम करे।

शत्रुं जेतुमशक्तश्चेत्तर्हिसावाश्रयं श्रयेत्।
अन्यस्य राजवर्यस्य राष्ट्ररक्षाहिते रतः ॥ ११४ ॥

अपने राज्यकी रक्षाके हितमें लगा राजा यदि शत्रुको जीतनेमें असमर्थ हो तो (किसी) दूसरे श्रेष्ठ राजाकी शरण ग्रहण करले।

संदिग्धो हि जयो युद्धे, स्याद्देवार्थ-जनक्षयः।
तस्मादुपायत्रितये व्यर्थे सति तदाचरेत् ॥ ११५ ॥

युद्धमें विजय अनिश्चित ही होती है और धन व जनका नाश (तो) होता ही है। इसलिए साम, दान और भेद इन तीनों उपायोंके निष्फल होनेपर ही युद्ध करे।

ज्ञात्वा चारैस्तु शत्रूणां छिद्राणि च बलाबले।
परिस्थितिं च मार्गाणां यानं कार्यं जिगीषुणा ॥ ११६ ॥

जीतनेकी इच्छावाले (राजा) को गुप्तचरों द्वारा वैरियोंकी कमजोरियोंको, उनकी शक्ति और निर्बलताको और रास्तोंकी हालतको जानकर चढाई करनी चाहिए।

स्वमण्डलस्य दुर्गाणां मार्गाणां च सुनिश्चिताम्।
पुरा रक्षां विधायैव यानं कार्यं मनीषिणा ॥ ११७ ॥

पहले अपने राज्यकी, किलोंकी और रास्तोंकी निश्चित तौरपर रक्षा करके ही बुद्धिमान्को शत्रुपर चढाई करनी चाहिए।

कालस्तु शोभनो ज्ञेयस्तृण-धान्य-जलप्रदः ।
स्वास्थ्यदोऽबाधमार्गश्च सुनिश्चितजयप्रदः ॥ ११८ ॥

घास, अनाज और पानी प्रदान करनेवाला, आरोग्य देनेवाला, रास्तेकी रुकावटोंसे रहित, और निश्चयपूर्वक जयको देनेवाला समय (चढ़ाईके लिए) अच्छा समझना चाहिए ।

धूर्तेऽथ दाम्भिके मित्रे भृत्ये चापि तथाविधे ।
परचारेऽप्यवहितः स्याद् याने तु विशेषतः ॥ ११९ ॥

लुच्चे और कपटी मित्रसे, उसी प्रकारके सेवकसे और शत्रुके गुप्तचरसे भी होशियार रहे, और चढ़ाई करनेके समय (तो) इस बातका विशेष ध्यान रक्खे ।

यथाकालमनालस्यः परिणामं विचार्य यः ।
पूर्वं प्रवृत्तः कार्येषु स राजा सिद्धिमाप्नुयात् ॥ १२० ॥

जो राजा समयानुसार आलस्यको छोडकर और परिणाम (नतीजे) को सोचकर पहले (ही) काममें लग जाता है, वह सिद्धि पाता है ।

सेनानीभिस्तु कुशलैः सेनां स्वां सुपरिष्कृताम् ।
व्यूहेष्वनेकरूपेषु प्रविभाज्य सुयोधयेत् ॥ १२१ ॥

अपनी ठीक तौरसे (युद्धोपकरणों आदिसे) सजी हुई सेनाको, चतुर सेनानायकों द्वारा अनेक तरहके व्यूहों (फौजी शकलों) में बँटवाकर (शत्रुके साथ), अच्छी तरहसे लड़ावे (युद्धमें प्रवृत्त करे) ।

रक्षास्थानानि शत्रूणां तोपक्षिप्तैरयोमयैः ।
गोलैः प्रकाममाचूर्ण्याक्रमयेत् पत्तिभिस्ततः ॥ १२२ ॥

शत्रुओंके रक्षाके स्थानों (मोर्चों) को, तोपों से चलाये लोहेके गोलों द्वारा पूरी तौरसे चूर-चूर करके बादमें (उनपर) पैदल फौजोंसे आक्रमण करवावे ।

वायुयानपरिक्षिप्तैः प्रस्फोटनकरैरुत ।
बम्बैरयोमयैः पूर्वं रक्षास्थानं विनाशयेत् ॥ १२३ ॥

अथवा पहले हवाई जहाजोंसे गिराये फोडदेनेवाले लोहेके बमोंसे (शत्रुके) मोरचोंको नष्ट करदे ।

तोपनिर्युक्तगोलानां सान्द्रावृष्टिर्भवेद् यदा ।
यथास्थानं सुविस्तीर्य सैन्यमाक्रमयेत् तदा ॥ १२४ ॥

जब तोपोंसे दागे गये गोलोंकी भीषण (गहरी) वृष्टि होती हो, तब जहांतक जगह मिले सेनाको छितराकर आक्रमण करवावे ।

स्वल्पैर्वीरैः प्रयुध्येत राजा चेत्तर्हि संयुगे ।
संहृत्य विस्तृतिं तेषां कार्यमाक्रमणं रिपौ ॥ १२५ ॥

यदि राजा थोडेसे वीरोंको लेकर युद्ध करे तो रणस्थलमें उनके विस्तारको सिकोड़-कर शत्रुपर आक्रमण करे ।

युध्यमानाः समुत्साह्या वीरास्तु निजपक्षगाः ।
देशभक्त्या पदोन्नत्या दानैर्मानैः प्रशंसया ॥ १२६ ॥

युद्धमें लड़ते हुए अपनी तरफके वीरोंको देशभक्ति द्वारा, पद (दर्जे) की उन्नति द्वारा, दान (इनाम) द्वारा, इज्जतद्वारा और प्रशंसाद्वारा उत्साह दिलाना चाहिए।

दृढदुर्गगतं शत्रुमुपरुध्य समन्ततः ।
आनयेत् स्ववशं रुद्ध्वा तृण-शस्य-जलादिकम् ॥ १२७ ॥

मजबूत किलेमें बैठे हुए शत्रुको सब तरफसे घेर और घास, दाना और पानी आदि रोककर अपने वसमें लावे।

यानि नाना नवास्त्राणि विज्ञैराविष्कृतान्यहो ।
तेषां संहारशक्तिस्तु दृश्यते परमाद्भुता ॥ १२८ ॥

वैज्ञानिकोंने जो अनेक नवीन अस्त्र (यंत्रोंद्वारा फेंके जानेवाले शस्त्र) ढूंढ निकाले हैं, आश्चर्य है कि उनकी नाश करनेकी शक्ति बडी ही अजीब दिखाई देती है।

जलयानानि बहुशो यन्त्रसंचालितान्यथ ।
अस्त्रक्षेपीणि धावन्ति जलस्यान्तस्तथोपरि ॥ १२९ ॥

मशीनसे चलाये हुवे और (टारपिडो आदि) शस्त्र फेंकनेवाले बहुतसे जलयान (जहाज) भी जलके भीतर और ऊपर दौडते हैं।

नापेक्ष्यन्ते रणकृते रथाश्च करिणोऽधुना ।
यन्त्रचाल्या रथास्तेषां स्थानं नूनमगृह्णत ॥ १३० ॥

आजकल युद्धके लिए रथों और हाथियोंकी आवश्यकता नहीं मानी जाती। निश्चय ही उनका स्थान मशीनसे चलाये जानेवाले रथों (मोटारों आदि) ने ले लिया है।

किन्त्वद्यापि हयारोहाः पर्वतादिस्थलेष्विह ।
क्षमत्वादुपयोज्यन्ते दुर्गमेषु कदाचन ॥ १३१ ॥

किन्तु संसारमें इस समय भी घुडसवार (सैनिक) पहाड आदि दुर्गम स्थानोंपर काम करनेमें समर्थ होनेसे कभी कभी काममें ले लिये जाते हैं।

विधानमद्य युद्धानामामूलं परिवर्तितम् ।
नव्यास्त्रैर्नव्यविधिभिर्नव्यरक्षणसाधनैः ॥ १३२ ॥

आजकल नवीन अस्त्रोंने, नवीन रीतियोंने और रक्षाके नवीन साधनोंने युद्धोंका तरीका बिलकुल ही बदल दिया है।

शिक्षितं नव्यरीत्येह नव्यास्त्रैश्च विभूषितम् ।
यस्य सैन्यं स राजाऽद्य विजयी नाऽत्र संशयः ॥ १३३ ॥

संसारमें जिस राजाकी सेना नई रीतिसे सिखाई हुई और नये अस्त्रोंसे सुसज्जित होती है, वही राजा इस समय विजय प्राप्त करता है, इसमें संदेह नहीं है।

परराष्ट्रं विजित्याथ स्ववशं राजवंशजम् ।
तत्रत्यं स्थापयेद् राज्ये प्रतिज्ञाप्य करार्पणम् ॥ १३४ ॥

इसके बाद शत्रुके राज्यको जीतकर अपने आज्ञाकारी वहींके (किसी) राजवंश वालेको, कर देते रहनेकी प्रतिज्ञा करवाकर, गद्दीपर बिठा दे।

संमान्यास्तान् स तत्रस्थान् प्रजाः संतोषयंस्ततः।
स्वानुगं मन्त्रिणं कृत्वा वीरसंमानमाचरेत् ॥ १३५ ॥

फिर इसके बाद वह (राजा) वहांके (जीते हुए राज्यके) माननीय लोगोंका संमान कर, प्रजाजनोंको सन्तुष्ट करता हुआ, मंत्रीको अपनी तरफ करके, वीर योद्धाओंका संमान करे।

सन्मैत्रीह मता श्रेष्ठा लोके स्वर्ण-धरादितः।
वीरैः कृतज्ञै रिपुभिरपि कुर्यादतो हि ताम् ॥ १३६ ॥

जगत्में सुवर्ण और पृथ्वी आदिसे भी सज्जनोंके साथकी मित्रता श्रेष्ठ मानी गई है। इसलिए वीरों और किए हुए उपकारको माननेवाले शत्रुओंके साथ भी मित्रता करे।

ज्ञानस्य सुजनत्वस्य दयायाश्चातिरेकतः।
औदासीन्यं भवेद् राज्ञस्ततोऽत्राति परित्यजेत् ॥ १३७ ॥

ज्ञान, सज्जनता और दयाकी अधिकतासे राजा उदासीन हो जाता है, इसलिए इन बातोंमें अत्यधिकता छोड़ दे।

व्यायामसुदृढाङ्गोऽसौ स्नानपूततनुस्तथा।
संपाद्य राजकार्यं स्वं कालेऽन्तःपुरमाविशेत् ॥ १३८ ॥

व्यायाम (कसरत) करनेसे पुष्ट (मजबूत) शरीरवाला और स्नान करनेसे पवित्र (साफ) देहवाला वह (राजा) अपने राज्यकार्यको समाप्त कर, समयपर अन्तःपुर (जनाने) में प्रवेश करे।

सूपकारैस्ततश्चाप्तैः सुपक्वं भोजनं शुचि।
विधिना भक्षयित्वा स विश्राम्येद् भार्यया सह ॥ १३९ ॥

इसके बाद वह (राजा) भरोसेके भोजन बनानेवालों द्वारा अच्छी रीतिसे पकाये हुए पवित्र (शुद्ध) भोजनको नियमपूर्वक भक्षण करके रानीके साथ विश्राम करे।

अपराह्णेऽथ सामात्यो राजकार्यरतः पुनः।
निरीक्षेत समस्तानि राज्याङ्गानि यथाविधि ॥ १४० ॥

इसके बाद दिनके पिछले भागमें फिर मंत्रियोंके साथ राज्यकार्यमें लगा हुआ (राजा) राज्यके सब अङ्गों (राजा, मंत्री, मित्र, खजाना, राज्यकी भूमि, किले और सेना) का नियमानुसार निरीक्षण करे।

यथाकालं ततः स्मृत्वा स्वस्थचित्तो जगत्पतिम्।
स्वयं रहसि दूतानां संदेशाञ् शृणुयाद् नृपः ॥ १४१ ॥

इसके बाद, स्वस्थचित्तवाला राजा समयानुसार जगदीश्वरका स्मरण कर एकान्तमें स्वयं दूतोंके संदेश सुने।

भोज्यं भोक्तुं ततः स्वान्तःपुरं हि प्रविशेत् पुनः।
शयीत तत्र काले च गान-वाद्यगतश्रमः ॥ १४२ ॥

इसके बाद (वह) भोजन करनेके लिए फिर अपने अन्तःपुर (जनाने) में जावे और वहां गाने बजानेसे स्वस्थ हुआ (थकावटसे मुक्त हुआ) निश्चित समयपर शयन करे।

मुहूर्तेऽथ पुनर्ब्राह्मे समुत्थाय यथाविधि।
नित्यकृत्यानि संपाद्य राज्यकार्यरतो भवेत् ॥ १४३ ॥

इसके बाद फिर प्रातःकाल जल्दीसे उठ, और यथा नियम नित्यके कामोंको पूरा कर, राज्य कार्योंमें लग जाय।

यो नन्दनोऽजनि मुकुन्दमुरारिसूरे-
र्विश्वेश्वरः किल सतीमणि-चाँद्रान्याम्।
पूर्तिं स सप्तममिहानयताऽधिकारं
विश्वेश्वरस्मृतिगतं नृपनीतिसारम् ॥ १४४ ॥

पण्डित मुकुन्दमुरारिजीके, सती श्रेष्ठा चांदरानीजीके गर्भद्वारा जो विश्वेश्वर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ उसने, यहां पर, विश्वेश्वर स्मृतिमेंका राजनीतिका साररूप सातवां अधिकार समाप्त किया।

*

विश्वेश्वरस्मृतिः।

*

दशमोऽधिकारः।

जन्मना कर्मणा वा यो ब्राह्मणो धर्मनिष्ठितः।
स क्षत्रवैश्यशूद्रेभ्यस्तत्तत्कर्तव्यमादिशेत् ॥ १ ॥

जन्मसे या कर्मसे, जो धर्ममें पूरी तौरसे विश्वास रखनेवाला ब्राह्मण हो, वह क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रोंको उन-उनके कर्तव्यको बतलावे।

विवाहः सर्ववर्णानां सवर्णो मिथ उत्तमः।
मिथ एवमनूढानां श्रेष्ठः संतानसिद्धये ॥ २ ॥

सब वर्णोंका आपसमें समान वर्णवाला विवाह ही उत्तम है। इसी प्रकार संतानकी प्राप्तिके लिए बिन ब्याहे स्त्री-पुरुषोंका आपसका विवाह भी श्रेष्ठ है।

सवर्णाद्धीनवर्णाभिः स्त्रीभिश्चोपयमास्तु ये।
अनुलोमा भवेयुस्ते प्रतिलोमा विपर्ययात् ॥ ३ ॥

अपनेसे नीचे वर्णवाली स्त्रियोंके साथ जो विवाह होते हैं, वे अनुलोम (विवाह) होते हैं (कहाते हैं), और इससे उलटा होनेसे (अर्थात्-अपनेसे ऊंचे वर्णवाली स्त्रियोंके साथ विवाह होनेसे) प्रतिलोम विवाह कहाते हैं।

अनुलोमा विवाहास्तु शूद्रावर्जं द्विजन्मनाम्।
शास्त्रेषु संमताः किन्तु प्रतिलोमा विवर्जिताः ॥ ४ ॥

शास्त्रोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके शूद्रा स्त्रीके साथके विवाहको छोड़कर, अन्य अनुलोम विवाहोंको मान्य समझा है; परन्तु प्रतिलोम विवाहोंको वर्जित माना है।

विवाहाः किन्तु लभ्यन्ते प्रतिलोमा अपि क्वचित्।
यथा नीपस्य नृपतेर्विवाहः शुककन्यया ॥ ५ ॥

परन्तु कहीं-कहीं प्रतिलोम विवाह भी मिलते हैं। जैसे राजा नीपके विवाहका शुकदेवकी कन्या (कृत्वी) से होना।

सवर्णास्तु त्रयः पुत्रास्त्रयश्चाप्यनुलोमजाः।
संमताः स्मृतिशास्त्रेषु द्विजानां समधर्मिणः ॥ ६ ॥

स्मृति-शास्त्रोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके अपने-अपने वर्णकी स्त्रियोंसे उत्पन्न हुए तीन (सवर्ण) पुत्रों और अनुलोम विवाहोंसे (ब्राह्मणसे क्षत्रियाणी और वैश्य स्त्रीमें और क्षत्रियोंसे वैश्य स्त्रीमें) उत्पन्न हुए तीन पुत्रोंको अपने-अपने पिताके धर्मका अधिकारी माना है।

विविधा जातयो जाताः प्रतिलोमानुलोमकैः।
विवाहैर्भारते वर्ण-चतुष्कस्यात्र निश्चितम् ॥ ७ ॥

इस भारतवर्षमें निश्चय ही चार वर्णोंके प्रतिलोम और अनुलोम विवाहोंसे अनेक जातियां उत्पन्न हुई हैं।

देशाचारविभेदाभ्यां कारणैरपरैरपि ।
जातीनां ववृधे संख्या सर्वस्मिन्नपि भारते ॥ ८ ॥

सारे भारतवर्षमें देश और रिवाजके भेदसे और दूसरे कारणोंसे भी जातियोंकी संख्या बढगई है ।

जातीनां चोपजातीनामासन्नत्रिसहस्रकाः ।
भारते गणना ज्ञाता सांकर्येण परस्परम् ॥ ९ ॥

भारतवर्षमें आपसकी मिलावटसे जातियों और उपजातियोंकी संख्या करीब तीन हजार जानी गई है ।

अतोऽद्य जातिबन्धोऽयं निष्फलत्वमुपागतः ।
शिथिलश्चाऽपि संजातो भारते प्रतिभारते ॥ १० ॥

इसीसे आजकल विचारशील भारतमें यह जातिबन्धन निष्फल हो गया है और ढीला भी पड गया है ।

सवर्णासु समुत्पन्ना द्विजातीनां सुतास्तु चेत् ।
सावित्रीतः परिभ्रष्टाः शास्त्रे व्रात्याः प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके अपने वर्णकी स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए पुत्र, यदि यज्ञोपवीत संस्कारसे हीन हों तो शास्त्रमें 'व्रात्य' (संस्कार या धर्मसे हीन) कहे गये हैं ।

चौड्रद्रविडपौण्ड्रांश्च काम्बोजान् यवनाञ्शकान् ।
पारदान् पह्लवांश्चीनान् किरातान् दरदान् खशान् ॥ १२ ॥
क्षत्रियत्वेन जग्राह मनुः शास्त्रे निजे ततः ।
वृषलत्वं क्रियालोपान्मेने तेषां स निश्चितम् ॥ १३ ॥ (युग्मम्)

मनुने अपने शास्त्र (मनुस्मृति) में चौड, द्रविड, पौण्ड्, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खशोंको क्षत्रिय-रूपसे ग्रहण किया है । उसके बाद उनकी यज्ञोपवीत आदिकी क्रियाओंके नष्ट हो जानेसे उनका निश्चित-रूपसे पतित (शूद्र) होना माना है ।

आर्याणां वाऽप्यनार्याणां स्यान्तु कामं गिरं द्विजाः ।
क्रियालोपवशादेव तान् दस्यून् मन्यते मनुः ॥ १४ ॥

द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) चाहे आर्योंकी भाषा बोलें चाहे अनार्योंकी भाषा, मनु तो उन्हें धार्मिक क्रियाओंके नष्ट होनेसे ही पतित मानते हैं ।

परिवर्तिनि कालेऽद्य क्रियालोपान्न जातितः ।
कोऽपि भ्रश्यति चेद् भ्रश्येन् म्लेच्छधर्मपरिग्रहात् ॥ १५ ॥

बदलते रहनेवाले समयमें आजके दिन धार्मिक क्रियाके छोड देनेसे कोई भी जातिसे पतित (बाहर) नहीं होता । यदि पतित होता है तो म्लेच्छ धर्मोके ग्रहण करनेसे (ही) पतित होता है ।

परं सोऽप्यनुतप्येत् सत्येन मनसा ध्रुवम् ।
प्रायश्चित्तैः पुनस्तर्हि शुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ १६ ॥

परन्तु यदि वह (जातिसे च्युत हुआ पुरुष) भी निश्चित तौर पर सच्चे मनसे पछतावा करता हो तो प्रायश्चित्तोंसे फिर, बिना संदेहके शुद्ध हो जाता है।

प्रतिलोमजकर्माणि मनुनोक्तानि यानि तु ।
न तानि सूपयोगीनि कालेऽस्मिन् परिवर्तिनि ॥ १७ ॥

मनुने प्रतिलोम (अपनेसे ऊंचे वर्णकी स्त्रीके साथ विवाहसे उत्पन्न हुई) सन्तानके लिए जो कर्म कहे हैं, वे बदलनेवाले इस समयमें विशेष उपयोगी नहीं हैं।

जातीनां मिश्रणं यद्वत् कर्मणां तत्तदेव हि ।
संजातं कर्मजातीनां संबन्धस्तु ततो गतः ॥ १८ ॥

जिस प्रकार जातियोंकी एक दूसरीके साथ मिलावट हो गई है, उसी प्रकार कर्मोंकी भी, निश्चय ही आपसमें मिलावट हो गई है। इसीसे कर्मों और जातियोंका संबन्ध नष्ट हो गया है। (अर्थात्—अब किसी खास जातिका कोई खास काम नहीं रहा है।)

अस्वच्छजीवना येऽद्य निन्द्यकर्मरताश्च ये ।
ते बहिर्वसतेः स्थाप्याः सलिलानिलदूषकाः ॥ १९ ॥

आजकल जो गंदा जीवन-निर्वाह करते हैं और जो निन्दित काम करते हैं, वे जल और वायुको दूषित करनेवाले लोग बस्तीसे बाहर बसाये जाने चाहिए।

अज्ञातजातिवर्णं तु नरं तत्कर्मभिर्बुधः ।
जानीयान्निश्चितं लोके सत्यमित्युक्तवान् मनुः ॥ २० ॥

बुद्धिमान् मनुष्य संसारमें अज्ञात जाति या वर्णवाले पुरुषको उसके कर्मोंसे निश्चयपूर्वक जान ले, यह मनुने सत्य ही कहा है।

अहिंसा त्रिविधा सत्यं दमाऽस्तेये पवित्रता ।
इति वर्णचतुष्कस्य धर्मोऽत्र मनुनोदितः ॥ २१ ॥

तीन प्रकारकी (मन, वाणी और कर्मसे) अहिंसा, सत्य, इन्द्रियोंका दमन चोरीसे परहेज और पवित्रता—मनुने यहां पर (संसारमें) यह चारों वर्णोंका धर्म कहा है।

संबन्धैरुच्चवर्णानां लोके पारशवादयः ।
पुरुषे सप्तमे यान्ति द्विजत्वं मनुरब्रवीत् ॥ २२ ॥

पारशव (ब्राह्मणसे ब्याही शूद्राका पुत्र) आदि उच्च वर्णोंके साथके संबन्धोंसे सातवीं पीढीमें ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य बन जाते हैं ऐसा मनुने कहा है।

उच्चकर्मरतः शूद्रो ब्राह्मणो नीचकर्मकृत् ।
उभयोरुच्चकर्मैव श्रेयान् नो नीचकर्मकृत् ॥ २३ ॥

अच्छे काम करनेवाला शूद्र और बुरे काम करनेवाला ब्राह्मण—इन दोनोंमें अच्छे काम करनेवाला ही श्रेष्ठ है, बुरे काम करनेवाला नहीं।

केचिद् बीजं प्रशंसन्ति केचित् क्षेत्रमुभे परे।
उभयोः शुद्धयोर्या स्याज्जनिः सा सर्वसंमता ॥ २४ ॥

कोई बीज (पिताके वीर्य) की प्रशंसा करते हैं, कोई खेत (माता) की और कोई इन दोनोंकी। (परन्तु) पिता और माता दोनोंके शुद्ध (एक वर्ण या जातिके) होते हुए जो सन्तान हो, वह सर्वमान्य होती है।

यागाऽध्ययनदानं चादानाऽध्यापनयाजनम्।
मनुनाख्यायि विप्राणां क्रमात् कर्म च जीवनम् ॥ २५ ॥

यज्ञ करना, पढना, दान देना, दान लेना, पढाना और यज्ञ कराना मनुने क्रमसे ब्राह्मणोंके काम और आजीविका कही है।

यजनाध्ययने दानं क्षात्रं धर्मं स उक्तवान्।
रक्षा वृत्तिः पुनस्तेषां विज्ञेया सर्वसंमता ॥ २६ ॥

उस (मनु) ने यज्ञ करना, पढना और दान देना क्षत्रियका धर्म कहा है और उनकी सबसे मानी हुई आजीविका रक्षाका काम जानना चाहिए।

पठनं च सवो दानं वैश्यधर्मो मनूदितः।
वृत्तिश्च कृषिवाणिज्ये पशुपालनवर्धने ॥ २७ ॥

पढना, यज्ञ करना और दान देना—मनुका कहा वैश्यका धर्म है और उसकी जीविका खेती, व्यापार, पशुओंका पालन और वृद्धि है।

ज्ञानार्जनं तु विप्रस्य रक्षणं क्षत्रियस्य च।
व्यापारश्चाऽथ वैश्यस्य कर्म मुख्यं मतं बुधैः ॥ २८ ॥

समझदार लोगोंने विद्या (या ज्ञान) प्राप्त करना ब्राह्मणका, रक्षा करना क्षत्रियका और व्यापार करना वैश्यका मुख्य काम माना है।

संभवेत् सुखवृत्तिर्नो शास्त्रोक्तैः कर्मभिर्यदि।
अन्योन्यवृत्तितस्तर्हि जीवेत्त्यक्तदुराग्रहः ॥ २९ ॥

यदि शास्त्रोंमें कहे अपने-अपने कामोंसे सुखपूर्वक गुजारा न हो सके तो, झूठे हठको छोडकर, एक दूसरेकी वृत्ति(पेशे)से जीवन निर्वाह करे।

भूमिगर्भगतानां हि जीवानां नाशशङ्कया।
निन्दन्ति कृषिमर्थ्यां ये न ते तत्त्वार्थबोधिनः ॥ ३० ॥

जो लोग पृथ्वीके भीतर रहनेवाले जीवोंके नाशकी शङ्कासे, चाहने योग्य (श्रेष्ठ) खेतीकी निन्दा करते हैं, वे असलियतको समझनेवाले नहीं हैं।

वैराद्कारणाद्वापि या हिंसा सा विनिन्दिता।
नो चेदुच्छ्वासनिःश्वासक्रियाऽपि स्याद्सभवा ॥ ३१ ॥

दुश्मनीसे या बिना कारण जो हिंसा की जाती है, वह बुरी कही जाती है। नहीं तो (यदि ऐसा न माना जाय तो) साँस लेना भी अति कठिन हो जाय (क्यों कि साँस भीतर खींचने और बाहर निकालनेसे वायुमें स्थित सैंकडों सूक्ष्म जीवोंका प्रतिक्षण नाश होता रहता है।)

अशुचीन्यथ निन्द्यानि क्रौर्यमिश्राणि वा पुनः ।
कर्माण्येवाऽत्र वर्ज्यानि न दोषोऽस्त्यन्यकर्मसु ॥ ३२ ॥

यहां पर अपवित्र, निन्दित (बुरे) और (फिर) क्रूरता (निर्दयता) से भरे कामोंको ही वर्जित माना हैं, दूसरे कामोंमें दोष नहीं है ।

भिक्षां परित्यजेत्तावत् दानं चाऽनुचितं भुवि ।
यावदुद्योगरक्ष्यं स्याज्जीवनं पापवर्जितम् ॥ ३३ ॥

जब तक पृथ्वी पर उद्योग (कोशिश) करनेसे पापसे मुक्त (निष्कलङ्क) जीवनका निर्वाह हो सके, तब तक भीखका मांगना और अनुचित दानका लेना छोड दे ।

परम्परागतं धर्मं यथाशक्यं न विस्मरेत् ।
मिथ्याचाराश्च ये तस्मिंस्तान् सर्वान् सुतरां त्यजेत् ॥ ३४ ॥

जहां तक बने बाप-दादोंसे चले आते हुए धर्मको न भूले । (परन्तु) उसमें जो झूठे (बनावटी) आचार (आडंबर) हों, उन सबको पूरी तौरसे छोड दे ।

निजस्मृतौ हि मनुना प्रसक्तोद्धृतिपूर्वकम् ।
आपत्कालेऽत्र मर्यादा भक्ष्याभक्ष्यस्य वर्जिता ॥ ३५ ॥

मनुने अपनी स्मृतिमें घटनाओंको उद्धृत करते हुए, यहां पर, आपत्तिके समय खाने लायक और न खाने लायक वस्तुओंकी मर्यादा (सीमा) का निषेध (सूचित) किया है । (अर्थात्—आपत्ति कालमें मर्यादाका उल्लङ्घन भी क्षम्य माना है ।)

व्यापाराद् वृद्धितो वापि दायतो भूनिधेः श्रमात् ।
जयाच्चाप्तोऽर्थ आख्यातः श्रेष्ठः क्वापि प्रतिग्रहात् ॥ ३६ ॥

व्यापारसे, सूदसे, बाप-दादाके धनसे प्राप्त हिस्सेसे, जमीनसे निकले खजानेसे, महनत-मजदूरीसे और शत्रु पर विजय प्राप्त करनेसे मिला धन और कहीं दानसे मिला धन (भी) श्रेष्ठ माना गया है ।

विद्या शिल्पं कृषिर्वृद्धिर्वाणिज्यं पशुपालनम् ।
वैतनिक्यं श्रमः सेवा नवैता वृत्तयः सताम् ॥ ३७ ॥

सज्जन पुरुषोंके लिए विद्या, कारीगरी, खेती, सूद, व्यापार, पशु-पालन, नियत तनख्वाकी नौकरी, महनत-मजदूरी और (बिना नियत वेतनकी) सेवा—ये नौ जीवन-निर्वाहके जरिये हैं ।

चाण्डालादीनपि नरो मनुष्या इति चिन्तयन् ।
तिरस्कुर्यान्न लोकेऽस्मिञ्शूद्राणां तु कथैव का ॥ ३८ ॥

इस संसारमें पुरुष चाण्डालों आदिको भी, मनुष्य हैं ऐसा सोचकर, अपमानित न करे, फिर शूद्रोंके अपमानकी तो बात ही कैसी ।

शूद्रैरपि यथाशक्यं विद्याविरहितैः स्वयम् ।
सेव्या द्विजातयो भक्त्या विद्वद्भिस्त्वन्यवृत्तयः ॥ ३९ ॥

अपढ शूद्रोंको भी खुद भक्तिसे यथा-सामर्थ्य ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंकी सेवा करनी चाहिए और विद्वान् शूद्रोंको अन्य कार्योंसे जीवन-निर्वाह करना चाहिए ।

शूद्रादयोऽप्यमन्त्राणि सत्कर्माणि निरन्तरम् ।
कुर्युर्जगति तेषां तु मन्त्रत्यागेऽपि न क्षतिः ॥ ४० ॥

संसारमें शूद्र आदि भी बिना वेदमन्त्रोंके सदा अच्छे काम करें। उनके मन्त्रोंके छोड देने पर भी कोई हानि नहीं होती।

श्रेष्ठाऽऽचारैर्विचारैश्च जीवो याति समुन्नतिम् ।
आम्नायानां च धर्माणां नाऽपेक्षा तत्र संमता ॥ ४१ ॥

जीवात्मा उच्च (अच्छे) आचरण और विचारोंसे उन्नतिको प्राप्त होता है। वहां संप्रदायों और धर्मोंकी जरूरत नहीं मानी गई है। (अर्थात् आत्माकी उन्नतिके लिए किसी खास संप्रदाय या खास धर्मकी आवश्यकता नहीं है।)

यो नन्दनोऽजनि मुकुन्दमुरारि-सूरे-
र्विश्वेश्वरः किल सतीमणि-चाँदरान्याम् ।
साऽशेषवर्णविधिरत्र समापि तेन
विश्वेश्वरस्मृतिगतो दशमोऽधिकारः ॥ ४२ ॥

पण्डित मुकुन्दमुरारिजीके, सतीश्रेष्ठा चाँदरानीजीके गर्भद्वारा, जो विश्वेश्वर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसने यहां पर विश्वेश्वर-स्मृतिमेंका चारों वर्णोंकी पूरी विधि (बतलाने) वाला दसवां अधिकार समाप्त किया।

*

भारतीय विद्या भवन

સન ૧૯૪૨ના વર્ષનો અહેવાલ

પ્રમુખશ્રી અને ભવનના સભ્ય મહોદયો,

તા. ૩૧મી ડિસેમ્બર ૧૯૪૨ને રોજ પૂરા થતા વર્ષ દરમ્યાનની ભારતીય વિદ્યા-ભવનની કામગીરીનો અહેવાલ અને તા. ૩૧મી ડિસેમ્બર ૧૯૪૨ સુધીનું સરવૈયું આપની સમક્ષ નમ્રતાપૂર્વક રજૂ કરીએ છીએ.

૧.–કાર્યવાહક સમિતિ

ભવનના સભ્યોની છેલ્લી વાર્ષિક સામાન્ય સભા તા. ૧૫મી ફેબ્રુઆરી ૧૯૪૨ને રોજ મળી હતી. તેમાં સંસ્થાના ધારાધોરણના નિયમ નં. ૧૮ મુજબ નીચે જણાવેલી કાર્યવાહક સમિતિની જાહેરાત થઈ હતી :

પ્રમુખ

શ્રી કનૈયાલાલ મુનશી.

ઉપપ્રમુખ

ન્યા. મૂ. હરિસિદ્ધભાઈ દિવેટીઆ.

કોષાધ્યક્ષો

શ્રી પ્રાણલાલ દેવકરણ નાનજી.

શ્રી વસંતરામ જમિયતરામ વકીલ.

મંત્રીઓ

શ્રી ત્રિકમદાસ દ્વારકાદાસ.

ડૉ. મણિલાલ પટેલ.

સભ્યો

દિ. બા. કૃષ્ણલાલ મો. ઝવેરી; શ્રી મુગાલાલ ગોએન્કા; સર ચૂનીલાલ બી. મહેતા; રા. બ. ચૂનીલાલ હ. સેતલવાડ; શ્રી હરગોવિંદદાસ જીવણદાસ; શ્રી જિન વિજયજી મુનિ; શ્રી ઉમાદત્ત નેમાણી; શ્રી ચત્રભુજ ગોરધનદાસ; શ્રી સંગજી સુંદરજી; શ્રી ચીમનલાલ ચ. શાહ; શ્રી ઠાકોરદાસ ના. મરચન્ટ; શ્રી પ્રભાશંકર રા. ભટ્ટ.

તા. ૧૬ એપ્રિલ ૧૯૪૨ને રોજ મળેલી કાર્યવાહક સમિતિની બેઠકમાં ધારાધોરણના નિયમ નં. ૧૯ મુજબ નીચે જણાવેલા સજ્જનોને કાર્યવાહક સમિતિમાં કો-ઑપ્ટ કરવામાં આવ્યા હતા :

(૧) શ્રી હેમચંદ મોહનલાલ ઝવેરી; (૨) શ્રી રામદેવ આનંદીલાલ પોદાર; (૩) શ્રી મેઘજી મથરાદાસ ટોપરાણી; (૪) શ્રી ધરમસી મૂળરાજ ખટાઉ.

અહેવાલમાં સમાતા સમય દરમ્યાન કાર્યવાહક સમિતિ છ વાર મળી હતી.

૨.–ભવનના સભ્યો વિશે

અહેવાલના વર્ષ દરમ્યાન ત્રણ સંસ્થાપક સભ્યોને મૃત્યુએ ઝડપી લીધા તેમની ભવનને ખોટ પડી છે. તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે :

આચાર્ય આનંદશંકર બા. ધ્રુવ, એમ. એ. એલએલ. બી. ડી. લિટ્.; શ્રી હરગોવિંદદાસ જીવણદાસ, જે. પી.; અને શ્રી તારાચંદ નવલચંદ ઝવેરી.

નીચે જણાવેલી વ્યક્તિઓની ભવનના માનાર્હ સભ્યો તરીકેની વરણી પણ છેલ્લી સામાન્ય સભાએ ધારાધોરણના નિયમ નં. ૭ મુજબ કરી હતી :

(૧) શ્રીમતી હરીબાઈ મુંગાલાલ ગોએન્કા; (૨) શ્રી કલ્યાણજી કાનજી; (૩) શ્રી રામદેવ આ. પોદાર; (૪) શ્રી રામનાથ આ. પોદાર; (૫) શ્રી ધરમસી મૂળરાજ ખટાઉ; (૬) શ્રી મેઘજી મથરાદાસ ટોપરાણી; (૭) શ્રી જસવંતલાલ મટુભાઈ; (૮) શ્રી મનહરરામ જે. વકીલ; (૯) શ્રી ચીમનલાલ ચ. શાહ; (૧૦) શ્રી ચીમનલાલ માસ્તર; (૧૧) શ્રી જગદીશ ક. મુનશી.

૩.–વિભાગો

વર્ષ દરમ્યાન ભવનના જુદા જુદા વિભાગોમાં કામ કરી રહેલા અધ્યાપક મંડળના સભ્યોનાં નામ અમે નીચે આપીએ છીએ : (તેમના કામનો વિગતવાર ખ્યાલ છેવટનાં પૃષ્ઠો પરના કોઠાઓ પરથી મળી રહેશે.)

(अ) શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠ

(સંસ્કૃત અને તુલનાત્મક ભાષાશાસ્ત્રનો વિભાગ)

(क) ડૉ. મણિલાલ પટેલ, પીએચ. ડી.–અધ્યાપક; ભવનના નિયામક; "ભારતીય વિદ્યા" (અંગ્રેજી)ના સંપાદક; ભારતીય વિદ્યા ગ્રંથાવલિ સંપાદક મંડળના સભ્ય; ભવનના અવૈતનિક સંયુક્ત મંત્રીઓ પૈકીના એક; શેઠ મુંગાલાલ ગોએન્કા સંસ્કૃત ટ્રસ્ટના અવૈતનિક મંત્રી અને ગૂજરાતી સાહિત્ય પરિષદના સંયુક્ત મંત્રી.

(ख) શ્રી હરિવલ્લભ ભાયાણી, એમ. એ.–યુનિવર્સિટી રિસર્ચ સ્કૉલર, અને ભવનના અવૈતનિક રિસર્ચ ફેલો. પીએચ. ડી. ની ડીગ્રીને વાસ્તે 'પઉમ-ચરિય'નું સંશોધન કરે છે.

(ग) શ્રી પ્રભુદાસ શાહ, એમ. એ.–યુનિવર્સિટી રિસર્ચ સ્કૉલર અને ભવનના અવૈતનિક રિસર્ચ ફેલો. પીએચ. ડી. ની ડીગ્રીને વાસ્તે વિજ્ઞાનભિક્ષુના "યોગવાર્તિક"નું સંશોધન કરે છે.

(घ) શ્રી ગજાનન ડિકે, બી. એ. (ઑનર્સ) અને (ङ) શ્રીમતી કલ્પલતા ક. મુનશી, બી. એ. (ઑનર્સ)ની આ વિભાગમાં રિસર્ચ સ્કૉલર તરીકે નિમણૂક થઈ છે.

(आ) ભાગવત ધર્મ શિક્ષાપીઠ (ભાગવત ધર્મનો વિભાગ)

(क) શ્રી દુર્ગાશંકર કે. શાસ્ત્રી–ભાગવત ધર્મના અવૈતનિક અધ્યાપક.

(ख) ડૉ. એ. ડી. પુસાલકર, એમ. એ., એલએલ. બી; પીએચ. ડી.–ભાગવત ધર્મના અધ્યાપક.

(ग) શ્રીમતી સુશીલા મહેતા, એમ. એ., એલએલ. બી.–રિસર્ચ ફેલો. પીએચ. ડી. ની ડીગ્રીને વાસ્તે "ભાગવત પુરાણ"નું સંશોધન કરે છે.

સંશોધનના ક્ષેત્રમાં–વિશેષે કરીને પુરાણોના સંશોધનકાર્યમાં–ડૉ. પુસાલકરે જે કાર્ય કર્યું છે તેની સુપ્રસિદ્ધ વિદ્વાનોએ ભારે પ્રશંસા કરી છે અને ભવને પણ આવતા વર્ષ દરમ્યાન તેમનાં બે વધુ પુસ્તકો પ્રસિદ્ધ કરવાની યોજના કરી છે. એ પુસ્તકો તે, (૧) Epic and Puranic Studies, અને (૨) The Indus Valley Civilization.

(ẻ) ભારતીય ઇતિહાસ શિક્ષાપીઠ (ભારતીય ઇતિહાસનો વિભાગ)

પ્રો૦ શિવદત્ત જ્ઞાની એમ. એ. આ વિભાગ સંભાળે છે. India as reflected in the Purāṇas એ પોતાની થીસિસને અંગે તેમણે સશોધન કર્યું છે અને "भारतीय विद्या पत्रिका" (હિંદી)ના ચાર અંકો પણ તેમણે પ્રસિદ્ધ કર્યા છે.

(ई) નર્મદ ગૂજરાતી સાહિત્ય પરિષદ શિક્ષાપીઠ (ગૂજરાતી વિભાગ)

(क) શ્રી હરિલાલ ગો. પંડ્યા, એમ. એ.–શ્રી નર્મદ ગૂજરાતી સાહિત્ય રિસર્ચ ફેલો. "મુનશી : એક સાહિત્યિક અધ્યયન" એ પોતાની થીસિસને અંગે સંશોધન કરે છે.

(ख) શ્રી યશવંત પ્રા. શુક્લ, એમ. એ.–નવેમ્બર મહિના દરમ્યાન શ્રી હરિલાલ પડ્યા રજા પર ગયા ત્યારે તેમની ખાલી પડેલી જગાએ નીમાયા છે. The Glory that was Gūrjaradeśa એ ઇતિહાસગ્રંથના સપાદનકાર્યમાં મદદ કરે છે.

(ग) શ્રી બિપિન ઝવેરી, એમ. એ.–રિસર્ચ સ્કોલર. એમ. એ. ની પરીક્ષા પસાર કરી અને ફાર્બસ ગૂજરાતી સભામાં આસિ. સેક્રેટરી તેમજ મુંબઈની એલ્ફિન્સ્ટન કોલેજમાં ગૂજરાતીના લેક્ચરર તરીકે નીમાયા છે.

(घ) શ્રી મોહનલાલ સૂચક, બી. એ. (ઑનર્સ) અને (ङ) શ્રી લલિતકાન્ત દલાલ, બી. એ. (ઑનર્સ) આ વિભાગમાં રિસર્ચ સ્કોલર તરીકે ચાલુ રહ્યા છે.

(च) શ્રીમતી સત્યવતી ઝવેરી, બી. એ. (ઑનર્સ)ની નવાં રિસર્ચ સ્કોલર તરીકે નિમણૂક કરી છે.

(उ) શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા પ્રાકૃત અને હિંદી શિક્ષાપીઠ

(પ્રાકૃત ભાષાઓ અને હિન્દીનો વિભાગ)

(क) શ્રી જિનવિજયજી મુનિ–અધ્યાપક; હિન્દી–ગૂજરાતી ત્રૈમાસિક भारतीय વિદ્યાના સપાદક; "ભારતીય વિદ્યા ગ્રંથમાળા"ના સંપાદક મંડળના સભ્ય.

આ સ્થળે, શ્રી મુનિજીએ અથાગ પરિશ્રમ ને ઉત્સાહપૂર્વક જે સેવા ભવનને આપી છે તેનો સવિશેષ ઉલ્લેખ કર્યા વિના નહિ ચાલે. પ્રાચીન ઇતિહાસ, ધર્મ, ભાષાશાસ્ત્ર વગેરે ઉપર પ્રકાશ નાખતા અનેક ગ્રંથોનું (જેની યાદી અન્યત્ર પ્રસિદ્ધ કરી છે) સંપાદન કાં તો એમણે જાતે કર્યું છે અથવા પોતાની દેખરેખ નીચે કરાવ્યું છે. એ ગ્રંથોમાંથી કેટલાક પ્રસિદ્ધ થઈ ચૂક્યા છે, કેટલાક છપાઈ રહ્યા છે ને કેટલાક તૈયાર થઈ રહ્યા છે. એ સઘળા ગ્રંથોનું સંપાદનકાર્ય મુનિજીની સમર્થ વિદ્વત્તા ને ઝીણવટની સાક્ષી પૂરે છે. સિંઘી જૈન ગ્રંથમાળા, જેના મુનિજી મુખ્ય સંપાદક છે તેને, ભવન સાથે જોડી દેવાનો સુયશ પણ એમનેજ ઘટે છે. અત્યારે જે પ્રવૃત્તિમાં તેઓ પરોવાયા છે તે મહત્ત્વનાં અને લાભદાયક પરિણામોની આશા આપે છે. ગયા નવેમ્બર માસમાં રાજપુતાનાના વેરાન પ્રદેશમાં આવેલા, સુધરેલી દુનિયાથી દૂર પડેલા એવા એક નાનકડા ગામ જેસલમેરમાં વિદ્વાનો ને નકલ કરનારાઓની એક નાનકડી ટોળી સાથે તેઓ જઈ પહોંચ્યા, ને પોતાની સઘળી વગસગ વાપરીને ત્યાંનો સ્થાનિક જૈન ભંડાર ઉઘડાવ્યો. સંસ્કૃત તેમજ પ્રાકૃત ભાષાના અનેક હસ્તલિખિત ગ્રંથોનો અમૂલ્ય ખજાનો એમાંથી હાથ લાગ્યો છે. મુનિજી એ ગ્રંથોનાં નિરીક્ષણ, તુલના ને નકલ ઉતરાવવાના ક્રમમાં

ખંતથી પ્રવૃત્ત થઈ રહ્યા છે. એ પ્રવૃત્તિ અવિરામ ચાલુ રહી છે ને આજસુધીમાં સંખ્યાબંધ હસ્તપ્રતોની નકલો આ રીતે થઈ ચૂકી છે. કેટલીયે અમૂલ્ય હસ્તપ્રતોને ઉધઈ ને વાંતરી કોરી રહી છે. તેમનો સર્વનાશ થાય તે પહેલાં મુનિજીએ એ ગ્રંથોનો ઉદ્ધાર કરવાનો મહાન્ પ્રયત્ન આરંભ્યો છે.

(ऊ) જૈન શાસ્ત્ર શિક્ષાપીઠ (જૈન સાહિત્યના અભ્યાસનો વિભાગ)

પ્રો. અમૃતલાલ ગોપાણી, એમ. એ. – જૈન શાસ્ત્રના અધ્યાપક.

(ए) મુંબાદેવી સંસ્કૃત પાઠશાળા

(क) શ્રી ગણેશ વ્યંકટેશ જોશી, આચાર્ય (બનારસ હિન્દુ યુનિવર્સિટી)ની શાસ્ત્રી તરીકે નિમણુક થઈ છે.

(ख) શાસ્ત્રી હીરાલાલ, પ્રિન્સિપાલ, જી. ટી. સંસ્કૃત પાઠશાળા, મુંબઈ – શ્રી મોતીરામ શાસ્ત્રી જે માંદા હોવાથી રજા ભોગવે છે તેમની જગાએ એક મહિના સુધી પાર્ટ ટાઈમ કામ કર્યું.

(ग) હિન્દુ ધર્મ અને સંસ્કૃતિના પ્રચારકોનો એક નવો અભ્યાસક્રમ દાખલ કરવામાં આવ્યો છે. અને શાસ્ત્રી માધવાચાર્ય, સર્વતંત્ર સ્વતંત્રને, એ વિભાગ સંભાળવાને હમણાં જ નિયુક્ત કર્યા છે. બે વિદ્યાર્થીઓથી હમણાં તો આરંભ કર્યો છે.

(घ) ૧૯૪૨ની સાલમાં પાઠશાળાના વિદ્યાર્થીઓ જે જે પરીક્ષાઓમાં બેઠા, ને જે પરિણામો આવ્યાં તે નીચેના કોઠામાં દર્શાવેલ છે : –

પરીક્ષા	કેટલા વિદ્યાર્થીઓ બેઠા તે	કેટલા પાસ થયા તે
આચાર્ય (ભાગ ૧ લો) કાશી	૧	૧
મધ્યમા (કાશી)	૩	૧
મધ્યમા (બૅન્ગાલ સંસ્કૃત ઍસોસિયેશન)	૩	૩
તીર્થ (બૅન્ગાલ સંસ્કૃત ઍસોસિયેશન)	૧	૧
પ્રથમા (બૅન્ગાલ સંસ્કૃત ઍસોસિયેશન)	૧	૧

(ऐ) શ્રી નાગરદાસ રૂઘનાથદાસ જ્યોતિષ શિક્ષાપીઠ (જ્યોતિષવિદ્યા અને ખગોલવિદ્યાનો વિભાગ)

(क) પં. ગૌતમલાલ દવે, જ્યોતિષ શાસ્ત્રી, જ્યોતિષ રત્ન અને જ્યોતિષાલંકાર આ વિભાગ સંભાળી રહ્યા છે.

૫. – ગ્રંથપ્રકાશન

કાગળની અતિશય મોંઘવારી અને અતિશય અછત—ખાસ કરીને વર્ષના પાછલા ભાગમાં—નડવા છતાં ભવનના આ વિભાગે ઠીક ઠીક પ્રગતિ કરી છે. પુસ્તકોની ઠીક ઠીક સંખ્યા છપાઈ રહી છે અને આવતા વર્ષની શરૂઆતના ગાળામાં પ્રસિદ્ધ થઈ જશે એવી આશા છે. આ વિભાગની હાલમાં પુનર્ઘટના કરીને શ્રી. ચંદ્રશંકર શુકલને એ સોંપવામાં આવ્યો છે.

(अ) સામયિકો :

આપણા અંગ્રેજી સામયિક Bháratiya Vidyā ના ૩ જા પુસ્તકનો બીજો અને ૪થા પુસ્તકનો પહેલો ભાગ તેમ જ હિન્દી – ગુજરાતી સામયિક भारतीय विद्या ના ૨ જા પુસ્તકનો બીજો ને ત્રીજો અંક વર્ષ દરમ્યાન પ્રકટ થયેલ છે.

भारतीय विद्या पत्रिका नामनुं એક હિન્દી માસિક પત્ર નવેસરથી પ્રગટ કરવાનું શરૂ કર્યું છે અને એના અત્યાર લગીમાં ચાર અંકો પ્રગટ થઈ ચૂક્યા છે. એમાં લેખો અને સમાચારો આપવાની વ્યવસ્થા કરી છે. આપણા પ્રમુખ શ્રી મુનશીજી એ પત્રિકાનું સંપાદન કરે છે.

(आ) ગ્રંથો :

(क) भारतीय विद्या ग्रंथमाला

ભરતેશ્વર બાહુબલિ રાસ (જૂની ગૂજરાતીમાંનું કાવ્ય) મુનિ શ્રી જિનવિજયજીએ સંપાદિત કર્યું તે આ શ્રેણીના બીજા પુસ્તક તરીકે પ્રસિદ્ધ થયું છે.

નીચેનાં પુસ્તકો છપાઈ રહ્યાં છે :

(૧) **સંદેશક રાસ** (અપભ્રંશ કાવ્ય) – સંપાદક, શ્રી જિનવિજયજી મુનિ – ૮૮ પૃષ્ઠ છપાઈ ગયાં છે.

(૨) ઉક્તિ વ્યક્તિ પ્રકરણ (વ્યાકરણ ગ્રંથ) – સંપાદક, મુનિ શ્રી જિનવિજયજી – ૫૬ પૃષ્ઠ છપાઈ ગયાં છે.

(૩) રિષ્ટ સમુચ્ચય (પ્રાકૃતમાં રચાયેલું શુકન આદિ શાસ્ત્રનું પુસ્તક) – સંપાદક, પ્રો. અમૃતલાલ ગોપાણી – ૬૮ પૃષ્ઠો છપાયાં છે.

(ख) **ભારતીય વિદ્યા ગ્રંથમાલા (અંગ્રેજી) :**

આ ગ્રંથમાલા વર્ષ દરમ્યાન નવી જ શરુ કરી છે. સામાન્ય વાચકવર્ગને જ્ઞાનપ્રકાશ મળી રહે એવો હેતુ નજર સમક્ષ રાખી ભારતીય સંસ્કૃતિના વિવિધ અંગોનું વિવરણ કરતાં, રસપ્રદ શૈલીમાં લખાયેલાં, નાનકડાં પુસ્તકો પ્રસિદ્ધ કરવાનો આ માલાનો ઉદ્દેશ છે. આપણા પ્રમુખશ્રીએ એને અંગે આપેલા નિમંત્રણનો સારો પ્રત્યુત્તર મળ્યો છે ને થોડાક અગ્રગણ્ય વિદ્વાનોએ આ કાર્યમાં સહકાર આપવાનું વચન આપ્યું છે. નીચે જણાવેલાં પુસ્તકો હાલ છપાઈ રહ્યાં છે :

ભારતીય વિદ્યા ગ્રંથમાલા (અંગ્રેજી)

(૧) Bhāsa, ડૉ. એ. ડી. પુસાલકર કૃત.

(૨) Schools of Vedānta, શ્રી. પી. નાગરાજ રાવ કૃત.

ભારતીય વિદ્યા ગ્રંથમાલા (હિન્દી)

(૧) भारतीय संस्कृति – શ્રી શિવદત્ત જ્ઞાની કૃત.

ભારતીય વિદ્યા ગ્રંથમાલા (ગુજરાતી)

(૧) ધર્મોનું મિલન (The Meeting of Religions) – સર રાધાકૃષ્ણનના નિબંધોનો અનુવાદ – અનુવાદક : શ્રી ચંદ્રશંકર શુકલ. ડિસેમ્બરની આખર સુધીમાં આ અનુવાદ અર્ધો તૈયાર થઈ ગયો હતો.

(ग) **सिंघी जैन ग्रन्थमाळा :**

કલકત્તાના દાનવીર બાબુ શ્રી બહાદુરસિંહજી સિંઘીએ સ્થાપિત કરેલી અને મુનિ શ્રી જિનવિજયજીએ સંપાદિત કરેલી – જે બન્ને આપણી સંસ્થાના સંસ્થાપક સભ્યો છે ને મુનિજી તો આપણા પ્રાકૃત અને હિન્દી વિભાગના અધ્યક્ષ પણ છે – અલભ્ય અને અમૂલ્ય કૃતિઓ પ્રકાશિત કરતી આ સુપ્રસિદ્ધ ગ્રંથમાળાને ભવન સાથે જોડી દેવાની વાટાઘાટો ચાલી રહી છે. (વિગત માટે જુઓ છેલ્લા પૃષ્ઠો) એનો અધિકાર

વિધિસર સંભાળી લેવાની વ્યવસ્થા ટૂંક સમયમાં થઈ જશે એવી આશા છે. મુનિજી પોતે જ, પહેલાંની માફક, એ ગ્રંથમાળાનું સંપાદનકાર્ય સંભાળશે.

તદુપરાંત બાબુશ્રી બહાદુરસિંહજી સિંઘીએ ભવનના મકાન ફાળા ખાતે રૂા. ૧૦૦૦૦નું દાન કર્યું છે ને 'શ્રી સિંઘી હૉલ' એ નામ એ અંગેના હૉલને અપાશે. આ પ્રસંગે, બાબુશ્રી બહાદુરસિંહજી સિંઘીનો, તેઓ જે ઊંડો રસ ભવનની પ્રવૃત્તિઓમાં લઈ રહ્યા છે અને આવી ઉદાર સખાવત તેમણે કરી છે તે માટે, અમે અંતઃકરણપૂર્વક આભાર માનીએ છીએ.

(घ) गूजराती साहित्य परिषद प्रकाशनो (परिषद साहित्यमाळा)

ગૂજરાતી સાહિત્ય પરિષદ સાથે થયેલી ગોઠવણ મુજબ ભવને ગયે વર્ષે પરિષદ સાહિત્ય માળા અંગે પુસ્તકો પ્રસિદ્ધ કર્યા હતાં. આ વર્ષે ભવને સાહિત્ય પરિષદ કાજે નીચેની કૃતિઓ તૈયાર કરાવીને પ્રસિદ્ધ કરવાનું સ્વીકાર્યું છે.

(अ) विश्वसाहित्यमाळा :–

(१) **પિરામીડની છાયામાં** (મિસરનું પ્રાચીન સાહિત્ય) લેખક : ચંદ્રશંકર શુકલ (છપાઈ રહ્યું છે. ૬૪ પૃષ્ઠો છપાઈ ગયાં છે)

(૨) **શાહનામું** (છાપવા માટે હસ્તપ્રત તૈયાર છે).

(૩) **ટોલરનાં નાટકો** (અનુવાદ)–અનુવાદક : શ્રી ત્રિભુવનદાસ લુહાર ('સુન્દરમ્') (છાપવા માટે હસ્તપ્રત તૈયાર છે).

(ब) मुनशी अर्धशताब्दी स्मारकमाळा

(१) **મારી બિનજવાબદાર કહાણી**–લેખક : શ્રી કનૈયાલાલ મુનશી (છપાઈ રહ્યું છે. ૧૪૪ પૃષ્ઠો છપાઈ ચૂક્યાં છે).

(२) **આદિવચનો** લેખક : શ્રી કનૈયાલાલ મુનશી (છપાઈ રહ્યું છે) આપણા પ્રમુખશ્રી "પરિષદ સાહિત્યમાળા"ના મુખ્ય સંપાદક છે.

(ड) मूळराज सोलंकी सहस्राब्दी महोत्सव ग्रंथ

ભવનની સહકારીણી સાહિત્ય પરિષદે વિ. સં. ૧૯૯૮માં ગુજરાતના સ્થાપક મૂળરાજ સોલંકીનો સહસ્રાબ્દી મહોત્સવ ઉજવવાનું ઠરાવ્યું હતું. અત્યારે પ્રવર્તતી પરિસ્થિતિને લક્ષમાં રાખીને એ મહોત્સવને મર્યાદિત કરવાની ફરજ પડી છે અને ગૂજરાતના પ્રાચીન ઇતિહાસનો ગ્રંથ સ્મારકરૂપે પ્રસિદ્ધ કરવાનું ઠરાવ્યું છે. ભવન અને પરિષદની સંયુક્ત જવાબદારીનું એ કાર્ય છે, એટલે અંગ્રેજીમાં એ ગ્રંથ ભવન પ્રગટ કરશે ને ગૂજરાતીમાં પરિષદ પ્રગટ કરશે. આપણા પ્રમુખશ્રી એ ઇતિહાસગ્રંથના મુખ્ય સંપાદક તો છે જ પણ એના ઘણા વિભાગો સુદ્ધાં એમણે જ લખી આપ્યા છે. ભવનના અધ્યાપક મંડળે પણ પ્રમુખશ્રીનો સહકાર સાધી ઇતિહાસગ્રંથ તૈયાર કરવાનું કામ ઉપાડી લીધું છે. એ પુસ્તકમાં આ વિષયમાં થયેલાં અદ્યતન સંશોધનોને સમાવી લેવામાં આવશે. એની તૈયારીનું કામ ધમધોકાર ચાલે છે.

એ ગ્રંથમાં લખવાને બહારના વિદ્વાનોને પણ નિમંત્રણ આપવામાં આવ્યું હતું. પ્રો. રાધાકુમુદ મુકરજી, શ્રી. કાર્લ ખંડાળાવાળા, ડૉ. એચ. ડી. સાંકળીઆ, પ્રો. કે. એચ. કામદાર અને શ્રી ડી. એન. વાડીઆ વગેરે વિદ્વાનોનો એમાં સમાવેશ થાય છે.

૬.-વિદ્યાવિસ્તાર વ્યાખ્યાનો અને ભારતીય વિદ્યા પ્રવચનો;

વર્ષ દરમ્યાન ચૌદ વિદ્યાવિસ્તાર વ્યાખ્યાનો અપાયાં હતાં અને રાબેતા મુજબ સૌ કોઈ લાભ લઈ શકે તેવાં એ જાહેર વ્યાખ્યાનો હતાં. ઘણુંખરૂં યુનિવર્સિટી બિલ્ડીંગમાંજ એ અપાયેલાં પણ ઑગસ્ટ પછી શહેરની વિક્ષુબ્ધ પરિસ્થિતિને કારણે કેટલાંક વ્યાખ્યાનો ભવનમાંજ અપાયેલાં. (જુઓ છેલ્લા પૃષ્ઠ પર વ્યાખ્યાનોનો કોઠો)

ભારતીય વિદ્યા પ્રવચનો:-એ આ વર્ષમાં આરંભેલી નવીજ પ્રવૃત્તિ છે. વાર્તાલાપનો આ અનૌપચારિક કાર્યક્રમ શનિવારે સાંજના પાંચ અને સાતની વચ્ચે રખાય છે અને ભારતીય સંસ્કૃતિનાં વિવિધ અંગોની તેમાં છણાવટ થાય છે. ભવન અને તેની સાથે સંકળાયેલી સંસ્થાઓના સભ્યો તેમજ તેમના મહેમાનો આ કાર્યક્રમનો લાભ લઈ શકે તેવી યોજના છે. વક્તાના પ્રવચન પછી સામાન્યરીતે એ વિષયની ચર્ચા કરવાનો ઉપક્રમ હોય છે. છેલ્લા સત્રમાં બધાં મળીને આવાં દશ પ્રવચનો થયાં હતાં. (જુઓ છેલ્લા પૃષ્ઠ પરનો કોઠો).

૭.-અન્ય પ્રવૃત્તિઓ.

આપણા પ્રમુખશ્રીએ ભારતીય સંસ્કૃતિનું કોઈ પણ અંગ લઈ તે વિશે સર્વોત્તમ નિબંધ લખનારને રૂા. ૧૫૦/ની કિંમતનો સુવર્ણ ચંદ્રક અને બધા મળીને રૂા. ૧૦૦/ની કિંમતના ચાર રૌપ્ય ચંદ્રકો આપવાની જાહેરાત કરી છે.

૮.-સ્થાપન દિન મહોત્સવ

કાર્તિકી પૂર્ણિમા (જે આ વર્ષે તા. ૨૨મી નવેમ્બરને રોજ આવી હતી)ને દિવસે ભવનનો સ્થાપન દિન હોવાથી ભવનના મકાને તે દિન ઉજવવામાં આવ્યો હતો. આપણા સભ્યો અને મહેમાનોએ સભામાં મોટા પ્રમાણમાં હાજરી આપી હતી. આગલા આખા વર્ષ દરમ્યાન થયેલી સંસ્થાની પ્રગતિનો અહેવાલ નિયામકે વાંચી સંભળાવ્યો હતો અને પ્રમુખશ્રીએ ભવનના ઉદ્દેશો અને આકાંક્ષાઓ તેમજ ભવને એ આકાંક્ષાઓની સિદ્ધિની દિશામાં જે વાસ્તવિક પ્રગતિ કરી છે. તે વિષે સવિસ્તર પ્રવચન કર્યું હતું. દિ. બા. કૃષ્ણલાલ મો. ઝવેરીએ પણ પોતાના ટૂંકા ભાષણમાં ભવને જે પ્રગતિ કરી છે તે પ્રત્યે સંતોષ વ્યક્ત કર્યો હતો.

૯.-પ્રમુખ વિષે

આપણા પ્રમુખ શ્રી મુનશીજીએ ભવનની સ્થાપનાથી માંડીને આજસુધી તેની એકે એક પ્રવૃત્તિમાં જે ઊંડો ને સક્રિય રસ લીધો છે તેનો સાભાર ઉલ્લેખ કર્યા વિના આ અહેવાલ અધૂરો જ ગણાય. અભ્યાસ અને સંશોધનના વિષયમાં પણ તેમની સૂચના અને પ્રેરણા હંમેશાં ઉપકારક અને ઉત્તેજક માલુમ પડી છે. **મૂળરાજ સોલંકી સહસ્રાબ્દી મહોત્સવ ગ્રંથ**-'ગૂર્જર દેશનો ભવ્ય ભૂતકાળ'-જે અત્યારે તૈયાર થઈ રહ્યો છે તેની યોજના ને સંપાદનમાંજ નહિ-પણ તેના આલેખનમાંય તેમનું અર્પણ વિશિષ્ટ છે. એમ જો કહીએ કે ભવનને અંગેની સઘળી મુખ્ય યોજનાઓની કલ્પના એમનીજ હતી અને નાનામાં નાની વીગત પ્રત્યે પણ એમણે દુર્લક્ષ કર્યું નહોતું તો એમાં કંઈજ અતિશયોક્તિ નથી.

૧૦.–ઉપસંહાર.

હિંદી સરકારે અંધેરીનાં આપણાં સુવિશાળ મકાનોનો લશ્કરી કામકાજ માટે કબજો લીધો એટલે તા. ૧ લી જુલાઈ ૧૯૪૨ ને રોજ વરલી ઉપર ભાડાના મકાનમાં ભવનને ખસેડવું પડ્યું હતું. સ્વાભાવિક રીતે જ એથી આપણા કામકાજમાં થોડોક વિક્ષેપ પડ્યો હતો. અભ્યાસ અને સંશોધનની પ્રવૃત્તિને અનુકૂળ પડે તેવી રીતે મકાન-બાંધણીની યોજનાપૂર્વક ભવનનાં મકાનો બંધાયાં હતાં તે તો લઈ લેવાયાં પણ ઉપરથી એ જ પરિસ્થિતિને લીધે વધારે વિદ્યાર્થીઓ લેવાનું પણ ન બની શક્યું. તાજેતરમાં આપણા કેટલાક સ્કૉલરો માતૃભૂમિની સેવા કાજે વિદ્યોપાર્જનથી ભિન્ન એવી પ્રવૃત્તિ-ઓમાં સાથ આપવા ભવનમાંથી નીકળી ગયા; ભવનને આવશ્યક એવી ચીજોની ચારે-કોરની મોંઘવારી, કાગળની અછત, પરદેશથી પુસ્તકો મેળવવામાં પડતી મુશ્કેલી વગેરે પણ આપણા વિકાસને અવરોધતાં નડતરો છે. પણ આ અસાધારણ સંયોગોમાં ગમે તેવી મુશ્કેલીઓ થોડા સમય માટે ઊભી થાય તોપણ એમને ન ગણકારતાં અપૂર્વ ધ્યેયનિષ્ઠાથી ભવન પોતાની પ્રવૃત્તિને આગળ વધારવા ને ભારતીય વિદ્યાનો સંદેશ સઘળે પહોંચતો કરવા સતત મથી રહેવાની આશા આપે છે.

ભવને જે કંઈ પ્રગતિ દાખવી છે તે ઘણે મોટે અંશે દાતાઓએ જે ઉદાર આર્થિક સહાય આપી છે તેને આભારી છે. આ પ્રસંગે અમે પુનઃ એક વાર દાતાઓનો, કાર્ય-વાહી સમિતિનો, અમારા સહકાર્યકરોનો અને અનેક પ્રકારે ભવનને સહાય કરનારા શુભેચ્છકોનો આભાર માનીએ છીએ અને આવો ને આવો જ સક્રિય રસ ભવનની પ્રવૃત્તિઓમાં લેવાનું તેઓ ચાલુ રાખશે એવી આશા સેવીએ છીએ. ઑડીટ કરેલા હિસાબનું નિવેદન જોશો તો માલુમ પડશે (એની નકલો સભ્યોને પહોંચાડવામાં આવી છે) કે ભવને આ વખતે રૂ. ૨૩,૦૦૦/ની ખોટ ખાધી છે, અને એ ખાડો પૂરવા માટે ચાલુ વર્ષમાં ફાળો એકઠો કરવો પડશે. આપણને ૧૯૪૧–૪૨ માં રૂ. ૫૦૦) ની અને ૧૯૪૨–૪૩ માં રૂ. ૩૦૦૦) ની વાર્ષિક ગ્રાન્ટ આપવા બદલ મુંબઈ સરકારનો પણ આ સ્થળે આભાર માનીએ છીએ. થોડેક અંશે ખોટ ભરપાઈ કરવામાં એ મદદરૂપ થઈ પડી છે ને પુરાણોના પાઠાંતર અને ટીકા સહિતના સંપાદનકાર્યને ચાલુ રાખવાનું પણ એથી સુગમ બન્યું છે. આ કાર્યની જ્યારે પૂર્ણાહુતિ થશે ત્યારે ભારતીય વિદ્યાના ક્ષેત્રમાં તે વિશિષ્ટ અને મહત્ત્વનું અર્પણ બની રહેશે. એનું ખાત—મુહૂર્ત ક્યારનુંયે થઈ ચૂક્યું છે અને જો પૂરતી આર્થિક સહાય આવી મળે તો આવતાં વર્ષોમાં એ દિશામાં સારી પ્રગતિ કરવાની મુરાદ ધરાવીએ છીએ.

અમે મેસર્સ જયન્તિલાલ ઠક્કર ઍન્ડ કં. (રજીસ્ટર્ડ ઍકાઉન્ટસ ઍન્ડ ઑડીટર્સ, ૧૧૧, મહાત્મા ગાંધી રોડ, મુંબઈ) નો ૩૧મી ડીસેમ્બર ૧૯૪૨ ને રોજ પૂરા થતા વર્ષનો હિસાબ તપાસી જવા માટે આભાર માનીએ છીએ.

ભારતીય વિદ્યા ભવન }
વરલી, મુંબઈ ૧૮ }

(સહી) ત્રિકમદાસ દ્વારકાદાસ
(સહી) મણિલાલ પટેલ
મંત્રીઓ.

*

१९४२ ना वर्ष दरम्यान भवनना कार्यकर्ताओनुं संशोधन कार्य

નામ	પુસ્તક અથવા લેખનું શીર્ષક	વર્ષ દરમ્યાનની પ્રગતિ
શ્રી કનૈયાલાલ મુનશી	(1) The Golden Age of the Imperial Guptas	*Bhāratīya Vidyā*, Vol. III, Pt. 2
	(2) The Book in India	*Bhāratīya Vidyā*, Vol. III, Pt. 2.
	(3) Atharvans and Vedic Aryans	To appear in *The Glory That Was Gūrjaradeśa*
	(4) The Imperial Gurjaras	To appear in *The Glory That Was Gūrjaradeśa*
संस्कृत शिक्षापीठ		
૧ ડૉ. મણિલાલ પટેલ (અધ્યાપક)	(1) Translation of Rgveda Mandala VI	Bharadvāja's Hymns to Agni (1-16) published in *Bhāratīya Vidyā*, III, 1 and III, 2.
	(2) Translation from German into English of Jacobi's Studies on Apabhramśa Literature.	(2) Printing order of first forme passed
	(3) *Brāhman in the Rgveda*	First part published in *Bhāratīya Vidyā*, IV, 1.
૨ શ્રી હરિવલ્લભ ભાયાણી (રિસર્ચ ફેલો)	(૧) હું, એક અને હોવું ના ભારત-યુરોપીય મૂળ સ્વરૂપો	Published in બુદ્ધિપ્રકાશ ઓક્ટો-ડિસે. ૧૯૪૨
	(૨) ડૉ. કત્રેના વિલ્સન-ભાષાશાસ્ત્રીય વ્યાખ્યાનો (સારસંગ્રહ, વ્યાખ્યાન ૩-૬)	To be published in भारतीय विद्या; वर्ष २, अंक ४
	(૩) પ્રાકૃત વૈયાકરણો (A Gujarati translation of the Review of the French work of M. Nitti-Dolci)	,, ,,
	(૪) અર્વાચીન ગુજરાતી ઇકાર-ઉકારનાં ઉચ્ચારણ અને જોડણી	ફા. ગુ. સ. ત્રૈમાસિક ઓક્ટો-ડિસે. ૧૯૪૨

નામ	પુસ્તક અથવા લેખનું શીર્ષક	વર્ષ દરમ્યાનની પ્રગતિ
	(૫) ગુજરાતનાં સ્થળનામોનો અભ્યાસ	To be published in ગુ. સં. મં. ત્રૈમાસિક
	(૬) 'આણુ ને આટો' ને 'ભકુભાણુ'ની વ્યુત્પત્તિ	To be published in भारतीय विद्या
भागवत धर्म शिक्षापीठ	*	*
૩ ડૉ. એ. ડી. પુસાલકર (અધ્યાપક)	(१) वायुपुराण	Collation of the 1st adhyāya with 3 Mss. on collation sheets
	(2) Bhāsa (Bhāratiya Vidyā Studies)	Text pp. 1–208 printed
	(3) Indus Civilization II (Cultural)	Bhāratiya Vidyā, Vol. III, Pt. 2
	(4) Indus Civilization III (Ceramics, etc.)	*Bhāratīya Vidyā*, Vol. IV, Pt. 1
	(5) Yajñaphalam—A newly discovered Drama by Bhāsa	Journal of the B. B. R. A. S., 1942
	(6) Twenty-five Years of Epic and Purāṇic Studies	Published in *Progress of Indic Studies* (B. O. R. I., Poona)
	(7) Mohenjo-Daro and Ṛgveda	To be published in *Radhakumud Mukherji Comm. Volume*
	(8) Indus Civilization IV (Religion and script)	To be published in *Bhāratīya Vidyā*
	(9) The Yādavas	To be published in *The Glory that was Gurjaradeśa*
૪ શ્રીમતી સુશીલા મહેતા (રિસર્ચ ફેલો)	(1) Linguistic Peculiarities of the Bhāgavata Purāṇa	*Bhāratiya Vidyā*, Vol. IV, Pt. 1
	(૨) લલિત છંદ	भारतीय विद्या; वर्ष २, अंक २
	(૩) નિમ્બાર્કાચાર્ય.	,, ,,

નામ	પુસ્તક અથવા લેખનું શીર્ષક	વર્ષ દરમ્યાનની પ્રગતિ
भारतीय इतिहास शिक्षापीठ		
૫ શ્રી શિવદત્ત જ્ઞાની(રીડર)	(१) भारतीय संस्कृति (हिंदी)	16 pages printed
	(2) The Gupta Period	To appear in *The Glory that was Gūrjaradeśa*
	(3) Date of the Purāṇas	New Indian Antiquary Sept. 1943
प्राकृत तथा हिन्दी शिक्षापीठ		
૬ શ્રી જિનવિજય મુનિ	(१) संदेशरासक (अपभ्रंश)	96 pages printed
	(२) उक्तिव्यक्ति प्रकरण (संस्कृत)	56 pages printed
	(३) भरतेश्वर-बाहुबलिरास	Published
जैन शास्त्र शिक्षापीठ		
૭ શ્રી અમૃતલાલ ગોપાણી (અધ્યાપક)	(१) रिष्टसमुच्चय (प्राकृत)	68 pages printed
	(२) नाणपंचमीकहा „	Critically edited 750 verses (out of 2000 verses in all) with English translation
	(3) Maheśvarasūri's Naṇapañcamī Kahā — a Study	*Bhāratīya Vidyā*, Vol. III, Pt. 2
	(4) Satyasaṁhitā and Gandhiji's Horoscope	*Bhāratīya Vidyā*, Vol. IV, Pt. 1.
	(5) Narrative Literature of the Jainas in Prakrit	To appear in *The Glory That Was Gūrjaradeśa*
	(૬) મહેશ્વરસૂરિની નાણપંચમી કહા અને તદ્ગત સુભાષિતો	भारतीय विद्या; वर्ष २ अंक २
	(૭) પ્રાકૃત અને સંઘ વિષેનાં મહેશ્વરસૂરિનાં નાણપંચમી કથાન્તર્ગત મન્તવ્યો	„ वर्ष २, अंक २
संस्कृत पाठशाला		
૮ શ્રીગણેશ વ્યંકટેશ જોશી	(1) Drama in Old Gujarat	To appear in *The Glory That Was Gūrjaradeśa*

ભારતીય સંસ્કૃતિ વિશે વાર્તાલાપ

તારીખ	મુખ્ય વક્તા	વિષય
૧૧, જુલાઈ ૧૯૪૨	શ્રી કનૈયાલાલ મુનશી	ભારતીય વિદ્યા
૧૮, ,, ,,	ડૉ. મણિલાલ પટેલ	ભારતીય સંસ્કૃતિની ભૂમિકા
૨૫, ,, ,,	શ્રી કનૈયાલાલ મુનશી	ધર્મ એટલે શું?
૧, ઑગષ્ટ ૧૯૪૨	શ્રી શિવદત્ત જ્ઞાની	वर्णाश्रम धर्म
૮, ,, ,,	શ્રી અમૃતલાલ ગોપાણી	ભારતીય દર્શનોમાં આધ્યાત્મિક વિકાસક્રમ
૨૨, ,, ,,	શાસ્ત્રી ગૌતમલાલ દવે	ભારતીય વિદ્યા
૨૯, ,, ,,	શ્રી હરિવલ્લભ ભાયાણી	ભગવદ્ગીતા–એક સમન્વય-પ્રયાસ
૪, સપ્ટે. ૧૯૪૨	શ્રીમતી સુશીલા મહેતા	ભક્તિનો વિકાસક્રમ
૧૨, ,, ,,	શ્રી દુર્ગાશંકર કે. શાસ્ત્રી	જ્ઞાનમાર્ગ
૧૯, ,, ,,	શ્રી શિવદત્ત જ્ઞાની	भारतीय संस्कृतिकी श्रेष्ठता

યુનિવર્સિટી વર્ગો

અધ્યાપકનું નામ	વિષય
ડૉ. મણિલાલ પટેલ	Ṛgveda Mandala VII
ડૉ. એ. ડી. પુસાલકર	Dharmashastra (Mitākṣarā)
પ્રો. અમૃતલાલ ગોપાણી	Ardhamāgadhi (Kumārapāla Pratibodha)
શ્રી શિવદત્ત જ્ઞાની	Ancient Indian culture
શ્રી હરિલાલ પંડ્યા	ગૂજરાતી

વિદ્યાવિસ્તાર વ્યાખ્યાનો

તારીખ	વ્યાખ્યાનકાર	વિષય
૨, ફેબ્રુઆરી ૧૯૪૨	શ્રી અમૃતલાલ ગોપાણી	Omens and Portents–a comparative study
૯, ,, ,,	શ્રી શિવદત્ત જ્ઞાની	Mahāpurānas: A critical study
૧૬, ,, ,,	શ્રી હરિલાલ પંડ્યા	કેટલીક ગુજરાતી નવલકથાઓ
૨૩, ,, ,,	શ્રીમતી સુશીલા મહેતા	Shri Madhvācārya
૨, માર્ચ ૧૯૪૨	શ્રી દુર્ગાશંકર કે. શાસ્ત્રી	ઉપનિષદ્ સિદ્ધાન્ત અને ભાગવત સિદ્ધાન્ત
૯, ,, ,,	ડૉ. એ. ડી. પુસાલકર	Indus civilization
૧૬, ,, ,,	શ્રી શિવદત્ત જ્ઞાની	Hindi Poetry and Muslim poets.
૨૩, ,, ,,	શ્રી પ્રભુદાસ શાહ	Yoga Philosophy–Its origin and Development.
૧૩, એપ્રિલ ,,	ડૉ. મણિલાલ પટેલ	Society in the Upaniṣadic Age
૨૪, ઑગષ્ટ ,,	શ્રી દુર્ગાશંકર કે. શાસ્ત્રી	જીવન્મુક્તિ

भारतीय विद्या

[बम्बईस्थ, भारतीयविद्याभवनद्वारा प्रकाशित संशोधनविषयक
हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका]

*

द्वितीय भाग

[संवत् १९९८-९९]

*

संपादक

श्री जिन विजय मुनि

[आचार्य - भारतीय विद्या भवन]

*
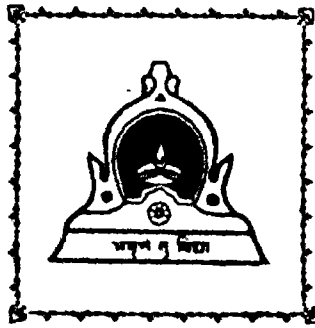
प्रकाशक

भारतीय विद्या भवन

बंबई

वार्षिक मूल्य, रु० ५-०-०] * [सजिल्द भाग १ का मूल्य, ६-०-०

भारतीय विद्या

द्वितीय भाग – संपूर्ण लेखानुक्रम।

परिशिष्ट–

चित्र – प्लेट

भारतीय विद्या भवन

अध्यापक मण्डल

*

(१) आचार्य, श्री जिनविजयजी, डिरेक्टर; अधिष्ठाता – प्राकृत और हिन्दी भाषा शिक्षापीठ, तथा सिंघी जैनशास्त्र शिक्षापीठ

(२) डॉ. ए. डी. पुसालकर, एम्. ए., एल्-एल्. बी., पीएच्. डी. आसिस्टन्ट डिरेक्टर; अधिष्ठाता – संस्कृत तथा तुलनात्मक भाषाशास्त्र

(३) श्री. दुर्गाशंकर के. शास्त्री, अधिष्ठाता – भागवत धर्म शिक्षापीठ

(४) श्री. के. एस. वकील, एम्. इ. डी., एम्. आर्. एस्. टी., टी. आर्. जी. एस्., आय्. इ. एस्.; ऑनररि प्रोफेसर तथा अधिष्ठाता – शिक्षणशास्त्र शिक्षापीठ

(५) डॉ. मोतीचंद्र, एम्. ए., ऑनररि प्रोफेसर – भारतीय इतिहास विभाग

(६) श्री. आर्. जी. ग्यानी, एम्. ए. ,, ,, ,,

(७) श्री. ए. एम्. गोपाणि, एम्. ए. प्रोफेसर – अर्धमागधी, सिंघी जैनशास्त्र शिक्षापीठ

(८) श्री. एस. डी. ग्यानी, एम्. ए., प्रोफेसर – भारतीय इतिहास, तथा हिन्दी भाषा विभाग

(९) श्री. यशवंत पी. शुक्ल, एम्. ए., रीडर – गुजराती साहित्य शिक्षापीठ

(१०) श्री. एच. जी. भायाणी, एम्. ए., रीडर – संस्कृत एवं तुलनात्मक भाषाशास्त्र विभाग

(११) पं. माधवाचार्य, सर्वतंत्रस्वतंत्र, अध्यापक – मुम्बादेवी संस्कृत पाठशाला तथा वेद पाठशाला

(१२) पं. जी. बी. जोशी, (आचार्य, बनारस हिंदु युनिवर्सिटी) अध्यापक – संस्कृत शिक्षापीठ

(१३) पं. गौतमलाल दवे, अध्यापक – ज्योतिषशास्त्र शिक्षापीठ

'रिसर्च फेलो' –

(१) श्रीमती सुशीला महेता, एम्. ए., एल्-एल्. बी. (भागवतधर्म शिक्षा विभाग)

(२) श्री. पी. सी. शाह, एम्. ए. (संस्कृत शिक्षा विभाग)

(३) श्री. डी. एन्. डीके, एम्. ए. ,, ,,

'रिसर्च स्कॉलर' –

(१) श्रीमती कल्पलता के. मुन्शी, बी. ए. (संस्कृत शिक्षाविभाग)

(२) श्री. एम्. वी. सूचक, बी. ए. (गुजराती शिक्षा विभाग)

(३) श्री. एल. यु. दलाल, बी. ए. ,, ,,

*

ग्रन्थ प्रकाशनकार्य

*

भवनद्वारा प्रकाशित साहित्य –

पत्रिकाएँ –

(१) 'भारतीय विद्या' (अंग्रेजी)–षाण्मासिक
(२) 'भारतीय विद्या' (हिन्दी-गुजराती)–त्रैमासिक
(३) 'भारतीय विद्या पत्रिका' (हिन्दी)–मासिक

ग्रन्थ –

(१) बुद्धघोषाचार्यकृत – विशुद्धिमग्ग (प्रथमभाग), सम्पादक–श्री धर्मानन्द कोसाम्बी
(२) भरतेश्वर बाहुबलि रास, सम्पादक – आ० श्री जिनविजयजी मुनि

*

निम्न लिखित ग्रन्थ छप रहे हैं –

(१) सन्देशरासक (अपभ्रंश काव्य), सम्पादक–आ० श्री जिनविजयजी मुनि
(२) उक्तिव्यक्तिप्रकरण, सम्पादक – आ० श्री जिनविजयजी मुनि
(३) वैजनाथ कृत कलानिधि (मराठी भाषाका प्राचीनतम ग्रन्थ), सं. जि. वि. मुनि
(४) रिष्टसमुच्चय (प्राकृत ग्रन्थ), सम्पादक – प्रो. अ. म. गोपाणि
(५) भास, महाकवि (इंग्रेजी), ले० – डॉ. अ. द. पुसालकर
(६) भागवतधर्म (इंग्रेजी), ले० – श्री दुर्गाशंकर शास्त्री तथा श्रीमती सुशीला महेता
(७) भारतीय संस्कृति (हिंदी प्रबन्ध), ले० – प्रो. शिवदत्त शर्मा

*

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press, 26-28, Kolbhat Street, Bombay.

Published by P. R. Bhatt, Secretary, Bharatiya Vidya Bhavan, Harvey Road 33 35, Gamdevi, Bombay No. 7